देहराग
(उपन्यास)
उन्मय प्रेम
बादलों की धमक, बिजली की सनसनी और मूसलधार
बारिश : कोई किसी से प्यार नहीं करता . कर ही नही
सकता . वह जिसे हम प्यार कहते हैं, महज एक जूनून
है. हर आदमी में एक वहसी जूनून होता है. अपने उस
जूनून को ही वह प्यार का नाम देता है.

देहराग :

एक आदिम भय का कुबूलनामा

(उपन्यास)

(A Story of Passions In Play of Love and Lust)

उपन्यास // Book Title: DEHRAG: CARNAL MELODY / ISBN #: 978-0-557-55006-7 / Content ID: 9061230

उन्मय प्रेम

मुहब्बत और दैहिक कामनाओं की बहुरंगी छटाओं में रंगी जिंदगी की खुशियों और पीडाओं की दास्तान

देहराग // एक आदिम भय का कुबूलनामा

CARNAL PASSIONS : CONFESSIONS OF A PRIMITIVE FEAR (NOVEL IN HINDI)

- उन्मय'प्रेम'

उपन्यास // **Book Title: DEHRAG: CARNAL MELODY / ISBN #: 978-0-557-55006-7 / Content ID: 9061230**

Love is impossible to define.It is the deepest experience of soul that remains decorating eyes with pearls through out the life . - Author

Death is not the greatest loss in life
The greatest loss is what dies inside us while we live.

- Norman Cousins

यह एक पूर्णतः

काल्पनिक रचना है तथा

इसमें वर्णित स्थलों,

घटनाओं, तथा पात्रों का

विवरण किसी भी किसी

भी जीवित अथवा मृत

व्यक्तियों से किसी तरह

भी संबंधित नहीं है।

वैसा प्रतीत हो तो उसे

मात्र सांयोगिक समझा

जाये।

आमुख

कहावत है की इश्क और मुश्क छिपाए नहीं छिपते. स्त्री और पुरुष के बीच वह संबंध जिसे इश्क कहते हैं अन्ततः उस आदिम लालसा का स्रोत होता है, जहाँ यौन के सम्बन्ध बनते हैं. एक बार शुरुआत हुई कि नहीं, फिर वे अनंत जटिलताएं पैदा होती हैं जो तन, मन, परिवार, समाज, धर्म, नीति, क़ानून वगैरह के विस्तार से रची जाती हैं. राग, भय, ईर्ष्या, घात,और प्रतिघात की प्रतिद्वंद्विताएं फिर इस सम्मोहक क्रीडा में अनवरत चली चलती हैं.अन्य मुल्कों विशेषतः पश्चिमी मुल्कों की भाषा में इस पर प्रचुर कथाकृतियाँ निर्द्वंद्व भाव से रचित हैं. हिन्दी में यह उपन्यास उसी श्रृंखला के प्रयास की एक कड़ी है, जिसमें स्त्री और पुरुष के बीच प्रणय और रति संबंधो की सम्मोहकता और जटिलताओं को उनके व्यक्तिगत , सामाजिक, और रूढिगत नीतियों के परिप्रेक्ष्य में कथारूप में प्रस्तुत किया गया है.

प्रणय और रति के मनोसंसार को रचते हुए भी यह कृति क्रूरता, हिंसा, और बलात संबंधों का समर्थन नहीं करती है तथा इसमें कोई भी पात्र अठारह वर्ष से कम की आयु का नहीं है. इसे केवल उसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना उचित होगा जहाँ देहराग का मनोविज्ञान रचित होता है.

लेखक उन सभी रचनाकारों तथा प्रकाशन स्रोतों का सविनय आभारी है जिनकी पंक्तियाँ उपन्यास के विभिन्न सर्गों में उद्धृत हैं.

उन्मय प्रेम

0000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

होली की आंच और बसन्त की बयार

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

यह भी एक पृथ्वी है/जिस पर वह फिरती है/बर्फ की या कांच की**?**/स्मृति किसमें हिलती है**?**
-यह आकांक्षा समय नहीं/गगन गिल. **1997-98**

****

प्रेम आसान नहीं है,
इसमें इतनी निराशाएं होती रही हैं,
फिर भी वही एक उम्मीद है,
वही आग है,
वही लौ है,
वही अर्थ की दहलीज है ।
(–आसान नहीं/अशोक वाजपेयी/उम्मीद का दूसरा नाम/पृ. ३२)

****

दर-असल हम जिसे प्रेम कहते हैं, वह किसी दूसरे व्यक्ति के साथ होता है
- उस दूसरे व्यक्ति के साथ जुड़ी अपनी परछाई से.
हम उसके पास मोहाविष्ट से डोलते रहते हैं - (जया जादवानी)

****

ALFRED TENNYSON:
I hold it true, whate'er befall;
I feel it, when I sorrow most;
'Tis better to have loved and lost
Than never to have loved at all.
****

The Eskimos have 52 words for snow because it is so special to them; there ought to be as many for love!
-Margaret Atwood

****

बेचैन आदम उस नये जीव की तलाश में अपनी यात्रा पर था जिसे खुदा ने उसके शरीर से जुदा कर रच रखा था। बिना उसके वह अधूरा था।

रचती है
प्रेम की परिभाषा
सदियों से जिन्दगी
काल के अनंत बियाबान में

क्या वह भी नियति है
किसी अनंत के मन की ?   - मौलिक

प्रियहरि भाग रहा था और भागता ही चला जा रहा था। लेकिन वह जितना ज्यादा भागता स्मृतियां और और करीब आ जा रही थीं। स्मृतियों से राहत पाने भटकता प्रियहरि ऊटकमंड के इस होटल के छज्जे की खिड़की पर हाथ टिकाए पर्वतों की चोटी पर जमे कोहरे की उस खूबसूरती को इस वक्त निहारना चाहता था. वह समूची वादी को समेटे उस एक सांवली औरत के चेहरे में तब्दील होती जा रहा थी जिसे वह भुलाना चाहता था। रात वह सो नहीं सका था। उसे नहीं मालूम कि वह अलस्सुबह की चिलकती ठंड थी या उसके अंदर बह रही लू का असर जिससे वह कांप रहा था। जिन पहाड़ी चोटियों पर उसकी निगाह थी, वे जैसे उसकी अपनी खुद की खोपड़ी में तब्दील हो चली थीं। अपनी सघनता से पर्वत-शिखरों को बोझिल करते बादलों के धुंध की तरह स्मृतियां उसपर छाई जा रही थीं। यह चित्त में गहराता धुंध था जिसमे सामने खड़े पर्वत खोए जा रहे थे। उनकी जगह एक चेहरा था, जो समूची वादी में फैलता प्रियहरि को उन्हीं भयावह अंधेरों में खींच रहा था, जिनसे वह निकल भागने के उपक्रम में भटकता रहा आया है। उसका चित्त अविराम तेजगति बह रहा था । उसके पास पहेलियां ही पहेलियां थीं। रहस्य से भरी पहेलियां, जो सुलझने का नाम ही नही लेती थीं । जितना वह सोचता उतना अधिक वे उलझाये जा रही थीं। उसके पांव स्थिर थे, शरीर जड़, लेकिन चित्त था कि सोचता चला जा रहा था।

यह औरत कौन थी ? इससे प्रियहरि का क्या संबंध था ? सिवाय दुख और अपार पीड़ा के प्रियहरि को उसने कुछ नहीं दिया। इतना-इतना कि पीड़ा के अंधकार में धकेलकर निरंतर उसे कुचलने, उसके प्राण लेने वह उद्‌यत रही। उद्‌यत मात्र नही रही, शायद सफल भी हो गई है। वह जानती थी कि वह प्रियहरि के प्राण ले रही है, लेकिन इतने पर भी उसे चैन कहां था ? प्रियहरि की हर पीड़ा, उसकी हर करुणा इस औरत को और प्रमुदित करती थी, जैसे उसका सारा सुख इसी में निहित हो। अपने रहस्यमय व्यक्तित्व और व्यवहार की तरह चीजों को हमेशा उसने जटिल बनाए रखा। प्रियहरि ने जितना सुलझाने की कोशिश की उतना वह और उलझता गया। वह कौन थी ? उसने वैसा क्यों किया ? सारा कुछ प्रियहरि के लिए एक अनबूझ पहेली रहा आयेगा। अगर ऐसा कोई स्तूप आप ढूंढ पाएं जिसमें सब कुछ प्रचंडता से भरा हो - प्रचण्ड अहंकार, प्रचण्ड ईर्ष्या, प्रचण्ड अपमान, उपेक्षा की भावना और इन सब के अलावा भी प्रचण्डता में बहुत कुछ जिसका वर्णन मुश्किल है तो वह उसी की काया हो सकती है। नाम तो था वनमाला, लेकिन वनमाला नही वह वनज्वाला की तरह थी।

स्त्री के विषय में आदिकाल से ही जितनी कोमल बातें कही गई हैं, जैसा स्वभाव बताया गया है, जो कुछ कल्पनाएं की जाती हैं वे प्रियहरि को अब झूठ लगती हैं। जो यथार्थ है उसका उसका शतांश भी लोग नही जान पाते। बाहर से जो देखा और जाना जाता है वह कितना झूठ होता है इसका अनुभव प्रियहरि अब कुछ ही कर सकता है। स्त्री को जिस रूप में लोग देखते हैं , वह उसका अन-उजागर रूप ही हुआ करता है। कुछ ऐसा ही जैसा किसी फूल की खूबसूरती को देखकर कोई यह नहीं जान सकता कि वह कितना विषैला और मारक है। उसकी गंध, उसका स्पर्श, उसका स्वाद किसी के प्राण भी ले सकता है।

यह जानते हुए भी कि वह स्त्री प्राणहारिणी है निपट क्रूर, प्रियहरि का ध्यान वनमाला पर ही टिका हुआ है। वह उसी को याद कर रहा है। याद एक भीषण दुःस्वप्न की, जिसमें प्रियहरि का सारा कुछ खो गया है। सारा कुछ यानी शान्ति, चैन, सुख, दुनियादारी, घर, प्रतिभा, जिन्दगी का सब कुछ। हो सकता है जिसे लोग प्यार करते हैं यह उस किस्म का यह अनुभव हो। लेकिन अब जी नही मानता। पहले प्रियहरि भ्रमित था, लेकिन यह शब्द उसे प्रसंग-बाहर प्रतीत होता है। वह कुछ भी हो सकता था लेकिन प्यार नहीं था। प्रियहरि को शुरू में ही जानना चाहिए था कि क्या अब तक भी उसे वह जान सका है ? अब अगर इसे प्यार कहा भी जाए तो वह प्रियहरि के लिए वनमाला को उसकी संपूर्ण रहस्यमयता के साथ जान लेने की जिज्ञासा मात्र से अधिक क्या था ?

प्रियहरि सोच में बहा जा रहा था। वह दुर्भाग्य ही था कि जितना अधिक उसने वनमाला को जानने की कोशिश की, उतना ही अधिक वह अपने को रहस्य के अवगुंठनों में छिपाती चली गई। अपने अभिनय से सारा कुछ वही रचती , ताकि प्रियहरि उसके पीछे और भागता चला आए। पूछने के लिए एक पल भी प्रियहरि को नहीं दिया उसने। मौके आते तो उसे उलझाकर, दरम्यानी पलों में रहस्य का और इजाफा करती वह मुस्कुराती निकल भागती। उसके गंभीर द्वंदग्रस्त चेहरे पर तैरती कुटिल मुस्कान में ऐसे वक्त प्रियहरि के लिए अघोषित संवाद यह हुआ करता कि 'मै तो चली, अब इसे भी हल करो।' सारी पहेलियों का साकार पुंज बनी वनमाला उसे उलझाए छोड़ जाती थी। यह एक अजीब चक्कर था जिसमें प्रियहरि की नियति भटकने की थी और नियति-नटी थी वनमाला, जिसके लिए प्रियहरि का भटकाव मनोरंजन मात्र की एक आनंदमयी क्रीड़ा थी ।

बार-बार के अनुभवों से तंग आकर उस दिन भी प्रियहरि मायूस अपने एकान्त में बैठा था । उसे ठीक-ठीक याद नहीं कि उस दिन और लोग आए थे या नहीं । ऐसा भी हो सकता है कि इक्का- दुक्का आकर बाहर अपने कामों में व्यस्त हो गए हों । कभी आलमारी खोलता, कभी फाइलों के बीच कागज पलटता प्रियहरि वहां पसरे मौन को काट रहा था । केवल वनमाला ही थी जो वहां बैठी रह गई थी । कहते हैं कि दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है । वनमाला के मूड से प्रियहरि इन दिनों भयभीत रहता था । बात करो तो मुश्किल , न करो तो मुश्किल । गंभीर, बीमार चेहरा वनमाला भी उसी की तरह पर्स खोलती बंद करती, रजिस्टर पलटती बैठी तो थी लेकिन अन्यमनस्कता ही थी, जो उससे वह करा रही थी । दोनों ओर से बर्फ जमी थी । वनमाला से खिन्न प्रियहरि और वनमाला के बीच की चुप्पी से भरा वातावरण इन दोनों के पशोपेश को पढ़ रहा था। लेकिन बर्फ थी कि अपनी जगह अपनी अकड़ में थी । ऐसे माहौल में जहां प्रियहरि और वनमाला संयोग से अकेलेपन में साथ पड़ जाएं, दोनों के चित्त की धुकधुकी माहौल में जैसे पसर जाती हो ।

ठीक इसी माहौल में नीलांजना का प्रवेश हुआ । नीलांजना और वनमाला में बहुत फर्क है । ठीक वैसा जैसे जमीन और आसमान का फर्क हो । नीलांजना को प्यार में हरि ने नीलिमा, लीला नाम दिया हुआ था । लीला नाम भास्कराचार्य की विदुषी, गणितज्ञा कन्या लीलावती के नाम पर था । हां लीलावती वैसी ही रही होगी । नीलांजना सी शांत, सौम्य, विनम्र, उदारता से भरा प्यारा चौकोर चेहरा, पिंडलियों के नीचे तक झूलती लंबी काली चोटी, अनधिक गुराई का वैभव और सहज संकोच से भरी नतमस्तिका । यह विनम्र संकोच उसके सुंदर व्यक्तित्व का अंतरंग आभूषण था । नीलांजना का अतिरिक्त आकर्षण सरल दृष्टि लिए मासूमियत भरी उसकी खूबसूरत आंखों में था। उनमें चमकती गहरी काली पुतलियां अथाह शांत सागर की तरह मनमोहक थीं। नीलांजना जानती थी कि प्रियहरि की आंखें अक्सर उन पुतलियों में डूब जाया करती थीं । वह खुद उन आंखों का डूबना देखती और डूबती आंखों को निहारती प्रियहरि की आंखों की भाषा को पढ़ने की चेष्टा करती थी । आंखें चुराना उसकी आदत न थी ।

जहां कहीं भी परिदृश्य में अपने होने पर भय, तनाव, विवाद की आशंका हो, ऐसे अवसरों को टालती नीलांजना प्रतिक्रियाविहीन बनाए रखकर अपने अस्तित्व को सिकोड़ लेती थी । यह उसका स्वभाव था । वह नाक की सीध में चलता और जहां अवसर हो वहीं खुलता था । नीलांजना और वनमाला दो विपरीत ध्रुव थीं । वनमाला की नाक पर गुस्सा चढ़ा रहता था । उसे मनाने थक-हार जाना होता था । वह अपने आप ठंडी होती

पछताती और प्रियहरि के पास आती थी । उसके बरअक्स हरिणी सी खूबसूरत आंखों वाली मासूम नीलांजना थी कि जिसके झगड़ने, नाराज होने और जिसे मनाने के अवसर जोहता प्रियहरि का मन तरस-तरस जाता था । कई बार प्रियहरि ने अपनी यह तमन्ना जाहिर की भी कि कभी तो नीलांजना उससे झगड़ा करे ताकि उसके चांद से मुखड़े को नई मुद्रा में निहारता उसकी गोरी सुडौल जंघाओं पर सर रख उसकी लटों से खेलता, गालों को सहलाता प्रियहरि उस रूठी को मनाए । लेकिन नहीं, नीलांजना बड़ी मासूमियत से प्रियहरि को जवाब देती - "क्यों ? मैं आपसे भला क्यों झगड़ा करूं ? आपसे मुझे कोई शिकायत है ही नहीं । जिन्हें हो, उन्हें हो । आप ऐसा कुछ करते ही नहीं कि जिससे मैं झगड़ा करूं ?"

यह अगर तपती गर्मी में भी मन को राहत देती शीतल मंद बयार की एक लहर थी, तो वह ठंडे मौसम में भी अनायास आ धमकी प्रचंड लू का झोंका थी । नीलांजना का सान्निध्य प्रियहरि को अगर सारे तनावों से आत्मीय राहत देता था तो वनमाला का सामना उपस्थिति मात्र से उदास आशंका, बेचैनी और तनाव का माहौल रच देता था । नीलांजना की जुबान जितनी सरल और मीठी थी, वनमाला अपनी जुबान से उतनी ही कड़वी और कुटिल हुआ करती थी ।

प्रियहरि के संबंध दोनों से थे । प्यार की कुंडली से लक्षण मिलाएं तो मोहब्बत के संबंध प्रियहरि और नीलांजना के बीच सहज ही सधने वाले थे । पर वैसा क्यों कर होता ? होनी तो होनी ही है । मामला यह था कि प्रियहरि का दिल तपती गर्मी, प्रचंड लू का झोंका, अदृश्य भय, तनाव, बेचैनी और कुटिल, कड़वी जुबान की मुहर वाली वनमाला पर ही आसना था । यह और भी विचित्र था कि खुद वनमाला की निगाह में प्रियहरि जैसा भी रहा हो ,मरती वह प्रियहरि के प्यार पर थी । वनमाला के लिए प्रियहरि प्यार के उस सजीव पुतले की तरह था जिससे खेलने, जिसे तोड़ने या मिटा डालने का हक केवल उसका था । किसी भी औरत जात का उस पुतले को छूना तो दूर, उस पर निगाह डालना तक वनमाला को सखत नापसन्द था । किसी औरत का वनमाला से टकराना अपने लिए खुद मुसीबत को दावत देने जैसा था ।

नीलांजना उर्फ नीला उस वक्त फुरसत निकालकर आई थी । प्रियहरि से उसने कहा - 'चलिए अभी मैं फुरसत में हूँ । सुबह का समय अच्छा है । अपना जो काम पड़ा है उसे निबटा लेते हैं'

'तुम्हें समय है?'- प्रियहरि ने पूछा ।

'हां इसीलिए तो आई हूँ । कोई काम पड़ा रहे मुझे अच्छा नहीं लगता । आप को तो कहीं जाना नहीं है न ।'

प्रियहरि ने चाबियां नीलांजना को सौंप दी । आलमारी पीछे ही थी । नीला ने फाइलें निकाली, कागज फैलाए और प्रियहरि से पूछती बात करती काम में व्यस्त हो गई । काम तो प्रियहरि भी नीला के साथ कर रहा था, लेकिन अन्यमनस्कता रही आने से दिल न लग रहा था । प्रियहरि और नीला दोनों मुंडियां जोड़े अगल-बगल बैठे टेबिल पर झुके थे । रस्मी बातें हो रही थीं ,लेकिन वनमाला की उपस्थिति के बोझ ने जुबानों की सहज स्वतंत्रता छीन ली थी ।

मूडी वनमाला जिसने अरसे से उस तरह प्रियहरि के साथ बैठना बंद कर दिया था ,बड़े गौर से प्रियहरि और नीलांजना को लक्ष्य कर रही थी - यूं कि देखते भी देखना दिखाई न पड़े । उसकी आंखों में एक तरह की व्यंग्य भरी शिकायत ने तैरना शुरू कर दिया था । उसके चेहरे पर अचानक कई हाव-भाव एक साथ आ और जा रहे थे । प्रियहरि ने गौर किया कि साथ बैठी नीलांजना का मन भी इसे महसूस कर रहा था । दोनों के बीच की तरंगें इधर से उधर संक्रमित हो रही थीं । अपना काम करते हुए भी नीलांजना और प्रियहरि उस निस्तब्धता में एक अदृश्य संकोच से भरे हुए थे । बातों में सामने पड़े काम को रखते हुए भी ऐसी भयावह संकोच की छाया थी जैसे वे चोरी कर रहे हों और निगाहों से वे देखे जा रहे हों ।

दूर बैठी वनमाला के होठों पर एक तरह की मुस्कान उभरने लगी थी । अब वह स्तब्ध, बोझिल एकांत उसके धैर्य से बाहर होने लगा था । वह देख रही थी कि कुर्सियों में सटे बैठे नीलांजना और प्रियहरि के सिर तल्लीनता से झुके हुए हैं । दोनों की वाणियां बुदबुदाने के लहजे में एक दूसरे से संवादरत थीं।

दोनों की आंखें कागजों पर फिसलती कोण बनाती एक-दूसरे से टकरा रही थीं । दोनों उसे देखकर भी अनदेखा कर रहे थे जैसे वनमाला की उपस्थिति का अहसास ही उन्हें न हो ।
अचानक एक स्वर लहराया - "मे आई डिस्टर्ब यू सर ?"

आखिर वही हुआ जिसका भय उन्हें सालता है। वे दोनो चुप्पी में सिहर गए। नीलांजना की मासूम आंखें प्रियहरि की आँखों से टकराईं। वे मानों पूछ रही हों कि यह क्या होने जा रहा है ? उन्होंने पाया कि अपनी पुस्तक और पर्स उठाये वनमाला उनकी तरफ देख रही है जैसे इसी की प्रतीक्षा में वह हो। वह अपनी जगह खड़ी थी और कुटिल मुस्कान में तैरता उसका "डिस्टर्ब" अनायास प्रियहरि और नीलांजना को विचलित कर रहा था। वनमाला अपना समान समेटे चलकर उन दोनो की कुर्सियों के सामने आकर ठिठक गई। उसने नीलान्जना से कहा -

"माफ करना मैडम, मैने आप लोगों को डिस्टर्ब किया।"

प्रियहरि की ओर मुखातिब हो इसने कहा -"आपको मालूम है न कि मेरी तनखाह का पुराना मामला रुका हुआ है।" इस बार आप कमेटी मे हैं इसलिए कह रही हूं। मेरा काम भी आप इस बार कर देंगे क्या ? अभी हो जाएगा तो हो जाएगा, अन्यथा तो कोई उम्मीद नही है।"

प्रियहरि का मन वनमाला के "आप दोनो" के उच्चारण की भंगिमा से कांप उठा था। वनमाला ने उसे जैसे चोरी करते पकड़ लिया हो। उसने काम बताकर एक साथ ही अपने दो-तीन काम निपटा दिए थे। मासूम आवाज में निहायत मीठेपन से उच्चरित वनमाला के "डिस्टर्ब" के मायने क्या हैं ,यह प्रियहरि भी समझता था, और नीलान्जना भी समझ रही थी। एक अदृश्य घबराहट से इस जोड़े का मन भयभीत हो गया। वनमाला खुद ही कटी-कटी रहती है। बात करो तो काटती है। सबके सामने यूं बर्ताव करती है जैसे प्रियहरि से उसका लेना-देना नही। इस तरह कि मानो केवल प्रियहरि ही उसके पीछे पड़ा है। मायूसी और अवसाद के घेरे में प्रियहरि को वह खुद ठेल कर धकेल जाती है । और अब उसका यह व्यंग्य ! प्रियहरि के लिए वनमाला को समझना मुश्किल है। लेकिन फिर बस इतना ही उसका ऐसा मरहम प्रियहरि को मेमना बना जाता है। उसे जवाब दिया -

"मैने तो कभी मना नहीं किया। बस आप एक चिट्ठी उस मामले पर विचार करने के लिए अपने अफसर से मार्क करा दें फिर मै देख लूंगा।"

वनमाला के साथ का "तुम" उसकी खुद बनाई दूरी में प्रियहरि के लिए भी "आप" हो जाता था। इस बारे में दो-चार औपचारिक बातें प्रियहरि और वनमाला के बीच हुईं और चेहरे पर छाई अपनी उदास मासूमियत के साथ वनमाला चली गई। जिसे तिलांजलि देने पर संकल्प प्रियहरि ने बार-बार किया है, उसे कंपाते वह चली गई। इस कंपन को क्या नीलांजना ने नहीं देखा ? प्रियहरि ने चाहा कि नीलांजना उसे बचा ले लेकिन नीलांजना खुद भाग जाना चाहती है। क्यों, वनमाला का इतना आतंक क्यों ? हां, कहीं मन मे कोई चोर था। प्रियहरि नहीं जानता कि वनमाला कैसा महसूस करती थी? लेकिन उसे यह स्वीकार करने में कोई हिचक नही कि वनमाला उसे बेहद प्रिय थी। जीनत नहीं जाती तो शायद तकदीर की वे दुर्घटनाएं उजागर नही हुई होतीं, जो बाद में उसके और वनमाला के बीच इतिहास बनाकर चली गईं।

अदन के बाग का निषिद्ध फल चखने की अब यही सजा थी। बेचैन आदम उस नये जीव की तलाश में अपनी यात्रा पर था जिसे खुदा ने उसके शरीर से जुदा कर रच रखा था। बिना उसके वह अधूरा था।

88888888888

जीनत

चम्पक के फूल में अगर गुलाब की आभा भर दी जाए तो वह जीनत का रंग होगा।

अगर किसी स्त्री के बारे में सोच-सोच कर हृदय, बुद्धि, संस्कृति और कला की सारी खूबसूरती इकट्ठी कर ली जाएं तो उन सब का मेल जीनत ही हो सकती थी। यूं नही कि दुनिया में वह अकेली ही ऐसी होगी, मगर यह कि प्रियहरि के अनुभवों का ताल्लुक जहां तक था, वहां तक जीनत को ही उसने वैसा पाया।

जीनत को उसने कभी नाराज होता नहीं देखा। यदा-कदा वैसे अवसर आये भी हों तो वह व्यक्तिगत शिकायत जैसी बातों में ही आए रहे होंगे। जीनत से प्रियहरि की बात होती और सारी गलतफहमियां दूर हो जातीं। जीनत का हृदय निर्मल था। वह बला की खुबसूरत थी। अण्डाकार चेहरे को आप अगर जरा सुतवां ढाल में देखें तो वह जीनत का चेहरा बनेगा। चम्पक के फूल में अगर गुलाब की आभा भर दी जाए तो वह जीनत का रंग होगा। नाप तौलकर बनी समानुपातिक अंगो के साथ लहराती उसकी छरहरी काया को देखकर किसी कोमल मरूलता की कल्पना जागती थी, जिसमें आंखों को उजला बना देने वाली सुन्दरता और हृदय को शीतलता प्रदान करने वाली सहजता थी। प्रियहरि ने कभी उसे यत्नपूर्वक सज्जा के भड़कीले वस्त्रों और प्रसाधनों में नहीं देखा। जीनत के अन्दर ही ऐसा कुछ था कि वस्त्रों का उसका चुनाव बड़ा सलीकेदार होता। सलवार और कुर्ती के अपने आम पहनावे में वह फबती थी, लेकिन जब कभी वह हल्की कढ़ाई वाली बादामी या दूध सी झक्क सफेद साड़ी पहनती, जीनत साक्षात सुन्दरता की कल्पित यूनानी देवी वीनस दिखाई पड़ती थी। चाल-ढाल कपड़ों, बातों, व्यवहार, कामकाज - किसी में कभी कोई बनावटी अतिरंजना उसमे प्रियहरि ने नहीं देखी। उसके अन्दर और बाहर के सहज सन्तुलन ने ऐसी खूबसूरती उसे दी थी कि उसकी झलक मात्र तनाव भरे वातावरण को खुशनुमा रंगीनियत में बदल देती थी। उसके बारीक गुलाबी होंठो पर फैली तबस्सुम, मृगी सी शीतल स्निग्ध दृष्टि वाली उसकी बोलती आंखें जिनमें बिना काजल के कजराई थी, उसकी नजाकत से तरासी गई देह-यष्टि की और इन सब में धार चढ़ाती उसकी जुकामियां पुटवाली सेक्सी स्वर लहरी जिस पर बड़े सलीके से स्पष्ट उच्चारण के साथ अपनी नर्माहट और चिकनाई में भाषा खेलती थी। सब इतने सम्मोहक कि कोई भी जीनत के जादुई आकर्षण से अछूता नहीं रह सकता था। विषय चाहे उसका साइंस हो, लेकिन कला और सुन्दरता की साक्षात प्रतिमा वह थी। इतनी उजली कि छूने की कल्पना में भी यह भय होता कि कहीं जीनत मैली न हो जाए। प्रियहरि नहीं जानता कि ईश्वर किसे कहते हैं ? लेकिन यह जानता है कि कुदरत ने जी भरकर इतनी खूबसूरती जीनत को दी थी कि हर कोई उस पर मर मिटे। ईरानी कला और सुन्दरता की भरपूर झलक जीनत में थी। सौंदर्य-बोध, अभिरूचियों, और प्रतिभा का उसमें अदभुत तालमेल था। साहित्य संस्कृति, कला,दर्शन, भावना, संवेदना की अदभुत सूझ और प्रतिभा जीनत में थी। औरों की तरह प्रियहरि ने कभी कल्पना न की थी कि जीनत उसकी पहुंच में आ भी सकती है। साधारण मुलाकातें, हंसना, बोलना और माहौल को खुशनुमा खूबसूरती से भर देने वाली जीनत की सहज अदायें - यही थे जिन्हे पाकर वह प्रसन्न था। क्या वैसा हो सकता था ? लेकिन वैसा हुआ।

प्रियहरि ने वनमाला को उस साल जुलाई के पहले हफ्ते में तब देखा था जब वह नई-नई वहां आई थी। साथ में उसका आदमी और कंधे पर चिपका हुआ एक नन्हा सा बच्चा। निहायत साधारण शक्लो-सूरत वाला खुरदुरी काया का सांवला पुरुष और निहायत घरू साड़ी में लिपटी खुले सांवली रंगत की उसकी पत्नी। उसकी रस्मी बातचीत और अन्दाज़ अधिक दिलचस्पी न होने पर भी प्रियहरि को दिलचस्प लगे थे।

उस समय कामकाज के बोझ में बुरी तरह दबा होने के कारण इस वनमाला से प्रियहरि का संबंध वैसा ही था जैसा साधारण कर्मियों के साथ हुआ करता था। बाद के सालों में झंझटों से तंग आकर उसने विचित्र परिस्थितियों में बड़ी जिम्मेदारियां खुद ही छोड़ दी थीं। इसी दौरान वनमाला से उसका परिचय बढ़ा था। कुछ समान बातें थी जो उन्हें एक-दूसरे से जोड़ती थीं। दोनो ही एकान्तिक स्वभाव के थे। आसपास की संगत

और वातावरण न तो वनमाला को प्रभावित करते थे, और न प्रियहरि को। घर से वनमाला उदासीन और बेजान लगती थी। ऐसा ही कुछ हाल प्रियहरि के साथ भी था। दोनों को ही गम्भीरता और सूत्रात्मक बातों से लगाव था। गप्पीपन से दोनों को नफरत थी। वनमाला चाहे एकदम साधारण और उपेक्षणिया रही हो लेकिन शुरू से ही उसमें गजब का आत्माभिमान था। लोग-बाग उसकी अकड़ का मजाक उड़ाया करते थे। अगर किसी ने उससे सहानुभूति दिखाई, तो वह प्रियहरि ही था। प्रियहरि से वह अक्सर कहा करती थी 'न मुझे फालतू बातें पसंद हैं, और न फालतू लोग।' सारी चीजों के बावजूद पुराना और अपने क्षेत्र में जाना-माना मेधावी होने के कारण प्रियहरि का अपना मान था। उसकी हैसियत बहुत ऊंची थी। इसके ठीक उल्टे वनमाला की उन दिनों न तो कोई पूछ-परख थी, न ही उसमे किसी की कोई दिलचस्पी थी। ऐसे में सुबह के माहौल में एक-दूसरे के करीब आते प्रियहरि और वनमाला ने एक दूसरे को जाना। तब पहली बार प्रियहरि ने यह महसूस करना शुरू किया कि अपने आप में कुंठित और उदास दिखाई पड़ने वाली यह औरत, जो काम निबटाकर आपने मर्द की आज्ञाकारिता और बच्चे की चिंता के दबाव में जल्दी भागने को उद्यत रहती है, उतनी साधारण नहीं है, जितनी लोग उसे समझते थे। थी तो वह श्यामा बंगाल की, लेकिन उसकी भाषा, लिखावट और चीजों की समझ हिन्दी में ऐसी थी कि इस इलाके में पैदा हुए लोगों में नही देखी जाती। आपसी समझ और प्रसंशा का बढ़ता संबंध कभी उसके प्रति मारक चाहत और लगाव में बदल सकता है, इसकी कल्पना भी प्रियहरि को नहीं थी।

तब इर्द-गिर्द उसके होने के बावजूद कुछ ऐसे संबंध थे जिनका ज्यादा असर प्रियहरि पर था। खास कर खूबसूरत तरासी हुई देह-यष्टि के साथ नफासत की समझ, संस्कृति, बुद्धि, और भावना वाली जीनत की उपस्थिति वहां ऐसी थी, जिसके सामने किसी और औरत का व्यक्तित्व कहीं ठहर ही नहीं सकता था। साहित्य की अपनी समझ और कविता की रोमानियत जैसी हृदय वाली जीनत तब प्रियहरि के बहुत ज्यादा करीब आ रही थी। सारे लोगों के होते हुए भी प्रियहरि पर जीनत का खास लगाव था। जीनत उसके साथ धूप में अकसर बैठ जाती और कविता पर, जिन्दगी पर, उसके फलसफे पर चन्द लमहों में ही सही, तसल्लीबख्श बातें हो जाती थीं। प्रियहरि ने कविताएं लिखी थीं और लगातार लिख रहा था। उसके लेख रिसालों में छपते और इन सब पर जीनत से बहुत बारीक बातें होतीं। प्रियहरि की तब-तक की कविताएं जीनत ने मांगकर कर पढ़ ली थीं। इधर छिपाकर संकोच से पहली बार सौंपी गयीं जीनत की कविताएं प्रियहरि ने पढ़ ली थीं। प्रियहरि की कविताओं में छिपा रोमांस जीनत को अच्छा लगता था। उर्दू की एक लम्बी नज़्म जिसमें मोहब्बत की तड़प और विरह की पीड़ा थी, उसे खूब पसंद आयी थी। अंग्रेजी और हिन्दी में लिखे प्रकृति के कुछ बिम्बों की उसने तारीफ की थी। जीनत को इस बात का अहसास था कि उस पर जान देने वालों में प्रियहरि भी है। उससे आगे भी यह कि उस अहसास के बावजूद वह प्रियहरि के क्रमश: ज्यादा निकट आती गई थी। जब भी मौका मिलता और तीसरा बीच में न होता दरबार हाल में या जीनत के कमरे में दोनो इस तरह एक दूसरे प्रति चाहत भरी प्रशंसा से बतियाते कि जैसे बरसों से उनका परिचय और कुदरती संबंध हो। यह एक ऐसा सहज आकर्षण था, जो पूरी औरत और पूरे आदमी के बीच अपनी आकांक्षाओं में परस्पर होता है। ये संबंध शायद और रंग लाते अगर जीनत तबादले पर कहीं और न चली गई होती।

जहां तक याद पड़ता है जीनत भी अपने को 'वर्गो' कहा करती थी, जैसा कि प्रियहरि तो था ही। उन दोनो में कहीं कोई कमी न दिखाई पड़ने पर भी एक खालीपन रहा होगा जिसे वे परोक्षतः महसूस करते थे। जाती तौर पर जीनत के निजी और भावनात्मक संबंध विराग से थे। तब भी किसी खास मौके को छोड़ खुले रूप में वह प्रियहरि को कभी न दिखाई पड़ा था। जीनत का व्यक्तित्व खुला था और सभी से वह पूरी गरिमा, नफासत और खुलेपन से पेश आती थी। जिस एक बार का जिक्र है उसमे भी गवाह दो ही थे - एक खुद प्रियहरि और दूसरी जीनत। हुआ यूं कि एक दिन जीनत के निजी मातहत ने आकर प्रियहरि को खबर दी कि मैडम उसे बुला रही हैं। सुबह का वक्त था और माहौल शायद जनवरी - फरवरी के गुनगुने ठण्ड का, जब पढ़ने वालों की आमद-रफ्त कम हो जाती है। प्रियहरि उसके कमरे में गया तो उसे सामने बिठाकर जीनत ने विराग की बेरुखी की शिकायत करते हुए यह कहा कि प्रियहरि उसे समझाये। जीनत का कहना था कि उसकी शादी कहीं और तय करने पर उसके घर में लोग आमादा हैं। उस वक्त जीनत कमजोर हो चली थी। प्रियहरि को

समझाते उसकी भावना का बांध टूट गया और आंखों से मोती झरने लगे। प्रियहरि के सामने टेबिल पर कलाइयां फैलाए उसने सिर झुका दिया और सिसकती रही। प्रियहरि ने बड़े प्यार से उसे समझाया, उठाया, तसल्ली दी और कहा कि मैं विराग से बात करूंगा। लोगों की आवाजाही में उस दिन तो बात न हो सकी, लेकिन बाद में प्रियहरि ने ससंकोच विराग को वह बात बताई और समझाया कि जीनत का ध्यान वह रखे। विराग ने अविचलित भाव से सुना और बस इतना कहा कि "मैं देखूंगा।"

जीनत के पास आते-आते प्रियहरि ने दो-तीन कविताएं उस पर लिख डाली थीं। उन्हे बड़ी रूचि से जीनत ने सुना और उनकी तारीफ भी की। जीनत को प्रियहरि की एक मात्र और सबसे अच्छी भेंट उसकी वह एक कविता ही थी ,जिसमें प्रियहरि ने निहायत खूबसूरती से जीनत की तस्वीर खींची थी। वह इतनी खुश हुई कि कविताओं के ढेर से उस खास कविता को पसंद कर उसकी स्क्रिप्ट प्रियहरि से उसने आग्रहपूर्वक फ़ौरन ही छीन ली थी। जीनत की यह खूबी थी कि वह शातिर औरतों की तरह नज़ाकत और अदाओं का इस्तेमाल कर प्रियहरि को प्रभावित नही करती थी, गोकि ये चीजें उसमे थीं। शायद इसीलिए उसे वैसा करने की जरूरत ही नही थी। उसकी खूबसूरत पर्सनैलिटी में ही कुदरत ने इन्हें निखार कर रख दिया था। यह शेर कहा भले ही किसी ने चुहल के रंग में है, लेकिन जीनत पर यह बिना किसी बनावट के लागू होता था कि- "खुदा जब हुस्न देता है, नज़ाकत आ ही जाती है।"

कहीं से तबादले पर आई वनमाला का प्रवेश जीनत के रहते ही तब तक संस्था में हो चला था । लेकिन इर्द-गिर्द उसके होने के बावजूद कुछ ऐसे संबंध थे जिनका असर प्रियहरि पर ज्यादा था। जीनत के अलावा नीलान्जना और चन्द्रकिरण उर्फ रोज़बूटी में वैसा आकर्षण था जो प्रियहरि को लुभाता था। प्रियहरि ही नहीं अन्य साथियों के बीच इनके अनुपम सौन्दर्य और खुले व्यवहार के कारण इनकी कदर ऐसी थी कि वय में किंचित बड़ी, रूखी और एकान्तिक प्रकृति वाली श्यामा वनमाला की ओर किसी को ध्यान देने की फुरसत ही न थी। रमणियों में न तो वह किसी को भाती थी और न उसकी किसी से ज्यादा पटती थी । जाने कौन सी परिस्थितियां ऐसी थीं कि जिनसे वनमाला यूं गुमसुम और गम्भीर दिखाई पड़ती थी कि वह अपनी उम्र से कहीं अधिक प्रौढ़ा नारी ही लगती। उसकी खुद की छिपी नजर चंचल चित्रकार कानन पर दिखाई पड़ती थी जो कलाकारी के हुनर के साथ अपनी चंचल वृत्ति के चलते सभी में लोकप्रिय था । वनमाला उसे प्रभावित करने की फिराक में रहती और वह था कि औरो की तरह सर्वोत्तम यानी जीनत की तारीफ करता था। वनमाला का प्रसंग छिड़ने पर नाक-भौं सिकोड़ता वह हंस पड़ा था - "वह ! वह तो मुझे बुढ़िया लगती है।"

व्यक्तिगत प्रसंगों में चन्द्रकिरण को प्रियहरि प्यार से रोज़बूटी या स्वीट-डॉल कहकर पुकारता था। चार फुट दस इंच लम्बी और महज पैंतीस किलो वजनी बड़ी-बड़ी भूरी आंखों वाली यह गोरी चिट्टी गुड़िया बला की खूबसूरत थी। किसी एक रोज सूने में दोनों ही आ भिड़े थे. कोने में कद नापने का फूटर रखा था. न जाने क्या सूझा वह उसके पायदान पर चढ चली. एकान्तिक माहौल में लगभग चिपकती खड़ी कायाओं में रसीली तरंगे कुछ इस तरह तैर रही थीं कि प्रियहरि ने उसे अवस्थित किया और ठुड्डी थाम नपने को सर पर जतन से संवारे बालों पर ला टिकाया. चार फुट दस इंच .
“ मैं भी तो देखूं “ प्रियहरि ने कहा । सटकर खड़ी रोज़बूटी ने प्रियहरि के सर को उसी तरह ठुड्डी से उठा ताना और नाप लिया.

“पांच फुट सात इंच.” रोज़बूटी ने उच्चारा .

उसकी खूबसूरत आँखों और गुलाबी बारीक होठों पर खुशी, हया और चंचलता को एक साथ समेटे मुस्कान तैर उठी थी. नज़रें उठतीं अर्थपूर्ण संकेतों को समेटे प्रियहरि की नजरों से मिलीं जहाँ वैसी ही तरंगें लहर रही थीं जिन्हें रोज़बूटी संजोए थी. वह मुस्कुराई. उस गोपन मुस्कराहट में सन्देश साफ छपा था. उसे उच्चरित प्रियहरि ने किया - ‘जोड़ी ठीक बनी. नाप एकदम फिट है.’

उस रोज़ फिर सारा समय औरों की भीड़ आ चुकने के बाद भी बार-बार टकराते दोनों के बीच मिलते और टकराते नयनों का रहा. वह एक पल ऐसा रहा कि फिर हर मिलन में कद मिलान की चाहतें दिलों के

दरम्यान हिलोरें मारतीं. पल चमत्कारी होते हैं । कभी-कभी एक पल वह कर जाता है जो प्रयत्नों के बावजूद जीवन भर भी संभव नहीं पाता. रोज़बूटी के साथ संयोग में गुजरा वह एक पल फिर दोनों के दरम्यान ऐसा स्थायी हो चला कि जब तक वह साथ रही खुशियों की बहार के दिन रहे. परिस्थितियां ऐसी बनती चली गई थीं कि विवाह की बेसब्री में डूबी रोज़बूटी का पड़ोसी और निजी हिस्सा बनता चला गया था. वह किस्सा बाद में कहना ठीक रहेगा। अभी मैं जीनत की ओर चलूँ.

दरअसल जीनत से प्रियहरि के संबंध दिनों-दिन ऐसे गहराते गये थे कि विराग को छोड़ वह प्रियहरि की रागिनी बन चली थी। कई बार ऐसे मौके आये जब दिल से बेकाबू जिस्मो-जां की ओर वे बढ़ चले, लेकिन मिलन की अधीरता को अचानक थाम जीनत कह बैठती - "प्रियहरि, रहने दो ना प्लीज़। अपनी जीनत की बात मानलो। मैने सब कुछ किया है लेकिन वो काम मैने अभी तक नही किया है। मुझे बहुत डर लगता है। मैं अभी भी उस मामले में पाकीजा हूं "

"वो काम" के मसले में जीनत का आशय वे दोनों समझते थे। उस काम को मन में छिपाए और कल्पनाओं में देखते प्रियहरि और जीनत के पास मन को मसोसने के अलावा कोई चारा न होता।

बदकिस्मती यह कि जीनत को जल्द ही प्रियहरि से बिछड़ना था। जीनत का तबादला कहीं और हो गया था। यही नहीं, उसकी शादी भी मर्ज़ी के खिलाफ कहीं और तय हो गई थी। जीनत मायूस और टूटी हुई थी। ज्यों-ज्यों उसकी शादी की चर्चाएं बढ़ीं, जीनत बेहद बेचैन और द्वंदग्रस्त होती चली गई थी। तनहाई में उदास बीते दिनों की यादों में वह रोया करती। इन्ही दिनों किसी एक दिन जीनत से प्रियहरि की अंतिम मुलाकात हुई थी जो उसकी स्मृतियों में इतिहास बनकर हमेशा के लिए थम गई है। विचित्र परिस्थितियों में हुई वह दिलरसाई की दिलचस्प मुलाकात थी। प्रियहरि के चित से जीनत के साथ अंतिम मिलन की उस प्यारी घटना का उतरना मुश्किल था। हां वह ,जब जीनत का पाकीज-वर्जित जीनत और प्रियहरि के बीच खेल-खेल में ही जन्नत के बाग का वह मीठा फल हो गया था, जिसके स्वाद की हर पुरुष और स्त्री में तरस होती है। उसे अब वह भूल जाना चाहता है।

जीनत की शादी का कार्ड प्रियहरि को मिला था। न जाने क्या कश्मकश थी कि प्रियहरि जीनत के उस रूप के सिवा, जो केवल उसका अपना था किसी और रूप में बर्दाश्त
न कर सकता था। वह नहीं गया। प्रियहरि के साथ ही सारे और चाहने वालों के दिलों में अपवित्र खलबली मचाती जीनत अपनी पवित्रता साथ लिए उन्हें छोड़ चली गई थी। यह अजीब किस्मत थी कि वह प्रियहरि को जैसे वनमाला के हवाले कर चली गई थी। उसका साथ छूटना ही वनमाला से प्रियहरि का मिलना था। बहुत बाद में वनमाला के प्रेम में डूबे प्रियहरि के दिल ने जब अपना सारा कुछ कविताओं में ढाल दिया तो अजीब था कि छपाई से पहले चयन और संपादन में प्रियहरि को जीनत ही याद आई। जीनत ने उन्हे खूब पसंद किया, चुनाव किया, अपनी राय दी, लेकिन यह अजीब था कि प्रियहरि की दूसरी प्रिया बंगाल का जादू वनमाला पर रची कविताओं के प्रति जीनत ने हौले से अपनी बेरुखाई साफ जाहिर कर दी थी। प्रियहरि जीनत से कैसे कहता कि कविताओं का जो अनुवाद उसके हृदय ने रचा, वह उसके नाम होता अगर समय के फेर से चिपकी वह उससे जुदा न हुई होती । जो भी हो जीनत किसी भी हृदय का प्यार हो सकती थी। वह इतनी अच्छी, प्यारी ओर खूबसूरत थी कि उसे भुलाना प्रियहरि के लिए कभी संभव न होगा।

जीनत का जाना प्रियहरि की सोहबत के लिए एक खलिश थी, जो बहुत दिनों तक बनी रही। तब-तक, जब-तक वनमाला उसके बहुत करीब न आ गई। प्रियहरि ने वनमाला को उस साल जुलाई के पहले हफ्ते में तब देखा था जब वह नई-नई वहां आई थी। साथ में उसका आदमी और कंधे पर चिपका हुआ एक नन्हा सा बच्चा। निहायत साधारण शक्लो-सूरत वाला खुरदुरी काया का सांवला पुरुष और निहायत घरू साड़ी में लिपटी खुले सांवली रंगत की उसकी पत्नी। उसकी रस्मी बातचीत और अन्दाज़ अधिक दिलचस्पी न होने पर भी प्रियहरि को दिलचस्प लगे थे।

उस समय कामकाज के बोझ में बुरी तरह दबा होने के कारण इस वनमाला से प्रियहरि का संबंध वैसा ही था जैसा साधारण कर्मियों के साथ हुआ करता था। बाद के सालों में झंझटों से तंग आकर उसने

विचित्र परिस्थितियों में बड़ी जिम्मेदारियां खुद ही छोड़ दी थीं। इसी दौरान वनमाला से उसका परिचय बढ़ा था। कुछ समान बातें थी जो उन्हें एक-दूसरे से जोड़ती थीं। दोनो ही एकान्तिक स्वभाव के थे। आसपास की संगत और वातावरण न तो वनमाला को प्रभावित करते थे, और न प्रियहरि को। घर से वनमाला उदासीन और बेजान लगती थी। ऐसा ही कुछ हाल प्रियहरि के साथ भी था। दोनों को ही गम्भीरता और सूत्रात्मक बातों से लगाव था। गप्पीपन से दोनों को नफरत थी। वनमाला चाहे एकदम साधारण और उपेक्षणिया रही हो लेकिन शुरू से ही उसमें गजब का आत्माभिमान था। लोग-बाग उसकी अकड़ का मजाक उड़ाया करते थे। अगर किसी ने उससे सहानुभूति दिखाई, तो वह प्रियहरि ही था। प्रियहरि से वह अक्सर कहा करती थी 'न मुझे फालतू बातें पसंद हैं, और न फालतू लोग।' सारी चीजों के बावजूद पुराना और अपने क्षेत्र में जाना-माना मेधावी होने के कारण प्रियहरि का अपना मान था। उसकी हैसियत बहुत ऊंची थी। इसके ठीक उल्टे वनमाला की उन दिनों न तो कोई पूछ-परख थी, न ही उसमे किसी की कोई दिलचस्पी थी। ऐसे में सुबह के माहौल में एक-दूसरे के करीब आते प्रियहरि और वनमाला ने एक दूसरे को जाना। तब पहली बार प्रियहरि ने यह महसूस करना शुरू किया कि अपने आप में कुंठित और उदास दिखाई पड़ने वाली यह औरत, जो काम निबटाकर आपने मर्द की आज्ञाकारिता और बच्चे की चिंता के दबाव में जल्दी भागने को उद्यत रहती है, उतनी साधारण नहीं है, जितनी लोग उसे समझते थे। थी तो वह श्यामा बंगाल की, लेकिन उसकी भाषा, लिखावट और चीजों की समझ हिन्दी में ऐसी थी कि इस इलाके में पैदा हुए लोगों में नही देखी जाती। आपसी समझ और प्रसंशा का बढ़ता संबंध कभी उसके प्रति मारक चाहत और लगाव में बदल सकता है, इसकी कल्पना भी प्रियहरि को नहीं थी।
वनमाला के करीब आने की आहट तो प्रियहरि के दिल को थी लेकिन प्रियहरि और वनमाला दोनों ने उस दिन लगभग उसे तस्लीम कर लिया, जिस दिन की यह घटना है।

00000000000000000000

समूचे बचपन में फैले हुये थे
झांपियों और अंधेरे खंडहरों के वे दिन

आरिफ के कहने पर ही प्रियहरि वहां आया था। कहां उज्जयिनी , कहां, भोपाल, और कहां कोलिकाता और फिर यह जगह ? उसे कल्पना भी नहीं थी कि यही उसकी जिन्दगी का लंबा और निर्णायक पड़ाव होने जा रहा है। तब भी क्या वह बदल सका था ? शायद नहीं। अतीत उसे अब भी सम्मोहक लगता था। स्मृतियों में जीता अब भी वह अपने को अलस्सुबह हाथ में फूल लिये गोपाल मंदिर की ओर भगाता हुआ पाता था। सुबह और शाम की आरती पर उच्चरित समवेत स्वरों के साथ आगे-पीछे हाथ लहराते हुए काठ के हथौडे से घंटे पर टंकार की लय देता वह यूं डूब जाता कि जैसे गोपालजी मोर मुकुट धारे अभी-अभी मंदिर में प्रकट होने वाले ही हैं।

तब वह घनघोर रूप में सदाचारी था हालांकि घर में अचार या सींगदाना खरीदने आई अपनी समवयस्का सलमा की झुकी आंखों में तैरती चमक से चमत्कृत प्रियहरि का दिल तब उसे गिनने की हिदायतों के होते भी सलमा के हाथों गिनती से कुछ अधिक सौंप जाता था। सलमा कुछ समझकर तिरछी नज रों से उसे निहार दबे होठों से मुस्कुराती और प्रियहरि से वैसी ही भाषा में जवाब पा खुश होती और खुश करती लौट जाती थी। प्रियहरि के परिवार जैसी ही सलमा के परिवार की स्थिति थी। न तो वे इतने संपन्न थे कि उन्हें पैसे वाला कहा जा सके , न इतने विपन्न कि गरीबों की तरह उन्हें गिना जा सके। प्रियहरि को इसका इसका आभास था कि सलमा मुसलमान है, लेकिन जब वह उसके सामने होती तो वह खुद को और सलमा को अपने-अपने दायरों से बाहर पाता था। वहां धरम दोनों तरफ आंखों की चमक और ओठों की मुस्कान में आलिंगित हुआ एक हो जाता था। वैसे भी उसे अपने मोहल्ले में हिन्दू और मुसलमान कभी मजहब के रंग में

नज र नही आते थे। वेशभूषा और जुबान से गर पहचान उभरती भी तो वह छोकरे और छोकरियों , गरीब और अमीर की पहचान से कमतर हुआ करती थी।

प्रियहरि के पिता शुद्धतः महात्मा गांधी के अनुयायी और आजादी के पहले के कांग्रेसी संस्कृति के थे। साहित्य और संस्कृति के वे गहन अध्येता थे। आजादी के आंदोलन में तब के बड़े-बडे रहनुमाओं के साथ उन्होंने दिन गुजारे थे। उन्होने असहयोग और सविनय अवज्ञा के आंदोलन के दौर में सैकडों मील की पदयात्राएं की थीं। अपने खास मित्र जो किसी एक विशेष संप्रदाय के संत थे की प्रेरणा से एक वि शालकाय ग्रंथाकार के संचालक भी वर्षों तक रहे आए थे। अंग्रेज अधिकारियों के छापे के दौरान किस चतुराई से उन्होंने सारे प्रतिबंधित ग्रंथ छिपा लिए थे इसका जिक्र वे बडे गौरव से किया करते थे। युद्ध और शांति , अन्ना कैरिनिना, नाटरडैम का कुबडा, अपराध और दंड , बूढा गोरियो, पिता और पुत्र , गाडी वालों का कटरा , टाम काका की कुटिया , चैरी का बागीचा , मां जैसी अमर कृतियों के साथ ही उन्होंने सैक्सटन ब्लैक सीरीज और सर आर्थर कानन डायल के जासूसी उपन्यासों और उन जमानों में सनसनीखेज और बोल्ड समझे जाने वाले लंदन रहस्य जैसी जाने कितनी कृतियां पढ रखी थीं। देवकीनंदन-दुर्गाप्रसाद खत्री , प्रेमचंद, गोपालराम गहमरी और मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के और रवीन्द्रनाथ तथा शरतचन्द्र बंगला के उनके प्रिय लेखक थे। उस काल तक पिता सहित प्रियहरि के परिवार में कोई सदस्य ऐसा न था जिसने चौथी-पांचवी के आगे की शिक्षा पाई हो लेकिन यह विचित्र था कि दिन हो या रात पूरे परिवार में पढ ने और जो पढा उसपर चर्चा की धुंआंधार लत समाई हुई थी। दरअसल यही वे अवगुण थे जिसके कारण प्रियहरि के पिता को उस घर से निष्काषित किया गया था, जहां जैसा कि चर्चाओं में सुनने मिलता था, पैसे गिनने की बजाय पायली से मापकर धर दिये जाते थे। छोटी उमर में ही शादी का तब रिवाज था। ऐसे में कमा-धमाकर पैसा बनाने की जगह जमापूंजी के फूंकने को तब आवारागर्दी के सिवाय और क्या कहा जा सकता था ? तब भी पिता अपने में संतुष्ट रहा करते थे। वे स्वाभिमानी और तुनकमिजाज थे। अपनी जिन्दगी में उन्हे किसी का हस्तक्षेप पसन्द न था।

प्रियहरि को बताया गया था कि पिता को आजादी के आंदोलन के दौर में ही नाटकों का भी खूब शौक था। वे पढ़ने के अलावा खुद लिखते भी थे। नाटकों का शौक इतना बढ चला था कि उन जमानों में बाहर से तीन हजार रूपयों के कर्ज से एक नाटक मंडली बना रखी थी। जमाना पारसी थिएटर और मुक्के सिनेमा का था। पिता उन्हें बताया करते कि किस तरह थिएटर में परदे पर किस तरह चित्र एक-एक कर प्रकट होते और किस तरह सिनेमा का मालिक बाबूलाल खुद हाथ में लंबी छडी लिये तस्वीर में अंकित दृश्य की व्याख्या करता समझाता था। पिता भी आजादी के मसलों पर पारसी थिएटर की छौंक के साथ नाटक तैयार करते और उन्हें शहर में और दूर-दराज जगहों पर कभी खुले में और कभी सिनेमा-थिएटर किराए पर ले खेला करते थे। कभी एक बार तो थिएटर में ठीक प्रस्तुति के वक्त कलेक्टर का फरमान आ पहुचा था कि नाटक में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ बातें हैं इसलिए नाटक पर पाबन्दी लगाई जाती है। मौज में वे खुद बुढापे से ढल चुकी आवाज में कभी-कभी अपने नाटकों के गीत जब परिवार के बच्चों को सुनाते तो सब हंस पडा करते थे।

प्रियहरि सोच रहा था कि क्या वे पिता के ही गुणावगुण थे जिनको उत्तराधिकार में पाकर वह दुनियादारी से लापरवाह फिलासफर हुआ चला गया था। वैसा न था तो क्यों उसने गरीबी के संघर्षों के बीच पाई वह नौकरी छोड दी, जिसे पाने लोग पैसा देते एडि यां रगडा करते थे ? उसकी स्मृतियों में सारे चित्र तैर रहे थे।

बाहर का सच गुजर जाता है, अंदर का सच फिर भी रहा आता है । स्त्री-पुरुष का प्रेम और रतिक्रिया समाज में कभी भी वैध माने गये हों, ऐसा मैने नहीं सुना । रतिक्रिया का नियमन विवाह की संस्था ने दांपत्य ने समाज में कर जरूर दिया है लेकिन विवाह में प्रेम की चर्चा कभी नहीं हुई । प्यार हमेशा बंधनों को फांदने की कोशिश करता रहा है और फांदकर ही होता है । संचित यौनरति जब किसी विपरीतलिंगी पर चित्त में केन्द्रित हो जाती है तब वह प्यार हो जाता है । सामान्य यौनरति केवल यौन की चाहत है और प्यार उसका विशेषीकृत रूप । यह ग़ौरतलब है कि प्यार भी तब तक ही प्यार रहा आता है जब तक वह रतिक्रिया की अतृप्त प्यास है । प्यास बुझाने की रूकावटें खत्म हुई नहीं कि सारा कुछ खो जाता है । प्रेम में भी विवाह

का पड़ाव ऐसा ही मोड़ हैं । ऐसा क्यों होना चाहिये ? इसके पीछे शायद अस्तित्व और वरण की स्वतंत्रता को बनाये रखने का मनोविज्ञान है ।

यौनरति की चाहत मनुष्य के जन्म के साथ ही जुडी होती है । यौनांग छिपाये जाने की चीज है, उसकी चर्चा, प्रदर्शन, क्रिया वर्जित समझे जाते हैं । शायद इसीलिये वही बच्चे को तभी से लुभाने लगता है जब उसकी चेतना यौनांग को महसूस करने लगती है । तीन-चार साल की उम्र से ही यह महसूसना शुरू हो जाता है । तब एक ओर वर्जनायें होती है और दूसरी ओर वर्जनाओं को तोडने के लिये एकान्त और साथ की तीव्र कामना से भरी कोशिशों को आरंभ होती है । यह कामना इतनी तीव्र होती है कि जहां से भी निकल भागने की संधि हो चाहे वह नर हो या नारी मनुष्य का चित्त निकल भागता है । कामना की तृप्ति के लिये साथी की चाहत फिर जीवनभर चलने वाली चित्त की प्रक्रिया बन जाती है । ऐसी प्रक्रिया जो बाहर से आवृत्त अंदर की इतनी और ऐसी दिशाओं में ले जाती है कि मनुष्य का सारा जीवन उससे परछाई की तरह परिचालित होता है । यह वह अदृश्य है, जो कभी कभी तो समाज की सारी वर्जनाओं को तोड विस्फुटित होता है । अवसाद से अपराध तक के दायरे इसमें सम्मिलित होते हैं । घर से भाग जाना, आत्महत्या, बलात्कार, हत्या और अन्यथा सारी कुंठायें इसी से जन्म लेती है ।

हम लोगों का घरोबा का था । हम यानी मेरा साधारण मध्यमवर्गीय घर और हम की वह, यानी उसका घर साहूकार का हवेलीनुमा दो मंजिला बडी-बडी कोठरियों और पचीसों कमरों वाला बहुत बडा घर । ऊपर एक ओर उनका रहवास, बीच में विशाल आंगन और इसके इर्द-गिर्द बडी बडी कोठरियां जिनमें उनके बड़े किराना व्यापार के सामान्य अनाज नारियल वगैरह की सैकडों बोरियां, बांस के बड़े-बड़े पिटारे जिनमें न जाने क्या सामान आता था । बडे-बडे कार्टन्स उनमें ठंसे रहते थे । आंगन और वे नीम-अंधेरी कोठरियां इस घर के चंद बड़ों के बाद बच रहे बच्चों के लिये लुका-छिपाई खेलने और जिज्ञासाओं को खोलने के काम आती थी । उन दिनों बिजली उस कस्बे तक नहीं पहुंची थे हम छोटे थे । छोटों में कुछ बड़े। उसका नाम कावेरी था । घर की छोटी लडकी। उसकी **14-15** साल की उम्र थी । विशाल आंगन में इधर उधर कुदराते और कोठरियों में छिपते बच्चों के साथ हम दोनों भी खिलाड़ी और दर्शक थे । कभी-कभी ऐसे मौके आते जब पाया जाता कि नीम अंधेरे कोने में खेलते नन्हों के मुन्ने हाफपैंट से बाहर है और वे उसे टुन्न-टुन्न बजाने तान रहे हैं । एक खिलंदड़ी हंसी होठों पर तैरती और कावेरी डांटती - "छिः ये क्या कर रहे हो, ऐसा नहीं करते हैं ।"

यह साधारण अनुभव था । वैसा होता ही था ।इसी माहौल में साल दो साल गुजर चले । मैं उससे छोटा था, वह बड़ी। वह मकान जितना विशाल था उसके लिये वहां खेलते बच्चे हम कम थे । बच्चे तीन-चार-पांच वगैरह और कमरे कोठरियां उनके लिये अनंत । बाहर दूकान में नौकर व्यस्त होते । कुछ बच्चे बाहर सड़कों पर खेलते और कुछ दो तीन लुकी-छिपी में अंदर व्यस्त । एक दिन हमने पाया कि आंगन के कोने नीम अंधेरी कोठरी के पास टिका पिटारा हिल रहा है । कावेरी की नजर पडी बोली चलो देखते है क्या है। निहायत दुबली-पतली और सांवली कावेरी चंचल थी । साहूकार की लडकी थी इसलिये मेरी लीडर वही थी । हमने बारीक छिद्रों से झांकने की कोशिश की । दिखाई तो पडा नहीं आवाजें सुनीं । दूध की मलाई लगाने में बहुत अच्छा लगता है - एक स्वर । मुझे मालूम है तुम्हें दूध पसंद है । इसीलिये आज मैं मलाई लगाकर आया हूं - दूसरा स्वर । कावेरी ने होठों पर एक अंगुली टिकाई और मेरी आंखों में झांकते चुप रहने का संकेत किया । उसने एक ओर से उस जादूगर के विशाल पिटारेनुमा झांपी का ढक्कन उठाया । हम दोनों ने देखा बाबू और लक्खू के नन्हें अपना टुन्न लहरा रहे हैं । बाबू का हाथ लक्खू के कंपित पर था और लक्खू मलाई की चिकनाई से चकते बाबू के कंपित की घुंडी निगलते हौंठ चला रहा है ।

मेरा दिल अचानक थमने लगा । वह ठहराव दिल की धडकनों से तेज होने के पहले का था । इस बार मैंने कावेरी की आंखें में देखा और होठों पर अंगुली टिकाते चुप रहने का संकेत किया । झांपी के अंदर बच्चे अपने आप में इस कदर तल्लीन थे कि हमने कब झांपी खोली और बंद किया उन्हें पता ही नहीं चला । कावेरी ने मेरा हाथ पकडकर खींचा और बोली -चलो अपन भी लुका छिपी खेलते है ।

वह दौड़कर परले किनारे की नीम अंधरी कोठरी में जा छिपी । रोशनी की छाया उन कोठरियों में दरवाजे के इर्द-गिर्द ही रहती थी । शेष रहा आता बोरियों में छिपा अंधेरा । मै उसके पीछे भागा । बोरियों के ऊंचे-नीचे ढेर पर अंधेरे में मेरी नजरें कावेरी को टटोल रही थी । अचानक एक जगह सरसराहट हुई । धीरे-धीरे अंदाज से मैने बोरों की पहाडियों में वह घाटी ढूंढी जहां कावेरी छिपी थी । पास आने पर उसने और दुबकने की कोशिश की मैं पहुंचा तो उस संकरी जगह में उभरे बोरे से टकरा ठीक उसके ऊपर गिरा । दोनों का उठना मुश्किल था । उठने संभलने की कोशिश में कावेरी का बदन मुझसे और चिपका पड रहा था । लुका-छिपी का खेल कब दूसरे खेल में बदल गया इसका पता ही नहीं चला । दोनों की सांसें भारी हुई जा रही थी । मेरी छाती से कावेरी की छाती दबी पड रही थी । जंघाओं के बीच का लंब फन काढे लपका जा रहा था । कावेरी फुसफुसाई - अच्छा लग रहा है,, दिखाओ । जाहिर है ऐंठते लंब की कमर पर चुभन को उसने महसूस कर लिया था । मैं ढीली ढाली हाफ पैंट पहनता था और कावेरी वैसी ही फ्राक में थी । उसने मेरे कंपित लंब को पकडा और नीम अंधेरे में निहारती बोली आह बडा अच्छा है । कावेरी ने मेरी गोद में सिर झुका कंपित लंब की घुंडी होठों के बीच निगलते पूछा - मैं भी देखूं भला कैसा लगता है । मेरी अधीरता वह बढाये जा रही थी । उसके होठों को निगलता मैने उसे वहीं दबाया और बोरों की गडमड्ड उभार के बीच उभरे उसकी नन्हीं के बीच अपनी काया के विस्तार को डुबा दिया । बच्चों के अपने हाथों गुदगुदाये जाने वाला वह मांसल विस्तार उस रोज पहली बार कहीं और कसरत करता गुदगुदा रहा था ।

"हाय रे कितना अच्छा लग रहा है" - कावेरी बुदबुदाई । अधिक कौशल की गुंजाइश न थी। चंद मिनटों में यौवन के रस से हम दोनों के नन्हा-नन्हीं नहा गये थे । फिर कुछ देर खामोशी रही । ऐसा लगा जैसे दोनों को नींद आ चली हो । कावेरी ही बोली -चल उठ चलते है । मुझे चिपकाती और मेरा चुम्मा लेती उसने कही -

तू बहुत अच्छा है । आज मुझको बड़ा मजा आया । अब अपन रोज यूं ही खेलेंगे, हां। उसने हिदायत दी कि ये बात किसी को बतानी नहीं है । एक विचित्र सिहरन तब मेरे अन्दर तैरती जैसे समूची काया को रूपांतरित कर रही थी । खेल खेल में हुई एक आकस्मिक दुर्घटना से उस रोज़ पहली बार पाने को बदला पाया ।

यह भांपते हुये कि इर्द-गिर्द आवाजाही तो नहीं है । हम बाहर निकल आये । दोपहर होने को आई थी और भूख का समय था । आंगन में पडी झांपी अब भी पडी थी । कावेरी ने ढक्कन उठाया । दोनों नन्हें खरगोश झांपी से कुलांच चुके थे । उस दिन के बाद कावेरी ने पिटारियों में झांकना छोड दिया था । बढ़ती कावेरी के नयन अब भटकने लगे थे । अब उसे अपने समवयस्क और बड़े साथियों से हंसाने बोलने में ज़्यादा मज़ा आता था । उन दिनों शादियाँ हल्की उम्र में ही हो जाया करती थीं । मेरे अन्दर एक नई कुलबुली जिज्ञासा भरती हुई कावेरी भी स्कूल छोड़कर ससुराल पहुँच गयी थी ।

झांपियों और अंधेरे खंडहरों के वे दिन समूचे बचपन में फैले हुये थे । गर्मियों में जब बडे बुज़ुर्ग घर की छांह में राहत ढूंढते थे । तब नन्हें हम लोग मिट्टी के खंडहरों में लुका छिपी खेलते थे । उस लुका छिपी के अंधेरों में एक एक दो-दो कर अंधेरे कोनों में साथ होना भी अजीब गुदगुदी भरा होता था । खंडहर का अंधेरा सूना एकांत बदन के अंधेरे में छिपे उपेक्षित से दोस्ती करने और खेलने की चाह जगाता था। उस उपेक्षित का ,जिसकी तरफ उजाले और स्वीकृत रिश्तों की भीड में भूले से भी देखना गुनाह था। कभी बडे लौंडों के समूह में होते थे तो वे अजीब तरह के खेल सिखाते । खंडहरों के बडे ढूह में इमली का एक विशाल दरख़्त था । चूडीहार मुसलमानों की बकरियां वहां मिमियाती चरती और खेलती थीं । एकाध दफे यूं हुआ कि बड़ी उम्र के शैतान लौंडे वहां हमारी अगुवाई में पड गये । बारी-बारी से वे छोटों को चुनते और पुटठों के बीच चढ़ने का खेल सिखाते . आनाकानी करने पर वे डांटते और मजा लेते । पशोपेश में पड़े छोटे उनकी आज्ञा का पालन करते करते डर से भाग खडे होते थे । आबादी तब कम हुआ करती थी । बस्ती से बाहर एक डेढ़ कोस में ही जंगल शुरू होता था । आंवलों के खूब पेड़ हुआ करते । भरी दुपहरी पत्थर मार-मार आंवले झड़ाते और जंगल

की झुरमुटों को लांघ आध एक मील दूर घुसकर वहां के शांत सन्नाटे को धुकधुकी में महसूसते खड्डों , नालों, जानवरों से आशंकित खौफ खाते सांझ ढले तक लौट आते थे । उन दिनों यही हमारी पिकनिक का खेल था ।

बच्चे के उस मुकाम तक बड़ा हो चुकने के बादए जहां उसकी देह का गोपन अपने स्वर्गिक रस का अहसास कराताए बच्चे में निषिद्ध कामनाओं की चुलबुलाहट पैदा करता आदम के बाग में विचरण की उत्कट प्रेरणा जगा देता है, उसके सामने दो ही बातें रह जाती हैं। एक वह, जिसमें वह स्वयं को पाता है और दूसरी वह, जो उसे निरन्तर खींचती आदम के बाग की सैर कराने लुभाती है। वह उमर ऐसी ही थी । औरतों-लडकियों की दुनिया उन दिनों चहारदीवारियों की ही हुआ करती थी । इसलिये उनकी तरफ ध्यान चढ़ती उमर के साथ ही जाना शुरू हुआ था । आम तौर पर छोकरों के समूह में छोकरे ही यार हुआ करते थे। आकर्षण का सूत्र क्या है, उसके नियम क्या हैं, यह कहना मुश्किल है । समवयस्कता में साथ चिपकने का लगाव और उसकी चाहत समानधर्मिता से पैदा होते थे । कुछ साथी ऐसे ही हुआ करते थे । रमण हकलाता था लेकिन सीधा और कुशाग्र था । उससे मेरी दोस्ती थी । सभी उसके इर्द गिर्द रहते थे । उन दिनों तो वैसे चिपकने-चिपकाने की जुगुप्सा केवल गुदगुदी में थी, लेकिन सालों बाद बड़े जवान हो जब हम नौकरियों में थे और आगे बढने की जुगत में एक बार संयोग से साथ किसी नगर में मिले तो उसे मैने अपनी पुरानी यादें जगाने अपने ही साथ ठहरा लिया था । खूब यादें दुहरायी गयी । मेरी कोठरी के एकांत में जब रात गहराने लगी तो माहौल भी जवानी की बातों का चल पडा । साथ सोने में हम दोनों झिझक गये इसलिये मापन की गोपन जिज्ञासा बातों और बातों सी बातों में सिमट आई । दरअसल शैशव की हसीं शरारतों को याद करते हम दोनों का ध्यान एक दूसरे के परम गोपनीय पुरुषांग पर केन्द्रित हो गया था । उतावले पथ में सनसनाता अपना गोपन पौरुष मैने प्रकट किया और उससे कहा कि स्पर्श कर वह जांचे कि कैसा है ? उसका गोपन पौरुष जब मैने देखना चाहा तो बडे संकोच मे पड़ता वह राजी हुआ । उसने निकाला और मैने उसे जांचा । वह बोला कुछ नहीं बे, एक जैसे ही हैं । तेरा पुरुषत्व कुछ ज्यादा मोटा है । मेरा कुछ लंबा लेकिन पतला है । इस सब के बावजूद हमने वैसा कुछ नही किया, जैसा बचपन में खेल-खेल में हो जाया करता था । हुआ बस इतना कि तालियों की थाप दे पंजे टकराकर दोनों ठठाकर खूब हंसते निहाल हो चले थे ।

प्रायः वैसा खेल संकोच-भरा और एकांतिक हुआ करता है। बहुत छोटी अवस्था में ही घर से हास्टलनुमा जगह में बहिष्कृत मुझे उस मौज का भी अनुभव हो चला था । वह साधनविहीन कुछेक चयनित विद्यार्थियों की शिक्षा के निमित्त एक परमार्थ आश्रम था । वहां हम लोग गिनकर कुल दस थे । खाना-पीना,, रहना, पढना, स्कूल जाना सब नियमित और समान था । हम अलग अलग पृष्ठभूमियों से आये थे । तीसरी-चौथी से आठवीं-नवीं के बीच के विद्यार्थी थे। भोजन के समय शुरू-शुरू में "सहनाववति, सहनौ भुनक्ति, सहवीर्यम् करवावहे" का मंत्र हम पढते थे। संस्कारों की शुरुआत निहायत शांत और पवित्र वातावरण में हुई थी लेकिन बढ़ती काया से छोकरपन का धरम भला कहाँ छूटता । इब्तिदा ठीक हुई थी लेकिन बाद में मंत्रों का मूल जाता रहा और सहकार में केवल भावना रही आई थी ।

एक कमरे में लाइन से चार-पांच खाटें पडती थी । कभी-कभी पढते-लिखते मौज का माहौल बनता । वैसे माहौल का खास मजा तब बनता जब कुछ और साथियों की गैरहाजिरी होती और कमरा दो या चार के लिये रातों को हमारे बीच छोड जाता । सच होता या झूठ जानने का जरिया नहीं था लेकिन गांव के वे लडके देहात की "ऐपन आड़ लिलार" छोकरियों के किस्से छेडते और लिजलिजे चुटकले सुनाते थे। एक ने किस्सा सुनाया कि कोई गांव की लडकी थी । अपनी दादी के साथ रहती थी । बरसात के दिन लग रहे थे । पास का झडीराम बगल की अंधेरी कोठरी में गांव की उस लडकी के पीछे लगा था । बुढिया थी बगल की कोठरी में । झडीराम जब ललना की झाडियों में प्रवेश करने दंड संभाल आगे बढने लगा तो आधे भय और आधे लोभ से गदगदाई गांव की लडकी वह ललना चीखी -" देख न दाई झडी हर करत हे मै का करों ददिया देखौ न य झड़ी करबय का उतारू आय ।"

दिया ने अपनी अंधेरी कोठरी से ही जवाब दिया- "बने हे फुलमत करन दे झडी लगही तभे तौ बनही बेटी । ठीकय तो आय री । य झडियय की तो बेला है । अबै न करी तौ कब करी । " उसका आशय वर्षा की झड़ी से था।

गांव की उस ललना ने उसमें मनचाहा आशय ढूंढ लिया था। उसने जवाब दिया - "अच्छा तौ ठीक । मुला बाद में न कहियौ. अब जौन जैसन होय झड़ी का हमहूँ न रोकबई"

"जा अब तंही कहत हस तो महूं कुछु नइ करंव।' बुढिया का जवाब उसके लिये स्वीकृति का बहाना था । उसने झडी को संभाला और जमकर बरसात करा अपनी सारी जमीन भिगो ली ।

पहाड़ों के उस हास्टल का संबंध एक परमार्थ संस्था से था । देखभाल एक बाबाजी वैद्यराज करते थे । उनकी एक नजदीकी मरीज दवाखानों के अंदरूनी हिस्से में उनसे परीक्षण करा ऐसी तसल्ली पा चुकी थी कि उन प्रौढ़ वैद्यराज की कोठरी में सूनी दोपहरियों में अपना इलाज कराने वह यूं घुस पड़ती थी कि बाबाजी भी धीरे-धीरे उसके मरीज हो गये थे । यह ऐसा मर्ज था कि मरीज ही मरीज का इलाज कर सकता था । कई बार कौतुक में परिसर के विशाल बागीचे में यहां वहां पेडों के पीछे छिपे हम छोकरे दो मरीजों के मिलन और इलाज की जासूसी में लग जाते थे ।

त्यौहारों की या गर्मी की छुट्टियों में ऐसी रातें भी आती जब कमरे में एक दो तीन खाटें ही आबाद होती थीं । मैत्री के संबंधों में नजदीकी गहराती चली गई थी । साल दर साल गुजर चले थे । इसलिये दूरियां भाग गई थी । रात यूं लगता कि दूर-दूर क्यों सोया जाये । तब एक के इशारे से दूसरा पास की खाट में आ जाता । बातों ही बातों में दूसरी खाट कब गायब हो जाती पता न चलता । फिर देहों का साथ अंगों में सनसनी भरता दंड को दंड-बैठक कराने लगता। किशोरों के अन्दर से बाहर कुलांचते उनके वे अंग खुलकर कब लिपटते-झपटते आपस में नाप जोख करने और टकराने लगते इसका पता ही न चलता था। पिछवाडा कभी किशोर दिमाग में घुसता न था इसीलिये अंततः एक दूसरे का हाथ मदद में सामने आता और ढेर सारी झाग उगलते उन्हे शांत कर जाते थे। एक-दूसरे को देखने की जिज्ञासा हर किसी के मन में रहती थी।और यूं फिर सब ने धीरे-धीरे सब को जान लिया था । हममें से एक था मनीराम, दुबला पतला, पक्की काली रंगत का किशोर । लेकिन उसकी सरलता और स्वभाव सभी को पसंद थे । था तो मनीराम साधारण ही कद का हमीं लोगों जैसा । बल्कि कुछ छोटे ही कद का, लेकिन गहरे श्याम रंग के चिकने चेहरे वाले मनीराम का अंदर वहां सभी को लुभाता था । वहां भी गहरी श्यामता थी, लेकिन पूरी चिकनाई के साथ । यह विचित्र था कि छोटे कद के सुकुमार मनीराम का अंदरूनी मनीराम औरों से लंबा और लुभवना था । वह सर्वविदित हो गया था । यहां तक कि उस पंद्रह एकड़ में फैले बागीचे से युक्त हास्टल का नेपाली माली सह चौकीदार भी जो उम्र में हम लोगों से बहुत बडा और जवान था स्पृहा में आश्चर्य करता और बोल उठता - ओरे बाबा रे मैने देखा है मनीराम को। वह तो लंबा है, जोरदार है बाहर से दीखने में नन्हा भोला ये मनीराम अन्दर से लंबा और जोरदार है ।

बाबा वैद्य तो क्या वहां का चौकीदार, वहां का रसोइया जो बदलते रहते थे, सभी अपने-अपने ढंग से चालाक थे । बाहर से नौकरानियां काम करने आती और धीरे-धीरे यूं होता कि इन सब के तनावों को राहत देने का काम निबटा जाती थी । एक लडका था पूरनदास । उसके बारे में चौकीदार ने कभी यह जाना और फैलाया कि किसी दिन पूरनदास ने विशाल लंबाई में पसरे कमरों के छोर पसरी सीढ़ी पर उस परिसर में रिरियाती कुतिया से पश्चालिंगन में अपना प्रेम दर्शा डाला था । किसी और एक दिन बताया गया कि सुबह-सुबह रसोई या में रसोई बनाते रंगीन मिजाज रसोइये खोरबहरा ने अंदर पुताई करने गई नमकीन रेजा मजदूरनी के साथ गुप्त रसोई भी पका डाली थी । बहाना यह था कि ठीक दरवाजे के ऊपर दीवार पोतनी थी सो सीढ़ी टिकाने और सहारा देने उसने रसोई का दरवाजा बंद कर लिया था । वह हाफ पेंट पहनता था । रेजा की पुताई करने में उसे परेशानी नहीं हुई होगी ।

दिन और रात गुजरते दस में से सात-आठ फेल या पास होकर या दीगर पारिवारिक दबावों से हास्टल छोड चुके थे । उमर के बढ़ते-बढ़ते रुचियों और संगत में भी बदलाव आ गया था । यहां एक बहुत समृद्ध लाइब्रेरी थी, जहां बैठकर मैं सारे अखबार और पत्रिकायें माया, मनोरमा, मनमोहन, मनोहर कहानियां,

धर्मयुग, हिन्दुस्तान वगैरह चाट जाया करता था । वह सब तो सुबह शाम का दो दो घंटे का दिमागी नाश्ता था । दिमाग का पेट न भरता तो सेक्स, बच्चों के सीरीज के उपन्यास, कुशवाहा कांत की किताबें, बाल्ज़क, शरतचंद्र, रवीन्द्र, बंकिम, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, गुरूदत्त वगैरह के उपन्यासों से दिमाग को तंदुरूस्त करता । सेहत को अंगूठा दिखाता मैं समय बिताता था । चर्चाओं में अब प्रौढ़ता थी और स्कूल के दूसरे दोस्त साथ बैठने लगे थे ।

एक था आनंद । वह स्कूल के खुलने और बंद होने के बाद किसी दुबली, सांवली रेशमा के दीदार से आंखे सेंकता था । मेरी पसंद सरोजनी थी, दुबली-पतली सुतवां देहयष्टि की गंभीर गोरी छोकरी । हम दोनों अपनी अपनी पसंद की यादों में कसीदें काढते कविता, कहानी की उधेडबुन में रहते गो कि वह उस समय हमारे बस के बाहर की चीज थी । पहाड़ी कस्बे के एकमात्र सिनेमाघर के बगल में वह रहता था और फिल्मों के टुकड़ों को कांच के लैन्स से सिनेमा की तरह फैलाकर देखने का शगल वह रखता था । तीन-चार मील के दायरे में और सात-आठ हजार की आबादी के कस्बे में वह सिनेमा रोज शाम बगैर घडी घंटाघर का काम करता था । पूरे शहर में वहां बज रहे ग्रामोफोन ही आवाज गूंजती थी । बाहर लाउडस्पीकर और रेडियो का चलन भी बहुत कम था इसलिये "अंखिया मिलाके नजरें चुराके, एक दो तीन आजा मौसम है रंगीन, सांझ ढले खिडकी तले तुम सीटी बजाना छोड दो," वगैरह की तरंग से क्रस्बे का मौसम भी रोमानी हो जाता था । लोग समझ जाते कि शुरूवात छः बजे से हुई है । ठीक साढे-छः बजे जब "आरती करो हर हर की करो, नटवर की, भोले शंकर की" वाली धुन बजती तो पता लग जाता कि सिनेमा शुरू हो रहा है । नाडिया-जानकावस, जयराज, निरूपाराय, भगवान और मुकरी की फिल्में आती जाती रहती । दिलीपकुमार देवानंद, अशोक कुमार, राजकपूर जैसे बडे कलाकारों की या जैमिनी, महबूब सोहराब मोदी, फिल्मिस्तान की फिल्में महीनों के पोस्टर प्रचार के बाद जब आती तो लोग बा-कायदा घरों में सिनेमा देखने के कार्यक्रम बनाते अपनी रोजमर्रा की सारणी को योजनापूर्वक तब्दील करते थें । वह उत्सव की तरह हुआ करता था ।

मदर इंडिया, मुगले आजम, कोहिनूर, जंगली, गंगा जमुना, जिस देश में गंगा बहती है, तुमसा नही देंखा के जमाने तक मेरी स्कूलिंग खत्म हो चली थी और चर्राती जवानी अब नये सपने देखने लगी थी । ये वे दिन थे जब पंडित नेहरू, लोहिया और चीन भारत पर छाये थे । नेफा की वारदात गर्म हो रही थी ओर कृष्ण मेनन का जादू गायब हो रहा था । इस समय तक प्रकाशित सारा चर्चित साहित्य मैं पढ चुका था । यशपाल का झूठा-सच, ताराशंकर का गणदेवता, विभूतिभूषण का पाथेर पांचाली, आरण्यक, और ढेर सारा साहित्य मैं दिन-दिन पढ़ता बैठता । बचा समय आवारागर्दी और सिनेमा देखने में गुजरता । यह दौर मेरे पुष्पा युग में प्रवेश का था । नवीं दसवीं में पढ़ने वाली यह छोकरी ठीक सामने के मकान में थी । पहाड़ी गोरी रंगत लेकिन आंचलिक हिन्दी का परिवेश । चेहरा उसका अंडाकार था, सिर से चिपटी घुंघराली जुल्फें, बडी बडी आंखें और अल्हड अदायें ।

लडकों के समूह में कद काठी में असाधारण होकर भी मैं प्रखर था । पुष्पा से देखा-देखी की शुरुवात एक अनोखे अंदाज में हुई । आंखें जब-तब मिलती थीं और आंखों के इस मिलन में एक दूसरे की गतिविधियों को चाहत के साथ देखने का लगाव जाहिर है हम दोनों में छिपा था । एक रोज मै अपने दो मंजिले पुराने ढब के बाडे के दरवाजे सामने नल के कटघरे में बैठा था । आसपास छोकरे खेल रहे थे । कोई ऐसी बात हुई कि हमारी आंखें मिली, चमकीं और पुष्पा के होंठों को उसकी आंखों की संगत में मैने चुहल से हंसते चेहरे के साथ हंसता देख लिया । दिलों के तार खनखना रहे थे । मेरी आंखों ने उसे बरजा और मेरे नल की सपाट दीवार पर मेरे हाथों ने लिख दिया हंसों मत । वह और मुस्कुराई और हंसी । मैने वैसा इसलिये लिखा था कि आंखों से आंखों की मुठभेड़ लोगों की आंखों में न आये । बस क्या था संकेतों की भाषा पर सहमति और मौज का मूड बदलकर इश्क में तबदील हो गया । मेरे दो मंजिले की खिड़की से उसके दरवाजे की सीढ़ी दिखाई पडती थी जहां वह बैठ जाती थी । देखा-देखी का बुखार सर पर इस कदर चढा कि सम्मिलन और सहभोग की चाहत बेचैन करने लगी । घंटों की टकटकी और मौन संवाद । उन जमानों में अवसरों की छूट ज्यादा न थी तो प्रेम उसकी प्यास में होता था । बल्कि सच तो यह है कि अब भी प्यास ही प्रेम है । प्यास

बुझी कि प्रेम खतम । इसीलिये अब तो स्कूल के छोकरे-छोकरियों के बीच खुली बातचीत का माहौल और मोबाइल फोन ने प्यार को पेप्सी बना लिया है । इंस्टेंट प्यार, इन्स्टेंट संभोग । देवदास की कथा दोहराने यहां कोई अवकाश नहीं है । औरतें मर्द की कमजोरी और अपनी कीमत जानती हैं। इसलिये अब हो तो यहां तक चला है कि मजबूर औरतों ने ही नहीं, बल्कि भद्र श्रेणी की छोरियों और औरतों ने मर्द की मजबूरी को मनोरंजन और पैसा कमाने का धंधा बना लिया है ।

किशोरी पुष्पा से मेरे किशोर ह्रदय का इश्क साल-डेढ़ साल चला। लेकिन माजरा वही था। "सब कुछ सौंपना, लेकिन ताला न खोलना" की नैतिकता आड़े आती थी। कमला मेरी पड़ोसन थी, तकरीबन हमउम्र गदराया श रीर। कमला से मैंने चिट्ठी भिजवाई कि मेरा प्यार पुष्पा कुबूल करती है फिर मिलने से क्यों कतराती है **?"**

कमला चिट्ठी के साथ ही चिट्ठी का जुबानी जवाब लाई**'-"**वो कहती है कि नहीं। वह काम संभव नहीं।**"**

उतावला होता मैं धीरे-धीरे बहुत अधीर हो चला। सरे आम पुष्पा को छेड़ना, मोहल्लों में ट्यूशन पर जाते उसमें जूड़े से फूल खींच लेना, फिकरे कसना, उसके घर में सीकचों के पार कंकड़ में फंसाकर मोहब्बत के पुरजे फेंकना वगैरह। होली में मैंने सरे आम उसे छेड़ते उसके गालों पर रंग पोत दिया। अपनी समझ में दीवानगी के वैसे इजहार से मैं हीरो बना जा रहा था। मुझे क्या मालूम था कि औरत की निगाह में प्यार बंधनों और पोशीदगी में होता है। उस पर हक जताना और सरेराह दावा ठोकना स्त्री की निगाह में अभद्रता और गुंडागर्दी होते हैं। पुष्पा मुझ पर नाराज़ हुई और यूं रूठी कि बाद का बड़ा अरसा मेरे लिए मायूसी और उदासी का रहा आया। बाद में आवारागर्द और गैर-जिम्मेदार होने से बचाने मुझे कहीं और दूर भेज दिया गया। पुष्पा कहां गई, कहां है फिर मैंने नहीं जाना। यह कैशोर्य का वह दौर था जवां चढ़ती उमर उस बछड़े की होती है जो चढ़ तो नहीं पाता लेकिन चढ़ने की उतावली भरी कोशिश जरूर करता है।

पुष्पा से संबंधों-असंबंधों का दौर बीतते-बीतते ही मेरी निकटता आरसी से हो लगी थी। किशोर-वय बड़ी अजीब होती हैं। प्यार-व्यार तो जो कुछ होता हो, एक किस्म की चंचल उतावली और खिलंदड़ापन ज्यादा होता है। भविष्य के जीवन की सच्चाइयों और उतार-चढ़ाव का तब वैसा ध्यान नहीं होता है जैसा प्रौढ़ होते-होते आदमी अनुभव इतना है। आरसी और मेरी उम्र में तकरीबन तीन साल का फर्क था। उसे मुझसे उम्र में काफी बड़ा मेरा रहनुमा दोस्त ब्याह कर लाया था। दोस्त की उमर अगर पच्चीस थी तो मेरी सत्रह और आरसी की बीस। वह उस शहर में अकेला था। हालांकि मैं चंचल और आवारागर्द समझा जाता था, पढ़ने-लिखने की गंभीर रुचियों में हममें दोस्ती पैदा कर ही थी। राजनीति, साहित्य और दीगर ज्ञान-विज्ञान के मामलों में हम दोनो में खूब चर्चा होती। दोस्त और आरसी के सामने मैं बस बच्चा ही था। मैं अक्सर उन्हीं के यहां रहा आता था। अंदर किशोर सुलभ जिज्ञासाएं थीं, ज्ञान-विज्ञान के लिए भी और लुगाई स्त्री-देह के प्रति भी। बड़ा देखने की कोशिश करने पर भी काया और व्यवहार में ऐसा बचपना था कि मैं युवा या युवा जैसा बड़ा समझा जाने के काबिल उनकी निगाह में न था। दोस्त की गैरहाजिरी में भी बातें करना-गप्पें लड़ाना और छोटे-मोटे कामों में हाथ बटाना, सौदा सुलफ पास की दूकानों से लाना-लेजाना में अपने दोस्त और आरसी का लगभग प्रिय अनुचर ही था। मैं खुद भी अपनी उस हैसियत से खुश था। न जने क्यों बहुत दिनों तक अन्यथा कोई बात मेरे चित्त में आई भी नहीं।

आरसी आई तो देहात के किसी बड़े घर से ही थी, लेकिन अनिन्द्य सुन्दरी थी।बेदाग गुलाबी चमक और सुचिकरण देहयष्टि के हाथ उसकी जवानी कैशोर्य से आगे बढ़ चली थी यद्यपि अपने सहज स्वभाव और ग्रामीण संस्कारों के चलते शहर में होने के बावजूद उसके व्यवहार में किशोरपन ही छलकता था। मेरे दोस्त पति की तरह ही उस आरसी में भी खुलापन और निश्छलता थी। उसका खूबसूरत चौकोर चेहरा भरा-भरा था। आंखें अपनी चमकती भूरी पुतलियों की लुभावनी चमक के साथ बड़ी-बड़ी थीं। मुलायम गुलाबी होठों के बीच उसकी झक्क सफेद दंतावली जैसे समानुपातिकता में यत्न से तराशी गई थी। जब वह सहज मुस्कुराहटनुमा

हंसी हंसती तो विस्तरित गुलाबी होठो के बीच उसकी दंतावली की चमक उसकी अनगढ़ सुरीली आवाज की खनक के साथ बिजली की चकाचौंध पैदा करती थी।उसके वक्ष पुष्ट थे और चोलियों के बीच कुंभों की तरह उभरे दिखाई पड़ते थे। साधारण औरतों में ब्रा का चलन बाद में धीरे-धीरे हुआ था लेकिन बगैर ब्रा के भी चोली के कसाव में स्तनों की नुकीली घुंडियां स्पष्ट दिखाई पड़ती थीं। चेहरा ही नहीं, आरसी नख से शिख तक कोमल बदन की तराशी जीती-जागती गुड़िया की तरह थी। उसकी केश-राशि घनी थी। काली घटा की तरह सघन केश-राशि अपनी हल्की सलवटों के साथ घुंघरालेपन का आभास देती और सिर से पीठ पर लहराती कटिप्रदेश के नीचे तक उसकी अयत्नज देहाती चोटी के रूप में फैली झूलती रहती थी। यह अजीब बात थी कि किशोरी कामिनियों के प्रति ललक भरी चाहत के बावजूद मेरा ध्यान बहुत अधिक अपने ठीक करीब खेलती इस खूबसूरत आवाज गुड़िया पर नहीं गया था। सहज परिवार जैसे आपस के संबंधो और विवाहिता की हैसियत के साथ उसके उम्र में बड़े होने के अहसास के चलते शायदवैसा नही हो पाया था। फिर अचानक एक दिन ऐसा हुआ कि पहली बार उस अहसास ने मुझसे प्रवेश किया। बसन्त का मौसम और होली का माहौल था, होली अभी दो-दिन की दूर थी। शाम का समय होने को आया था। जब मैंने उस घर में प्रवेश किया तो आरसी सफाई के सीमेन्टी चौखटे पर जूठे बर्तन घिस रही थी। मेरी ओर उसकी पीठ थी इसलिए मेरा आना वह देख न पाई थी। अपनी किशोर सुलभ चंचलता में दबे पांव पहुंच मैने पीछे से हथेलियां बढ़ा उसकी पलकों पर अंगुलियां रख दीं। आरसी में अल्हड़ खुलापन था। इसलिए हल्के से चौंकने के बावजूद वह भयभीत न हुई। मेरी अंगुलियों को उसने अपनी अंगुलियों के स्पर्श से पहचाना और बोली-'छोड़ो न, मैं बर्तन मांज रही हूं। मेरा नाम उशा रते उसने कहा कि मैं पहचान गई तुम अमुक हो।" अनौपचारिक संबंधों का माहौल, बसंत का मौसम और उस खास क्षण की रंगत अचानक कुछ ऐसी हो उठी कि उसका गुलाबी चेहरा अपनी अस्तव्यस्त अलकों के साथ किंचित लालिमा से भर गया था। मैंने पलकों पर से अंगुलियां हटा दी थीं । लेकिन अचानक वे लालिमा से सक्रिय हो उसे उसके गालों पर चहलकदमी करने लगीं। उसकी आँखों ने एक बार मुड़कर मुझे निहारा था, लेकिन अवरोध का भाव न तो आंखों में था न मुद्रा में। सफाई की चौखट के लंबे संकरे कोर पर वह बैठी थी इसलिए बदन असंतुलन में लड़खड़ा गया था वह पीछे लुढ़कने जैसी हो रही थी-"छोड़ो न, मैं गिर जाऊंगी -उसने कहा। मेरे घुटनों पर वह थमी थी। गालों से हथेलियां हटीं और न जाने क्या मुझे क्या सूझा कि उसके कमर को दोनो हाथों से घेरते अपनी हथेलियों में उसके गदराए कुम्भों को थामे आगे झुकते हुए उसके गुलाबी होठों पर मैंने अपने होठ रख लिए। सारा कुछ आकस्मिक और अनियोजित था। उसकी सांसों की धड़कनों की तेजी मेरी हथेलियों में फंसे काया- कुंभों के उतार-चढ़ाव से मेरी नसों में पहुंच रही थी। वह कह रही थी-"तुम भी अच्छे हो। कोई देख लेगा तो ! देखो दरवाजा खुला है।"

उस वक्त अचानक मेरे बलात बंधन से मुक्त सामने खड़ी आरसी के चेहरे पर मेरी नजर पड़ी थी। मैंने देखा कि आरसी के गुलाल मिश्रित दूध जैसी गोरी रंगत का चेहरा अचानक गहरी लालिमा से भर उठा था। कोमलता की जगह वहां जड़ता ने ले ली थी। आरसी की मुद्रा गंभीर हो उठी थी और वाणी मूक हो चली थी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें लाल होती आंसुओं से डबडबा रही थी। वे मूकता में मुझे घूर रही थीं। मेरा मन तब भय से भर उठा था। इस आशंका से कि वह नाराज न हो उठी हो और कहीं चुगली न कर बैठे मेरा मन घबरा रहा था। जीवन के बाद के पड़ावों में फिर कभी यह ज्ञान हुआ कि वैसी अवस्था स्त्री में नाराजगी में ही नहीं, अपितु वासनाओं से दीप्त देह की रमणातुर कामना में भी प्रायः प्रकट होती है। ऐसे ही पड़ावों में प्यार की विचित्र कथा बनी।

''हाय प्रियो, लुक हियर'': वनमाला बनाम अनुषा

वह जाड़े की शुरुआत की एक गुनगुनी सुबह का दिन था। वहां सुबह का समय प्रायः शांत और कोलाहल रहित होता था। स्टॉफ रूम में प्रियहरि अकेला बैठा था जब वनमाला ने जाड़े की गुनगुनी धूप की तरह ही हरे पल्लू

की पीली साड़ी में एक साथ ही स्टॉफ रूम और प्रियहरि के दिल में इस जगह पहले-पहल प्रवेश किया। वनमाला को देखते ही प्रियहरि को तब ऐसा लगा था जैसे हवा के एक खुश बूदार झोंके में समाई कलकत्ते की वह बंगाली बाला अनुषा दबे पांव उसका पीछा करती उसे चौंकाने सामने आ खड़ी हुई हो। पल भर में ही अनुपस्थित-उपस्थिति की अपनी वैसी प्रभा में समेट प्रियहरि को वह उस जगह उड़ा ले चली थी जो इस वक्त उसकी स्मृतियों को आंदोलित कर रहा था।

सुबह-सुबह हावड़ा के विशाल रेलवे स्टेशन पर वह उतरा था। स्टेशन कैम्पस के बाहर सटे हुए गुमटीनुमा स्टाल पर उसने उतनी सुबह ही गरमागरम इडलियों के साथ चाय ली थी। लंबी यात्रा की थकावट से उस तरह उसने राहत की सांस ली थी। नजर जहां-जहां दौडती गई उसने पाया था कि एक करोड की जनसंखया का कास्मापोलिटन महानगर समझे जाने के बावजूद यहां भी अपनी भीड के साथ वही देहाती भदेसपन बरकरार था जो हिन्दुस्तान के हर बडे-छोटे शहर में अट्टालिकाओं और झोपडियों , भद्रलोक और अकिन्चनवत् जन के बीच पसरा होता था। मुम्बई का महानगर ही एक अपवाद था। वहां की चकाचौंध और उसमें आत्मकेन्द्रित जन के रेले के विपरीत यहां फुटपाथों, बाजारों, गलियों में कस्बाईपन का ठीक वैसा ही माहौल पाया जाता था जैसा उसके अनुभव में बसा था।
आधे किलोमीटर पर ही आवारा सांडों , हाथगाड़ियों, मानव-रिक्शों के साथ तादात्म्य स्थापित किये सडती सब्जियों का ढेर पसरा था और उन सब के साथ सब को चीरकर निकल जाने की कस्मकस में ट्रामों, टैक्सियों, और कारों की चीख दौड रही थी। हाटों , पुकुरों, टोलों, पाडों और सरणियों में पसरे इस महानगर ने जल्द ही उसे भी लील लिया था। बहुत धीरे-धीरे उसकी समझ में आया कि रोशोगुल्ला, रोबिन्द्रो भारती, ऐतिहासिक महत्व के पुस्तकालयों, कालीघाट की स्थायी चहल-पहल, एस्प्लेनेड, प्रेसीडेन्सी कालेज, नन्दन थिएटर और ज्योतिबाबू में रचा-बसी उसकी एक खास संस्कृति है, जो समानता में भी विशिष्टता लिए कोलकाता को अलग पहचान देती है। तब वह भी उसका गुणगान यूं करने लगा था जैसे उस जमीन पर उसका पैदाइशी हक हो। अब वह नवागन्तुकों को वैसी ही चिढ़ाने वाली निगाहों से तौलता जैसा उसे शुरुवाती दिनों में तौला जाता था। वह जैसे बदस्तूर एक नियम था, जिससे हर नवागंतुक को गुजरना होता था। अब उसकी जुबान ने भी वाक्यों और शब्दों के अकारान्त पर ओकारान्त की परत सगर्व चढा ली थी। उसका व्यक्तित्व ऐसा था कि अंदर से एकांतिक होता भी समाज और माहौल में अपनी उपस्थिति दर्ज कराए बिना वह चैन से नहीं बैठ सकता था। मार्क्सवादी राजनीति और ट्रेड यूनियन के तौर-तरीकों में रंग चलने में उसे ज्यादा समय नहीं लगा था।

तकरीबन दो सौ सरकारी-गैरसरकारी कालेजों का नियमन करने वाली यूनिवर्सिटी के अपने दूरस्थ कालेज का वह हिस्सा बन चुका था। अजनबीयत का पहला महीना गुजरते-गुजरते पचास-साठ के स्टाफ वाले उस कालेज का हिस्सा प्रियहरि बन चुका था। जल्द ही अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व से लोकप्रियता और इज्जत हासिल करने में वह सफल हुआ था।

उसका खुद का ठिकाना बहू बाजार की नयी-पुरानी इमारतों के बीच दो कमरों का एक फ्लैट था जो एक सदी से रचे-बसे मारवाडियों की मिल्कियत का एक हिस्सा था। एक-दो को छोड उसकी संस्था का सारा स्टाफ इस मेट्रोपोलिटन के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पच्छिम से लंबी दूरियां पार कर पहंचता था। बहुतेरों के अपने घर थे और कुछ बेघर थे।
शिक्षकों में उनकी अपनी सीमा चाहे जो हो लेकिन कहने के लिये सब की अपनी ठसक थी। काजोल के पास अंग्रेजी के साथ सुहरावर्दी एवेन्यू के लेडी ब्रेबोर्न कालेज से बी.ए में फ्रेंच की डिग्री थी। गार्डन रीच की ओर रहने वाली विभावरी साल्टलेक इलाके के स्काटिश चर्च की स्टुडैन्ट रही आई थी। अनुषा ने मिडिल टाउन के लोरेटो से मैनेजमेन्ट का कोर्स किया था और बैंकिंग की विशेषज्ञा समझी जाती थी। नीहार को गर्व था कि वह प्रेसीडेन्सी कालेज का स्टुडेन्ट था। प्रियहरि जैसे कुछ एक ही थे जो उज्जैन, दिल्ली, बनारस, पटना, रांची से भटकते यहां आ पहुचे थे।

शुरू-शुरू में लगता था कि इस महानगर का यह कालेज भी महान होगा लेकिन जल्द ही प्रियहरि को अनुभव हो गया कि वहां भी माहौल वैसा ही था जैसा दे श के किसी भी आम शिक्षा-संस्थान में हुआ करता था। वैसे ही छात्र और छात्राएं, वैसी ही पाठ्यक्रम केन्द्रित तैयारी और पढ़ाई की खानापूरी , वैसे ही छात्रसंघ के चुनावों की हुल्ल्ड , वैसी ही हडतालें और वैसे ही समझौते जैसे हर जगह हुआ करते थे। यहां की राजनीति और जगहों से कुछ अधिक गरम हुआ करती थी। बात-बात पर इलाके के नेताओं से लेकर बडे समझे जाने वाले नेता तक दिलचस्पी लेते यूं दखल देते जैसे कोई राष्ट्रीय मसला आ खडा हुआ हो। कुछ ही सालों में प्रियहरि का मन उचाट हो चला था।

उस एक दिन वह बी .बी.डी बाग से पैदल ही चौरंगी तक चला आया था कि किसी एक परिचित स्वर का सांगीतिक लय कानों से उलझ गई -

'' हाय प्रियो, लुक हियर ''

प्रियहरि ने पलटकर नजर दौडाई। करीब ही उसे सुनहले किनारों से सजी हरी साडी और कुसुम्भी छींटदार ब्लाउज में कसा वह चेहरा दिखाई पडा जिस पर कंधे तक लहरातीं केशराशि और माथे पर जुल्फ की लटें लहरा रही थीं।

'' तुम देखते ही नहीं। कब से तुम्हें देखती मैं हाथ हिलाये जा रही हूँ।''

'' मुझे क्या मालूम ओन्नी डियर कि तुम यहां शापिंग कर रही हो।''

यह अनुषा थी। स्टाफ में सब से निराली और बेहद नफासत-पसंद समझी जाती थी। गप्पों से उसे नफरत थी। ऐसा कभी-कभार होता जब अनु षा और प्रियहरि के साथ-साथ मिल बैठने का संयोग होता। चर्चा में राजनीति और कल्चर ही ओन्नी की रुचि के विषय थे। जब कभी मौका और फुरसत के लम्हे मिलते, दोनों के बीच खूब बातें होतीं। लगाव तो जाहिर था लेकिन प्यार-व्यार के चक्कर तक पहुंचने से रह गया था।

वे साथ-साथ एस्प्लेनेड की तरफ बढ़ चले थे। अनु षा के हाथ का थैला प्रियहरि ने थाम लिया था। चलते-चलते अनुषा ने शिकायत की-

'' यू नाटी हिन्दी, ये ओन्नी क्या है ? मैं अनुषा हूं। ज्यादा से ज्यादा ओनुषा। ''

'' सारी डियर लेडी। तुम ''ओनुषा'' होकर तो सब की रही आती हो। मेरा अपना तो उससे अलग कुछ और होना चाहिये न।''

'' अपना ही चाहिये तो नाम क्यों नहीं बदल देते ?''

'' जैसे ?''

'' जैसे ओनुप्रिया। और क्या ? ''

काफी हाउस में बैठे हम ठंडी काफी की चुस्कियां ले रहे थे। वही हमारी पसंद थी।

''मैं कालेज से ही इधर निकल आई थी। तुम्हें कुछ खबर है ?''

मैं किसी काम की वजह से दो दिनों की छुट्टी पर रहा आया था। अनुषा ने बताया कि मेरा वहां चयन हो गया है, जहां अपने आवेदन पर पिछले महीने साक्षात्कार देकर मैं लौटा था।

'' टेल मी, विल यू बी जाइनिंग देयर ? यू आर एक्सपेक्टेड देयर बाइ दि एन्ड आफ दिस वीक आनली ''

'' वाइ नाट ? आफकोर्स ''- न जाने अचानक मेरे मुह से जवाब निकल गया था।

'' आई नेवर कुड असेस दैट यू कुड आलसो बी होम-सिक सो मच । हमारा बंगाल कितना अच्छा है ? डिडन्ट यू लाइक अस ''

'' नो, इट्स नाट लाइक दैट ''

'' ओउ, नाउ डोन्ट टैल मी दैट ''

प्रियहरि से कुछ कहते न बना था। तब से लगातार उसके मन में यह अहसास बना रहा आया कि कहने में उसने गलती कर दी थी। बहुत देर तक अनुद्गा और वह आमने-सामने बैठे रहे थे। मन में बातें ही बातें कहने को भरी थीं पर दोनों के होठ जैसे सिल गए थे। एक उदास छाया थी जो दोनों पर मंडरा रही थी।

कितनी देर वैसा रहा वह बताना कठिन था। वह अंतिम दृश्य था जब दोनों के मौन एक-दूसरे की आंखों में टकराए थे और बाहर निकल एक ठंडी " ओ के दैन " के साथ अलग-अलग दिशाओं में मुड चले थे।

नौ बजकर चालीस मिनट : हरे पल्लू की पीली साड़ी

तुम आयीं मानो
गुलाबी धूप
निकल आयी हो
-एक बिम्ब/शमशेर/कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूं/

वनमाला पर निगाह पड़ते ही न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से उसे निहारते प्रियहरि के मुंह से वे शब्द फूट पड़े थे - "वाउ ! यू आर लुकिंग वंडरफुल टुडे। वेरी ब्यूटीफुल। इस पीली साड़ी में आज तुम बहुत खूबसूरत लग रही हो। हरीतिमा में लिपटी अमलतास की स्वर्णिम पीताभ वासंती छटा !"

सामने दीवार पर टंगी घड़ी पर कांटे दर्शा रहे थे - नौ बजकर चालीस मिनट। प्रियहरि उस वक्त नहीं जानता था कि हरे पल्लू की पीली साड़ी में लिपटी वनमाला की छबि के साथ घड़ी के कांटे उसके दिल में वक्त को हमेशा के लिये यूं थामकर रख चले हैं कि रुका हुआ वह पल उसकी नियति हो चला है। ऐसी नियति जिसमें वनमाला और उसका सारा कुछ उलझकर रह जाने वाला है। यह वह वर्तमान था, जिसमें छिपा भविष्य उनकी अदाओं पर मुस्कुरा रहा था।

अचानक और अप्रत्याशित वैसी तारीफ से वनमाला की आंखों में चमक और अन्यथा गंभीर होठों पर स्मिति एक साथ फैल गई थी। प्रसन्न संकोच में डूबी उसने प्रियहरि की आंखों में झांकते यूं जवाब दिया था जैसे उसे उस पर विश्वास न हो रहा था, जो उसने अभी-अभी प्रियहरि से सुना था।

"अच्छा ! ऐसा है क्या ? क्या सचमुच मैं खूबसूरत लग रही हूं या आप मजाक कर रहे हैं" - वनमाला बोली।

प्रियहरि ने जवाब दिया - "हां सचमुच। बहुत, बहुत खूबसूरत। भरोसा न हो, तो पूछ लो आईने से।"

"आईना है कहां ? लाऊँ कहां से ? आप ही लाइए, ज़रा दिखाइए तो।"

"मेरा दिल जो है। झांक लो उसमें।"

वनमाला शरमाई भी और खुश भी हुई। उसके कपोलों पर लाली चमक उठी। औरत चाहे वह कोई और कैसी भी क्यों न हो, अपनी प्रशंसा पर फूली नहीं समाती।

- "अच्छा ! अगर ऐसा है तब तो आज मुझे आप को चाय पिलानी पड़ेगी।" वनवाला का मूड खिल गया था। वह मूड जो अज्ञात दबावों से उसी तरह अवगुंठित रहता था जैसा प्रियहरि में कहीं था। वह बहुत खुशनुमा दिन था।

उस दिन की खुशनुमाई धीरे-धीरे उन दोनों के दिलों में फैल चली थी। वनमाला की आहट की प्रतीक्षा करता प्रियहरि का दिल धड़कता था। आंखें उसके इंतजार में बिछी रहती थीं। बोला चाहे कुछ जाए लेकिन रोज सामना होते ही आंखें मिलतीं, खिलतीं और एक-दूसरे में छिपे उस मौन संदेश को पढ़ लेती जो लिखे दो दिलों द्वारा जाते लेकिन जिनकी इबारत एक सी होती थीं। यह अब आदत में शुमार हो चला था। इसी के साथ वह पोशीदगी और संकोच भी आदतन शामिल हो गये थे जो औरों के सामने उनके होठ सिले रखते थे। आंखें इस संकोच का फायदा उठाने लगी थीं। जितनी बार, जितनी देर रहना, आमना-सामना होता - चाहे बैठे या चलते-फिरते, वे अपना काम कर जाती थीं। मौन में छिपा यह व्यापार ऐसा संक्रामक था कि उसके लिए उन दोनों का कुछ कहना नहीं, बस होना ही काफी था। इस वक्त जब रात के चौथे पहर में वनमाला प्रियहरि की यादों में

घुसी चली आ रही है, जरूर वह भी कहीं न कहीं वनमाला के सपनों में अवश्य टहलता पाया जायेगा भले ही दोनों मीलों दूर क्यों न हों।

वह कौन सी चीज रही होगी जो अलग-थलग, उदास और अज्ञात पीड़ाओं से ग्रस्त दिलों को जोड़े जा रही थी इसे ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह जो अपने आप हो रहा था उसके पीछे शायद प्रियहरि और वनमाला दोनों की वृत्तियों, परिस्थितियों और सोच की समानता रही होगी। प्रियहरि की तरह वनमाला भी बाहरी दिखावों की तरफ से लापरवाह और सादगी पसंद थीं। वह भी एक निचले मध्य वर्ग से थी जहां सीमित साधनों के बीच जिन्दगी पलती और बढ़ती है। वह भी प्रियहरि की तरह ही कस्बाई संस्कारों वाली लेकिन उन्नत मूल्यों और सोच की हामी थी। दोनों की भाषा और लिखावट औरों से ज्यादा नफीस और खूबसूरत थी। प्रियहरि की तरफ से खास बात यह थी कि वह वनमाला में वह बांगला रोमांस और आकर्षण आता था जो आरंभ से ही उसकी चाहत में थे। वनमाला की ओर से शायद यह कि गहन विचार,दर्शन, अध्ययन और कला-साहित्य-संस्कृति की गहरी अभिरूचि जो प्रियहरि में थी, उसे बांधती थी। प्रियहरि की दिली इच्छा रही कि वनमाला के अंदर जो छिपी प्रतिभाएं वह देखता था उन्हें उजागर होता भी वह देखे। वह कल्पना में देखता कि वनमाला भी उन ऊँचाइयों पर पहुंच रही है और जीवनसाथी बनकर प्रियहरि और वनमाला साथ-साथ घर में इन पर बहसें कर रहे है, लिख रहे हैं, एक-दूसरे को राहत पहुंचाने चाय की प्याली थमा रहे हैं और स्थापित व्यक्तित्वों की तरह एक-दूसरे के साथ जिन्दगी बसर कर रहे हैं। इतने करीब कि जहां दूरियों का अहसास खो जाता है। तब भी दूरियां तो थी हीं। दूरियों से प्रियहरि का मन मसोसता था।

ऐसी ही कसमसाहट वनमाला में भी प्रियहरि देखता था। तब फर्क यह कि बहुत, बहुत करीब आते-आते वनमाला मानो हमेशा मध्यवर्गीय नैतिकता का ढाल अचानक सचेत हो तान लेती थी, जो खुलने से उसे रोक लेता रहा था । उस दिन दोनों ने अचानक सौंप दिये काम को साथ बैठकर करना शुरू किया था। उन कमरों के चक्कर साथ-साथ लगाये थे, जिन्हें खूबसूरत बनाया जाना था। उन दीवारों का मुआयना किया था, जिनमें वे खूबसूरत कला-कृतियों की प्रतिकृतियां लगाने की योजना पर काम कर रहे थे। साथ-साथ बढ़ते दोनों उस आखिरी कमरे तक पहुंचे जो अभी खाली था। अपने से सटी खड़ी वनमाला से, जो दरवाजे पर ही अटक गई थी, प्रियहरि ने कहा - “ए..इ वनमाला, अब अंदर भी आओ न !"

दोनों की नज़रें मिलीं। वनमाला की नज़र ने प्रियहरि से कहा - "शरारत ! मुझे मालूम है। गलियारे और कमरे में भटकते दिल के धड़कनों की भाषा तुम्हारी तरह मैं भी सुन रही थी। मेरा दिल अब भी धड़क रहा है। कहीं तुमने मुझे बाँहों में बांध लिपटाया और चूम लिया तो ?" जुबान की भाषा उसकी अलग थी। बोली - "आज रहने दो, चलो अब चलते है। फिर कभी देखेंगे।"

उस दिन प्रियहरि और वनमाला ने पहली बार महसूस किया कि तब मौजूद चन्द लोगों की नजरें अब उन्हें पढ़ने की कोशिश में लग चुकी हैं। उन्हें क्या मालूम था कि जिन नज़रों से वे खुद को छिपाना चाहते थे वे ही बाद में ऐसा कहर ढाने वाली हैं कि दोनों की जिन्दगियाँ तबाह हो जाएं।

वनमाला से प्रियहरि और प्रियहरि से वनमाला का लगाव मुकम्मल शक्ल लेता जा रहा था। सुबह तब तक और लोगों का आना, दफ्तर की चहल-पहल जब तक शुरू न होती तब तक अपने कामकाज के बीच से ही चुराए समय में दोनों आपस में बातें कर लेते थे। बातें सीधे मोहब्बत की हों, यह न था। बल्कि यह कि छोटी-छोटी मुलाकातों, बैठकों और अलफाजों के दौरान साथ के लम्हे ही मोहब्बत का इजहार कर देते थे। ज्यादातर वे तो कम बोलते, उनकी निगाहें ज्यादा बात करती थीं। वनमाला के मिजाज़ का यूं कोई भरोसा न रहता। जब-तब वह उदास, थकी और अवसाद से ग्रसित नजर आती थी। ऐसे में चुप्पी उसका औजार हुआ करता थी। वह गुमसुम रही आयेगी। न बात करेगी, न कोई बात सुनेगी। जैसा कि धीरे-धीरे प्रियहरि ने जाना पति के ताने और घर की जिम्मेदारियां उसे तनावग्रस्त और उदास कर जाते थे।

इस तरह के माहौल में उसका मायूस गुस्सा कभी-कभी प्रियहरि पर टूटता था - "आपको क्या है ? काम-धाम है नहीं इसलिए बस मोहब्बत सूझती है। यहां तो चार-चार कक्षाएं हैं और फिर यहां से भागकर घर के बोझ संभालो।"

वनमाला के मूड की चाबी उसके घर में थी। जब खुश होती तो एक भद्र और बुद्धिमती साथी की तरह पेश आती और पेश होती थी। बहुत ज्यादा फुर्सत से साथ बैठने का मौका अब तक नहीं मिल पाता था।

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि शादियां मियादी समझौते की शक्ल में हों?

समय बदला। एक दिन ऐसा हुआ कि कागज का एक सरकारी फरमान वनमाला और प्रियहरि - दोनों को मिला। लिखा था कि सुबह की परीक्षाओं में प्रियहरि और वनमाला दोनों को साथ-साथ जिम्मेदारी निभानी थी। अपना पुर्जा लेकर उस दिन जब प्रियहरि स्टॉफ रूम पहुंचा तो देखा कि वनमाला वहां मौजूद है। दोपहर बाद तक उस दिन लोग वहां व्यस्त थे। इस समय अब वे चलने की तैयारी में थे। प्रियहरि और वनमाला की निगाहें मिली।

प्रियहरि ने पूछा - "कागज मिला **?"** उसने कहा - "हां।"

उस दिन निगाहों की टकराहट में एक-दूसरे के लिए चमक भरा संदेश था - "कितने दिनों से तमन्ना थी कि ऐसा मौका मिले जब हम आधिकारिक रूप में साथ हों। फुर्सत के लम्हे हों ,बीच में कोई न हो और हम खूब मिलें। ईश्वर ने सुन ली।"

वे दिन ऐसे थे कि प्रियहरि का सारा अस्तित्व सुबह के वनमाला के साथ के चार-पांच घंटों में समा गया था। बाद का सारा समय उस खो जाने की बेला के लौटने के इंतजार में बीतता। साढ़े दस के करीब वनमाला के मिस्टर प्रायः उसे लेने कैम्पस में अवतरित हो जाते। जुदाई में दिल कचोटता था लेकिन मजबूरी थी, जो अक्सर आंखों की टकराहट में बयां होती थीं। एक दफा ऐसी ही बेबसी में प्रियहरि ने वनमाला को छेड़ा था -

"लीजिए, आपके वे आ पहुंचे है आपको लेने।"

मुस्कुराती हुई वनमाला ने प्रियहरि की आंखों में झांका और बोली - "आह, आप तो यूं कह रहे हैं जैसे मेरा जाना आपको बड़ा अच्छा लग रहा हो।"

प्रियहरि ने कहा - "मैं तो चाहता हूं कि तुम्हें हमेशा -हमेशा के लिए रोक लूं। काश, ये पल ठहर जाएं।"

बेबसी से काल का वह नियत टुकड़ा उन्हें रोज जुदा कर देता। बाद का सारा समय प्रियहरि का मन वनमाला की याद में तड़पता था और रातें बेचैन गुजरने लगी थी। औरत और मर्द के बीच के रात का रोमांचक खेल बेमज़ा लगता था। उसे दुरुस्त करते वनमाला की तस्वीर प्रियहरि अपनी निगाहों में बसाए रखा करता था। यूं रोज अपने आप कविताएं उसके अंदर बनने लगी थीं। घर वनमाला की भी मजबूरी था और प्रियहरि की भी। इसी प्रसंग की एक कविता प्रियहरि से वनमाला ने किसी एक दिन सुनी थी -

विवाह के मंत्र
शोर करते हैं
शुरू जो हुआ
टेप बंद ही नहीं होता
चलता रहा आया दिन-महीने-साल
साल-दर-साल

रात के अँधेरे में
बिस्तर के बीच दुहराए जा रहे
मंत्र के शोर में घुसता है एक चेहरा

घुसता ही चला जाता है
दिल,दिमाग, शिराओं में
और थमता है शोर

देता है सुकून
चेहरे पर आरोपित चेहरा
पल भर

कविता की लय लहराती वनमाला को अचानक जैसे होश आया हो , उसकी पलकें प्रियहरि की आँखों में डूबती भी हया में झुक चली थीं। उसका चेहरा अनजाने उपज आयी लाली से सुर्ख हो चला था। कुछ यूं जैसे उसकी चोरी पकड़ ली गई हो। धीएमे स्वर में उसने इतना कहा -

"छिः! आप ऐसा क्यों लिखते है। मुझे लाज आती है। आप तो कुछ भी सोचते रहते हैं।"

प्रियहरि जानता था कि दिली तमन्नाएं फन्तासी में भिड़ती हैं और तसल्ली पाती हैं, भले ही वे झूठी हो। ऐसा वनमाला के साथ भी है लेकिन मध्यवर्गीय नैतिकता का जनाना संकोच 'हां' को भी 'ना' में ही कहने मजबूर हुआ करता है।

ऐसे ही एक दिन गुनगुनी धूप में सुबह प्रियहरि बाहर खड़ा था। इशारों से उसने वनमाला को भी अपने पास बुला लिया। बीच में कोई नहीं था और इतमीनान का मूड था। बातों के दरम्यां प्रियहरि ने पूछा - "वनमाला, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि शादियां मियादी समझौते की शक्ल में हों। दो-साल, चार, या पांच साल ? फिर हम आजाद हों कि दूसरा साथी चुन सके और साथ रहें।"

वनमाला लजाई। बोली - "ऐसा हो सकता है क्या ? काश, ऐसा हो सकता।" अचानक जैसे उसे कुछ याद आया हो आंखों में मुस्कुराती वह बोल पड़ी - "मैं समझ गई। आप बड़े शरारती है।"

प्रेम केवल शरीर की कामना का आरंभ ही है

धारावाहिकों में दिखाए जा रहे एक्स्ट्रा मैरिटल अफेयर आज के समाज का सच हैं जो हमें कई बार अपने आसपास ही देखते को मिल जाता है । आज ऐसे लोगों की कमी नहीं है जिनकी पत्नी के साथ आफिस मे भी एक गर्लफ्रेन्ड होती है। -कसौटी जिन्दगी की प्रेरणा उर्फ़ श्वेता ने कहा/नई दुनिया **2/11/07** पेज **07**

सुबह-सुबह वनमाला को आता देख अपने साथ काम करता देख, उसकी बुद्धिमत्ता, सूझ और आत्मीयता का आभास पाकर प्रियहरि का चित्त प्रायः कल्पना में उसकी अपनी बीबी को वनमाला के सामने ला खड़ा करता। उसकी बीबी खुद तो कभी आठ बजे से पहले बिस्तर छोड़ती न थी। खुद वह तो वैसी थी ही लेकिन हद यह थी कि बच्चों तक को सिखाने, उन्हें जगाने पर वह प्रियहरि से झगड़ा करती कि फालतू सुबह-सुबह वह शोर क्यों मचा रहा है। वनमाला की साफ, मीठी और लहरदार उस आवाज का प्रियहरि मुरीद था जो उसकी समझ में किसी गायिका में हुआ करती है। प्रियहरि उससे कहा करता -"तुमसे अपनी प्यारी, मीठी आवाज में मैं किसी रोज बंग-संगीत सुनने की गहरी चाह है। कभी सुनाओ प्लीज़।"

प्रशंसा और चाहत के ऐसे पल कभी वनमाला को स्पष्टतः खुशी से भर देते थे, वह चहक उठती थी और कभी ऐसा भी होता था कि वनमाला का मुख अन्यमनस्कता से पथरा सा जाता था और आंखें ऐसी हो जाती मानो स्तब्ध होकर शून्य में देख रही हों। उसे शायद विश्वास न होता था कि प्रियहरि की वे बातें उसी के लिए हुआ करती थीं। वनमाला और प्रियहरि यूं अपने पारिस्थितिक अभावों को एक-दूसरे में पूरा होता अनुभव

करते थे। जो बात वनमाला के पति में होनी चाहिए थीं, जो बातें उसकी पति को करनी चाहिए थीं वे प्रियहरि कर रहा था और जो अपेक्षाएं प्रियहरि अपनी पत्नी में रखता था, उन्हें वह वनमाला में पूरी होता देख रहा था। एक-दूसरे के लिए वनमाला और प्रियहरि का साथ प्रतिपूरक बनता जा रहा था।

हालांकि ऐसी औरतें भी होती हैं जो चाहत के पहले ही स्पर्श से समानावेग से पिघल जाती है लेकिन प्रियहरि ने पाया था कि वनमाला वैसी न थी। वह उन अधिकांश मध्यवर्गीय पारम्परिक गृहस्थिनों में थी जिनमें नैतिकता का बोझ कूट-कूटकर भरा होता है। जंघाओं के बीच का वह बिन्दु जहां अंततः प्रेम पर्यवसित होना चाहता है, उनके लिए नैतिकता का चरम केन्द्र और कसौटी हुआ करता है। औरते जानती है पुरुष की निगाह में वही स्त्री होने का अर्थ है। इसलिए समाज और परम्परा ने इनमें गहरा सुरक्षा बोध और चालाकी पैदा कर दी है कि वे शरीर के प्रति बेहद संचेत रहती हैं। उन्हें मालूम होता है कि शरीर उन्हें वहीं ले जायेगा, जहां जाने से उन्हें बचना है। वनमाला को यह समझाना मुश्किल था कि प्रेम केवल शरीर की कामना का आरंभ ही है। शरीर में एकाग्र होकर विसर्जन से ही प्रेम यानी हृदय और शरीर द्विधारहित होकर उस स्वर्ग तक पहुंचते हैं जो समाज स्वीकृत बंधन में बांध देने से शारीरिक क्रीड़ाभ्यास का बेमजा काम मात्र होकर रह जाता है।

वनमाला ने प्रियहरि से कहा था -"यह तो मुझे घर में ही भरपूर मिल जाता है, उसकी कोई कमी नहीं है। इसकी मुझे जरूरत नहीं है।"

वनमाला का अक्सर भभराया चेहरा, चेहरे और आंखों की थकावट, उड़ी हुई रंगत इसकी पुष्टि करते थे कि वह मशीन की तरह रात में चलाई गई है, लेकिन फिर ! फिर वह क्या था जिसे वह पाना चाहती थी ? क्या बिना इसके प्रियहरि खुद जीवित रह सकता है ? वनमाला ने कहा था - "सुहाग की रात को मैंने और मेरे मिस्टर ने एक-दूसरे से वादा किया था कि हम आपस में कुछ भी छिपाएंगे नहीं। जो भी है, वो एक-दूसरे को बता देंगे और आपस में बेवफाई नहीं करेंगे।"

प्रियहरि का खयाल था कि एक ओर चित्त में बसा यह गहरा बोझ और दूसरी ओर अभाव को भरने की चाहत ही वनमाला का द्वंद्व था जो उसे मूडी और स्किजोफ्रेनिक बना रहा था। वनमाला के निर्बाध साहचर्य और प्यार की चाहत में प्रियहरि में दीवानगी पैदा कर दी थी। एक पल भी - दिन या रात कभी, उसकी याद के बगैर नहीं गुजरता था। एक तरफ प्रियहरि की चाहत थी जो फैल कर वनमाला में समा जाना चाहती थी, दूसरी तरफ सतर्क वनमाला का भय था जो उसे ऐन मौके पर सतर्क कर सिकोड़ देता था। एक ओर उन्नत दंड और दूसरी ओर खुलता दरवाजा अचानक बंद। बड़ी मुसीबत थी। प्रियहरि पर जुनून सवार था। उसने निर्णय लिया कि अपने दिल की बात उसे वनमाला से कहनी ही है फिर परिणाम चाहे जो हो और ऐसा उसने किया भी। वनमाला के जन्मदिन की बधाई देते प्रियहरि ने उसकी आंखों में झांकते सीधे कह दिया था - "वनमाला आई लव यू, आई लव यू। आई कैन नाट लिव विदाउट यू।"

वनमाला आनंदित थी। थोड़े से सूखे फल,चाकलेट का एक पैक, कुछ टाफियां और फाउंटेन पेन का एक सेट, वगैरह प्रियहरि ने उसे भेंट की थी। उस वक्त प्रियहरि को यह नहीं मालूम था कि उपहार के मानी क्या होते हैं, उपहार में औरत को क्या दिया जाना चाहिये, उपहार के लिये औरत प्रेमिका की क्या अपेक्षाएं होती हैं, और उपहार को आंकने में औरत के लिये उसकी मौद्रिक कीमत का क्या महत्व होता है वगैरह ? यह बाद में कभी धीरे-धीरे उसे समझ में आया कि उपहार की नहीं, बल्कि उसके पीछे छिपे मौद्रिक मूल्य की अहमियत बाज औरतों के लिये ज्यादा महत्व रखती है। खैर, उस वक्त वनमाला का मन फूला न समा रहा था उसने कहा - "आह, मैं आज कितनी खुश हूं। मेरे अपने घर में तो मेरा जन्मदिन किसी को याद तक नहीं रहता। आपने कैसे याद किया ?" फिर अचानक उसके आंखों में शरारत की एक चमक उभरी। वह बोली - "अच्छा, अगर मैं यह बात अपने मिस्टर को बताऊँ तो ?"

प्रियहरि ने बिन्दास अंदाज में जवाब दिया - "अब तुमसे कोई भेद नहीं, जिसे बताना हो, बता दो।"

वनमाला हंस रही थी। कहा - "घबराइए मत, मैं ऐसा करूंगी नहीं।" वह कहती गई - "आज का दिन कितना अच्छा है। आज मैं बहुत खुश हूं।"

वनमाला का खुशी का यह इज़हार मानो प्रियहरि के साहसपूर्वक रख दिये गये प्रेम के प्रस्ताव की स्वीकृति थी। वनमाला और प्रियहरि के बीच घर के अनुभव भी मलाल के साथ चर्चा में आया करते थे। वनमाला कहा करती - "प्रियहरि, आप मेरी इतनी तारीफ करते है लेकिन मेरे मिस्टर तो हमेशा मुझमें, मेरे हर काम में नुक्स निकालते रहते हैं।

औरत का मन पढ़ना शायद दुनिया का सबसे मुश्किल काम है

" Despite my thirty years of research into the feminine soul, I have not been able to answer.. the great question that has never been answered and which I have not yet been able to answer, ...is 'What does a woman want?" (Sigmund Freud)

औरत का मन पढ़ना शायद दुनिया का सबसे मुश्किल काम है। औरत का संकोच और आदमी का भय होनी को भी अनहोनी बना देता है।

रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक ज्ञानी भी
क्यों कि बुद्धि सोचती और शोणित अनुभव करता है। - दिनकर रामधारीसिंह /उर्वशी

परीक्षाओं में एक साथ काम करने के दौर में प्रियहरि और वनमाला ने एक-दूसरे को पहचाना। दोनों ही वैज्ञानिक कार्यशैली और सुसंगत बौद्धिकता के हामी थे। दोनों एक-दूसरे की युक्तियों पर पूर्वाग्रह-रहित ढंग से राय रखते थे। दोनों ही शेष सारे स्टॉफ से अपने को प्रतिभा और कार्यशैली में जुदा और बेहतर पाते थे। दोनों का यह अनुभव था कि किसी और कमतर के साथ काम करने पर सामने वाला अपनी कमतरी को छिपाने उन्हें काट-फेकना पसंद करता था। वनमाला और प्रियहरि के बीच मानो यह संयोग एक किस्म से अभावों की दो जिन्दगियों, प्रतिभाओं, संवेदनाओं की एक पक्की और खुश जोड़ी से बना संयोग था। दोनों एक-दूसरे के बेहद प्रशंसक थे और दोनों ही इस राय पर एक थे कि उनकी जोड़ी का कोई विकल्प हो ही नहीं सकता। इसे बनाए रखाने की चाहत दोनों में हमेशा बनी रही फिर चाहे परिस्थितियां कितनी भी बुरी क्यों न हो गई हों। दोनों के बीच इस मुआमले में यह आपस का वादा था कि किसी तीसरे को वे अपने बीच नहीं आने देंगे। परिस्थियां चाहे जितनी बदल गईं; दूरियां चाहे इस कदर बढ़ गईं कि एक-दूसरे को एक झलक देख पाना भी मुमकिन न हो; बात करना तक मुमकिन न हो; लेकिन इसे केवल वनमाला और प्रियहरि दोनों ही समझ सकते हैं (जबकि यह सच सारे दीगर भी महसूस कर सकते हैं) कि रूहानी चाहत और भरोसे का वह रिश्ता आज भी कायम है। वनमाला से जुड़ी और उसके साथ की चाहत ने प्रियहरि को उसका दीवाना बना दिया था। वनमाला इसे अच्छी तरह जानती और महसूस करती थी भले ही मध्यवर्गीय महिला का प्रशिक्षित नैतिक संयम और बाल-बच्चों की जिम्मेदारी चाहे जितनी भी दूर तक बचाव के उसके ढाल बन जाते हों। वनमाला के नाम प्रियहरि की इबारतें, रोज लिखी जाती कविताएं और नज़्में - कागजों में कैद सब का सब -, आलमारी के एक कोने में सलीके से रखा रहता। परीक्षा की व्यवस्तताओं में दोनों के बीच की बेताब मोहब्बत बाधा बन रही है यह वनमाला प्रियहरि से ज्यादा समझती थी। इसीलिए प्रियहरि के सामने और काम के बीच वह उन सबसे से गुजरना अक्सर टालती थी। यह बात और थी कि प्रियहरि ने वनमाला को जाहिरा तौर पर बता दिया था कि उन कागजों में क्या है, वे कहां रखे है और क्यों रखे है। कागजों में लिखा लगभग सारा यूं भी रू-ब-रू बातचीत और आंखों से दोनों के बीच उजागर था। बाद में वनमाला ने उन कागजों पर कितनी, कब और कैसे नजर डाली इसकी परवाह प्रियहरि न करता था। परीक्षा के दौरान कायम हुई इस मोहब्बत का दौर परीक्षाओं के गुजरने के बाद भी लंबे चलता रहा।

उस एक दिन सुबह-सुबह प्रियहरि और वनमाला दोनों ही वहां अकेले थे। खामोशी में जीने वाली वनमाला उस दिन भी खामोश थी। आलमारी बंद कर कमल के लोच के साथ गर्दन पर टिके चाँद की नजरें प्रियहरि की नजरों से टकराईं।

"इक खलिश दिल में रही आई जो ता-उम्र रही।

देख लूं आंख भर तुमको ये तमन्ना ही रही।"

-वनमाला की आंखों में छिपे दर्द और पशोपेश में झांकते हुए प्रियहरि ने आगे कहा - "वनमाला, तुम्हारा आदमी बहुत भाग्यशाली है जो उसे तुम्हारा साथ मिला है। तुम बेशकीमती हो। काश, उसकी जगह मैं तुम्हारे साथ होता।"

लज्जा से लाल हुए फूल गये गालों और पलकों के कोरों से निहारती वनमाला ने जवाब दिया - "मैं बदकिस्मत हूं। आप तो मुझसे इतना प्यार करते है, मेरे लिए यह कहते है लेकिन आपको मालूम है कि मेरे मिस्टर मेरे लिए क्या कहते हैं ? वह तो मुझे काली-कलूटी और बेकार की औरत कहते हमेशा कोसते और बुराइयां ही ढूंढते रहते है। कहते है कि मुझे एक से एक संबंध मिल रहे थे, सुन्दर लड़कियां मिल जातीं, लेकिन न जाने कहां से तुम आ गईं।"

फिर किसी रोज प्रियहरि और वनमाला साथ बैठे ऐसे ही माहौल में मशगूल थे कि अचानक प्रियहरि वनमाला से पूछ बैठा -"ए...इ वनमाला, मुझे एक ही तरीका दिखता है तुम्हारे पास हमेशा बना रहने का। बताओ वह कौन सी युक्ति है जिससे मैं तुम्हारे घर निर्बाध जा सकूं। कि मैं तुम्हारे मिस्टर का सहज मित्र बन सकूं ताकि तुम्हें देखना, तुमसे मिलना दुष्कर न हो।"

वनमाला का जवाब था - "आप नहीं जानते। वे बड़े विचित्र स्वभाव के है। उन्हें दोस्त बनाना बहुत कठिन है। बल्कि उन्हें आपकी ऐसी कोशिश अगर पता लग गई तो वे मुझे भी मार डालेगें और आपको भी।"

प्यार-मोहब्बत तो अपनी जगह पर थे लेकिन वनमाला को यह भय हमेशा सताया करता था कि ये चीजें आम हो गईं और घर तक फैल गई तो वह मारी जायेगी। उसकी दीवानगी में खोया प्रियहरि उसे समझाया करता कि उन दोनों का मिलना, यह आकर्षण आकस्मिक नहीं है।

वह कहता - "आज जो है, वह अकारण नहीं है। रक्त का यह आकर्षण पूर्वजन्मों का है जिसने हमें मिलाया है और जो रक्त के एक होने तक कायम रहेगा। फिर इसमें चाहे कितने ही जन्म क्यों न लग जाएं।"

जो था, वह प्रियहरि की पांचवीं इन्द्रिय कह रही थी और जिसे गहराई से वह महसूस करता था। वह उसके दिल की सच्ची आवाज थी। वनमाला इसका अहसास कर कांप गई। वह बोली - "मुझे यह सुनकर न जाने क्यों घबराहट हो रही है। ऐसा नहीं होना चाहिए। मुझे डर लग रहा है।"

औरत का मन पढ़ना शायद दुनिया का सबसे मुश्किल काम है। वनमाला प्रियहरि की बातें सुना करती और अक्सर गंभीर, अन्यमनस्क, और पशोपेश में पड़ी दिखाई पड़ती। तब उसकी गंभीरता, फूल उठे गाल और मिलती-बचती आंखों की भाषा में क्या लिखा होता था यह कहना मुश्किल था। प्रियहरि डरता था कि कहीं वनमाला उससे नाराज़ न हो जाए। वह नाराजगी के एवज में केवल वनमाला का रहस्यमय मौन देखा करता था। पहल उसे ही करनी पड़ती एक रोज ऐसी ही बातों के दरम्यान वनमाला सूजी हुई आंखों और फूले गालों के साथ बैठी थी। शायद इधर के मिठास के साथ घर की कड़वाहट का द्वंद्व और किंकर्तव्यता का पशोपेश उसे विफल करता था। प्रियहरि पूछ रहा था -"हे...इ, वनमाला, तुम्हारे लिए न जाने कितना-कितना लिखा है। देखोगे नहीं ? तुमसे कुछ कहना है, सुनोगी नहीं ?"

उदास भीगे स्वर में वनमाला ने बहुत धीमे से कहा - "जो भी कहना है, कहिए और जो करना हो कीजिए न ! पूछते क्यों है ?"

प्रियहरि ने वनमाला को अनमना और उदास पा संकोच में कह दिया - "रहने दो।"

अब प्रियहरि को लगता है कि उस दिन वनमाला को पढ़ने में उससे गलती हो गई। औरत कहती कुछ नहीं, आप से करने की उम्मीद रखती है। अधिक प्रतीक्षा शायद मन को बोझिल बना देती है। समर्पण और स्वीकार की मुद्रा में बैठी श्यामा को उस एक खास पल में पीछे से प्रियहरि की बांहें घेर लेतीं और

उसके सूजे आतुर चेहरे को हथेलियों में थाम उसके होठों पर प्रियहरि के होठ जा ठहरते तो शायद वनमाला का विकल मन स्वीकार लेता। औरत का संकोच और आदमी का भय होनी को भी अनहोनी बना देता है। प्रियहरि इतना ही कायर था। वनमाला के उस आमंत्रण को पढ़ने में प्रियहरि का चित्त उस दिन भूल कर गया था कि - **"**जो भी करना हो, कीजिए न। पूछते क्या हैं **?"**

आखिर मैने ऐसा किया क्या हैं जो तुम मुझे इतनी बड़ी सजा देना चाहते हो।
मुझे कैद में रखकर मुक्ति पा लेना क्या तुम्हें अच्छा लगेगा **?** : वनमाला

परीक्षाएं चल रही थीं। सुबह-सुबह प्रियहरि और वनमाला एक दूसरे की प्रतीक्षाओं को समाप्त करते जब मिलते तो निगाहों के टकराव के साथ ही दोनों के मन खिल उठते थे। प्रियहरि और वनमाला इतने निकट आ चुके थे कि अब प्रतीक्षा और विलम्ब उनकी स्थाई आदत में शुमार हो चले थे। इसे वनमाला भी अच्छी तरह समझती और महसूस करती थी। व्यक्ति की और समाज की आकांक्षाओं के बीच, अक्सर तीन और छह का आंकड़ा होता है। खास तौर पर मुद्दा जब स्त्री और पुरुष के बीच संबंधों का हो वनमाला घर की झंझटों और अपने शक्की पति से यूं ही परेशान थी। आगे बढ़ने का खतरा मोल लेने से वह बचना चाहती थी। वनमाला के जन्मदिन को दोनों ने एक दूसरे के प्रेम-दिवस की तरह मनाकर खुशी तो हासिल कर ली थी, लेकिन वनमाला की उदासीन हिचक और दूरी बनाये रखने की पेशकश ने प्रियहरि को दुखी भी कर दिया था। उदासी भरे भविष्य और वनमाला से दूरी की कल्पना से मायूस प्रियहरि ने एक दिन वनमाला के सामने इस बात का प्रस्ताव रखा कि उसका मन अब परीक्षाओं से अलग हो जाने का है ताकि व्यर्थ ही वह उसे परेशान न कर सके। आखिर उसी के कारण तो वनमाला का चित्त विचलित होता प्रियहरि के लिए नाराज़गी बन जाता है।

परीक्षाओं के अब कुछ ही दिन शेष रह गये थे। वनमाला ने प्रियहरि की आंखों में झांका और कहा-**"** इतने दिन साथ गुजारने के बाद अगर आप मुझसे अलग होने काम छोड़ देंगे तब फिर मेरे भी यहां रहने का मतलब क्या है ? आप के बिना मैं भी परीक्षाओं का काम नहीं करूंगी।**"**

वनमाला के चित्त को पढ़ने में प्रियहरि कभी भी सक्षम न हो पाया, लेकिन अगर वे शब्द वनमाला के हृदय से निकले थे तो वे ही उसके लिए वनमाला पर ईमान को और मजबूत कर जाते थे। उस एक सुबह प्रियहरि ने वनमाला से कहा -

"वनमाला, ऐसा लगता हैं कि इस जीवन में तुम्हें पा सकने का भाग्य मेरा नहीं हैं। मुझे कुछ कहना है। मेरी प्रार्थना स्वीकार करोगी **?**"

वनमाला के पूछने पर प्रियहरि ने भारी मन और भावुक स्वर में उससे कहा - **"**मैं तुम्हारे बगैर जिन्दा नहीं रहना चाहता। इससे अच्छा तो यह होगा कि मैं कि तुमको खुद मुझे अपने हाथों थोड़ा सा ज़हर दे दो। मैं चाहता हूं कि तुम्हारी गोद में सिर रखे तुम्हारे उस खूबसूरत चेहरे पर आंखें टिकाये मैं अपनी जान दे दूं**,** जिन्हें हमेशा के लिए कैद रखने वे मरी जाती रही हैं।**"**

प्रियहरि का उदास मन वनमाला के अंदर भी संक्रमित हो चला था। उसने कहा - **"** नहीं**,** ऐसा मैं कभी नहीं कर सकती। आखिर मैने ऐसा किया क्या है, जो तुम मुझे इतनी बड़ी सजा देना चाहते हो। मुझे कैद में रखकर मुक्ति पा लेना क्या तुम्हें अच्छा लगेगा **? "**

वनमाला अपने को संभाल नहीं पा रही थी। उसकी आंखें भीग चली थीं। प्रियहरि के सामने से उठकर वह तुरंत दफ्तर के उस सूने कमरे में जा बैठी थी, जो सुबह-सुबह खाली पड़ा था। केवल एक बूढ़ा बाबू अभी-अभी वहां पहुंचा था। उसे इस बात की कतई परवाह न थी कि वहां दूसरे क्या कर रहें हैं और क्या बतिया रहे हैं**,** इसकी ओर ध्यान दे। वनमाला के पीछे-पीछे प्रियहरि भी वहां जा बैठा था। प्रेमी के

जान देने की बात प्रिया को भावातिरेक से भरती भी अन्दर-अन्दर खुशी से भर जाती है। उसकी अपनी ही निगाह में खुद की कीमत बढ़ जाती है। इस वक्त वनमाला अपने टूटे हुए प्रेमी पर तरस खाती अपने को उस पर न्यौछावर कर देने की मुद्रा में थी। इधर पशोपेश की हालत में विचलित वनमाला की वासनाओं को और उत्तेजित करता प्रियहरि उसे मनाये जा रहा था -"एइ वनमाला, मान जाओ न प्लीज़। वह मेरी जिन्दगी का सबसे सुखद क्षण होगा और तुम्हारी समस्या भी उससे हल हो जाएगी " -प्रियहरि धीमे स्वरों में वनमाला के हृदय में बुदबुदा रहा था।

रूंधे हुए गले और टूटती आवाज में वनमाला जवाब दे रहीं थी -"आह..,इससे अच्छा तो यह होता की मैं ही मर जाती। आखिर मै यहां आई ही क्यों ? इससे तो अच्छा यह होगा कि मैं तबादले में जहां से आई हूं , वापस फिर वहीं लौट जाऊँ ।"

बूढा बाबू मुन्डी झुकाए बगैर ध्यान दिये ही यह देखता सुनता मजे ले रहा था। वह देख रहा था कि कैसे घनघोर उदासी के बादलों और असहाय प्रियहरि और वनमाला की आंखें एक दूसरे में डूबी पड़ रही हैं। भावना का ज्वार दोनों को बहाए ले जा रहा था। बाबू की आंखों से ओझल होती वनमाला भागती स्टाफ-रूम के एक कोने में चिपकी आंखों की भीग चली पलकों को हथेलियों से पोछती सिसक रही थी। वनमाला ने पीछे आ खड़े प्रियहरि की हथेलियों का कोमल स्पर्श अपने बालों और गालों पर महसूस किया। उसकी पलटती निगाहें प्रियहरि की उन आंखों से बिंध गई थीं जो बादलों की नमी से बोझिल थीं। प्रियहरि की हथेली में वनमाला के एक हाथ की अंगुलियां उलझी पड़ी जा रही थीं। ऊपर कंधे पर बांह को कसता दूसरा हाथ और नीचे पैर पर अंगूठे से खेलता प्रियहरि का अंगूठा वनमाला को रोमांचक थरथराहट से भरता जादुई आकर्ष ण से कंपती काया को हौले-हौले प्रियहरि की काया के स्पर्श से सहलाता इतने करीब ले चला था कि मादकता की बेहोशी में अब प्रियहरि की छातियों से टकराती वनमाला की छातियां चिपकी पड़ रही थीं। एक-दूजे की देह को लीलती आंखों की सम्मोहकता में छातियों की चीखती हुई धड़कनें एक-दूजे को पिघलाती आपस में कब गुंथ कर सारी दूरियां मिटा डालने की होड़ में खेलने लगी थीं इसका होश अब न प्रियहरि को रहा था, और न वनमाला को।

सांसें तेज़ थीं, धडकनें चीख रही थीं पर आवाजें इतनी मंद, जैसे बहुत दूर कहीं आ रही हों। वनमाला के अधरों पर लहराते प्रियहरि के ओठ मंत्रवत बुदबुदा रहे थे -" मान लो। मेरी प्यारी वनमाला, मेरी बात मान लो प्लीज़।"

वैसी ही मंत्रमुग्धता में किसी अन्य लोक से वनमाला के कांपते अधर बेहोशी में जवाब दे रहे थे - "नो प्लीज़, नो । मुझे छोड़ दो प्लीज़।"

आकर्षण ऐसे दुर्निवार आवेग से दोनों के रक्त मे प्रवाहित हो रहा था कि उनके अधरों पर उच्चरित शब्द अपना निहितार्थ छोड़ दोनों प्रेमियों की कायाओं में खेलते हठपूर्वक अवहेलना पर उतर आए थे। स्वामियों की अवहेलना करते मनाने और छोड़ने की पारस्परिक मनुहारों के बीच ओठ, देह, छातियां, हाथ और पैर और भी अधिक बेताबी से लिपटते दोहरे हुए पड़ रहे थे। इनमें प्रियहरि और वनमाला का वह दूसरा मन छिपा था, जो विवशता से आशंकित चित्त की अस्थिरता से भयभीत इस वक्त हाथ आए पलों को ही संपूर्णता में भोग अपनी चिरसंचित प्यास को अभी ही एकबारगी बुझा लेने मचला जा रहा था। चेतना इस वक्त केवल देह की पोरों और आतुरता से परस्पर गुंथे ओठों में सिमट आई थी । प्रियहरि और वनमाला सारा कुछ छोड़ जैसे किसी अन्य लोक में विचरण कर रहे थे। अचानक खलल पड़ा। बाहर कुछ लोगों के बतियाते चले आने की आहट थी।

" छोड़ दीजिये, कोई आ रहा है " - वनमाला बुदबुदाई ।

दोनों ने एक-दूजे की जलती आंखों और लाली से चमकते चेहरों को प्यार से निहारा था। एक बार फिर वनमाला के प्यारे मुखड़े को हथेलियों में थाम प्रियहरि ने उसके अधरों को गहराई से झिंझोड़ा और फिर गालों पर विदाई का कोमल चुंबन टांकता उसे अलग किया। अपने दीगर साथियों के प्रवेश के वक्त वे एक-दूसरे से दूर कुर्सियों के त्रिकोण में अपनी पुस्तकों में गड़े यूं देखे गए, जैसे सरोकारों से रहित दो अजनबी इक-दूसरे से बेखबर दो भिन्न लोकों में बैठे हों।

प्रियहरि ने अनुभव कर लिया था कि आगे मुसीबतों और बाधाओं से भरा अंधेरा रास्ता ही है। वह समझ चुका था कि नियति उनका साथ देने नही जा रही है। इस घटना से वनमाला बेहद विचलित और इसीलिए सतर्क रहने लगी थी। जानबूझ कर उसने इस तरह का व्यवहार शुरू कर दिया था, जिससे यह प्रकट हो की वह अब प्रियहरि को दूर रखना और उससे दूर जाना चाहती है। इधर प्रियहरि था कि खुलेआम वनमाला पर प्यार लुटाने आमादा था। वह समझ रहा था कि वनमाला के अन्दर वह नहीं है, जो बाहर उसमें दिखाई पड़ रहा हैं। दूर जाने के बजाए पूरी तौर पर समर्पित किए वह अपने को गहराई से वनमाला में डुबाए जा रहा था। तब भी कभी-कभी उसका धीरज टूट जाता था और मन बिखर जाता था। वह पशोपेश में पड़ जाता कि जिसे वह अभिनय समझ रहा है कहीं वह वनमाला का असली चेहरा ही तो नहीं हैं। वह आस्वस्त नहीं हो पाता था कि वनमाला भी क्या उसे उतनी ही गहराई से चाहती है, जितना वह वनमाला को चाहता है। वनमाला सारा कुछ बहुत अच्छी तरह महसूस करती थी लेकिन भविष्य से इस कदर भयभीत थी कि इस मुद्दे पर बात करने का मौका जब भी आता, वह टाल जाती थी। कभी-कभी तो वह कर्कश भी हो उठती थी।

तब कहती - **"**छोड़िए न इन बातों को। क्या हम लोगों के पास उस एक के अलावा कोई और राह नहीं जिसपर ले चलने के लिए आप बार-बार मेरे पीछे पड़े रहते हैं **?" -** या फिर यह कि -**"**प्रियहरि यथार्थ की दुनिया में आओ प्लीज़। जो तुम चाहते हो वह संभव नहीं हैं। या फिर यह कि - मैने तो उस तरह से कभी सोचा ही नहीं, जैसा आप अपनी कल्पना और आग्रहों में सोचते रहे हैं। बताइए मैं आपके साथ क्या करूं**?** अब इस मामले में बात करना मुझे पसन्द नहीं हैं। आप कवि हैं और अपनी कल्पना में स्वतंत्र हैं **,.**वगैरह।**"**

"अ.......रे...... मैं आपको कैसे समझाऊँ?
आप समझते क्यों नहीं?"

प्रेम की तरंग और उनका असर भले ही स्त्री और पुरुष के हृदय में समान आवेग से ही छिपा होता है। लेकिन जहां तक परिस्थितियों का संबंध हैं, स्त्री की परिस्थितियां जटिलतर होती हैं। इसीलिए चाहती हुई भी स्त्री पुरुष के फन्दे से बचना चाहती है। वनमाला इसका अपवाद न थी। उसे अपने घर और घरवाले की कल्पना से बड़ा भय होता था। जब-जब भी वनमाला के इतर संबंधों पर शक को लेकर उसका आदमी उसपर कहर बरपा करता था, तब-तब उसका गुस्सा और नफरत उसी आवेग से प्रियहरि पर टूट पड़ते थे। वनमाला के व्यवहार से आहत प्रियहरि अपने भटकाव को छिपाए गहरी उदासी में खुद को डुबाये रहने का आदी हो चला था। बार-बार वह दयनीय स्वरों में वनमाला से कहता -**"**आह, वनमाला वह मेरी खुद की भूल थी। मैने कभी यह कल्पना तक नहीं की थी तुम इतनी क्रूर और निष्ठुर हो सकती हो। काश मैं जान पाता कि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रेम के लिए गहरी नफरत के अलावा और कुछ भी नहीं ।**"**

प्रियहरि इस बात को लेकर वनमाला के पीछे पड़ा रहता कि वह एक बार साफ-साफ कह दे कि उसे प्रियहरि से नफरत है ताकि वह निश्चिन्त हो जाए और वनमाला से सचमुच कोई संबंध न रखें । यह भी कि एक बार यह अगर निश्चिन्त हो जाए तो वह अपने दुर्भाग्य को ढोता खुद को वनमाला से दूर रखेगा। लेकिन नहीं, वैसा कभी न हो पाता। प्रियहरि का आग्रह वनमाला हर बार बड़ी सफाई से टाल जाती। वह कहती- **"**अ.......रे...... मैं आपको कैसे समझाउं **?** आप समझते क्यों नहीं**?** मेरे कहने का वो मतलब नहीं था। सच केवल इतना है कि न मैं आप से प्यार कर सकती हूं, और न आप से नफरत कर सकती हूं।**"**

पशोपेश को और बढ़ाते अनिश्चय में ढकेलते वनमाला के ऐसे शब्द प्रियहरि को उदासीनता के अकेलेपन में ढकेलते वनमाला से दूर कर जाते थे। अकेला वह अंधेरे में घुटता होता। उसने वनमाला से बात करने से परहेज करना शुरूकर दिया। जब वह सामने होती, तब वनमाला की निगाहों से खुद को बचाता शून्य में कहीं और देखता होता। यह अजीब बात थी कि ऐसे मौकों पर प्रियहरि के हृदय में बसी उदासीनता फौरन वनमाला की आंखों अन्दर भी जा बैठती थी। जब भी मौका होता वह ऐसी हालत में प्रियहरि को अपनी सफाई खुद देती नजर आती -" उफ.... ओह... प्रियहरि। आख़िर मैंने आपसे ऐसा क्या कह दिया कि आप मुझसे नाराज हो गए । या कभी-कभी यह कि -"उन सब बातों को भूल जाइए न प्लीज़। आाप उन बातों को अपने दिमाग में बिलकुल न रखें । वह कहती -आप तो छोटी-छोटी बातों का बुरा मान जाते हैं।"

कभी वह प्रियहरि को मनाती अपनी कमजोरियां उजाकर करती कहती - "मुझे जब गुस्सा आता हैं तब भगवान जाने क्या हो जाता है। अपने गुस्से पर मैं काबू कर नहीं पाती और तब मुझे होश नहीं रहता कि मैं क्या-क्या कहे जा रही हूं। जो भी मुह में आता हैं मै बोल जाती हूं। आप मेरी बातों का बुरा न माना कीजिए ....चीज़ों को समझा कीजिए न प्लीज़।"

प्रियहरि की उदासीनता और दिमागी बेचैनी को इन सब से राहत तो मिलती नहीं थी बल्कि अब वह 'हां' और 'नहीं' के बीच पशोपेश की हालत में गमज़दा रहने का आदी हो चला था। ऐसे मौकों पर वह विस्मित हो अपने आप से पूछता -कि आखिर यह रहस्यमयी है कौन ? उन दोनों के बीच यह कैसा संबंध हैं ? वनमाला वैसा व्यवहार क्यों करती हैं ? अपनी प्रिया के चेहरों में से किस पर वह यकीन करे -इस या उस । जो था, उसे नियति ने ही शायदवैसा रच रखा था। वह सोचता कि दोनों के बीच जो हालात हैं वे वैसे ही अनिर्णय के क्यों रहें आते हैं। वह सोच कर कि शायदऐसे हालातों से उसे तब तक गुजरना होगा जब तक वनमाला को चित्त में बसाये और उससे संबंधो को ले कर बसी पहेलियों और सवालों से भरे मन के साथ बेचैन वह इस दुनिया से दूसरी दुनिया में नहीं चला जाता। उसके खयाल में आता कि मृत्यु के समय वैसी दुनिया और कष्ट भरी ज़िन्दगी को समेटे किसी की क्या हालत हो सकती हैं इसे केवल वे ही समझ पाएंगे जो ऐसी दुर्घटनाओं से गुजरे हों। काश , वनमाला भी उनमें होती। प्रियहरि लगातार गहरे अवसाद और विचलन से परेशान था। राहत पाने उसने गर्मियों में यात्रा पर चले जाने और ध्यान की पद्धति का सहारा लिया । ऐसे ही वह देहरादून और ऋषीकेश में समय बिता कर लौटा था। ध्यान की ओट में वनमाला की ओर से अपने चित्त को टालने की कोशिशें अब वह किया करता था। वनमाला सामने भी होती तो प्रियहरि उसे अनदेखा करता तटस्थ रहा आता। वनमाला प्रियहरि की इस मुद्रा पर लगातार गौर करती आई थी। एक दिन जब प्रियहरि वनमाला को अनदेखा करता यूं ही तटस्थता की राहत में था, उसके चित्त को पढ़ती सामने बैठी वनमाला मुस्कुरा उठी। एक निगाह उसने प्रियहरि पर डाली और जैसे उससे नहीं बल्कि हवा से बातें कर रही हो उसने मजा लेते यह टिप्पणी उछाल दी

"-क्या बात है कि जब से हमारे प्रियहरि जी ऋषीकेश से लौटे हैं, उन्होने किसी से बात करना तो क्या किसी कि तरफ देखना भी छोड़ दिया है ?"

वह कह रही थी-" अब तो ऐसा लगता हैं कि ये सन्यासी हो गये है, अब किसी से क्यों बातें करेगें ?"

केवल कुछ महिला-मित्र जो वनमाला के लिए हानि-रहित थीं, उसके अगल-बगल बैठी थीं। वनमाला इसका खयाल रखती थी कि प्रियहरि से जब यूं चुहल कर रही हो तब वहां केवल उसकी ऐसी हानि-रहित सहकर्मी मौज़ूद हों, जो उसके अपने प्रेमी से संबंधों के मामले में दिलचस्पी न रखती हों। या फिर वह ऐसा मौका ढूंढ़ती जब वह और प्रियहरि अकेले साथ मौज़ूद हों। वनमाला को प्रियहरि इतना चाहता था कि उसकी छोटी से छोटी चुहल प्रियहरि को विचलित और उदास कर जाती थी।

परीक्षाएं खत्म होने को आ रही थीं। प्रियहरि ने वनमाला से बात करने, उसकी ओर देखने से परहेज करना शुरूकर दिया था। उसे इस बात का मलाल था कि वनमाला केवल उसे छेड़ती ही हैं उससे प्यार नहीं करती। उसका मन इस शिकायत से भरा था कि उसकी अपनी परेशानियों से वनमाला कोई सरोकार नहीं रखती।

यूं ही दो चार रोज गुज़र गए। अपने प्रति अपने उदास प्रेमी के बदलते मूड और उपेक्षा भरे रवैये को देखती खुद भी बेचैन वनमाला ने एक रोज प्रियहरि से बातें शुरूकरने की पहल की - "प्रियहरि, मेरा एक छोटा सा काम हैं आप कर देगें क्या प्लीज़..........।"

वनमाला को पिघलता जान प्रियहरि मान से भर उठा था। सिर झुकाए वह यूं अपना काम करता रहा, जैसे वनमाला वहां मौजूद ही न हो।

रूठे हुए प्रियहरि को मान से भरा पाकर चतुर वनमाला मुस्कुराई। उसे मनाना आता था। वह प्रियहरि से मुखातिब हो फिर बोली - "ए..ई प्रियहरि.., आप मुझे सुन नहीं रहे हैं क्या ? मैं आप ही से बात कर रही हूं।"

प्रकट में वनमाला को अनदेखा किये भी, लेकिन उदासी में उत्सुकता से धड़कते हुए दिल से प्रियहरि ने जवाब दिया - "कहो, क्या कहना है।"

"मुझे अपने किसी परिचित के लिए एक पुस्तक की ज़रूरत है"- अपनी बात साफ करते हुए आगे वह बोली-" मेरा मतलब है कि वे हमारें पारिवारिक डॉक्टर हैं। आप अपने श हर में तलाश कर मेरे लिए वह पुस्तक ले आएंगे क्या।"

रूपयों के कुछ नोट दबाये वनमाला की हथेली प्रियहरि तक बढ़ी हुई थी।

" और भी लोग तो हैं उनसे कह दो ले आयेगे। चित्रकार छैला भी तो तुम्हारा बहुत करीबी हैं। तुम उससे क्यों नहीं कहतीं " -प्रियहरि ने जवाब दिया,

वनमाला बोली - "नहीं, मैं आप ही से यह काम कराना चाहती हूं, आप अगर नहीं करेंगे, तो मैं किसी और से भी नहीं कहूंगी ।"

प्रियहरि ने वनमाला की आँखों में झाकते उस अलिखित संदेश को पढ़ना चाहा जो उन आंखों में छिपा था । वहां शिकायत भी थी और रूठे हुए के लिए दिलासा भी थी । लिखा था कि "तुम कितने नादान हो प्रियहरि। मेरे मन की भाषा तुम क्यों नहीं समझते ? तुम तो हल्के-फुल्के मज़ाक को भी दिल में बिठा लेते हो। मेरे शब्दों पर क्यों चले जाते हो। निरे पागल हो। तुम यह भी नहीं समझते कि शब्दों से परे यह वनमाला तो तुम्हारे साथ है।"

वनमाला की आंखों ने प्रियहरि को समर्पण के लिए मजबूर कर दिया था। उन आंखों के जादू से वह बच नहीं पाया।

" अच्छा, आप यह बताइये कि हम दोनो में से आप किसको ज्यादा चाहते हैं ?"
: मन्जूषा

प्रेम का संक्रमण, प्रेम के रोग को फैलाता है। समूचा माहौल ही उससे संक्रमित हो जाता है। यह बड़ी विचित्र बात है कि प्रेमियों के इर्द-गिर्द बैठे वे लोग जो जाहिरा तौर पर ऐसे संबंधों की आलोचना करते हैं खुद अपने आप को विपरीत लिंग के उस स्त्री या पुरुष की ओर अधिकाधिक आकर्षित होता पाते है जिसकी वे आलोचना कर रहे होते हैं। प्रेम अनिवार्यतः ईर्ष्या को जन्म देता है। प्रेमी-जन एक दूसरे से जल उठते ह, जब वे पाते हैं कि कोई तीसरा उन दोनों के बीच सेंध मारने की कोशिश कर रहा है। ऐसी हालत में प्रभावित प्रेमी भयानक ईर्ष्या से भरा असहिष्णु हो उठता हैं। दूसरी तरफ पास बैठे लोग जैसे ऐसे ही मौकों की तलाश में हुआ करते हैं। यह मौका बीच में घुसने और ज़रूरत के मुताबित अनबन में पड़े दिखाई दे रहे प्रेमी-युगल से जरूरत के मुताबित किसी एक प्रेमी को छीन लेने का मुफ़ीद अवसर होता है। तमाशबीनों को यह पता होता है कि प्रेमी-युगल के गहरे प्रेम-संबंधों के बावजूद ऐसे ही मौकों पर किसी एक प्रेमी को तोड़ा जा सकता हैं। प्रियहरि ने अनेक बार वनमाला को सावधान किया था कि वह सतर्क रहा करे और अपने गुस्से का इज़हार उस तरह सबके सामने किया न करे जिससे औरों के दिमाग में श क पैदा हो, लेकिन वनमाला थी कि समझती ही

न थी। प्रियहरि की सलाह को दरकिनार करती वह कहती - "आप बेकार परेशान होते हैं। कोई इस तरफ ध्यान नहीं देता और न कुछ वैसा समझता जैसा आप सोचते हैं।"

परीक्षाओं के दौरान वह पहला अवसर था जब वनमाला और प्रियहरि को पास आता देख मन्जूषा बीच में आ पड़ी थी। अफसर और सहायक की तरह प्रियहरि और वनमाला का पास-पास बैठना और एक दूसरे से बतियाना आम बात थी। उस दिन मन्जूषा ने जब दोनों को इस तरह घुलता हुआ पाया था तब दोस्ताना आवाज में लेकिन विस्मय से भरी आंखों के साथ वह वनमाला पर चीख पड़ी थी - "हाय रे ,माइ डीयर वनमाला ! तुम प्रियहरि जी के बगल में ही कैसे बैठ गई हो ? चलो उठो वहां से और इधर दूसरी ओर यहां मेरे पास आकर बैठो। तुम जानती नहीं क्या कि वे तुमसे कितने ज्यादा वरिष्ठ और बड़े हैं।

यह वही मन्जूषा थी, जिसे कभी यूनिवर्सिटी में काम के दौरान उसके साथ बैठा एक दबंग पंडित मित्र ने श रारत से प्रियहरि पर छींटा कसा था - "यार, तुमसे बड़ी लगी हुई दिख रही है। कौन है यह रमणी, जो बहुत हंस-हंस कर तुमसे चुहल करती मजा ले रही है ? क्या बात है, वाह ! गजब की खूबसूरत है यार तुम्हारी यह चहेती। सफेद साड़ी में लिपटी यूं दिखाई पड़ रही हैं जैसे साक्षात् सरस्वती है, जो तुम्हे छेड़ रही है। अच्छा पटाया है तुमने इसे। किस्मत वाले हो तुम।"

पंडितजी की ख्याति शिक्षित-समाज में मुंहफट और झगड़ालू व्यक्तित्व की रही आई थी लेकिन जहां तक प्रियहरि का तआल्लुक था, पंडितजी से उसके बहुत अच्छे संबंध थे। यह शास्त्रीजी एक विद्वान की तरह प्रियहरि को मानते और पेश आते थे।

मन्जूषा का तबादला अब कहीं और हो चला है। खुबसूरत रमणीय चौकोर सुचिक्कण चेहरा, शरारत भरी आंखें और गुलाबी होठो में समाए तरासे हुए खूबसूरत दांतों की पंक्ति। सब मिलाकर रंगीन आकर्षक व्यक्तित्व की धनी मन्जूषा। न तो उसे दुबली कहा जा सकता था और न तो मोटी देह की। बनावट यूं ठोस और तरासी हुई थी कि उसे परंपरागत भारतीय समाज की खूबसूरत आम स्त्री की छबि में देखा जा सकता था। प्रियहरि से मन्जूषा के संबंध बिलकुल खुले और तनाव रहित थे। मन्जूषा कोई बात अपने दिल में छिपाकर नहीं रख सकती थी। ऐसी खुली और वाचाल थी कि जो भी बात उसके दिमाग में आती, बिना किसी मुलम्मे के अपनी ठेठ जुबान में वह बे-लिहाज बोल जाती थी। यही मन्जूषा बहुत दिलचस्पी के साथ प्रियहरि और वनमाला के संबंधों पर गौर किये जा रही थी। प्रियहरि को उन दिनों की वह घटना कभी नहीं भूली जब वे उस जगह साथ-साथ काम कर रहे थे । वह एक खुशनुमा सुबह थी। प्रियहरि अकेला स्टाफ-रुम में किनारे की खिड़की के पास बैठा था, जब उसने देखा कि मन्जूषा अपनी दूसरी सहचरी सुचिता को साथ लिये प्रवेश कर रही हैं। उसके ठीक विपरीत कोने पर टेबल से लगी वे दोनों बैठ गई थीं। कुछ देर खामोशी बनी रही। प्रियहरि ने तब पाया था कि एक दूसरे की आंखों में झांकती दोनों रमणियां जैसे बड़ी गंभीरता से पशोपेस को हटाकर किसी निर्णय पर पहुंचने के लिये मौन संवाद में व्यस्त थीं। फिर अचानक प्रियहरि को जैसे किसी गंभीर आवाज ने संबोधित किया था। यह मन्जूषा थी, जो उससे पूछ रही थी - "प्रियहरि सर, बहुत व्यस्त हैं क्या ? अगर आप बुरा न मानें तो आपसे एक बात पूछनी थी।"

"इसमें क्या है। तुम्हें जो पूछना हो बेहिचक पूछ सकती हो "-प्रसन्न मन प्रियहरि ने जवाब दिया।

" नहीं, पहले मुझसे वादा कीजिए कि आप टालेंगे नहीं और ईमानदारी से सच-सच जवाब देंगें "

अब प्रियहरि के चौंकने की बारी थी। आखिर ऐसी क्या बात हो सकती थी जिससे चंचला मन्जूषा आज इतनी गंभीर हुई पड़ रही है। मन्जूषा तो इतनी बिन्दास थी कि बेहिचक जो चाहे प्रियहरि से कह दिया करती थी। उसका मिजाज हंसमुख था, जिससे चलते फिरते प्रियहरि को सताने की उसकी आदत हो चली थी। आखिर नई बात क्या हो सकती थी ?

"आखिर तुम उसके लिये इतनी भूमिका क्यों रच रही हो। जो पूछना है पूछ लो....."- प्रियहरि ने कहा।

" नहीं, आपका कोई भरोसा नहीं। पहले आप वादा कीजिए कि आप सच-सच जवाब देंगे। आप टालेंगें नहीं या कोई बहाना नहीं बनायेंगें "- मन्जूषा ने प्रियहरि की आंखों में झांकते हठपूर्वक कहा। मन्जूषा की

गंभीरता से अब प्रियहरि भी घिर आया था। उसने सोचा कि आखिर मन्जूषा अपनी गम्भीरता के प्रति आज इतनी आग्रहशील क्यों है ? मामला क्या हो सकता है ? प्रियहरि की समझ से वह सब परे था। फिर भी बड़ी लापरवाही से उसने जवाब दिया -

" ओके आइ प्रामिस् । अब बता भी जाओ कि बात क्या है ?"

मन्जूषा कुछ संकोच में थी। उसके चेहरे पर सहमी हुई लालिमा ठहर गई थी। आवाज़ भारी हो चली थी। उसने पूछा - " अच्छा, आप यह बताइये कि हम दोनो में से आप किसको ज्यादा चाहते हैं ?"

प्रियहरि इस तरह के प्रश्न के लिए तैयार न था। दरअसल इस बारे में कभी उसने सोचा भी न था। हिचकते हुए उसने जवाब दिया -"इसमें क्या बात है ?" मैं तुम दोनो को चाहता हूं । मेरे साथ तुम एक साथी के रूप में बहुत लंबे समय से पास रही हो और जहां तक इनकी बात है, ये मेरी पत्नी की ससुराल की जगह से हैं और इसलिए स्वभाविक रूप से मुझसे जुड़ी हैं। "

इस दौरान सुचरिता दिल और आंखों को थामे बड़ी जिज्ञासा से प्रियहरि को देख रही थी।

मन्जूषा मुस्कुराई और चंचलआँखोंसे प्रियहरि को देखती हुई बोली -"प्रियहरि आप अब चालाकी कर रहे हैं। मैं जानती थी कि आप ऐसा ही जवाब देगें। "
उसने कहा - " आप भूल गये हैं कि आपने हमसे सच बोलने का वादा किया है। आपको साफ-साफ और बिना किसी हिचक के यह बताना है कि हम दोनो में से एक कौन, दोनो नहीं। दो-दो नहीं चलेंगी।"

मन्जूषा ने प्रियहरि को पशोपेश में डाल दिया था। उस बारे में आखिर वह क्या कह सकता था ? उसने तो इस पर कभी सोचा ही न था। उसकी निगाह में तो वनमाला के सिवा वहां कोई और था ही नहीं।

उसने जवाब दिया - " क्यों ? जो मुझे लगा वह मैने कह दिया। दरअसल इस बारे में सोचने का कभी मौका ही न मिला। "

" आप झूठ बोल रहे हैं। देखिये, ये बात ठीक नहीं है आने वचन दिया है और पीछे हट रहे हैं। आपको अभी इसी वक्त निर्णय करना है और बताना है कि कौन ? हम दोनों में से किसका साथ आपको ज्यादा पसंद होगा -सुचरिता का या मेरा ? एक साथ आप हम दोनों को नहीं रख सकते। आपको हममें से केवल एक को चुनना है। अब बताइये यह या मैं ?"

प्रियहरि के मुंह से अचानक निकल पड़ा - " तुम ।"

वह नहीं जानता था कि ऐसी कौन सी बात थी जिसने उसे इस जवाब के लिए प्रेरित किया। वह प्रियहरि के साथ मन्जूषा का साहचर्य और खुला संबंध था, या मन्जूषा की लुभाने वाली सुपुष्ट दूधिया देह को भोगने का रुझान ?उस दिन के अपने निर्णय पर प्रियहरि को हमेशा उलझन रही आई। अचानक उसके मुख से ठीक वैसा क्यों निकला ? यूं प्रतीत होता है, जैसे उस दिन मन्जूषा और सुचरिता के बीच कोई गोपनीय शर्त रही आई होगी। अब तक दोनो रमणियां उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा में थीं, लेकिन जवाब मिलते ही मन्जूषा की आंखों में खुशी की चमक लहरा उठी थी।

मन्जूषा का चेहरा प्रसन्नता से अब चमक उठा था। जैसे वह जीत गई हो, लगभग उछलती हुई उसने सुचरिता के चेहरे पर निगाह डालते घोषित किया -" देखा, मैने तुमसे कहा था न। मै जानती थी प्रियहरि मुझे ही पसंद करेंगे।"

सुचरिता का चेहरा अचानक धूमिल हो उठा था। उसकी आंखें बदरा गई थीं। बगैर कुछ कहे उसने आंखों में अलिखित पीड़ा के साथ प्रियहरि की आंखों में झांका। उन आंखों का सामना करने का साहस प्रियहरि में न था। वह गहरे संकोच में पड़ गया था। अब भी जब कभी प्रियहरि का सामना यहां-वहां कही अचानक सुचरिता से होता है तब अतीत के उस क्षण की स्मृतियां दीवार बन दोनों के बीच इस तरह आ पड़ती है कि दोनों के सामने धर्मसंकट हो आता है। ऐसे मौकों पर प्रियहरि अपने आपको इस बात के लिए शर्मिन्दा और अपराधी महसूस करता है कि उस दिन उसने सुचरिता की आकांक्षाओं को अपने चुनाव से वंचित क्यों कर दिया ? सुचरिता की आंखों में हमेशा के लिये शिकायत वह क्यों छोड़ गया था ?

उसकी मुद्रा उस वक्त यूं हो गयी थी जैसे उसने अपनी कल्पना में वनमाला की जगह खुद अपने को प्रियहरि के साथ बिस्तर में भोगरत पाया हो।

शुरू से ही प्रियहरि के मन में यह शंका थी कि उसकी प्रिया वनमाला की आदत अपने निजी गोपनीय संबंधों को अपनी कुछ महिला सहकर्मियों से उजागर करने की है। कहना मुश्किल था कि वह वैसा क्यों करती थी। संभवतः वैसा करने के पीछे उसमे छिपा स्त्री का वह स्वभाव काम कर रहा होता था जो अपयश के भय से पुरुष-समाज में तो खुले आकाश में उड़ने की अपनी महात्वाकांक्षाओं को छिपाए रखता है किन्तु स्त्री-समूह के बीच अपनी आकर्षण-क्षमता और आकांक्षाओं का प्रदर्शन करता संगिनियों को जलाता यह आभास कराता है कि मुझमें वह कुछ है जो तुम्हे हासिल नहीं है। मन्जूषा और अनुराधा उसकी ऐसी ही सहेलियां थीं, जिनसे वह यूं खुली थी।

प्रियहरि को याद आया कि अपने स्वभाव की गंभीरता और मौन में छिपी रहने वाली वनमाला की मौजूदगी में एक बार मन्जूषा ने अपनी शरारती आंखों से ताकते ताना दिया था -" प्रियहरि जी तो ऐसे ही हैं। उनका क्या है **?** वे तो कवि हैं। जो भी मन में आता है वे लिख जाते हैं।"

प्रियहरि तब समझ गया था कि जरूर मन्जूषा का इशारा वनमाला पर लिखी उस कविता की तरफ था, जिसमें उसने वनमाला को हम-बिस्तर सहचरी की तरह चित्रित किया था। जरूर वनमाला के चित्त में भी वह कविता तैर रही थी। मन्जूषा की ऐसी हिम्मत की कल्पना उसे भी नहीं रही होगी। मन्जूषा के बगल में छुई-मुई सी लजाती वनमाला मौन खड़ी रही थी। वनमाला के मौन में छिपे पशोपेश पर मन्जूषा जैसे वकील की तरह प्रियहरि से मुखातिब थी - "हाए रे..,मैं बता नहीं सकती। न जाने मुझको तो कैसा-कैसा लगता है। प्रियहरि जी भला ऐसा लिख कैसे जाते हैं **?"**

मन्जूषा के खुद के चेहरे पर हया उतर आई थी। उसकी मुद्रा उस वक्त यूं हो गयी थी जैसे उसने अपनी कल्पना में वनमाला की जगह खुद अपने को प्रियहरि के साथ बिस्तर में भोगरत पाया हो। शिकायत में प्रियहरि को प्रश्नित करती उसकी आंखें शरमाई पड़ रही थीं और भरे चेहरे पर गालों के उभार में अतिरिक्त लालिमा चढ़ी जा रही थी।

वनमाला को मन्जूषा सयानी सहेली की तरह संबोधित कर रही थी -"ये तो बस ऐसे ही हैं। लेकिन डियर वनमाला रानी, तुम्हें अपने आपको इनसे बचाकर रखना चाहिए।"

प्रियहरि सोच रहा था कि 'बचाकर' कहती मन्जूषा के चित्त में उस वक्त बचाने की वह कौन सी चीज़ लहरा रही होगी । अपनी समझ में मन्जूषा जिसकी ओर से वकालत कर रही थी, अविचलित, वह वनमाला मौन और गंभीर रही आई थी। मन्जूषा की नसीहतों के दौरान उसकी आंखें अर्थ भरी दृष्टि लिए केवल प्रियहरि की आंखों में झांक रही थीं। इधर मन्जूषा थी कि वनमाला को चेतावनी देती हुई भी अपने नाज़-ओ-नखरों के साथ प्रियहरि को छेड़ती मजे ले रही थी।

मन्जूषा का स्वभाव ऐसा ही था। प्रियहरि को याद आया कि किसी पहले भी कभी मन्जूषा अज्ञात प्रेरणा से वनमाला की शुभचिन्ता में उन दोनों के बीच आ पड़ी थी। उस वक्त कोई निहायत मासूम और कमसिन एक खूबसूरत लड़की अपनी पढ़ाई के मामलों मे प्रियहरि के साथ बातों में लगी थी। प्रियहरि का मन भी पूरी तौर पर सामने उपस्थित के साथ लगा था। तभी अचानक वहां खड़ी वनमाला से मन्जूषा प्रियहरि की ओर संकेत करती बतिया रही थी -" देखा, देख लिया न**?** मै तो कहती हूं कि ये मर्द लोग ऐसे ही होते हैं। सब एक से होते हैं।"

मन्जूषा का आशय प्रियहरि ने समझ लिया था। अपने खिलाफ वनमाला को इस तरह उकसाने की मन्जूषा की हरकत उसे पसन्द नहीं आई थी। खीझ कर उसने टोका था -" इसमें ऐसी कौन सी गंभीर बात है **?** तुम आखिर ऐसा क्यों कह रही हो और किसके बारे में कह रही हो **?** मै जो हूं , मेरी जो निष्ठा है , उस

पर किसी को विश्वास होना चाहिए। अर्थ में अनर्थ आखिर लोग क्यों ढूंढने लगते हैं और किसी को ऐसा क्यों करना चाहिए। वैसा कहते हुए क्षण-भर को प्रियहरि की आंखें वनमाला की आंखों से मिली थीं। मन्जूषा को चिढ़ाते हुए मानो उस वक्त वनमाला के प्रति घोषित वफादारी से प्रियहरि अपनी प्रिया को तसल्ली देता उसका मन जीत रहा था।

वनमाला उस सब के दौरान प्रियहरि को देख रही थी। उसने एक श ब्द भी न कहा था। इधर मन्जूषा थी कि प्रियहरि की झिड़की उसे नागवार गुजरी थी। जल्दबाजी में वह बडबड़ा उठी थी "-ओ.के बाबा, अब मैं तुम दोनो के बीच नहीं आऊँगी। मुझको तुम लोगों से क्या करना है? मै तो कहती हूं तुम्हारी जोड़ी जुगजुग सलामत रहे।"

प्रियहरि कभी यह न समझ पाया कि मन्जूषा के हृदय में क्या छिपा था ? क्या वह उसकी शुभचिन्तक थी या प्रियहरि और उसकी प्रिया वनमाला के प्रति उसके मन में मीठी ईर्ष्याथी ? ऐसी कौन सी बात थी, जो मंजूषा को प्रियहरि के खिलाफ वनमाला को सलाह देने, तसल्ली देने और आगाह करने उकसाती थी ? जो भी हो मन्जूषा के रहते चीजें यूं ही चलती रही थीं। प्रियहरि से अलग होकर कहीं और चली जाने के बावजूद मन्जूषा वैसी ही चंचल, खुश और प्रियहरि के साथ संबंधो में बिन्दास रही आई थी। पहेली अब भी बरकरार है कि आखिर क्या ऐसा क्या था जिसने मन्जूषा को प्रियहरि से यह पूछने के लिए प्रेरित किया था कि वह उसके और सुचरिता के बीच किस एक को चुनना और पाना पसन्द करेगा।

यह समझना मुश्किल था कि वनमाला की वह खीझ किस पर थी ?

निकलना खुल्द से आदम का सुनते आए थे लेकिन ।
बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले ॥
- मिर्जा गालिब

जन्मदिन पर वनमाला प्यार में मदमस्त गर्वोन्नत थी - प्रसन्न, और प्रियहरि भी । उस पल फिर प्रतीक्षा और मिलने की ख्वाहिश के साथ वे दोनों अलग हुए थे । लेकिन परीक्षाओं के दिन कितने थे ? भीड़ के बीच मुलाकातों का वही पुराना ढर्रा शुरू हो गया। प्रियहरि का वनमाला के बगैर रहना मुश्किल था । वनमाला से प्यार भरी मुलाकातों की ख्वाहिश उसे मारे डाल रही थी ।

वनमाला की चेतावनी के शब्दों को कि - "ऐसा होना नहीं चाहिए । मेरे मिस्टर ने पूछा कि उपहार कहां से आए तो मैं क्या कहूंगी ? असलियत जान गये तो वे मुझे भी मार डालेंगे और आपको भी" - याद करता भी प्रियहरि भूला जा रहा था । दिन काटे न कटते थे और रातें काटने दौड़ती थीं । दीवाली में प्रियजनों को शुभकामनाओं के कार्ड भेजते उसने शेष बचे एक को साहसपूर्वक वनमाला के नाम घर के पते ही भेज दिया । चालाकी बस इतनी कि उसके साथ उसके भयानक पतिदेव का नाम भी दर्ज कर दिया ताकि वह महज सद्भावना प्रतीत हो । ग्रीटिंग का वह कार्ड कलात्मक था । कांगड़ा शैली की राधा और कृष्ण की युगल तस्वीर उस पर छपी थी।

दीवाली की छुट्टियां बीत चली थीं। उस बाद के दौर में वनमाला दुचित्तेपन के मूड के साथ प्रियहरि से कभी झगड़ती और कभी प्यार से उसे सहलाती रही थी । उसका गुमसुम रहा आना प्रियहरि को दुखी करता था। संस्था में काम के घंटों के बीच का अन्तराल इतना संक्षिप्त हुआ करता कि वह वनमाला से फुरसत में बातें कर सके। यूं ही बेचैनी में उसके दिन कटते गये थे। वह अक्टूबर का तकरीबन आखिरी दिन था। कामकाज की छुट्टी जल्दी कर बारह बजे के बाद उस दिन प्रियहरि सीधे वनमाला के दरवाजे पर जा पहुंचा था।

प्रियहरि की गणना से यह अनुमान था कि उस दिन सुबह की ड्यूटी पर वनमाला के श्रीमान जा चुके होंगे और बेखौफ वनमाला से मिलना हो सकेगा। लेकिन नहीं, वैसा हुआ नहीं । तीन बजे काम से लौटने

की जगह उनका दोपहर दो बजे की ड्यूटी पर जाना तय था। प्रियहरि से कहा तो किसी ने कुछ नहीं। सौजन्य की बातें ऊपर-ऊपर हो रही थीं , लेकिन अंदर कहीं था, जो कुछ असहज था। उस वक्त प्रियहरि को लगा कि शायदवह गलत समय पर जा पहुंचा था। वनमाला के बच्चे " अंकल-अंकल" पुकारते प्रियहरि के साथ बड़ी दिलचस्पी के साथ बातें कर रहे थे। अचानक वनमाला के मिस्टर की खीझ बाहर आई। नाराज़ होते हुए वे बंगला भाषा में पत्नी से उन्मुख हुए ।

"ये इन्हें अंकल क्यों कह रहे हैं ? किसने सिखाया है इन्हें ?"

"क्या हो गया कह रहे हैं तो ?" वनमाला ने अपने मिस्टर को समझाना चाहा।'

उसके मिस्टर बड़बड़ाए -"ये हमसे काफी बड़े हैं। इन्हें अंकल नहीं कहना चाहिये।"

प्रियहरि पशोपेश में पड़ गया था। पति-पत्नी के बीच की बहस बंगला में होती और प्रियहरि से वे हिन्दी में बात करते थे। उससे चाय के लिये पूछा गया था। प्रियहरि ने बता दिया कि चाय तो वह लेता नहीं। वनमाला के मिस्टर ने तब कहा कि चाय नहीं लेते तो मैं काफी ले आता हूं, काफी बना दो।

वनमाला का मूड खराब हो गया था। उसने अपने मिस्टर और प्रियहरि का तनिक भी लिहाज किये बगैर आवेश में कहा - "कोई ज़रूरत नहीं है काफी लाने की। रहने दीजिये। जो चीज़ घर में नहीं है उसके बारे में क्या ज़रूरत है परेशा न होने की ?"

यह समझना मुश्किल था कि वनमाला की वह खीझ किस पर थी ? पति पर , प्रियहरि पर , या अपने आप पर ? वनमाला के पति दफ्तर जाने की तैयारी में थे और वह उन्हें खाना खिलाने की तैयारी में। जल्दी-जल्दी खाने की औपचारिकता सी पूरी कर वे निकलने लगे। वनमाला को शायद यह गवारा न था कि उसके पति के न रहते प्रियहरि उसके साथ बैठ सके। उसे किसी भी संदेह की आशंका से खौफ़ था। पति के वहां रहते ही उसने प्रियहरि को भी टालने के लिहाज से अपने मिस्टर से कहा-"इन्हें भी ले जाइये। चौराहे तक छोड़ दीजियेगा।"

वनमाला के पति ने सचमुच देर होने के कारण या वनमाला को चिढ़ाने उसकी बात टाल दी -"नहीं, मुझे देर हो गई है। वैसा न होता तो मैं इन्हें छोड़ देता।"

प्रियहरि से मुखातिब होते उन्होंने कहा-" आप बैठिये आराम से , मैं निकलता हूं।"

उनके जाने के बाद तनाव और खीझ में भरी विषादग्रस्त वनमाला प्रियहरि से बोली -" अब आप भी चले जाइये। खुद मुझे भी खाना खाना है और आराम करना है।"

विवश , स्तब्ध, उदास प्रियहरि उसके यहां से उठ पड़ा। उसे महसूस हुआ कि दीपावली में वनमाला की यादों में बेकरार होते अपने दिल को ग्रीटिंग-कार्ड के बहाने जो उसने भेज दिया, वह उसकी बहुत बड़ी भूल थी। वनमाला के नाम के साथ उसके पति का नाम जोड़ना भी कारगर न हुआ था। लिफाफा देखकर ही अलिखित मजमून को बांच लिया गया था। वही वनमाला और उसके पति के बीच तनाव का सबब था। दोनों के बीच ज़रूर उस बात को लेकर इस दौरान झगड़े हुए थे। आज भी उनकी बातों के बीच उस ग्रीटिंग का जिक्र किन्चित व्यंग्य के साथ हुआ था। अवश्य इसीलिये वनमाला इन दिनों उससे बच रहने की फिराक में खिंची-खिंची, अलग-थलग, चिन्तित और उदास रही आई थी।

उस दिन के बाद प्रियहरि लगातार वनमाला के चेहरे पर गंभीर उदासी और खिंचाव देखता रहा था। वह उसकी ओर निहारती जरूर लेकिन एक चुप्पी थी, जिसमें उसकी प्रसन्नता को लील रखा था। वनमाला को अवसादग्रस्त और चिंतित देख प्रियहरि का मन भी रोता था। वह चाहता था कि वनमाला के साथ बैठे, उसके गले से लग जाए और कहे कि तुम्हारा दुख मेरा भी दुख है। तुम इतनी अकेली और उदास क्यों हो? लेकिन मन को मसोसकर वह रह जाता था। विवश ता और आतुरता का द्वंद प्रियहरि के अंदर मानो वनमाला की आंखों में झांकता उतर आता था।

प्रियहरि के लिये वनमाला रहस्यमयी थी। उसे लेकर इसका मन चौबीसों घंटे झंझावातों से घिरा होता था। कभी–कभी उसे ऐसा प्रतीत होता जैसे अपनी चुप्प उदासी में वनमाला शायद उससे भी अधिक झंझावातों से गुजर रही होती थी। वह इतना गहरा हुआ करता था कि उसकी तह तक जा पाना प्रियहरि को असंभव दिखाई पड़ता। वह अन्दर का विचलन ही

था जो वनमाला की किंकर्तव्य उदासी की तरह सदैव उसके चेहरे पर छाया होता। वे दिन ऐसे ही थे जब दोनों मिलते, एक–दूसरे में सुलगती आग के उन धुएं से रूबरू होते, पर शब्द होठों पर थरथराकर थम जाते। यही नियति थी।

उस एक दिन अचानक ऐसा संयोग बना बना था कि लरजते होठों से शब्द फूट पड़े थे। दोनों ही नजरें मिलाते और नजरें चुराते एक–दूसरे की उदासी को पढ़ रहे थे कि बाहर कार के रुकने की आवाज हुई और क्षण भर बाद वनमाला की ही हमउम्र एक सांवली कृशकाय लता डोलती हुई अंदर नमूदार हुई।

वह दौड़कर वनमाला से लिपट चली थी और प्रियहरि के सामने ही " हाय कितने दिनों बाद तुझे देख रही हूं। फोन तक करना भूल गई है और लगाओ तो तेरा फोन हमेशा बंद मिलता है। कैसी है तू " कहती उसके गालों पर चुम्बन बरसा रही थी। मिलन की वैसी ही अधीरता वनमाला में भी छाई थी। गहरा आलिंगन और चुंबन दोनों तरफ से बरस रहा था। यह वनमाला के पुराने कालेज की संगिनी अन्शुलता थी। दोनों इस मिलन से अपार खुश थीं। इस खुशी की लहर का छींटा प्रियहरि तक भी पहुंच चला था। वनमाला ने आत्मीयता से प्रियहरि की आंखों में झांका और प्रशंसापूर्वक उसका परिचय अन्शुलता से कराया । अन्शुलता की निगाहें उत्सुकता की दिलचस्पी में जैसे प्रियहरि को तौल गई थीं।

कहीं कुछ ऐसा न था जिसमें यह आभास हो कि तब वनमाला और प्रियहरि के बीच कहीं दूरी हो। अन्शुलता के आने का फायदा यह हुआ कि बातचीत का सिलसिला फिर चल पड़ा। अक्सर वैसा होता था। रूठी हुई मौज को बाहर आने का बहाना दोनों के अंदरूनी मामलों से बेखबर किसी तीसरे के आकर पुल बना जाने से होता था। अन्शुलता के जाने के बाद उसी के बहाने वनमाला और प्रियहरि के बीच तफसील से बातें हुई थीं। इस तरह जैसे किसी से किसी की कोई शिकायत न हो।

प्रियहरि वनमाला से कह रहा था - "बताऊँ ? तुम्हारी वह अन्शुलता जब तुमसे लिपट बेतहाशा चूम रही थी तो मुझे उससे बेहद जलन हो रही थी।"

" क्यों ? भला आप को जलन क्यों होनी चाहिये ?"

" इसलिये कि तुम्हारे साथ वह जो कर रही थी उसपर तो केवल मेरा अधिकार था। जी करता था उसे परे ढकेलूं और वैसे ही लिपट दोनों के बीच की सारी कसर निकाल डालूं।"

वनमाला खिलखिला पड़ी।

" हां। खयालों में तो मेरे भी वैसा ही मौसम आ चला था। अब पछताइये। वक्त तो चूक गया।"

वनमाला ने बताया कि उसकी वह सहेली क्रिस्चियन थी और मिलन की खुशी में वैसा चुम्बन प्रचलित रिवाज ही था।"

" बाबा रे, क्या आवेग था उसके लिपटने और तुम्हें चूमने में। तुममें भी तो वैसा ही ज्वार उमड़ा था। मुझे तो ऐसा लगा कि आगे तुम दोनों के बीच बस वह दृश्य अब उपस्थित होने ही वाला है। '

" छि: आप बड़े वैसे हैं "- वनमाला बोली।

" क्या उसे तुमने हम दोनों के बारे में और कुछ कहा था ?"

" क्यों ? मैने तो कुछ नहीं बताया था।"

" मुझे ऐसा लगा कि उन आँखों में कुछ और भी था"

" औरत की आंखें बिना कुछ बताए भी बहुत-कुछ तलाश लेती हैं।"

समय वैसे ही कटा। इससे पहले कि दूसरी पाली के लोग काम पर आएं, वनमाला अपनी पुस्तकें और पर्स समेट हाथ हिलाती विदा हो गई थी।

आप तो बस कुछ भी समझ लेते हैं।

बाइ गाड, मैंने कभी किसी से कुछ नहीं कहा है : वनमाला

बर्फ पिघली। फिर जैसे एक-दूसरे के मन की लिखावट पढ़कर कब प्रियहरि और वनमाला निकट आए, बैठे, बात करने लगे यह पता ही नहीं लगा। उन दुखों और मजबूरियों के बीच का यह सुख और मिलन भी सहज था। ऐसे क्षणों में वे दोनों यूं हो जाते जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो।

एक दिन चाहत और प्यार के क्षणों में प्रियहरि ने उससे कह दिया कि 'वनमाला, तुम्हारी उदासी और विचलन मुझे भयभीत करते है। ऐसा लगता है कि टूटकर घबराहट में तुम हमारे बीच के संबंधों में मेरे प्रति अपनी नाराजगी की चर्चा अपनी महिला संगिनियों से कर जाती हो।' प्रियहरि ने जानना चाहा था कि क्या उसका संदेह सही है ? वनमाला प्रियहरि की आंखों से झांकती उदासी और वाणी में छिपे दर्द को पढ़ रही थी जब वह उससे कह रहा था कि 'वनमाला, मैं चाहता तो अन्यों से भी पूछ सकता था लेकिन मेरी नैतिकता ने कभी मुझे यह इजाजत नहीं दी कि मैं तुमसे पूछने के सवाल औरों से पूछूं।'

परम एकांत के निर्विघ्न क्षणों में उस दिन वनमाला के जवाब में प्रियहरि को तसल्ली दी। वनमाला ने कहा था कि आपस की बातें उसने कभी किसी से नहीं की वह कह रही थी - "आप बेकार दुखी होते है, संदेह करते है। विश्वास रखिए कि आपस की बातें मैं कभी किसी दूसरे से नहीं किया करती।"

दिन गुजरते गए। एक दिन प्रियहरि जब कालेज गया तो देखा कि प्रशासन के खिलाफ स्टॉफ के द्वारा यूनियन के जरिये की गई शिकायतों की जांच के लिए उनके बड़े अफसर आए हुए है। यूनियन का सचिव वह ही था इसलिए प्रशासन के विरूद्ध केन्द्र में वह ही था। उसे पता लगा कि सारी महिलाओं ने यह लिखकर दे दिया था कि उन्हें शिकायत तो थी, लेकिन अंदरूनी थी। सरकार तक भेजने की बात उन्होंने नहीं कही थी। सत्यजित, नलिनजी और कानन के अलावा प्रियहरि के पक्ष में कोई न बोला। खूबसूरत अनुराधा स्पष्टतः बॉस के पक्ष की थी। इसलिए उसे छोड़कर बाकी महिलाओं को कालेज न आने की ताईद कर दी गई थी। प्रियहरि के मन को यह धक्का लगा कि जिन पर वह भरोसा करता था; जिन्होंने शिकायत की, कागजों पर दस्तखत किये वे ही डर कर बॉस के कहने पर आज गायब हो गईं। खासतौर पर उसकी प्रिया वनमाला भी जिसके लिए वह जाहिर तौर पर प्रशासन से झगड़ा कर बैठता था, उस दिन गायब थी। वनमाला को परीक्षा के काम की कुछ पैसे नहीं मिले थे। केवल उसका भुगतान किया दिखाकर हिसाब भेज दिया गया था। एक दिन कभी वनमाला के साथ और उसके सामने ही प्रियहरि ने प्रशासन के एजेन्ट को भोले मोशाय को इस पर फटकार भी लगाई जिससे वनमाला पर उसने अपनी नाखुशी जाहिर करते हुए उसे धमकी भी दी थी। सरला नीलांजना के साथ भी यही हुआ था ऐसी शिकायतें बहुतों की थीं। इन्हीं सब की प्रोत्साहन से प्रियहरि लीडर बना उस बॉस झगड़ पड़ा था जो खुद उसे अपना पुराना परिचित और मित्र जान पास लाना चाहता था । और तो जैसे तैसे पर जिसे वह भरोसे का साथी समझता था उस वनमाला के उस दिन न आने की शिकायत प्रियहरि के मन में रही आई थी वह प्रतीक्षा में था कि उससे भेंट हो और वह पूछे कि प्यारी वनमाला, क्या यही मेरे विश्वास और प्रेम का प्रतिफल है जो तुम मुझे दे रही हो ? प्रियहरि उसे देखने की इच्छा करता तरसता रहा। न वह दिखाई देती थी, न कोई उसकी खबर देने वाला था। वह उस टेबिल की ओर देखता जिस पर उसका काला पर्स कालेज में उसकी उपस्थिति बताता था और जो अब लगातार गायब पाया जा रहा था।

तीसरे दिन अचानक दफ्तर में प्रियहरि को चन्द्रनाथ नजर आए। उन्होंने यह कहकर उसे चौंकाया कि मैडम का तो ट्रांसफर हो गया है और अब मैं यहां आ गया हूं। वातावरण की रहस्यमय चुप्पी और हवा में घुली असाधारण उदासी का कारण अब प्रियहरि की समझ में आया। एक दिन की उसकी छुट्टी और अनुपस्थिति के दौरान ही बहुत कुछ घट गया था। प्रियहरि की आंखों में वह दृश्य और उस पल का विषाद तैर गया जब पिछले दिनों उस पर मर-मिटते उसने वनमाला से कहा था कि 'ऐसे दूर रहने से तो अच्छा होता कि वनमाला चुटकी भर विष उसे अपने हाथों ही दे दे ताकि कम से कम ऐसी प्यारी मौत से तृप्त वह अपनी आंखों में वनमाला को बसाए प्राण त्याग दे।'

तब वनमाला ने जवाब दिया था - "छिः रे, इससे तो अच्छा यह होता कि मैं अपने पुराने कालेज में ही रही आती। कम से कम मजबूरी के ऐसे दिन तो न आते।"

हां, उसका तबादला तकरीबन चालीस मील दूर मालवा के उसी कालेज में हो गया था जहां वह पहले रही आई थी। बाद में किसी दिन सुचरिता ने प्रसंग आने पर बड़े अनमनेपन से प्रियहरि को सूचित किया था - "वनमाला आई तो थी। आपको यहां-वहां ढूंढती बेचैन नजर आ रही थी। आप ही नहीं आए थे।" सुचरिता का इशारा उस दिन की तरफ था जब वनमाला यहां से मुक्त कर चुपचाप बिदा कर दी गई थी।

वनमाला के साथ की आदत इस कदर जिन्दगी को रास आ गई थी कि उसका चला जाने प्रियहरि को सूना छोड़ गया था उसे देखे और अनदेखे पांच दिन गुजर चले थे तभी बातें चली तो किसी ने व्यंग्य भरे स्वर में उसे बताया कि बॉस के खिलाफ स्टांफ के शिकायत पर जो पूछताछ हुई उसमें बॉस के पक्ष में हस्ताक्षर करने वालों में 'आप की' वनमाला भी तो शामिल थी। प्रियहरि को बहुत पीड़ा हुई। कमस्कम वनमाला से ऐसी उम्मीद वह नहीं करता था। प्रियहरि ने सोचा कि वैसे व्यवहार से वनमाला में मानो इससे पूर्व जन्मों का बचा-खुचा ऋण भी वसूल लिया था । उसने तय किया कि जाकर इस बात के लिए वनमाला को वह बधाई तो दे दे। जो होना था वह तो पहले ही हो चुका था। अब होने को बचा क्या था जो भय हो।

बहुत भारी मन से प्रियहरि वनमाला के घर गया। दोपहर बाद जब उसके घर दाखिल हुआ तो उसके श्रीमन काम कर जा चुके थे। मार्ग निष्कंटक था। वनमाला अकेली थी, शांत थी। पूछ परख हुई, बातें हुई। प्रियहरि के पहुंचने से वनमाला का मूड खिल गया था। प्रियहरि ने उसे बताया कि छुट्टी से लौटने के बाद उसने क्या देखा, क्या पाया और उस क्या गुजरी। बात चलाते प्रियहरि ने वनमाला के दस्तखत की चर्चा उससे की और मायूसी में डूबा उसे धन्यवाद दिया। उसने कहा कि वैसी उम्मीद वनमाला से उसे न थी।

वनमाला ने प्रियहरि को तसल्ली देने की कोशिश की। उसने कहा - "आप बेकार परेशान होते है। आपको क्या होने को है ? भोला बाबू घर आ गये थे। वे परेशान थे, मिनमिनाने लगे कि 'मैडम, दस्तखत कर दो अन्यथा में फंस जाऊँगा। मेरे खिलाफ जांच शुरूहो जाएगी। आप तो अब वहां से चली गई है। आखिर उसमें हर्ज ही क्या है ? उससे मेरा भला हो जाएगा।' वनमाला ने आगे जोड़ा - "मैंने ही सोचा कि अब जब सचमुच उस कालेज से मेरा लेना-देना ही नहीं रहा तो क्या हर्ज है ? बस ऐसे ही दस्तखत कर दिया।"

वनमाला ने प्रियहरि से कहा कि अब आप भी वहां से निकल जाइए और अपना तबादला अपने नगर में करा लीजिए। वनमाला हमेशा अपनी उन सहकर्मियों से सशंकित रहा करती थी, जो कभी उन्हें मिलाने और कभी अलग करने अपनापा दिखाती प्रियहरि के गिर्द मंडराया करती थी। वह आश्वस्त होना चाहती थी कि उसके जाने के बाद कोई और प्रियहरि और उसकी यादों और प्यार के बीच प्रवेश न कर पाए। जैसी दुविधा और संदेह वनमाला के मन में थे वैसे ही प्रियहरि के मन मे भी थे जिससे वह भी वैसा ही व्यथित था। वनमाला की अन्यमनस्कता और रहस्यमय व्यवहार प्रियहरि के लिए पहेलियां थीं। वह उन्हें बूझना चाहता था। संकोच में सहमते हुए प्रियहरि ने भी वनमाला से पूछ लिया - "वनमाला, आज एक रहस्य से पर्दा उठाना होगा। बताओ कि दीगर महिलाओं का व्यवहार कभी-कभी मेरे प्रति अचानक कुछ खिंचाव का क्यों कर हो जाता था ? क्या तुम्हारा खुद का हाथ इसमें नहीं था ? क्या सचमुच आपस की बातों की जुगाली तुम उनसे नहीं करती थीं ?"

प्रियहरि ने खुलासा करते हुए अनुराधा की वनमाला से कानाफूसी और अनेक बार वनमाला में लक्षित उस रवैये का प्रसंग छेड़ा था जब वह उसे अकेला छोड़ स्टांफ रूम से बाहर खिसक लेती थी।

वनमाला बोली - "आप तो बस कुछ भी समझ लेते हैं। बाइ गाड, मैंने कभी किसी से कुछ न कहा है। जहां तक स्टाफ-रूम से बाहर रहे आने की बात है तो मैं इसलिए बाहर रहती थी कि कामर्स के हमारे प्रमुख नलिन सर से मुझे सख्त नफरत थी।"

कुछेक पल ऐसी चुप्पी में बीते जिनमें वनमाला और प्रियहरि दोनों का पशोपेश छिपा था। वनमाला का प्रियहरि से और प्रियहरि का वनमाला से दूर रहना कल्पनातीत था। वे दोनों जैसे अतीत की सारी उलझनों का समाधान करते-कराते एक-दूसरे की वफादारी और प्यार को विदाई की इन पलों में तृप्ति के साथ बांधकर एक-दूसरे को आश्वस्त कर लेना चाहते थे। वनमाला के दिलासे के बावजूद प्रियहरि का चित्त उदास था । किस वनमाला पर वह भरोसा करे-वह सोचता रहा ?

शून्य में खोया समय : मैं तृप्त मैं अतृप्त

अंधेरे में उसकी देह में
तृप्त सुख दमका
जैसे दमकी नाक की कील
जैसे सुख समूची देह में गड़ती
कील था ।
-अंधेरे में/अशोक वाजपेयी/उम्मीद का दूसरा नाम/पृ. 25

बादलों की धमक, बिजली की सनसनी और मूसलधार बारिश : कोई किसी से प्यार नहीं करता . कर ही नही सकता . वह जिसे हम प्यार कहते हैं , महज एक जूनून है. हर आदमी में एक वहसी जूनून होता है. अपने उस जूनून को ही वह प्यार का नाम देता है.

उस मुलाकात का एक-एक पल प्रियहरि की स्मृतियों मे तैर रहा था।
प्रियहरि यानी मेरे चेहरे को गौर से वनमाला ने देखा । उसकी आंखों में शरारत झांक रही थी । अचानक वह खिलखिलाकर हंसने लगी । मेरी आंखों ने उसकी आंखों में झांका । उदासी की परतें और गहरी हो गई । अचानक वनमाला बोली- "तुम्हारा यही बुद्धूपन तो मुझे भाता है ।बेकार किस चिन्ता में पड़े रहते हो ?"
मेरे करीब आती उसने पीछे से सिर के बाल पकड़े और तड़ातड़ मेरे गालों को चूम गई । बोली-
"तुम्हारा यही भोलापन तो मुझे खींचता है । छोटी सी कोई बात क्या हुई, बस मुंह फूल गया और आंखें शून्य में झांकने लगती हैं । मैं सामने हूं । मुझसे मिल रहे हो फिर भी उदास हो । बताओ भला क्यों नाराज हो ?"
"मुझे न जाने क्यों तुमसे डर लगता है । पास होकर भी तुम दूर जो लगती हो ।" वनमाला वहां पड़े तखत पर बैठ गई थी । मेरी बात के जवाब में बोली-
"तुम्हारी यही अदा तो मुझे भाती है । बिल्कुल बच्चे हो, भोले और मासूम । मेरी आंखें नम हो चली । उसके पैरों के पास बैठकर मैंने उसकी गोद में अपना सर रख आंखों की नमी को छिपाने की कोशिश की । मेरा सर उसकी जंघाओं के बीच धंसा था ।" मैंने धीरे से कहा-
"मेरा मजाक मत उड़ाओ प्लीज़ । मैंने कहा न वह कल बोली न मैं । उसके हाथ मेरे बालों को सहला रहे थे और गालों का स्पर्श करते उसे हौले-हौले मसल रहे थे । वह क्षण मौन के संवाद का था ।" मैंने कहा-
"आज मुझे भगाओगी नहीं ।"
जैसे बहुत दूर से आवाज आ रही थी, उसने उसी आवाज में जवाब दिया । "नहीं ! वो अब रात दस बजे आएंगे और बच्चे किसी ग्रुप के साथ पिकनिक पर हैं । रात उन्हें लेकर आना होगा ।"
उसी तरह सिर गड़ाए मैंने धीमे से पूछा-
"कामवाली नौकरानी"
"वो दो दिनों से गायब है । खबर आई थी कि कोई बीमार है । शायद कल आए । मेरा बैचेन सिर उसकी जंघाओं की संधि में धंसा पड़ रहा था । मेरे हाथ उसकी जंघाओं पर पसरे थे और उसके पुट्ठों को दबाते घर रहे थे । वनमाला का सिर झूककर मेरी पीठ पर टिका जा रहा था । उसके स्तनों का गुदाज स्पर्श मेरी पीठ को सहला रहा था ।"
वनमाला पूछ रही थी- "सीधे कॉलेज से चले आए हैं ना ? ठहरो ! हटो, मैं तुम्हारे लिए कुछ लाती हूं ।" झटके से वह उठ खड़ी हुई । पहले बाथरुम की ओर गई । फिर एक छोटी प्लेट के साथ रसोई से वह नमूदार हुई । पानी के छींटों से उसका चेहरा धुला था । चेहरा उसने पोंछा न था और पानी की छींटें नन्हीं बून्दों की शक्ल में उसकी लटों पर सजे थे ।''
"लो आज मेरे हाथों से खाओ" वह सामने खड़ी रसगुल्ले मेरे मुह में ठूसने लगी ।

मैंने निगला । कहा- "ऐसे नहीं, मेरे साथ तुम भी खाओगी ।" मैंने प्लेट से एक-पर-एक दो रसगुल्ले उठा उसके मुह में ठूंस दिया । मेरे होंठ उसके रसगुल्ले से अंटे फूले गालों को बारी-बारी से चूमते उन ओंठों तक पहुंचे जहां रसगुल्ले समाये थे । होठों से होठ भिड़ा मैंने धीरे से मुंह में भरे रसगुल्लों से एक टुकड़ा दांत में दबाया और बोला- "वनमाला तुम्हारे होठों की मिठास रसगुल्लों की चासनी से दोगुनी हो गई है ।"

" आह , झूठे । मुझे मस्का लगा रहे हो " वह मुझे परे ढकेलती है।

" तुम्हारे सिवा है भी कौन जो इस काबिल हो ? तुम्हें बुरा लगता हो तो न लगाया करूं ?"

मेरी आंखों में झांक वह निगाहें झुका लेती है। उसके पांवों की अंगुलियां थिरक रही हैं। अंगूठा जमीन को कुरेद रहा है।

मेरी आंखें उसके चेहरे में डूबी मुग्ध हैं। बाहर आंगन में रंग.बिरंगे फूलों की छटा के साथ उसकी वाटिका की हरीतिमा वासन्ती धूपछांही छटा में मनमोहक लग रही है। उस तरह सलजता में ठिठकी वनमाला में भी मुझे वही छटा नजर आ रही है। आंखों ,पलकों, भौहों , होठों, गालों, लटों, नासिका - सब पर टिकतीं मेरी आंखें वनमाला को लील रही हैं। मुझे याद आ रहा है -"सर्वे नवा इवा भान्ति मधुमास इव द्रुमा :"।

सफेद फूलों की चमक से भरी सघनता में फैली चमेली की पत्तियों में जरा चिकनी लालिमा मैं भर देना चाहता हूं। उसकी छितराई पतली डालियों में मैं उस लता की नमकीन लहसुनिया गंध भर देना चाहता हूं, जो बारिश के बाद नीले फूलों के गुच्छों से लद जाती है। वनमाला ठीक वैसी ही होगी। भुजाओं की ठीक वैसी ही नमकीन गंध के साथ। वनमाला की पलकें झुकती हैं। वक्षस्थल को कंपाती गहरी सांस बाहर आती है और थिरक कर मौन हो जाती है। अपने मंदस्वर से वनमाला मेरे कानों में प्रवेश करती है।

"मुझे पहली बार देख रहे हैं क्या ?"

क्या निस्तब्धता में भी माधुर्य हो सकता है ? हां, यह मैने उस वक्त जाना।

" तुम्हें जब भी देखता हूं वह पहली बार ही होता है। इससे पहले कि आंखों में तुम्हें बसाकर तृप्त हो पाऊँ, तुम ओझल हो जाती हो। आज जी भर निहारने दो। "

आज वह फिर देखने से वंचित कर रही है। जवाब में वनमाला का चेहरा मेरे वक्ष में समा जाता है। उसी अतल गहराई से एक रागिनी उठ रही है।

" तुम मुझे पागल बना दोगे। "

उसी तरह नीरव पदचाप से मेरा जवाब वनमाला का स्पर्श करता है।

" अपनी वाटिका की खूबसूरती आज तुमने चुरा ली है।"

वनमाला की चिबुक को अंजुरी में थामे मेरा मन्द्र स्वर उससे कह रहा है -"तुमने मुझे पागल बना दिया है।"

मैं पूछता हूं - आज जी चाहता है तुम्हारी वाटिका की सारी खूबसूरती समेट लूं। सैर कराओगी न ?"

उसकी हथेलियों ने मुझे थाम लिया है।

"आओ ।" अपनी बड़ी-बड़ी आंखोंसे मुझमें झांकती वह उस ओर खींचती है जिधर वाटिका की ओर खुला द्वार है। मेरा बायां हाथ अंगुलियों में असज्जा में भी सज्जित उसके सपाट केशों पर हौले-हौले थिरक रहा है। दायां हाथ उस द्वार की सिटकिनी सरकाता है और बागीचा कैद में सींकचों के पार चला जाता है। एक अनाम मिठास की भीनी-भीनी सुगंधि से भरी मादक स्तब्धता के बीच केवल दिल की धड़कनों का ही शोर है, जो निरन्तर बढ़ता जा रहा है। अहसासों में उसे केवल दो सुन रहे हैं। एक वनमाला, और दूसरा मैं यानी प्रियहरि।

"वाटिका वहां है, जहां वनमाला है। मैं वहां जहां मेरी वाटिका है।" मेरी आवाज़ इतनी धीमी है कि वनमाला के उन उस कान के अलावा जिसकी तांबे की तरह ललाई लौ के करीब मेरे होठ अपना संदेश उस तक पहुचाने बढ़ चले हैं, उस अपनी ही आवाज़ को मै भी नहीं सुन सकता। एक झटके से वनमाला के उस हाथ को मेरे हाथ अपनी ओर यूं खीचते हैं कि द्वैत में शोर मचाती धड़कनें परस्पर संक्रमित और संगमित होतीं निर्झर की तरल शीतलता में तब्दील हुईं पहाड़ी का आवेग खो समतल धरती पर आ उतरती हैं । अलस-अनमने बाहर जाते वनमाला के उन कदमों को मैं, मेरा जादुई संदेश इस तरह खींच लौटाता है जैसे उन्हें बस ऐसे ही मनुहार की प्रतीक्षा थी।

वनमाला मुझे अपने बागीचे की सैर करा रही थी। मैं उस कोने की ओर बढ़ रहा था जहां लहराती झाड़ियों के झुरमुटे में नीम अंधेरों में छिपी एक नन्ही कली चिनगारी सी दमक रही थी।

"उधर नहीं प्लीज़। वह संरक्षित कोना है। उधर जाना खतरनाक है।"

मैने वनमाला की आंखों में झांका। मुझे बुरा लगा था।

" क्या फायदा जो बाहर की सैर से लुभाती अब तुम ऐसा कह रही हो ? ठीक है मैने देख लिया तुम्हें। जब तुम्हारी ही इच्छा नहीं तो मैं क्या कहूं? मैं जाता हूं। बस देख लिया तुम्हें।"

" आप बुरा मान गये। जरा आराम कर लीजिये फिर जाइयेगा। मुझे तो आप का यूं ही रहा आना भी बहुत भा रहा है।"

"नहीं तुम्हारी बाहर की सैर ने मुझे बेचैन कर दिया है। अंदर जाने से तुम मना कर रही हो। कितनी देर से तुम्हारे साथ यूं टहल रहा हूं। मेरी तीसरी टांग थरथरा रही है और तुम हो कि ऐन उसे थामने की जगह भगा रही हो।"

"लाओ" वनमाला ने उसे थाम लिया। "आह! यह मुझसे नहीं संभाला जाएगा। बहुत तप रहा है। इसे झुरमुट के उस अंधेरे में मुझे टिकाना होगा जहां मेरे बागीचे की धरती लावा उगल रही है। चलो आओ?
आ जाओ। अरे टेढ़े-मेढ़े कहां टांग भटक रही है। राह देख सीधे घुसे चले आओ। आओ और खूब देख लो तुम्हें मैने कहां-कहां सजा रखा है?"- वह बोली।

बगीचे के उन झुरमुटों का तंग अंधेरा कपाट की तरह तना था। कपाटों की संधि को टोहती-टटोलती मेरी टांग अंदर प्रवेश करने बेताब थरथरा रही थी। वनमाला ने कसकर थामा और कपाट की संधि पर यूं टिकाया कि फिर धक्का देता मैं सीधे खुद ही धंस चला।

मेरी टांग बागीचे की उस अंधेरी सुरंग में भी जो नमी से भीग रही थी, हर कोने को वह अब टोह-टोह कर टटोल रही थी। दीवारें रिस रही थीं। लार टपकाती मानों वे उस ताप की प्रतीक्षा में थीं जो उन्हें सोख ले। जहां-जहां मैं धंसता वनमाला मुझे संभालती साथ चिपकी होती। दोनों को एक-दूसरे का खूब ध्यान था। मैने पाया सचमुच वह एक दहकते फूलों की वाटिका थी।

वनमाला की उस प्यारी वाटिका में कभी मेरे हाथ लहराती बेला के भूरे रसीले अंगूरों को तोड़ते, चबाते और चूसते रहे और कभी उन कदली स्तंभों को मापते रहे जो सुतवां चिकनाई में ढले थे। कभी मैं उन खूबसूरत गोलाइयों पर फिसलता जो वाटिका में बेल के फल जैसे भरपूर पुष्टता में फूले जा रहे थे और कभी उस संकरे नक्काशीदार पुल को मापता जो आवाजाही करते कंप-कंप कर लचकता खूब गुदगुदाए जा रहा था।

" कितना सुन्दर बागीचा है ? बहुत मजा़ आ रहा है। जी चाहता है कि अपनी उछलती टांग में चिपका साथ लेता जाऊँ।"

" अब जब घुस चले हो तो यह वाटिका तुम्हारी है। ले लो भरपूर। जितना जहां-जहां से भाए लेते जाओ।"

"आह, सचमुच तुम्हारा जवाब नहीं। लो ये लिया।"

"और लो"

"यह देखो, और लिया"

"लो ? और, और,और लिया"

"आह ? लेते चलो। ले-लेकर इसे जितना निचोड़ोगे उतनी ही ज्यादा मैं हरी होती चलूंगी"

"आह, वनमाला मेरे साथ भी वही घट रहा है जो तुम्हारे साथ घट रहा है। जितना लेता हूं, जितने अंदर जाता हूं, उतना मजा बढ़ता जाता है"

"हाय.हाय । यह क्या हो रहा है ? बिजली चमक रही है। बादलों की नमी मुझको भिगा चली है। अब रुकना मुश्किल है। दौड़ चलो। चलो जल्दी, और-और जल्दी"

कूद-कूद कर , उछल-उछल कर चोट खाता और वनमाला के बागीचे की हर सतह से टकराता मैं बेतहाशा दौड़ रहा था।

" आह, मुझमें बिजलियां कड़क रही हैं।" मैं चीख रहा था।

" मुझमें बूंदें बरस रही हैं। मैं भीगी जा रही हूं।" - वनमाला बुदबुदा रही थी।
" अकेले नहीं। हम दोनों भीग रहे हैं। आह इस सनसनी को कैसे निगलें। यह बिजली गिरी- एक.. दो.. तीन.. चार.. पांच.. छः.. सात "
" आह मेरी छतरी में समा कर चिपक रहो। बस करो बाबा बहुत भीग लिये"

इधर फुहार की सनसनी मेरे अंदर फैलती जा रही थी और उधर गुफाओं की लरजती-कंपती दीवारें उसे गुदगुदा रही थीं । फिर एक बिन्दु ऐसा आया जहां हल्की पड़ती बारिश चार -पांच तरंगों के साथ अघाकर समूची झर चली। बागीचे की जमीन खूब नहा चली थी। वे पांव जो साहचर्य की गुदगुदी पैदा करते वनमाला और मुझे सैर का मज़ा दे रहे थे इस वक्त कीचड़ में सने सुस्ता रहे थे। हमारे बीच सारा पठार बारिश की चिपचिपाहट से भर गया था ।

छतरी में समाए हम कब तक बेहोश रहे आए यह कहना मुश्किल है। जब होश टूटा तो हमने पाया कि मौसम साफ हो चुका था। प्यार में उपजायी कीच और मिटटी की फसल उतार , आवरणों की सिलवटें सजा मासूम दुनियादारों की तरह स्वर्ग की सैर से लौट पुनः सोफे-कुर्सियों के जीव हो चले थे। बातें करते , हंसते-बोलते,हिलते-हिलाते, डोलते-डुलाते, खिलते-खिलखिलाते आराम में अलसा चला मन अब फिर जाग चला। इक-दूजे को तकतीं, इक-दूजे में डूबीं, मिलती-खिलतीं-उठती-झुकती आंखें अधिक मजबूती और तैयारी के साथ उस एक अनुभव को पुखता कर लेने बुला रही थीं।

रसगुल्ले की मिठास अब तक बाकी थी पर अब वनमाला के रस में डूब मिठास दोगुनी हो चली थी। उसे अभी -अभी मैने चखा था लेकिन जी फिर उस मिठास को निगलने मचलने लगा था। वनमाला अभी.अभी ठीक ही तो कह रही थी कि यह आज शायद कल फिर न लौट पाएगा।

उस दिन मैं सारा कुछ एकबारगी वसूल लेना चाहता था । ऐसा कि मेरी प्रिया और मेरे अंदर की सारा सामर्थ्य एक-दूसरे में एक-दूसरे को हमे शा के लिए खलास कर दे । इस खयाल की सनसनी के साथ मेरे होठों ने अचानक फिर वनमाला के होठों पर हमला कर उन्हें दबोच लिया । करवट से फिर उसके शरीर को चितावस्था में धकेलता उसकी कटि को घेरे उस पर सवार था । कुछ वक्त पहले चखी मिठास का नशा दरअसल अब असर करता चढ़कर बोलने लगा था। इस बार बगैर मौका गंवाए वनमाला भी फौरन लता की मानिन्द लहराती मेरे बदन पर लिपट छाती चली गई थी। कसकसाती छातियां कोई कसर न छोड तीं एक-दूसरे को मसलती होड़ ले रही थीं । गालों से गालों की छे ड़-छाड़ चल रही थी । इस छेड़-छाड़ में होंठ फिर कहां जा भिड़े पता ही न चला । कभी वह अपने होठों के बीच मेरे होठों को निगल जाने की कोशिश करती और कभी मैं प्रतिद्वंद्विता में आगे निकल जाता । जंघाओं के बीच उरुसंधि में छिपा मेरा कोमल मन फन काढे बाहर आने को बेताब लहरा रहा था । वनमाला की जंघाओं के बीच के कोमल गुहाद्वार से चिपकी जाती मेरी इधर की बेताबी उसके चित्त को भी छू उधर की बेताबी से टकरा रही थी । प्यार की इस प्यारी कस्मकस में गिरते-संभलते दोनों अंततः उसके पर्यन्क पर जा गिरे थे ।

पल भर को सारा कुछ थम गया था । जैसे हम चिपके खड़े थे, वैसे ही बिस्तर पर गिरे पाए गए । वह मुझे और मैं उसे मुग्ध आंखों से निहार रहे थे । मेरी हथेलियां बडे हौले-हौले उसके बालों पर फिर रही थी । बारी-बारी वे दोनों गालों पर प्यार भरी थपकियां दे रही थीं । वनमाला की बांहें मुझे घेरे जकड रही थी । मेरी जीभ की कांपती नोक उसके होठों पर फिरने थिरकने लगी थी और फिर होठों से होठों को निगलने की हो ड़ शुरू हो गई थी ।

अचानक मैंने झटके से खुद को ऊपर उठाया । अब मेरी मुट्ठियों में उसके वे दो गोल घेरे थे जो बैलून की मानिन्द फूल-फूल कर बढ़े जा रहे थे । अंगूठे और तर्जनी के बीच ललियाए और ललचाते अंगूरों जैसे मीठे और होठों में लपक आने को आतुर उसके सुंदर , भूरे स्तनाग्रों से मैं खेल रहा था । वनमाला 'आह-आह, छोड़ो न..' कहती सिसकारियां भर रही थी । मैने उन सिसकारियों में ''हां - हां और न '' सुना ।

हाथों को अपनी जगह कायम रखे मेरा सिर उसकी कमर से नीचे जंघाओं की संधि को ध्वस्त करने ठोकर मार रहा था । अब तक जकडी उसकी जांघें पिघलने लगी थीं ।

"आह, तुम मुझे मारे डाल रहे हो । मैं पागल हुई जा रही हूं ,। छोड़ दो ना प्लीज । अब मैं और बरदाश्त नहीं कर पाऊंगी ।" वनमाला बुदबुदा रही थी ।

मेरा शरीर फैलकर उसके माथे तक पहुंचा । वनमाला की बायें कान की कोमल लौ मेरे होठों की गिरफ्त में थी । मैंने हल्के से उस पर दांत ग ड़ाए और इतने धीमे कहा कि उसके कानों के बाहर ध्वनि न जाए- "छोड़ दूं सचमुच,.. या आऊँ अंदर आ जाऊँ। ।" बरसों से भरा सब्र का बांध अब टूटने की कगार पर था । "आह" उसने सिसकरी भरते कहा - " तुम मुझे मार डालोगे जो भी करना हो करो न । जल्दी करो प्लीज़, मैं मरी जा रही हूं।"

वनमाला घर में प्रायः गाउन में हुआ करती थी । मुझे यह गवारा न था कि उसके और मेरे बीच वह आए । मेरी अंगुलियों की फुर्ती ने तड़ातड़ गाउन के सारे बटन खोल दिए और फिर भी मेरी बांहों की दुश्मन बनी कमरबंद की गांठें खोलीं । अपनी प्रिया की भुजाओं से नीचे खींचता उसके गाउन को पैरों के पास फेंकते मैंने कहा- "प्यारे गाउन, आज तुम दूर रहो और मेरे बदन को ही मेरी प्रिया का आवरण बनने दो । ऐ सी ही क्रिया और ऐसे ही संवाद से वनमाला मेरे वस्त्रों को भगा रही थी ।"

उसके पांवों पर मेरे हाथ प्यार से फिसल रहे थे । मैंने उसके पांव के अंगूठे को होठों के बीच दबा दांतों से काटा । पिंडलियों के गुदाज मोड़ों को दबाया । उसकी पुष्ट जंघाओं पर हथेली से थापें दी और उन जंघाओं से पूछा कि तैयार हो या नहीं । उनके उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर मैंने दोनों जंघाओं को फैलाते अपनी जंघाओं के लिए जगह बनाई । मेरी आंखों को अपने नाजुक अस्तित्व का टोह लेना देख वनमाला हठ से अपने उन होठों को ढकने की कोशिश में लगी थी, जहां प्रवेश करने मेरी मुट्ठी में थमा पौरुष लालायित था । उधर बचने की कोशिश थी और यहां प्रवेश की उत्तेजना से अंगडाइयां ले रही थीं लेता मेरा बेताब लाड़ला था । वनमाला की एक बांह पसरकर नीचे आ खिसकी थी । उसकी मुट्ठी मेरे पौरुष को सहलाती जकड़े जा रही थी । वनमाला की हथेलियों को चूम मैंने हौले से अलग किया। वनमाला के दिल के उस नाजुक कोने में ऐसा लावा भरा था जिसमें परम शीतलता छुपी थी । मुझे उसी की तलब थी। वनमाला की आतुर हथेली ने फिर फिर मुझे थाम लिया था । वह मेरे पौरुष को थामे राह दिखाती खुद वहां ले जा रही थी जहां उसकी कोमल वनमाला उस पौरुष को निचोड़ जाने बेताब थी ।वनमाला के मुड़े हुए घुटने पसर चले थे और मेरा अस्तित्व उन दोनों के बीच छिपी वनमाला में समा चुका था । मैने हाथ फैलाए और वनमाला के गोल गुंबदों पर चिपकते हुए अपने उन हाथों को हौले-हौले वनमाला की बांहों के नीचे से गुजारते अपनी हथेलियों से उसके सिर को थाम लिया । नीचे होंठ अपनी जगह भि ड़े थे और अब ऊपर उसके चेहरे पर , उसकी पलकों पर चुम्बनों की बौछार हो रही थी । वनमाला के होठ थरथराए, लपके और मेरे होठों से गुंथ गए । मेरी जीभ ने होठों को ठेलते जगह बनाई और सीधे वनमाला के मुह में धंस गई । वह निपुण थी। स्पर्धा में यह देखने का वक्त न था कि किसकी जीभ ओर किसके अधर किसे परास्त करते लीलते घुसे पड रहे हैं। अंदर की ज्वाला बाहर भ ड़कती बार-बार केन्द्र को ऐंठाती, गुदगुदाती, सिहराती लौटती फिर और भीषण लपटों के साथ हमे सुलगा जाती थी। चेहरों के खेल का असर छातियों पर दबाव बढाता जा रहा था । और तब जैसे कमरे में भूचाल आया । वनमाला के साथ मेरा बदन हिलने और डोलने लगा । सारी शैया जैसे उस समय दो से एक हुए बदनों के बीच समाई जा रही थी । लावा पिघलता-रिसता जा रहा था और उसकी चिकनाई वनमाला और मुझे गुदगुदाए जा रही थी । प्यारी वनमाला, आज मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा । तुमने मुझको बहुत तरसाया है । हर बार मैं वनमाला के अंदर जाता और बाहर निकलता । जंघाओं के बीच की थप्प की आवाज के साथ मैं दोहराता- इधर से किलक गूंजती

"लो ..... और लो ..... लेती जाओ आज सारा प्यार समेट लो "

भूतल से वनमाला की पृथ्वी सिसकारियां लेती कराहती-

"दो ..... पूरा दो और मेरी समूची पृथ्वी हिला समेट लो। लो यह मैने दिया..... कोई कसर मत छोड़ो"

वनमाला का आनन्दलोक "आह,--आह.." की गुदगुदी लहर बन मेरे अधरों पर उफन रहा था । वनमाला के गले से प्रतिध्वनित होती वह लौट रही थी -

"आओ ..... और आओ ..... मार डालो मुझे आज"

वह बुदबुदा रही थी- "आप को मैंने बहुत तरसाया है । सारी शिकायत मिटा डालो आज। आज वनमाला आपकी है । यह आज का यह शायद कल लौटकर, कभी लौटकर फिर न आए।"

इधर फुहार की सनसनी मेरे अंदर फैलती जा रही थी और उसकी गुफाओं का कंपन उसे गुदगुदा रहा था । फिर एक बिन्दु ऐसा आया जहां चार-पांच-छः-सात-आठ जितनी ना-मालूम तरंगों के साथ बारिश खत्म हुई और कीचड़ में हम डूब गए । उसका पठार बारिश की चिपचिपाहट से भर गया था । वनमाला की छातियों में सर गडाए मैं स्थिर हो गया था और वह थी कि मेरे बालों को सहलाती बार-बार मेरे गालों को चूमे जा रही थी ।

"बस ऐसे ही सोए रहो । अभी मुझे छोड कर न जाना । यहीं आराम करो । "

वनमाला रानी, प्यार में बुदबुदा रही थी । मैं उसका गुलाम था । इसी हालत के साथ उस सन्नाटे में हम गुम रहे, जो हमारे दरम्यान बादलों की धमक, बिजली की सनसनी और मूसलधार बारिश के साथ घटी थी ।

वनमाला और मैं एक–दूसरे की तरफ मुंह किये आराम की मुद्रा में यूं लेटे थे जैसे सारे संसार की बाधाएं पारकर हम निश्चिन्त किनारे आ लगे हों। उसकी भुजाएं मेरे कंधे पर पसरी थीं और मेरा हाथ वनमाला की गर्दन पर होता उसके सिर के बालों को संवार रहा था। मैं सर गडाए मैं स्थिर हो गया था और वह थी कि मेरे बालों को सहलाती बार-बार मेरे गालों को चूमे जा रही थी ।

बचती हुई भी खूब भीग चली पुलकित कम्पन वनमाला का मुख मुझमें धंसा पड़ रहा था । उसकी अंगुलियाँ थिरकी हुई मस्तक से ऊपर लहराती हुई सर के बालों से उरझती खेल रही थीं । उद्वेलित अधरोष्ठ उठ उठते मेरे गालों को चुम्बन से चपचपा रहे थे । उसकी माया में अभिभूत थिर हो ढुरक मैं बिछा था किन्तु उसके गुदगुदे स्पर्श से मेरे अन्दर का आहलाद नर्तन कर रहा था ।

"बस ऐसे ही सोए रहो । अभी मुझे छोड कर न जाना । यहीं आराम करो । "

वनमाला रानी, प्यार में बुदबुदा रही थी । मैं उसका गुलाम था । इसी हालत के साथ उस सन्नाटे में हम गुम रहे, जो हमारे दरम्यान बादलों की धमक, बिजली की सनसनी और मूसलधार बारिश के साथ घटी थी ।

रसगुल्ले की मिठास अब तक बाकी थी पर अब वनमाला के रस में डूब मिठास दोगुनी हो चली थी। उसे अभी -अभी मैने चखा था लेकिन जी फिर उस मिठास को निगलने मचलने लगा था। वनमाला अभी.अभी ठीक ही तो कह रही थी कि यह आज शायद कल फिर न लौट पाएगा।

बातें करते, हंसते-बोलते,हिलते-हिलाते, डोलते-डुलाते, खिलते-खिलखिलाते आराम में अलसा चला मन अब फिर फिर अधीर हुआ उठने लगा । इक-दूजे को तकतीं , इक-दूजे में डूबीं , मिलती-खिलतीं-उठती-झुकती आंखें अधिक मजबूती और तैयारी के साथ उस एक अनुभव को सहेज कर रख लेने आमंत्रित कर रही थीं। फिर फिर जागती चमकती कुण्डलिनी जब खूब एकाकार हुई मूल को सनसनाती और दिलो दिमाग को चरमानंद से तृप्त करती जब शांत हुई तो कितनी देर उस तृप्ति की तंद्रा में हम बेसुध रहे इसका होश ही नहीं रहा ।

जब होश टूटा तो हमने पाया कि मौसम साफ हो चुका था। प्यार में उपजायी कीच और मिटटी की फसल उतार, आवरणों की सिलवटें सजा मासूम दुनियादारों की तरह स्वर्ग की सैर से लौट पुनः सोफे-कुर्सियों के जीव हो चले थे। वनमाला और मैं एक–दूसरे की तरफ मुंह किये आराम की मुद्रा में यूं लेटे थे जैसे सारे संसार की बाधाएं पारकर हम निश्चिन्त किनारे आ लगे हों। उसकी भुजाएं मेरे कंधे पर पसरी थीं और मेरा हाथ वनमाला की गर्दन पर होता उसके सिर के बालों को संवार रहा था।

" जी नहीं मानता। चाहता हूं तुम्हें अपने साथ भगाकर कहीं दूर ले जाऊं"– मैने कहा।

वनमाला ने मेरी आंखों में झांका। एक चमक उभरी और एक मुस्कान तैर गई।

" क्यों? मिल तो गया जो तुम चाहते थे। मुझे भगाकर अब क्या करोगे "– वह बोली।

" तुम मेरी प्यास हो। यूं चोरी–चोरी कब तक चलेगा ? तुमसे मिल पाना क्या सरल होगा ? सारा कुछ अनिश्चित है। क्या तुम्हें तसल्ली होगी ?''
अभी–अभी तिरती चमक उदास हो चली थी। चेहरा उन बादलों से घिर चला था जो हमेशा उस पर छाए रहने के आदी थे।
" मैने वैसा कब कहा ? लेकिन आदमी की फितरत से मैं वाकिफ हूं। आखिर औरत हूं न! सपनों और हकीकत के बीच एक कठोर फासला होता है।''
" अचानक यह बात कहां से आ गई ?''–वनमाला की चिबुक थाम उसकी आंखों में झांकते मैने कहा।
दोहरी होती अपना मुंह उसने मेरी छाती में गड़ा दिया था।
"सब कहने की बातें हैं। भगाकर ले जाओगे कहां ? जिम्मेदारियों और मुसीबतों का अहसास होते ही तुम्हारी प्यास बोझ बन जाएगी और तुम भाग खड़े होओगे। हर मर्द यही करता है। जो है, वह है। उसे ही स्वीकार लेना चाहिये। क्या इतना काफी नहीं है ?– वह बोली।

अच्छे क्षणों के बीच आ चले वैसे कड़वे विचारों को मैने चित्त से झटक देना चाहा लेकिन उसमे कारगर न हुआ। वनमाला का चेहरा मेरी छाती में धंसा था और उसे अपनी ओर खींचता मैंउससे चिपका पड़ रहा था। वह खुद भी आतुरता से लहराती लिपटती जा रही थी, लेकिन उसकी वाणी में बसा दार्शनिक गंभीरता में बुदबुदाए जा रहा था –
'' जो इस वक्त हममें है, वह हकीकत है प्रियहरि। लेकिन मैं बताऊँ ? उससे भी बड़ी हकीकत यह है कि कोई किसी से प्यार नहीं करता। कर ही नहीं सकता। वह जिसे हम प्यार कहते हैं महज एक जुनून है। हर आदमी में एक वहशीजुनून होता है। अपने उस जुनून को ही वह प्यार का नाम देता है। इच्छा मेरी थी, इच्छा तुम्हारी थी। मैं और तुम तो एक–दूसरे के लिये अपनी ही चाहत के आलंबन थे। इच्छाओं की बेलें टकरातीं लिपट चलीं तो उसे हमने प्यार का नाम दे दिया। कल मेरी या तुम्हारी इच्छा का रुख बदल गया तो अपना प्यार इस बिस्तर से समेट हम कहीं और बिछा देंगे। समीकरण हटा कि प्यार घटा। तुम रूठना नहीं। लेकिन न जाने क्यो यह विचार मेरे चित्त में बार–बार आता मुझे बिखरा जाता है। मेरे प्यारे बुद्धूराम मैं जानती हूं कि मेरी बेरुखी, मेरे दूर–दूर भागते बच रहने से ही तो तुम मुझसे नाराज़ थे। मेरी भी इच्छा तुम्हारी इच्छा में समा जाने की उतनी ही बलवती थी, जितनी तुम्हारी। आखिर अंदर–अंदर छीलता अंतर का द्वंद्व जब असह्य हो गया तो मैने ठान लिया कि जो होना हो, वह होता रहे। मुझे समर्पण करना होगा और समर्पण पाना होगा। मुझे मालूम था कि तुम आओगे। आज वैसा हुआ। भविष्यको मैं नहीं देख सकती पर आज तुमसे मिलकर मैने राहत तो पा ली है।''

मुझे अब तक नहीं मालूम कि रसरंग की वेला में वैसी बात की क्या प्रासंगिकता हो सकती थी ? क्या वनमाला मुझे विरक्त करना चाहती थी ? क्या वह खुद विरक्त होना चाहती थी ? क्या वैसा कहती वह प्यार में मुझे और अधिक डुबाना चाहती थी ? या क्या विश्वास और समर्पण में भीगती वह खुद मुझमें गहराई में डूब रही थी ,? जो भी रहा हो, वनमाला पर मुझे और ज्यादा प्यार उमड़ आया। उसका एक–एक शब्द मुझमें गहरे उतरता चला गया था। भविष्यमें क्या छिपा था मुझे भी नहीं मालूम था लेकिन उस वक्त मैने महसूस किया कि वनमाला उससे कहीं अधिक बुद्धिमती है, जितना मैं सोचता था। अपनी श्रेष्ठता का मेरा अहंकार खो गया था। मुझे निश्चयहो गया कि वनमाला का साथ ही सर्वथा मेरे अनुकूल है। उससे बेहतर सहचरी मिलना संभव न था। मैं उसे कभी न छोड़ूंगा और हमेशा उससे प्यार करता रहूंगा।

शून्य में खोया समय अचानक हमारे बीच घुस पड़ा । वनमाला की नजरें घड़ी पर पड़ गई थी । "बस, अब आज और नहीं, परे हटो ।" उसने मुझे झटके से अलग कर दिया । मैं तृप्त था, मैं अतृप्त था । अचानक पैदा हुई रूकावट से सारा तनाव ठंडा तो पड़ गया, लेकिन वह एक अफसोसजनक उदासी भी भर गया था ।

विदाई के शब्द थे- "आपको मैंने बहुत तरसाया था न । औरत की मजबूरी आप नहीं समझते इसीलिए रूठ जाते थे । आप क्या समझते हैं ? मेरे अंदर भी वही चाहत, वही आग, वही प्यास, तृप्ति की वही कामना थी । आपकी तड़प मुझे भी तड़पा कर रख देती थी ।"

वनमाला की आंखों से उमड़ते आंसुओं ने उसके स्वर को अवरुद्ध कर दिया था । रुंधे गले से उसने उस बेला के अंतिम शब्द कहे- "आज मैंने अपना सब कुछ आपको सौंप दिया है । आपको भारमुक्त करते आज मैंने भी मजबूरियों का सारा भार खत्म कर डाली है । आज हम दोनों तृप्त हुए । इस अवस्था में आकर अब तक

बचती, वनमाला आपसे बंध चली है । स्त्री याद रखती है, पुरुष तृप्त होकर भूल जाता है । देखूं आप मुझे याद रखते हैं या नहीं ।"

यह कैसी मजबूरी थी कि वनमाला से मिलन की चिर-इच्छित बेला ने मिलने की प्यास बुझाकर प्यास की आग और भड़का दी थी । मैं सोच रहा था-" क्या वनमाला के साथ मेरा मिलन यूं फिर कभी होगा **?"**

दरवाजे से बाहर निकलती सड़क तक वह मुझे छोड़ने आई । श ाम का धुंधलका हो चला था । वृक्ष के नीचे अंधेरा गहराया हुआ था । मुझे बिदा करती वनमाला की चाहत से भरी आंखें मेरी आंखों में झांक रही थी । वे भर आई थीं । आंसू के दो बूंदें गालों पर ढुलक पड़ी थीं ।

मैं तृप्त था मैं अतृप्त था. मेरी आँखें उसके चहरे में डूबी मुग्ध हैं . बाहर आँगन में उसके रंग-बिरंगे फूलों की छटा के साथ उसकी वाटिका की हरीतिमा वासंती धूप-छाहीं छटा में मनमोहक लग रही है. उस तरह सलाजता में ठिठकी वनमाला में भी मुझे वही छटा नज़र आ रही है. आँखों,पलकों,भौहों,होठों, गालों,लटों,नासिका - सब पर टिकती मेरी आँखें वनमाला को लील रही हैं. मुझे याद आ रहा है - “सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमा:”.

कालोनी की आठवीं सड़क :
ठंड की गुनगुनी धूप का मौसम और दोपहर बाद का समय

उस दिन प्रियहरि लौट तो आया, लेकिन मन उसका वनमाला की कैद में ही रहा आया था । वह दिन-रात बेचैन रहता कि कैसे फिर वनमाला से उसका वैसा ही मिलन हो **?** कैसे उससे मिलने की तरकीब वह करे **?**, लेकिन सामाजिक मर्यादाएं, संकोच, उसके घर की पीड़ाएं, वनमाला के घर वाले का खयाल, उसके दूर के उस नए कालेज में जाने लौटने और मिलने का माकूल समय-ये सब के सब प्रियहरि का मन बांध देते थे । बहुत सोचकर उसने एक तरकीब निकाल ही ली । प्रियहरि को मालूम हुआ कि वनमाला की कालोनी की आठवीं सड़क में उसके एक परिचित गजानन रहते थे । उसने सोचा कि सहपरिवार गजानन के यहां जाने के बहाने वनमाला के यहां भी पहुंचा जा सकता है। इसे आप बेशर्म, दीवानगी की हद कह सकते हैं कि प्रियहरि ने वैसा किया भी। एक-सवा महीने के अंदर ही छुट्टी के किसी रोज अपने इरादे को पारिवारिक जामा पहनाते उसने सपत्नीक वनमाला के दरवाजे पर दस्तक दी ।

वह दिसम्बर का महीना था । ठंड की गुनगुनी धूप का मौसम और दोपहर बाद का समय । वनमाला प्रकट हुई । खोले गए किवाड़ के पल्लों पर टिकी उसकी कलाइयां और उनींदी आंखें लिए थके चेहरे की यादें प्रियहरि की आंखों में अब भी अटकी हैं । उसकी ही तरह सादगी में लापरवाही से पुराना स्लीपिंग गाउन उसके उन जिस्मों को ढके था जिनके पार झांकती प्रियहरि की पारदर्शी आंखें अपने तन को उससे चिपकाए रखना चाहती थी । उन ढलती गोलाईयों को उसने देखा जिन्हें मांज-मांज कर वह सख्ती और ताजगी से भर देना चाहता था । उसकी यही साधारणता मोहक थी। वह उस पुल का काम करती थी, जिससे दोनों के मन एक-दूसरे के साथ जुड़े थे । उस रोज घर बाधा रहित था । वनमाला और प्रियहरि की आंखें और दिल उनके बीच यादों भरे अतीत को देखते मौन संवाद कर रहे थे । लेकिन तब बीच में प्रियहरि की पत्नी थी, जिसकी मौजूदगी में व्यक्तिगत संभव नहीं था ।

कुछ ही देर में उनके बीच एक और मेहमान आ टपका था। वह उसकी पारिवारिक मित्र थी । पढ़ी-लिखी, जर्मन भाषा की अनुवादक एक ब्राम्हणी सम-वयस्का जो वनमाला के पति के बंगाली मित्र के साथ प्यार में ब्याह रचा वनमाला की मनःस्थिति लिए दिन काटती दिखाई पड़ रही थी । शादीशुदा जिंदगी की ढर्रे भरी नीरसता को उसकी बातों के अंदाज से प्रियहरि ने पढ़ लिया। नवागंतुका रमणी ने जिज्ञासा भरी दिलचस्पी से

उन सब को देखा था और फिर बातों के सिलसिले चल पड़े थे । वनमाला को देखने की इच्छा उस दिन पूरी तो जरूर हुई लेकिन इस पूरी इच्छा ने दिलों की उस आस को अधूरा छोड़ दिया, उस प्यास को और अधिक बढ़ा दिया जिसकी तृप्ति के लिए प्रियहरि का मन छटपटा रहा था ।

भले ही वनमाला प्रियहरि की आंखों से ओझल हो चली थी। प्रियहरि के मन पर कब्जा उसी का रहा आया। घर-बाहर, सोते-जागते उसे वनमाला का प्यार, उसकी विवशता, उसका पशोपेश सालते रहे। हर पल बेकरारी में बीतता। कभी यह इच्छा होती कि भाग कर वह वनमाला के नए कालेज जा पहुंचे और कभी मन करता कि वनमाला के घर चला जाए। जी करता कि वनमाला से जा लिपटे और कहे कि प्रिये और परीक्षा ने लो। इस जन्म में अगर मिलना इस कदर मुश्किल है तो मेरे प्राण ले लो। तुम्हारी गोद में सर रखकर, तुम्हारे सांवले मुखड़े को निहारते लाचार उदासी में डूबी आंखों में आंखे डाले अपने प्यार में अंतिम स्वास लेना भी मेरे लिए परममुक्ति का क्षण होगा।

वे दिन ही ऐसे थे। चाहे वह बनारस विश्वविद्यालय में महीने भर रिसर्च के काम से रहा आया हो चाहे अपने संस्थान में सर खपाता बैठा होए या कहीं और व्यस्तताओं में रहा हो हर वक्त प्रियहरि को वनमाला की याद सताती रही थी। उन दिनों न जाने क्या-क्या और कितना वनमाला की स्मृतियों में उसने लिख डाला था।

साल भर बाद जब वनमाला फिर लौटकर आई तब प्रियहरि ने जुदाई के उन दिनों के एक-एक पल की गाथा उससे कह डाली थी। प्रियहरि के प्रेम में अभिभूत वनमाला ने वह सब सुना था। उसे अखबार के बहाने भेजे प्रियहरि के संदेश याद थे।

'हाय रे' की अदा में वनमाला प्रियहरि की इस दीवानगी से सराबोर कहती - "आप भी तो बस ....।" बिछड़ने का दर्द और पुर्नमिलन की दीवानगी ने एक बार फिर वनमाला और प्रियहरि के ताल्लुकातों में बहार लौटा दी थी।

औरत भला क्यों चाहेगी
कि उसका चहेता उसके किसी और रकीब के दर का ठिकाना उससे पूछे ?

वे दिन नवरात्रि और दशहरे की छुट्टियों के थे । दिनचर्या से हटे इन दिनों में उस रोमांस का अभाव खटक रहा था, जो प्रियहरि को वनमाला के साहचर्य से मिलता था । वनमाला की याद बेतरह सताए जाती, लेकिन प्रियहरि पर अ-मिलन के ये पाँच-छः रोज ही भारी पड़ रहे थे । तीन-चार दिन बीतते न बीतते घर के उबाऊ अकेलेपन को भगाने प्रियहरि ने तरकीब निकाली । सामाजिक मेल-मुलाकात के बहाने अपनी बीबी को स्कूटर में बिठा वह पास ही के उस नगर को जाने वाली सड़क पर निकल गया जहां दूर-दूर बसे अंतरालों में उन ललनाओं का बसेरा था, जो उसका अतीत थीं । हालांकि सब से मिलने की आड़ में उसकी खास कसक उस वनमाला से मिलने की थी, जिसके यहां जाना संदेह को जन्म देता था । पहला डेरा सुंदरी जीनत के यहां पड़ा था, जो जहां भी होती अपनी सुंदरता और सलीके को अपनी जगह पर भी रच देती थी । उसकी सुंदर अभिरुचियों, कमनीयता और कोमलता की छाप उस घर में भी थी, जिसे विवाह के बाद उसने बसाया था। उस अंतिम छोर से लौटते एक पुराने सज्जन अधिकारी से मिलता वह विराग के यहां पहुंचा था । नीलांजना के घर का उसे ठीक-ठीक अनुमान न था । सीधी-सादी, विनयशीला नीलांजना को हालांकि प्रियहरि की बीबी ने एक-दो बार देखा था, वह उसे पसंद करती थी । जीनत और वनमाला से संबंधों और प्रियहरि के लगाव से वह परिचित

थी । संबंधों के दौर में जब भी अपनी बीबी के संस्कारहीन विचित्र स्वभाव से बेरुख प्रियहरि अन्य मनस्क और उदास होता, जब भी प्रियाओं से बातचीत या लगाव के लक्षण या प्रमाण उसकी बीबी टोहती, अचानक उसमें एक गुनगुनाती गायिका प्रकट हो जाती । 'दीदी तेरा देवर दीवाना, हाय राम चिड़ियों को डाले दाना' या फिर 'भूला नहीं देना जी, भूला नहीं देना, जमाना खराब है, दगा नहीं देना' की गले में भी फंसी बेसुरी टेर से प्रियहरि वैसे मौकों पर बीबी की ईर्ष्या, उसके संदेह और तानों को खूब पढ़ सकता था ।

विराग के यहां से लौटते शाम ढल रही थी । चित्त में नीलांजना भी थी और वनमाला भी । वनमाला की राह पर संकोच में पड़ता भी वह खिंच चला था । उसका घर भी प्रियहरि के अपने घर की तरह अस्त-व्यस्त और झंझटों की छाया से घिरा हुआ करता था । प्रियहरि की बीबी के मन का गुबार जैसे प्रियहरि के मन तक धंसता समूचे वातारवण को खिझा जाता था, वैसे ही वनमाला के घर भी अजीब तरह के पशोपेश और संकोच की छाया उसकी अस्त-व्यस्तता में पसरी होती थी । बंगालियों के पूजा-पर्व का वह एक दिन भी वैसा ही था । नीम-अंधेरे में पति-पत्नी के अनमेल से उपजा उबाऊ उल्लासहीनता का वातावरण वहां प्रियहरि और उसकी पत्नी का स्वागत कर रहा था । आधी खुशी और आधे गम की मुस्कानें वहां थीं । जैसे उनके पहुंचने ने वनमाला और उसके पति को रोक लिया हो, वे संकोच में साथ बैठे ।

रसगुल्ले और नमकीन 'ना-ना' करते भी वे बाजार से ले आए गए थे । बीबी की उपस्थिति में सब कुछ पढ़ती भी आंखें उस सब को जुबान नहीं दे पा रही थी, जो प्रियहरि के दिल में था । अपने मिस्टर की छाया में वनमाला की हालत भी वैसी ही थी । औपचारिक बातें ही हुईं, सिवाय उन संवादों के जो प्रियहरि की बीबी और वनमाला के पतिदेव की मौजूदगी के बावजूद और उसकी आड़ में वनमाला और प्रियहरि के बीच एक-दूसरे की तारीफ में चले । वनमाला ऐसे उन पलों में खुश हुई जिनमें न जाने प्रियहरि की बीबी और रकीब के मनों में क्या चल रहा होगा । उन पलों में जैसे वे दोनों बातों में शरीक होकर भी अनुपस्थित थे ।

चलते-चलते प्रियहरि की बीबी बोली- "नीलांजना के घर भी हो आते ना । यहीं-कहीं तो होगा ।" प्रियहरि ने वनमाला की ओर देखा । उससे कहा- "चलिए न आप भी साथ । हम लोगों ने तो घर देखा नहीं है ।"
वनमाला के कानों के लिए नीलांजना का नाम ज़हर था ।

वनमाला का मूड गड़बड़ा गया था । उसने तुरंत ने टाला- "उसका घर तो बहुत दूर है । हम लोगों को भी ढूंढ़ना पड़ेगा । मैं तो वहां कभी गई नहीं । आप लोग चाहें तो हो आइए ।"

औरत भला क्यों चाहेगी कि उसका चहेता उसके किसी और रकीब के दर का ठिकाना उससे पूछे ? प्रियहरि बुद्धू था । सहज मन से वह वनमाला से तब पूछ तो गया था, लेकिन बाद में इस भूल का अहसास उसे हुआ कि वनमाला खुद उसे कितना और किस तरह चाहती थी यह वनमाला ही जाने, लेकिन यह तय था कि अपने चाहने वाले को किसी गैर की झोली में डालने वह तैयार न थी। प्रियहरि ने गौर किया तो पाया कि उसके मुआमले में सच भी वही था । उसकी प्रेमिका उसके घर आए और उसके रकीब का ठिकाना पूछती मिलने चली जाए - क्या प्रियहरि को वह भाता ? उस रोज नीलांजना रूट से बाहर हो गई थी, लेकिन इस चर्चा का जिक्र बाद में नीलांजना से प्रियहरि कर बैठा था । उधर वनमाला थी कि उस प्रसंग के बाद नीलांजना और प्रियहरि को साथ पा अपने आपको नाराज और प्रियहरि से कटी दिखने उतारू हो गई थी ।

घर बनाम मकान

मेरे खुदा मुझे इतना तो मोतबर कर दे
मैं जिस मकान में रहता हूँ उसको घर कर दे - इफ्तिखार आरिफ

आदमी सारी दुनिया को जीत सकता है अपने घर को नहीं

Marriage is a romance in which the Hero dies in the first chapter. - Laurence J Peter

वनमाला घर में त्रस्त थी और प्रियहरि घर से बेजार। वनमाला को प्रियहरि हमेशा उसके अंदर छिपी प्रतीभा और गुणों की तारीफ करता प्रोत्साहित करता था। लिखने , रचने, पी.एच.डी. करने, संगीत सीखने कहता था। एक से एक योजनाएं प्रियहरि बनाता था लेकिन आंकाक्षा में उन सबको स्वप्नों की तरह समेटे वह कहा करती थी कि आप तो यह सब कहते है , लेकिन मेरे मिस्टर नहीं चाहते कि मैं कुछ करूं वे तो थोड़ी सी देर हो जाने पर जवाब-तलब करते है कि देर क्यों हुई ? वह प्रियहरि से कहती कि आप मेरे लिए व्यर्थ सोचते हैं। मैं पी.-एच.डी. नहीं कर सकती। मेरे मिस्टर को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं। मुझे लेकर हमेशा वे शक करते है। उनका बस चले तो कह दें कि घर से बाहर ही न निकलो। वह कह रही थी - "मुझे कितनी तकलीफें है यह मैं जानती हूं। आप क्या समझते है ? आप जब मेरी तारीफ करते है तो क्या उन्हें अच्छा लगता होगा ? आपका खयाल गलत है आप के मुंह से मेरी तारीफ उन्हें बुरी लगती है। बंद कर दीजिए सोचना मेरे बारे में मैं कुछ नहीं कर सकती।

इधर प्रियहरि का हाल भी कुछ वैसा ही था। अपनी अर्धांगिनी से उसके लिए कोई प्रेरणा नहीं थी। दोनों के व्यक्तित्व, रुचियां और संस्कार जमीन और आसमान की तरह की दूरी के थे। प्रियहरि अक्सर सोचता उलझकर रह जाता कि वह महज संयोग था या नियति का कर्ज जिसे चुकाने वह इस स्त्री से जुड़ा था। इस तरह वनमाला और प्रियहरि का मिलन त्रास और बेजारी के दो दिलों का मिलन था। प्रियहरि वनमाला में अपनी राहत ढूढंता था और वनमाला प्रियहरि में अपनी आकांक्षों के स्वप्न देखती तरसती थी। प्रियहरि अक्सर सोचा करता कि स्वप्न उसने भी घर बनाने के ही कभी देखे थे , लेकिन वे महज चिन्ताओं की उदास चहारदीवारी में कैद होकर रह गए थे।

किस्मत का लेखा भी अजीब होता है। चाहते आप कुछ और हैं और होता कुछ और है। न जाने कितनी जगह भटक कर प्रियहरि ने कितनी लड़कियां देखी थीं लेकिन जाकर टकराया वह सोमा से, जो उसकी पत्नी बनी। जल्द ही प्रियहरि को यह आभास हो गया था कि सुंदर शरीर में वह एक प्राणहीन मन थी। निबाहने के तब भी बहुत प्रयास उसने किये लेकिन वह असफल रहा। घर और परिवार के उसके सारे सपने चकनाचूर हो चले थे। ज़िन्दगी उसके लिए यह अहसास बनकर रही आई कि वह अजनबियों के बीच एक ऐसे मकान का कैदी है, जिसने उसे केवल अपना कर्ज उतारने को बंधक बना कर रखा गया है। आदमी सारी दुनिया को जीत सकता है लेकिन अपने घर को कभी नहीं।

विवाह के बाद थोड़े दिनों में ही यह उजागर हो गया था कि सोमा के पास महज कहने को स्नातकोत्तर की एक डिग्री तो है, मगर तीसरे दर्जे की वह डिग्री भी बराए नाम ही है। अपने विषय का न तो रत्ती भर ज्ञान उसे था ,और न उसमें उसकी कोई दिलचस्पी थी। आड़े-टेढ़े अक्षरों के साथ अपने दस्तखत भी वह प्रयत्नपूर्वक ही बना पाती थी। प्रियहरि का खयाल था कि सामान्य पृष्ठभूमि की घरेलू लड़की होने के लिहाज से वह घर को सजाने-संवारने में दिलचस्पी दिखाएगी, लेकिन वह भ्रम भी टूट चला था। निहायत बोझ की तरह घर की दिनचर्या के सामान्य काम सोमा निबटाती थी, और वैसा करते भी चेहरे पर वह खीझ से भरी होती।

प्रियहरि भी बेहद संघर्षों के बीच पला था। घर में झाड़ू लगाने, चूल्हा जलाने, रोज लालटेन की कांच को राख से मांजकर चमकाने, कपड़े धोने और खाना बनाने, मिट्टी खोदने और कुल्हाड़ी चलाते लकड़ी चीरने तक के संस्कार उसे बचपन से ही मिले थे। उसके लिये ये संस्कार अध्ययन औरशिक्षाके संस्कारों के अंग जैसे ही थे। उसे संघर्षों से भरा वह बचपन याद आता जब आठ-नौ साल की उमर से ही घर से बाहर रहते आश्रम की व्यवस्था में अपने हम-उम्र बच्चों के साथ पढ़ाई करते उसे नियत सारणी के दिनों में अपनी टीम के साथ दस-बारह साथियों की रसोई संभालनी होती। उसे आश्रम की हरे-भरे वृक्षों, पादपों और लताओं से सजी वह विषाल वाटिका याद आती जिसे संवारने में अपने सहपाठियों के साथ वह घंटों मिहनत किया करता था। उसे इन सब में भी उतना ही आनंद मिलता जितना उस नन्ही उमर में अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं और साहित्य के अनुपम ग्रन्थों को पढ़ने और कपड़े की गेंद को हाकी या फुटबाल की गेंद बनाकर अपने साथियों के साथ मैच खेलने में

मिलता था। तब अपना सामान लादे मन की मौज में सात-आठ मील का रास्ता तय करके आसपास के मौसमी मेलों या वनांचलों में पिकनिक मनाना उसके लिये मानों आमोद का भव्य आयोजन हुआ करता था। सामाजिक आयोजनों, सांस्कृतिक परंपराओं और देश-दुनिया की जटिलताओं को गहराई तक जाकर समझने में प्रियहरि की रुचि थी। सगे-संबंधियों, बुजुर्गों और विद्वानों का आदर करना उसके पारिवारिक संस्कारों में था। सामाजिक-पारिवारिक आयोजनों में उसके घर के सदस्य सश्रम सहभागी होते और इसके लिये उन्हेंप्रशंसाऔर सम्मान के साथ याद किया जाता था।

अपने सांस्कारिक अनुभवों पर प्रियहरि को गर्व था। वह उसका स्वाभिमान था। सुविधा-संपन्नता की संस्कृति से उसे बिचक नहीं थी, लेकिन श्रम और संघर्ष की संस्कृति के प्रति कथित भद्र-वर्ग की उपेक्षा और अलगाव की मनोवृत्ति उसे नापसंद थी। शायद यही कारण था कि वैसी संस्कृति के अभ्यस्त और पोषक सहचर और सहचरियों के निकट आने पर भी उनसे एक मानसिक दूरी उसमें प्राय: बनी रही। अपने इन्हीं संस्कारों में वह अपने घर को भी देखने के सपने देखता था।

सोचने और होने में बहुत फर्क होता है। बहुत जल्द उसने जान लिया कि सोमा घर के महज दैनन्दिन काम बसकिसी तरह निबटा जाने और शयन-सुख में मशीनकी तरह बिछाई जा सकने वाली मशीन जितनी ही अच्छी हो सकती थी। लगाव या अभिरूचि जैसी कोई चीज़ उसके स्वभाव में ही नहीं थी। यह मालूम हुआ कि तीसरे दर्जे की उसकी डिग्री थी और कागज-कलम से उसका नाता बस किसी तरह उस डिग्री को हासिल करने तक ही था। अपनी अनुरूपता में ढालने प्रियहरि ने उसे उत्साहित करना चाहा था कि वह आगे और पढ़ ले और विदुषी बने, लेकिन जबाब था कि वैसा करना अब उसके लिये संभव नहीं। उसे उसमें न रूचि है और न उसका कोई काम। जैसा साधारण लड़कियां अमूमन हुआ करती है शादी ही मकसद था। मकसद पूरा हो चला था और अब उसे करना ही क्या था? तीन के परिवार में पति और पत्नी के बीच प्रियहरि की मां बूढ़ी सदस्या थी। वह भोर हुए उठ जाती थी और दिन भर कुछ न कुछ करती अपने को व्यस्त और घर को व्यवस्थित रखा करती थी।

सोमा की जुबान उसके घुन्नेपन के कारण हिलने में आलस करती थी। दिन भर में प्रियहरि से ताल्लुकात में जुबान से रोबोट की तरह यंत्रचालित संक्षिप्त शब्दों का एक कंजूस समूह निकलता और संबंध की बस वही निशानीहुआ करती थी। प्रियहरि की अम्मा उस रोबो के लिए आरंभ से अवांछित तीसरा जीव रही आई। प्रियहरि के लिये यदि उसे शब्द होते -" खाना निकाल दूं क्या ? ", तो अम्मा के मुआमले में यह होता कि प्रियहरि के खा-चुकने के बाद एक संक्षिप्त सी थाली नि:शब्द लाकर सामने रख दी जाती थी। न तो दोबारा उससे जरूरत पूछने सोमा का सौजन्य होता और न तो मां की हिम्मत होती कि वह सोमा से कह सके। यह देखते प्रियहरि को बुरा लगता। वह चाहता था कि सोमा आत्मीयता से पेशआये, लेकिन जवाब में घूरती हुई उसकी उपेक्षा-भरी दृष्टि से वह टकराता। सोमा से कुछ कहना खीझ भरी बड़बड़ाहट को दावत देना होता था। गलती से कभी माँ को और ज़रूरत के लिए पूछ लेने की संकोच-भरी सलाह पत्नी को देने का दुस्साहस भी प्रियहरि महँगा पड़ता था। चीखती हुई कड़वी जुबान फ़ौरन उलटकर हमला करती -

" तुम चुपचाप अपनी थाली देखो। तुम्हारे कहे बिना वे भूखी मारी जा रही हैं क्या ?"

व्यवस्था पर सोमा का ऐसा आधिपत्य हो गया था कि सास की हैसियत बेचारी की हो चली थी। सोमा उससे यूं पेशआती जैसे दयावश ही प्रियहरि के यहां वह आश्रित रही आई हो। प्रियहरि को पहले वाकये से ही इसका आभास हो चला था कि सोमा पर लगाम लगाना कलह को दावत देना था।

वह दिन आज भी उसकी स्मृतियों में जीवित है। दोपहर बाद के करीब चार बजे का समय रहा होगा। मां ने प्रियहरि से इच्छा जताई कि एक कप चाय मिल जाती तो अच्छा था। मां चाहती तो खुद भी चाय बना सकती थी लेकिन बहू का व्यवहार उसे रोकता था। अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी भी चीज में दूसरे का हाथ लगाना पत्नी को पसंद न था। प्रियहरि ने सोमा को जगाया कि चार बज चले है। अब वह उठ जाए और चाय बना ले। बजाय वैसा करने के सोमा ने नाराजगी से बड़बड़ाना शुरूकर दिया था -

" इन माँ-बेटे के कारण सोना भी मुश्किल हो गया है। अभी तो कुछ देर पहले खाना खाया है और इतनी जल्दी चाय की पड़ गई। "

प्रियहरि ने डांटा तो वह लड़ने पर उतारू हो गई।

" क्या समझ रख है तुम मां-बेटे ने कि मुझे दबा लोगे ? भूल में मत रहना। बताए देती हूं कि मुझे कम न समझना। मुझसे उलझोगे तो ठीक न होगा। "

प्रियहरि के भाई, बहन, या रिश्तेदारकभी भूले-भटके आ जाते या बाहर कहीं मिल जाते तो वह उन्हें चाहते हुए भी अपने यहां बुलाने से कतराता। सोमा में इतना भी सौजन्य न था कि वह आत्मीयता से उनसे पेशआती । अपनापे का आभास तो दूर रहा यदि प्रियहरि उनके लिये चाय-वाय का इंतजाम करने की बात भी करता तो अंदर जाकर उसपर मुह बनाती वह तुरन्त अपनी खीझ उतारती -

" तुम क्यों फालतू टोकते रहते हो ? तुम अपना काम किया करो। मेरा काम मैं जानती हूं। अभी-अभी तो आए हैं। बैठने दो अभी। तुमको क्या जरूरत है बीच में आने की । तुम चुपचाप मुंह बंद किये बैठा करो। मैं जानती हूँ कि मुझको क्या करना है ? हमको भी क्या उस तरह कोई पूछता है जैसा तुम उनके लिए मरे जाते हो ? "

परिवार में एक-दूसरे के यहां आने-जाने, मिलने-बैठने, खाने-खिलाने की बात निकलती तो सुनने से पहले ही सोमा का मुंह बनाना शुरूहो जाता -

" रहने दो। दूसरों के पीछे हमें पैसे खर्च करने की जरूरत क्या है ? मेरे भरोसे मत रहना। करेगा कौन वह सब ?"

घर यानी ईंट-गारे की ऐसी प्रयोगशाला जहां परिणाम की महज बेउम्मीदी थी। बीबी महज ऐसा रोबोट, जिसमें अपनेपन और भवनात्मक लगाव की कल्पना भी व्यर्थ थी। मकान उससे घर तो बनता न था लेकिन घर का भ्रम देते उसे ढके रखने का यह रोबोट एक दुनियाबी यंत्र था। ज्यादा से ज्यादा यह था कि अपना मियादी बुखार उतारने बेमन फैली टांगों के बीच की कसरत के लिये जब-तब उसे काम में लाया जा सकता था। प्रियहरि के पास इसके अलावा कोई चारा न था कि वह इस जकड़नसे भागता फिरे। उसके लिये घर का सुख अब उन संबंधों और लम्हों में ही था जहां उसके समान ही भागती सपनीली आंखें प्रियहरि में अपनापा देखती टकरा जाया करती थीं।

को महँगा पड़ता था। चीखती हुई कड़वी जुबान फ़ौरन उलटकर हमला करती -

" तुम चुपचाप अपनी थाली देखो। तुम्हारे कहे बिना वे भूखी मारी जा रही हैं क्या ?"

व्यवस्था पर सोमा का ऐसा आधिपत्य हो गया था कि सास की हैसियत बेचारी की हो चली थी। सोमा उससे यूं पेशआती जैसे दयावश ही प्रियहरि के यहां वह आश्रित रही आई हो। प्रियहरि को पहले वाकये से ही इसका आभास हो चला था कि सोमा पर लगाम लगाना कलह को दावत देना था।

वह दिन आज भी उसकी स्मृतियों में जीवित है। दोपहर बाद के करीब चार बजे का समय रहा होगा। मां ने प्रियहरि से इच्छा जताई कि एक कप चाय मिल जाती तो अच्छा था। मां चाहती तो खुद भी चाय बना सकती थी लेकिन बहू का व्यवहार उसे रोकता था। अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी भी चीज में दूसरे का हाथ लगाना पत्नी को पसंद न था। प्रियहरि ने सोमा को जगाया कि चार बज चले है। अब वह उठ जाए और चाय बना ले। बजाय वैसा करने के सोमा ने नाराजगी से बड़बड़ाना शुरूकर दिया था -

" इन माँ-बेटे के कारण सोना भी मुश्किल हो गया है। अभी तो कुछ देर पहले खाना खाया है और इतनी जल्दी चाय की पड़ गई। "

प्रियहरि ने डांटा तो वह लड़ने पर उतारू हो गई।

" क्या समझ रख है तुम मां-बेटे ने कि मुझे दबा लोगे ? भूल में मत रहना। बताए देती हूं कि मुझे कम न समझना। मुझसे उलझोगे तो ठीक न होगा। "

प्रियहरि के भाई, बहन, या रिश्तेदारकभी भूले-भटके आ जाते या बाहर कहीं मिल जाते तो वह उन्हें चाहते हुए भी अपने यहां बुलाने से कतराता। सोमा में इतना भी सौजन्य न था कि वह आत्मीयता से उनसे पेशआती

। अपनापे का आभास तो दूर रहा यदि प्रियहरि उनके लिये चाय-वाय का इंतजाम करने की बात भी करता तो अंदर जाकर उसपर मुह बनाती वह तुरन्त अपनी खीझ उतारती -

“ तुम क्यों फालतू टोकते रहते हो **?** तुम अपना काम किया करो। मेरा काम मैं जानती हूं। अभी-अभी तो आए हैं। बैठने दो अभी। तुमको क्या जरूरत है बीच में आने की । तुम चुपचाप मुंह बंद किये बैठा करो। मैं जानती हूँ कि मुझको क्या करना है ? हमको भी क्या उस तरह कोई पूछता है जैसा तुम उनके लिए मरे जाते हो **? ”**

परिवार में एक-दूसरे के यहां आने-जाने, मिलने-बैठने, खाने-खिलाने की बात निकलती तो सुनने से पहले ही सोमा का मुंह बनाना शुरूहो जाता -

” रहने दो। दूसरों के पीछे हमें पैसे खर्च करने की जरूरत क्या है ? मेरे भरोसे मत रहना। करेगा कौन वह सब ?”

घर यानी ईंट-गारे की ऐसी प्रयोगशाला जहां परिणाम की महज बेउम्मीदी थी। बीबी महज ऐसा रोबोट, जिसमें अपनेपन और भवनात्मक लगाव की कल्पना भी व्यर्थ थी। मकान उससे घर तो बनता न था लेकिन घर का भ्रम देते उसे ढके रखने का यह रोबोट एक दुनियाबी यंत्र था। ज्यादा से ज्यादा यह था कि अपना मियादी बुखार उतारने बेमन फैली टांगों के बीच की कसरत के लिये जब-तब उसे काम में लाया जा सकता था। प्रियहरि के पास इसके अलावा कोई चारा न था कि वह इस जकड़नसे भागता फिरे। उसके लिये घर का सुख अब उन संबंधों और लम्हों में ही था जहां उसके समान ही भागती सपनीली आंखें प्रियहरि में अपनापा देखती टकरा जाया करती थीं।

सारी चिट्ठियां टुकड़े-टुकड़े जो टूटे हुए दिल की थीं

"लाइए, मेरे लिए जो भी लाए है, दे दीजिए। मैं बाद में देख लूंगी।
अंदर मुझे देख रहे होगें। सोचेंगे कि इतनी देर वह बाहर क्या कर रही है" :

पश्चिम बंगाल के एक महत्वपूर्ण सम्मेलन में प्रियहरि को कलकत्ता जाना था। वनमाला उसके लिए आत्मीय, घर जैसी, घरनी जैसी थी। दोनों बात करते तो यूं सहज घुलकर जैसे बरसों का नाता हो। ऐसी अधिकार-भावना परस्पर थी कि जैसे पति और पत्नी के बीच हो। प्रियहरि ने वनमाला से पूछा था - "तुम्हारे लिए क्या लाना है **?"**

अगर मिल जाए तो खूबसूरत सा एक पर्स ले आने की बात वनमाला ने कही थी। सम्मेलन की बैठकों, जलसों के बाद बाजार घूम-घामकर चौरंगी से आगे न्यू मार्केट को छानते प्रियहरि ने वैसा ही एक पर्स अपनी प्रिया वनमाला के लिए खरीद लिया। कलकत्ते में भी दिन-रात हर पल दिल को चैन देने वाली वनमाला की मुखड़े की छवि, उसकी यादें प्रियहरि के साथ रहतीं। उन दिनों वहां विश्व पुस्तक मेला भी लगा था, लेकिन वहां जाने का मौका देखते खबर आई कि पंडालों में आग लगने की दुर्घटना घट गई थी।

प्रियहरि लौटा तो बेसब्री से वनमाला से मुलाकात की प्रतीक्षा में रहा। आमना-सामना होता भी तो ऐसी चहल-पहल रहती कि आलमारी में रखा बड़ा पर्स सब के रहते निकालना ही संभव न था। एक-दो रोज बाद एकांत के क्षणों में वनमाला से प्रियहरि की आंखें चार हुई। प्रियहरि ने बैग निकाला और वनमाला के सामने रख दिया।

' कैसा है ?' - प्रियहरि पूछ रहा था।

'खूबसूरत लग रहा है। खोल कर बताइए न' - वनमाला ने जवाब दिया।

प्रियहरि ने खोलने की कोशिश की फिर कहा कि मुझसे बनता नहीं, समझ नहीं आ रहा है, तुम ही देखो। वनमाला ने उसे खोला, अंदर-बाहर देखा और खुश हो गई बोली -

"सचमुच बहुत खुबसूरत है। धन्यवाद, आप मेरा कितना खयाल रखते है। मेरी इतनी फिक्र तो मेरे मिस्टर भी नहीं करते।"

प्रियहरि ने वनमाला को बताया कि किस तरह कलकत्ते में भी उसे आंखों में बसाए दिन-रात वह याद करता रहा था। इससे पहले कि उन दोनों के बीच कोई आता, प्रियहरि की हिदायत के मुताबिक अंदर का सारा कागज-पत्तर फेंक बैग को मोड़कर वनमाला ने अपने पुराने बैग में ठूंस दिया। फिर अचानक पशोपेश भरी आंखों से वह बोली -"ले तो जा रही हूं। मगर देखें ? मेरे मिस्टर पूछेंगे तो मैं क्या जवाब दूंगी ?" प्रियहरि ने सुझाया - "कह देना कि तुमने पैसे दिये थे, मंगाया तो मैं ले आया।"

चार दिन बाद जब फिर एकांत में दोनों आमने-सामने हुए तो प्रियहरि की प्रिया ने चुपचाप वही पर्स अपने कपबोर्ड से निकाला और उसके सामने रख दिया। वनमाला का चेहरा विषाद से मुरझाया हुआ था और आंखों में उदासी थी।

वह बोली - 'इसे आप रख लीजिए घर में काम आ जाएगा। मेरे मिस्टर को इस पर आपत्ति है कि मैं इसे रखूं।"

प्रियहरि ने वनमाला की मायूस आंखों में झांका और अपमान की उस पीड़ा को पढ़ लिया जो उसे घर से मिली थी। वनमाला ने कहा होगा तो मिस्टर ने संदेह किया होगा और फिर जमकर तकरार हुई होगी। प्रियहरि को बड़ा धक्का लगा। वनमाला की उदासी के सदमे से प्रियहरि का दिल भी मायूस और उदास हो गया। दोनों के दिल टूट गये थे। उदास, नजरें झुकाए वनमाला चुपचाप चली गई थी। ऐसी दुर्घटनाओं के संयोग वनमाला के चित्त को अवसाद से भर देते थे - इस कदर कि फिर चंद रोज उसकी दिनचर्या अन्यमस्य चुप्पी और घनघोर उदासी में बीतती। उसकी आंखों में शून्य भर जाता। मौन वह सामने रहती, देखती और चली जाती जैसे प्रियहरि से उसका कोई नाता न हो।

इधर वही अवसाद प्रियहरि में और अधिक बेसब्री और बेताबी भर देता था। उसकी इच्छा होती कि वह वनमाला के नजदीक जाए, उसकी पीड़ा को समझे, उससे बातें करे, उसके चित्त को बहलाए और उसे खुश करे। यह जानते हुए भी कि वनमाला के घर जाना मुसीबतों को और बढ़ाना है, यंत्रचालित प्रियहरि का मन उसके कदमों को वनमाला की घर की राह पर मोड़ देता था। बातों के दौरान संकेतों से ही वह अनुमान लगा लेता था कि वह मौका कब होगा जब वनमाला के घर दोनों के बीच बाधा न होगी। एक सप्ताह बाद उस दोपहर जब गया तो घर में ताला पड़ा था। दूसरे दिन जाना कि वनमाला बीमार हो गयी थी। उसके मिस्टर उसे अस्पताल ले गये थे।

यूं एक सप्ताह और बीता। इस बार वनमाला के मिस्टर की रात की ड्यूटी यानी शाम छः से रात दो बजे तक की फुरसत का अनुमान लगाता प्रियहरि शाम को उसके घर जा पहुंचा। सचमुच वनमाला के पतिदेव नहीं थे। उसने दरवाजा खोला, उदास मुस्कुराहट से प्रियहरि को आंख भर निहारा और अंदर बिठाया। कोई मेहमान वहां पहले से मौजूद था। वनमाला ने ही परिचय कराया। वे उसके बड़े भाई साहब थे । इधर-उधर की बातें होती रहीं - घर की दफ्तर की, भविष्य की, उसके भाई साहब से परिचय की - लेकिन ढेर सी बातों के बावजूद वह नहीं, जो एक-दूसरे से टकराती लाचार बेताबी भरी आंखों और दिलों में छिपा था। हाय, यह कैसी लाचारी थी कि कालेज में शोधी दृष्टियों का भय हुआ करता और यहां ?- एक तो पहुंचना दुष्कर, और पहुंच भी

गये तो उसके मिस्टर के होने और खीझने की आशंका। वे न हुए तो मेहमान। वे भी नहीं तो बड़े होते बच्चे प्रियहरि और वनमाला के बीच में आ पड़ते। अन्यमनस्क वनमाला भी, अन्यमनस्क प्रियहरि भी। बातों की कोई गुंजाइश न थी।

प्रियहरि का मन मसोस रहा था कि काश अपने दिल की बाtतें वह वनमाला से कह पाता। जब-तब कनखियों से वह उसे निहार लेता। छरहरी, सांवली, निचुड़ी हुई काया और कमजोर लग रही थी। रंग उड़ा हुआ जैसी थकी हुई हो। चेहरे से चमक गायब थी। वनमाला ने साड़ी नहीं पहनी थी जो उस पर ज्यादा फबती थी। सलवार-कुर्ती भी नहीं, महज उजड़े रंग का पुराना स्लीपिंग गाउन जिसके अंदर शायद चोली ही नहीं थी। हल्का ढीला उभार प्रियहरि को दिखाई पड़ रहा था। हां, यही तो वह छबि थी जिसे वह चाहता था। उसका मन वनमाला की उपस्थिति को यूं महसूस करता जैसे वह उसकी प्रिया नहीं अपितु सदियों से साथ गुजारती उसकी घरवाली हो। प्रियहरि वनमाला के उजड़े हुए रंग पर, उसकी कमजोर काया पर भी फिदा था। उसने चाहा कि वनमाला से लिपट जाए, उसे चूमे और पूछे कि बताओ, तुम इतनी कमजोर लग रही हो ? कहे कि चिन्ता न करो, मैं आ गया हूं। वह कमजोरी बेजार दिल से सहे गये बिस्तर की हो सकती थी। कितना अच्छा होता कि खुशनुमा दिल से एक-दूसरे की चाहत के साथ उस बिस्तर पर, उस तखत पर वनमाला और प्रियहरि दोनों की कामनाएं एक-दूसरे से गुंथी मचल रही होतीं, जो उनके सामने ही वहीं बिछा था । प्रियहरि को लगा कि तब शायद वनमाला की वह कमजोरी तुरंत दूर हो जाती। वनमाला की उड़ी हुई रंगत उसी क्षण लौटकर उसके चेहरे में गुलाबी हो जाती। तब उस तरह अवसाद की गुफा से निकल प्रियहरि और उसकी प्रिया वनमाला आसमान की सैर में होते। चाहत की बेताबी में आधा घंटा बीत गया लेकिन कहीं कोई मौका न था।

प्रियहरि चलने को हुआ तो भाई को अंदर बैठा ही छोड़ वनमाला बाहर सड़क तक उसे छोड़ने आई। रात हो चली थी। बाहर बिजली की रोशनी दूर थी। उसके घर के सामने झिटपुटा अंधेरा था जो पेड़ों की घनी छाया से और भी गहरा हो गया था। प्रियहरि ने कहा -

"वनमाला, तुमसे बातें करना भी शायद भाग्य में नहीं लिखा है। तुम्हें मालूम नहीं कि तुमने मुझे कितनी पीड़ा पहुंचाई है।"

वनमाला ने दबी आवाज में कहा - "यहां ज्यादा बात करने का अवसर नहीं है। लाइए, मेरे लिए जो भी लाए है, दे दीजिए। मैं बाद में देख लूंगी। अंदर मुझे देख रहे होगें। सोचेंगे कि इतनी देर वह बाहर क्या कर रही है।"

प्रियहरि के अपने बैग में वही पर्स था। वही, जिसे मायूसी के कारण उसने काट कर पचासों टुकड़ों में बदल दिया था। ढेर सारी चिट्ठियां थी। सारी चिट्ठियां टुकड़े-टुकड़े जो टूटे हुए दिल की थीं। वनमाला का इशारा था कि वह उन्हें फुर्सत से पढ़ लेगी लेकिन प्रियहरि ने तो सारे पत्र फाड़ डाले थे। उसने वनमाला से कहा -

"अब क्या कहूं। तुमने पहले तो अस्वीकार कर दिया। मैंने भी सोचा कि अगर यह तुम्हारे लिए नहीं, तो किसी के लिए भी नहीं। वहीं टुकड़े तुम्हें सौंपने आया हूं।" प्रियहरि ने सारे टुकड़े वहीं पेड़ के नीचे छाये कचरे और पत्तियों के ढेर पर बिखेर दिए।

वनमाला बोली - "ऐसा आपने क्यों किया।" एक-दूसरे से दिलासे की दो-चार बातें हुई। वनमाला से बिदा लेकर प्रियहरि लौट चला।

बाद के दिन यूं ही गुजरते रहे। वनमाला का मूड प्रियहरि की समझ में नहीं आता था। बहुत दिनों तक वह उससे खिंचीं -खिंचीं रही। आंखों में पथराई उदासी और शायद प्रियहरि को प्रश्नित करती शिकायत। वनमाला के मिस्टर चाहे उस दिन घर पर नहीं थे तब भी प्रियहरि के वहां जाने, बैठने, मिलने की बात तो मालूम हो ही गई होगी । वनमाला के इस रवैये के पीछे आकांक्षाओं और विवशताओं के संघर्ष का त्रास रहा होगा। प्रियहरि पढ़ रहा था कि दोनों के बीच विवशताओं के साथ बने रहने का पक्ष कानूनी था। उसकी नियति तो वही प्रियतमपुरा. के सेक्टर आठ तक जाने वाली सड़क और उसकी उन्नीसवीं स्ट्रीट में ईंट-गारों से चाक-चौबंद छः-ए की दीवारें थी। प्रियहरि की चाहत वनमाला की मुसीबत थी। वह इशा रों में कह भी जाती थी - "कुछ नहीं हो

सकता। भाग्य को स्वीकार लो।" यह वही भाग्य था प्रियहरि ने चाहा था कि वह वनमाला से बातें करे लेकिन वह साफ मना कर उस एकांत से निकल भागती थी जो यदाकदा दोनों को मुहय्या होता था।

दोनों के बीच लाचारी, उदासी और बोलता हुआ अनबोलापन स्थायी रूप से बस चले थे। वनमाला खीझती, रूठती, झगड़ती, अनबोली रहती और अचानक आंखों में आंसू सारी लाचारियां तोड़ प्रियहरि के साथ, प्रियहरि के पास टूट कर बिखर जाया करती थी।

फिर भी औरत की जात में ही वनमाला भी थी

प्रियहरि को ऐसा संदेह था कि वनमाला का त्रस्त मन शायद खीझ में कभी-कभी दूसरी संगिनियों पर खुल जाता हो । ऐसा नहीं कि इन दूसरों से उसका अपनापा हो । अपनापा तो जो प्रियहरि से था वह कभी टूट न सकता था । वह खुद इसे महसूस करती, स्वीकारती थी । वह भी प्रियहरि की तरह गर्विता और एकांतिक स्वभाव की थी । कहा करती- "मैं इन सब जैसी नहीं हो सकती, इनसे मुझे नफरत है । मेरी इनसे नहीं पटती" .... वगैरह । फिर भी औरत की जात में ही वनमाला भी थी । मर्दों की तुलना में औरतों के साथ का सहारा लेना उसकी भी स्वाभाविक मजबूरी थी ।

प्रियहरि और वनमाला की निकटता इस दरम्यान लोगों की निगाहों में चढ़ गयी थी । साल बीतते जब फिर परीक्षा का दौर आया, तो जान-बूझकर इस बार वनमाला को सुबह और प्रियहरि को शाम के वक्त तैनात किया गया था ताकि इनके बीच मिलने तो क्या देखा-देखी की भी संभावना न रहे । ऐसे ही माहौल में किसी दिन वनमाला गमगीन चेहरा लिए परीक्षा की तैयारियों में अपने कागज-पत्तर लिए काम कर रही थी । उसी की तरह खिन्न प्रियहरि पास ही बैठा था । तभी कहीं से अनुराधा नमूदार हुई।

गोरी चिट्टी, सुंदर और हमेशा अपनी भव्यता के लिए जानी जाने वाली अंगरेजी की प्रवक्ता अनुराधा को वनमाला से दबी आवाज में प्रियहरि ने कहता सुना - "चलो । हम लोगों के पास बैठना । यहां अकेली मत बैठो, नहीं तो वो फिर अपनी बातें शुरू कर देंगे ।"

वनमाला अनमनी थी, लेकिन शायद उस दिन उसे प्रियहरि के साथ के एकांत की चाहत थी । यह टका सा जवाब दिया- "मुझे परीक्षाओं का अपना काम यहां करना है, मैं रुकूंगी, आप चली जाइये ।" उसने अनुराधा को चलता कर दिया था ।

प्रियहरि की हरकतों को लेकर वनमाला की चुहलनुमा चुगली पर भरोसा कर उस दिन वनमाला की मदद करने चली अनुराधा को मायूसी का सामना करना पड़ा । अनुराधा ने विस्मय भरी खीझ से वनमाला और प्रियहरि को देखा, होंठ बिचकाए और चली गयी ।

आंखों की गहरी उदासी, चेहरे के अवसाद और गहरी गंभीर अन्य-मनस्कता से वनमाला को न जाने क्यों कभी बाहर आते प्रियहरि ने नहीं देखा । उस दिन अनुराधा के जाने के बाद सहज और सामान्य बातें दोनों के बीच हुई । अपनी उदासी के बीच भी प्रियहरि के अवसाद को ठंडा करने की चाहत में ही शायद वनमाला भीड़ के छंटने की प्रतीक्षा करती उस दिन दोपहर बाद तक रुकी थी । उसकी यही अदाएं तो प्रियहरि के बिदकते मन को फिर से बाँध लेती थीं । वनमाला की बेरुखी से खिन्न प्रियहरि उससे बातें करने की कोशिश अक्सर मौके आने पर भी बंद कर देता था । तब वनमाला की उदास आंखें प्रियहरि को देखती जैसे समझाया करती थीं कि मजबूरियों को समझा करो, नाराज क्यों होते हो **?**

दो ही दिन बाद वनमाला को फिर न जाने क्या हुआ कि सामने होकर भी मुंह फुलाए उसने अपनी कुर्सी इस तरह मोड़ ली कि न प्रियहरि उसके चेहरे को देख सके और न वनमाला की नजरों के प्रियहरि की नजरों से मिलने की गुंजाइश हो । प्रियहरि और वनमाला के बीच यह एक अनिवार्य हादसा था, जो घटता ही रहता था ।

भले ही व्यक्तित्वों के अंतर, प्रियहरि की काबिलियत,वरिष्ठता और गंभीर स्वभाव के कारण कोई कहता उससे न हो, स्टॉफ में नीचे से ऊपर सब को इस बात का एहसास था कि वनमाला और प्रियहरि के बीच कुछ-कुछ है । औरतों में ही प्रियहरि के निकट की कुछ ललनाएं अपवाद थीं जो प्रियहरि से नजदीकी के कारण कभी-कभी चुपचाप चुहल से उसे छेड़ जाती थीं । इसे विचित्र संयोग कहा जाए कि पुरुषों से प्रियहरि का ताल्लुक ज्ञान-विज्ञान और गरिमा की गुरु-गंभीर चर्चाओं तक सीमित था, लेकिन ललनाएं लगभग सबकी सब प्रियहरि के निकट आकर, बातें करके उसे प्रभावित करतीं गर्व का अनुभव करती थीं । सांवली, गंभीर, एकांतिक स्वभाव की वनमाला इन सब की निगाह में नकचढ़ी और बदतमीज थी । अक्सर वनमाला से प्रियहरि की संगत पर वे सब संकेतों ही संकेतों में मलाल जाहिर करतीं और वनमाला को कोसती थीं । औरतों से प्रियहरि की बातें आत्मीय, निजी और छेड़छाड़ भरी होती थीं । उनमें अभद्रता नहीं होती थी । केवल आंखों ही आंखों के बीच हुए संवादों और एक ऐसी निजता का स्पर्श होता था कि पल भर के लिए सामने वाला सम्मोहित हो यह महसूस करता कि प्रियहरि की आंखों में उसके लिए वह चाहत है जिसकी दरकार स्त्रियां मन ही मन किया करती हैं ।

परीक्षाओं का दौर पूरी गहमा-गहमी से चल रहा था। वनमाला को देखने उससे मिलने प्रियहरि का मन मसोस कर रह जाता था । ऐसे में परीक्षाओं के बीच ही उसे किसी काम से भोपाल जाना पड़ा था । कल ही वह लौटा था । शाम की परीक्षाएं तकरीबन तीन बजे शुरूहोती थीं, लेकिन उस खास दिन प्रियहरि दो बजे से पहले ही पहुँच गया था । उसे पता लगा कि अगले दो दिन अधिकतर महिलाएं छुट्टी पर रहेंगी । प्रियहरि के सहायक अधिकारी को भी संभवतः छुट्टी पर रहना था । ऐसी हालत में शाम को निरीक्षकों की कमी होती । प्रियहरि ने ड्यूटी का चार्ट देखा और गौर किया कि वनमाला उन दो दिनों में सुबह की परीक्षाएं न होने से बिल्कुल मुक्त है । उसे सुबह के लिए सहायक अधिकारी बनाया गया । प्रियहरि ने सुझाया कि क्यों न उन दिनों वनमाला को शाम को रख दिया जाए ।

सत्यजित और भोला दादा ने एक-दूसरे की तरह अर्थ भरी निगाहों से देखा और कहा कि- वनमाला तो नहीं आ सकती, क्योंकि सुबह की ड्यूटी के बाद वह चली जा चुकी है और उसे खबर भला कौन करेगा । वे दोनों दूसरे-दूसरे विकल्प सुझाने में लगे थे और प्रियहरि उनकी टाल-मटोल पर गौर कर रहा था । प्रियहरि को तब इसका बिल्कुल अंदेशा न था कि अब तक उपेक्षा में अलग-थलग पड़ी वनमाला की खूबियाँ और उसके प्रति प्रियहरि का खुद का चाहत भरा लगाव इन सज्जन दीखते लोगों की निगाहों में भी खटकने लगा है । उसे नहीं मालूम था कि ईर्ष्या इनमें से एक की निगाह में ऐसा लालच भर रही है, जो आगे चलकर वनमाला से उसे इस तरह जुदा कर देने वाला है, ऐसी दरार पैदा करने वाला हो रहा है, जो वनमाला के साथ प्रियहरि के संबंधों, प्रियहरि की चाहत को ही ग्रसने जा रहा था ।

उन दिनों प्रियहरि के साथी नलिन जी ही अफसर की खुर्सी पर थे । उनके आने पर प्रियहरि ने उन्हें राजी कर अगली दो शामों के लिए वनमाला की ड्यूटी अपने साथ शाम के लिए दर्ज करा ली और उसके करीबी मुहल्ले के एक सहायक के हाथों वनमाला को खबर भी भिजवा दी ।

वनमाला और प्रियहरि के ताल्लुकात गहरे थे लेकिन ऐसे कि प्रियहरि को वनमाला के मूड का खयाल ही अधिक रखना होता था। इसके विपरीत वनमाला प्रियहरि के तरफ से निश्चिन्त थी कि वह तो उसका हो ही चुका है। औरत-जात होने के कारण उसकी अनेक-विध समस्याएं थी। खासकर तब जबकि प्रियहरि से लगाव वनमाला की घरू और सामाजिक जिन्दगी के लिए भारी पड़ रहा था। प्रियहरि का मन आशंका-ग्रस्त था। वनमाला से मिलते उसकी धकड़नें तेज हो जातीं। उसका मन भयभीत होता कि न जाने वनमाला की स्थिति, परिस्थिति, मनःस्थिति क्या है और उसका मूड कैसा होगा। बाधाओं के कारण इस तरह कई दिन गुजर जाते और प्रियहरि को वनमाला से आमने-सामने की अंतरंगता के मौकों के लिए तरस जाना होता था।

"बाइ गाड, मैने आप के बारे में उससे कभी कुछ नहीं कहा है ।

यहां आजकल औरतों की भी बड़ी राजनीति चल रही है ।"

पिछली रात से ही प्रियहरि को डर था कि कहीं उस तरह बुलावे की व्याख्या उल्टी न हो। वनमाला के मिजाज के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता था। प्रियहरि को आशंका हुई कि वनमाला उस पर अपना प्रभुत्व दर्शाने, नीचा दिखाने, और परेशान करने का आरोप लगाए और छुट्‌टी न ले ले । दोपहर दो पैंतालीस पर उसने वनमाला को देखा तो आश्चर्य से भरपूर उल्लास से उसका मन थिरक उठा ! वनमाला आई । बिल्कुल अच्छा मूड । बहुत दिनों के बाद मिलने की प्रच्छन्न खुशी । पहले-पहल वनमाला के संभावित मूड के बारे में प्रियहरि ने जो-जो सोच रखा था, उसे हँसते हुए उसने बताया ।

वनमाला ने हंसकर कहा- "मुझे कोई परेशानी नहीं । एक बार आना था, सो अभी आ गई । लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि नलिनजी ने ये वीक्षण की सूचना भेजी कैसे ? क्योंकि आप की शाम की पाली में ही तो बतौर अधिकार मैं आप के साथ सहायक अधीक्षक हूँ। अब आप बताइए कि सहायक अधीक्षक अपनी ही ड्‌यूटी में क्या वीक्षण करेगा? तय कीजिये?"

अब चौंकने की बारी प्रियहरि की थी । उसे यह बात मालूम नहीं थी । न कभी वनमाला ने इस वक्त उसके साथ सहायक अधिकारी की ड्‌यूटी की थी ।

उसने कहा-" अरे ! यह बात तो मुझे भी नहीं मालूम तब तो आप को यहीं रखना था । ये तो गलत बात है । आइ विल रेज़ दिस मैटर विद नलिन जी।"

प्रियहरि के शब्दों के पीछे छिपी मंशा को वनमाला ने भली-भॉति समझ लिया । वह सुबह की जगह शाम प्रियहरि के साथ रहना ही रहना चाहती थी ।

वनमाला ने कहा- "आप को मालूम नहीं ?" हंसकर ताना देती हुई वह बोली -

" मैंने तो समझा था कि आपने ही मुझे अपनी जगह से टालने के लिए कहकर सुबह की पाली में भिजवाया है । आप तीसरी पाली के अधीक्षक हैं और आपको यह बात मालूम होनी चाहिए थी । "

" अरे ठीक इसके उल्टे मैं समझता रहा कि तुमने मुझे अवाइड करने सुबह की पाली मांगी है। मैने तो समझा कि प्रशासन के निकट रहकर मुझे जलाने के लिए ही खासतौर पर तुमने सुबह के साथ दोपहर की पाली भी चुनी है " - प्रियहरि ने जवाब दिया ।

" मुझसे पूछा किसने ? बस लगा दिया । मेरी मजबूरी थी । मैं करती भी क्या ? "

वनमाला ने प्रियहरि से कहा- " अब आप कहिए उनसे कि शाम की पाली में मेरा नाम है, तो सुबह-सुबह वे मुझे क्यों बुला रहे हैं ? वैसे भी सुबह की पाली में परेशानी है । पॉच-पॉच , छः-छः लोग आते नहीं । कार्यालय का आदमी भी ड्‌यूटी पर चला जाता है । मुझ पर ताने कसे जाते हैं कि इन्हीं में बड़ी योग्यता है, जो दो-दो पालियों में सहायक परीक्षधिकारी बनी बैठी हैं, वगैरह । ये सब महिलाओं की राजनीति है । "

" वनमाला तुम क्यों नहीं कहती हो उनसे ? तुम कहो उनसे और मैं भी कहूंगा । "

जवाब में वनमाला बोली -" मेरे कहने से कुछ होता नहीं । उल्टे गलत अर्थ निकाला जाएगा । "

सारा माजरा प्रियहरि की समझ में आ गया था। यह शरारत ईर्ष्या में ग्रस्त भोलाराम की थी । अवश्य उसी ने बड़े साहब के कान फूंकते वनमाला को प्रियहरि से जुदा रखने की तरकीब निकाली थी।

प्रियहरि ने वनमाला को उम्मीद दिलाई।

"ठीक है मैं ही कोशिश करूंगा "- उसने कहा।

साथ बैठे प्रियहरि और वनमाला का सारा वक्त प्यार में एक दूसरे से बेरुखाई की शिकायतों और मनुहारों में कटा । वनमाला को अपने अनेक श त्रु होने की शिकायत थी। वनमाला की शिकायत थी कि प्रियहरि भी उसका ध्यान नहीं रखता है। वैसी ही शिकायतें विपरीत ध्रुव पर वनमाला से प्रियहरि की भी थीं । इस मिलन से दोनों के बीच की गलतफहमियॉ दूर हुईं । वे दोनों ही बहुत प्रसन्न थे । तीन घण्टे का समय कैसे गुजरा इसका पता ही उस दिन न चल पाया था। प्रियहरि के टिफिन की दो पूरियां आज वनमाला और

नीलांजना सहित तीन ने खायी । नाश्ता हुआ, चाय चली । प्रच्छन्न आरोप-प्रत्यारोप, उपालंभ चले । आज तीसरी नीलांजन थी, जो प्रियहरि और वनमाला के एक हो जाने पर संकोच में सहमी, सकुची रही और बाकायदा प्रियहरि की सहायक अधिकारी होने के बावजूद इन दोनों को वहां छोड़ निरीक्षण में भी जाती रही । आज अपनी-अपनी जगह से न प्रियहरि हिला और न वनमाला हिली । शाम होते-होते भोलाबाबू सौंपा गया अपना सरकारी काम पूरा कर लौटते हुए आ पहुंचे थे। वनमाला और भोलाबाबू एक ही इलाके के बासिन्दा थे। सुविधा की दृष्टिसे मैने वनमाला को समय से कुछ पहले ही भोला के साथ भेज दिया ।

कल से ही प्रियहरि को कुछ अंदेशा होने लगा था । अनुभव बताता है कि वनमाला के साथ संबंधों में एक दिन की उड़ान दूसरे दिन खाई बन जाती है । वही हुआ । सुबह फोन पर प्रियहरि ने भोलाबाबू से अनुरोध किया था कि परीक्षा-ड्यूटी संबंधी व्यक्तिगत बात प्राचार्य से करके वे आदेश ठीक कराएं और वनमाला को शाम उसके साथ रखें । बात बहुत औपचारिक ही थी । दोपहर पता लगा कि मौजूदा स्थिति को यथावत पुष्ट करके फिर उन्हें आदेश सौंप दिया जाएगा। बदकिस्मती कि प्रियहरि और वनमाला को वैसी ही दूरी पर रहना था ।

दूसरे दिन फिर साथ होने पर प्रियहरि ने वनमाला को सुझाया कि नलिनजी से अपने सुबह के झगड़ों की बात बताकर तुम्हीं प्रधानजी से आग्रह करो कि वे तुम्हें उनकी जगह मेरे साथ रखें।

वनमाला ने उदास भाव से कहा- " मैं नहीं कह सकती । मुझे मालूम है कि होना-जाना कुछ नहीं है । फिर पारिवारिक सुविधा की दृष्टि से तो सुबह ही ठीक है । रहने दीजिये ।"

प्रियहरि ने वनमाला पर नजर डाली । आंखों और चेहरे के उदास भाव से पता लग रहा था कि बड़े साहब से न कहने का कारण पहला ही था दूसरा नहीं । मैंने बात समझी और कहा कि तुम ठीक कहती हो । होगा कुछ नहीं उल्टे अपनी हंसी उड़ेगी । वनमाला ने मेरी आशंका की पुष्टि की ।

कल का जो उल्लास था, वह आज केवल सामीप्य का हर्द्या था । चेहरे और आंखों पर विवश ता और उदासी वहां भी थी, और यहां भी । प्रियहरि ने उसकी ओर देखकर कहा-"वनमाला, आदमी सोचता कुछ और है, होता कुछ और है ।"

वनमाला के अंदर केवल एक लाचार शून्य था । दोनों का वह दिन उदासी में ही कटा ।

वनमाला ने कहा- " मैंने कहा था न ! यहां कुछ न होगा । आप बेकार दुःखी होते हैं । मेरी सलाह मानिये, भोलाबाबू की तरह हो जाइए । सुखी रहेंगे ।"

नीलांजना से मुखतिब हाते प्रियहरि ने कहा और वनमाला को सुनाया ।

" अपने बहुत करीबी मित्रों से भी जब मैं यह सुनता हूं, तो मुझे बड़ा धक्का लगा भी । क्या सचमुच वनमाला को भी यही सब प्रभावित करता है ? ऐसे सड़े विचार ?"

वनमाला ने फिर कहा- " आप को लगता है कि केवल यहां ही ऐसा माहौल है ? ऐसे ही अफसर हो रहे हैं और ऐसे ही चाटुकार राज कर रहे हैं । " प्रियहरि स्तब्ध और उदास हो आया । दोनों में से किसी ने कुछ न कहा । शाम ढलते वनमाला ने प्रियहरि से आज्ञा ली और वापस जाने तैयार हो गयी । इस वक्त कमरा बिल्कुल सूना था । नीलांजना भंडार के सामान की जांच के बहाने कहीं और चली गयी थी । बाबू और अन्य सेवक शायद जान-बूझकर ही बाहर कहीं चाय आदि को चले गये थे ।

प्रियहरि ने वनमाला को आवाज देकर टोका- "सुनो, अपनी शिकायत कहने, मुझे ताना देने तुम्हे अनुराधा की जरूरत उस दिन क्यों पड़ी वनमाला ? क्या तुमने उसे अपना सलाहकार बना रखा है ?

वनमाला ने कहा- "नहीं, आप को गलतफहमी है। मैंने कभी किसी से कुछ नहीं कहा है ।"

प्रियहरि ने उसे याद दिलाया- "उस दिन सूने स्टाफ रूम में जब सारी महिलाएं साड़ी रंगने और देखने जा रही थीं, तब तुम्हें परीक्षा सामग्री के साथ और मुझे वहां अकेला पाकर अनुराधा ने फुसफुसाकर तुमसे क्या यह नहीं कहा था कि चलो यहां से, नहीं तो ये फिर से अपनी शुरूकर देंगे ।"

वनमाला ने अपना गला छूकर कहा- "बाइ गाड, मैंने आप के बारे में उससे कभी कुछ नहीं कहा है । अनुराधा का संकेत शायद
महिलाओं की राजनीति की ओर रहा होगा । आप जानते नहीं यहां आजकल औरतों की भी बड़ी राजनीति चल रही है ।"

वनमाला के 'बाइ-गाड' कहने ने प्रियहरि में विश्वास अवश्य जगाया। पर तब भी वह तय न कर पाया कि उसकी बात कितनी विश्वसनीय है । प्रियहरि ने केवल इतना ही कहा- "वनमाला, मैं तुम्हारा ऐसा ही हंसता हुआ चेहरा हमेशा देखना चाहता हूं । मेरी शिकायत तो तुम खुद मुझसे कर सकती हो । मुझ पर तुम्हारा पूरा अधिकार है । हमारे बीच तीसरे किसी को क्यों आना चाहिए **?"**

वनमाला ने जवाब दिया- "आप सच मानिये, मैंने कभी किसी से कुछ न कहा है। आप तो बस फिर वही शिकायत ले बैठे ।" ऐसा कहती खिलखिलाती हुई वापस जाने अपना बैग उठाए वनमाला दरवाजे से बाहर हो गई ।

इस साथ के सुख ने वनमाला के लिये प्रियहरि की प्यास को और बढ़ा दिया था। जुदा होती वनमाला के पीछे दौड़ता उसका अधीर मन गुनगुना रहा था - " अभी न जाओ छोड़कर अभी तो मन भरा नहीं -"।

एक हफ्ते बाद फिर वनमाला के साथ होने की युक्ति प्रियहरि ने निकाली । हुआ यूं कि परीक्षा में निरीक्षक कम पढ़ते थे और लगातार छः-छः घण्टे ड्यूटी लगने से दूसरे निरीक्षक शिकायत करते थे । प्रियहरि ने चतुराई से सुझाया था कि परीक्षा अधिकारी भी आखिर जरूरतों पर ऐसी ड्यूटी क्यों न करें । दो परीक्षधिकारियों सत्यजित और भोला बाबू ने वैसा करने में अनमनापन दिखाया । वैसा करना वे अपनी शान के खिलाफ मानते थे। उनसे अलग हो प्रियहरि ने अपने को हाजिर कर दिया था । वनमाला तो सहायक अधिकारी थी ही। उसे तो पहले से ऐसी ड्यूटियां करनी होती थीं । भोला दादा बड़े साहब के करीब हुआ करते थे। उनसे प्रियहरि ने आग्रहपूर्वक यह शर्त रखी थी कि उसको निरीक्षण में लगाते वे अधिकारी के साथ अधिकारी या सहायक अधिकारी की ड्यूटी ही वे लगाएं ताकि मातहतों के साथ काम करते अटपटा न लगे और वह अवमानित न महसूस करे । वनमाला की ड्यूटी भी उन तारीखों पर लगनी ही थी । उन आने वाले दो दिनों के लिए उसने वनमाला को अपने साथ रखने की पेसकश भोला दादा से की थी । देखने में यह उसकी चालाकी थी, लेकिन ऐसा लगता था कि उस चालाकी की मूर्खता औरों ने पकड़ ली थी । भोला दादा को तो आभास हो ही गया था । भोला दादा ने वैसा कर भी दिया लेकिन बहुत जल्द प्रियहरि को इसका अहसास हो गया कि वैसा कराना शायद उसकी खुद की मूर्खता थी । वह उन हालातों को लेकर सोच में था जिनसे गुजरता वह अनिर्दिष्ट की ओर बढ़ रहा था।

वनमाला के होठों पर आधे इंच की मुस्कान को देखना दुर्लभ नजारा था,
जिसे सौभाग्य के वैसे ही दुर्लभ क्षणों में देखा जा सकता था ।

मैं सोचता हूं कि जिंदगी भी कितनी अजीब है । सरल और सीधी राह भी परिस्थितियों के वशीभूत हो, कितनी टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती है । मेरी बार-बार इच्छा होती थी कि वनमाला की एक झलक मैं देख लूं । बेताबी के चलते दो-तीन रोज बाद ही एक दिन अपने नियत समय से पहले यानी दोपहर को ही मैं दफ्तर चला गया । उसी दिन मैंने सुन लिया था कि बाबू के न रहने के कारण सुबह वनमाला तनखाह नहीं ले पाई है । मेरा मन कहता था कि शायद आज वह रुके और फिर आमना-सामना हो जाए । मेरी उम्मीद ठीक निकली । काली साड़ी वनमाला को खूब फबती थी । श्यामा तन्वंगी वनमाला की खूबसूरती उसमें और निखर आती थी । कमस्कम मुझे तो ऐसा लगता था । हमारी आंखें चार हुईं । वह प्रसन्न थी । बैठने की

जगह तो परीक्षा के प्रशासन का कमरा ही था । उस दिन वह दो बजे तक रुकी रही और भीड़ से आंखें बचाते कुछ हिचकते और कुछ पशोपेश में हम दोनों इस-उस बारे में बतियाते रहे ।

ईश्वर जाने क्यों अंदरूनी खुशी की वे तरंगें जो हम दोनों में छिपी रहती थी, मौका मिलते ही एक-दूसरे के दिलों पर फैलकर एकाकार हो जाती थी । वनमाला और मेरे बीच जो चल रहा था उसे कमरे की भीड़ भी दबे-छिपे आश्चर्य और कौतुक से देख रही थी । इस बात का अंदाजा आज मुझे हो गया था कि चार रोज बाद हमारे एकांतिक सहमिलन का शुभ अवसर फिर आने वाला था। संभवतः वनमाला को भी वैसा आभास हो गया हो । पर तब इसका आभास मुझे नहीं हो सका था कि निरीक्षण की ताजा तालिका देखकर ही औरों को भी वनमाला और मेरी साझा ड्यूटी पर दाल मे काला नज़र आएगा।

उस तरह इंतिजार कराता वह पूरा सप्ताह अगले उस अवसर की कल्पना में बीता जिसमें उसकी प्रिया काम के बहाने और काम के बीच भी केवल उसके साथ होगी। उसका मन बार-बार वनमाला रानी के पीछे भागता था । वनमाला उसके अस्तित्व मे समा चली थी। आंखों में वनमाला की छबि समाई थी। हृदय का हर स्पंदन मंत्र की तरह जप रहा था - मैं और मेरी वनमाला। वनमाला रानी और उसका प्रियहरि यानी मैं।

वह दिन आया । लेकिन ठीक उस तरह नहीं जैसा उसे आना था । सुबह दस बजे ही मैंने पाया कि स्टाफ-रुम में हम लोगों को साथ पाकर और एक ही कमरे में दर्ज देख खुसर-पुसर शुरू हो गई है । खोजी निगाहें इशारों में बतिया रही थी । चित्रकार कानन कार्यालय के नारायण बाबू से पूछ रहा था- "अच्छा तो आजकल कुछ लोग अपनी सुविधा के मुताबिक ड्यूटी लगवा रहे हैं ।"

वह कहना ऐसा था जिसे सुना जा सके या जिसे जानबूझकर सुनाया जा रहा हो । यह छैला तुनक-मिजाज, चंचल और बातचीत में लिहाज-विहीन था, गो कि उसकी यह वृत्ति समय-समय पर ही प्रकट होती थी । चिर-प्रतीक्षित उम्मीद पर पानी पड़ने ही जा रहा था । किसी कमरे में कोई एक तब-तक अनुपस्थित था ।

बाबू ने सुझाया कि प्रियहरि सर को बदलकर दूसरे कमरे में भेज दिया जाए तो कैसा रहे ? भोलाबाबू ने मना कर दिया -"नहीं-नहीं, उन्हें वहीं रहने दो ।"

यह सब देख-सुनकर वनमाला और मैं दोनों ही एक अनजान भय और संकोच से घिर गए थे। हमारे मन का चोर दूसरों ने पकड़ लिया था। प्रथमे ग्रासे मक्षिका पातः।

हम दोनों रहे तो तीन घण्टे के लिए एक ही कमरे में आए , लेकिन वनमाला का मूड बिगड़ गया था । जिस तरह से चीजें उजागर हुई, उससे वह अपने को फजीहत में पड़ा हुआ महसूस कर रही थी और रुष्ट थी । वनमाला ने शायद तय कर रखा था कि उस दिन मैं जो भी उससे कहूंगा या चाहूंगा , उसे वह नहीं मानेगी । मैंने उसे पास बिठाने, मनाने की चेष्टाएं कीं, लेकिन उसने यत्नपूर्वक दूरी बनाए रखी ताकि अपवादों से वह अपने को बचा सके । औरत चाहती वह सब कुछ है , जो मर्द चाहता है, लेकिन लोकापवादों से वह हर कीमत पर बचना चाहती है । औरतों की ईर्ष्या की उसे उतनी परवाह नहीं होती । वनमाला को भी नहीं थी। लेकिन आदमियों की दुनिया में औरत बदनामी से बहुत परहेज करती है । दूर-दूर भाग रही वनमाला रानी को अपने पास बिठा रखने में मुझे काफी दिक्कतें हुई । मेरे मनाने पर वनमाला राजी तो हुई , लेकिन रही वह अन्यमनस्क ही आई । मैने उससे पहले ही कह रखा था कि आज हम साथ रहेंगे और मैं उसके टिफिन से उसके साथ ही खाना खाऊंगा।

मैने पूछा-" टिफिन लाई हो न ? "

उसने कहा- "आज मैं घर से ही खाकर आ गई हूं । "

मैं उसे मनाता रहा।

"कल लेकर जरूर आना प्लीज़। क्या तुम मेरा इतना भी ध्यान न रखोगी ?"

वनमाला को मालूम था कि मैं शुद्ध शाकाहारी हूं ।

मुझे चिढ़ाती हुई वह बोली- "कल मैं ब्रेड और आमलेट लेकर आऊँगी ।"
" ठीक है।"
मैने कहा -" मेरी परीक्षा ही ले रही तो यही-सही, मैं वही खाऊँगा ।"
अनमनी वनमाला ने मुझसे कहा - "मुझे कानपुर सेमिनार में जाना है । अकाउन्ट्स के किसी टॉफिक पर एक पेपर तैयार कर दीजिए न । करेंगे न ?"
मैने कहा- "करूंगा तो, लेकिन तुम साथ बैठोगी तब ।"

वनमाला नाराज़ हो गयी ।

"मुझे साथ ही बैठना होता तो क्या ? रहने दीजिए मैं खुद कर लूंगी ।"

मैं समझ तो रहा था कि हमारे संबंधों का उस तरह औरों पर प्रकट होना और फिर ताने उसे चुभ गए थे । वह अपने को सिकोड़ना चाहती थी । फिर भी मुझे उसका वैसा जवाब देना बुरा लगा । मैंने उसे समझाया कि विषय तुम्हारा है और वह भी तकनीकी। तुम साथ न बैठीं, तो मैं किससे बात करूंगा और क्या मेरा मन लगेगा ?

वह बोली "रहने दीजिए मुझे मालूम है, आप सब कुछ कर सकते हैं । नहीं ही लिखना है तो बहाना मत कीजिए ।" मुंह फुलाए वह टहलने लगी ।

अपने से खिन्न पा मैने उसे बिठाया । उससे कहा- "प्यारी वन्या, मुझसे इतनी नफरत मत करो जिसे तुम खुद भी संभाल न पाओ । बताओ तो मेरा कसूर क्या है ?"
वनमाला मौन रही आई, उदास ।

उसे मुंह फुलाया पाकर मैंने कहा-"जानती हो कलकत्ते से तुम्हारे लिये संदेश लाया था । उस वक्त भी तुम्हारा मुंह फूला रहा था । इसलिए तुमसे तब कहा नहीं । तीन दिन रखा रहा, आखिर फेंकना पड़ा ।"

'सच' ? वनमाला के होठों पर आधे इंच की मुस्कान को देखना दुर्लभ नजारा था, जिसे सौभाग्य के वैसे ही दुर्लभ क्षणों में देखा जा सकता था ।

वह बोली- "आपने कहा ही नहीं, तो मैं जानती कैसे ।" उसने कहा- "के. सी. दास का रसगुल्ला लाना था, मुझे बहुत पसंद है ।"

"वह ले आता तो रानीजी कुछ और लाने की बात कहतीं ।" अपनी बात जारी रखते मैने कहा- "यार तुम्हारा मूड इस तरह से उखड़ा हुआ क्यों रहता है ? मुझे बहुत डर लगता है कि तुम न जाने कब नाराज़ हो जाओ । हमारे बीच खटपट और तनाव पर लोग गौर करते हैं । आखिर तुम ऐसा करती क्यों हो ?"
बड़ी मासूमियत से उसने जवाब दिया- "आप यूं ही सोचते हैं । मैंने तो ऐसा महसूस नहीं किया ।"
शरारत से मैने कहा- "तुम्हारी कुंडली में मंगल है क्या ? हमेशा गरम रहती हो ।"
"मुझे नहीं मालूम । यह भी कि कुंडली बनी भी, या नहीं ।"
"शादी फिर कैसे तय हुई ?"
"मिस्टर की भी कुंडली भी नहीं है ।"
अतीत में कहीं देखती वनमाला ने यूं कहा मानो वह बहुत दूर से बोल रही हो
- "गनीमत है शादी हो गई । यही क्या कम है ?"
"यार, तब तो तुम्हारा पति बहुत सौभाग्यशाली निकला । अगर कुंडली का चक्कर होता तो शायद वो तुम्हे नहीं पा सकता था ।"
जैसे वनमाला कहीं दूर खो गई थी ।
मैने कहा- "काश मै तुम्हें पा सकता । तुम्हें नहीं लगता कि जैसे तुम मेरे लिए ही रची गई थीं ।"

वनमाला अनमनी हो गई थी । कुछ अस्तित्व उसका कमरे में चहलकदमी करता और बैठता मेरे पास था ; कुछ और कहीं शून्य में ; कुछ वहां जहां उसके माथे पर चिन्ता की लकीरें थीं कि लोग क्या कह रहे होंगे ? चिंता की उन लकीरों का फलित यह था कि अगले दिन हम जुदा कर दिए गए थे ।

मेरी हालत ऐसी है कि मैं कुछ न कर पाऊंगी।
मेरे मिस्टर नहीं चाहते कि मैं कुछ करूं।"

यह दूसरा दिन था। वनमाला के कमरे में जाकर मैं उससे मिला । बरामदों का चक्कर लगाते श्रीमान् भोलाबाबू बीच में आ टपके । बातों-बातों के बीच वनमाला के लिए मेरा प्रशंसा-भाव पकड़कर उन्होने अनजाने में वह बात कह दी, जिससे मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ ।

वनमाला की तारीफ सुनते वे बोल उठे- "हां, मैंने इन्हें पहले पहचाना नहीं । ये काबिल तो हैं । सोचता हूं कि इसे अपनी शिफ्ट में सहायक बनाकर रख लूं । लेकिन फिर लोग कहेंगे कि सारे बंगाली इकट्ठा कर लिए हैं ।" विराग गांगुली पहले से ही भोला का एक सहायक अधिकारी था।

यकीनन भोला ने पशोपेश ग्रस्त वनमाला पर यह बात जाहिर कर दी थी कि मैंने वनमाला को अपने साथ ड्यूटी में रखने की बात उससे कह दी थी । बातों के दौरान ही वनमाला अचानक बोल उठी थी- "आप तो इनके (यानी मेरे) कहने पर मेरी ड्यूटी न लगाया कीजिए, खास तौर पर इनके साथ । ये तो यूं ही मेरी तारीफ करते रहते हैं ।"

जाहिर है कि लोकापवाद के भय से वनमाला में और सदैव उसे उपेक्षिता रखने के बाद भोला के मन में लोभ के जागने का परिणाम ही दोनों के वे संवाद थे, जो मुझे संकोच में डाल गए थे । बाद में फिर एकांत पा मैने वनमाला से पूछा था- "मेरी बात याद है, आज टिफिन लाई हो न **?**"

उसके 'ना' करने पर मैंने कहा- "ठीक है, मैं आज समझ गया । बात महज टिफिन की नही थी, टिफिन लाने वाले की भावना की थी और मैंने वह देख ली है ।"

उसने बात टालनी चाही- "क्या बताऊँ, सुबह-सुबह हो नहीं पाता है ..... "

मैने बीच में ही कहा- "वनमाला, कुछ न कहो, परीक्षा हो गई ।"

तसल्ली की कोशिश में उसने कहा- "आप तो बस यूं ही हर बात पकड़ बैठते हैं । मैने ऐसी कोई बात मन में सोची ही नहीं थी ।"

उस दिन मैंने उसे बताया कि उसकी पी.एच-डी. के पंजीयन के लिए मैंने डॉ. माथुर से बात कर ली है । वह पंजीयन के लिए तैयार रहे ।

वनमाला अनमनी और अपने आप मे गुम थी। सुनकर भी जैसे उसने कुछ न सुना हो । जैसे किसी दूर के लोक से क्षीण सी आवाज सुन पड़ी -"रहने दीजिए। मेरी हालत ऐसी है कि मैं कुछ न कर पाऊंगी। मेरे मिस्टर नहीं चाहते कि मैं कुछ करूं।"

उस दिन पहली बार मैंने अपनी गलती महसूस की । वनमाला और अपने बीच भोला की मदद लेना मेरी मूर्खता थी । घर से तो वनमाला त्रस्त थी ही। यहां भी उसपर निगाह रखते उसकी खुशी छीनने, उसे बदनाम करने लोग घुस आए थे।

किंकर्तव्य-विमूढ मैं सोचता रहा कि हम दोनों की नियति भी कैसी है **?** आज सुबह ही मुझे इसका आभास होने लगा था कि जैसा माहौल बन चला था उसमें वनमाला का मूड शायदवैसा खिला न रह पाएगा जैसा हमारे साथ के पिछले संयोग में रहा आया था । यह निश्चय था कि भोला नहीं चाहता था कि वनमाला मेरे निकट रहे। बाद में मुझे यह मालूम हो चला था कि सुबह-सुबह वनमाला को अपने साथ रखे जाने की प्रियहरि की बात सुनकर भोलाबाबू अप्रसन्न था। इससे पहले कि उस दिन मैं पहुंचता, वनमाला पर अपनी खीझ भोला बाबू ने उतार दी थी। उस दिन वनमाला के बुझ चले चेहरे के पीछे यही रहस्य था। तब भी मुझ में इस बात का क्षोभ रहा आया कि प्रियहरि का साथ देती विरोधियों से खुले आम लड़ पड़ने की बजाय वनमाला क्यों परिस्थितियों के दबाव में आती मायूस हो जाती है **?** क्यों तब अपनी रुखाई दिखा वह बदला प्रियहरि से लेती है **?** वह सोच रहा था कि पल-पल बदलती उसकी प्रिया वनमाला का कौन सा रूप सही है **?**

अक्सर मुझे संदेह होता कि कहीं गहरे अतीत में उसका कोई भयानक अनुभव तो नहीं था ?

बाहर बर्फ की ठंडी, ठोस, लादी हुई चट्टान ; लेकिन अंदर बाहर निकलने को बेताब उद्दाम ज्वाला ।
वनमाला के अंदर भी वैसी ही उद्दाम ज्वाला तो नहीं छिपी थी ?

वनमाला अच्छी तरह जानती थी कि मैं उसे चाहता हूं पर उसके अंदर कुछ रहा होगा, जो प्रत्यक्ष को टालना चाहता था । वह क्या था ? शायद मध्यमवर्गीय नैतिकता का भय ? या उन उलझनों और परेशानियों का भय जो पेश आ रही थीं । या शायदघर में उसके पति की झंझटों और बच्चों की परवरिश आदि की चिंताएं और व्यस्तता । वह उन सारी स्थितियों से बचने की कोशिश करती थी, जो हमें एक दूसरे की ओर खींच रही थी । यह इसके बावजूद था कि दिली आकांक्षाएं मेरी तरह उसकी भी उन्हीं में बने रहने की थी ।

मुझे याद है । आरंभिक लग-लगाव के दिनों में रुठती-मानती वनमाला से यह पूछने पर कि क्या तुम्हें मेरा साथ पसंद नहीं, क्या तुम मुझे नहीं चाहती ? अगर ऐसा है, तो मैं तुमसे दूर चला जाऊँगा ", उसने जवाब दिया था- "मैंने आप से ऐसा कब कहा ? आप तो फिर भी बहुत अच्छे हैं, कुछ लोग तो यहां ऐसे हैं, जो आप अपने को जैसा समझते हैं उससे कई गुना ज्यादा खराब हैं । अब मैं आपसे क्या बताऊँ ?"

वनमाला क्या कहना चाहती थी ? किसकी ओर इशा रा करना चाहती थी ? मैं समझ नहीं सका था । जहां तक मैने देखा था, उससे लोग चिढ़ते ही थे । मेरे ही ताल्लुकात उससे सबसे जुदा और खुले थे, जिसमें प्यार-मोहब्बत की बातें होती थीं । मुझे ऐसा लगता कि उस चित्रकार का ध्यान तो वनमाला की ओर कम था, पर वनमाला के मन में ही उसके लिये ललक ज्यादा थी । काम के प्रति लापरवाह और गैर-जिम्मेदार उस छैला ने एक बार परीक्षा की ड्यूटी के दौरान ही हमारे कमरे में आकर पूछा था । पूछा तो क्या, महज कहा ही था-

"मुझे चाय पीने की इच्छा है । जरा गुमटी से चाय पीकर आता हूँ।"

परीक्षा का कमरा अपने साथी के जिम्मे छोड़ टहलना-घूमना और अलस्सुबह चाय या नाश्ता ढूंढना उसकी आदत में शुमार था ।

वनमाला ने कहा था- "चाय पीने की तो मेरी भी इच्छा हो रही है ।"

उस छैला ने कहा था- "चलिए आप भी, पीकर आते हैं ।"

तब वनमाला शायद मेरा लिहाज कर चुप्पी साध गई थी । उसके बाहर निकलते ही वनमाला ने मुझसे पूछा था- "मैं भी साथ हो आऊँ क्या ?"

मैंने इतना ही कहा- यह गैर-जिम्मेदारी है कि कोई परीक्षा के कमरे से इस तरह ठेले पर चाय पीने सड़क पर जाए । तुम परीक्षा-अधिकारी हो । तुम्हारा जाना क्या अच्छा लगेगा ?" वनमाला के दोहरे मन को मैं पढ़ रहा था । आखिर चाहकर भी वह नहीं जा सकी थी ।

एक और बार मेरी मोहब्बत भरी बातों को टालती उसने बुदबुदाया था- "नहीं, आप समझते नहीं । वे आ रहे होंगे ना ।"

जिस दिन की यह बात है, उस दिन उस छैले और आम लोगों के आने का समय हो रहा था । क्या वनमाला का इशारा इसी खास व्यक्ति की ओर था ?

मैने सोचा कि वनमाला के 'बुरे लोग' का क्या मतलब था ? क्या कोई उसे सीधे-सीधे संभोग के लिए प्रेरित कर रहा था । मुझे संदेह हुआ । कभी-कभी चीजें जैसी होती हैं, उसके ठीक उल्टे दिखाई पड़ती हैं । बाहर बर्फ की ठंडी, ठोस, लादी हुई चट्टान ; लेकिन अंदर बाहर निकलने को बेताब उद्दाम ज्वाला । वनमाला के अंदर भी वैसी ही उद्दाम ज्वाला तो नहीं छिपी थी ?

एक और रोज प्रशिक्षार्थियों की कापियां जांचती उसने मुझसे किसी और की शिकायत की । यह व्यक्ति तबादले पर उसके विभाग में साल-दो साल हुए आया था । वनमाला ने कहा- "यह आदमी मेरी चापलूसी करता मिनमिना रहा था कि अगर उसके भतीजे की कापी आई हो, तो मैं जांच में नंबर बढ़ा दूं ।"

यह व्यक्ति और इसके विषय के बहुतेरे लोग ट्यूशन करके पैसा कमाने, शेयर का कारोबार घर में करने और किसकी कापी कहां गई है, यह जानकारी हासिल करके छात्रों के बीच दलाली करके नंबर बढ़वाने और पैसों के मोल-तोल के लिए बदनाम थे । वनमाला, मैं और दीगर लोग इनके विभाग की हरकतें जानते थे । वनमाला इस सब में लिप्त नहीं थी । उसे इन बातों से कोफ्त थी ।

मेरे यह कहने पर कि अपने विवेक से वह खुद ही सोचे, वनमाला ने कहा था- "इसीलिए तो मैं आप से पूछ रही हूँ। क्या मुझे इसकी मदद करनी चाहिए ?" आगे उसने खुद बताया - " हालांकि उस परीक्षा और रोल नंबर की कापी मेरे पास आई है , मैने तो उससे कह दिया है कि मेरे पास उस परीक्षा की कापियां नही हैं । मैं इसका कहा क्यों मानूं ? ये धंधेबाज है, पैसा कमाता है और यहां चापलूसी कर रहा है । मैंने तो इससे झूठ बोल दिया है । मैने नंबर बढ़ाना भी नहीं है ।"

न जाने क्यों भोलाबाबू से भी वनमाला को चिढ़ थी । आखिर वनमाला कहना क्या चाहती थी ? उसके सब से ज्यादा निकट और चहेता मैं ही था, जिससे उसकी पटती थी । वनमाला का प्रशंसक शायद ही तब कोई रहा हो । तब क्या वनमाला का सोचना उसके अपने ही दिमाग की उपज थी, जो इसलिए सामने आ रही थी कि वह अपने को ज्यादा काबिल समझती थी ? क्या इसीलिए वह इन घटिया लोगों को तरजीह नहीं देना चाहती थी ? क्या वनमाला की इसी उपेक्षा और अकड़-भरे स्वभाव से लोग उसके आलोचक थे । वैसा था तो मैं भी, लेकिन तब क्यों सारी महिलाएं, लगभग सारा स्टॉफ मेरी इज्जत करता था । न जाने वे कौन से कारण रहे होंगे कि लोग वनमाला को नाकाबिल, उपेक्षणीय समझते थे और मेरा उसे तरजीह देना उन्हें नहीं भाता था । बहुतेरे मुझे इशारों में संकेत भी करते कि उस वनमाला में क्या है, जो मे उसे देता तरजीह देता हूं ?

सारा कुछ देखते-बूझते भी वनमाला मुझे दिनों-दिन आकर्षित कर रही थी । मैं उसके प्यार में पागल हुआ जा रहा था । निश्चित ही बुद्धि और समझ दोनों में औरों से वह बहुत आगे और मेरे करीब थी । उससे हर विषय, हर पक्ष पर भावना और बुद्धि की इतनी बातें मेरी होती थी कि मैं हर बात में उसकी तारीफ करता था । वनमाला और मैं जैसे एक दूसरे का स्वप्न थे । हम दोनों एक-दूसरे को अपना पूरक मान अपने संबंधों पर गर्व करते थे । वह नहीं चाहती थी कि मैं कभी किसी और को अपने नजदीक रखूं या उसे छोड़ किसी की तारीफ करूं । यह एक स्वतः-स्फूर्त संबंध और दिलो-दिमाग का राजीनामा था कि हमारे समतुल्य खुद हमारे अलावा कोई और हो ही नहीं सकता था । इसीलिए मेरा या उसका एक-दूसरे से छीना जाना न उसे पसंद था, न मुझे । लेकिन तब भी यह रहस्यमय था कि वनमाला आखिर मेरी तरह साफ और बेझिझक किसी निष्कर्ष पर कभी क्यों नहीं पहुंच पाती थी । एक तरफ अपने घर की जिंदगी से मुक्ति की छटपटाहट और मुझ से दिल लगाने की चाहत वनमाला में थी । फिर दूसरी तरफ दैहिक संबंध और संभोग के नाम से चिड़चिड़ाहट, उदासी भरी अन्यमनस्कता भी थी । आखिर वह ठीक-ठीक क्या चाहती थी ? वनमाला को समझ पाना मुश्किल था । ठीक मौका आने पर वह सिकुड़न भरा माथे का पशोपेश , चेहरे पर उभर आई गंभीर उदासी, और अनमने भाव से भरी कहीं दूर अज्ञात में खोई जाती वनमाला की पीड़ा भरीदृष्टि- इन सब में क्या था ?

अक्सर मुझे संदेह होता कि कहीं गहरे अतीत में उसका कोई भयानक अनुभव तो नहीं था ? क्या ऐसा हो सकता है कि किशोरवय में ही घर या बाहर के किसी परिचित ने उससे अप्रत्याशित और बलात् संभोग की चेष्टा की हो, जिससे वह अचानक दुचित्ता, मनोरोगी औरत में तब्दील हो जाती थी । मानो यह उसका वह रहस्य ही था, जिसका तिलस्म मुझे और अधिक उसकी ओर खींचता था । मैं उसे तोड़ना चाहता था, समझना चाहता था। वनमाला को मैं उसकी संपूर्णता में ,उसके मन और देह के साथ हासिल करना और भोगना चाहता था । हम दोनों के बीच यूं ही लुका-छिपी चलती रही । मैं आतुर था कि एकबारगी हम दोनों खुल जाएं । मैने ठान लिया था कि जो भी हो, सारी बातें दिल की कहकर वनमाला को मैं अपने पास खींच लाऊंगा । इधर संस्था का माहौल ऐसा था कि खोजी निगाहों और कामकाजी वातावरण में दिल की बातें बहुत फुरसत से हो न

पाती थीं। उधर वनमाला का घर ऐसा कि हमेशा भय और आशंकाओं को दावत देता नजर आता । मुसीबत ही मुसीबत थी। राह निकालना कठिन था।

बाबा रे, इतना प्यार कि बूढ़ी हो जाने पर भी न छोड़ोगे

"बाबा रे, इतना प्यार कि बूढ़ी हो जाने पर भी न छोड़ोगे । मुझे मार डालोगे क्या ?"
सारा कुछ तो आप कह देते हैं और मैं जान लेती हूं ।
प्यार की चिठ्ठियों से क्या फायदा ?"

वे दिन नए वेतनमान के लिए आंदोलन के थे । धरनों और जुलूसों का माहौल था। इलाके के अलग-अलग हिस्सो में बारी-बारी सामूहिक धरने का कार्यक्रम तय हुआ था। उन दिनों मैं अपनी यूनियन का रसूखदार लीडर था । वनमाला को मैंने राजी कर लिया था कि इलाके के तयशुदा दूरस्थ संस्थान के बाहर पहले दिन ही वह, मैं और नीलांजना धरने पर बैठेंगे ।
वनमाला से उस सुबह फोन पर मैंने बात की थी- "मैं तुम्हारे यहां पहुंचूंगा, तुम वहीं नीलांजना को भी बुला लो, साथ चलेंगे ।"

उसने पहले तो खुशी में 'हां' कह दी, लेकिन तुरंत बाद जैसे कुछ सोचा हो, कहा कि "नहीं, मेरे घर आना ठीक न होगा । आप पहुंचियेगा, मैं भी सीधे पहुंच जाऊंगी । वनमाला को अवश्य यह अंदेशा था कि मेरे वहां पहुंचने और मेरे साथ उसके जाने से घर में बवाल मच सकता है ।

मैं खुश था कि बाहर हमें साथ रहने, पास आने और जी भर निर्भय बातें करने का अच्छा अवसर रहेगा । वनमाला मेरी खुशी में शामिल थी । ठीक समय पर किस्मत ने धोखा दिया । इच्छा के विपरीत मुझे प्रतिनिधि के रूप में इस बार दिल्ली जाना पड़ा । मैंने वनमाला को उसके घर फोन करके अपनी मजबूरी बता दी थी और कहा था कि लौटते ही हम मिलेंगे । मैंने कहा था कि उससे दूर रहकर मुझे उसकी याद बेचैन करती रहेगी ।

मैं चला तो गया था लेकिन वनमाला की यादें थीं कि चौबीसें घण्टे बेकरार करती थीं । चिट्ठियां लिखता वनमाला के नाम और हर चिट्ठी अधूरी लगती ।ट्रेन में, प्रवास पर मैंने उसे याद कर अनेक चिट्ठियां लिख डालीं । अब मेरे मन को रेल से उतरकर बोरिया-बिस्तर सहित वनमाला के पास पहुंचने की बेचैनी थी । तीन दिन बाहर रहकर लौटा तो बजाय अपने घर जाने के ठीक उस सब-स्टेशन पर उतर पड़ा, जहां से हमारा संस्थान करीब था । नजरों की यह चाहत लिये कि शायदवह मिल जाए, उसकी एक झलक देख लूं धड़कते दिल से मैं कॉलेज पहुंचा ।

मैंने कल्पना की थी कि ठीक उसके निकलने से पहले मैं पहुंचूंगा और उससे आंखें चार होंगी, लेकिन व्यर्थ । मैंने उसे ढूंढ़ा पर वह न मिली । हमारे पास साथ बैठने टाइम-टेबिल कमिटी के काम का बहाना भी था। पता लगा कि वनमाला नहीं आई थी या आकर चली गई है, वगैरह । अगले दिन सुबह-सुबह दोगुनी बेचैनी में भागता नौ बजे मैं कॉलेज पहुंचा । एकांत हो, इसलिए प्रिंसिपल के बड़े कमरे में जो अलग-थलग और खाली था, कोने की वर्क-टेबिल पर कागज फैलाए मैं जम गया था । सुबह-सुबह भीड़ न होने के बावजूद औरों के सामने वनमाला को चलकर साथ बैठने के लिए कहकर अपनी आतुरता व्यक्त करने की बजाय मैंने नीलांजना से संदेश भिजवाया कि फुरसत मिलते ही वनमाला मेरे पास आ जाए । टाइम-टेबिल को अंतिम रूप देना है ।

मैंने देखा दो कमरों के बीच के द्‌वार पर परदे से झांकती वनमाला प्रकट हुई । उसका चेहरा खिला था । उसने कहा कि नीलांजना से आपका संदेश मिल गया था । वह मेरे सामने बैठ गई । मैंने उलाहना दी।

"वनमाला कल दिल्ली से लौटकर बजाय अपने नगर पहुंचने मय सरो-सामान मैं बीच के अपने इस अपने उपनगरीय स्टेश न पर ही उतरा और सीधे यहां आया कि अपनी प्रिया की एक झलक देखूँ, लेकिन तुम मिली नहीं ।"

उसने कहा "कल तो मैं आई ही नहीं थी ।"

फिर अंदर ही अंदर खुश होती लेकिन चुलबुली शिकायत में वनमाला ने आगे कहा- "आप यूं ही मुझे खुश करने कह रहे हैं । मुझे भला आप क्यों याद करने लगे ? अपनी ड्यूटी लगाने आप आ गए होंगे और बहाना मेरा बना रहे हैं ।"

मुझे बुरा लगा । उसकी आंखों में डूबता मैं बोला-

"प्यारी वनमाला यूं अविश्वास करके, मुझे दुःखी करके तुम्हें खुशी होती है ? फिर पूछा "बताओ उस दिन 'हां' कहकर तुमने अपने घर आने से फिर मना क्यों कर दिया ?"

"जिस लिए आप घर आते वह तो रोज यहीं हो जाता है । मेरा चेहरा तो यहीं आप देख लेते हैं, घर आकर ही क्या करेंगे ? वहां इतनी सुविधा रहती ही कहां है "

वनमाला ने आगे कहा- "मेरे मिस्टर बीमार थे, तब आना था । तब क्यों नहीं आए ? बाद में आप के आने से वो क्या समझते ? यही कि मैं बीमार पड़ा तो याद नहीं आई और इसे देखने ये जब भी हो मेरे घर चले आते हैं । आप सोचते थोड़ा भी नहीं ।"

मैंने बताया कि मैं तो जाना चाहता था, लेकिन भोलाराम ने मेरी इच्छा जानते ही बड़े साहब के सामने टोक दिया कि क्या करोगे जाकर बिना बुलाये ? फालतू वहां क्यों जाते हो ? मैने वनमाला से पूछा- "तुम्हीं बताओ मैं क्या करता ?"

मेरी कमअक्ली पर वनमाला का मन जरूर तरसा होगा । उसने मन ही मन कहा होगा- "मेरे करीब रहना चाहते हो और, तरकीब भूल जाते हैं ।"

हम दोनों के बीच चंद बातें हुई । मैने उसे बताया कि किस तरह मैं उसे हर-पल याद करता रहा । हर-पल किस तरह वह मुझे बेचैन करती रही । हंसकर वह बोली ? "रहने दीजिए, आप झूठ बोलते हैं ।"

वनमाला ने कहा- "बताइये क्यों बुलाया है ? स्टाफ-रुम में अनुराधा मैडम बैठी हैं । सोचती होंगी कि न जाने आप के साथ मैं यहां क्या कर रही हूं सूने में ।"

हंसते हुए मैने भी जवाब दिया- "क्या करूंगा तुम्हारी याद के सिवाय । टाइम-टेबिल तो बहाना था, दिन-रात बैठा तुम्हें प्रेम-पत्र लिखा करता हूं ।"

"झूठ" उसने कहा। "मुझे क्यों कोई प्रेम-पत्र लिखेगा । मैं अब प्रेम-पत्र लिखने लायक कहां रही ? दो बच्चों की मां, अधेड़ । मुझमें अब वो बात कहां कि आप प्रेम-पत्र लिखें ।"

"अच्छा ! कहां है दिखाइये।" वनमाला के कहने पर मैंने वह खास खाकी सरकारी पुराना लिफाफा उठाया और उसे वे पांच पत्र दिखाए जो उसके लिए ही थे ।

उसने केवल एक झलक देखकर ही जान लिया कि मैने सच बात कही थी । उसका चेहरा सुर्ख हो चला था । झिझकते हुए मंद स्वरों में उसने कहा- "रहने दीजिए न इन्हें । सारा कुछ तो आप कह देते हैं और मैं जान लेती हूं । प्यार की चिठ्ठियों से क्या फायदा ?"

उसने उठने की आज्ञा चाही और चल पड़ी । मैंने पीड़ा भरी शिकायत उससे की -"वनमाला तुमसे कुछ छिपा तो है नहीं । ये अदा तुम्हारी पुरानी है । ठीक है तुम्हारी मर्जी नहीं है तो रहने दो । मन तुम्हारा है । मेरा तुम पर क्या हक है कि तुम्हें मजबूर करूं ।"

वह ठिठकी, मेरी आंखों की उदासी को उसने पढ़ा और कहा- "आप से मैं क्या कहूं ? मेरी मजबूरी तो आप समझते नहीं ।"

"वनमाला मैं सब समझता हूं, लेकिन तुम जैसी भी हो, जो भी हो, मेरा मन तुम पर मरता है । तुम अधेड़ हो, बूढ़ी हो जाओ, तब भी मैं तुम्हीं पर जान देता रहूंगा ।"

वनमाला हंसकर बोली- "बाबा रे, इतना प्यार कि बूढ़ी हो जाने पर भी न छोड़ोगे । मुझे मार डालोगे क्या ?"

वनमाला ने मेरे हाथ से लिफाफा ले लिया । मैंने आग्रह किया कि वह यहीं पढ़ ले, लेकिन वह बोली- " मैं फुरसत से पढ़ूंगी। यहां पढ़ने में देर हो जाएगी ।" मैंने आगाह किया कि याद रखना, यह मेरे और तुम्हारे बीच की बात है, सार्वजनिक नहीं । संभालकर रखना ।"

"मैं जानती हूं । निश्चिन्त रहिए । कोई भी नहीं देखेगा । फिर यूं भी इस लिफाफे पर शासन के सचिव का पता लिखा है । पुराना है इसलिए कोई न पूछेगा ।"

कुछ देर बाद एकांत से रुखसत हो मैं स्टाफ-रुम में पहुंचा । मैंने देखा कि अनुराधा के बगल में ही कुछ दूरी लिए वनमाला बैठी थी । दूर से ही मुझे अपने अक्षर और कागज पहचान में आ रहे थे, जिन्हें वनमाला पढ़ रही थी । मुझे आया और देखता जान वनमाला ने झटपट कागज लिफाफे में डाले और थैलानुमा पर्स में उसे रखकर चल पड़ी ।

उसके जाने के बाद अनुराधा ने अर्थपूर्ण नेत्रों से मुझे देखते कहा- "प्रियहरि, मुझे आप से कुछ कहना था। मैं बाद में कहूंगी ।"

उसका कहना ही काफी था । मैंने अनुमान लगा लिया कि माजरा क्या होगा ? जरूर वनमाला ने अपने गर्व में चुहल से अनुराधा को वे पत्र दिखाए होंगे या खूबसूरत अनुराधा को जलाने वाले अंदाज में अपने जादू की बात छेड़ते व्यंग्य के अंदाज में कोई संकेत किया होगा। मैं समझकर भी चुप रहा . औरत की आदत ही ऐसी होती है . ज़रा सी तारीफ आशिक के मुंह से निकली नहीं कि वह अपने को अखबार बनाए अपनी संगिनियों के बीच फ़ैल जाती है.

संबंध क्या हैं ? स्मृतियां ही तो संबंध हैं।
वही पुल बनाती है - दो दिलों के बीच ।

रिश्तों और विश्वास का एक नाजुक धागा था, जो विपरीत परिस्थिति में भी हमें जोड़े रखता था।

अगले दिन वनमाला और मैं अकेले ही कमरे में थे । उसकी मुद्रा गंभीर थी । मैंने पूछा- "वनमाला पत्र पढ़ लिए । उसने कहा- "मैने एक ही पत्र पढ़ा, आगे हिम्मत न हुई । बाप रे ! मैं तो उसे ही पढ़कर बेचैन हो गई । न जाने कैसा-कैसा लगने लगा । आप ने क्या-क्या शिकायतें लिख दी हैं । मैने आप का क्या बिगाड़ा है, कब भला आप का अपमान किया है ?"

मेरे पत्र निहायत व्यक्तिगत और आत्मीय थे । वनमाला से वनमाला के मूड, अकल्पित व्यवहार अपनी दीवानगी और उसकी बेरुखी की जिन शब्दों में मैंने शिकायत की थी, वे बेचैन कर देने वाले ही थे । सच कहूँ तो यह कि आशिक की सफलता ही उस तरकीब में छिपी होती है जो मासूका को बेचैन करती पिघलाकर रख दे. यानी मैं सफल हो चुका था. ईमानदारी से सारे पत्र वनमाला ने मुझे लौटा दिए ।

अनुराधा से बाद में मैंने टोहना चाहा कि आखिर वह कौन सी बात है, जो वह कहना चाहती थी, लेकिन वह टाल गई । अपने मन का संदेह मौका देख काफी दिनों बाद एकांत पा वनमाला के सामने मैंने रख दिया । मैंने पूछा कि क्या मेरे वे पत्र तुमने अनुराधा को दिखाए थे या उस पर उसने कोई चर्चा की थी ?

मुझे वनमाला पर संदेह था, जो अकारण नहीं था । मैंने पूछा कि क्या तुमने आपस की बातें कभी भोला से भी कहीं थीं । परीक्षा के दौरान भोला का बीच में आना और वनमाला की सफाई कि 'इनके कहने पर तो खासतौर मुझे उनके साथ मत रखा कीजिये' मुझे याद थी ।

वनमाला ने आश्वस्त करते हुए गंभीरता से कहा- "आप बेकार संदेह क्यों करते हैं ? मैं न अपनी बातें किसी से बताती हूँऔर न कभी बताऊँगी ।"

उस दिन मैंने फिर वनमाला को समझाया- अपने मन की पीड़ाएं उससे कही । हम दोनों के बीच उस दिन विश्वास में वादा हुआ कि एक-दूसरे पर हमारा विश्वास गोपनीय और सुरक्षित रहेगा । हमारे विश्वास के बीच कोई कभी नहीं आएगा । अकेलेपन की आत्मीयता में वनमाला सदैव की तरह अपनी उदासी, पशोपेश और चेहरे पर उभर आए तनाव के साथ इसी तरह पेश आती थी । उसकी विचित्र मुद्रा और गंभीर रहस्यमयता को समझना कठिन था ।

वनमाला के साथ मेरा संबंध विश्वास और अविश्वास, प्यार और विग्रह के बीच झूल रहा था । उसके बदलते स्किजोफ्रेनिक मूड से मैं अक्सर परेशान हो जाता । उसके होठों पर मुस्कुराहट ईद के चांद की तरह ही दुर्लभ थी । यह मेरे चित्त के लिए एक समस्या और शोध का विषय बन गया था कि हमेशा परेशान, गंभीर, उदास और चिड़चिड़ी वनमाला से मैं कैसे पेश आऊँ ? मन को मारता कई बार मैं सोचता कि जिस संबंध का भविष्य ही नहीं नजर आता उससे मैं दूर क्यों नहीं हो जाता । तब मेरा मन मुझे समझाता कि वनमाला की अपनी समस्याएं हैं । स्त्री की अपनी विवशताएं और जटिलताएं होती हैं । वह घर से उदास है - ठीक तुम्हारी ही तरह। उसमें मुक्ति की वह छटपटाहट भी है, जिसके पीछे स्वतंत्रता के स्वप्न हैं-ठीक तुम्हारी तरह । उसे समझाने और मनाने, साथ देने की जगह केवल इसीलिए छोड़ जाना कि तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी नहीं हो रही हैं, क्या अन्याय नहीं होगा ? इसके अलावा यह भी कि जब-जब निराश मैं उससे दूर होने की कोशिश करता, अचानक एकांत के ऐसे पल आ जाते, जो वनमाला के साथ का मीठापन, विश्वास और आत्मीयता फिर से भर जाते थे । सच तो यह है कि परिस्थितियां ऐसी ही थीं, जिसमें न हम पास आ पा रहे थे और न दूर जा सकते थे । रिश्तों और विश्वास का एक नाजुक धागा था, जो विपरीत परिस्थिति में भी हमें जोड़े रखता था।

वनमाला से फुरसत में अपनी बात कहने या अपने दिल का शिकवा जाहिर करने की हरचंद कोशिश मेरी होती । वनमाला की यह खासियत थी कि घर के झंझटों और झगड़ों को वह कभी उजागर नहीं करती थी । पूछो तो यह कहकर टाल जाती कि छोड़िए न, जो होना है होता रहना है । घर के मामले मैं संभाल लेती हूं, कोई खास बात नहीं है । फिर भी ऐसे क्षण यदा-कदा आते जब वह अपनी मजबूरियों पर खीझती कहती- "आप का क्या है । यहां थोड़ा सा काम है । आप मजे से लिखते-पढ़ते और मोहब्बत फरमाते हैं, मुझे तो पहर हुए उठना पड़ता है । फिर हर चीज में खोट निकालने वाले अपमानित करने वाले मिस्टर के लिए नाश्ता बनाना, बच्चों का टिफिन बनाना, उन्हें स्कूल भेजना होता है । यहां से जाकर मिस्टर के लिए खाना बनाना, बच्चों को देखना होता है । उनकी ड्यूटी सुबह होने पर कभी-कभी तो यह पाती हूं कि बच्चे बस्ता लिए ताला बंद घर के सामने सूखा सा मुंह लिए मेरे इंतजार में बैठे होते हैं ।"

वनमाला अक्सर कहा करती- "छोड़िए न मुझे । भूल जाइए आप मुझे। मेरी किस्मत में वह सब नहीं लिखा है, जो आप चाहते हैं । क्यों आप मेरे पीछे अपनी प्रतिभा और समय बरबाद करते हैं ?"

यही तो वह साधारणताएं और जटिलताएं थीं जो आम स्त्री-पुरुष की विवशताएं होती है । मैं उस पर और ज्यादा मर मिटता । वह मुझे और निकट और घर की मालूम होती । मैं भूल ही जाता कि वनमाला किसी और की पत्नी है । रुठने-मनाने झगड़ने और एक-दूसरे पर अधिकार के संबंध इस प्रकार हो चले थे कि हम यूं व्यवहार करते जैसे लाचार विवशता के क्षणों में हम पति-पत्नी के रूप में करते होते । कभी-कभी वह कह भी जाती- "अच्छा आप तो यूं कह रहे हैं, जैसे आप मेरे हसबैन्ड हों ।"

सच भी यही था कि एक स्त्री अपने पति से जिस आत्मीयता और उस पर जैसे मन भरे अधिकार की अपेक्षा रखती है वह उसे मुझसे ही सम्पूर्णता में मिला करती थी. ऐसे ही वे क्षण हुआ करते जो उससे दूर जाते निराश मन को और अधिक तेजी से खींचकर उसके पास जा फेंकते । उसे प्रसन्न करने और रखने का मौका ढूंढ़ता मैं अनेक फितरतें करता और सोचता कि मैं चालाक हूं । बाद में पता लगता कि मेरी चालाकी मेरा उतावलापन थी। वह ऐसी भूलें कर जाती कि बनते संबंधों को बिगाड़ जाती और वनमाला को परेशानी में डाल जाती थी । प्रायः बातों-बातों में मैं वनमाला से मालूम कर लिया करता कि उसके पति की ड्यूटी सुबह या शाम किस शिफ्ट में चल रही है, ड्यूटी की शिफ्ट किस दिन बदला करती है, छुट्टी कब रहती है वगैरह । इससे मैं अनुमान लगा लेता कि घर पर लाइन कब साफ है । यह जरुरी नहीं था कि उसके पति की ड्यूटी या शिफ्ट, उसकी छुट्टी का नियम हमेशा मेरे अनुमान के मुताबिक हो और यहीं हादसे के बीज पड़ा करते थे ।

उस दिन भी दोपहर वनमाला को फोन कर बैठा था । दूसरे दिन वनमाला आई तो मैंने देखा कि आंखें उदास और मुंह सूजा हुआ है । वह तनावग्रस्त और गंभीर थी । स्टॉफ रुम में मैने जब प्रवेश किया तो पाया कि वनमाला अकेली ही बैठी थी । मैने देखा कि ज्यों ही मेरा पहुंचना हुआ, इससे पहले कि मैं कुछ बात करता संशोधित समय-सारिणी बनाती वनमाला ने मुझे घूरकर तेज नजरों से देखा और उपेक्षापूर्वक सारे कागज-

कलम छोड फौरन बाहर निकल गई । वह नाराज थी और मैं पशोपेश में था । कुछ देर बाद वह उसी मुद्रा में लौटी और कागज-कलम झटपट बैग में डाल घर के लिए निकल पड़ी ।

उदास मन मैंने उससे इतना ही कहा- "वनमाला, तुम नाराज़ हो न ! केवल इसीलिए कमरा छोड़ कर चली गई कि कहीं मैं तुमसे बात न कर लूं ।"

वह निकल पड़ी झटके से । उसने कहा था- "आप चाहे जो समझ लें ।"

मैं समझ गया कि मेरे फोन के वक्त उसके पति घर पर थे । जरूर उसने शंकालु पति के दुर्व्यवहार की ज़िल्लत उठाई है । सिवाय मुंह लटकाए अफसोस करने कि मैं और क्या करता ।

संबंध चाहे अच्छे हों या बिगड़ जाएं, वे संबंध ही होते हैं । हर हालत में एक टीस तो होती ही है । संबंध क्या हैं ? स्मृतियां ही तो संबंध हैं। वही पुल बनाती है-दो दिलों के बीच । वनमाला अब मुझसे बचने लगी थी । बात या तो करती न थी, या फिर टाल जाती थी । एकांत को टाल वह स्टॉफ रुम से बाहर यहां-वहां बैठ समय गुजार लेती थी । एक जगह होते और एकांत मिलता भी तो एकाध बार अनमने मन से नाराज, शिकायत भरी आंखों से देखती और विमुख हो जाती । और कुछ न मिला तो अखबार हाथ में फैला यूं बैठ जाती कि चेहरा उसमें गुम हो जाये और मेरी आंखें उसे देख न सकें ।

वनमाला जो बाहर है उसे न देखो,
अंदर उन पलों के एकांत में झांको और वनमाला के प्यार भरे मन को देखो ।

निराशा , उदासीनता और अवसाद से मेरा मन व्यथित था । मैं सोचता था कि ऐसे प्यार से क्या फायदा जिसका कोई अंजाम न हो और जो किसी को नाराजगी और नफरत से भर देता हो । अपना प्यार, अपनी पीड़ा मन में छिपाए मैं भी वनमाला से कटने लगा था । मन था कि दिन-रात उसकी यादों को उधेड़ता और बुनता लेकिन वह केवल वार्तालाप और उन रचनाओं, डायरीनुमा अनुभवों में होता जिन्हें वह किसी दिन किसी तरह उसके नाम कर मुझे दृश्य से हट जाना था । लेकिन कहां ऐसा हुआ ? वह तो केवल मेरे दुर्दिनों का मध्यांतर था । ऐसा कहां संभव था कि एक ही जगह, एक ही साथ हम रहें और एक-दूसरे के चित्त एक दूसरे में संक्रमित न हो । बहरहाल, उस समय मेरी स्थिति वैसी ही थी,। मन को मारे अपने निर्णय पर मैं भी कायम रहा आता । सब जानते थे, लेकिन दूसरों पर अपनी ओर से अपनी पीड़ा मैने कभी उजागर नहीं की । स्टॉफ में महिलाएं और भी थीं, वनमाला से सुंदर, सरल और खुले स्वभाव की-जिनसे मेरे सहज संबंध थे । मंजरी का जिक्र मैं कर चुका हूं, फिर नीलांजना, श्यामा, नेहा, अनुराधा, नंदिता, बाद में आई वल्लरी उर्फ गैरिकवसना, मंजूषा के बाद आई संध्या और भी आती-जाती अनेक । मेरा व्यक्तित्व, मेरी गंभीर भाव भरी खोई दृष्टि, मेरा सर्वतोन्मुखी व्यापक ज्ञान, सारगर्भित बातें, मेरी परिष कृत रुचियां, मेरा पठन-पाठन, रचनात्मक लेखन, कला-साहित्यिक-सांस्कृतिक की अपार रुचियां वैज्ञानिक सोच और कार्यप्रणाली-यह सब मिलकर ऐसी छबि बनाते थे कि मेरा साथ सबके लिए सहज आकर्षक था । यहां तक कि वनमाला के प्रति मेरे प्रशंसा-भाव और उससे मेरी निकटता से ही वे दृष्टियां प्रायः मुझे प्रश्नित करती कहती कि कहां और किस सनकी औरत के पीछे आप समय बर्बाद कर रहे हैं । मेरा पुरुष हृदय भी जाहिरा तौर पर इन औरतों को कभी-कभी अधिक तरजीह देता और उन्हें बांधे रहता था । वनमाला से नफरत के कारण नहीं, उसे चिढ़ाने और जलाने के लिए मैं वैसा करता था । पुरुष सहयोगियों में भी मैं पुराना और जाहिर तौर पर सर्वाधिक प्रखयात था । इसीलिए मुझे इज्जत दी जाती थी । वनमाला के प्रायः सभी आलोचक थे । उससे दूर रहते और मुझे दूर पा खुश होते थे । वह प्रायः सब से कटी रही । मुझसे वह खुद कहा करती थी कि मैं ऐसी-वैसी नहीं हूं, इन साधारण औरतों के साथ बैठना, बात करना मैं पसंद नहीं करती ।

वनमाला की बेरुखी के बावजूद उसका आग्रह याद कर उसे खुश रखने उसके लिए मैने लेख तैयार कर दिया था । वैसा करने में मुझे बहुत मेहनत करनी पड़ी थी । लेख विश्‍व-व्यापार के तंत्र और

उसमें भारत के संकट से संबंधित था । क्या दिन और क्या रात मैंने महीने-डेढ़ महीने खूब मेहनत की और लगभग चौबीस पृष्ठों का अपना लेख पूरा किया । वनमाला का चेहरा हर पल मेरी आंखों के सामने होता। उसकी यादें हर पल मेरे लिए प्रेरणा का काम करती । मैं इतने लगन से भिड़ा रहा जैसे लेख का हर शब्द मेरे लिए वनमाला, वन्या का साकार जाप था । मेरा चित्त उसमें तल्लीन था । वह मुझे समझाता था कि वनमाला मायूस है, पशोपेश में है। तुम उसकी लाचारी को समझो कि वह क्यों वैसा करती है, जो तुम्हें बुरा लगता है । उसके मन में तुम्हारे लिए कोई मैल नहीं है । वह तो लोगों की निगाहें हैं, घर की मजबूरियां हैं, जो उसे वैसा बना देते हैं । मेरा मन मुझे समझाता कि तुम्हारे तो सब प्रशंसक हैं । तुम पुरुष हो, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता, लेकिन उन मानसिक पीड़ाओं, तनावों, घर और बाहर की दोहरी जिम्मेदारियों की याद करो, जो उसे झेलनी पड़ती है । वह कहता कि वनमाला जो बाहर है उसे न देखो, अंदर उन पलों के एकांत में झांको और वनमाला के प्यार भरे मन को देखो । तुम्हारी आंखों में झांकती कुछ कह रही उसकी उन गहरी उदास आंखों को याद करो, जो तुमसे कह रही होती है कि मुझे भी तुमसे इतना ही प्यार है, जितना तुम्हें मुझसे है। लेकिन तुम्हीं बताओ कि मैं क्या करूं ? जहां तक स्मरण है वह कानपुर गई थी उस पाठ्यक्रम के लिए जिसमें उसे अपने लेख के पढ़े जाने की उम्मीद थी । लौटी तो बोली कि इतनी मेहनत से उतना अच्छा लेख बना, लेकिन वहां तो लेख पढ़ने-पढ़ाने का कोई जिक्र ही नहीं था ।

शायद वह मई का महीना था, जब वह गई थी । उसकी बहुत याद मुझे आती थी । हर पल मैं उसकी कमी महसूस करता था । जी चाहता था कि उड़कर उससे जा मिलूं । लेकिन हाय, कि समाज और उसकी मजबूरी, पहचाने जाने और चर्चाओं का डर उसे भी था, और मुझे भी । कितनी लाचारी थी ? मैंने बीच में एक बार उसे फोन पर बात की थी । कहा था -" मैं चाहता हूं इसी दौरान अखबार में छपे ताकि वहां लोग पढ़े, चौंके, और उसकी प्रतिभा की खूब तारीफ हो ।"

मैंने पूछा था कि क्या उसे यह पसंद आएगा कि उसके नाम के साथ मेरा भी नाम संयुक्त रूप से लेख में हो ताकि हम दोनों को यह एहसास रहे कि हमारा साथ कितना अच्छा, नाम-कमाऊ हो सकता है ।

वनमाला ने तब बड़ी सरलता से कह दिया था- "भला मुझे क्यों आपत्ति होगी ? मैं तो आप की एहसानमंद हूं कि इतनी बड़ी प्रतिभा मेरे साथ है । मुझे कोई आपत्ति नहीं है । अपना नाम भी दे सकते हैं ।"

उसकी स्वीकृति के बावजूद मैंने वैसा नहीं किया, क्योंकि मैं जानता था कि मेरे नाम का वनमाला के साथ जुड़ना लोगों में शक पैदा करेगा और उसका नाम पीछे रह जाएगा । तब तो नहीं, एक सवा महीने बाद लेख एक-एक कर चार किस्तों में छपा था । हर किस्त पूरे दैनिक अखबारी पेज का आधा घेरती थी ।

मुझमें जैसे वनमाला का अस्तित्व ही समा गया था । पहली ही किस्त गयी तो उसका नाम देखकर मैं यूं प्रसन्न हुआ जैसे मेरा नाम हुआ हो । हां, ऐसा था तो । उसके लिए मेरी मिहनत रंग लाई थी । जी चाहता था कि उड़कर पहुचूं और उससे लिपटकर उसकी उदास, भूरी आंखों में झांकूं ताकि हमारी खुशियॉ घुल-मिल जाएं । लेकिन मजबूरी । मैं रोज की तरह सुबह साढ़े नौ बजे पहुंचा तो पाया कि वनमाला दक्षिण में दीवार से लगी अपनी जगह बैठी है । उसकी आंखों में उदास खुशी की चमक थी, लेकिन साथ बैठी उसकी साथियों या दीगर पुरुष-स्टाफ की आंखों में कोई प्रतिक्रिया नहीं थी । अनुराधा वहां बैठी थी । उसने खीझ और शिकायत भरी एक नजर मुझ पर डाली । मुझे उम्मीद थी कि वहां चहल-पहल होगी । वनमाला को बधाइयों का अंबार लगा होगा । प्रिंसिपल उसे बुलाकर तारीफ करेगा । कॉलेज के लड़के-लड़कियां उस पर प्रशंसा से झूमेंगे, लेकिन वैसा कुछ न था । था तो केवल स्टॉफ की आंखों में झांकता एक तटस्थ भाव, जो यह बता रहा था कि वे असलियत जानते हैं । तारीफ की जगह उन आंखों में वनमाला के लिये बेरुखी, वितृष णा और नफरत भरी थी । मुझे वैसी प्रतिक्रिया अच्छी न लगी । एकांत में हम मिले तो वनमाला ने बताया था कि स्टॉफ में तो एक ने भी उससे उस बारे में बात तक नहीं की । हां, सुबह-सुबह उसे जानने वाले पारिवारिक परिचितों की कुछ ताजगी भरी बधाइयां और शुभकामनाएं घर में फोन पर मिली थीं ।

मैने वनमाला से पहले ही कहा था कि कोई पूछे तो कहना कि लेख उसने खुद तैयार किया है । उस विषय में केवल चर्चाएं मुझसे होती थीं, बहसें होती थीं। उस तरह प्रेरणा और मार्गदर्शन मात्र में

मेरा सहयोग था । लेख मैंने जब उसे विस्मित करने मई में उसके जाने से पहले ही लिख और उसी के अनुरोध पर बाकायदा टाइप भी कराके तैयार सौंपा था, तभी उसने स्टॉफ में अनेक को दिखाया था । लेकिन तब भी 'अच्छा है' की ठंडी प्रतिक्रिया स्टॉफ से मिली थी, जिसमें वितृष्णा की वह मुस्कान शामिल थी जो कहती कि "रहने दो, तुम क्या बता रही हो ? सारा रहस्य हमें मालूम है।"

वनमाला में मेरी आंखें अपार प्रतिभा देखती थीं । उसका साथ मेरे लिए प्रेरणा था और स्वप्न भी । उसके साथ मैं हमेशा चाहा करता कि काश सदैव के लिये हम साथ हों । मेरी रचनाओं में वह बसी रहे और वनमाला की रचनाएं उसके उस स्वप्न को साकार करें जो मेरी आंखें उसके लिए देखती थीं । हम दोनों इस मामले में हम-खयाल और हम-पसंद थे । तब भी वनमाला को जहां मैं प्रेरित करता कि वह निर्भय हो, खुलकर मेरे साथ आ जाए, लोगों की आलोचनाओं का जवाब दे और हमारा साथ निर्द्वन्द हो, वहां वनमाला खुद अपने को असहाय और लाचार पाती थी । उसमें आत्मविश्वास जगाने की मेरी कोशिश निष्फल हो जाती थी । वह सोचती, वैसा करने का भावुक निर्णय लेती, लेकिन घर और बाहर के दबावों से फिर टूट जाती थी ।

किस्तों पर किस्तें छपती गयीं । वनमाला मुझे देखती, लेकिन वही उदास नजरें उसमें मैं देखता । जिस लेख से उसे तारीफ और यश की उम्मीद थी, वह उसके लिए लोगों की ईर्ष्याऔर नफरत का कारण बन गया था । संदेह की आशंका को टालने उसने भय से पहले ही घर में कह दिया था कि मैं उसकी मदद कर रहा था, मैंने वह लेख उसके लिए तैयार किया था । तब भी विश्वास जीतने की उसकी आशा तब धूमिल हो जाती जब उसका पति अपनी खीझ और शिकायत से उसे प्रश्नित करता । लेखों के छपने के बाद एकाध बार कभी वनमाला के घर पर बैठा था। चर्चाओं के बीच वनमाला की तारीफ करते वक्त मैने वह सारा कुछ पढ़ लिया था, जो ऐसे मौकों पर मेरी उपस्थिति और प्रशंसा के दौरान मेरी प्रिया के पति की आंखों और उसकी भारी ऊबड़-खाबड़ आवाज में लिखा होता था ।

बाद में वनमाला ने स्पष्टतः खुलासा करते मुझसे कहा था कि- "आप क्या समझते हैं कि मेरे मिस्टर आप से मेरी तारीफ सुनकर खुश होते हैं ? गलतफहमी छोड़ दीजिए । उस दिन जब आप मेरी तारीफ किए जा रहे थे, तब उन्हें बुरा लग रहा था और मन ही मन वे चिढ़ रहे थे । उन्हे ईर्ष्या हो रही थी। उनका बस चले तो पी-एच.डी. की बात दूर रही, नौकरी छुड़ा वे मुझे घर बिठा दें ।"

सर्पयुग्मों की रचनात्मक रेखाकृति : मंगल-परिणय

'जब मैं और आप हैं तो तीसरे की जरूरत क्या ?"

वनमाला जैसी भी थी मुझे कुबूल थी । फिर भी कभी-कभी मेरा मन इस बात के लिए दुःखी होता, अफसोस करता कि अपने दबावों और दूसरों के खयालों के खयाल से मुझे अनदेखा क्यों कर जाती है । मुझे बहुत बुरा लगा जब पूरा लेख तैयार कर मैने उसे सौंपा था और वह थी कि अपने लेख पर, जाने की तैयारियों पर मेरे ही सामने चहकती हुई गैरों से बातें कर रही थी और मौन मैं उसे देखता रहा था । इतनी अवसादग्रस्त और कंजूस कि निहायत तटस्थ और सूखे धन्यवाद के कुछ शब्दों को छोड़कर, जो बड़ी जल्दी में मानों भय में परोसे गए थे, उसने कोई बात न की थी । काश, वह कभी समझ पाती कि उसके ऐसे उदास व्यवहार से मेरे मन पर क्या बीतती थी, जो उससे चौबीसों घण्टे बातें करने आतुर और उसकी एक झलक पाने आंखें बिछाए रहा करता था । मेरे मन को समझ पाने उसकी पर्वाह करने की जगह मुझसे निकटता के आभास को दूर रखने की चिंता उसे अधिक सताती थी । थोड़ी भी मुसीबत का भय उसे मुझसे दूर कर देता था । मैंने अनुभव से पाया था कि दो ही स्थितियां ऐसी होती थीं जब वनमाला मेरे साथ के मामले में सहज मूड में हुआ करती थीं । एक तो उन दिनों और क्षणों में जब उसके चित्त घर पर की अप्रिय स्थितियां और समस्याओं का दबाव न हो । दूसरे तब, जब पुरुषों खास तौर पर हमारे साथ पर गौर करने वाले मेरे और उसके वर्ग के समवयस्क कुछ

पुरुष साथियों की निगाहों में वह मेरे साथ दिखाई पड़े । भोलाबाबू, उसके विभाग में चुटकुलेबाज कुटिलाक्ष, विभाग को लिफ्ट देने की बजाय औरों के साथ देखकर अप्रकट ईर्ष्या से भरा विपुल, समय-असमय स्थितियों को भाँपता और चुटकियां लेता चित्रकार वगैरह सारे इसी कोटि में थे । अन्य पुरुष साथी भी थे । वनमाला स्टॉफ में अपने को सब से अलग और काबिलतर समझती थी। इसीलिए मुझे छोड़ सारे उसके लिए प्रायः फालतू और सामान्य कोटि के लोग थे । वह मुझे मानती थी और मैं उसे। वह खुश थी कि उसके लिये मेरी चाहत और सद्भावनाओं ने उसकी काबिलियत पर मुहर लगा दी थी । औरतों की तो उसे खास तौर पर पर्वाह न थी । उनका मेरे इर्द-गिर्द फटकना भी नापसंद था, बात करने की बात तो दूर रही ।

कॉलेज में लिखने-पढ़ने गंभीर रचनात्मक क्रियाकलापों के प्रति प्रायः लोगों का रुझान नहीं था । दिया हुआ सरकारी काम सरकारी ढंग से ही निबटा दिया यही उनके लिए काफी था । मेरी दिलचस्पी एक ऐसी पत्रिका के प्रकाशन में थी जो कॉलेज के छात्रों और स्टॉफ की रचनात्मकता को प्रेरित और उजागर करे । प्राचार्य डॉ. नलिन जी मित्रवत और हमखयाल थे । उन्होंने मुझ पर विश्वास करके यह जिम्मा दे दिया था । मुझे पूरी छूट थी कि जिसे चाहे साथ रखूं । मुझे तो वनमाला पसंद थी । वनमाला से मैंने राय ली । मेरे साथ का हर काम उसे पसंद था । दिल-दिमाग, विचारों के तार ऐसे जुड़े थे कि किसी काम के करने ढंग, उसकी कल्पना पर बढ़-चढ़कर हम एक-दूसरे की तारीफ करते थे ।

मैने सुझाया- "हम दोनों ही साथ रहे आए तो लोगों की निगाह में चुभेंगे । किसी तीसरे को साथ लें तो **?"** उसने दो टूक शब्दों में मुझसे कहा- "आप चाहें तो वैसा कर सकते हैं, लेकिन मेरी शर्त यह है कि भोलाबाबू को आप ने रखा तो मैं आप के साथ नहीं काम करूंगी ।"

भोला से उसे न जाने क्या नफरत थी **?** और-और नामों का खयाल मुझे आता रहा । एक-दो नाम मैंने सुझाए भी, लेकिन सहमति न मिली । वनमाला ने खीझकर कहा- "जब मैं और आप हैं तो तीसरे की जरूरत क्या **?** बेकार की बाधा ही रहेगी ।" मैं उससे सहमत हुआ ।

जब-तब बैठते, बातें करते, रूप-रेखाएं बनाते हम दोनों ही काम करते रहे । किसी को कुछ भी लगता रहा हो, हमें पर्वाह नहीं थी । जाहिर है कि पत्रिका छपी और बढ़िया छपी । ठोक-पीटकर, सुधारकर, मनाकर हमने रचनाएं एकत्रित और संपादित की थीं । भोला का लेख मुझे ठीक-ठीक लगा था । मैंने कहा- "इन्होंने तो उम्मीद से ज्यादा ही अच्छा लेख लिखा है ।"

वनमाला का मुंह बना- "चोरी का काम है, तो अच्छा क्यों न होगा । खुद वे तीन लाइन नहीं लिख सकते । एक रोज आए थे । 'इंडिया टुडे' पत्रिका को मेरे यहाँ आकर मांग ले गए थे । उसी की नकल मार दी है । वह उसकी हंसी उड़ाती हुई बोली- "ऐसे ही हैं, बौड़म टाइप के । एक रोज सुबह-सुबह डिब्बा ले पेट्रोल मांगने आ गए थे, गिड़गिड़ा रहे थे पेट्रोल के लिए ।"

मेरी समझ में भोलाबाबू के प्रति वनमाला की चिढ़ समझ से परे थी । चिढ़ का कारण यह भी शायद था कि भोला की समझ और बातें तर्क से परे, झूठी और गोलमाल होती थीं । वनमाला ही नहीं, सारे लोग उसका मजाक उड़ाते थे । दूसरे यह कि कुर्सी पर चाहे जो भी हो, भोला उसका पिठ्ठू हुआ करता था । उसकी ख्याति इसी रूप में थी । कई लोगों की शिकायत थी कि परीक्षाओं के कुछ रुपये उन्हें दिए नहीं गए थे । पहले ही करा लिए दस्तखत के साथ हिसाब भेजकर रुपये वह हजम कर गया था । एक रोज अपने मुंहफट स्वभाव के अनुसार मैंने वनमाला के सामने ही भोला को इसी वृत्ति के लिए फटकार दिया था । उसने वनमाला को नाराजगी से देखा था और झिड़की लगाई थी । वनमाला, नीलांजना और अन्य सभी को ऐसी शिकायतें थीं, पर मुंह खोलने से लोग संकोच करते थे ।

उस दौरान सब कुछ ठीक चला सिवाय इसके कि वनमाला की संगत और चाहत में जब-तब मैं सुबह, रात, दोपहर डरता-डरता भी घर या कॉलेज उसे फोन पर बैठता । कई बार मामला ठीक-ठीक रहता, लेकिन कभी-कभी यह फोन झगड़े का कारण बन जाता । उसका सूजा हुआ मुंह और बेरुखा गूंगापन उसका मूड मुझ पर जाहिर कर जाता था ।

पत्रिका में हमारी फोटो पृष्ठ के बीच में परस्पर आलिंगित सर्प-युग्मों की रचनात्मक रेखाकृति के साथ अगल-बगल छपी थी । जान-बूझकर मैंने वैसा नहीं किया था, बल्कि मुद्रक की वह अपनी समझ या शरारत थी । मुझसे तो किसी से ने कुछ नहीं कहा था, लेकिन जरूर उसके सामने लोगों ने इस पर चुहल की होगी । उसके घर भी उस पर तीर बरसे होंगे । पत्रिका की सफलता और उस पर गर्व तो पीछे रहे, वनमाला का उखड़ा मूड और सूजा चेहरा मेरे सामने आता था । मैंने कहीं एक रोज देखा था कि शरारत से किसी मनचले ने फोटो के ऊपर मंगल-परिणय लिखकर फाड़ फेंका था । यह अजीब सिलसिला था कि मेरे साथ से उभरती उसकी प्रतिभा मेरी छाया से ही वनमाला के लिए व्यंग्य और अपमान की वजह बनती जा रही थी । इससे पहले कि उसके होठ और उसका दिल खिले, वनमाला मुरझा जाती थी ।

रुठना और मनाना, प्यार और विग्रह हमारे बीच स्थायी नियम बन गए थे । एक रोज हम साथ बैठे काम कर रहे थे । वनमाला जानती थी कि मेरा उसके साथ बैठना काम के अलावा भी एक काम था । मैं उससे चुहल करता और मेरा मन उसे भी चंचल कर जाता । मेरी प्यार की बातों से विचलित वनमाला अपनी परिचित अदा से बोली- "प्लीज़ नइँ ना, ऐसे में काम कैसे होगा । मैं उठ कर चली जाती हूँ । अन्यथा न आप काम कर पायेंगे, न मैं ।"

वह जानती थी कि मैं किसी भी हालत में उससे दूर जाने वाला नहीं था । अधिकार का ऐसा आत्मविश्वास कि इस तरह मुझे दुःखी कर मजा लेना उसकी आदत बन गई थी । मैंने कहा- " ठीक है मेरा साथ पसंद नहीं तो मैं ही चला जाता हूँ।"

मुझे उठता देख वह बोली- "रहने दीजिए, मुझे मालूम है आप नहीं जाएंगे ।" छेड़ की मुस्कुराहट उसके चेहरे पर थी । कहा- "और फिर आप चले जाएंगे तो ये काम कौन कराएगा ?"

वनमाला की आंखों में झांकते मैने उदासी और क्षोभ से कहा- "जाने क्यों मुझे चोट पहुंचा कर ही तुम्हें खुशी होती है । तुम अच्छी तरह जानती हो कि तुम्हारे बगैर में रह नहीं सकता । इसीलिये तुम ऐसा कहती हो । तुम अपनी जगह बनी रहो, मैं कभी न बदलूंगा । जो जगह मैंने चुन ली है, वहीं बना रहूंगा । मुझे ऐसा लगता है कि कुसूर मेरे प्रारब्ध के पूर्वजन्मों का है । याद रखना मेरी अंतिम सांस तुम्हारे नाम को साथ लेकर जाएगी । अगले जनम में भी ।" वह मुझे चंचल नेत्रों और होठों की हल्की मुस्कान के साथ निहारती यूं देख रही थी जैसे उसके सामने मासूम बच्चा बैठा हो । मैं कह रहा था- "याद रखो कि एक जनम तो क्या, अगले जनम में भी, जन्मों तक मैं तुम्हारा पीछा करता रहूंगा ।"

वह मजे लेती हंस रही थी "अरे बाप रे ! तब तो आप मेरी मुसीबत हो जाएंगे ।"

इसी दौरान अनुराधा ने कमरे में कदम रखा । हम दोनों चुप हो गए थे । वनमाला का मुझे चिढ़ाने का मूड अभी बरकरार था । उस रोज वह खुश थी । उसके सामने प्रतियोगिता में छात्रों के लिखे निबंधों का बंडल खुला हुआ था ।

अनुराधा ने बातें करते फिर चुप होते हमें गौर कर लिया था । पूछा- "क्या चल रहा है ?" वनमाला ने चपल आंखों से मेरी आंखों में झांका और कहा- "बता दूं, कह दूं अनुराधा मैडम से ?"

अनुराधा ने पूछा- "क्या बात है ? कोई खास बात है क्या ?" वनमाला ने शरारत से बात बदल दी । बोली- "कुछ खास नहीं रे । ये निबंध देख रही हूँ। कितनी गलतियां करते हैं ? क्या लिखते हैं कुछ समझ में नहीं आता ।"

क्यों-क्यों छिपाऊँ ? मैं तो इसे ऐसे ही ले जाऊँगी

तुम अपनी नाप की चप्पल छोड़कर बड़ी साइज के पीछे क्यों भागते हो ?"

नाजों और नखरों के बीच रूठने और मनाने के ढेर से प्रसंगों के बावजूद भी वनमाला उन दिनों मेरे साथ थी । जब हस्तक्षेपी और खोजी निगाहें न होती, लाईन क्लीयर होती तो यूं मौज होती जैसे सरल

बच्चों की तरह हम साथ बैठ बजे कर रहे हों । परीक्षा शुरू होने के दिनों में खुद प्राचार्य नलिन जी हमारे ढाल थे । उन्हें वनमाला में कोई वैसी दिलचस्पी न थी, जैसी मेरी थी । उनकी उपस्थिति में उनके बहाने बातें करते हम एक-दूसरे की नाजुक अदाओं का जायजा लिया करते थे । कभी अखबार से चेहरा छिपाती और कभी उसके बीच से मुझे झांकती थी, कभी मजाक में आमलेट और मछली का जिक्र कर मेरे टिफिन लाने वाले प्रसंग पर चिढ़ाती वह जब भी समय निकलता मेरे साथ एकांत में पत्रिका के काम के बहाने बैठती । पत्रिका तो बहाना था बैठने का । काम तो मेरा ही था ।

परीक्षाओं के उस दौर में मैं और वनमाला प्राचार्य और भोला की अनुपस्थिति में प्राचार्य कक्ष में साथ-साथ बैठ जाते और घंटों काम करते । बीच-बीच में
'काम करना' दिखाई पड़ने के लिए इसे या उसे बुला भेजते कि एन.सी.सी. की रिपोर्ट आप ने दी नहीं है, बना कर दीजिए ,या खेलकूद की रिपोर्ट अभी तक नहीं आई वगैरह । वनमाला पर लिखी गई प्रेम कविताओं के बीच अपनी आम कविताएं मिला मैंने बाकायदा एक संग्रह बना लिया था । कम्प्यूटर से पुस्तकाकार रूप में बनी प्रतियों को मैं उस रोज बाकायदा चमकीली पन्नियों में फीते से लपेट साथ ले गया । संभवतः उस साल का वह दिन वनमाला का जन्मदिन ही था । मैंने कहा- "आज तुम्हें मेरी पुस्तक का विमोचन करना है ।"

लजाती उसने कहा- "मैं भला कहां इतनी योग्य कि आप की पुस्तक का विमोचन करूं ।"

"प्यारी वनमाला, मेरे लिए तुमसे बढ़कर कोई नहीं । और फिर यह पुस्तक तुम्हारी ही तो है । तुमने ही तो मुझमें समा इसे रचा है ।" वह प्रसन्नता से दोहरी हो गई । उसने फीते खोले । एक प्रति मैंने उसे सौंपकर कहा- "नाम लिखने से शायद गड़बड़ होगी अन्यथा मैं प्यार के लब्जों के साथ तुम्हारा नाम लिख होता । कहो तो लिख दूं ।"

"घर में देखेंगे तो मुसीबत होगी ।" उसने कहा ।

मैने छिपाकर ले जाने की बात कही तो पूछा- "क्यों-क्यों छिपाऊँ ? मैं तो इसे ऐसे ही ले जाऊंगी।" संभवतः वनमाला में अपना गौरव उजागर करने की भी कामना रही होगी । फिर बोली- "अभी रहने दीजिए मैं बाद में यहीं ले लूंगी और पढूंगी ।"

उसी दरम्यान परीक्षाओं में नकल के मामले जांच रही उड़नदस्ता की टीम आ गई थी । सभी मित्र थे । अनन्त ने हमें देख लिया था । वापस घर लौट चलने के उसके आग्रह पर मैंने हिचक दिखाई थी । अनंत ने जैसे मामला भाँपते हुए कहा था- "अरे छोड़ो आज बहुत हो गया । अब मैडम के साथ कल बैठ लेना ।"

मैंने वनमाला से बात की और सामान समेट जीप की ओर बढ़ा । वनमाला भवन के मुख्य द्वार से बाहर निकल हाथ हिलाती मुझे विदा कर रही थी । उसने पूछा- "कल फिर बैठना होगा । आप आएंगे ना ।" मैंने कहा- " हां, जरूर आऊँगा ।" उसकी ओर निहारता उसे आंखों में कैद किए मैं चल पड़ा ।

दूसरे दिन प्राचार्य नलिनजी ने चुटकी ली "आप दोनों कल काफी देर तक जमे रहे सुना है । लोग बता रहे थे । अब तो अच्छी पट रही है आप लोगों में लगता है ।"

उन्हीं दिनों खबर मिली, शायद उसी दिन कि भोला को परीक्षा के दौरान संस्था में उपस्थिति बताकर कहीं और कापियाँ जांचने के आरोप में निलंबित करने का आदेश हो गया है । सूचना जिज्ञासा की तरह डॉ. नलिनजी के प्रश्न के रूप में ही आई थी ।

वनमाला का मूड, उसका व्यवहार मेरे लिए रहस्यमय था । वह मुझसे मेरे एकांत में कहती कुछ थी और दिखाई कुछ और पड़ता था । सामने होने के सप्ताह के छः दिनों में से अमूनन पाँच दिन ऐसे होते जब वनमाला का चेहरा अवसाद से सूजा दिखाई पड़ता, आंखें उदासी के सूनेपन से भरीं और मूड अन्तस्थ उदासी और अदृश्य लाचारी की खीझ से भरा होता । सब से विचित्र तो यह कि अपनी ऐसी मुद्रा के साथ वह मुझी से नहीं, सारी भीड़ से कटी रहती । मैं समझ लेता कि घर में वह भूचालों से गुजर रही है । नाराजगी की छोटी सी बात हुई कि उसका आदमी मुझे लक्ष्य कर प्यार, मोहब्बत, आशिकाई के आरोपों से उसे नोच डालता होगा । जैसी वनमाला की हालत होती थी उससे मुझे संदेह होता कि उसका पति उसे मारता-पीटता भी रहा होगा ।

उसकी छबि मूडी, अज्ञात समस्याग्रस्त, रूखी और बेकार की अकड़ में जकड़ी औरत की हुई जा रही थी । प्रकटतः मैं ही ऐसा ग्राहक था जो सारे कुछ के बावजूद उसके पीछे भागता था । सब कुछ देखते और जानते हुए भी न जाने कौन सी अज्ञात प्रेरणा थी, जो उसे रहस्यमयता से और ज्यादा मुझे बॉधती थी । वह मेरी नियति बन गई थी और मैं उसके पीछे भागता जा रहा था । कई दफा हमारे बीच घट रहे को लक्ष्य कर, विशेषत: मेरी मायूसी को लक्ष्य कर लोग आश्चर्यपूर्वक मुझे देखते और समझाते थे कि क्यों बेकार में मैं उसके पीछे अपना समय बर्बाद कर रहा हूं ।

एक बार स्टॉफ-रुम छोड़कर जाती मुंह फुलाई वनमाला को मैंने रोकना चाहा था- "रुको, तुमसे कुछ बात करनी है ।" वनमाला मुझे अनसुना कर बगैर रुके चली गई थी। तब वहां अनुराधा मौजूद थी। स्टाफ केऔर अनेक लोग भी साथ बैठे हुए थे। वनमाला का बेरुखा रवैया देख भोलाबाबू ने उन सब के बीच मजाक में टिप्पणी की थी- "छोड़ो यार उसको । जब वो तुमसे बात नहीं करती, तो बेकार क्यों तुम पीछे पड़े हो उसके । तुम अपने साइज की ढूंढो न **?**" अनुराधा की ओर इंगित करते उसने कहा था- "जो तुम्हारे लायक है, उससे तुम क्यों नहीं संबंध रखते । ये ठीक है तुम्हारे लिए।"

मुझे नहीं मालूम कि भोला का का आशय क्या रहा होगा **?** उसकी बातों में कुछ-कुछ तो आपसी वृत्तियों और योग्यता की तालमेल की बात दिखाई पड़ती थी फिर कुछ-कुछ ऐसी भी, जिसमें कद-काठी और स्त्री-पुरुष जननांगों के तालमेल का संकेत था । उसने कहा था- "तुम अपनी नाप की चप्पल छोड़कर बड़ी साइज के पीछे क्यों भागते हो **?"**

कभी-कभी बहुत गंभीर और विवादजनक बातें भी भीड़ के वातावरण को अनछुई छोड़ जाती हैं । उस दिन वैसा ही हुआ अन्यथा बहुत बड़ा बवाल उठ खड़ा होता । मैंने अनुराधा पर गौर किया था । निश्चय तो उसने उसे सुना और समझा था, पर कहा कुछ नहीं । भोलाबाबू प्रायः विवादों से दूर रहता था, लेकिन दोस्ती में इस तरह की संबंधित टिप्पणी यदा-कदा फेंक दिया करता था । वनमाला से सभी की खुन्नस थी, इसलिए जाहिर है कि वह टिप्पणी मेरे पक्ष में और सद्भावनापूर्वक थी । उसमें यथार्थ का निश्चित संकेत तो था ही, जो बहुत समय के गोपन, गहरे निरीक्षण के बाद अचानक यूं व्यक्त हो उठा था ।

न जाने किसी को इमोशनली एक्सप्लाइट करके उन्हें क्या मिलता है ?

"आजकल मैं देखती हूं कि कुछ औरतें आदमियों से भी आगे निकली जा रही हैं ।
न जाने किसी को इमोशनली एक्सप्लाइट करके उन्हें क्या मिलता है ? मुझे तो ये बिलकुल अच्छी नहीं लगता ।" अनुराधा

मेरी आंखों के सामने दो छबियां थीं। कहां जीनत थी और कहां यह कहां वनमाला **?** एक इतनी साफ और सरल कि जिसे समझने की उलझन ही न थी। दूसरी यह जिसे उलझनों के बीच से गुजरकर भी समझना मुश्किल है। अनुराधा मेरे करीब बाद में आई थी। उसको पहली बार मैंने वर्षों पूर्व तब देखा था, जब वह कहीं और हुआ करती थी । यूनिवर्सिटी के कला भवन के दरवाजे पर आंखों को चुंधियाती पहली झलक मेरी आंखों में अब भी बसी है । फिर ऊपर उस हाल के बाहर उसे मैंने पाया, जहां कापियां जांची जा रही थी । चुस्त एन.सी.सी. आफिसर की वेशभूषा में उसकी जवानी का सौंदर्य समाया न पड़ रहा था । जैसे मेरी निगाहों के सामने सुंदरता की देवी आ खड़ी हो । जिसकी ओर भोलाबाबू संकेत किया था, वह अनुराधा बहुत अधिक सुंदर थी । नैन, नक्श जैसे यत्नपूर्वक तराशे हुए, ललचाते गुलाबी होंठ और उनके बीच लहराते, मोती की आभा को मात देते दॉतों की चमक । उसका पूरा बदन गुलाबी आभा से चमक रहा था । चेहरे पर ऐसी ताजगी जो निगाहों को तरोताजा कर दे । उभरे हुए नशीले उरोजों के साथ चपल मुद्रा और चंचलता की ऐसी तरंग जो मानों सारे वातावरण को अपनी सम्मोहता से भरता, उससे बचने की चुनौती दे रहा था । काया छरहरी, कद

मुझसे दो इंच छोटा, पर्मिंग किये यत्न से संवारे सुंदर उसके सुनहरे कत्थई बाल जो देख-रेख की नियमित साज-संभाल से हमेशा आकर्षित करते थे ।

भाषा, साहित्यक और रचनात्मक कलाओं के प्रति उसकी बारीक रुझान, स्वभावजन्य सौजन्य और विनम्रता-सारा कुछ ऐसा कि अनुराधा सभी के लिए आकांक्षा और आकर्षण का केंद्र थी । ऐसा भी नहीं कि वह मेरे प्रशंसकों में नहीं थी । वनमाला की तरह उसमें भी यह अहसास था कि वह विशिष्ट थी । आलतू-फालतू आम स्टॉफ के लोग उसे नापसंद थे, जिन्हें तनखवाह के काम की खानापूरी और चालू पाठ्य-पुस्तकों के अलावा कुछ सरोकार न था । अनुराधा मुझसे यह बात कहा करती थी और मेरी बातें मेरा गहन अनुभव, बारीक बातें उसे लुभाती भी थीं । मैंने अनेक प्रसंगों में यह अनुभव किया था कि वनमाला पर मेरा झुकाव उसे अजीब और नापसंद लगता था । विस्मय और खीझ उसकी आंखों से झांकते थे । एक बार तो वनमाला के रवैये से मुझे किंचित परेशान देख वनमाला के सामने ही उसने व्यंग्य में एक जुमला फेंक दिया था -

"आजकल मैं देखती हूं कि कुछ औरतें आदमियों से भी आगे निकली जा रही हैं । न जाने किसी को इमोशनली एक्सप्लाइट करके उन्हें क्या मिलता है ? मुझे तो ये बिलकुल अच्छी नहीं लगता ।"

उसे सुनती मुंह भुलाए गंभीर वनमाला यह सुनती बाहर निकल गई थी । फिर वैसा क्यों न हुआ जैसा भोला कह गया था ? शायद इसलिए कि चित्त और भावना से अपार सुंदरता और कोमलता के बावजूद भव्य लोगों का साथ मुझमें कहीं निराशा पैदा करता था । शायद वह हीन भावना थी, जो यह अहसास पैदा करती थी कि भौतिक सुविधा-संपन्नता से भरी भव्य, नाजुक आकृतियां भला मुझ जैसे गंभीर किताबी कीड़े , भदेस रहन-सहन और वस्त्रों वाले मुझ गरीब को क्या घास डालेगी । शायद यही रहा होगा जो मेरे सारे प्रभावों व अनुकूल वातावरण देती परिस्थितियों और इस वर्ग की कामिनियों की मुझमें रुचि के बावजूद उनके ज्यादा अंदर पैठने की मेरी आकांक्षा को दबा देता था । जीनत के मामले में मेरे साथ ऐसा ही हुआ था ।

मुझे याद आता है जीनत के साथ एकांत में उठना-बैठना, कविताओं का पढ़ना-सुनना, कविताओं सी ही स्वप्नलोकीय बातें और परम आत्मीयता का अहसास, एक-दूसरे के अभावों को महसूसने की हाय, ठंड की गुनगुनी धूप में साथ बाहर बैठ जाने और समय को पंख लगा देने वाली निजी बातों का दौर, रूठना-मनाना और चुलबुली यदा-कदा की छेड़छाड़ । जैसे अभी-अभी घटा हो सब कुछ मेरी स्मृतियों में है। कॉलेज की पिकनिक पर लड़के-लड़कियों और जीनत, नीलांजना वगैरह के साथ टीम एक आरामदेह मिनी-बस में निकली थी । मेरी अपनी कोई योजना न थी, लेकिन मुझे वहां अनुभव और साथ में अनुकूल पाकर ये ढूंढते हुए मेरे घर आ पहुंचे थे । उस समय तो पत्नी भी युवा ही थी । मनाकर तैयार कर हमें भी साथ ले चलने का आग्रह था । और इस तरह हम धार और मांडू की यात्रा पर निकल पड़े थे । रास्ते में फिल्मी अंताक्षरी और फिल्मी गानों की धूम-धाम में मैं भी शामिल था । भीड़ में भी जीनत मेरी आंखों का चुंबक थी और मेरे मन से वह अपना दिल चस्पा किए हुए मुझे हर पल विशेष बनाए जा रही थी ।

मांडू में बिही के पेड़ों और पुरानी धर्मशाला-नुमा मंदिर के बीच हमारा डेरा था । रसोई की तैयारियॉ चल रही थी कि जीनत ने मुझे टोका । जैसे अन्य साथी, मेरी पत्नी उसके लिए अनुपस्थित थे, जीनत ने मुझसे कहा- "चलिए न, यहां बैठे बोरियत होगी, अपन कहीं टहल कर आते हैं ।"

हम दोनों भीड़ से बाहर यूं टहलते रहे जैसे साथ टहलने के लिये ही बनाए गए हों । उजड़ा सा पुराना खंडहर सा धर्मशाला-नुमा मंदिर-परिसर देखा, सूखी झाड़ियों से भरे उजाड़ खेतनुमा पठारों में टहलते रहे, निर्मल बच्चों की तरह बतियाते रहे और यूं घूम-फिर कर हम साथ लौटे थे । खाना परोसने-खाने, घूमने और बतियाने के दौरान, और फिर धार के मंदिर के परिसरों में घूमते, भीड़ के बीच और भीड़ से अलग हम यूं साथ रहे जैसे भीड़ के साथ हम नहीं, बल्कि हमारे साथ भीड़ आई हो । पुरातात्विक मंदिर के अंदर प्रवेश करने में उसे झिझक थी । वह मुसलमान थी और शायद यह भय रहा हो कि गलती से भी अगर उसके मुसलमान होने की बात वहां उजागर हो जाती है, तो परेशानी हो सकती थी । उन दिनों वैसे भी भगवान या खुदा को लेकर नहीं बल्कि खंडहर हो चले मंदिरों की मिल्कियत को लेकर राजनीति चल रही थी। कभी-कभी तो ऐसा लगता

जैसे महन्तों और मुल्लाओं के झगडों से भयभीत होकर वह एक अपनी जगह छोड़कर अंर्तधान हो गया है जिसे एक खुदा के और दूसरा भगवान के नाम से पुकारा करता था। जीनत का अस्तित्व मेरे साथ जुड़ा था । हम दोनों हिन्दू या मुसलमान होने से परे कहीं उतने ऊपर थे, जहां धर्मान्धता से धुंधलाई नज़रों की पहुँच नामुमकिन थी। जीनत का भय दूर करता मैं उसे मंदिर के शिल्प की बारीकियाँ दिखाता रहा, मिथुन-रत मूर्तियां दिखाता रहा। अंदर-बाहर मेरे साथ चिपकी जीनत निसंकोच उन पलों का आनंद उठाती जिज्ञासा से उन्हें देखती और समझती रही। उसे मैने समझाया था कि मंदिर के बाहरी आवरण में तराशा वह शिल्प इस सच को दर्शाने वाला था कि यह संसार चाहे जितना बेमानी दीख पड़े लेकिन इसी से गुजरकर वहां जाया जा सकता है जो अदृश्य और लोकातीत है। वह सपने सा झूठ होगा भी तो उस जादूगर के लिये जिसने उसे रचा है। उसके सपने का हिस्सा बने इस जगत और उसके बासिन्दों के लिये तो यह संसार ही जमीनी सचाई है। बुद्धिमती जीनत बहुत उदार विचारों वाली और संकीर्णताओं से कोसों दूर थी । मुसलमान कही जाती भी सुरुचि-संपन्नता, स्वभाव और संस्कृति में हजारों-हज़ार हिन्दू स्त्रियों से वह बेहतर थी । इतनी कि उसे पाकर मुझ सा कोई भी हिन्दू अपने को गर्वोन्नत समझता । उस दिन पिकनिक की गाड़ी को लौटते बहुत रात हो गई थी । वह दिन मेरे लिए मादक बेहोशी का था । वह रात मेरे लिए और शायद जीनत के लिए भी गुदगुदाते स्वप्नों की थी ।

उस दिन नीलांजना भी साथ रही आई थी -सरल, सौम्य और विनीत । लंबी, छरहरी सुंदर काया जिसकी आंखों की घनी काली पुतलियाँ इतनी आकर्षक थीं कि कालिमा भी उससे फिसल कर छिटक पड़े । लेकिन नीलांजना से पारस्परिक अकृत्रिम-आकर्षण और संबंधों के बावजूद वह दिन और रात जीनत के थे । साथ के उन क्षणों में जीनत और मैं यूं जुड़े कि उसके बाद हम एक-दूसरे से जुड़ते ही चले गए थे। मेरी आंखों के सामने दो छबियां थीं। कहां जीनत थी और कहां यह कहां वनमाला ? एक इतनी साफ और सरल कि जिसे समझने की उलझन ही न थी। दूसरी यह जिसे उलझनों के बीच से गुजरकर भी समझना मुश्किल है।

वह तसल्ली प्रियहरि का केवल भ्रम था

वितृष्णा और रोष से वह भीड के बीच चिल्लाये जा रही थी - "जिस साली को धन्यवाद तक ज्ञापित करना नहीं आता, दो शब्द अपने मन से लिख नहीं सकती, उसे आप बीच में ले आए ?"

कुछ एक कमेटियों में खासकर अकादमिक, साहित्यिक कमेटियों में वनमाला का नाम दोनों की अघोषित रजामंदी से प्रियहरि के नाम के साथ जुड़ा था । वह खुद कला, विज्ञान और वाणिज्य की परिषदों का समन्वयक और परामर्शक था । रीमा, नीलांजना और वनमाला इन परिषदों की कार्यकारी प्रभारी थीं । औरों से प्रियहरि के संबंध व्यक्तिगत और ऊपर थे। बातें होती, विचार विमर्श होता। अदाओं के साथ सहज चुहल होती और वे मिलते बैठते थे लेकिन वनमाला की आदतों से तंग प्रियहरि उससे बात करने की अब कोशिश भी नहीं करता था। बैठकों की सूचना कागज से या फिर और किसी के जरिये भिजवा दी जाती थी।

उस एक दिन बॉस के खाली एकांत चैम्बर में सुबह साढ़े नौ बजे नीलांजना, रीमा और प्रियहरि एकत्रित थे। वनमाला को तो सुबह ही अपनी कक्षा के समय आ जाना था पर वह नहीं आई थी। वहां मौजूद सब के बीच सब-कुछ सहज चल रहा था। नीलांजना प्रियहरि के और प्रियहरि नीलांजना के साथ हमेशा सहज और प्रसन्न रहे हैं। दोनों की हर मुलाकात एक आत्मिक शांति के साथ खत्म होती थी। दोनों के कामकाजी संबंध, जो धीरे-धीरे निजी हो चले थे बगैर किसी तनाव का एहसास कराये मजे में बीतते थे। किसी भी कमेटी में

नीलांजना को साथ रखा जाना वनमाला को सखत नापसंद था। इन दिनों भी वनमाला का मूड प्रियहरि की तरफ बेरुखी का इजहार करते यही दिखाने का था। वनमाला जैसे जानबूझकर देर से आई थी।

नीलांजना को कागज-कलम सौंप प्रियहरि रूपरेखा लिखवाने में व्यस्त था। बीच-बीच में आपसी बातें भी उनमे जारी थीं। दोनों की निगाहें जब-तब टकरा जाती थीं। सब कुछ ठीक चल रहा था। अचानक वनमाला प्रकट हुई। आदत के मुताबिक उसने देर से आने, बैठक की सूचना के बारे में, और इसी तरह कुछ एक बातों पर उसने आते ही टिप्पणी की थी। नीलांजना और रीमा दोनों की आंखों ने कौतुक से नाराज वनमाला की अदाएं देखीं। जैसे वे कह रही हों कि लीजिए, अब ये आ गई और अब शांति गई।

वनमाला के पूछने पर कि क्या चल रहा है, उसी की शैली में उसने जलाने निहायत तटस्थ भाव और कुछ बेरुखी लिए प्रियहरि ने उसे संक्षेप में समझा दिया। नीलांजना की ओर उसने देखा जिसकी आंखें उसे मिलीं। प्रियहरि ने कहा - "नीला, चलो समय नष्ट न करो, आगे लिखो।"

वनमाला ने शिकायत भरी प्रश्न करती नाराज आंखों से पहले घूरकर प्रियहरि को देखा फिर वितृष्णा और उपेक्षा से नीलांजना के चेहरे पर नजर डालते उसके हाथ से रजिस्टर और कागज झटककर छीन लिए। वनमाला जैसे हुक्म दे रही हो प्रियहरि से बोली - "आप बोलिए, मै लिखूंगी।" उसकी वाणी में दृढ़ संकल्प था। उसकी मुद्रा अदभुत आत्मविश्वास से भरी थी। किसी में हिम्मत न हुई कि उसे चुनौती दे सके।

इस अचानक दखल से रीमा की आंखें आश्चर्य से फैल गई थीं। नीलांजना की आंखे जिनमे लाचारी भरी थी प्रियहरि की आंखों से पल भर को टकराईं। उसकी सुन्दर बड़ी-बड़ी आंखों की गहरी मायावी पुतलियों में शिकायत थी कि मेरे साथ ऐसा क्यों होता है। नीलांजना जानती थी कि उसके साथ होकर भी प्रियहरि वनमाला का था। इधर प्रियहरि नीलांजना को चाहता और उसका साथ देना चाह कर भी साथ न दे पा रहा था। वनमाला के अप्रत्याशित आतंक से सभी आतंकित और स्तब्ध थे। प्रियहरि कुछ न कह सका था क्योंकि उसके दिल ने वनमाला के दिल का गुस्सा पढ़ लिया था, जिसमें लिखा था - "इस नीलांजना की यह हिम्मत कि हमारी अनबन में मौका देख यह बीच में सेंध मार जाये ? और प्रियहरि तुम! याद रखो, तुम पर अधिकार मेरा है। चार दिन बात क्या बंद हो गई, तुमने इसे लिफ्ट दे दी।" जो कहना था वनमाला ने बगैर बोले प्रियहरि से कह दिया। वातावरण की असहजता के बावजूद प्रियहरि को दिली तसल्ली हुई। यानी यह कि वनमाला पर प्रियहरि ही नहीं जान देता, वह भी उस मरती है। इतना कि किसी और का उसके पास भटकना भी उसे नापसंद है।

उस बैठक के बाद फिर बैठकों की जरूरत ही न हुई। नीलांजना को वनमाला और प्रियहरि के बीच के रिश्तों का एहसास था। नीलांजना न जाने किस मिट्टी की बनी थी। कभी उसकी ईर्ष्या प्रगट हुई, न शिकायत। चुपचाप वह सारा कुछ देखती, सहती और अपने को पीछे खींच लेती थी। पीछे खीच लेने के बावजूद संबंध, वाणी की मधुरता, व्यवहार में कुछ बदलाव न होता हालांकि उसकी मासूम खूबसूरत आंखों में पास आने का वह पशोपेश प्रश्न की तरह अवश्य होता जो प्रियहरि को शर्मिन्दा कर जाता था। प्रियहरि के मन में कामना होती कि कभी नीलांजना भी विद्रोह कर मन में उसके प्रति छिपे उस अपनापे को प्रगट करे, जो उसके मन में था। लेकिन नहीं, वह नीलांजना के स्वभाव में भी नहीं था।

वनमाला के साथ फिर दो-तीन दिन तक बैठना-बतियाना चलता रहा और कार्यक्रमों की रूपरेखा बनती रही। प्रियहरि और वनमाला के बीच से अब रीमा और नीलांजना गायब पाई जा रही थीं। वनमाला चाहती थी कि समन्वित उदघाटन होने पर भी चूंकि विभाग और विषय उसका था, वह ही मंच पर प्रियहरि के साथ रहे। शेष दोनों महिलाओं की भूमिका वहां न रहे। प्रियहरि उसे समझाता रहा कि चूंकि यह आयोजन समन्वित है, नीलांजना और रीमा की भी भागीदारी वहां रहने चाहिए। उसने समझाया कि या तो विषय का प्रतिपादन वनमाला करे और संचालन नीलांजना करे - या फिर संचालन खुद वनमाला करे, और विषय का प्रतिपादन नीलांजना को सौंप दे। वनमाला इससे रूष्ट और असहमत थी लेकिन प्रियहरि की खातिर वह मान गई थी। दोनों के बीच एक बार फिर आत्मीयता और विश्वास का रिश्ता जीवित हो चला था। उससे प्रियहरि को तसल्ली थी। लेकिन कहां ? वह तसल्ली प्रियहरि का केवल भ्रम था।

अगले दिन सुबह दस बजे प्रियहरि अपने मित्र व साथी लेकिन अफसर नलिनजी के पास कार्यक्रम की रूपरेखा और तैयारी के बारे में चर्चा करने बैठा था। वनमाला अपनी क्लास में थी लेकिन नीलांजना प्रियहरि के साथ बैठी थी। नलिनजी ने सब देखा - सुना फिर कागज पर एक जगह इशारा करते हुए कहा - "इसे काटिए, संचालन वनमाला नहीं करेगी, आप करेंगे।"

प्रियहरि ने समझाया कि वनमाला की सहमति से यह रूपरेखा बनी है। वह अच्छी है, योग्य है इसलिए अवसर उसे ही दें और उसका ही नाम रहने दें। लेकिन नलिनजी माने नहीं। उन्होंने कहा - "आपसे बेहतर यहां कोई नहीं है। आप नहीं काटते तो मैं ही अपनी कलम से काट देता हूँ।"

नलिनजी वनमाला के मिजाज से अच्छी तरह वाकिफ थे। बोले - "वह कुछ न कहेगी, मैं उसे समझा दूंगा। वह कहे तो कह दीजिएगा कि नलिनजी ने ऐसा किया है।"

इस बीच वनमाला का नया शुभचिंतक यार विपुल भी आ पहुंचा था। उसकी ओर किसी ने तवज्जुह देने की जरूरत न समझी। अपने को उपेक्षित पा इधर-उधर झांकती अपनी जिज्ञासा लिए वह दो मिनट में ही वहां से चलता बना था। नलिनजी के कमरे से निकलकर प्रियहरि स्टॉफ-रूम में गया तो पाया कि तब-तक कला संकाय के लोगों की भीड़ वहां जम गई थी। वनमाला के बगल में कुर्सी जमाए विपुल बैठा हुआ था। प्रियहरि ने वनमाला से मुखातिब हो प्रशंसा के कुछ शब्द कहे थे। नलिनजी से चर्चा के दौरान वनमाला के न होने का उपालंभ प्रियहरि ने उससे किया। वनमाला को यह सूचना प्रियहरि ने दी कि खुद उसकी असहमति के बावजूद नलिनजी ने आग्रहपूर्वक संचालन से वनमाला का नाम काटकर उसका अपना नाम रख दिया है। वनमाला से उसने कहा कि - "अब जाओ तुम ही बात कर लो और समझाओ ।"

वनमाला प्रतिक्रियाविहीन स्थिति में प्रियहरि की ओर घूरती देख रही थी। इससे पहले कि वनवाला जवाब दे, उसकी बगल में बैठा विपुल चिल्ला उठा - "रहने दीजिए जनाब, यहां तो आप मैडम के तारीफों के आप पुल बांध रहे है, और वहां ? वहां मैं बैठा था। मेरे सामने आपने खुद इनका नाम कटवा दिया है और यहां आकर बातें बना रहे हैं।" जाहिर था कि विपुल का मकसद प्रियहरि को झूठा और मक्कार सिद्ध करना था। विपुल के झूठ पर प्रियहरि नाराज हो उठा। उसकी चालाकियां वह समझता था। उसने विपुल को जोर से डांटा कि वह झूठ बोल रहा है। वनमाला की ओर मुखातिब हो उसने बताया कि नीलांजना वहां मौजूद थी। उससे वनमाला पूछ सकती है कि क्या बातें हुईं।

प्रियहरि की कुर्सी के पीछे नीलांजना आ खड़ी हुई थी। उसने मुंडी हिलाई और अपनी सहज विनम्रता मे कहा कि 'हां प्रियहरि ठीक कह रहे हैं।'

शायद नीलांजना की कक्षा रही होगी। वह बाहर चली गई थी। यह संयोग ही था कि बचाते-बचाते भी नीलांजना हर बार वनमाला और प्रियहरि के बीच उपस्थित हुई जा रही थी। वनमाला को अचानक गुस्से का दौरा पड़ा। नीला का होना तो क्या उसका नामोल्लेख तक वनमाला के तन-बदन को जलाकर रख देता था। हालांकि वह वनमाला का भ्रम था, लेकिन निश्चय ही ऐसा संदेह उसमें आग की तरह भड़क उठा था कि ज़रूर नीला और प्रियहरि के बीच कुछ ऐसा था जिसके चलते जानबूझकर उसके खिलाफ साज़िश रची गई थी । ऐसे में इस वक्त नीलांजना का जिक्र वनमाला के प्रति निष्ठा की भावना के साक्ष्य और सफाई के लिए प्रियहरि करे यह उसकी सहन-सीमा के बाहर था। वनमाला क्रोध से बेकाबू हो चली थी। पूरे उन्माद से वह चीख पड़ी - "रहने दीजिए, मैं क्या कुछ नहीं समझती प्रियहरि। कार्यक्रम का सारा बोझ मुझ पर डाल रहे हैं और मेरा ही नाम आपने कटवा दिया? काम आप मुझसे कराते हैं, मीठी-मीठी तारीफ करते हैं और पक्ष दूसरों का लेते हैं। मैं सब समझती हूं अगर वे इतनी ही काबिल हैं तो इन्हीं से ही सारा काम क्यों नहीं करा लेते ?"

प्रियहरि स्तब्ध और लाचार दिखाई पड़ा। वह वनमाला को ही चाहता था, उसका पक्ष लेता था, लेकिन वनमाला की गलतफहमी उस वक्त वह दूर न कर सका। जाहिर था कि माकूल मौका देख वनमाला को किसी और ने भी खूब भड़का रखा था। उसके मन में यह धारणा बो दी गई थी कि प्रियहरि उसे बेवकूफ बनाता है - दरअसल चाहता वह वनमाला को नहीं, नीलांजना को है। ईर्ष्या से भरी वनमाला का स्वर बहुत ऊँचा था। उसे जैसे उन्माद का दौरा पड़ा हो। वितृष्णा और रोष से वह भीड़ के बीच चिल्लाये जा रही थी - "जिस साली को

धन्यवाद तक ज्ञापित करना नहीं आता, दो शब्द अपने मन से लिख नहीं सकती, उसे आप बीच में ले आए ?" वनमाला आपे से बाहर थी बीच में आपसी संबंधों के क्षणों का संकेत करती वह चीख-चीखकर प्रियहरि की कमजोरियां उजागर करने उतारू थी। वैसा करने में कुछ क्षण संबंधों की सारी मर्यादाएं उसने दरकिनार कर दी। वह चिल्ला रही थी - "अकेले में यही प्रियहरि मेरी तारीफ करते हैं, चापलूसी करते हैं और बाहर ? देख लो, यही मेरा ही पत्ता काटते हैं। उस साली नीलांजना में ऐसा क्या रखा है जो ये उसका पक्ष लेते है।"

वनमाला के ठंडा होने की आशा में अब तक प्रियहरि चुपचाप धीरज रखे था लेकिन न थम रही वनमाला की अनर्गल बातों, आरोपों से फिर वह भी उत्तेजित और आक्रामक हो उठा था। उसने समझाना चाहा था कि वनमाला समझने की कोशिश क्यों नहीं करती। विपुल झूठ बोल रहा है और उसे व्यर्थ ही भड़का रहा है। प्रियहरि ने उसे समझाना चाहा कि वह चीख क्यों रही है ? चीखती हुई औरों को गाली देती अपमानित क्यों कर रही है ? आखिर वे भी सह-योजकों में हैं। उन्हें गाली देना और कोसना ठीक नहीं है। रीमा वहां मौजूद थी। उसने प्रियहरि के कथन की तसदीक करते हुए कहा कि प्रियहरि ठीक तो कह रहे हैं। इन्होंने कुछ नहीं किया है। जिन्होंने किया है, जो कहना है उनसे जाकर कहा जाए।

वनमाला को न कुछ सुनना था और न उसने किसी की सुनी। गुस्से में उबलती वह प्रियहरि को ही कोसती, प्रताड़ित करती उससे झगड़ती रही। यह खयाल करके कि यह वही स्त्री है जिसे मैं चाहता हूँ, जिसका पक्ष लेता हूँ और तारीफ किया करता हूँ, प्रियहरि का मन पीड़ा से भर उठा। वनमाला का स्वभाव ऐसा ही था। उसे समझाने की कोशिश करता प्रियहरि वहीं अपने को अपमानित होता देख आत्मग्लानि से पीड़ित होता सुबककर रो उठा था। इस बीच नीलांजना फिर लौट आई थी। वनमाला के रोष और प्रियहरि की लाचार दयनीयता को वह मौन देख रही थी। प्रियहरि को वह सांत्वना देती ढाढस बंधा रही थी।

प्रियहरि को इस बात का भी अफसोस था कि ढेर से लोग मौजूद थे, लेकिन ऐसी अवस्था में उसका पक्ष ले वनमाला को समझाने कोई आगे न आया। यह ठीक है कि वनमाला से प्रियहरि के संबंध कुछ और थे लेकिन तब भी अपने ही उन साथी सदस्यों का अपमान, जो उसे बेहद चाहते थे। प्रियहरि को क्षोभ से भर रहा था। प्रियहरि नीला से, रीमा से और वहां मौजूद अन्य मित्रों से यह कहता सहानुभूति की उम्मीद था कि वे खुद सोचें कि वनमाला के लिए उस प्रकार की उग्रता, गाली देना, तथा अभ्रदता का व्यवहार क्या उचित था ? कुछ देर बाद यह देख कर कि सचमुच उसके व्यवहार ने प्रियहरि को दुखी और सभी को स्तब्ध कर दिया है, वनमाला का रुख अचानक पलट गया।

उसने सफाई दी - "मैने कोई गलती नहीं की, वैसा कुछ नहीं कहा।"

अपने को झूठा ठहराया जाता देख प्रियहरि ने वनमाला को इस बात के लिए धिक्कारा कि एक तो वह झूठ कह रही है, दूसरे वह सच को ईमानदारी से स्वीकार करते हुए गलती मानने से कतरा रही है। उसने वनमाला की आराध्या काली माता की दुहाई देते हुए पूछा कि वह सच बताए कि क्या उसने नीलांजना के लिए 'जिस साली को' जैसे फूहड़ शब्द कहे या नहीं ? अब वनमाला सिकुड़ने लगी थी और बचाव चाहती थी। बजाय विनम्रता से सच को स्वीकारने और सुनने की बजाय वह इसी बात पर फिर झगड़ पड़ी। छोटी सी बात में प्रियहरि देवी देवताओं की तो साक्ष्य में क्यों लाना चाहता है ? उसने इसी बात पर फिर प्रियहरि की खूब लानत-मलामत कर डाली। अंदर की बात यह कि एक तो नीलांजना को साथ लेना ही वनमाला पर भारी था, दूसरे नीलांजना के चक्कर में वनमाला का महत्व घटना वनमाला के रोष का कारण था। इस पर भी यह कि प्रियहरि अब भी बजाय वनमाला को समझ पाने के नीलांजना का पक्ष लेता वनमाला से लड़ रहा था।

वनमाला का स्वभाव सभी जानते हैं। कोई उससे न उलझा। यह बात अलग है कि उसके जाने के बाद सभी ने उसकी आलोचना की। प्रियहरि क्षुब्ध था। वनमाला को अपने पर अधिकार देने का ही एक कुफल यह अपमान था। प्रियहरि से हमेशा की तरह लोगों ने कहा -"आप बेकार ही उसकी तारीफ करते हैं, महत्व देते है, अब देख लिया न ?"

उस दिन बाद में भयानक उदासी से घिरा प्रियहरि राहत पाने नीलांजना के कमरे में जाकर बैठा। वहां और कोई न था। नीलांजना की आंखों में झांकते प्रियहरि ने अपने आहत मन की पीड़ा उससे कही और

वैसा करते-करते फिर रो पड़ा। नीलांजना ने उसे तसल्ली दी - "छोड़िए न, भूल जाइए जो हुआ। उसका तो स्वभाव ही ऐसा है। सब जानते हैं उसे। आप भी तो समझते नहीं और मैं हूं कि शायद आपको समझाने लायक नहीं।"

प्रियहरि की उदासी से नीलांजना का मन भी उदास हो गया था। वह उसे प्रसन्न रखना चाहती थी लेकिन रखती तो रखती कैसे **?** वह वनमाला नहीं थी। वह पूरा दिन प्रियहरि के लिए भयानक अवसाद का था। रह-रहकर उसके चित्त में वनमाला के साथ की स्मृतियां हरी हो उठती थीं। उसे अफसोस था कि वनमाला उसे क्यों नहीं समझ पाती **?** उसका जी करता था कि वनमाला से संबंधों के प्रायश्चित में वह अपनी व्यथा को साथ लिए प्राण दे-दे। यह विचित्र था कि उस तरह अपमानित होने पर भी उसका मन वनमाला को ही याद कर रहा था। वह उसके सामने ही रो कर उसे पिघलाने की उम्मीद रखता था और उसे मनाना चाहता था। वह चाहता था कि नीलांजना को लेकर वनमाला के मन में जागी ईर्ष्या और संदेह को वह ठंडा कर सके। उसका मन बेचैन था, पीड़ा और छटपटाहट से भरा हुआ था।

" मुझे इनसे कोई शिकायत नहीं है ।
बस इनसे इतना कह दीजिए कि फोन करें तो समय देखकर किया करें।"

जमा करते हो क्यों रकीबों को
ये तमाशा हुआ गिला न हुआ।
दर्द मिन्न्तकसे दुआ न हुआ
मैं न अच्छा हुआ बुरा न हुआ॥ - ग़ालिब

उस रात इसी प्रयास में प्रियहरि ने फोन पर वनमाला से अपनी पीड़ा कहनी चाही। वह कुछ न सुनना चाहती थी। दोबारा फिर फोन पर कुछ बातें हुईं। वनमाला ने कहा था - "ठीक है, आपने कहा मैंने सुन लिया। आपने सारा कुछ सुबह कह तो दिया था। अब क्यों बार-बार फोन कर रहे हैं **?"** वनमाला भयभीत थी कि बार-बार की घंटी कहीं उसके पति के जो संयोग से इस वक्त घर मे नहीं था और बच्चों के मन में संदेह न पैदा कर दे। फोन को लेकर उसके घर पहले भी बवाल हो चुका था। इधर प्रियहरि का मन अधीर था कि वह वनमाला से खूब लंबी बात करे। उतनी जब-तक उसकी बातें वनमाला के मन का मैल दूर न कर दें। बाहर जाकर उसने तीसरा फोन किया। कहा - "वनमाला तुम्हें मेरी बात सुननी होगी। तुम नहीं जानतीं कि मेरे मन पर क्या बीत रही है । क्या मैं जान दे दूं तभी तुम्हें तसल्ली होगी **?"** उसने शिकायत की कि वनमाला ने उसकी बात पर विश्वास क्यों नहीं किया**?** उसने बताया कि वनमाला का नाम उसके विरोध के बावजूद नलिनजी ने अपनी कलम से काटा था। उसने समझाना चाहा कि विपुल ने झूठ बोलकर उसे भड़काया था ।

वनमाला भी शायद सुबह की घटना से तनावग्रस्त और क्षुब्ध थी। वनमाला के तसल्ली देने के बावजूद कि "जो हुआ, वह हुआ। उसे भूल जाइए। आप कह रहे है तो मान लेती हूँ। मुझे कोई शिकायत नहीं है। अब फोन रख दीजिए।" प्रियहरि उसे कह रहा था कि "वनमाला, शायद कल मैं न आऊँ। शायद कभी तुम्हारे सामने न आऊँ। मुझे न जाने कैसा-कैसा लग रहा है। मैं अपनी आलमारी की चाबी भेज दूंगा। आगे की रूपरेखा अब तुम खुद बना लेना।"

वनमाला पर जो भी असर हुआ हो, प्रियहरि उस रात सो न सका था। उसका अवसाद-ग्रस्त चित्त रूठा रहा था। अगले दिन मन को संभालता न चाहते हुए भी वह अपने काम पर गया। जाने का कारण शायद काम उतना नहीं था, जितना उस स्त्री के चेहरे को देखना और उस चेहरे पर खुद के प्रति लौट आये कल्पित विश्वास की उम्मीद था। नलिनजी सुबह ही मिल गये प्रियहरि ने उन्हें बताया कि वनमाला का नाम काटना कितने अनर्थ बात कारण बन गया और उस पर क्या-क्या गुजरी। उसने आग्रहपूर्वक कहा कि अब बात तभी बन सकती है, जब वे खुद वनमाला को अकेले में बुलाएं और सच्चाई बताएं। प्रियहरि के बाहर जाते ही नलिनजी ने

वनमाला को बुला भेजा होगा। कक्षा की ओर जाते हुए उसने गौर किया कि वनमाला ही नहीं, उसके साथ विपुल, अनुराधा, भोला, विराग वगैरह की टीम लिये नलिनजी के गिर्द उपस्थित थी। संभवतः नलिनजी द्वारा बुलाए जाने का मतलब भय में डूबी वनमाला ने यह लगाया होगा कि अवश्य प्रियहरि ने उसके कल के दुर्व्यवहार की शिकायत की होगी। यह केवल प्रियहरि जानता था कि वैसा नहीं था। वनमाला इसे नहीं जानती थी। इसीलिए वह स-संदेह अपना पक्ष मजबूत करने भीड़ के साथ गई थी। सहज रूप में प्रियहरि जा खड़ा हुआ था। उसे देखते ही वनमाला नाराज हो नलिनजी से बोली - "देखिए, कल इतनी छोटी सी बात पर इन्होंने मुझसे झगड़ा किया। इतने बड़े विद्वान हैं, लेकिन जरा सी बात पर मुझसे काली माता के साक्ष्य पर उतर आए और मुझे लज्जित करना चाहा। आप ही बताइए कि क्या यह इन्हें शोभा देता है।"

वहां पर पहले से ही जमा भीड़ देखकर और अपने खिलाफ वातावरण की संभावना पाकर प्रियहरि उस समय उल्टे कदम लौट आया था। और-सबों के बाहर निकल जाने के बाद फिर से नलिनजी ने उसे बुलाया था। प्रियहरि को एहसास था कि भीड़ लेकर वनमाला ने जरूर अपने को बचाने प्रियहरि की उल्टी-सीधी शिकायत की होगी। उसके व्यवहार के चलते पहले से ही वह बेहद व्यथित और आहत था। इससे पहले कि नलिनजी कुछ कहते प्रियहरि ने अपना दुखी मन उनके सामने, बल्कि उनके बहाने वहां उस समय बैठी वनमाला के सामने खोल दिया। प्रियहरि ने कहा - "मेरे पास कहने को अब कुछ नहीं है। वनमाला पर मेरा विश्वास है। ये जो भी कहती हैं, उसे मेरी तरफ से भी सच मान लिया जाय। इनकी सारी शिकायतें आप मान लें और मुझे जो चाहे सजा दें। मैं ही झूठा और दोषी हूँ।"

नलिनजी हंसे। बोले - "अरे वैसी कोई बात नहीं। मैंने सब समझ लिया है और समझा दिया है। कोई गलतफहमी अब नहीं है। आप लोग निश्चिन्त रूप से मिल-जुलकर काम कीजिए।"

भीड़ में कुछ और नजर आती वनमाला प्रियहरि के पहुंचते ही तब मानो पच्च्यातापं और लज्जाशील नारी के संकोच की मुद्रा में थी। उसके ठीक बगल वह बैठ गया था। वनमाला कुछ न बोली। दोनों संकोच में गड़े जा रहे चुप थे। दोनों को लग रहा था कि कहीं कुछ गलती उन्होंने खुद ही की है, जिसका पछतावा लिये इस तरह वे यहां बैठे हैं। बाद में नलिनजी से ही प्रियहरि को मालूम हुआ कि उस सुबह विपुल ने ही उनसे शिकायत की थी कि रात में प्रियहरि ने मैडम को फोन कर - करके परेशान कर डाला था। प्रियहरि समझ गया कि उसका दीवानगी से भरा क्षोभ, उसका अवसाद वनमाला को भयभीत कर गया होगा कि कहीं उसका प्रियहरि सचमुच कुछ कर न बैठे। इसीलिए वनमाला ने शायद विपुल को गवाह बनाने की गरज से रात या सुबह अपने भय और फोन की बात बता दी होगी।

नलिनजी ने बताया कि वनमाला को बुलाकर उन्होंने फोन के मामले में खुलासा करने कहा था। वनमाला ने जवाब दिया था कि उनके - मेरे बीच जब यहां की बात साफ हो गई थी तो प्रियहरि ने रात में उसे फोन क्यों किया? नलिनजी के अनुसार वनमाला को उससे कोई शिकायत नहीं थी। नलिनजी के यह पूछने पर कि क्या फोन पर कोई गलत या आपत्तिजनक बातें की गई थीं, वनमाला ने कहा था कि आपत्ति-जनक कुछ न था। केवल यह कि बार-बार अफसोस जाहिर कर रहे थे और नाम नहीं कटवाने पर अपनी सफाई दे रहे थे। रहस्य की बात जो नलिनजी ने उजागर की, वह यह थी कि वनमाला रो रही थी। उसका कहना था कि प्रियहरि जब फोन करते हैं तो मेरे घर में पति को संदेह होता है कि मेरा इनसे प्रेम है और फोन पर मैं इनसे प्यार की बातें करती हूँ। उसने बताया था कि - "मेरे पति शक्की हैं और मुझ पर व्यंग्य करते है । इसीलिए घर में मेरी मुसीबत हो जाती है। नलिनजी के सामने अंततः वनमाला ने प्रियहरि की आंखों में झांक कर यह कबूल किया था कि - " मुझे इनसे कोई शिकायत नहीं है । बस इनसे इतना कह दीजिए कि फोन करें तो समय देखकर किया करें।"

नलिनजी वहां मौजूद जरूर थे लेकिन वनमाला जैसे यह बात उनसे नहीं प्रियहरि से कह रही हो। प्रियहरि को पास पाकर वह संकुचित थी लेकिन उसकी आंखें अफसोस भरी शिकायत से भरी हुई थीं। प्रियहरि का भी मन उस आत्मीय साथ में हल्का हो चला था। फिर भी मन ही मन वह सोच रहा था कि वनमाला दिल से चाहे जितनी साफ हो, संबंधों में विश्वसनीय नहीं है। घबराहट में वह आपा खो बैठती है और "नहीं बताने की

बातें" उजागर कर जाती है। उसका मन बाद में निर्मल हो जाता है। वह अपने किये पर पछताती है। लेकिन उन दूसरे लोगों का क्या जो उसके गुस्से को नफरत में बदलने की चाहत रखते हैं ? वनमाला प्रियहरि की आंखों में यह सारा कुछ पढ़ रही थी। सारी पीड़ा के बावजूद प्रियहरि का मन वनमाला की वफादारी और तारीफ से भी भर उठा था।

यह क्या कम बात थी कि विघ्न-संतोषियों की कोशिशों के बावजूद उसके मन में शिकायतें जड़ नहीं जमा पा रही थीं। उसकी यही मासूम अदा प्रियहरि के लड़खड़ाते मन को फिर से सहारा देती वनमाला से बांध देती थी। ऐसे संकट में उसे हमेशा वनमाला का वह आग्रह याद आता जो कभी बेहद एकांत के आत्मीय क्षणों में इन शब्दों में किया गया था - "न जाने क्यों मुझमें यह कमजोरी है कि गुस्से में मैं अपना आपा खो बैठती हूँ। तब मुझे होश नहीं रहता कि मैं क्या-क्या बक जाती हूँ।" उसने कहा था - "आप तो ऐसी बातों को बिल्कुल मन में न लिया कीजिए। मुझे खुद याद नहीं रहता कि मैं क्या-क्या कह गई थी। बाद में याद करके मैं पछताती हूँ। आप मुझे माफ कर दिया कीजिए।"

मजबूरियों के बीच गुस्से और पछतावे का खेल ही था, जिसने वनमाला और प्रियहरि को एक-दूसरे से दूर न जाने दिया और जो अन्त तक चलता रहा। प्रियहरि की उस दिन की भूमिका तयशुदा थी। वनमाला के साथ उसके संबंध बाहर चाहे जैसे भी दिखाई पड़ते हों अन्तरंग तौर पर बेहद आत्मीय और विश्वास के थे। पहले ही कई बार प्रियहरि ने वनमाला से कह रखा था कि उस पर उसका पूरा भरोसा है। अगर आत्मीय बातों को उजागर कर वह शिकायत भी करती है तो वह मान लेगा कि उसकी किस्मत खराब है। वह उसके नाम सरेआम कबूल कर लेगा कि जो भी वह कहती है, उसे बिना विरोध किये सच मान लिया जाये क्योंकि उसकी खुशी में ही प्रियहरि की अपनी खुशी है। उस दिन भी प्रियहरि ने फिर वैसा ही किया था। उसके समर्पण ने वनमाला की आत्मा को जगा दिया था। नलिनजी के सामने उस एकांत मुलाकात में वनमाला का सारा गुस्सा काफूर हो गया था। अफसोस कहीं उसके अंदर भी था। उसके मन का यह संदेह दूर हो चुका था कि शायद उसके पिछले दिन के खराब व्यवहार पर प्रियहरि ने शिकायत की होगी । मैल न वनमाला के मन में था, और न प्रियहरि के मन में ।

नलिनजी ने प्रियहरि के सामने ही वनमाला से पूछा था - "बस, इतनी सी ही गलफहमी थी न !"

"कोई खास बात नहीं थी, मुझे इनसे कोई शिकायत नहीं है" - वनमाला ने जवाब दिया। चुहल भरी नजरों से प्रियहरि की ओर देखते उसने जोड़ा था कि "बस इनसे इतना कह दीजिए कि मुझे बार-बार फोन न किया करें।" नलिनजी ने हंसते हुए कहा था कि "ठीक है, ये अब आपको फोन नहीं करेंगे।" इस पर वनमाला ने झट सफाई फिर पेश की कि "फोन के लिए मना मैं नहीं करती, लेकिन बस इतना ध्यान रखें कि गलत समय पर फोन न किया करें।"

वहां से वे दोनों उठे तो मन एकदम हल्का था उन दोनों की यह खुशकिस्मती थी कि सारी भीड़ के विरूद्ध उनकी जोड़ी नलिनजी को मान्य थी। उससे उन्हें न कोई शिकायत थी, न ईर्ष्या थी। यह बात वनमाला और प्रियहरि ही जानते थे। इसीलिए नलिनजी का सामने होना उनके लिए बाधा नहीं सुविधा ही थी। वे इनके संबंधों के लिए ढाल का काम भी करते थे। अपेक्षा के विपरीत औरों की मुहिम उस दिन धरी की धरी रह गई।

जो आयोजन प्रस्तावित था, वह हुआ। वही आयोजन था या वह कोई बाद का आयोजन यह याद नहीं। शायद कुछ बाद का रहा हो। उस दिन वनमाला संचालन कर रही थी। संभवतः समापन करती-करती वह नलिनजी को अंतिम उद्‌बोधन के लिए आमंत्रित करने जा ही रही थी कि नलिनजी ने प्रियहरि की ओर इंगित कर वनमाला को इशारा किया कि वह उसे आमंत्रित करे। वनमाला के मन में क्या था कहा नहीं जा सकता। उसने प्रियहरि की ओर नजर डाल घोषणा की कि "प्रियहरि भी शायद कुछ कहना चाहते है। मैं अब उन्हें आमंत्रित करती हूँ कि वे आएं और अपने बात कहें।"

प्रियहरि को यह अटपटा लगा। सारे लोग एक अच्छे चिन्तक और प्रखर वक्ता के रूप में उसे जानते थे। उसे यह बात नागवार गुजरी कि नलिनजी के याद दिलाने पर उसे तसल्ली के लिए बुलाया जाये। उसने

अपनी जगह पर उठकर साफ कह दिया कि उसने कभी यह नहीं चाहा कि उसे बुलाया जाय। शायद संयोजिका को कुछ गलतफहमी हुई है।

"मुझे कुछ नहीं कहना है" कहकर वह अपनी जगह बैठ गया। नलिनजी और सारी सभा ने प्रियहरि के बात में छिपे क्षोभ को पकड़ लिया था। आयोजन खत्म हो जाने के बाद स्टॉफ के अनेक साथियों ने कहा कि वनमाला ने जानबूझकर प्रियहरि को अपमानित करने वैसा किया था, जो बहुत गलत था। सभी को उसके व्यवहार पर आश्चर्य और अफसोस था। प्रियहरि ने मन की पीड़ा छिपाकर बात टाल दी थी। वह समझ गया था कि उसके प्रति रोष जताने का वनमाला का वह एक तरीका था।

"बड़ी मूर्ख स्त्री है, उसे ऐसा नहीं करना था" - नलिनजी ने प्रियहरि से कहा। अचानक गलियारे में ही बगल से गुजरती वनमाला प्रियहरि के समीप आती बोली - "आप बुरा मान गये लगता है। बाई गॉड, न जाने कैसे मैं भूल गई थी। वह तो बस यूं ही मुंह से निकल गया था। मैंने जानबूझकर वैसा नहीं किया था। मुझे माफ कर दीजिए प्लीज़।" प्रियहरि के लिए यह निर्णय करना कठिन था कि कौन सी वनमाला असली है ? वह, जो ऐन मौके पर उसे नीचा दिखाकर अपने मन का मैल निकालना चाहती है, या वह जो पछतावे से भरी उस पर तसल्ली का मरहम लगाती है ? उसके लिए अब वह अभेद्य रहस्य से भरा अजनबी व्यक्तित्व होती जा रही थी।

आधी रोटी

नेकनामी और पोशीदगी पर धब्बे का खतरा जहां आता दिखाई पड़ता है, वहां प्रेमी के प्रति
उनकी सारी वासनाएं तिरोहित हो जाती हैं। अपनी छबि बेदाग साबित करने तब सारा ठीकरा
वे अपने प्रेमी या प्रिय पुरुष के सर पर फोड़ना चाहती हैं।

वनमाला का संदेहास्पद व्यवहार और सब के बीच चुहल या अनियंत्रित आक्रोश में की गई व्यक्तिगत टिप्पणियों से प्रियहरि नाराज था। बल्कि उसने नाराजगी कम, क्षोभ ज्यादा था। वह देखता कि वनमाला खुद भी गुस्से मे की गई वैसी नादानियों पर बाद में पछताती थी। मौन की जमी हुई बर्फ को पहले कौन तोड़े यह सोचते वह और वनमाला एक-दो दिन अपने मौन में ही यह कहते आमने-सामने बैठे होते कि इतना भी गुमान क्या ? क्या तुम ही मौन नहीं तोड़ सकते ? आखिर एकांत के वैसे क्षणों में मुंह फुलाए सोच में डूबी बेरुख वनमाला के सामने आहें भरता प्रियहरि ही उस बर्फ को पिघलाता जो दीवार बनी तब तक उन दोनों के बीच अड़ी हुई होती। वह कहने से न चूकता कि वनमाला इतनी क्रूर क्यों है ? टिफिन का जिक्र कर प्रियहरि ताने देता कि उसे तो वनमाला से आधी रोटी की तलब थी, लेकिन वह इतनी कंजूस थी कि उसकी इतनी इच्छा भी वह पूरी न कर सकी।

एक दिन अपना टिफिन खोल कर बैठी वनमाला ने प्रियहरि के सामने ही सत्यजित से औपचारिक आग्रह किया - "आप भी लीजिए।"

सौजन्य से सत्यजित ने प्रियहरि से आग्रह किया था - "आइए न आप भी।"

प्रियहरि ने खीझ भरी उदासी से आच्छादित वनमाला के चेहरे को देखा और सत्यजित से कहा - "आग्रह आप से किया गया है। मुझ से तो नहीं पूछा गया इसलिए नहीं लूंगा।"

प्रियहरि के वैसे जवाब पर वनमाला उस दिन बुझे-बुझे चेहरे और अपनी उदास आंखों से उसे देखती सिर झुकाए रह गई थी। वनमाला को प्रियहरि की वह बात याद रही आई होगी। एक दिन जब वे दोनों ही अकेले थे, वनमाला ने अपना टिफिन खोला और प्रियहरि को भी आग्रहपूर्वक अपने साथ शामिल होने कहा। प्रियहरि ने भिण्डी की सूखी सब्जी के साथ ठीक आधी रोटी ली थी। वह तो बात की बात थी। प्रियहरि के लिए वनमाला की रोटी का मतलब केवल वह साथ और मनुहार था जो वह वनमाला से चाहता था। अन्यथा तो वह शाकाहारी जीव इस आशंका से ही उसका खना छूने से परहेज करता था कि मांसाहार वालों के टिफिन का क्या

भरोसा था ? न जाने कब क्या उसमें रहा आता होगा ? वनमाला के साथ टिफिन बांटने उस दिन भी वह लालायित न था। बावजूद इसके उसे वनमाला की आत्मीयता उस दिन अच्छी लगी।

आधी रोटी वाली घटना के ठीक बाद का दिन था न जाने क्यों वनमाला का मूड उखड़ा हुआ, चेहरा पशोपेश भरा उदास और खीझा हुआ था। प्रियहरि कभी न जान सका कि क्यों ऐसा होता था ? क्या फिर घर या बाहर से कोई छेड़-छाड़ हुई थी या किसी भद्दे मजाक से वह गुजरी थी ? या फिर उन नलिनजी के साथ परीक्षा में जोड़ दिये जाने का अफसोस उसे था, जिनसे उसे अपार चिढ़ और नफरत हुआ करती थी ? नलिनजी उस दिन नहीं थे। उनकी जगह प्रियहरि ही काम चलाघ् अफसर की तरह काम पर था। स्टॉफ रूम में भीड़-भाड़ थी। सारा स्टॉफ परीक्षाओं के कागज बनाने में लगा था और लड़कों की भारी भीड़ कालेज में दो-चार दिन बाद शुरू हो रही परीक्षाओं के प्रवेश पत्र लेने मौजूद थी। आफिस के मिश्रा बाबू को वनमाला ने अपना काम करने बिठा लिया था। प्रियहरि ने इसी बीच मिश्रा से कहा था कि वह जाए और प्रवेश पत्र का काम देखे क्योंकि लड़के समस्या पैदा कर रहे थे। वनमाला को प्रियहरि की बात पर आपत्ति थी। उसे सुबह के समय की परीक्षाओं में नलिनजी के साथ काम करना था। उसी की तैयारी में वह लगी थी। मिश्रा के उठकर जाते ही वनमाला को मनाते हुए प्रियहरि ने वे कागज काम करने के लिए खुद उठा लिये थे जो मिश्रा के पास थे। बमुश्किल दस मिनट का काम था। प्रियहरि ने काम पूरा कर वनमाला के सामने कागज रख दिये। वनमाला जानबूझकर प्रियहरि से उलझ गई। बिना इस बात का खयाल किये कि उस रोज प्रियहरि ही नलिनजी की जगह बकायदा उसका अफसर था वनमाला ने सारे कागज उठाकर उसकी ओर फेंक दिए। वह उससे यूं पेश आई जैसे किसी कीड़े-मकोड़े से पेश आ रही हो। गुस्से में गरजती वह चिल्लाई -

"नहीं चाहिए मुझे आपके ये पेपर। मैंने काम करने आपसे नहीं, क्लर्क मिश्रा से कहा था। आप उसे काम करने दीजिए। जो मेरा मातहत है वही मुझे सौंपेगा।" वह विक्षिप्तों की तरह चिल्ला रही थी - "मैने उसे बड़ी मुश्किल से बुलाया था, आपने उसे क्यों भेज दिया?"

वनमाला के मन में कारण अवश्य कोई और दबा था जिसका यह विस्फोट था। सारे स्टॉफ के सामने अपमानित प्रियहरि उस दिन दयनीयता और क्षोभ से गड़ गया। सब के सब वनमाला के व्यवहार पर अचंभित थे। होना तो यह था कि प्रियहरि वनमाला पर बरसता और उसे डांटता लेकिन उसके कायर मन ने अफसोस जाहिर करते हुए उल्टे वनमाला से माफी मांगी और उसके काम के लिए तैयार कागज फाड़ कर वहीं फेंक दिये। जाहिर है कि वनमाला के मन को पढ़ने में प्रियहरि असमर्थ था। वनमाला का मन उतना सरल नहीं था, जितना प्रियहरि की भावुकता उसे समझती थी। प्रियहरि की दीवानगी उसे दयनीय बना रही थी और वनमाला थी कि अहंकार से भरी जा रही थी।

औरतें अंदर से चाहे जैसी हो, उनमें स्वच्छंदता और मस्ती की चाहे जितनी लहरें हिलोरे लेती हों, वे अपने को कभी समाज में प्रकट नहीं होता देखना चाहतीं। छुई-मुई और जांघों के बीच छिपे हृदय को परम पवित्र दर्शाने वाली आम स्त्रियां इस मामले में कुछ ज्यादा ही सतर्क होती हैं। नेक-नामी और पोशीदगी पर धब्बे का खतरा जहां आता दिखाई पड़ता है, वहां प्रेमी के प्रति उनकी सारी वासनाएं तिरोहित हो जाती हैं। अपनी छबि बेदाग साबित करने तब सारा ठीकरा वे अपने प्रेमी या प्रिय पुरुष के सर पर फोड़ना चाहती हैं। तब उससे वे इस तरह किनारा काटती हैं जैसे उनसे कभी कोई मतलब उन्हें न रहा हो। अखबारों में यह पढ़ना कि घर से भागी हुई कोई लड़की या अमुख औरत इतने-इतने दिनों बाद अपने प्रेमी के साथ पकड़ी गई और फिर यह बयान कि उसमें औरत का कोई कुसूर न था, वह तो प्रेमी ही था जो उसे बहका ले गया और यौवन शोषण करता रहा जैसे समाचार ऐसी ही तस्वीर पेश करते हैं। आदमी कटघरे में खड़ा होता है और कथित रूप से मजबूर औरत जो दिनो-महीनों-जमानों से आदमी के साथ पूरी औरत होकर देह संबंधों के आनंद में शरीक थी, महज भोली-भाली और बेकसूर बनी आती है। लोग इसे जानते हैं और ईर्ष्या, स्पृहा, जुगुप्सा से तब दोहरे वेग से ऐसी ललनाएं हवा में उन पराग कणों को बिखराती हैं जो देहगंध में छिपाए न छिपतीं अब तक अनजान भौरों को उनकी ओर लुभाती है। वनमाला इसका अपवाद न थी। अब वह प्रचार से बचती अपने गर्व भरे सतीत्व के खजाने में छुईमुई की तरह सिमट अपनी ऐसी छवि पेश करने आतुर थी, जिससे वह औरों की निगाहों में

ताजा-तरीन बनकर चढ़ सके। प्रियहरि था कि अपनी लाचार निष्ठा और विश्वास के साथ वनमाला की मजबूरी को मजबूरी की तरह देखता हालात के सुधरने की ना-उम्मीद उम्मीदों में कैद था।

पिछले कुछ अनुभवों ने प्रियहरि को अन्यमनस्क बना दिया था। उसका मन यह कहता था कि वनमाला से उसे दूर ही रहना चाहिए। ऐसी औरत से संबंध रखने का क्या मतलब था जिसे संबंधों की कद्र न हो, जो प्यार को महसूस न करती हो और उसी की जड़ खोदे जो उसकी शुभचिन्ताओं में डूबा रहता है। वनमाला और प्रियहरि में यह बहुत बड़ा फर्क था कि जहां वनमाला न जाने क्यों - चिढ़ से, नफरत से या अपनी तसल्ली दूसरों पर यह जाहिर करनेके लिये कि चाहे सारे लोग उसे कुछ न समझें, जिसकी सबसे ज्यादा कद्र है वही प्रियहरि उसे मानता है उससे प्यार करता है - वह खुद आपस की प्यार-मोहब्बत की बातों को, भावना भरी आत्मीयता के क्षणों को उजागर कर देती थी। यह उजागर करना बिगड़े मूड के क्षणों में तो सारी हदें पार करता लांछन के इशारों तक पहुंच जाता था। दूसरी तरफ प्रियहरि था कि वनमाला की इन हरकतों के बावजूद उससे सहानुभूति रखता था और भयंकर अपमान और पीड़ा के क्षणों में भी मौन का सहारा ले अवसाद के अंधेरों में डूब जाता था। प्रियहरि और वनमाला दोनों को एक-दूसरे का स्वभाव मालूम था। यह विचित्र था कि वनमाला प्रियहरि पर अपना अधिकार समझती थी और प्रियहरि से उसके बगैर रहा न जाता था, तब भी दोनो के बीच के संबंध ही असहज थे। जिसे वह अपना समझता था वही उससे शत्रुता रखती थी।

होठों के बीच टॉफी का एक टुकड़ा

निःशब्द पर्स से खंगाल एक टॉफी वनमाला की हथेली पर उजागर होती प्रियहरि के सामने यह कहती हुई पसर गई कि - "लो, इसे मुंह में डालो। यहां मुंह बंद रखना पड़ता है।"

नीलांजना का सहज साथ तो प्रियहरि को हमेशा ही उपलब्ध रहा है। मंजरी, वल्लरी, सुरंजना, मंजूषा, विराग और नंदिता वगैरह भी उसके अच्छे साथी और शुभचिन्तक थे । अंगनाओं से संबंधों में भावुक आकर्षण और पारस्परिक प्रशंसा तथा विश्वास का आलम हुआ करता और पुरुषों से संबंधों में ज्ञान और तर्क का माहौल बना रहता था। अब इन्हीं सब के बीच प्रियहरि का समय कटता था।

दुर्व्यवहार और अपमान की पिछली घटना के बाद प्रियहरि ने एक किस्म की बेरुखी वनमाला के प्रति ओढ़ ली थी। इस तरह के अलगाव वनमाला पर क्या असर होता था इसे कहा नही जा सकता। कभी-कभी आंखों से प्रश्नित उसकी शिकायत प्रियहरि की आंखों से टकराती लेकिन जहां सद्भावना और संबंधों की कोशिशें बिच्छू की तरह डंक मारतीं वहां प्रियहरि को कोई भविष्य नजर ही न आता था। प्रियहरि और करता भी क्या ? तब से दो-चार दिन बाद की बात है। प्रियहरि ने देखा वनमाला उसके ठीक सामने कुछ दूर बैठी काम कर रही है। प्रियहरि की उससे बोलचाल बंद थी। उसके पास भी ढेर सारे कागज थे।

प्रियहरि को काम के लिए साथी की जरूरत नहीं थी लेकिन प्रकट में वनमाला को वह ऐसा महसूस कराना चाहता था। वल्लरी से प्रियहरि के अच्छे संबंध थे। यह कोई जुलाई की बात होगी। वल्लरी मुस्कुराती वनमाला और प्रियहरि के बीच छाए मौन और खीझ को पढ़ रही थी। प्रियहरि ने बड़े प्यार और अधिकार से वल्लरी को आवाज दी -'अगर व्यस्त न हो तो मेरे पास आना, कुछ काम करा देना।'

वल्लरी प्रसन्न थी। अंदर-अंदर बगैर मेरे कुछ अतिरिक्त कहे ही आँखों ही आँखों में मेरा मकसद पढ़ लिया था। यानी यह कि वनमाला को उस वक्त चिढाने में उसकी रजामंदी शामिल थी।

"हां हां, क्यों नहीं ? बताइए जो भी काम हो, मैं साथ बैठकर कर दूंगी" - कहती वल्लरी तुरंत प्रियहरि के पास आ बैठी। खुशी से उसका चेहरा चमक रहा था। आवाज में मुलामियत भरी प्यार की मिठास थी। इस मेल ने माकूल असर पैदा किया।

वनमाला की आंखें अचानक उठीं। उसकी आंखों में खीझ और गुस्सा था। उनमें लिखा था - "अच्छा, तो ये बात है ? मैं नहीं, तो दूसरी सहीं ?"

प्रियहरि ने भी वनमाला को उसकी घूरती निगाहों से निगाहें मिलाते मानों यह जवाब दे दिया - "तुम हीं नहीं, मेरे चाहने वाले और भी हैं।"

अपनी चिढ़ दिखाती, अपनी अकड़ लिए वनमाला ने कागज समेटा और तेजी से विरोध दर्शाती बाहर निकल गई। प्रियहरि ने वनमाला को जलाने के लिए जानबूझकर वैसा किया था। प्रियहरि और वल्लरी एक-दूसरे की आंखों में झांकते मुस्कुरा रहे थे।

जिस दिन की यह बात है स्टॉफ-रूम में अनुराधा, वनमाला और प्रियहरि - तीन बैठे थे। आंखों में उदासी, शिकायत, खीझ और अपने अकेलेपन के बावजूद चेहरे का अकड़ से फूला रहना वनमाला की स्थायी मुद्रा थी। घर में सुबह नाश्ता करना या खाना प्रियहरि की जीवनी में कभी शरीक नहीं रहा। उसने सेव के फल निकाले। आलमारी से चाकू निकाल उन्हें तराशा , काटा और कुछ टुकड़े अखबार पर रखकर अनुराधा की तरफ बढ़ा दिये। वनमाला से उसे उलझना न था लेकिन सौजन्य का संकोच भी था। प्रियहरि ने अनुराधा से कहा -

"अनुराधा, मैडम (वनमाला) को भी ये दे दीजिए।" अनुराधा ने सेव के टुकड़ों से भरी हथेली वनमाला की ओर बढ़ाई। अपने स्वभाव के अनुरूप विनम्रता से उसने कहा - "वनमाला-दी, आप भी लीजिए।"

वनमाला ने कनखियों से प्रियहरि पर नजर डाली और फिर सिर झुकाए ही एक नजर अनुराधा पर डाल धीरे से कह दिया - "नहीं, मैं नहीं लूंगी। अभी मेरी इच्छा नहीं है।"

प्रियहरि उठा। टेबिल का चक्कर काट दूसरी तरफ से गुजकर वनमाला के सामने पहुंचा। बिना कुछ बोले सेव के टुकड़े अपने हाथों उसने वनमाला के सामने रख दिये। वनमाला ने इस बार फिर अनुराधा की ओर देखा। अब उसकी आंखों में चमक और होठों पर तिरछी मुस्कान थी। इधर अनुराधा के चेहरे पर इस बार आश्चर्य और खीझ भरे थे। वह वनमाला को देख रही थी। जैसे इससे पहले कुछ न हुआ हो, वनमाला बड़ी संजीदगी से एक टुकड़ा उठाए मुंह में बड़ी अदा से हौले-हौले चबाने लगी थी। ऐसे क्षणों में वह निहायत मासूम और भोली लगती थी। प्रियहरि उसे देखता और उसका मन सोचता रह जाता कि वनमाला आखिर क्या है ? उसके मन में भला क्या होगा ? वह तो अपना मन तार-तारकर वनमाला के सामने रख देता था लेकिन वह ? वह क्या चाहती थी ? कौन सी उलझन थी जो उसे खुलने न देकर बंद और रहस्यमय बना देती थी ? प्रियहरि के लिए वनमाला का ऐसा व्यवहार एक पहेली ही रहा आया।

सरकार के एक आदेश से सभी काम करने वालों के शैक्षिक योग्यता के प्रमाण-पत्र मंगाकर जांचे जा रहे थे। नीलांजना और वनमाला को काम दिया गया था कि मूल प्रतियों से फोटो कापियों का मिलान कर उसे दर्ज करें। भोलाबाबू का मामला रहस्यमय था। उसके कागज या तो - 'कोई और न जाने, न देखे की तरह' शामिल होते थे या फिर वे आते ही न थे। वह प्राचार्य का हमेशा मुंह लगा था इसलिए संरक्षित था। उस पर कोई दबाव डालने की हैसियत में न था। आफिस में अपने दस्तावेज नीलांजना-वनमाला को सौंपते प्रियहरि ने पूछा था कि क्या भोलाबाबू के दस्तावेज आ गए ?

नीलांजना बोली - “ना, वे तो यूं ही कापियों की झलक दिखाए बगैर कह गए कि सब ठीक है। उन्हें भला कौन कहेगा? वे तो प्रिंसिपल के खास हैं।“

प्रियहरि की आँखों से नीलांजना की मासूम झुकी नज़रें उठ मिली थीं लेकिन उसकी तल्ख़ प्रतिक्रिया का रुख वनमाला की तरफ था - "हां भई, वे तो खास हैं। उनसे कोई क्या कहेगा ? एक मैं ही हूं जिससे सारी बहसें की जा सकती हैं।"

उसके ऐसा कहने के पीछे प्रसंग यह था कि पिछले दिन जब प्रियहरि ने मूल प्रतियों के बगैर दस्तावेज सौपे थे तो नीलांजना ने कह दिया था कि प्राचार्य के आदेश है कि मूल प्रतियां लानी है इसलिए उन्हें ले आइए।

प्रियहरि के अंदर कुछ था जो खीझ और उदासी से भरा था। वनमाला का चेहरा, जो उस दिन भी सदैव की तरह अन्यमनस्क, द्विधाग्रस्त, उदास था, और जिसमें होठों के बीच टॉफी का एक टुकड़ा पिघल रहा था, प्रियहरि की तरफ अचानक उठा। सूनी आंखों से उसने प्रियहरि के चेहरे में झांका। निःशब्द पर्स से खंगाल एक

टॉफी वनमाला की हथेली पर उजागर होती प्रियहरि के सामने यह कहती हुई पसर गई कि - "लो, इसे मुंह में डालो। यहां मुंह बंद रखना पड़ता है।"

ऐसा ही वह एक क्षण था जब कभी वनमाला से बेरुख प्रियहरि अपने उदास मन को बहलाता नीलांजना को बगल में बिठाए यू.जी.सी. का काम देख रहा था। वनमाला उपस्थित थी लेकिन नीलांजना और प्रियहरि के बीच आत्मीयता का ऐसा सहज, शांत राग छिड़ा था कि एक-दूसरे में डूबे उन्हें वनमाला की परवाह ही न थी। वही क्षण था जब कुछ देर उदास अकेली बैठी वनमाला की बेसब्र आवाज ने खलल डाली थी। प्रियहरि और नीलांजना के ठीक सामने पहुंच वह बड़े भोलेपन से निहारती पूछ रही थी - "माफ कीजिएगा, मे आई डिस्टर्व यू प्रियहरि सर ?"

वनमाला की आंखों के उस मौन से, उसकी ऐसी अदा से प्रियहरि धराशायी हो जाता था। वनमाला रानी की अदा ही निराली थी। उसकी बातें उसके मौन में ही छिपी होती थीं और प्रियहरि से उसका प्यार वैसी सांकेतिक सवालिया वाणी में व्यक्त होता था। वनमाला से यूं टकराते प्रियहरि की सारी धारणाएं, सारे पूर्वाग्रह, सारी आशंकाएं, सारे भय, सारा गुस्सा - सब के सब ध्वस्त हो जाते थे। प्रियहरि ने वनमाला का वह काम कर दिया था, जो वर्षों से फाइलों में रखा था। सारे स्टॉफ ने उसका विरोध किया था कि वनमाला के पुराने मामले का निर्धारण के इस हालिया मामले से क्या संबंध है? आखिर क्यों अचानक प्रियहरि को वनमाला के पुराने मामले में दिलचस्पी हो आई है? सब नाराज हो उठे थे। सब की आशंका थी, आरोप था कि इस चक्कर में मामला उलझ जायेगा और दूसरे भी परेशान होंगे। समिति से प्रियहरि के इस मुआमले में इस कदर मतभेद थे कि तू-तू मैं-मैं की नौबत आ पहुंची थी। वनमाला के पक्ष में जिद्द पर अड़े प्रियहरि ने भी चुनौती देते हुए सार्वजनिक घोषणा कर दी थी कि लोग इसे चाहे जो समझें , यदि काम होगा तो वनमाला के पुराने मामले को हल करने के साथ ही होगा, अन्यथा किसी का भी वेतन नहीं निर्धारित होगा चाहे मामला महीनों पड़ा रहे। नौबत गाली-गलौच और गुस्से के प्रदर्शन तक पहुंच गई थी।

यह बाद की बात है कि किसी रोज कुटिलाक्ष ने प्रियहरि के रवैये पर ताने देते हुए उसे कहा था - " प्रियहरि, आप भी अजीब बेवकूफ है। आप उसी औरत का पक्ष ले रहे हैं, जो पीठ पीछे आपकी बुराई करती, आपके लिए न जाने कितनी गंदी बातें कहती फिरती है। आप सा आदमी मैंने नहीं देखा।" वह कहता जा रहा था - "ऐसी-ऐसी गंदी बातें, जो मैं बताऊँ और आप सुन लें तो गश खाकर गिर पड़ेंगें"?

कुटिलाक्ष की बातें जरूर सच रही होंगी। यह अजीब बात थी कि सब कुछ सुन और जानकर भी वनमाला ने प्रियहरि से बात करने की जरूरत तो समझी नहीं, बल्कि औरों के तानों से घबराकर न जाने क्या-क्या प्रियहरि के खिलाफ सब से बोल गई थी।

बहुत बाद में प्रियहरि ने वनमाला से उसके इस रवैये के प्रसंग में अपनी व्यथा कही थी तो उसे जवाब मिला था - "आप बेकार इन लोगों से मेरे लिए क्यों लड़ पड़े थे ? यहां का माहौल क्या है, कैसी बातें लोग करते है, ताने देते है - यह आपको नहीं मालूम क्या ?" वनमाला कहती चली गई थी - "मैं करती भी क्या ? मुझे सारे लोग दोष दे रहे थे कि ये उनकी खास हैं न ! इन्हीं के कारण यह सब हो रहा है। ये किसी का भला न होने देंगी। न जाने क्या-क्या मुझे सुनना पड़ा था ? इसीलिए तंग आकर मुझे मजबूरन कहना पड़ा था कि मेरा आप से कोई संबंध नहीं है और मैने आप से अपने लिए वैसा करने कुछ नहीं कहा था।"

वनमाला में औरत का वह चेहरा प्रियहरि को बार-बार दिखाई पड़ रहा था, जो अविश्वसनीय था। वह ऐसा चेहरा था जो ऐन वक्त पर धोखा देता अपने बचाव के लिए पलट कर उसी को मार डालता है जो खुद उसके अपने दिल में छिपा हो। वनमाला ने अपने विभाग के एक और उत्साही साथी की योजना प्रियहरि के पास रखी थी। विश्व-व्यापार और भारत के आर्थिक हितों से संबंधित अंतर महाविद्यालयीन किसी निबंध प्रतियोगिता का वह प्रस्ताव था। पीछे कोई भी रहा हो, बातें, विचार-विमर्श और फिर निर्णय प्रियहरि और वनमाला ही मिलकर तसल्ली से करते थे। यह बात दूसरों को चुभती थी कि हर बात पर प्रियहरि की कसौटी बीच मे क्यों घसीट लाई जाती थी ? मानदेय की घोषणा सहित निबंधों की जांच के लिए प्रियहरि को भी परीक्षक और निर्णायक रखा गया था। एकाध बार वनमाला ने प्रियहरि को संकेत किया था कि निर्णायक के

पुरस्कार पर एक पैकेट रखा हुआ है, जिसे वह ले लें। उसके अनुसार नलिनजी ने उसे प्रियहरि को देने कहा है। वनमाला का कहना ऐसा सहमा और संकोच-भरा होता कि जैसे उसमें उसकी इच्छा शामिल न थी और वह महज एक सूचना थी। प्रियहरि का मन दिखावे के इन प्रयासों से चिढ़ता था।

प्रियहरि ने सोचा यूं तो वनमाला उखड़ी-उखड़ी रहती है, बात तक करने से बेरुखी, हमेशा जड़ें खोदती है इसलिए भला क्यों मैं इस बेरुख उपहार से अपने को उपकृत करूं ? उसके लिए वनमाला के प्यार और संबंध की कामना इन औपचारिकताओं से अधिक थी । बाद में फिर शायद इनमें बातें हुई हों । प्राचार्य की पहल पर प्रयास यह हुआ कि बाकायदा उनकी उपस्थिति में ही प्रियहरि को वह सम्मान दिया जाए । वनमाला अपनी आलमारी से एक पैकेट निकाल ले आई थी । पीछे उसका विभागीय सहयोगी रहा था । वनमाला ने उपहार प्रियहरि को सौंपने अपने हाथ आगे बढ़ाये । प्रियहरि के मन में कटु स्मृतियां थी । यह वही चेहरा था जो उसे अपमानित करने में आनंद उठाता था । प्रियहरि ने मना कर दिया ।

उसने वनमाला से कहा -" मैने अपना काम किया । मुझे पुरस्कार की कोई जरूरत नहीं । पुरस्कार से बड़ी चीज सद्भावना है । वह बनी रहे यही बहुत है ।"

विराग ने ठीक इसी वक्त वहां प्रवेश किया था। वनमाला के जाने के बाद जब उसने प्रियहरि को अकेला पाया तो कहा - " वनमाला जैसी है, वैसी है । पर आप ने अच्छा नहीं किया । आप से सरोकार कुछ तो होगा, जो वनमाला आप की परवाह करती है ? लोक के भय से वह यूं ही अपने में सहमी-सिमटी होती है। अब जब वह यूं खुली तो आप ने आग्रह टाल औरों के सामने उसे यह बतलाने बेइज्जत कर दिया कि आप को उससे कोई मतलब नहीं । अपना अहंकार तो आप ने प्रदर्शित कर दिया पर अब जरा यह भी सोचियेगा कि वनमाला को भला आप के व्यवहार से कैसा लगा होगा ?

जलती हैं, साली सब झूठी हैं

"आप के पास आना मुश्किल है । कोई है ही नहीं । अकेले बैठे हैं, इसलिए आ गई । सोचा चलो बात करूं ।" नेहा ने कहा ।
दुख के क्षणो में मरहम का काम करती नेहा की प्यारी आवाज को मैं सुन रहा था

मुझे नहीं मालूम कि वनमाला को कैसा लगा होगा ? मैं जानता था कि उसे मुझे प्रसन्न करने ही सामने किया गया था, लेकिन वैसी प्रसन्नता किस काम की थी, जिसके पीछे मन का मैल छिपा हो । मुझे अपने निर्णय पर कोई पश्चाताप न था ।

इन सब के बावजूद वनमाला और मेरा साथ हमारी चाहत भी थी और मजबूरी भी । पास रहकर भी दूर अनबोले रहे आते लेकिन जब भीड़ से परे और बाधारहित होते तब बात करने के बहाने और काम के मौके निकल आते थे । न जाने क्यों पास रहकर भी एक अदृश्य तनाव, भय हमारे बीच छाया रहता कि कब यह निकटता बाधित हो जाएगी और न जाने फिर कब बैठने, बात करने का मौका मिलेगा। सारा कुछ अनिश्चित होता जा रहा था । प्रियहरि का मन खुला था । वह करुणा और असहायता की पीड़ा से ग्रस्त रहता । प्रियहरि हमेशा वनमाला के उदास घबराए, पशोपेश भरे मन में झांकने की कोशिश करता पूछना चाहता कि आखिर उसका मन इतना रहस्यमय क्यों लेकिन जब यत्नपूर्वक हमारे बीच ऐसे क्षण विकसित होते, समय और भीड़ दस्तक देने लगती और हमें काम छोड़कर अलग होने की विवशता आ जाती । क्या वह मेरी अतिशय दयनीयता और समर्पित दीवानगी थी जो दुनियादारी की चिंताओं से ग्रसित और भयभीत वनमाला को मुझसे विरक्त कर रही थी ? वक्त बेवक्त वह यूं ताने देती और व्यंग्य करती जैसे जितनी भी गलतियॉ हैं, मेरी ही हैं। दुर्दशा के हालात मेरे थे, चिताएं मेरी थीं, वनमाला तो अपनी छबि को साफ रखने औरों पर अपना रुतबा बरकरार रखने

निकल पड़ती थी । होना यह चाहिये था कि तब मैं अलग-थलग पड़ जाता और वह लोकप्रिय नायिका की तरह स्वीकार की जाती, लेकिन नहीं । वैसा नहीं हो रहा था । वनमाला का प्रदर्शन उसकी छबि को और खराब करता रहा । दुचित्ता, सनकी, झगड़ालू काम-टालू और अहंकारी औरत के रूप में ही उसकी पहचान बनती गई । इस बार युवा-उत्सव के साहित्यिक सांस्कृतिक कार्य क्रम में उसे कलाकार छैला के रूप में लोकप्रिय कानन और अनुराधा के साथ रखा गया था । कलाकार कानन अपने बाहर के नाम, मान-सम्मानस, पैसे की उम्मीद में संस्था के कामों को तुच्छ और बटुकीय समझता था । वह काम इन पर टाल देता और राजाबाबू की तरह पेश आता था । कॉलेज में उसकी यह वृत्ति आम थी । परीक्षाओं में वह कमरे में घूमने-फिरने और जिम्मेदारियॉ निभाने की बजाय घंटों इस-उस कमरे या बाहर गप्पें लड़ाने में बिताता और साथी महिला या पुरुष खीझकर उसे कोसता रहता । फाइलें और कागज इधर से उधर खिसकते और युवा उत्सव धरा रह गया । ऐसे में जब तलब होती तो तीनों दोष एक-दूसरे पर डालते ।

स्टाफ में रचनात्मक रुझान और योग्यता वाले ऐसे ही न थे । जो दो चार थे, उनमें मैं ही ऐसा था जो हाथ में लिए काम पर दिन-रात मेहनत करता और कराता बेहतर और अनोखे ढंग से संपन्न करने की कोशिश करता । मुझमें ऐसा आत्मविश्वास और बड़प्पन था कि सारा काम खुद कर डालता, लेकिन श्रेय अपने साथियों नीलांजना, वनमाला या और कोई भी हो को देता था । साथी की यह भावना और वृत्ति अन्य में दुर्लभ थी । मुझे आश्चर्य है कि वैसा होने औरविशेषत:वनमाला को आगे बढ़ाने और उसकी तरक्की की प्रेरणा और कामना के बावजूद वह मुझे ही रौंदना चाहती थी । इसके विपरीत काम हो न हो, भाड़ में जाए की वृत्ति के साथ मजा लेने वाले चित्रकार व्यास को वे अपने वश में न कर पाती थीं । मौका मिलने पर भी वनमाला उसे मनाने के जतन करती थी । अपना सूजा मुंह और खीझ लिए बस कागज पलटाती और नोटिस निकलती नजर आती । काम जब न हुआ तो वनमाला ने चित्रकार व्यास पर आरोप मढ़ दिया कि सारे कागज फाइल वे धरे रहते थे, जिम्मेदारी उनकी थी पर काम नहीं किया । उधर चित्रकार व्यास कहता कि मैंने सब समझाया, किया, दिया । पर खुद ही ये अयोग्य थी तो क्या करती । अनुराधा के पीठ पीछे वनमाला खुन्नस निकालती कहती कि ये तो कॉलेज से गायब रहती हैं । कभी एकाध घंटे सूरत दिखी, बातें की और फिर इसका पता नहीं कब खिसक लेती है। वनमाला का आरोप होता कि छात्र-छात्राओं को खुद वह प्रेरित करती है और अनुराधा कुछ नहीं करती । इधर अनुराधा कहती कि वनमाला झूठ बोलती है । वनमाला को कुछ आता-जाता नहीं है, जबकि वह खुद दिन-दिन भर कॉलेज के बाहर में छात्रों के घर नृत्य का रिहर्सल कराती रही है ।

वनमाला का जवाब होता - " साली झूठ बोलती है । मैने लड़कों-लड़कियों से पूछा है । न कहीं गई थी और न कुछ कराया है। "

वहां क्या चल रहा था इसे मैं मौन देखता । मैं चाहता तो मदद कर सकता था, लेकिन नहीं वह मेरा क्षेत्र नहीं था । मुझे केवल वनमाला की दयनीयता पर तरस आता कि देखो, मैं तो उसे इतना महत्व देता हूं, उससे मेरे निजी संबंध हैं, उस पर जान देता हूं और जब भी हम मिलते हैं पूरी अन्तरंग लय के साथ । एक दूसरे में चित्त और हृदय से ऐसा काम करते हैं, जो दूसरों से संभव न हो, लेकिन यह वनमाला है कि वह शुभचिन्तक और प्रिय की अवमानना करती झगड़ा करती है और बाहर शुभचिन्तक ढूंढ़ती फिरती है । वनमाला खुद भी ठोकरें खाने के बाद इसे महसूस करती । नियति की मार कि जहाज के पंछी की तरह ठिकाना उसका फिर मेरे पास ही हो जाना था । एकांत के क्षणों में ही दिलों की जलन निकलती थी । हर हालत में मै वनमाला का पक्षधर ही होता था ।

वनमाला के विवादास्पद और चिड़चिड़े चेहरे के बरअक्स मैं सदैव निर्विवाद और विनम्र सहयोगी पूरे स्टाफ के बीच बना रहा । नीलांजना, मंजरी, रीमा, नई विभगीय लड़कियां सब की सब वनमाला की आलोचक थीं । उससे बात करना ही किसी को भी पसंद न था । उल्टे जब सुबह आने वाली नई महिलाएं मुझसे बातें करती प्रभावित होती निकट आती दीखतीं तो वनमाला की नाक और चढ़ जाती थी । न जाने उसके अंदर क्या था कि कोई उसे पूछता ना था और जो एक मैं उसके अंदर छिपी-दबी-लाचार वनमाला से प्यार करता था, उसे

उसकी संभावनाओं तक पहुँचाने के स्वप्न देखता, उससे वह घमंड भरी जब-तब खराब तरह से पेश आती । बल्कि वैसा नहीं, अपने को पेश आता दिखाती प्रचारित करती थी । उसे समझना मुश्किल था कि वह क्या है ।

इस बार भी कालेज की पत्रिका का काम मुझे और वनमाला को ही दे दिया गया था। अपनी हताशा के कारण या किसी और झगड़े के बाद व्यंग्य, शिकायत, रूठना और मनाना छोटे-छोटे क्षणों में हम दोनों के बीच चलता रहा था । अक्सर मैं उसे घर में फोन कर बैठता। दोनो की उपस्थिति के परम एकांत में कभी आंखों की भाषा में, और कभी मौन के जुबान की भाषा में हमारी बातें होतीं।

औरतों की ईर्ष्या की परवाह वनमाला को कम थी। वह उन्हे तुच्छ और उपेक्षणीय समझती थी । इसीलिए औरतों में भी हमारे पीठ पीछे वनमाला की बिला-वजह अकड़ और उस जैसी उपेक्षणीया के प्रति मेरी दीवानगी को लेकर चर्चाएं चला करती थीं । वनमाला उनके परवाह के दायरे से बाहर थी। चिन्ता उन्हें मेरी हुआ करती जो वनमाला के चक्कर में व्यर्थ ही उससे पिसा जा रहा था। कुछ महिला-साथी स्पष्टतः कह भी जाती थीं । जैसे रीमा ने एक बार मुंह बिचकाकर कहा था कि इन बंगालियों से तो बच के ही रहना चाहिए । टोना-टोटका करती हैं । आप तो उसके चक्कर में मत पड़िए । शायद मेरे फोन से उत्पन्न घर के झगड़े या फिर संस्था में अपवाद के चर्चे वनमाला के मन में मेरे लिये उसकी खीझ और नफरत के कारण रहे होंगे । वनमाला को रूठा छोड़कर मेरा बाकी सब महिलाओं के साथ उठना बैठना भी शायद उसके भड़कने और भड़काए जाने का कारण रहा होगा । दुविधा के ऐसे ही अनबोले क्षणों में एक दिन मैं और वनमाला अकेले-अकेले बैठे थे । हमें नेहा ने उस तरह अनबोला उदास देख लिया था। एकांत में उसी हालत में छोड़ वह लौटने को उद्यत हुई, तो वनमाला उस खास दिन तुरंत उठ खड़ी हुई और साथ हो ली । दोनों महिलाओं की जैसी मुद्रा थी, उसने मुझे आहत किया । बेचारगी की निगाह से मुझे अकेला और उदास छोड़ वे चली गई थीं।

दूसरे दिन नेहा मौका निकाल मेरे पास घुस आई । तब मै संभवत कार्यालय-प्रमुख के चार्ज मे था और प्रिसिंपल के चेम्बर में बैठा था । गोरी-चिट्टी, नेहा अपने भरे-चौड़े चेहरे पर लहराते काले घने बाल और अपनी चंचल अदाओं के साथ चहकती उस वक्त मुझे लुभा रही थी । उसे पहली बार तब मैंने निकटता मे पाया था जब वह शुरू में आई-आई ही थी । मुझसे छोटी कद काठी थी पर संभाले न जाने वाले भारी नितंब को धारण किए उसकी जंघाएं पुष्ट थीं । वक्ष जबरदस्त विशाल, रस भरे, और नुकीली चूचियाँ छाती से बाहर आने को थी । अंदर जाती मेरी रस भरी आंख से जब आंखें टकराईं तो मेरे अंदर का कुछ उसमें भी बहने लगा था ।

उस दिन नेहा से मैने जब कहा- "आह, आज तो तुम्हारी खूबसूरती मारे डाल रही है," तब उसने मेरी आंखों में झांकते कुछ लज्जा और ढ़ेर सी प्रसन्नता से चमकते चेहरे के साथ दोनों बाहें पीछे कर, छातियों को उभार ऐसी अंगडाई ली थी कि उसके आमंत्रण को तुरन्त स्वीकारने की चाहत जाग गई थी । नेहा बिन्दास थी और उन खुली जवानियों में थी, जिनसे मैं बेझिझक बतिया सकता था। वनमाला की याद दिला नेहा अपनी चंचलता में मुझे बहुत छेड़ा करती थी । वनमाला की चुगली करने में औरतों को संकोच होता था । उन्हे भय बना रहता था कि उनकी चुगली मेरे और वनमाला के अन्तरंग क्षणों में जिससे उन्हें स्पृहा थी, प्रकट न कर दी जाए । नेहा बिंदास और बेपरवाह थी। उसे किसी का भय नहीं था। नेहा ने बताया कि कल भी वह मेरे साथ बतियाने के मूड में आई थी लेकिन वनमाला को वहां पहले से मौजूद पा वह बैठने में संकोच कर गई थी। यह अलग बात थी कि वनमाला देवी उसके औपचारिक "चलो न" की दावत पर खुद ही उठकर तब उसके साथ चिपकी चली गई थीं।

"आप के पास आना मुश्किल है । कोई है ही नहीं । अकेले बैठे हैं, इसलिए आ गई । सोचा चलो बात करूं ।" नेहा ने कहा ।

दुख के क्षणो में मरहम का काम करती नेहा की प्यारी आवाज को मैं सुन रहा था और उसके खूबसूरत चेहरे पर चमकती बड़ी काली आंखों में झांक रहा था । नेहा और मेरे बीच और वही क्यों, अन्य-स्त्रियों के साथ भी ऐसे क्षण सुलभ थे । नेहा तो नेहा ही थी। मुझसे दोस्त की तरह ज्यादा खुली हुई थी ।

"सुनाइये क्या हाल चाल है । आप तो हमेशा गंभीर और उदास लगते हैं न जाने कहां देखते रहते हैं । क्या सोचते रहते हैं । आना चाहती हूं लेकिन डर लगता है झिझकती हूं कि आप कुछ कह न दें।"

"प्यारी नेहा, तुम तो यार ताने न दो । मैने तो तुम्हें कभी रोका नहीं है । हमेशा करीब रही हो फिर काहे की झिझक ।"

"अरे आप नहीं जानते यहां कितने और कैसे-कैसे जलनखोर हैं ।" चुप्पी के बाद नेहा ने फिर कहा- "चलिए कुछ सुनाइये । क्या चल रहा है, क्या सोच रहे हैं । मेरे सामने तो आप इस कदर गंभीर न रहा कीजिये ।"

मैं उदास और अन्यमनस्क था । मेरी यही मुद्रा सामने वाले को मुझमें घुसने प्रेरित करती थी । बात करने की बात पर मैने कहा - "मैं तो अकेला हूं, अलग-थलग रहता हूं । न जाने लोग क्या-क्या सोचते होंगे, बुराई करते होंगे ।" एकदम व्यक्तिगत पर आकर मैने कह डाला-तुम्हीं बताओ मै तुम्हे कैसा लगता हूं, मै कितना अच्छा या बुरा हूं । आज मैं अपनी बुराइयां सुनना चाहता हूं । तुम्हारी ओर से कोई बात कहने को न हो तो यही कह डालो ।"

नेहा ने बड़ी अदा से चंचल आंखे मटकाते हुए लाड़ में कहा -"आप से बातें तो बहुत सी करना चाहती हूं लेकिन डर लगता है आप न जाने क्या समझें ?"

मैने नेहा को उकेरा "कहो ना यार । जब मैने कह दिया तो क्यों नखरा करती हो । तुम्हारा मन खुला है, मेरे नजदीक हो इसलिए तो तुमसे कहा है। और तुम हो कि ऊँ-ऊं की अदा से टाले जा रही हो ।" उसने आश्वासन लिया कि मैं किसी से कहूंगा तो नहीं फिर हंसते हुए संकोच से कहा-"आप को मालूम है कि आप के पास अकेले बैठने से औरतें कतराती क्यों है ?"

मेरा चित्त वनमाला में डूबा था । मैं कह उठा-"शायद कुछ लोग भड़काते हों, या शायद इसलिए कि किसी को जलन होती हो कि मेरा अपना दूसरों के साथ क्यों बैठता बात करता है ।"

टोहने पर नेहा ने खुलासा किया-"कल जब मैं वनमाला को स्टाफ-रूम से अपने साथ बुलाकर ले गई तो वनमाला ने मुझे अन्य औरतों नीलांजना, अनुराधा वगैरह की उपस्थिति में धन्यवाद देते हुए कहा कि

"अच्छा किया रे तू मुझको वहां से उठा लाई । वहां बैठने से मुझे घुटन होती है । न जाने क्या-क्या बातें वो शुरू कर देते हैं ।"

नेहा ने बताया कि "हां में हां मिलाती अनुराधा ने भी कहा था कि हां उनमें ये आदत तो हे, कभी-कभी ऐसा करने लगते हैं ।"

नेहा की सूचना से मैं स्तब्ध रह गया । मैने पूछा । "तुम्हारा क्या कहना है ?" नेहा ने कहा "नहीं मेरे साथ ऐसी कोई बात नहीं । वैसा होता तो मैं आपके पास आती क्यों ?"

जिज्ञासावश बाद में नीलांजना से भी मैंने आत्मीय क्षणों में उस प्रसंग की टोह ली । उसने कहा -

"रहने दीजिए, सब जानते हैं कि वनमाला कैसी है । उसकी मत पूछिये उसकी तो आदत ही वैसी है ।

यह उसी वनमाला का उल्लेख था, जो बार-बार "बाई गाड" कह गला छूती मुझे यह आश्वस्त करती थी कि आप तो किसी की बातों पर न जाया कीजिये । जलती हैं, साली सब झूठी हैं ।

सच और झूठ के बीच वक्त गुजरता जा रहा था । वनमाला का मन वनमाला ही जान सकती थी। सहानुभूति बटोरने और अपने को बेदाग, बुद्धिमती, सुशीला सिद्ध करने की सारी चेष्टाओं के बाबजूद वह अलग-थलग ही की जाती रही । यूथ फेस्टिवल की जिम्मेदारियों के मामले में पारस्पिरिक आरोप-प्रत्यारोपों में अकर्मण्यता को लेकर कलाकार व्यास और अनुराधा वनमाला से खिन्न थे । दीगर औरतों से उसकी बोलबाल न के बराबर थी । पुरानी संगिनियों में एकाध को छोड़कर किसी ने भी शायद ही वनमाला की तारीफ की हो । उलटे इस दौरान मुझे फांसकर कभी अपना पुराना वेतन प्रकरण खुलवाने के बहाने पास मेरे निकट आ जाने और कभी मुझे औरों के हितों से काटते दूर कर रखने की वनमाला की मुहिम पर लोग उससे चिढ़ते थे ।

" काम करूंगी तो मैं इन्हीं के साथ, अन्यथा नहीं करूंगी ।
ये मेरे साथ रहें तो दुनिया का कोई काम नहीं जो मेरे लिए असंभव हो ।"

भोलाबाबू तो थे नहीं और सालाना जलसे के दिन पास थे । विश्वसनीय जानकर प्राचार्य ने मुझे उसकी योजना बनाने और काम करने अधिकृत कर दिया और वनमाला की रजामंदी से उसे कार्यक्रम प्रभारी बनाकर मुझसे जोड़ दिया। एक-दूसरे से चोट खाए होने के बाबजूद भी प्रियहरि और वनमाला को एक-दूसरे का सहारा था । मैं अपनी खुद की कमजोरी का मारा था ।

वनमाला से मैने कहा था- "तुम मेरे साथ रहो । हम ऐसा काम करेंगे कि तुम्हारे सारे आलोचकों के मुंह बंद हो जाएं ।"

स्टाफ के रवैये से खीझी और अपने को अलग-थलग कर दिया महसूस करती वनमाला ने खुद भी प्राचार्य से कहा- " काम करूंगी तो मैं इन्हीं के साथ, अन्यथा नहीं करूंगी । मुझे कोई नहीं चाहिए । ये मेरे साथ रहें तो दुनिया का कोई काम नहीं जो मेरे लिए असंभव हो ।" वनमाला और मेरे बीच पहले ही एकान्तिक क्षणों में तय हो गया था कि काम करंगे तो हम दोनों साथ, अन्यथा करेंगे ही नहीं । हमने योजनाएं बनाई, सूचनाएं निकाली । विराग अधिकृत तौर पर छात्रसंघ का सहायक अधिकारी था । उसने देखा कि वनमाला को आगे किया जा रहा है तो बेहद नाराज हुआ ।

स्टाफ के और और लोगों की भी प्रतिक्रियाएं सुनने मिलीं । कलाकार व्यास और अनुराधा व्यवहारिक कामकाज और आयोजन में ज्यादा कुशल और निपुण थे । उन्होंने साफा तौर पर कह दिया कि वनमाला की हैसियत क्या थी कि उसके फरमान पर कोई काम करे ? अंततः हुआ यह कि मैं तो वरिष्ठ सलाहकार, योजनाकारों में शामिल हो गया और वनमाला को दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकाल बाहर कर सामान्य सहायकों के कामकाज उसे सौंपे जाने लगे ।

सब कुछ हो गया । कार्यक्रम संपन्न हुए । वनमाला अवमानित रही । रंगमंच पर कब्जा अनुराधा और कलाकार व्यास का रहा जिन्हें वाहवाही मिली । वनमाला परदे के पीछे कलाकार लड़कों-लड़कियों को व्यवस्थित करने के काम में धकेल दी गई थी ।

भले ही वे शब्द, वह कौल खीझ और हताशा में निकले हों वनमाला मुझे इन शब्दों की स्मृति में कि- "ये अगर मेरा साथ दें तो मुझे किसी की जरूरत नहीं, दुनिया का कोई भी काम मेरे लिए असंभव नहीं" हमेशा याद रही आई ।"

वे दिन और महीने वनमाला के साथ यूं ही बीते । अंदर क्या था जो उसे बेचैन किए रहता था ? उसकी गहरी उदासी और अन्यमनस्कता का रहस्य क्या था ? उसकी सूनी आंखों में कौन सी शिकायत थी ? वे क्या कहना चाहती थीं ? क्यों वह नाराज होती और खीझती मुझसे बेरुख हो जाती थी ? क्यों वह उन्माद-ग्रस्त हो मुझसे झगड़ती और भला-बुरा कहती थी ? और क्यों अचानक मेरी पीड़ा को सहलाती वह मेरे दिल के एकदम करीब आ जाती थी ? इसका रहस्य हमेशा मुझमें रहस्य ही बना रहा आएगा । मैं समझ नहीं पाता कि उन दिनों जो हुआ और आगे होता रहा, उसे मैं वनमाला रूपी रहस्य का प्रकट होना मानूं या उसे और अधिक गहराना, अबूझ होना जानूं ।

खोजी निगाहें

फिर सिर झुकाए धीरे से वह आगे बोली -
"आप को तो कोई कुछ कहता नहीं । लोगों को हमारा साथ-उठना बैठना बुरा लगता है ।"

पिछली सफलता से उत्साहित इस बार भी कालेज की पत्रिका का भार मुझ पर और वनमाला पर ही डाल दिया गया था । अपनी हताशा के कारण या किसी और वजह से खिन्न मन मैने प्रिंसपल से कहा था- मैं अब ऊब गया हूं । इतना प्रेरित प्रोत्साहित कर श्रेय वनमाला को देता हूं और वह कि

ड्रामा करती नजर आती है । मैने और नाम सुझा दिये थे नीलांजना, चित्रकार व्यास, वनमाला, वगैरह । उन्होंने कहा था- "छोड़िए सब को, आप दोनों ही बने रहिए क्यों बीच में सब को लाते हो ।"

मेरी दुविधा पर उन्होंने कहा - "चलिए ठीक है। आप चाहते हैं तो रख लीजिए औरों को, पर आप को तो रहना ही है । चाहकर भी नीलांजना का नाम हटाकर मैने कामथ का रख दिया क्यों कि वनमाला नीलांजना के नाम से ही चिढ़ती थी वनमाला, उसका चहेता चित्रकार, और कामथ । मैने सोचा कि वह उस चित्रकार पर रुझान रखती है, करेंगे दोनों । लेकिन नहीं, वनमाला ऐसी थी कि उसकी उससे पटती ही न थी । चित्रकार की आंख अनुराधा पर रहती थी । उसके पीछे वह वैसे ही दुम हिलाता था, जैसा वनमाला के पीछे मैं ।

अनुराधा बद्तमीजी से तो पेश नहीं आती थी, लेकिन यदा-कदा कलाकार पर खीझती थी । कहती- "वो बेकार हैं सर, कुछ कामधाम करते नहीं । घूमते रहते हैं और दूसरों पर रौब गॉठते हैं ।"

कुछ भी हो टीम बनी । बातें यदा-कदा काम पर सभी से होतीं । मार्गदर्शन मैं सभी का करता, लेकिन वनमाला पहले की तरह ही नखरों के बाबजूद आत्मीय करीब रही थी, हालॉकि पिछले सालों सा माहौल अब नहीं रहा था । मैं भी भरोसा उसी का करता था । उसके फेरामोन्स मुझे लुभाते थे । काम चलता रहा, लेकिन ना-ना करके झगड़ा हो ही गया । प्रतियोगिता में जो निबंध आए थे, उनमें पहले नंबर का लेख अंग्रेजी में था । मैने वनमाला से कह दिया कि वही उसे हिन्दी में संक्षेप में लिखे । जहां अनुवाद न बने या दीगर कठिनाई हो, मैं साथ बैठ लूंगा । वनमाला उसके लिये तैयार न हुई।

"मुझसे अकेले यह काम भला कैसे हो पाएगा ? मेरी अंग्रेजी उतनी अच्छी नहीं है। हम साथ बैठेंगे। आप अनुवाद करते हिन्दी में बोलते चलिए मैं लिखती हूं ।"-वनमाला बोली।

दो-चार रोज वैसा हुआ । कभी स्टाफ रूम में, कभी कहीं हम घंटे-दो घंटे बैठते देखे गए । जब तक खोजी ईर्ष्यालु निगाहें न होतीं काम चलता रहता, लेकिन ज्यों ही खोजी निगाहों वाले आते वनमाला असहज हो संकोच में पड़ती खीझ पड़ती ।

"मुझसे नहीं होता यह भारी काम । किसी और को पकड़ लीजिए या आप खुद कर सकते हैं कर डालिए ।" - आखिर एक दिन वनमाला ने कह ही दिया।

मेरे सामने तो कोई कुछ न कहता लेकिन बाद में अवश्य उसे मेरे साथ को लेकर ताने दिये जाते रहे होंगे। मैं समझ रहा था कि वनमाला की खीझ इन दिनों के दरम्यान बिचकाए गए उसके मन की है । वनमाला ने कह दिया कि मेरा ही होना जरूरी क्यों हो ? किसी और को साथ बिठाकर आप अनुवाद लिखा दीजिये। बहुत बाद में मुझे इसका आभास हुआ कि वनमाला के उस तरह मेरे साथ होने पर उसे उसका वह विभागीय सहकर्मी चिढ़ता और ताने देता था जिसे जाने या अनजाने वनमाला ने अपने करीब आ जाने का मौका दिया था। वनमाला की मनमर्जी वाले सुझाव मुझे अवमानित करने वाले थे। अधीनस्थ और कमतर होती भी वह मानों मुझे निर्देशित कर रही थी। मैं भी नाराज हो उठा।

दो टूक शब्दों में वनमाला से मैंने कहा- "ठीक है तुम नहीं करना चाहतीं तो मैं भी नहीं करने का। रही तीसरे की बात, तो समझ लो कि कोई तीसरा नहीं बैठेगा । विषय तुम्हारा है, जिम्मेदारी तुम्हारी है । मैं बैठूंगा तो तुम्हारे लिए और तुम्हारे साथ ही ।"

वहां और-और दो-चार लोग थे । जैसे इशारों से शिकायत की हो, वनमाला ने दिलचस्पी से तमाशा देखते वहां खड़े अपने विभाग के एक खास चतुर साथी की ओर अर्थपूर्ण नजरों से ताकते कहा -

"देखा न ? देख लीजिए । मेरे बिना इनका काम हो ही नहीं सकता । बड़ी अजीब बात है ।"

मैने कागज वहीं छोड़े, उठा, और बाहर यह कहता निकल गया कि तुम जानो और तुम्हारा काम जाने । सारी जिम्मेदारियाँ मेरी ही नहीं हैं । बड़े साहब के सामने हम बैठे और इस समस्या पर बात चली ।

इस जगह आकर वनमाला का असली स्वर खुला । वह बोली -"वहां अटपटा लगता है । स्टाफ रूम में सब अपने काज-काम करते बैठते हैं। लोग न जाने कैसा तकते बैठते हैं । वहां डिस्टर्ब होता है और मैं थक जाती हूं ।"

जाहिर है कि वनमाला का मन मुझे चाहने के बावजूद औरों से डरता था । वह न उन्हें नाराज करना चाहती थी, न मुझे । यहां जो उसने कहा उससे यह बात प्रकट हो गई थी ।

डॉ. नलिन ने हँसते हुए कहा "कोई बात नहीं, यहां बैठ जाया कीजिए मेरे कमरे में । यहां कोई परेशानी नहीं है ।"

दूसरे दिन हम सुबह-सुबह कार्यालय शुरू होने से पहले से कार्य करने बैठे । उस दिन मैने वनमाला से कहा -"तुम्हे जो कहना है साफ क्यों नहीं कहती मुझसे। तुमने जिस तरह इशारेबाजों से मुझे कल चिढ़ाने की कोशिश की वह क्या हमारे संबंधों के बीच ठीक था ।"

वनमाला ने सफाई दी -" अरे वो तो मैने यूं ही कहा था । मैने किसी को इशारा नहीं किया । आप बेकार उसका बुरा मान बैठे। लगता है कि आप को गलतफहमी हुई है । फिर सिर झुकाए धीरे से वह आगे बोली -" आप मेरी मुसीबत समझानेक की कोशिश क्यों नहीं करते ? मैं कैसे समझाऊँ ? आप को तो कोई कुछ कहता नहीं । लोगों को हमारा साथ-उठना बैठना बुरा लगता है ।"

उसकी बात ठीक थी । ज्यों ही कला और विज्ञान की कक्षाओं और आफिस के स्टाफ का आना शुरू हुआ वह चित्रकार संपादक-साथी आफिस में घुसता दिखाई पड़ा । उसने चुहल की - "अच्छा तो आप लोगों की महफिल अब यहां जमने लगी है **,?"**

जाहिर है कि खोजी निगाहें वनमाला और मेरे दिमाग में चुभने लगती थीं । जिस चोरी के लिए हमारे मन आतुर रहा करते, वह और निगाहों से पकड़ी जा रही थी । संकोच और खीझ से फिर हमने काम रोक दिया । आगे जो हुआ वह एक भयानक दुर्घटना ऐसी दुर्घटना, जो तूफान की तरह तब तक आगे बढ़ती रही जब तक उसने वनमाला और मुझे उन दो किनारों पर नहीं ला पटका, जहां से हम दोनों के पास आने की सारी संभवनाएं समाप्त हो चली थीं। उस तूफान के आवेग में कुछ भी समझ पाना मुश्किल था। सारा कुछ उजाड़ हो चुकने के बाद अब मैं यह समझा सकता हूं कि तब वनमाला की ओर से जो कुछ होता चला गया था उनमें एक किंकर्तव्य-विमूढ़ता में निर्विकल्प असहाय स्त्री की मजबूरियां छिपी थीं। अपनी असहिष्णुता और अधीरता में तब मैं इतना अंधा हो चला था कि बार-बार समझाने के बावजूद अपनी समझ के दरवाजे मैने बंद कर लिये थे।

वह दिन मेरी नाराजगी का था

टूट गए दिखाई पड़ने पर भी जुड़ने-टूटने की दरम्यानी स्मृतियां कायम रहती है- एक अनन्त अफसोस से भरी पीड़ा के साथ ।

वह तकरीबन मई का महीना रहा होगा और ऐन वनमाला के पृथ्वी पर अवतरण की तारीख, जब अंतिम रूपरेखा तय करने मैने पत्रिका की समिति की बैठक बुलाई थी । सुबह परीक्षाएं नहीं थीं **?** दोपहर में लोगों की ड्यूटियां लगी थीं । खयाल यह था कि केवल वनमाला और प्रियहरि प्रिंसिपल के कमरे में मौजूद होंगे और इश्क फरमाएंगे । नाम के लिए पॉच-दस मिनट को औरों को बुला लेंगे । मैंने सूचना जारी कर दी थी । सुबह दस बजे वनमाला आ गई थी कुछ लोग और आ गए थे । मुझे उम्मीद थी कि वनमाला दिलचस्पी दिखाएगी और पहल करेगी, लेकिन नहीं । वह आई, स्टाफ रूम में एक दो मिनट रही फिर इधर-उधर चली गई । चित्रकारजी नहीं आए थे । इंतजार काफी हो गया था मैंने एक सहायक कर्मी नारायण से वनमाला को खबर भिजवाई कि वे आ जाएं । दिलचस्प जवाब आया कि और लोग यानी चित्रकार व्यास जी वगैरह आ जाएं तो साथ बैठेंगे ।

दो-अढ़ाई घंटे बाद मुझसे किसी ने आकर कहा कि सब लोग यानी व्यास, कामथ और (रूठी रानी) वनमाला प्राचार्य-कक्ष में आप को बुला रहे हैं, इंतजार कर रहे हैं । मेरा मूड उखड़ा हुआ था । प्रिसिंपल के सामने पहुंचा और अनजाने की तरह तलब किया कि क्या उन्होनें बुलाया है **?** किनारे बैठे स्वनाम-धन्य मेरे

सहयोगियो में से चतुर चित्रकार जी की मासूम आवाज आई- "हां न सर, हम लोग सब यहां बैठे इंतजार कर रहे हैं । जल्दी से काम निबटा देना है, फिर परीक्षा की कक्षाओं में लौटना होगा ।"

वह दिन मेरी नाराजगी का था । खोजी निगाहों को तसल्ली देने वनमाला ने जैसे मुझे अपमान का मोहरा बनाया था । मैने स्पष्ट और दो टूक जवाब दिया कि मीटिंग दस बजे से थी और मुझे इंतजार करने अढ़ाई घंटे हो गये हैं । मैडम को ग्यारह बजे मैने खबर भेजी, लेकिन उनका मूड नहीं था। चीजें जब यूं चलती हैं कि सहायक ही परामर्श-दाता और काम करने वाले संपादक को चलाते चलें, बेरुखी दिखाएं तो मेरे होने का कोई मतलब नहीं है। जहां किसी के मन में कटुता और दुर्भावना हो, वहां मैं काम नहीं करूंगा । आप जैसा बने खुद ही कर लें ।"

मेरा इशारा स्पष्टतः वनमाला की ओर था। जो बात की बात थी उसे वनमाला ने बखूबी, समझ लिया होगा । उसे उम्मीद न रही होगी कि संबंधों के आपसी मामले को लेकर वहां मैं उस तरह उससे पेश आऊँगा। वह केवल बड़ी-बड़ी पशोपेश भरी उदास आंखों से मुझे घूरती सुनती रही थी। उसके चेहरे पर शिकायत और पीड़ा की शिकन उतर आई थी। उसकी आंखें नम हो चली थीं। चित्रकारजी ने सफाई दी - "नहीं सर, हममें से किसी ने भी ऐसा नहीं सोचा । आप नहीं रहेंगे तो फिर काम कैसे होगा ?"

उस दिन डॉ. नलिन से मैने वनमाला के व्यवहार पर दुख व्यक्त करते अपनी पीड़ा कह तो दी ही थी। वनमाला के व्यवहार से मुझे इस कदर वितृष्णा हुई कि मैने अभी हाल ही किसी पारिवारिक आयोजन पर स्टाफ की ओर से उपहार में भेंट किए सामूहिक चंदे से हिसाब लगाते हुए वनमाला का हिस्सा नलिनजी के हाथों में सौंप दिया। मैने कहा कि अब जब मैं किसी साथी के मन को अंदर तक झांक चुका हूं , तब उसकी झूठी सद्भावना और अहसान मैं नहीं कुबूल कर सकता। मेरा अब उनसे बात करने का भी ताल्लुक नहीं है इसलिये मिहरबानी करके यह उनका हिस्सा आप लौटा दीजिये।

वनमाला ने बीच में हस्तक्षेप करते हुए मुझे यह समझाने की कोशिश की -"वह भेंट तो पारिवारिक है। उसे आप क्यों लौटा रहे हैं ? अगर कुछ है तो वह मेरे और आप के बीच है। गलतफहमियां दूर की जा सकती हैं। आपस की नाराजगी में आप चीजों को क्यों वहां तक ले जा रहे हैं ? वह अच्छा नहीं मालूम पड़ता। छोटी सी बात थी। मैं आप को कैसे समझाऊं ? आप ने न मुझसे बात की और न बात करने का मौका दिया। इतना बुरा आप क्यों मान गए ?"

बैठक से मैं बाहर निकल आया था । विग्रह और तनाव के उस दुखद परिदृश्य के बाद फिर डॉ. नलिन ने समझाने के लिए वनमाला को और मुझे बुलाया था । उनके सामने खुलकर बातें हुईं। मैने बताया कि ये आईं और बुलाने पर भी मेरे पास न आईं तो मुझे बुरा लगा था । वनमाला का जवाब था कि उसे किसी ने बताया नहीं । नारायण से बुलाने की बात की पुष्टि जब मैने उसी को बुलाकर की तो वनमाला ने दूसरा बहाना निकाला कि जब ये प्रियहरि खुद यहां थे तो क्या मुझसे बात नहीं कर सकते थे ? नारायण बाबू के हाथों खबर भिजवाने की भला क्या जरूरत थी ? क्या सचमुच नारायण के जरिए खबर भेजने से कोई गड़बड़ हुई ? क्या किसी ने उस पर से फिर वनमाला को छेड़ते हुए टिप्पणी की थी ? क्या उस संदेश की जानकारी किसी और की उपस्थिति में पाती हुई वनमाला पर किसी ने ताने कसे थे जिससे तिलमिलाती अपना गुस्सा वह मुझ पर उतार रही थी ? जो भी रहा हो, अपनी नाराजगी और विक्षोभ सरे आम वनमाला पर प्रदर्शित करता मैं कमरे से बाहर चला आया । वनमाला को आहत करते हुए बदले की तसल्ली के बावजूद मैं न जाने क्यों अपने आप में ही डरा हुआ और उदासी से भरा था ।

यह वही वनमाला थी जिसके लिए पिछले दिनों के उस खास पारिवारिक आयोजन के बाद वह मिठाइयां लेकर कालेज गया था । वनमाला के सम्मोह में खासतौर पर तैयार किये राजभोग का डिब्बा तब तक वहां उसने नहीं खोला था, जब तक वनमाला उसके रूबरू आकर खड़ी न हो गई थी । बड़े मनुहार के साथ पहला कौर उसने उसे वनमाला को यह बताते हुए खिलाया था कि मिठाई का वह डिब्बा तुम्हारी प्रतीक्षा में ही

अब तक बंद रखा था । वह वही वनमाला थी जो मेरे आत्मीय बुलावे के बावजूद मेरे पारिवारिक आयोजन से बेरुख रही आई थी। वनमाला के लिये मेरा वैसा दीवानापन उसकी वैसी उपेक्षा के बावजूद रहा आया था।

मेरा चित्त अपार पीड़ा से व्यथित था । दुर्घटना का यह दिन उस प्रिया वनमाला का जन्मदिन था। उसे देखने, उससे मिलने और जाने कितनी-कितनी बातें उससे करने का मनोरथ लिये मैं कालेज में पहुंचा था। मैने कल्पना भी नहीं सोचा था कि यह दिन अचानक मनहूसियत की याद बनकर हमेशा के लिये कांटे की तरह मुझमें चुभन छोड़ जाएगा। वनमाला से विग्रह के बाद उस रोज़ सभी का चित्त उखड़ चला था। सभा भंग हो गई थी । सारा कुछ गुजर चला था लेकिन न जाने क्यों इस साहसपूर्ण झगड़े का मुझे मलाल था । वनमाला को चोट पहुंचाकर अफसोस से भरा मेरा मन रो रहा था । घटना के बाद जब होश आया तो न जाने किस प्रेरणा से मेरे कदम परीक्षा के कमरे में ड्यूटी पर तैनात वनमाला की ओर मुड़ गये थे । वनमाला को बाहर बुलाकर मैंने जन्मदिन की बधाई दी थी और उसे तकलीफ पहुंचाने माफी मांगी थी ।

वनमाला का मूड बिगड़ा हुआ था । ठीक अपने जन्मदिन पर अपना समझे जाने वाले प्रियहरि से कड़वे व्यवहार की उसे उम्मीद न रही होगी । अपने अपमान की चोट से आहत उसने प्रियहरि से बदला लिया - "बस रहने दीजिए । सब के सामने आपका ड्रामा देख लिया । बच्चे नही हैं आप । आज सब के सामने आज मेरी इज्जत ले ली। ऐसा व्यवहार आप को शोभा नहीं देता। क्या करने आए हैं आप अब **?** क्या और कुछ बाकी रह गया है **?"**

मुझको ठंडा हुआ पाकर अब वनमाला की गर्मी शबाब पर आ चली थी। अपने अपमान का बदला अब उसी शैली में लेने वह उतारू हो आई थी जिसका प्रयोग दस मिनट पहले मैं कर गया था। वह धमका रही थी - " अब तो मेरा पीछा छोड़िए । समाज में आप की काफी इज्जत है। आप विद्वान हैं। बड़ा नाम है आप का। बचा रखिए उसे, अन्यथा एक दिन सब के सामने आप को मै भी नंगा कर दूंगी । जाइये आप, मुझे अब और कुछ नहीं सुनना है आप से ।"

दोनों के बीच इस दिन जो हुआ, उसपर कमरे में मौजूद उसके साथी परीक्षक उदयन का ध्यान गया होगा लेकिन बातें संभवतः सुनी नहीं गई थीं। अन्यथा प्रसारित जरूर होती। बहरहाल, खुली खटपट तो हो ही गई थी । उस दिन अपने को "पत्रिका" से मैने अलग कर लिया था। हां, -उससे ही, जिसे "पत्रिका" का अमूर्त नाम मैने आपसी प्यार से दिया था और जिसे मेरी वह पत्रिका बखूबी जानती थी।

संबंध क्या होते हैं मुझे मालूम नहीं, लेकिन यह मालूम है कि टूट गए दिखाई पड़ने पर भी जुड़ने-टूटने की दरम्यानी स्मृतियां कायम रहती है- एक अनन्त अफसोस से भरी पीड़ा के साथ । नलिनजी ने भी उसके बाद मुझसे कुछ न कहा । बाद में उनके व्यक्तिगत अनुरोध पर पत्रिका के लिए उनका प्रवचन और अपना संपादकीय चित्रकार साथी संपादक को सौंप दिया था । वनमाला पर से मेरा विश्वास टूट चुका था । मैने तय किया कि अब उस वनमाला के सामने भी नहीं पड़ूंगा, जिसे मेरा साथ तो क्या, शायद मेरे चेहरे से भी नफरत है । मैने भोलाबाबू से कहकर अगले साल के लिए अपनी कक्षाएं अब सुबह की जगह दोपहर के आसपास रखवाईं ताकि वनमाला के चले जाने के वक्त मेरा पहुंचना हो ।

भोलाबाबू बंगाल के कायस्थ थे । हर हाल में विनम्र रहना, झगड़े के बीच भी ठंडा दिमाग रखना और कुर्सी के प्रति श्वान की तरह वफादारी के गुण उसमें हैं । जहां और लोग केवल अपने सरकारी काम से मतलब रखते हैं वहां वह प्राचार्य के साथ चिपका रहकर दुनिया भर के काम बटोरते हैं और अपनी योग्यता और समझ के मुताबिक उन्हें निभा देते है । यह बात और है कि चापलूसी की उनकी वृत्ति और अतार्किक कार्य-पद्धति से स्टाफ के लोग, चाहे पुरुष हों या स्त्रियॉ, चिढ़ते थे । वनमाला के साथ संबंधों के अनुभव इस कदर कटु हो चले थे कि मुझे उनसे ही एक दिन कहना पड़ा था कि अगले साल का टाइम-टेबल इस प्रकार बनाए कि मुझे सुबह आना ही न पड़े, जिससे मैं नफरत और अजनबीपन के वातावरण से दूर रह सकूं । वनमाला कालेज छोड़ रही होगी तब मैं पहुंचूगा।

उस दिन भोला ने हंसकर मुझसे कहा था- "तुम भी तो साले वैसे ही हो । मैने तो तुमको कई बार इशारा किया था, लेकिन तुम हो कि उसी से चिपके रहते हो । ये औरतें होती ही ऐसी हैं । पांव की जूती की तरह दबाए रखो तो ठीक रहती हैं । जितना ज्यादा मस्का लगाओगे और सर चढ़ेगीं । आखिर देख लिया न तुमने ? मै तो कहता हूं ऐसे लोगों से बात ही न करो । मैं तो जानता हूं इन लोगों को अच्छी तरह ।"

वह ठीक कह रहा था । इसीलिए शायद स्वार्थ के मौके पर छूट लेने महिलाएं प्रायः प्राचार्य से कुछ कहने की बजाय रियायत पाने भोला की खुशामद करना बेहतर समझती थी ।

मैने वनमाला से अपने को दरकिनार रखने का उस तरह इंतजाम तो कर लिया लेकिन तब भी क्या हुआ ? वह दूर सही, उसे देख लेने की मन में अभिलाषा तो बनी ही रही आई । रेल की जगह बस से ग्यारह बजे के करीब मैं पहुंचता इस मनःस्थिति के साथ कि-

हांफता हुआ भागता है मन
कि पहुंचूं
इससे पहले कि तुम निकल जाओ ।
महाविद्यालय मेरे लिए महज एक चेहरा है ।
जिसका नाम वनमाला है

प्रायः वनमाला के निकलते और मेरे पहुंचते मेरी आंख की पीड़ित करुणा और उसकी आंखों की शिकायत मौन की भाषा में मिलती रही और यूं दिन बीतते रहे । उस साल कालेज की पत्रिका से मैं गर्मियों के झगड़े के बाद अलग हो गया था । वनमाला से मेरे संबंध अब प्रायः नहीं रह गए थे । वह अनमनी अपने आपमें रही आती और अनमना मैं भी उससे दूर रहने की कोशिश करता । उससे तो कभी किसी की पटी नहीं, लेकिन मैं अपना गम छिपाये स्टाफ के दीगर मित्रों खासकर खूबसूरत स्त्रियों नीलांजना, मंजरी नेहा, वल्लरी, मंजूषा, सुरंजना अनुराधा से मिलता-घुलता रहा । यह बात और है कि उस मिलने और घुलने में भी अंदर-अंदर वनमाला ही दिलो-दिमाग में छाई होती ।

मेरे अंदर छिपी इस पीड़ा को सब जानती थीं । इसलिए पास आकर भी संभवतः इनके मन में वनमाला बीच में बनी रहती थी । न वे मेरे अंदर प्रवेश कर पा रही थी और न मेरा मन ठीक-ठीक उनमें रमता था । वनमाला एक थी, लेकिन सारी की सारी अन्य मेरे लिए एक सी थीं- मौका मिलने पर घायल हृदय की मरहम और मन के बदलाव की तरकीबें मात्र । वनमाला बोलती कुछ न थी, लेकिन उसे इस सब का आभास तो था । यदा-कदा वह औरों साथ मुझे घुलता, बातें करता देख प्रश्नवाचक दृष्टि से घूरती भर थी । एक मौन शिकायत कि मुझे तुम्हारी यह बात पसंद नहीं है । बातें तो उससे भी होती थी लेकिन न के बराबर और यदा-कदा ही, जिसमें न मैं ज्यादा खुल पाता था और न उसका दिल ।

ईर्ष्या भी कितनी चमत्कारिक होती है?

"प्रियहरि, ये बताइये आप इतना अच्छा लिख कैसे लेते हैं ? मन को छू लेने वाले इतने मार्मिक शब्द आप लाते कहां से हैं । वनमाला की ओर एक निगाह डालती अनुराधा बोली- "कोई चाहे कुछ भी कहे, मुझे तो पत्रिका में सब से अच्छा हिस्सा जो पढ़ने लायक है संपादकीय का ही लगा।"

महिलाएं इस बात पर आश्चर्य करतीं कि सनकी दिमाग वाली, अपनी अकड़ में औरों को तवज्जुह न देने वाली वनमाला से मेरी पटती कैसी है ? उनमें कहीं यह ईर्ष्या भी थी कि वनमाला से दिखने-सुनने, स्वभाव और आत्मीय व्यवहार में इनसे करीब रहकर भी वनमाला की ही मैं तारीफ क्यों करता हूं ? उसका

सहारा ही क्यों लेता हूं ? वे यह बात मुझसे कहा भी करती थी लेकिन दिखाई पड़ते तकरार और मनमुटाव के बीच भी वनमाला और मेरी उपस्थिति के मौन क्षण और संक्षिप्त मुलाकातों के बीच साधारण सी दो चार शब्दों में हुई बातों का अंदाज ऐसा रहस्यमयी आत्मीयता का माहौल भर देता था कि हम दोनों के हृदय में उठ रही तरंगें औरों को शंकित कर देती थी । लोगों को यह समझने में देर न लगती कि कुछ न होने के बावजूद कुछ है । वह क्या है, इसे न प्रियहरि ठीक-ठीक जान सका न मेरी शुभचिन्तक ये कामिनियॉ कभी जान सकीं । पत्रिका छपकर कब तक वैसे ही पड़ी रही, इसका ठीक-ठीक अनुमान मुझे नहीं है । बस इतना याद है कि औपचारिक विमोचन के चक्कर में वह नवंबर तक लटकी रही । औपचारिक विमोचन के दौरान उस खास दिन मैने वनमाला को विशेषतः लक्ष्य करके द्वि-अर्थी संकतो में केवल चंद शब्द अपने वक्तव्य में कहे थे। बस इतना कि पत्रिका के विषय में मैं क्या कहूं ? अपनी पत्रिका के लिए जो कुछ मुझे कहना है वह मैने संपादकीय में कह दिया है । बात सामान्य ढंग से कही गई थी, लेकिन उसमें निहित संकेत क्या है यह वनमाला ही जान सकती थी । वह जानती थी कि प्यार में उसे मैने "पत्रिका' 'का पर्याय बना दिया था ।

बातों-बातों में मैने कभी उससे पहले ही कह दिया था- "प्यारी वनमाला, मेरी पत्रिका तो केवल तुम हो, जिसे मैं दिन रात पढ़ता हूं ।" वनमाला के हृदय ने मेरा संदेश अच्छी तरह पकड़ लिया था । उसके बाद चाय के दौरान प्रिंसिपल के कमरे में जब मौजूद स्टाफ को पत्रिका के अंक बॉटे गए तो मैने देखा कि वनमाला विस्मित प्रफुल्लता से संपादकीय के रूप् में अपने नाम लिखा मेरा प्रेमपत्र पढ़ रही थी ।

वनमाला से अब तक एक प्रकार का अबोलापन बरकरार था । वह अपनी रहस्यमय उदास अन्य-मनस्कता में क्या सोचा करती थी इसे जानना सदैव असंभव रहा है । यह जरूर है कि मेरी उदासी के साथ उसकी उदासी का सामना जब भी होता, समूचा माहौल दोहरी उदासी से भरकर मुझे और बेचैन कर देता था । मुझे अब ऐसा प्रतीत होता है कि वनमाला ही नहीं, वनमाला और मेरे बीच संबंधों पर नजर रखने वाले करीबी लोग भी उन शब्दों के अर्थ समझते थे जो मैने विमोचन के उस खास दिन कहे थे और जिनकी तफसील संपादकीय में थी । यह बात दो दिन बाद की है । स्टाफ रूम में केवल हम तीन थे, वनमाला, मैं और अनुराधा । मैं बाद में पहुंचा था अनुराधा और वनमाला पहले से आसपास बैठी थी । पहुंचकर मैं भी उन्हीं के पास खड़ा हो गया था । वनमाला न होती थी तो उसे देखने की बेताबी और प्रतीक्षा होती । सामने होती तो उसके रहस्यमय उदास मौन की यातना से मन भारी हो जाता । मैने देखा अनुराधा के हाथ में कालेज की पत्रिका थी । देखा कि अनुराधा का चेहरा उल्लास की स्मिति से भरा था । मेरी उपस्थित से वह स्मिति चहक में बदल गई थी जो कतई बनावटी नहीं थी । मुक्त मन से मेरी तारीफ करती वह संपादकीय के शब्द दोहरा रही थी ।

जैसे छेड़ रही हो, अनुराधा ने मुग्ध भाव से मेरी तारीफ करनी शुरू कर दी। उसने कहा- "वाह क्या बात है ?" मुझसे मुखातिब होकर उसने पूछा - "प्रियहरि, ये बताइये आप इतना अच्छा लिख कैसे लेते हैं ? मन को छू लेने वाले इतने मार्मिक शब्द आप लाते कहां से हैं । वनमाला की ओर एक निगाह डालती अनुराधा बोली- "कोई चाहे कुछ भी कहे, मुझे तो पत्रिका में सब से अच्छा हिस्सा जो पढ़ने लायक है संपादकीय का ही लगा।"

अनुराधा के शब्दों को सुनती बगल ही उदास अन्यमनस्क खड़ी और वैसे ही पुस्तक के पन्ने पलटती वनमाला के चेहरे पर जल्दी-जल्दी कुछ भाव आए और गए । उसकी सूनी आंखें मुझे देख रही थी और मेरी आंखें उस क्षण उसकी आंखों के सूनेपन में झांक रही थीं। मुझे ऐसा कुछ आभास हुआ जैसे मेरे पहुचने से पहले अनुराधा और वनमाला के बीच कुछ निजी संवाद हुए हो सकते हैं।

मैने अनुराधा को धन्यवाद दिया । कहा -" यह तो आप समझती हैं । जिन्हें समझना है, वे भी समझें तब तो।"

बाबजूद इसके कि अनुराधा का बीच में होना वनमाला और मेरे बीच पुल का काम कर रहा था या अनुराधा ही खुद जानबूझकर उस क्षण हमारे बीच पुल बनी हुई थी, मैने इसी में भलाई समझी कि गर वनमाला को मैं पसंद नहीं हूं, अगर वह अपनी अकड़ में अबोली है तो उसके अनप्रेडिक्टबल मूड को नहीं छेड़ना

ही ठीक है । अबोलेपन की दूरी मैने बरकरार रखी और तुरन्त पुस्तकें उठाकर कक्षा में चला गया । मन में एक चीज फिर भी भर गई कि जिस पर मैं मरता हूं,, जिससे मैं प्यार करता हूं, जिसके लिए मेरे शब्द अर्पित हैं, वह कितना निष्ठुर है कि सारा कुछ जानकर भी उसके मुंह से बोल नहीं फूटते ।

कला की कक्षाओं का वह पहला घंटा था । अपनी कक्षा लेकर ज्यों ही मैं निकलने को हुआ वनमाला की कक्षा का एक छात्र मनोहर दरवाजे पर टकराया- "आप को वनमाला मैडम ने बुलाने मुझे भेजा है ।"

मुझे अचरज हुआ और आश्चर्य से भरी खुशी भी कि आज कौन सा शुभ मुहर्त है, जो मेरा प्यारा दुश्मन मुझे संदेश भेजकर बुला रहा है । स्टाफ रूम में जाकर मैं अपनी जगह बैठ गया, लेकिन बात की पहल मैने फिर भी नहीं की । तभी बहुत दिनोंसे अबोली वनमाला अपनी जगह से उठ मेरे पास आ खड़ी हुई।

उसने कहा- "एक चिट्ठी भेजनी है, आप मुझे लिखा दीजिए ।"

न जाने क्यों अच्छे क्षणों में भी वनमाला के अनिश्चित मूड की छाया बनी रहती है । क्या यह मेरा मान था कि दिल में अच्छा लगने पर भी मैने विनम्रता से उसे टाला-

"आप तो अच्छा लिख लेती हैं लिख लीजिए ना । कोई खास बात तो है नहीं इस विषय में"- मैंने कहा ।

वह जिद की मनुहार में बोली- "नहीं आप ज्यादा अच्छा लिखते हैं । आप मुझे बोलिए मैं लिखूंगी।"

पत्र सामान्य संदर्भ में था । छात्र की किसी प्रतियोगिता के लिए छात्रों नाम भेजने थे । मैने लिखाया वनमाला ने लिखा । मैं वनमाला को निहारता रहा। कुछ भी तो नहीं बदला था। उसका वही गुमसुम उदास चेहरा । अनबोले भी बहुत कुछ कहतीं उन्हीं खोई आंखों की मुझमें समाई पड़ती वैसी ही भेदक दृष्टि। मैने सोचा कि ईर्ष्या भी कितनी चमत्कारिक होती है । अपना अबोलापन तोड़कर वनमाला का खुद ही मेरे पास चले आने की पहल मात्र मेरे लिखे संपादकीय के सांकेतिक प्रेमपत्र में निहित भावनाओं की अभिस्वीकृति थी । मैं चाहता था कि उसकी छाती पर सिर रखकर रोऊँ । लेकिन वैसा कर न सका । न जाने कितने द्वंदों से घिरी वनामाला उदास थी । संकेतों को जुबान वह न दे पाई । लिपि और ध्वनि रहित भाषा में उस दिन सारा कुछ छिपा कर भी वनमाला जैसे सारा कुछ कह गई थी और मैने सब सुन लिया था- "तुम इतने उदास क्यों हो ? मुझे भी तुमसे उतना प्यार हैं, जितना तुम्हे मुझसे है । अनुराधा की बातों पर क्यों जाते हो ? तुम तो मेरे हो, केवल मेरे । मुझसे तुम्हें कोई नहीं छीन सकता । तुम मुझसे क्यों रूठ जाते हो । भले ही मैं तुमसे नहीं बात करती, मेरा दिल तो करता है । नादान पिया, तुम इतना तो समझा करो । मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? काश मेरी मजबूरियां तुम समझ पाओ।"

हां, यह भी वनमाला ही थी । वही वनमाला, जिसकी रहस्यमय खामोशी और अचानक प्रकट होनेवाली क्रूरता से मेरे प्राण निकल जा रहे थे । मुझे ऐसा अब लगता है कि उस दिन अनुराधा की मेरी तारीफ आकस्मिक नहीं थी । अवश्य मेरे पहुंचने से पूर्व वनमाला से अनुराधा की बात गुपचुप हुई होगी और वनमाला के ढ़ंडेपन के खिलाफ मेरे सामने ही मेरे लिखे की तारीफ सप्रयोजन की गई होगी । प्रयोजन या तो वनमाला के मन में ईर्ष्या जगाना रहा होगा या वनमाला के ठंडेपन को कोसना । रूठने और मनाने का यह खेल वनमाला के साथ मानो शाश्वत हो चला था । उसके दिल में क्या था यह समझना मुश्किल था । ऐसा लगता है जैसे स्त्री और पुरुष के बीच यह खेल प्रकृति से ही रचा गया है । स्त्री बचती है, भागती है, ठंडी बनी रहना चाहती है और पुरुष उसे समेटना चाहता है, उसका पीछा करता है और उसके गर्म होने का इंतजार करता हाय-हाय करता है । समाज का भय, नैतिक मर्यादाएं परिवार की उलझने चहारदीवारी की कैद, गर्भ का भय, और इन सब से ऊपर जॉघो के बीच छिपी इज्जत को खजाने की तरह संभाल रखने की सीख स्त्री पर हमेशा हावी रहती है । यही कुछ होगे जो वनमाला के मन में बचाव और समर्पण के बीच द्वन्द और खीझ में समाए रहते थे । पशुओं के जगत में भी इसे आप ठीक वनमाला-वृत्ति के रूप में देख सकते हैं । मादा कभी पहल नहीं करती । कुत्तों और सांड़ों के झुंड अपनी मादाओं के पीछे भागते हैं । वे बचती हैं, भागती हैं, गुर्राती हैं, काटती हैं और बमुश्किल उन पर पीछे भागता नर सवार हो पाता है । मनुष्य की जात में समाज, परिवार और नैतिकता की

बाधाएं हैं, लेकिन पशुओं के समाज में तो नहीं । फिर वैसा क्यों होता है ? शायद नर और मादा की प्रकृति के बीच यह भेद शाश्वत ही है ।

जब वनमाला अकेली होती, पकड़ में आती और घर के तनाव से मुक्त होती तब वह अच्छे से पेश आती । प्यार की बातों पर वह चुहल करती मजा लेती, तरसा-तरसा मन में और प्यास भरती थी । लेकिन जब अवसादग्रस्त और परेशान होती तो जुबान पर कोई नियंत्रण न रहता । इसी खेल के बीच एक रोज सुबह-सुबह मैं फिर फोन कर बैठा । किसी समारोह में एक रोज उसी के नगर रहकर ही लौटा था । वहां रहते ऐसा मन करता कि उसके घर घुस जाऊं, लेकिन "मन का करना" बस लाचारी ही है । न रहा गया तो दिल की बातें कहने की बेताबी में फोन लगा बैठा । मेरा अनुमान गलत था । वह घर से कालेज के लिए निकली तो न थी, लेकिन उसके मिस्टर घर पर ही थे । जरूर उसे फोन पर जाता देख उसने व्यंग्य किया होगा ।

वनमाला फोन पर जवाब देती एक दम मुझपर बरस पड़ी-" बेकार फोन क्यों किया ? मैं कुछ सुनना नहीं चाहती पुरुषों से मित्रता में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं ",वगैरह ।

कालेज आती तो मेरे खीझे हुए मायूस चेहरे को उसकी आंखें शिकायत से घूरतीं । तुम ऐसी मूर्खता क्यों करते हो ? मेरे लिए मुसीबत क्यों खड़ी करते हो, मुझसे दूर क्यों नहीं हो जाते ? फिर दो-चार रोज में चीजें सामान्य हो जाती । संबंध यूं हो जाते कि जैसे कुछ हुआ ही न था ।

नीलांजना ने फोन उठाया । कहा कि वनमाला मैडम आप को पूछ रही हैं, आप बात कीजिए ।
उस दिन मन में क्षीण सी इच्छा जागने पर भी मैने वनमाला से बात नहीं की ।

मेरी आकांक्षा थी कि वनमाला की कविता की शक्ल में बसी यादें मैं उसे सौंप दूं ताकि हमेशा वह याद रखे कि मैं उससे कितना प्यार करता हूं और उसने मुझे कितना तरसाया है । संग्रह तैयार हो छप चुका था उसका विमोचन विधिवत् होना था । कालेज से बाहर जाकर मन बहले यह सोचकर रिसर्च के एक विशेष प्रोजेक्ट के बहाने इलाहाबाद जाने का मैने जुगाड़ कर किया था । इसलिए संकल्पपूर्वक मैं सुबह कालेज पहुंचा । ज्यों ही मिला, मैने वनमाला को कविताओं की वह पुस्तक सौंप दी । मैने उसे बता दिया कि यह तुम्हारी ही पुस्तक है- तुम्हारे लिए, जिसमें तुम ही हो । यह कि उसका विमाचन पहले मूलतः वह कच्ची पुस्तक के रूप में कर चुकी है और यह कि विधिवत विमोचन बाद में होगा । मैने उससे कहा कि यह मेरे प्यार का उपहार है । उसके नाम कविताओं की पहली प्रति है, जो सब से पहले मैं उसे ही अर्पित कर रहा हूं। पुस्तक में मैने चाहने के बाबजूद भेंट और प्यार के शब्द जानबूझकर नहीं लिखे थे क्यों कि तब उसे घर में पता चलने पर परेशा नी हो सकती थी । भूमिका सहित सारा कुछ ऐसे संकेतों में व्यक्त था जिसे वनमाला बखूबी समझती थी । हमारी आंखें मिलीं । उसके होठ खिले और एक झलक देखकर खुशी-खुशी वनमाला ने मेरा संग्रह अपने बड़े पर्स के हवाले कर दिया । उस दिन वह खुश थी । मैं अक्सर बड़े साहब की जगह प्रशासन के चार्ज में रहा करता था । शायद उस दिन भी ऐसा ही था । दो मिनट बाद भोला ने प्रवेश किया था । वनमाला ने एकाध वाक्य में उससे कामकाजी बात की होगी, लेकिन भोला को टालकर वह फिर बहानों से मुझसे बातों में मुखातिब हो गई थी । उसकी खुशी, उसके खिले चेहरे, उसके तृप्त मन से मैं रोमांचित भी था और दुखी भी । देर तक मैं सोचता रहा कि वनमाला के किस रूप पर मैं मुग्ध होऊँ और किस रूप पर दुखी ।

वनमाला के साथ प्यार और विग्रह, रूठने और मनाने का खेल बाधाओं के बावजूद चलता रहा था। फिर भी न जाने क्यों वनमाला का खिंचाव, उसका अप्रत्याशित चिड़चिड़ापन मुझमें मलाल पैदा कर रहा था। मेरे सारे गुणों, सारी अभिरुचियॉ, घरू संस्कारों के अकृत्रिम बीज उसी में हैं और वही मेरी संगिनी हो सकती है । फिर भी जब वह खुलकर सामने नहीं आ रही है, साथ देने तैयार नहीं होती तो क्यों न मैं भी उससे दूर रह अपनी पीड़ाओं से मुक्ति पा लूं ? मैं अक्सर सोचा करता कि प्यास मुझे उनकी ओर खींचती थी, लेकिन वनमाला हमेशा बीच में आ जाती थी । हम दोनों के भावनात्मक संबंध लगभग वैसे ही बन चले थे जैसे पति

और पत्नी के होते हैं । हम सब- कुछ करेंगे- एक-दूसरे से नफरत, प्यार, झगड़ा, रूठना, मनाना लेकिन एक दूसरे पर अधिकार नहीं छोड़ेंगे, फिर चाहे कोई और कितने ही बीच में क्यों न आ जाएं । यह एक विचित्र बंधन था जो हमें बांधे था और जिसने हमेशा बांधे रखा था ।

संयोगवश उस खास अवसर पर मैं फिर प्रशासन के चार्ज में था जब की यह बात है । दूसरे दिन भादों के शुक्ल पक्ष की तीज का त्यौहार था। नीलांजना उस वक्त मेरे पास ठंडी बयार का सुख देती खड़ी थी । वनमाला का साथ जहां हमेशा उत्तेजना और बेचैनी छोड़ जाता था, वही नीलांजना का पास होना ओस की उन शीतल बूंदों का अहसास जगाता था जो दिल और दिमाग को राहत देती थी । नीलांजना से मेरा कभी पल भर के लिए भी मन मुटाव न हुआ । ऐसी बाल-सुलभ सरलता, ऐसा सहज खुलापन कि भावना और प्रेम के देखे-अदेखे संदेश भरी बातों के बावजूद कभी न उसे, और न मुझे यह अहसास हो पाता था कि हम एक-दूसरे को आकर्षित करने की चेष्टा में लगे हैं । इतनी सहज और अकृत्रिम चाहत जिसमें तनाव का कोसों दूर तक काम न था । हमने फोन पर न जाने जब-तब कितनी कैसी और कितनी देर तक बातें की होंगी । आटो रिक्शा में साथ-साथ चिपके बातें करते दूरियां तय की होंगी । भीड़ भारी बस की बोनट पर साथ चिपके और बतियाते रहे, कालेज में साथ बैठे घंटों काम किया, लेकिन हमेशा दिल और दिमाग को राहत देने वाली तसल्ली वहां हुआ करती थी । इसके विपरीत जिसे मैं दिल में बसाए था वह वनमाला प्रिया हमेशा न जाने क्यों मुझे केवल परेशान करती थी । वनमाला के मन को कभी मैं ठीक-ठीक नहीं पढ सका। उसे नीलांजना से भयंकर चिढ़ थी । पसंद तो वह किसी का भी मेरे पास फटकना नहीं करती थी लेकिन नीलांजना का मेरे साथ होना उसके लिए बर्दाश्त से बाहर था ।

उस दिन मेरे चैम्बर में भीड़-भाड़ नहीं थी । नीलांजना और मैं सहज नाम-मनुहार भरी बातें कर रहे थे । नीलांजना की बातों में ऐसी कशिश होती इतना सहज मनुहार होता कि अधिकार जैसा झगड़ा गायब हुआ करता था । उसका अनुरोध मैं या मेरा अनुरोध वह मान जाए या दिक्कतों के कारण नहीं माना जाए, तब भी ऐसी तसल्ली से चीजें खत्म होती कि न तो मैं रूठता था और न वह । अचानक फोन की घंटी बजी । नीलांजना से मैने कहा कि तुम ही फोन उठा लो । नीलांजना ने फोन उठाया । कहा कि वनमाला मैडम आप को पूछ रही हैं, आप बात कीजिए । उस दिन मन में क्षीण सी इच्छा जागने पर भी मैने वनमाला से बात नहीं की । मेरे मन ने कहा कि यूं सामान्य भी बात करना चाहूं तो सब के बीच वनमाला मुझे अनसुना कर देती है और अब फोन पर बात करने की अचानक सहज पहल ? मैने आश्चर्य प्रकट करते यह बात नीलांजना से साफ-साफ उजागर कर भी दी । उससे कहा कि तुम्हीं पूछ लो क्या बात है । नीलांजना के चेहरे पर झिझक आई । लेकिन मेरे इशारे पर उसी ने बात की । नीलांजना ने बताया कि वे पूछ रही है कि कल छुट्टी दे रहे हैं क्या ? उस समय बेरुखी दिखाता जवाब देना भी मैं टाल गया । मेरे मन को यह अनुभव कर राहत मिली कि मेरे निकट नीलांजना की कल्पना कर और मेरी तरफ से उसे फोन पर सुनकर जरुर वनमाला को ईर्ष्या हुई होगी । उसे यह अहसास होना चाहिए कि मैं उतना उपेक्षणीय नहीं हूं जितना वह समझती है । यह कि वनमाला नहीं तो क्या उसके अलावा मेरे साथ के लिए और भी हैं । वह अवसर इसका भी था कि नीलांजना पर यह प्रकट हो जाए कि वनमाला से मैं उतना बंधा नहीं हूं जैसा उसे लगता होगा ।

वनमाला के इरादे मेरे मन में न जाने क्यों संदेह भर रहे थे । मैं तब अक्सर सोचा करता और अब भी सोचता हूं कि यह कैसा खेल था, जिसमें एक दूसरे पर अधिकार की दावेदारी तो थी- लेकिन वह दावेदारी मेरी ओर से जहां प्यार और मनुहार में प्रकट होती थी, वहां वनमाला थी कि हमेशा विग्रह, रोष और ईर्ष्या से मुझे चोट पहुंचाकर तसल्ली पाती प्रकट करती थी । स्टाफ के बीच हमेशा मुझसे तो वह अबोली रहती , लेकिन सेवकों से प्रोफेसरों तक सभी से बातचीत में सहज और निर्द्वन्द हुआ करती थी ? वह इस तरह हुआ करता कि मेरे लिए उसकी प्रकट उपेक्षा और मुझसे संबंधों में उसकी कड़वाहट सारी भीड़ की नजरों में रही आती थी । संबंधों में मेधा में, विचारों और भावनाओं में वह सब से करीब मेरे थी, लेकिन मेरे सामने आकर खड़ी होती और छोटी-छोटी बात पर राय किसी और से लेती थी । मकसद ऐसा दिखाई पड़ता जैसे वह जानबूझकर

लोगों पर प्रकट करना चाहती है कि इस आदमी से मुझे नफरत है, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है, यह मेरे लिए उपेक्षणीय है । यह विचित्र बात है कि वनमाला ने कभी न सोचा कि उसके ऐसे बर्ताव से मेरे दिलो- दिमाग पर क्या गुजरती थी । उसके लिए में खिलौना था । जब चाहा खेला, जब चाहा तोड़ दिया । इन हालातों में अक्सर मेरे मन की कड़वाहट और ईर्ष्या अचानक जाग पड़ती थी । ऐसा ही उस दिन भी हुआ था। बाधाओं के बावजूद आंखों और भावनाओं के अदेखे-देखे संकेत समझौते की जो भाषा हममें बन रही थी वह अचानक और अनचाहे मेरी गलती से मेरे और वनमाला के बीच उग्र कटुता में बदल गई थी ।

आप को तो बस हमेशा यूं ही डर लगा रहता है

क्या वनमाला का व्यंग्य उस उपेक्षा का प्रतिशोध था
जो पिछले दिनों पर बा-रास्ते नीलांजना फोन की डोरियों से वनमाला को भेज दी थी ?

हां, उस रोज गलती मैंने ही की थी । परीक्षाएं चल रही थीं । मार्च का महीना था । यदा-कदा जहां अवकाश निकले सुबह के लोगों को शाम की परीक्षाओं में बुलाने की नीति बनी थी । सुबह वनमाला की एक झलक देखने का भी अवसर भी दुष्कर था । वह सुबह आती, मैं दोपहर को बाद में पहुंचता । यूं ही ड्यूटियों में यदा-कदा शाम उसकी झलक देखकर भी मेरे मन को राहत पहुंचती थी । उस दिन दोपहर बाद वह आई और मुझे अनदेखा कर मेरे सहायकों से मनुहार में लग गई कि अगले दिनों में उसकी शाम की ड्यूटी काटकर बदल दी जाए । वनमाला लोकभय से इतना सहमती थी कि बाधा समझे जाने वाले किसी गैर के सामने मुझसे आंख तक नहीं मिलाती थी फिर बात की बात तो दूर रही । पर न जाने क्यों तब मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो चली थी ?

मैं उस वक्त परीक्षा का सर्वोपरि अधिकारी था । मुझे अनदेखा कर, अबोला रख भोला और सत्यजित के सामने गिड़ागिड़ाकर वनमाला को अपनी जगह किसी जूनियर काम-चलाऊ लड़की का नाम रख देने का आग्रह उनसे करता पाकर मेरा अहंकार जाग उठा । हां, दरअसल वह मेरी उपेक्षा ही थी । भोला और सत्यजित उसे तसल्ली देते उससे सहानुभूति दर्शाते राजी हो ही रहे थे कि मैं बरस पड़ा । नाराजगी दिखाते हुए मैने कहा कि अधीक्षक मैं हूं और आश्वासन देते सहानुभूति बटोरनेवाले, ड्यूटी बदलने वाले बीच के ठेकेदार अन्य बन गए हैं । सीनियर की अपनी गारिमा है ड्यूटी सोच समझकर लगाई गई है । तुम क्यों नहीं आ सकतीं **?** मैने कहा- तुम्हारे होने का अपना महत्व है, वह लड़की तुम्हारी जगह कैसे आएगी **?**

मेरे बरसने में भी वनमाला के लिए प्रशंसा का भाव कायम था, लेकिन वनमाला के मन में तो कुछ और ही था । सहायकों की आंख में झांकती व्यंग्यपूर्वक उसने मुझ पर चोट किया "गरिमामय उपस्थिति ! अच्छा **?"** मेरी ओर लक्ष्य कर उसने कहा "मेरी ही उपस्थिति पर लोगों का ध्यान क्यों रहता है **?** औरों पर क्यों नहीं **?** यहां तो हमेशा ड्यूटियां दसों साल से बदली जाती हैं । मेरे साथ ही नई बात क्या हो गई **?"**

क्षोभ से तिलमिला कर मैने भी व्यंगयपूर्वक पलटवार किया- "हां हैं कुछ लोग जिनके कारण ही तो सारी व्यवस्था चौपट हो गई है । वही तो तुम्हारे शुभचिन्तक और परामर्शदाता हैं, मैं तो मूर्ख ही रहा आया।" संकेतों में बेवफाई और चालूपन का मेरा ताना वनमाला को जा लगा । उसने मेरी ओर देखा । उसकी आंखों में शिकायत और आंसू की बूंदे थी । मेरे गुस्से ने सारा माहौल खराब कर दिया था । वनमाला की उपस्थ्ति पर मेरे आग्रह का अर्थ प्रकट हो चुका था । फिर किसी ने कुछ न कहा और वनमाला उसी तरह नम आंख के साथ यह कहती चली गई कि न जाने मेरे ही मामले में ये सब बातें क्यों उठती हैं **?** सारा कुछ गुजर जाने के बाद मैं यह सोचता रहा कि क्या वनमाला का व्यंग्य उस उपेक्षा का प्रतिशोध था जो पिछले दिनों पर बा-रास्ते नीलांजना फोन की डोरियों से वनमाला को भेज दी थी **?**

उन गर्मियों में परीक्षा के बाद फिर बड़े साहब के छुट्टी पर जाने पर मैं उनकी जगह काम करता रहा । बाहर मेरे काम से, व्यवहार से, कहीं भी यह प्रकट न होता था कि मेरा मन कितना टूटा हुआ है और दुखी है । पुरुष हों या स्त्रियॉ स्टाफ में मेरी छबि मिहनत और लगन से काम करने वाले की थी । एक-दो को छोड़ मुझसे सभी के संबंध अच्छे थे । वनमाला ही थी जिसके व्यवहार और जिसकी मुद्राओं से, उसकी उपस्थिति से मैं अचानक सब से कटा और अवमाननित महसूस करता था । निश्चयतः हमारे संबंधों के बीच उठती-गिरती तरंगों को लोग भी पढ़ और देख रहे थे, लेकिन वह शायद मर्यादा ही थी जो लोगों को मुझसे सीधे इस बारे में बात करने से रोकती थी । जून के आखिर में मेरा इरादा चंद लोगों को उनकी छुट्टियों से पहले बुलाने का था ताकि नए सत्र में छात्रों की प्रवेश संबंधी कुछ तैयारियां पूरी हो जाएं । संभावित चंद लोगों में वनमाला मेरे ध्यान में सर्वोपरि थी । उससे मेरे संबंध पारस्परिक अधिकार-भावना और प्यार से जुड़े थे । सार्वजनिक रूप में जो घटता था, वह निजी एकांतिक मुलाकातों में बेहद आत्मीय और व्यक्तिगत में बदल जाता था । मैं चाहता था कि हफ्ते दो हफ्ते सही हम निर्विघ्न भयमुक्त होकर साथ बैठें और प्यार की बातों से झगड़ों की भरपाई करें । वनमाला से इन दिनों कभी मैने यह बात कह भी दी थी । अचानक एक दिन फोन की वह खास घंटी बजी जिसके लिए मैं तरसता था । दोपहर का समय था । वनमाला की आवाज में संकोच रहित खनक थी । जरूर मूड अच्छा रहा होगा और फोन पर लाइन क्लीयर थी । उसने पूछा- "आप ने छुट्टी से एक हफ्ता पहले बुलाने की बात कही थी । आज मैं आप के बुलावे का इंतजार कर रही थी, लेकिन आप की तरफ से न कोई संकेत न सूचना । बुला रहे हैं ना ?"

मैने कहा- "हां, मैं चाहता था कि अपने विश्वास के खास एक दो लोगों को बुलाऊँ जो वनमाला और मेरे बीच बाधा न बने । बेमतलब की भीड़ का मैं क्या करूंगा ? लेकिन फिर डर लगता है कि खास तौर पर तुम्हें मेरे साथ पाकर लोगों की उंगली न उठे ।"

"आप को तो बस हमेशा यूं ही डर लगा रहता है", वनमाला ने कहा ।

मैने वनमाला को सुझाया- "तुम तो ऐसे ही किसी बहाने यहां आ जाओ । तुरन्त आदेश बना लिया जाएगा और छुट्टी का लाभ मिल जाएगा ।"

नखरों का जखीरा वनमाला के पास था । मुझे प्रतीत होता है कि इन तत्वों का पुरुषों को खीचने में अपना महत्व होता है । शायद इसीलिए मैं वनमाला के प्यार की डोर से बंध गया था। ऐसा नहीं कि नीलांजना यह जानती नहीं थी । उसे अच्छी तरह आभास था कि मैं उसका साथ चाहता हूं, उससे प्यार करता हूं । लेकिन वह थी कि बजाय मुझसे रुठने, झगड़ने, मुंह फुलाने के खुद ही मैदान छोड़कर मुझे वनमाला की ओर ढकेलकर भाग जाती थी । अक्सर अपने और मेरे बीच दखल देती रोष भरी आंखों से धमकाती वनमाला को अनेक अवसरों पर नीलांजना ने देखा है- लेकिन एक विवश, मौन उदासी के अलावा जो क्षणिक हुआ करती थी, नीलांजना ने कभी चेष्टा नहीं कि वह अपने वर्षों साथ निभाते पुराने खिचड़ी-पार्टनर को छीन ले । नीलांजना की इस सहज समर्पित सरलता पर मुझे अफसोस रहा है और हमेशा रहा आएगा । अगर वह अपनी शिकायत को स्वर दे सकती तो शायद यह कहानी न बनती जो मेरे लिए दर्द की दास्तान बन गई ।

वनमाला के साथ दिल की डोर इस कदर बंध गई थी की उसकी गांठ को खोल पाना मेरे लिए असंभव था और हमेशा रहेगा । उसके पीछे का कारण यह था कि एक दूसरे के दिलों में चाहत की भाषा हम दोनों में बाकायदा संवाद बन चुकी थी । निम्न-मध्यवर्ग की पारिवारिक पृष्ठभूमि, घर के संबंधों की टीस, दिल और दिमाग में अद्‌भुत समानता, प्रतिभा का मिलन और फिर प्रथम दृष्टि से ही बंधे प्रेम और साथ की यादें ऐसे पुल का काम करती थी जो परिस्थितियों और चित्त में छाई घनघोर घटा के बीच बिजली की तरह कौंध-कौंध कर हमें जगा देती थीं । यही वह रहस्य है जिसने विपरीत परिस्थितियों और कड़वाहट के बीच भी प्यार ही प्यास हममें जगाए रखी है । मैं जानता हूं कि जब दिलों पर छुपी यह गाथा कागज पर उतर रही है, तब भी वनमाला के मन की तरंगों को वह उसी तरह उद्‌वेलित कर रही है जिस तरह मैं उन्हें प्रतिपल संजोए हुए हूं । बहरहाल होनी में जो लिखा था, वह हुआ । मैं निरंतर देख रहा था कि वनमाला के मुझसे संबंधों में वह गरमी नजर नहीं आती थी जो तब थी, जब हम दोने झगड़ कर अलग हुए थे । दोनों में अद्‌भुत अपार

स्वाभिमान कि न वह झुकेगी और न मैं झुकूंगा, भले हम टूट क्यों न जाएं । दोनों को यह आभास कि भौतिक दूरियों के बावजूद हमारे दिल एक-दूसरे को छोड़कर नहीं जा सकते । उसे मालूम था कि हमारे साथ का, खासकर मेरे लिए उसके साथ का विकल्प कोई और हो ही नहीं सकता । फर्क केवल इतना कि वह निःशर्त समर्पण और एकाधिकार चाहती थी और मैं था कि उसे सहज समर्पित था । उसमें इस बात को लेकर गहरी ईर्ष्या थी कि मैं औरों के आकर्षण और प्रशंसा का केन्द्र क्यों कर बन जाता हूं ? औरों को मेरे निकट आता देख वह अपनी वितृष्णा, अपना गुस्सा कभी न छिपा पाई । उसे इस बात का विश्वास कभी नहीं रहा कि मैं उसी का और केवल उसी का हूं ।

बावजूद इसके कि सुबह के दौरे से अलग हुए लंबा अरसा बीत चला था और मैने बहुत देर से पहुंचना शुरू कर दिया था, मैं बस से रोज इसी उम्मीद से ग्यारह बजे कॉलेज पहुंचता कि दूरी के संबंध सही, अपनी प्रिया की एक झलक देखकर ही मेरा दिन कृतार्थ हो जाएगा । वैसा होता भी । दोनों की रहस्यमयी नजरें उठतीं, मिलतीं और गिनतीं, लेकिन होठ सिले रहते । फिर मैने पाया कि धीरे-धीरे उनमें कहीं शिकायत, रोष और वितृष्णाकी छाया भी शामिल होने लगी हैं । वह यूं मुह बनाती कि जैसे उससे मुझे कोई मतलब नहीं है । अक्सर यूं होता कि समुदाय में अकेले चहचहाने के बीच यदि हममे से दूसरा पहुंच जाता तो होंठों पर चुप्पी के उदास ताले लग जाते थे । वनमाला के रुख मे इस कदर बदलाव की कल्पना भी मेरे लिये दुष्कर थी। मैं विस्मित था।

मेरे और भी दीवाने हैं, कद्रदां हैं । अपना प्रेम लेकर तुम बैठे रहो

मेरे मन में होलिका, तेरे दिल में रंग।
मेरी आंखें ग़मजदा, तुझमें भरा उमंग॥
सांस तरसती चीखती, मुझे लगा लो अंग ।
जानम तुम्हें पुकारता जनम-जनम का संग ॥ -मौलिक

अचानक वह दिन आया जब मैंने जाना कि क्या हो गया हैं वे नये साल में परीक्षाओं के दिन थे । फरवरी का अंतिम सप्ताह था । परीक्षाएं हौले-हौले आरंभ हो चुकी थीं, लेकिन होली के कारण दो-तीन दिन छुट्यिों जैसे माहौल के थे क्योंकि उन दिनों परीक्षाएं नहीं थीं । शनिवार का दिन था और दूसरे रोज होली जलनी थी । रंग, गुलाल और फिर धड़ल्ले से बिकती शराब के बदरंग माहौल के भय से लोग खासकर स्त्रियॉ अघोषित छुट्यिॉ मार लेती थी । घर में मेरा मन न लगता था और कालेज मेरे लिए वनमाला का पर्याय था । इस ना-उम्मीद संभावना से कि शायद वनमाला आए, मैं अपने समय से कालेज पहुंच गया । वनमाला की यादों में मैं दिन-रात खोया रहता था । अदृश्य ईश्वर से मैं मनाया करता कि उससे एकांत में मुलाकात के अवसर मुहय्या कराये ताकि दिल की बातें तफसील में हो सकें । मेरी उदास आंखें विस्मित चमक से भर उठीं जब मैने पाया कि उस दिन शिक्षकों में अकेली वनमाला पहुंच बंद खिड़कियों की अधनीम रौशनी में वनमाला बैठी हुई हैं । उसने मुझे आता देखा, मुझसे नजरें मिली और एक हल्की सी मुस्कुराहट उसके होठों के एक कोने पर उभरी । उस दिन मैने लक्ष्य किया कि उस मुस्कुराहट में स्वागत का उल्लास नहीं था, केवल एक विद्रूप भाव था । मैने बातों की पहल की ही थी कि वह 'हां-हूं' करती अपने बड़े काले पर्स से कपियों के लाइन वाला दोपन्ना निकालकर नजरें दौड़ाने लगी । उसकी आंखों में वह चमक और मुस्काराहट अब मैने देखी जिसकी पहले मैने ख्वाहिश की थी ।

मैने पूछ "क्या पढ़ रही हो **?** कुछ विशेष है क्या **?**

"कुछ नहीं बस यूं ही"- उसने कहा ।

जैसे इस भय से कि मैं उसे बातों में न लगा लूं, अचानक उसने वे पन्ने पर्स में डाले और पर्स उठा दफ्तर में जाकर बैठ गई । आहत मन अपनी तकदीर को उसकी बेरुखाई पर कोसता किं-कर्तव्यविमूढ़ अकेला

बैठा रहा । मुझे उम्मीद थी कि शायद कोई छोटा-मोटा काम हो और वह यहां लौट आएगी । लेकिन नहीं, दफ्तर में मजबूरी में पहुंचे दो-तीन बाबू-चपरासियों और एकाध अन्य के बीच तकरीबन आधा घंटा बैठकर वनमाला लौटी । मैने बाहर निगाह डाली तो पाया कि उसके विषय का सहकर्मी विपुल अपने बच्चे को साथ लिए स्कूटर से उतरा था । उसने मुझे देखकर भी जैसे न देखा था। वनमाला से औपचारिक एक-दो, न करने के बराबर बातें की और जैसे आंखों के संकेत हुए, बच्चे को अपनी अंगुली थमाए विपुल और अपना पर्स उठाए उसके पीछे-पीछे वनमाला चल चली । कैम्पस के बाहरी गेट तक के सौ कदम स्कूटर ठेलते विपुल और उसके विपुल पीछे चलती वनमाला ने तय किए । सड़क पर आकर पहले स्कूटर यूं मुड़ा जैसे विपुल पीछे अपने घर लौटने को हो । लेकिन नहीं, अचानक स्कूटर ने पल तकरीबन आधा घंटा कर वनमाला की राह की दिशा में रुख कर लिया। सामने बच्चे को खड़ा किए, पीछे वनमाला को बिठाए विपुल का स्कूटर फुर्र हो गया था। वनमाला की बेरुखी का रहस्य मेरे सामने उजागर हो गया था । उसकी आंखों में लाचार उदासी में बोलती वफादारी अब बेशर्म बेवफाई में बदल गई थी । मेरी आंखों में अतीत के दृश्य एक-एक कर आए और चले गए । यह वही आदमी था, जिसे अपने घर और मेरे प्यार के बीच पशोपेश में फंसी वनमाला ने भय से विश्वास में लेकर मेरे दीवानगी भरे फोन की बात कह दी थी । यह वही आदमी था जिसने नीलांजना के प्रसंग में वनमाला से मेरी झूठी शिकायत कर भड़काया था । यह वही आदमी था, जो सुबह का दौर छोड़ने से पहले ही वनमाला के मन में इस बात से जहर भर रहा था कि मेरा वनमाला से तआल्लुक दिखावा है और दरअसल तो मैं नीलांजना और दीगर औरतों के चक्कर में पड़ा रहता हूं । यह वही आदमी था, जो वनमाला को यह पढ़ा रहा था कि उसे मुझसे कैसे दूर रहना चाहिए ? यह कि वनमाला मेरी ओर देखना किस तरह टाल दे ? यह कि जहां मैं रहूं वहां से उठकर वह किस तरह चली जाए ? यह कि मेरे साथ वह काम न करे । यह कि जहां मेरे रहने की संभावना भी हो, वह कामों से कैसे मुंह मोड़ जाए या ड्यूटियाँ बदलवा लें । यह वही था जिसने मेरे और वनमाला के बीच दरार पैदा करने की मुहिम चलाई और बाकायदा मुझे काम की सुबह की पाली छोड़ने बाध्य किया था । मुझे अनुराधा की कही बात भी याद आई कि आप इन्हें जानते नहीं। ये लोग खुद हम कला-संकाय वालों की बुराई करते हैं और लड़कों-लड़कियों को अपनी कक्षाओं के बाद भगा देते हैं । यही वह था, जो वनमाला के ही नहीं छात्रों के मन में भी मेरे विरुद्ध जहर भरा करता था। उस दिन यह साबित हो गया कि वह अपना काम कर चुका था । वनमाला के मन में मेरे विरुद्ध जहर भरने का उसका मकसद पूरा हो चुका था । मुझे भयानक सदमा लगा । यह वही आदमी था, जिसे वनमाला नाकाबिल और चालू किस्म का व्यापारी दिमाग वाला समझ जिसकी बुराइयाँ करती, उसके खिलाफ मुझसे सलाह माँगा करती थी ।

उस रोज मुझे अनदेखा करती वनमालां बेझिझक उठकर, उस आदमी के पीछे इस तरह चली गई थी, जैसे अब तक उसी की प्रतीक्षा में वह बैठी रही आई थी। सब-कुछ जैसे पूर्व नियत था । यह वही वनमाला थी, जिसकी आंखें हजारों झगड़ों और घर के संकटों से उभरे रोष और नाराजगी के बावजूद मुझसे मिलते ही उदास संकोच और शिकायत से टकराया करती थी और भारी भीड़ के बावजूद मुझसे बातें करती थी । उस दिन उन आंखों में संकोच और पशोपेश की वजह बेहयाई और घमंड था । मानों उनमें अलिखित संदेश छिपा था-

"तुम अपने आप को समझते क्या हो ? तुम्हें पूछता कौन है ?" उस दिन मेरी पीड़ा का मजा लेती उन आंखों में मानो खास तौर पर ईर्ष्या भरा अहंकार छिपा था, जो कह रहा था- " अच्छी तरह देख लो कि मेरे और भी दीवाने हैं, कद्रदां हैं । अपना प्रेम लिये तुम बैठे रहो ।"

उस खास दिन जब मैं चुटकी भर चूड़ी (होली का लाल रंग) रंग ले गया था कि अगर मौका मिला तो वनमाला की मांग में आज उसे इस तरह बिखेर दूंगा कि नहाने के वक्त उसका पूरा शरीर मेरे प्यार के रंग से रंग जाए । मैं उससे साफ तौर पर कहूंगा कि रुठी रानी, मेरे प्यार का रंग अब भी वैसा है, तुम बेरुख क्यों हो ? तुम्हारे सारे संदेह बेबुनियाद हैं और यह कि मेरे दिल की रानी तुम्हीं हो, तुम्हारे रंग के सिवा मेरी आंखों में किसी का रंग नहीं चढ़ता-लेकिन नहीं, उस दिन उस रंग को प्रिया वनमाला मेरे प्यार की होली की राख बनाकर छोड़ चली थी ।

मुझसे निगाह फेरती निगाहों में उस दिन मानों प्रतिशोध में विजय का गर्व छिपा था, जिसमें यह संदेश था कि देख लो, अब मुझे प्यार के सहारे की जरुरत ही नहीं है । मैं तुम्हारे बगैर अकेली नहीं हूं । दूसरा सहारा खुद मुझे ढूंढ़ता चला आया है । मैं कम नहीं, कमजोर नहीं । यह संदेश था कि अब तुम अतीत पर आंसू बहाते अपनी आकांक्षाओं की राख मले मेरी प्रतीक्षा करते बैठे रहो, मैं चली और अब लौटकर नहीं आने वाली हूं । भयावह उपेक्षा, निराशा और अवसाद से मेरे चित्त में उठती तरंगों में अतीत की स्मृतियों के अनेक रंग एकबारगी उठते-मिलते-मिटते गड्डमगड्ड हो रहे थे । अब यह तय हो गया था कि जो दुर्घटनाएं मेरे साथ घट रही थी, उनमें केवल उस विपुल का हाथ ही नहीं था, उसके साथ वनमाला की प्रेरणा और इच्छाएं भी जुड़ी थीं ।

****

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

2

हयवदन : न ययौ, न तस्थौ

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

समस्या यह है कि संबंध -विच्छेद के बाद भी एक ही दफ्तर में होने के कारण दोनों को एक दूसरे के नजरों के सामने रहना पड़ेगा । एक - दूसरे से बात करने को भी टाला नहीं जा सकेगा । ऐसी स्थिति में अफेयर से उबरना दोनों के लिए यकीनन कठिन हो सकता है। दरअसल, ऑफिस रोमांस में आमतौर से ऐसा ही होता है। आप दफ्तर से भाग नहीं सकती, इस्तीफा नहीं दे सकतीं और इससे भी खराब बात यह है कि आपके सहकर्मी भी आपके अफेयर के बारे में जानते होते है।

उसने आप को ठुकराया है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अचानक खराब हो गया है । इसलिए पीठ पीछे या सामने में उसकी बुराई न करें और न ही उसकी एंटी - लॉबी से समर्थन हासिल करें । ऐसा करने से आपको तुरंत संतुष्टि मिल सकती है। आप यह भी सोच सकती है कि उसकी कीमत पर आप नए दोस्त बना रही हैं। लेकिन ऐसा करने से भी आप अफेयर से उबर नहीं पाएंगी ।

फिर यह भी मत भूलिए कि कभी आप दोनों ने एक - दूसरे को बेहद अच्छा कहा था। अब बुरा कहकर अपने आपको ही क्यों हास्यास्पद बनाएं **?**

अगर आपका ऑफिस रोमांस छिपा हुआ नहीं था तो आपको सहकर्मियों से खूब मदद मिल सकती है । लेकिन ध्यान रखें, यह दुधारी तलवार है। इससे आपको नुकसान भी हो सकता है। आपके किस्से के राजदार उसे कोरस भी बना सकते हैं।

संबंध टूटने के बाद आप डिप्रेशन में होती हैं और जो भी आपको रोने के लिए कंधे का सहारा देता है, उसी को आप दिल दे बैठती है। ऐसी स्थिति से बचें ।

हरिभूमि -टूटे जब दफ्तर का रोमांस नम्रता नदीम, **27/11/07** सहेली पृ. **1** और **8**

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

No one man can satisfy a woman. Take Draupadi. Each of her five husbands possessed a distinct attribute. Righteous Yudhistira had the wisdom, hunter Arjuna the prowess, lusty Bhima the good body. The beautiful twins Nakula and Sahadev, well they clocked on aesthetics…

Where could today's woman possibly find a five-in-one man..? A man with brains, brawn and a liberated feminine side just didn't exist.

Come to think of it, even Draupadi's mother-in-law, Kunti, had her five sons from five different men, gods actually. That would be six celestial trysts if you include the sun god who fathered Karna.

(Excerpts from Madhu Jain's article titled "Ask Panchali" published in 'Outlook'(weekly)October 28,2002, pp.41)

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

तुम कोई क्लियोपेट्रा नहीं हो

स्मृतियां मुझे कुरेद रही थीं । पिछले वर्षों की घटनाएं चित्त पर उभरने लगी थीं । वनमाला के व्यंग्य, उसका तिरस्कार, उसकी वाणी की कड़वाहट मेरी स्मृतियों में जीवित हो उठी थीं । वनमाला की खीझ और उसकी शिकायतों के रहस्य खुलने लगे थे, जिसे मैं मासूमियत से भरी उदास लाचारी समझ बैठा था । वह नफरत से प्रेरित सुनियोजित षड्यंत्र था, जिसमें वनमाला के अंदर छिपी ईर्ष्या और प्रतिशोध की आग थी। उसमें सहानुभूति के बहाने अंगुली पकड़ कर वनमाला के दिन तक पहुंचे, मेरे ईर्ष्यालु प्रतिद्वंदी की प्रेरणाओं का हविष्य था, जिसने उस आग को भड़काकर मुझे उस आग में झोंक दिया था । इन घटनाओं के पिछले सिरों पर छिपी एक धारणा मेरे चित्त में उभर रही थी । तकरीबन दो साल पहले का वह दिन मेरी आंखों में उभर आया । कॉलेज की कुछ कमेटियों में वनमाला मेरे साथ हुआ करती थी । स्टोर के लिए औपचारिक रूप से बनाई गई क्रय-समिति में वनमाला मेरे साथ काम करती थी । एक अन्य सहयोगी साइंस के सत्यजित भी उसमें थे । वनमाला ठीक ग्यारह बजे अपना पर्स उठाए चली जाती और सत्यजित साढ़े ग्यारह बजे अपनी कक्षा के समय पहुंचते । ऐसे ही दिन थे जब परीक्षाओं के पहले विद्यार्थी कॉलेज आना छोड़ चुके होते और शिक्षकों की

उपस्थिति लगभग शून्य हुआ करती थी । कोई जरुरी बैठक हम तीनों की समिति के लिए तय थीं, जो नहीं हो पा रही थीं । मैं परेशान था । वनमाला कहती कि मैं तो यहां सुबह से बैठी रहती हूँ, आप सत्यजित से कहिए कि वे दस बजे क्यों नहीं आ सकते । सत्यजित से कहता तो वे कहते कि वह औरत कौन सी महत्वपूर्ण है ? वह जूनियर है । सरकारी काम है तो आखिर वह ग्यारह के बाद क्यों नहीं रुक सकती ? अपना पशोपेश मैंने प्रिन्सिपल से कहा था, तो उन्होंने लिखित सूचना मुझसे निकलवाई थी कि इसी दिन सुबह बैठक हो और सदस्य उसमें उपस्थित हों । सुबह सवा नौ बजे बैठक की बात तय हुई थी । उस तयशुदा दिन सत्यजित ने मुझसे कह दिया कि वह दस बजे तक पहुंचेंगे । मैं पहुंचकर वनमाला के साथ बैठकर काम शुरु करवा दूं । ठीक साढ़े नौ बजे मैं कॉलेज पहुंचा । स्टॉफ रुम में वनमाला और अनुराधा बैठी नजर आई । मुझे आश्चर्य हुआ कि अमूनन देर से पहुंचने वाली या गोल मार जाने वाली अनुराधा कैसे उस फुरसत में जल्दी आ गई थी ।

ज्यों ही मैंने स्टॉफ रुम के दरवाजे पर कदम रखा, वनमाला इस तरह भड़ककर हावी हो गई जैसे मेरा अधिकारी प्राचार्य उग्र रूप में हो । गुस्से से भड़कती उसने चिल्लाते हुए कहा-

" अब आ रहे हैं ? देखिए क्या समय हुआ है । साढ़े नौ से ऊपर हो रहे हैं ? "

वनमाला गुस्से में बड़बड़ाती जा रही थी- " मैं सुबह से आकर इंतजार कर रही हूं । आप लोगों ने मुझे फालतू समझ रखा है। " वह चिल्ला रही थी -"सत्यजित जी क्यों नहीं आए ? वस्तुस्थिति बतलाने पर वह और अधिक भड़की- जब तीनों की बैठने की बात थी, तो आप ने पहले ही मेरे साथ या सत्यजित जी के साथ काम क्यों नहीं निपटा लिया ?"

वनमाला का पारा चढ़ा हुआ था और मैं उसे समझाने की कोशिश में था । वनमाला भड़की हुई थी । कहे जा रही थी - " आप लोगों को समय पर आना था, नहीं आए । अब मैं भी यहां नहीं रुकूंगी । मैं आप के साथ बैठकर काम नहीं कर सकती " वगैरह ।

वनमाला को समझाने की कोशिशें व्यर्थ जा रही थीं । उससे मेरा झगड़ा हो गया । कुछ देर तक और सहने के बाद मैं भी उग्र हो चला ।

" इतना चिल्लाने की क्या जरुरत है ? मुझे देर पॉच ही मिनट की हुई है । सत्यजित नहीं आए तो मैं क्या करुं । वे आते होंगे । जहां तक सुबह से बैठे रहने की बात है, तो तुमसे कहा किसने कि सुबह से आकर बेकार बैठी रहो । वह तुम्हारा अपना निर्णय था । तुम कोई क्लियोपेट्रा नहीं हो कि तुम्हारे पीछे मैं पड़ूं और भागता रहूं । सरकारी काम है, करना तो होगा ही "- मैने वनमाला को चोट पहुंचाते जवाब दिया।

मेरा व्यंग्य प्रतिरक्षा में था । उसे औरत जानकर परेशान करने का आरोप मुझे चुभ गया था । वनमाला अपना पर्स उठाए भड़कती चली गई । बाहर सत्यजित आते दिखाई पड़े । राह में ही वनमाला ने उन्हें नमस्ते कह अभिवादन किया था । यह संकेत था कि सत्यजित का न आना वनमाला का बहाना था । उसकी खुन्नस की वजह मैं था ।

यह सारा कुछ अनुराधा की मौजूदगी मे हुआ था। मेरी विनम्रता और वनमाला की उजड्डता की वह साक्षी थी। उसे खुद इस बात पर अचरज था कि वनमाला अकारण मुझसे उस तरह क्यों पेश आई थी ? अनुराधा ने बाद में बताया कि मैडम आज सुबह साढ़े सात से ही यहां आकर बैठी थीं । विराग ने किसी कागज के लिए उन्हें फोन पर जल्दी आने कह दिया था, जिससे वे नाराज थीं । विराग ने कहा था कि सरकारी काम है, उन्हें वे कागज सुबह ही लेकर कहीं जाना है, इसलिए वनमाला उपस्थित रहें । इसी से वह चिढ़ी हुई और नाराज थीं ।

अनुराधा का या वनमाला के द्वारा विराग का हवाला देना भ्रामक था, या मैंने गलत सुना ? नहीं, वह यकीनन पक्का था । बाद में खोदने पर न अनुराधा ने उस बारे में कुछ बताया और न विराग ने उसकी पुष्टि की । हो सकता है चीजों को ढकने अनुराधा ने अपनी ओर से वह बहाना जोड़ा हो । रहस्य को बार-बार खोदने का प्रयास मैंने किया । अब भी वह बरकरार है । मुझे आश्चर्य था कि वनमाला अलस्सुबह किसके काम से आई थी ? आखिर योजना क्या थी ? किसने और क्यों वनमाला को बुला रखा था ? विराग के नाम के बहाने कौन विराग होगा जो पीछे छिपा था ? वनमाला को किसका इंतजार था ? उसका मूड क्यों खराब हुआ ?

बहुत बाद में अनुराधा ने फिर कभी रहस्योघाटन किया कि उस दिन उसे लेकर वनमाला प्राचार्य डॉ. नलिन के घर मेरी शिकायतें करने गई थी । अनुराधा के बताए अनुसार प्राचार्य के द्वारा वस्तुस्थिति पूछने पर अनुराधा ने बता दिया था कि प्रियहरि का कोई कसूर नहीं था और न उन्होंने कुछ कहा था । वह तो मैडम का मूड खराब था, इसीलिये वे एकतरफा बड़बड़ाती रही थीं ।

वनमाला गहरी कुंठा से ग्रस्त थी। उसका स्वभाव घुन्ना था। उन दिनों जो हो रहा था उस पर गौर करने पर मेरी यह आशंका जायज थी कि उस खास सुबह अवश्य ही अपने नये यार की प्रेरणा से मेरे विरुद्ध किसी दुष्ट योजना के क्रियान्वयन की थी। नए यार के न आने के कारण जो गुस्सा था, उसने अतिरिक्त जहर घोलकर अपने पुराने यार पर हमला करने का बल वनमाला को दिया था।

पिछली घटना के बाद मेरी नियति उत्तरोतर पीड़ाओं से गुजरने और आघातों को सहने की हो गई । उस दिन के व्यवहार से मुझ पर सारा कुछ जाहिर हो जाने के बाद उसका अहंकार इतना बढ़ गया कि वह लगातार उग्र और आक्रामक होती चली गई । शर्म और हया का परित्याग कर वनमाला मानों मुझे और मेरे साथ अपने सारे प्रतिद्वंदियों को खुली चुनौती देने लगी थी । अहंकार ने उसके सारे संकोच खो दिये थे । उसका आनंद अब इस लक्ष्य पर था कि मुझ पर अपनी गहरी क्रूरता का निर्मम प्रदर्शन कर सार्वजनिक अपमान और अवसाद की वृत्ति से मृत मनुष्य का स्तूप मुझमें रच दे । उसका आनंद अब इस लक्ष्य में था कि वह खुले तौर पर महिलाओं पर प्रदर्शित करे कि वे उनसे आकर्ष ण और लोकप्रियता में आगे हैं, तो होती रहें, मगर कुछ न समझी जाने पर भी उसी में वह क्षमता और कौशल है कि नर को पशुवत अपना गुलाम बनाकर हाय-हाय करता दर्शा सके । उसके विषय का अन्य साथी अब उसी तरह उसका दूसरा कैदी था, जैसे पहले कैदी के रूप में मैं फंसा हुआ था ।

एकांतिक अवसरों का संधान कर गुपचुप परामर्श और योजनाएं बनाकर आंखों के इशारों आगे-पीछे कॉलेज से खिसकना, कॉलेज की ड्यूटियों के दौरान या उसके बाहर समय निकाल कर राह में मिलने की योजनाएं, परीक्षा से मुक्त होने पर कॉलेज से दोनों का गायब रहा आना, भीड़ से अलग होकर दोनों की मोबाइलों का व्यस्त हो जाना, बहाना मिले तो भीड़ से विमुख और बेपरवाह घंटों काम के बहाने बतियाना और आत्मस्थ हो जाना अब सामान्य बातें थीं । सड़क की ओर बढ़ती या एक किनारे खड़ी वनमाला अचानक फोन बूथ में घुस फोन करती और चुपचाप पीछे से स्कूटर में पहुंचा यार वनमाला को लिये उसकी राह पर बढ़ जाता था । फोन पति को बुलाने के संदेश के बहाने किया जाता और उसकी घंटी प्रेमी के नंबर पर जाती थी । आग्रह यहां तक बढ़ा हुआ था कि कॉलेज में ही हठपूर्वक वे सारे अवसर, सारी ड्यूटियॉ अपने लिये मुहय्या करना चाहते थे, जिनमें उनका साथ हो । सारा स्टॉफ उनकी गतिविधियों को देखता और उनके मजे लेता था । परीक्षाओं की शुरुआत में ही एक रोज वनमाला प्रिंसिपल से इस पर उलझ पड़ी कि उसकी ड्यूटी शाम को उस पाली में क्यों लगा दी जाती है जिसमें मैं अधिकारी था । बैचेन, बदहवास उसका मन काम से ज्यादा काम से बचने की उलझनों में लगा रहता था। उसका यार बगैर काम वनमाला की निगरानी में उपस्थित हो कॉलेज के गलियारों में चक्कर लगाता था। वनमाला का लक्ष्य मात्र एक हो चला था - मुझसे नफरत का इजहार करना और मुझे अपमानित करना । उसके यार का सूत्र था कि समूचे समय वह अपनी इस प्रिया के इर्द-गिर्द रहे और इस बात से विशेष चौकस रहे कि भूल से भी वनमाला मेरे पास न आए और बातें न कर पाये ।

वनमाला की छवि समूचे स्टॉफ में पहले से ही एक बद्दिमाग और बद्तमीज औरत की थी । उस रूप में उसकी ख्याति में अब निरन्तर और इजाफा हो रहा था। अपनी समझ में वह औरतों में ईर्ष्या पैदा कर रही थी, लेकिन सती-सावित्री, गंभीर और बुद्धिमती की छवि जाहिर करती, अभावों में जलती कुंठित औरत की उस तरह की स्वच्छंद उतावली वनमाला की पहचान को हास्यास्पद बना रही थी । एक भी ऐसा न था जिससे उसकी पटती हो । वह तो व्यक्तिगत हितों का टकराव था, जिसके कारण वल्लरी एक तरफ हो चली थी और वनमाला को उसका साथ सुविधा के लिए सुलभ हो गया था । तब भी वल्लरी के खुद के लिए वह आपद्धर्म था । दीगर औरतों से गुटबाजी के कारण भले ही वल्लरी की दूरी थी, लेकिन मेरे तो वह उतनी ही निकट रही,

जितनी निकट उसकी प्रतिद्वंदी नेहा मुझसे रही । नेहा और वल्लरी का विग्रह उनकी अपनी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और स्वार्थों का टकराव था, लेकिन दोनों खूबसूरत और जहां तक मेरा तआल्लुक रहा अच्छे स्वभाव की थीं। दोनों मेरे करीब थीं। किसी एक को भी छोड़ना मुझे गवारा न था। नेहा और वल्लरी दोनों ही मुझे प्रिय थीं।

बिन्दास नेहा

सुरीली स्वर लहरी में उठती तान 'आह हह... , आप तो बस यूं ही टाल देते हैं '

मेरी चहेतियों में ही नही; मुझे चाहनेवालियों में भी नेहा सब से बिंदास थी । वनमाला मुझे सताती थी, नीलांजना मेरे करीब होती भी वनमाला से भयभीत हो मुझसे दूर भाग जाया करती थी लेकिन वह नेहा ही थी जो निर्भय, निर्द्वन्द और बिन्दास खुलेपन के साथ हरदम साथ देती मेरे करीब रही आया करती थी। मै खुद भी नेहा को पसन्द करता था लेकिन मेरी चाहत पर सदैव उसे सन्देह बना रहता। जब भी पास होती वह मुस्कुराती हुई यह ताना देने से बाज नहीं आती कि वाह, आप ऐसा कहते भर हैं। सचमुच चाहते हैं या नहीं इसे मैं कैसे जानूं ? आप तो जब देखो वनमाला-वनमाला करते रहते हैं। आप झूठे हैं कहती भी नेहा मेरे करीबतर आने की तमन्ना रखती थी और परिस्थितियों की गमगीनियत से बाहर निकाल खुश रखने हर संभव प्रयत्न किया करती थी। खूबसूरत चेहरे और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली पांच-फुटी गठीले गोरे बदन की नेहा का हर अंग इठलाहट से भरा था । पढ़ाई-लिखाई से उसकी दिलचस्पी बस काम चलाने भर को थी लेकिन लोगों को छेड़ने, खुश रहने और रखने में उसे मजा आता था । इसी रूप में उसे सब ने देखा और जाना है । सुरीली स्वर लहरी में उसकी तान 'आह हह... , आप तो बस यूं ही टाल देते है ' या फिर 'नइं.. ह.. ह बताइए ना.. ह.. ह . नई तो मैं उठकर चली जाती हूं ' उसकी चंचल बतियाती आंखों और दुग्ध-धवल दंत पंक्तियों को होठों के बीच लहराती उसकी खिलखिलाहट में गजब की मादकता थी । यूं नही कि नेहा की ये इठलाई अदाएं मेरे लिए ही थीं बल्कि यह कि वह उसके बिंदास स्वभाव में ही निहित थी ।

नेहा ऐसी हंसमुख और चंचल थी कि उसके दिल के कहीं टिकने और शिद्दत के साथ प्यार-मोहब्बत की गुंजाइश ही न रखती थी । स्टाफ के साथियों को अक्सर यह बात चुभती कि ऐसे ही हंसी-खेल के संबंध वह पढ़ने वाले उन छैला लड़कों से भी रखती थी जो नेतानुमा थे और इस संगत में चुहल करते मज़े लेते थे । इसी कौशल का चमत्कार था कि जिससे उसको खुन्नस निकालनी होती, उसके उसके खिलाफ वह सरे आम शिकायत का कागज फैलाए लौंडों के दस्तखत बटोर लेती थी । मर्दों की जात ने तो हल्के ढंग से उसे और उसके स्वभाव को स्वीकार लिया था लेकिन कविता, वनमाला, पीयुषी को खासतौर पर पहली दो को उससे सख्त नफरत थी । जाहिर है कि नेहा ने भी कभी इन्हें पसन्द नहीं किया ।

छरहरे बदन वाली कृशकाय सुंदरी कविता मर्यादित और गंभीर स्वभाव की थी । वल्लरी से नेहा की खुन्नस के पीछे खास वजह यह भी थी कि वल्लरी जबरिया सरकारी आदेश से अतिरिक्त शिक्षिका के रूप में नेहा के विभाग में धंस आई थी । खतरा यह था कि कभी भी उसके कारण नेहा को यहां से कहीं और खिसकाए जाने का अंदेशा था । एक दूसरे को ठेलकर खिसकाने की प्रतिद्वंदिता इनमें संयोग से पहले से ही बनी थी । नेहा जहां थी वहां से हटकर जब यहां आई तो सुन्दरी वल्लरी को वहां जाना पड़ा था । नेहा के पीछे-पीछे जुगाड़ लगाती वल्लरी अब उसे खो करने जैसे पीछे पड़ी थी ।

वनमाला से नेहा के तो क्या किसी भी औरत के रिश्तेअच्छे न थे । सुबह-सुबह आती और ग्यारह बजे वह एक-दो-तीन हो जाती थी । अपनी स्वयं पोषित काबिलियत की अकड़, धुन्ने स्वभाव और अहंकार में डूबी कुंठित वनमाला दीगर औरतों को हेय समझती थी । जाहिर है कि औरों की तरह नेहा भी हमेशा हंसती हुई गाल फुला, अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को और फैला खिलखिलाती वनमाला का मज़ाक

उड़ाती थी । मुझसे कहती -'छोड़िए न । कहां आप भी उसके पीछे पड़े है । ऐसी बहुत मिल जाएंगी । उसे तो आप ही हैं, जो पूछते हैं । दूसरा और कोई नहीं, जिससे उसकी पटती हो ।

नेहा थी तो किसी और समुदाय की, लेकिन प्रेम-विवाह करके जोशी हो चली थी । इसकी संगत में उकसा पति भले ही बुन्देली हो गया हो, नेहा को राजस्थानी से कोई लेना-देना नहीं था । मुझे यदा-कदा लगा कि नखरीली और मूड-मूड में अचानक तीखे तेवर दिखाने वाली इस सुन्दरी को संभालता-संभालता ही वह परेशान हो उठा था । एक बार ऐसे किसी प्रसंग में मुंह बनाते हिकारत से उसने नेहा की मौजूदगी में ही कह दिया था -'अरे कहां की बात लगाई आप ने ! ये और राजस्थानी सीखेगी । इसके साथ रहता-रहता मैं बुन्देली सीख गया, लेकिन इसे राजस्थानी में कोई दिलचस्पी नहीं ।'

नेहा से मेरा परिचय तभी हो गया था जब वह किसी और जगह से तबादले पर यहां आई थी । नेहा उतनी ही खूबसूरत थी, जितनी बदसूरत वह औरतनुमा लड़की थी जो उससे पहले यहां उसकी जगह थी । नाटी नेहा का बदन यूं भारी था लेकिन जवानी के कड़क कसाव में उसका आकर्षण भरा था। खूब गठे हुए भरी पुट्ठों पर टिकी मोटी कमर के ऊपर जोरदार उभार लिए उसकी ठोस छातियों सहित गर्दन का झुकाव सामने की तरफ हुआ करता था । कमर के नीचे टांगों से न संभलते उसके भारी नितंबो-पुट्ठों की मांसल ठोस गोलाइयां अपनी असाधारणता के साथ पीछे उभरी जाती थीं । उन्हें संभालना और जीतना एक चुनौती भरा आमंत्रण था । इस बात को अगर मैं अपने आप से पूछूं कि कौन-सी ऐसी बात है जो तुरन्त मेरी ओर कल्पनाओं को खीचकर रख देती है तो खुद मुझे बूझना मुश्किल है ।

आखिर मुझमें ही क्या खास बात थी ?बिल्कुल साधारण चेहरे-मोहरे-रंगत के साथ कृशकाय शरीर और ऊपर से रहन-सहन और बरतने की ऐसी शैली जिसमें कहीं भी सलीके की या अभिजात्य की झलक नहीं । यह और विचित्र था कि मैं इसकी ओर से लापरवाही के बावजूद अपने पर कतई शर्मिन्दा न था । बाहर जो दिखाई पड़ना चाहिए उसे मेरे अंदर की खूबियां पूरा करती थी । वाक ओर वक्तृता में अपनी जगह ही नहीं सैकड़ों अन्य से ऊपर, पढ़ने-लिखने और कामकाज के तौर-तरीकों में औरों से बहुत ऊपर, तर्कसंगत चिन्तन वाली वैज्ञानिक बुद्वि और कला-संस्कृति-साहित्य के प्रति रचनात्मक रुझान और कौशल -सब मिलाकर कुछ ऐसा अंदर से धनी किन्तु बाहर से दीखते फक्कड़ व्यक्तित्व कि कोई उपेक्षा न करे ।

महिलाएं तो प्यार और इज्ज़त देतीं ; मुझपर एक-दूसरे से होड़ लेता फिदा होतीं ही लेकिन पुरुषों में भी यदा-कदा कोई ही होता जो विग्रह के क्षणों में मुझे घमंडी और बद्दिमाग समझ और कह सकता था । वनमाला से मेरा व्यक्तित्व बहुत मेल खाता था । यूं कि जैसे हम दोनों एक-दूसरे के स्त्री और पुरुष प्रतिरूप हों । फर्क केवल इतना कि सब कुछ होकर भी रचनात्मक और व्यवहारिक अभिव्यक्ति को प्रमाणित करने की वह क्षमता वनमाला में न थी जो मुझमें भी और जिसकी आकांक्षा वनमाला को दिन-ब-दिन मुझसे जोड़े जा रही थी । बहरहाल मेरे सामने इस वक्त वनमाला नही, उसे चिढ़ाने वाली नेहा की यादें है । शायद आत्मविश्वास से भरी बिन्दास लापरवाही और रिझाने की कला और जिज्ञासा को प्रेरित करती मेरी दृष्टि का अंदाज वे चीजे थी जिनसे रमणियां बरबस खिंची आती थीं ।

देखा-देखी और जब-तब की साधारण बातचीत के बाद दिल से दिल के बीच तार जोड़ने वाला असल परिचय नेहा से फिर एक दिन तब हुआ जब यह गुणी सुन्दरी स्टाफ-रूम से निकल रही थी । स्टाफ रूम में शायद वह अकेली थी । उस दिन उसका कसा हुआ बदन खूबसूरत छीटों वाली सलवार-कुरती पर रंगीन दुपट्टे के साथ सजा-धजा था । ताजगी ऐसी थी कि मानो जवानी का बहता रुधिर उसके गोरे गुलाबी चेहरे पर उतर आया हो । दरवाजे के अंदर प्रवेश करते ही बाहर निकलती नेहा से मेरी मुठभेड़ हुई । दोनो की आंखे टकराईं और कदम ठिठक कर रह गए थे यूं कि जैसे 'कुमारसंभव' में कालिदास की पंक्तियां हैं -'न ययौ न तस्थौ ।'

मेरे अंदर से शब्द अचानक फूट पड़े थे -"आह, आज तो तुम मारे डाल रही हो । कितनी सुंदर लग रही हो । जी करता है नेहा कि....."

और आगे कहनेसे बचाती ज़ुबाँ थम गयी । अधूरा रहा आया "कि.." नेहा में ठीक वहाँ समा गया था जहां मैं उसे देखना चाहता था । नेहा के चेहरे पर स्थिर मेरी दृष्टि में एक चमक उभरी और उसकी नज़रें हया

के बोझ से झुक गईं । उसके होठों पर सलज कोमल स्मिति उभरी, जिसमें उसकी दंतमुक्तावली की एक छटा झलक गई थी । नेहा की दोनो बांहें त्रिकोण बनाती ऊपर उठी थीं । उसकी नजरों ने उठकर मेरी आँखों में झांका । और तब अपने बाब-कट केशों के साथ सिर को थामे कंधा झुकाए नेहा की ज़ोरदार अंगड़ाई से सामना हुआ । पहाड़ से उभार की गोलाइयों में रसभरे नेहा के भारी पुष्ट पयोधरों की जोड़ी चोली के कसाव को धता बताती और चूचियों के नुकीले तीरों से लैस तनती हुई मेरी ओर उभर कर बढ़ आई ।

मेरी तारीफ का जवाब नेहा ने यूं अपनी अदा से दे दिया था । बाद के संबंधों से वह क्षण हमेशा प्रेरक बनकर स्थिर रहा आया था । बिंदास नेहा बिना संकोच अब जब-जब चुहल करती मेरे पास बैठने लगी थी । नेहा से ताल्लुकात मेरी तरफ से थोड़े बहुत संकोच के रहे होगे लेकिन बिन्दास नेहा थी कि सारे संकोच ध्वस्त कर देती थी । खूब मज़ाक करती बतियाती थी; स्टाफ की भेदभरी चुगलियां करती थी; और मुझे खोलने साधिकार छेड़ने लगती थी । यह ठीक वैसा ही था जैसा वनमाला, वल्लरी या मंजूषा करती थीं -
"आप को तो बस फुरसत ही नहीं मिलती औरों से आप के पास बैठनेवालियां बहुत है "

"ऊँह, कितनी बार आती हूं । देखो तो कोई-न-कोई बैठा रहता है । आप ध्यान ही नही देते! "
'ऐं..हह.. ई .... आप बस यूं ही कहते हैं । जो आप की बुराइयां करती हैं, उन्ही को आप लिफ्ट देते बिठाए रखते है । क्यों बिठाते है वनमाला, और वल्लरी को अपने पास?"

फुरसत में वह देर तक बैठा रहना पसंद करती थी । चुहलभरी बातें करती थी । कभी-कभी मै उसे समझाता -"तुम तब क्यों नहीं बैठती, जब लाइन क्लीयर हो और स्टाफ के लोग न हो ? ऐसे सब देखते शक करते होंगे कि नेहा इनसे न जाने क्या-क्या बातें करती है ? जूनियर होकर भी मेरे साथ बैठी गप्पें मारती रहती है ।"

नेहा जवाब देती -"ऊंह..ह ! मुझे क्या डर ? और लोग बैठते हैं तो मै क्यों नहीं बैठ सकती ? जलने दो, जलने वालों को । मै तो चाहती हूं खूब जलें । मुझको तो मजा आता है।"

वह कहती -'आप कहते भर हैं । आप को फुरसत कहां रहती है कि मैं आप के पास बैठूं । मै दोपहर बाद अकेली बैठे-बैठे कितना समय काटूंगी ।' मुझसे वह प्रश्न करती -"क्यों फालतू आप दिन भर बैठते है यहां । सब तो दो बजे के बाद चले जाते हैं इसलिए मै भी क्या करूंगी । मैं बैठी भी रहूं तो आप को फुरसत नहीं ।' वह सुझाती 'आप भी चला कीजिए न दो बजे के बाद ।"

कई बार वह मेरी फरमाइश पर फुरसत खोजती दोपहर दो के बाद घंटे-दो घंटे रुकी होती । कई बार उसकी मंशा पूरी करने सब के रफा हो जाने के घंटों बाद मैं नेहा की संगत में बस पर सवार हो निकल जाता । सावधानी इतनी बरती जाती कि हम सड़क तक अलग-अलग जाते दिखाई पड़े और वह वहां मेरी प्रतीक्षा करे या फिर मैं सड़क पर पहुंचूं और वह कहीं से नमूदार होकर मेरे साथ हो ले । वैसी हालत में भी सड़क पर चलने वाली पैसेंजर बसें कोई घर की तो होती न थीं कि हमें चिपककर बैढने साथ-साथ सीटें मिल जाएं ।

मैं नेहा से कहता - " साथ जाने से भी क्या फायदा ? साथ सीटें तो मिलती नहीं । अलग-अलग बैठने में क्या मज़ा । जो मकसद होता है, वह तो धरा रह जाता है ।"

फिर कोशिश होती कि ऐसी बसों मे जाएंगे जिसमें सीटें खाली हो । वैसा एकाध ही बार होता । अमूनन उसमें भी दो-दो की सीटों पर आराम के लिहाज से एक-एक यात्री बैठा मिलता । फिर तरकीब बनती कि क्यों न हम साथ किसी हॉटल में चले । वहां खाना खाएं और फुरसत से समय बिताएं । कभी वह मुझे छेड़ती कि आप से होटल में लंच लेना है, और कभी मैं उसे । कभी वह लंच आफर करती वादा करती और कभी मैं। लेकिन तीन-चार बजे का समय न हमारे लिए लंच का होता, न तो होटल के लिए । हम सब एक ही नाव में सवार थे -आना, जाना, ड्यूटी, हाजिरी सब के लिए एक ही वक्त । वैसा संभव तभी था जब हम दोनो छुट्टी लें या ऐसे करार के दिन छुट्टी हो । लेकिन तब भी क्या फायदा ? सरकारी छुट्टियां सभी के लिए होती है । मेरे लिए तो ठीक पर उसके लिए घर से बिंदास बाहर होने का बहाना न होगा।

ऐसी कई योजनाएं बनतीं और बिगड़ती । पार्क में जाकर दिन बिताने, कुछ दूर स्थित कालभैरव की नगरी में जाने, उर्जापार्क में तफरीह करने, हॉलीडे रिसार्ट में साथ होने, छात्रों के ग्रुप में पिकनिक चलने के मन्सूबे बनते -लेकिन अमल में कुछ नहीं । एकाध बार मौका निकला भी तो धूप में हाय-हाय करते ही हमने किसी एक ए.सी. रेस्टारेन्ट में दोसा और पेप्सी लेते कुछ समय बिता कर तसल्ली पा ली । रेस्टोरेन्ट तो अमूनन खाली था लेकिन अकेले मनचले लगते नर-नारी के बीच टेबिल के इर्द-गिर्द मंडराता बैरा, अपनी जगह ऊंघता और निगरानी करता बेरोजगारी से राहत पाने बैठा युवा मैनेजर तब भी हम पर निगाह फिराते बैठे थे ।

वे उतरती ठंड के दिन थे । मैने धीमे से सुझाया -'चले तो आए, लेकिन यहां भी मुसीबत है । नाश्ता हो गया और टोहती आंखें बच गई हैं । चलो पास ही पार्क है, वहां चलकर बैठते है ।' सारा पार्क छानकर आखिर एक बेंच हमने चुनी। पार्क भी ऐसी जगह थी जहां मुझे किसी न किसी की जानी-पहचानी आंखों की आशंका थी । बातें तो करते रहे, लेकिन आशंका मेरे साथ ही उसकी आँखों में भी हिचक भर रही थी । एक-दूसरे की आँखों के बारास्ते आशंका से घड़कते दिलों को छूते हम बैठे रहे । पार्क में भी चहल-पहल तो शुरू हो चली थी । कुछ निठल्ले, कुछ खिलंदड़े, कुछ बच्चे घूम-फिर रहे थे जिनकी नज़रें यदा-कदा हम पर पड़ने लगी थीं । मैने नेहा की आंखों मे झांका । मेरी बाईं हथेली ने नेहा की गुदाज़ जांघ को हौले से दबाया -

'कैसी किस्मत है यार, यहां भी वो माहौल नहीं कि मै और तुम एक-दूसरे की धड़कनों से जुड़ सकें -'मैने कहा । नेहा घड़ी देख रही थी । शाम का वक्त हो रहा था, जब घर में वैसी हाजरी ज़रूरी होती है, जो यह अहसास दिलाए कि देर के बावजूद भारी व्यस्तता से भागते दौड़ते आप घर की जिम्मेदारियों पर लौट आए है । उसने कहा -"चलिए चले, बच्चे घर लौट रहे होंगे ।"

नेहा की वृत्ति टोह लेते रहने की थी । मेरा दिल था कि नेहा के पास रहते भी वनमाला के दिल की थाह लेने और यह तसल्ली पाने मरा जाता था कि बेवफाई और झगडों के माहौल में भी वह मेरे उसी तरह करीब है, जिस तरह मै उसपर आशना हूं उस दिन भी नेहा को यह अहसास होने लगा था । मैं बुदबुदा रहा था - "मै भी कितना बदकिस्मत हूं यार । जिसे चाहता हूं वही मुझसे छूटा जाता है ।" नेहा से मैं पूछ रहा था - 'क्या है मुझमें ऐसा-जो कोई मुझे चाहता पसंद करेगा **?**

नेहा जवाब दे रही थी - ऊंह.. । आप को भला ये कैसे पता लगेगा ? जो आप को चाहता है, वह जानता है कि आप में क्या है ? लिखने, पढ़ने, कामकाज, प्रभाव, दिल और दिमाग में कोई भी तो नहीं जो आप के पास भटक सके ।'

नेहा और मुझमें - हम दोनो में अधूरी प्यास की कसक थी । सिर झुकाए वह कह रही थी -

'इसीलिए तो सब आप के इर्द-गिर्द भटकती है ।'

कुछ विराम लेती नेहा ने मुझसे पूछा- 'वनमाला की याद दिल से जाती नहीं है न ! मै महसूस कर रही थी कि आप यहां मेरे साथ हैं, लेकिन उसकी छाया आप के पीछे पड़ी है । छोड़िए न, क्यों इतना याद करते हैं उसे । आप को सताने में उसे मजा आ रहा है तो आप भी उसे दरकिनार कीजिए । भूल जाइए उसे ।'

नेहा की ओर मैने निहारा । कहा- 'तुम कितनी अच्छी हो । साफ, बच्चों जैसी। काश तुम्हारा साथ मुझे वनमाला से उबार सके ।'

पार्क से बाहर निकल हमने अपनी-अपनी गाड़ियां संभाली ही थी कि अपनी गाड़ी से आती एक परिचित हम-पेशा औरत नेहा से टकराई । मैं कह नहीं सकता कि उसने मुझे भी देखा था, या नहीं । अपनी गाड़ी का रुख दूसरी ओर किए कुछ दूरी पर मै भी ठिठक गया था । नेहा से वह औरत दोस्ताना आश्चर्य में पूछ रही थी-

'अरे तुम ! यहां, इस वक्त ! कहां आई थीं ?'

उसे बहलाती नेहा की आंखें मुझसे टकराईं । नेहा का रुख मेरी तरफ था और वह औरत मेरी तरफ पीठ किए उसके रूबरू थी । नेहा की आंखों ने मुझसे कहा कि 'उड़ जाओ', और फौरन मैं उड़ चला । मेरा मन वनमाला की छाया के साथ नेहा में बहुत देर तक उलझा रहा । यह क्या कम था कि वनमाला और मेरे जाती तआल्लुकातों से और इस बात से अच्छी तरह वाकिफ होने के बावजूद कि हम -दोनो एक दूसरे से बुरी तरह

गुंथे हुए है नेहा मेरा साथ पसंद करती थी । वनमाला और मैं उस तरह गुंथे हुए थे कि चाहकर भी हम अलग नहीं हो सकते थे । मंजूषा, नेहा यहां तक कि वल्लरी और पीयुषी भी मेरे दिल पर मरहम लगाती मुझे खींच रही थीं, पर इस रस्साकसी में अकेली वनमाला सब पर भारी थी ।

नेहा अक्सर मुझे सुझाती कि क्यों न उसके घर हम फुरसत से तनावमुक्त होकर मिलें । उसका घर शहर के दूसरी छोर पर था । तीन बजे वह घर पहुंचती थी और वहाँ पांच बजे तक बैठा जा सकता था । मैं सोचता और 'हां-हां' कहते वादा करता टाल जाता ।

नेहा शिकायत करती- ऊं..ह.ह..,. बस कह देते है आते नहीं ।'

नेहा का हबी नगर से बाहर कहीं कार्यरत था । शाम छः-साम बजे तक लौटता था । उसके हबी से कैसे उसका अफेयर चला और क्या-क्या गुजरी इसके बारे में दिलचस्पी से उसी के किसी पूर्व सहकर्मी ने मुझे बताया था । दोनो अपने नगर से दूर कहीं नौकरी पर तैनात थे । रोज़ दोनों का लंबा सफर और यूं साथ होने, परिचय, घनिष्ठता का संयोग बना । जैसा होता है मर्द सारी हदें पार करना चाहता है और औरत एक हद तक पहुंचकर रक्षात्मक हो जाती है। कुछ ऐसी ही बात रही होगी । जैसा वनमाला मेरे साथ पेश आ रही थी, नेहा ने भी कभी खुन्नस में अपने उस छैला की शिकायत की थी । बात थाने तक पहुंची थी । लेकिन फिर वही- 'दिल है कि मानता नहीं ।' गुदाज पेशियां पिघलने लगीं और धीरे-धीरे मामला शांत होकर शादी पर जा पहुंचा था ।

किसी और ने बताया कि घर से दूरी और आवाजाही की परेशानी से आजिज नेहा ने बाद में उसी कस्बे में रहना शुरू कर दिया था । ऐसा ही माजरा उसके उस छैले का भी था जो नौकरी में वहीं आसपास तबादलों में धूम रहा था । उसने भी अपने कसबे में जो बीस-पच्चीस मील के दायरे में था, रहना शुरू कर दिया था । यह शादी से पहले की बात है कि अक्सर छुट्टियों में घर न जाकर नेहा उसके पास चली जाया करती थी । एक खबर यह भी कि बिन्दास नेहा की लिफ्ट से कस्बे के सिनेमा-मालिक का विद्यार्थी छोकरा भी उसपर दावा रखता था। नेहा दो पाटों के बीच फंस गई थी । वह तो खुश रही होगी पर दो प्रेमियों के बीच खूब तनाव और मारपीट की नौबतें उठ खड़ी होती थी ।

मुझे नेहा के अतीत के हालो-हवाल से कोई सरोकार न था और न मैने कभी उस बारे में जिक्र छेड़ना मुनासिब समझा । हमारे संबंध जैसे थे और जैसे बन रहे थे, बिल्कुल खुले थे । चाहत ज़रूर उठ रही थी लेकिन मुहब्बत और तड़पाने वाली हाय-हाय के मामले में वनमाला और मै एक-दूसरे के शिकार थे। उस नियति को कोई नहीं बदल सकता था । वह एक अदृश्य सहारे की जरूरत भर थी जो मुझे नेहा के नज़दीक ले जा रही थी । उसकी बिन्दास अदाएं और राहत की मेरी तलाश एक दूसरे में गुंथी जा रही थी ।

योजनाएं बनती थी और धरी रह जाती थी । सच तो यह है कि वनमाला के खयालों में डूबे चित्त ने मुझे यूं एकांतिकता में ढकेल दिया था कि विश्वसुन्दरी ऐश्वर्या राय भी पास होती तो चित्त से वनमाला नहीं जाने वाली थी । चित्त की मनोदशा वनमाला से बरसों के प्यार मे ऐसी हो चली थी कि यदा-कदा नेहा की प्रेरणा और संगत में उसके साथ जाकर भी मैं "फिर कभी चलेंगे" कहता अपनी जगह उतर भागता था । एक बार तय हुआ कि सरकारी काम से वह बाहर रही आए और किसी बहाने मैं भी उससे जा मिलूंगा। काम निबटाकर दोनो उसके घर ही चलेगे और मौज करेंगे । उस रोज नियत कार्यक्रम भी भीड़ से नेहा के पुराने कुछ परिचित भी निकल आए थे । इससे पहले कि हम आगे का कार्यक्रम बना पाते, नेहा ने औपचारिक ढंग से उन पुराने परिचित को भी चलिए न घर कह दिया । बात सौजन्य की ही थी और उन सज्जन ने भी फिर कभी कहकर वापसी की राह पकड़ ली थी, लेकिन नेहा से रूठकर बाद में मैने भी उसका योजनाबद्व पूर्व-निमंत्रण टाल दिया ।

गुड़िया नेहा मुझपर बहुत भरोसा करती थी और उम्मीदें भी रखती थी। उसे मैं समझाता और सहारा देता था । केवल एक बार वह मुझसे लड़ी जब मेरी समझाइस और तसल्ली के बावजूद वह प्रिसिंपल से झगड़े पर उतारू हो गई थी। वह बेहद तनावग्रस्त और आशंकित थी कि प्रिंसिपल उसे परेशान कर नीचा दिखाने और कैरियर बिगाड़ने पर तुला है। उसे भय था कि कहीं वह उसका ट्रांसफर न करा दे । वह बेहद उत्तेजित थी और अनाप-शनाप बोले जा रही थी। उसे मेरी भूमिका पर भी भरोसा न था। नेहा का पति भी उसकी बिगड़ी मनोदशा

से चिन्तित था। वह भी मुझसे फोन पर और रूबरू नेहा की सहायता की गुहार लगाता था। नेहा के अतिशय पूर्वाग्रह और भय पर खीझकर उसे मैने कुछ लोगों की मौजूदगी में ही प्यार से डांट दिया था। कहा था कि वह समझाने पर भी समझती क्यों नहीं। बेकार बड़बड़ाए जा रही है। मैने कहा -

"गुस्से में तुम पागल हो गई हो कुछ भी बके जा रही हो। जाकर अपने दिमाग का इलाज कराओ। तुमसे बातें करना बेकार है।"

नेहा फिर भी बेकाबू थी। बड़बड़ाती रही थी। ऊबकर उस जगह से मैं खुद उठ गया था। मैं मंजूषा के पास उसके कमरे में जा बैठा था। अचानक नेहा नमूदार हुई। मंजूषा के साथ उस समय मैं बैठा टिफिन में हिस्सा बटा रहा था। हमने देखा नेहा में भीषण उन्माद उठा। चिल्लाई-

"आप! आप ने मुझे पागल कहा। जाकर डाक्टर से इलाज कराओ कहते है।"

उसके चेहरे पर खून उतर आया था और आंखों में भयानक क्रोध था। चेहरे की सारी शिराएं तनी हुई थी। मुंह फाड़ वह तेजी से दोनो हाथ बढ़ाए झपटी-

"हां मैं पागल हो गई हूं। मै राक्षसी हूं। आप को मार डालूंगी" राक्षसी की तरह ही मुंह फाड़े उसे झपटता देख मै डरा हुआ और हतप्रभ था। मंजूषा की भी वही दशा थी। बाद में मैने प्यार से पुचकारते उसे समझाया था कि वह मुहावरे को पकड़ कर क्यों बैठ जाती है। बातों को समझा करे।

भावनाओं से जुड़ा दिल छोटी-छोटी बातों के बड़े-बड़े मतलब निकाल बैठता है। खासतौर पर औरतों से तआल्लुकात मे मैने पाया कि वे बेहद भावुक और संवेदनशील होती है। यह औरत का वह दूसरा रूप हुआ करता है जो लार बहाती लोलुपता में पुरुष प्रेमी की आँख से प्राय: ओझल हो जाया करता है. वनमाला   में यह रोग संक्रामकता की हद तक पहुंचा हुआ था। पीयुषी के साथ भी एक बार ऐसा ही प्रसंग छिड़ गया था। तब वह खूब रोई थी और उसके दिल की चोट को भुनाते तुरन्त अफसर के चालाक चमचो ने शिकायत लिख उसके दस्तखत भी करा लिए थे। बहुत बाद में पीयुषी ने समझा और कबूला कि कुछ लोगों ने उसके गुस्से में राजनीति रचकर उसे मेरे खिलाफ खड़ा कर दिया था। नेहा भी अपवाद न थी। और तो और मेरे प्यार में राहत देखती मंजूषा ने एक बार मुझसे प्यार भरी शिकायत की थी कि 'इसलिए तो औरतें आप से नाराज हो जाती हैं। फिर तो वनमाला ही ठीक है। मैं भी उसी जैसा करूंगी।"

यह केवल इसलिए कि मंजूषा को किसी सेमीनार में जाने की इजाजत देने मे मैने नियम का अड़ंगा लगा दिया था। अपना काम कराने वह बड़े दफ्तर और बड़े अफसरों तक से मिल आई थी लेकिन मेरी मौजूदगी में ही उन्होने कह दिया था कि नियम-कायदों में चलना या रियायत देना इनका ही अधिकार है। आप इन्हें ही मनाइये। मंजूषा मुझसे रूठ गई थी । मुझसे कहा था -'मै तो आप को अपना समझती थी, अब नही आऊंगी आपके पास ।'

मंजूषा की नाराजगी में औरत का मनोविज्ञान निहित था। उसके स्वर मे मैने वनमाला, पीयुषी, नेहा सभी की तफलीफें पढ़ ली थी । प्यार के प्रतिदान मे औरते उम्मीद रखती है कि दिल अगर जुड़े है तो सभी मामलों मे दिल का ख़याल रखा जाए। आधा दिल और आधा दिमाग का रवैया वे पसन्द नहीं करती । वनमाला तो जब-तब इस ओर इशारे कर जाती थी।

उस एक हादसे को छोड़ नेहा हमेशा मेरे करीब रही। मेरे समझाने, पुचकारने पर उसकी वैसी यादें भी भुला दी गई थीं। वह निरन्तर करीब आ रही थी। सस्ते मे मकान मिला तो संस्था के सामने की कालोनी मे ही उसने एक मकान खरीद रखा था। दोपहर बाद वह उसके साज-संवार और अपने अनुरूप निर्माण के जुगाड़ मे अक्सर समय बिताती थी। चुहल मे मै उससे कहता कि अपना मकान मुझे रहने दे दो। मै उत्सुकता दिखाता कि कभी मै उसका यह मकान देखूं। नेहा मुझे आमंत्रित करती कि दो के बाद वहां चला आऊं । वह वहीं रहेगी। मै हामी तो जरूर भर देता लेकिन वहां उससे मुलाकात करने की हिम्मत न जुटा पाता था। मेरी प्रतिष्ठा भी थी और रूमानी तबीयत के मुआमले मे ख्याति भी। भय होता कि वहां मुझे जाता-आता देखती निगाहें मेरी इज्जत मे बट्टा न लगा दे। नेहा से कई बार वादे हुए। साथ-साथ दोपहर बाद फुरसत से मिलने या चलने की योजना

के तहत अक्सर वह उस मकान के बहाने मेरी फुरसत का इंतजार करती और प्रायः उस तरह हम साथ-साथ रवाना होते।

एक बार तो इंतजार कराते मैने लगभग शाम ही कर दी। दोनो पहुंचे तो शाम हो गई थी। राह में ही बारिश और आंधी की मार बस पर पड़ने लगी थी। कुछ देर ही सही साथ रहने की राहत पाने वह मेरे साथ ही मेरी जगह पर उतर पड़ी थी। खूब बारिश हो रही थी। भीगते-भागते एक दूकान की शेड के नीचे हम यूं खड़े परस्पर निहारते और बतियाते रहे थे जैसे प्रेमियों का कोई जोड़ा भाग तो निकला हो लेकिन समझ न पा रहा हो कि भरी भीड़ में क्या किया जाए। हम दोनो ने पास ही ठेलों पर जाकर गरम-गरम मुंगौड़ियां चबाते और बंधवाते समय गुज़ारा था।

फिर आखिर ऐसा संयोग एक दिन बना कि समय तय कर भरी दोपहरी हम दोनो गुपचुप साथ-साथ जाने सड़क पर जा खड़े हुए। नेहा की आत्मीयता मुझे लुभाती थी लेकिन वनमाला चित्त में किसी भी बेवफाई से आगाह करती अपनी यादें जगाए रहती थी। नेहा के साथ मै सवार तो जरूर हुआ, पास-पास बैठने का संयोग भी हुआ, लेकिन हमारे साथ अमूर्त वनमाला भी सवार थी -बस मे नहीं, बल्कि नेहा से बातों के बीच उदासी जगाती मेरे चित्त मे । उस दिन अपनी जगह पहुंचते-पहुंचते मुझे राह में छूटता देख नेहा ने कहा-

'चलिए न आज मेरे साथ। इतनी धूप में अपने ही घर जाकर ही क्या करेंगे । वहां भी सब आराम करते सो रहे होंगे। आप बेकार जाकर अपनी श्रीमती जी को डिस्टर्ब करेंगे। वो मजे से सो रही होंगी और इस दोपहर उन्हें जगाकर आप परेशा न करेगे।' नेहा की वाणी में निहितार्थ व्यंग का था और उसकी बड़ी-बड़ी चुलबुली आंखें मेरी आंखों को छेड़ रही थीं ।

नेहा की मदमाती आँखों में झांकते वैसी ही चुहल की अदा में मैने जवाब दिया था - ' ठीक है, लेकिन तब मेरी यह प्यारी गुड़िया क्या बच पाएगी ? तुम्हें अपने साथ जगाऊँगा और बीबी की जगह तुम्हारे साथ डिस्टर्ब करने और होने का मजा लूंगा।'

निहितार्थ की कल्पना नेहा के कपोलों पर हया की लाली बनकर उतर जाती है लेकिन संकल्प वहां कायम है । वह कहती है - 'हां ठीक है। चलिये न तो सही । फिर अपन देखेंगे।'

ऐसे वक्त नियति की तरह श्यामा वनमाला चित्त में अटक रहती थी । मुझे अधमना और पशोपेश में डूबा देख विलंबित 'ऊं.. ऊं.. ऊं..'के साथ अपनी बड़ी बड़ी ख़ूबसूरत आँखों की दिली तमन्नाओं को गड़ाती नेहा चंचल मुद्रा में उच्चारती है - "चलिए ना, आप तो हमेशा कहते हैं और बस टाल जाते हैं ।"

शब्द गिने चुने हैं लेकिन 'ऊं.. ऊं.. ऊं.." की अनुगूंज में इतनी अर्थ ध्वनियाँ हैं की उनमें छिपे गोपन आशयों से बिलकुल ठीक को पकड़ पाना मुश्किल है । उनमें जिद्द है, व्यंग्य है, ताने हैं, उद्दाम आग्रह है, शिकायत है मायूशी है, और इं सब के साथ अदृश्य और अव्याख्यायित चाहत है । छांटने की बजाय सारे कुछ को उसी तरह मेरा चित्त सहेज लेता है । आदतन मेरी बुद्धि सोचने में फंसी रही आती है । चाहते हुए एक मन को अनमना दूसरा मन संशयग्रस्त किये बींध रहा है । यह उस साली की तस्वीर आँखों में बिछाता चला जाता है जो जुल्मी है और अपनी निर्ममता के साथ ज्यादा मारक होती अविराम अपने आगोश में मुझे बांधी चली जाती है । इधर उधर खडा होता देखकर वह मुझे फ़ौरन बिठा देती है ।

जादू ,नशा और अदृश्य संगीत की दृश्य सुरलहरियां

आकाश नीचे लेटा होगा /अपने नक्षत्रों, आकाश गंगाओं में जगमगाता / पृथ्वी होगी ऊपर/

उसके उत्तुंग शिखर उसकी सघन उपत्यकाएं /झरना फूटेगा /नीचे से उपर की ओर /
नदी बहेगी पृथ्वी से आकाश की ओर/दोनों श्लथ होंगे /फिर विभोर होकर/बारी-बारी से/मदनारूढ़/
रति की मन में अनेक संभावनाएं हैं ।
-विपरीत रति/अशोक वाजपेयी/उम्मीद का दूसरा नाम/पृ. **39**

मुझे लगता है मेरे चित्त के चिलमन से झांकती वनमाला मेरे कान ऐंठ रही है। मजाक को वहीं छोड़ता नेहा की जिद को दरकिनार करता मै अपने ठिकाने लौट आता हूं। हाथ का सामान मैं एक ओर फेकता हूं। सारा कुछ यहां वैसा ही है जैसा नेहा की कल्पना में था। सोमा सो रही है। बाहर झुलसाती गर्मी है और अंदर अंधेरा कमरा अपनी ठंडक के बावजूद सांय-सांय कर रहा है।

यहां दिलगोई का कोई सामान नहीं है। पशोपेश में पड़ा मैं अपने बिस्तर पर लुढ़क जाता हूं। मेरा मन शीतल उदासी के माहौल में झुलसने लगा है। अब मुझे वह नेहा तेजी से याद आ रही है, जिसे मैं छोड़ आया हूं। नेहा ने ठीक कहा था । इससे तो अच्छा होता कि मैं उसका कहा मान लेता। शरीर बिस्तर पर निढाल है और मन नेहा के साथ उन पलों में उड़ा चला जा रहा है जिनके प्रति मैंने बेरहम हो उठा था। अगर नेहा का कहा मान लेता तो ऐसी उदासी न होती। काल का वह छूटा आयाम बेहोश करता मुझे अपने आगोश में भरता चला जा रहा है। उसके साथ बहता मैं ठीक वहीं पहुंचकर नेहा की अंगुली पकड़ लेता
हूं , जहां मैने ना की थी। मेरा हाथ थामे नेहा अपने पीछे भगाए लिये जा रही है।

अनमने यंत्रचालित मै नेहा की राह पर था। दोपहर बाद की तपती गर्मी थी और तेज धूप। हम दोनों बस से उतरकर गर्मी की लू में सन्नाटे भरी सड़क नाप वहां पहुंचे हैं जहां नेहा का डेरा है। अपने हाथ का वह सामान जिसमें हमारी यांत्रिक दिनचर्या बंद है, हम खाली पड़े सोफों पर उछाल फेकते हैं। मैं उसकी बैठक मे सजे दीवान पर ढेर हो गया हूं। नेहा ने झटपट बादाम का शर्बत हाथे में थमाते मुझे ठंडा करने का उपक्रम किया है। बाहर की गर्मी से राहत पहुंची तो अंदर की गर्मी उबलने लगी थी।

" आ..." की लंबी तान के बाद उसमें "... ह " को जोड़ती वसंत के भरे-पूरे बाग जैसी नेहा की चम्पकवर्णी काया अपनी "आह" को पूरा कर रही है - सिर पीछे झुका हुआ , हथेलियां गर्दन के पीछे बंधी हुईं और कुहनियां मुड़ी हुईं। सर और कंधों के उलटे झुकाव से उसकी छातियां बारूद के गोलों की तरह आसमान को दाग रही हैं। गोलों पर चोंच निकाले भूरी-भूरी बेरियां केक पर सजी चेरी की तरह मुझे लुभा रही हैं। मेरी जीभ से लार टपक रही है। नेहा की यही खास अदा तो है जो मुझे विचलित कर जाती हैं। चेरियां तनी छत की तरफ हैं लेकिन निशा ना मेरा दिल बना जा रहा है। अदृश्य चुनौती का सामना करने मेरे अंदर की बंदूक भी अंगड़ाई लेने लगी है। यह ठीक वही जानी-पहचानी मुद्रा है जिसने पहली बार के टकराव से मुझे घायल कर रखा है। जरूर आज वह मुझे लीलकर ही दम लेने वाली है।

वह कह रही है -'मैं कपड़े बदल लूं ।'
'क्या जरूरत है। इन कपड़ों में तुम बिन्दास लग रही हो । बैठ जाओ तुम भी आंखें मूंदे हुए।' मैने कहा ।
'अब आप क्या करेंगे ? आराम करेंगे क्या ?'- नेहा मेरा मूड परख रही है।

'मै आराम करूंगा तो तुम क्या करोगी ? यार तुम बहुत जल्दी भूल जाती हो। मैने क्या कहा था ? बीबी तो बच गई, लेकिन अब आज की दोपहर क्या इस प्यारी गुड़िया को डिस्टर्ब नहीं करूंगा ? -लेटे-लेटे ही गर्दन पीछे सरका उसकी चंचल आंखों में झांकते और चुटकियों में उसकी नाक की नोक फंसाकर मैने उसे छेड़ा।

"आंहह......, मेरा मतलब वो थोड़े ही था।" - नेहा का चेहरा अब सचमुच की लज्जा से लाल हो गया था ।

सिरहाने बैठी नेहा मुझे राहत देने मेरे बालों पर अपनी अंगुलियां फिरा रही थी। उसकी हथेलियों ने मेरा माथा दबाया। धीरे-धीरे वे चेहरे पर फिरती गालों को सहलाती मुझे ऐसी बेहोशी में ले आई जहां सुख की चाहत छिपी थी। मेरी बाहों ने नेहा की गर्दन पर घेरा बनाया और उसके चेहरे को अपने गालो पर टिका दिया। अब वह समर्पित थी और मैं उसके बालों से खेल रहा था। उसके गालों को मै चूम रहा था। मैने उसका चेहरा हौले से कुछ ऊपर उठाया और होठों की दूरी बनाता-मिटाता अपने होठ उन होठों मे उलझाए जा रहा था। मेरी शिराएं

गर्म हो चली थी। उनमें रक्त का प्रवाह तीव्र हो रहा था। नेहा ने उस जगह की हलचल को शायद देख लिया था, जहां रक्त की सनसनी के संकेत मिल रहे था। अब उसका सर मेरी जंघाओं की संधि पर बढ़ चला था और उसकी न समाए पड़ती भारी मांसल गोलाइयों का झुकाव मेरी छाती के समानांतर था। मेरे हाथ इन गोलाइयों से खेल रहे थे। यूं कि जैसे कोई ग्वाला गाय के थनों पर हाथ फेरता दूध उतारने उद्यत हो। नेहा अच्छी सहचरी थी। दिखावों और नखरों के जखीरों से वह दूर थी। वहां नेहा थी, मैं था और गर्मी की तपिश के अंदर हमारा रचा मादक जादू का वह खेल था जो ताश के पत्तों की तरह सारी दोपहर फेंटा जाता रहा। उस कीरड़ा में जादू था, नशा था, अदृश्य संगीत था और उसकी दृश्य सुरलहरियां थीं।

खेल के साथ उल्लास की ध्वनियां ऐसा माहौल रच रही थी कि वहां न नेहा थी, न मैं । जो था, वह बस दोनों के बीच का आनंद था जिसमें सारा वक्त डूब चला था। उन्मादक बेहोशी में क्रियारत मैं सब कुछ भूला गया था। मेरे मुंह से नेहा की मादक गुफा में जतन से छिप रहे शिकार, अपने अंदर के गोपन शिकारी और इन दोनों के बीच जारी खेल के लिए वे शब्द और शब्दावलियां फूटने लगी थी जिन्हें सभ्यता की खोल मन में छिपाए होती है। कि अशिष्टता के आभास मात्र से स्त्रियों की जो शिष्टता कुद्ध हो उठा करती है, वही शिष्टता नेहा की शक्ल में उन वर्जित शब्दों का स्वागत करती चीख रखी थी। जिन मांसल शिराओं को गुफा में छिपाए नेहा की टांगें पहले रक्षा में अकड़ी जा रही थी वे अब ऐसी बिखर रही थीं जैसे रुई के धुने जाकर रेशे हवा में कलाबाजियां ले रही हों। मेरे अंदर का संचित रस थिरक-थिरक कर नेहा के अंदर झर रहा था और नेहा अपनी गुफा की शिराओं मे मिगन फुदक-फुदक कर नाच रही थी। शांत होने के बाद मैने गहरी सांस ली और नेहा के चेहरे पर गाल बिछाए उसकी गुदगुदाती गद्दीदार छातियों में धंस चला।

हम दोनों तृप्त थे। बहुत देर तक सन्नाटा रहा। पूरे विराम के वे क्षण थे । फिर नेहा को धीमी आवाज कानों से टकराई -

'क्या आप पछता रहे हैं। मेरा साथ आप को अच्छा नहीं लगा न!'

उसके कानों में होठ टिकाए अबोलित स्वर में मैने रहा- 'राहत के इन पलों को मैं कभी न भूलूंगा । तुम बहुत अच्छी हो बिल्कुल भोली बहुत प्यारी ।' नेहा के चेहरे की तरफ रुख कर मैने उसकी आंखों मे झांका और उसके अधरों को चूमते पूछा-'तुम्हें कैसा लगा**?**'

'सचमुच आप में जैसा चाहा, वैसा पाया। मुझे अंदाज नही था कि मेरी तरसती आत्मा को आज वो सुख मिलेगा जो किस्मत वालों को मिलता है।'

एक-दूसरे से चिपके हम उस राहत के आत्मसात कर रहे थे जो आकांक्षाओ के पूरा होने से मिली थी । अचानक नेहा बोली -

'एक बात कहूं'

उनींदी मादकता में ही मैने कहा -'बोलो न।'

'आज मैं जीत गई। उस घमंडी बंगालन में बड़ी अकड़ थी कि आप पर उसका एकाधिकार है। मुझे वह बड़ा शान दिखाती कहती थी कि तुम्हें पूछता कौन है। आज मै बहुत खुश हूं। आप को उसने जीता हो या न जीता हो, लेकिन आप को जीतकर मैने वनमाला को हरा दिया है।

जिसे मैं भूलना चाहता था, उसी की याद जाने या अनजाने नेहा फिर जगा चली थी। नेहा ने फिर मुझे वहीं लौटा दिया है जहां से मै भाग चला था।

0000000000000000

वनमाला का बदला चेहरा :

त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति

मैं चाहता भी यही था वो बेवफा निकले
उसे समझने का कोई तो सिलसिला निकले। .-अज्ञात

मेरी निस्बत नहीं है उनके बिना
और है मुझसे ही परहेज उनको - मौलिक

स्टॉफ के लिए भले ही वनमाला की हरकतें कौतुक का नजारा थीं, मेरे लिए वह मुसीबत का सामान थी । बतियाती वनमाला मेरे सामने आते ही अचानक मौन हो जाती । वनमाला का व्यवहार मेरी उपेक्षा का पर्याय बन जाता । परीक्षा-कक्षों में मुझे आया जानकर वितृष्णापूर्वक जलती आंखों से उसका मुझे देखना, तुरंत मुंह और निगाहें फेर लेना, या मुझे जलाने अचानक हंसकर औरों को बातों में उलझाना मुझे अपमानित करता था । उसकी क्रूरता का प्रदर्शन मुझे दयनीय और हास्यपद स्थिति में पहुंचाता जा रहा था और मेरा मन कुंठा से अवसादग्रस्त होकर आत्मघात की स्थिति निर्मित कर रहा था । बावजूद इसके कि सारा स्टॉफ, सारी कामिनियाँ मेरे निकट थीं, मैं ग्लानि से भरा जा रहा था ।

इन्हीं दिनों संयोग ऐसा हुआ कि कॉलेज के मौजूदा प्रिंसिपल का प्रमोशन होने और प्रशासनिक मुख्यालय में चले जाने की वजह से मुझे प्राचार्य का काम मिल गया । मैं निराश और अंदर से अवसादग्रस्त था, लेकिन बाहर अपने को अविचलित एवं काम से काम रखने वाले अधिकारी की तरह पेश करता था । अंदर-अंदर छीजता और मरता भी बाहर के अपने व्यक्तित्व को सौम्य और संतुलित बनाए रखने में सदैव मैं कामयाब रहा। कामकाज में या सार्वजनिक जीवन में कोई वहां झांक न पाता था जहां मेरा व्यक्तित्व आहत पड़ा था। मेरा प्रमुख हो जाना भी वनमाला के लिए बेमानी था । वह जस की जस रही । कमरों में परीक्षा के दौरान जॉच पर जाता तो औपचारिक सौजन्य भी उसमें न होता । जानबूझकर और विशेषतः वह यूं पेश आती और इधर-उधर निगाहें फेर व्यस्त हो जाती जैसे मेरी उपस्थिति की उसे पर्वाह ही नहीं । मैं कुछ पूछता तो मुद्रा यूं जैसे मैंने दीवारों से जवाब की अपेक्षा की हो ।

इस सब के बावजूद न जाने क्यों मुझे वनमाला से ही लगाव था। कारण यह कि मैं बाहर की वनमाला को नहीं, अपितु उसके अंदर छिपी उस वनमाला को देखता था जो घर से त्रस्त थी और अपनी योग्यताओं के बावजूद उत्प्रेरक संगी के अभाव में घुटा करती थी। मेरा इरादा था कि परीक्षा के सहायक अधिकारियों में अब खाली हुई जगह वनमाला को दे दूं, लेकिन उसका व्यवहार देख, उसकी नफरत देख मैंने पुराना होकर भी उपेक्षित महसूस करते अपने चित्रकार साथी को सहायक परीक्षाधिकारी बना दिया ।

अपने को महत्व न दिया पाकर वनमाला और उग्र हो गई । जगह-जगह पर वह मेरे निर्णय पर व्यंग्य करती, लोगों के बीच नाराजगी दिखाती थी । मुझे देखते ही क्रोध से घूरकर गर्दन झटकती । वनमाला यूं दर्शाती जैसे मैं नगण्य, तिरस्कारणीय और अवांछित था । मैं जानता था कि मेरी कोई भी कोशिश बेकार होती है, फिर भी अपनी पीड़ा उससे कहने, उसके व्यवहार की शिकायत के खिलाफ उसी से प्रार्थना करने को मेरा दयनीय मन उतारू था । विचलित मन एक दिन उसे मैंने अपने पास बुलाया ।

एक-दो औपचारिक बातों के बाद मन की बात कह दी -" वनमाला, आज तुम घर लौटकर अपने एकांत में खुद सोचना कि मुझे देखकर नफरत और वितृष्णासे जो तुम मुंह फेर लेती हो, उससे मेरे मन पर क्या गुजरती होगी ? "

मैने कहा - " इतनी ही नफरत, शिकायत, वितृष्णा मुझसे है, तो एक दिन बैठकर तुम मुझे सब-कुछ कह डालो । आखिर वह सब कुछ एक बार ही तुम मुझसे क्यों नहीं कर डालती । मुझे कितना बुरा लगता है, दुःख होता है, जब दूसरी महिलाएं मुझसे संकेतों में कहती हैं कि आप के बारे में कुछ लोग न जाने क्या-क्या कहते हैं ?"

वनमाला के चेहरे पर क्षणांश को प्रतिक्रिया हुई । उसकी आंखों में संकोच भरी पीड़ा उभरी, लेकिन बस । उसने जवाब दिया - " जो लोग कहते हैं, उन्हीं से क्यों नहीं पूछ लेते ? "

मेरे लिये समझना मुश्किल था कि वनमाला के कहने में क्या छिपा था - ईर्ष्या, व्यंग्य या वितृष्णा?

आधे मिनट की खामोशी के बाद बड़े तटस्थ ढंग से उसने पूछा -" बस इतना ही काम था ? और फिर मेरी ड्यूटी है अभी " कहकर उठ चली ।

परीक्षाओं के दौरान जिस दिन विपुल और वनमाला की ड्यूटी न रहे दोनों का गायब होना आम बात हो रही थी । ड्यूटी होती भी तो एक का दूसरे की प्रतीक्षा में अंदर या बाहर सड़क पर प्रतीक्षा करना और इस बात का ध्यान रखना कि कोई उन्हें देखे न, चुपचाप साथ खिसकना दैनंदिन कार्यक्रम सा था । एक रोज विचित्र वाकया अनुभव में यूं आया कि दोपहर बाद जब मैने फोन पर एक को नंबर लगाया तो व्यस्त मिला । जिज्ञासावश दूसरे को भी लगाया तो वह भी व्यस्त पाया गया। और सारे नंबर खुले थे, लेकिन बीस मिनट व्यस्त रहने के बाद ही ये नंबर तकरीबन एक साथ साफ हुए । यानी चोरी-छिपे का खेल, घर में पति की अनुपस्थिति के फायदे का प्रबंधन वनमाला के वाणिज्य में चल रहा था । यदा-कदा मुझे यह देखकर विचित्र लगता कि वनमाला की सुबह की ड्यूटी खत्म हो चुकने पर भी वनमाला का पति इसे ले जाने की बजाय उसी रोड से गुजरता आगे निकल गया दिखाई पड़ता । वनमाला का पति कॉलेज न आया और यह खुद भी बेपरवाह सामान्य समय चुकाकर अपने यार के साथ देर तक बैठी रही । तब दोनों निकलकर गायब हुए, जब विद्यार्थियों और ड्यूटी वाले शिक्षकों की भीड़ कमरों में जाकर गुम हो गई, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वनमाला के पति को भी वनमाला की गतिविधियों पर संदेह था । वह घर में भी झूठ बोलती रही होगी । वनमाला के वैसे आचरण और गतिविधियों से मेरी सहिष्णुता भी आहत हो चली थी। उसके व्यवहार से अपमान और ईर्ष्या की भावना मुझमें भी गहरी होती जा रही थी । वनमाला में बदलाव की उम्मीद महज उम्मीद ही रही आई । निहायत बेशर्मी भरी अभद्रता उसमें मेरे लिए भी थी । वनमाला का मिजाज इन दिनों मुझको मिल नहीं रहा था। तीन दिनों की छुट्टी के बाद वह ड्यूटी पर लौटी थी। वनमाला ने इन दिनों सूचना के सौजन्य की तमीज तक भुला रखी थी। उसका सलाहकार और दस्तावेज लेखक उसका नया यार था। इसीलिये छुट्टी के आवेदन में इसका खुलासा नहीं किया गया था कि ठीक-ठीक क्या बात थी ? दूसरों से ही मैने सुन रखा था कि वनमाला अपनी बेहद बीमार हो चली मां को देखने मायके गई हुई थी। परीक्षा-कक्षों की जॉच पर गया तो उसके कमरे का चक्कर मैं लगा गया, लेकिन वह और उसका नया यार दरवाजे पर खड़े बातों में इस कदर मसगूल कि कमरे में जाना और बाहर लौटना देखकर भी ऐसी उपेक्षा कि जैसे वहां न उन्हें मेरी पर्वाह हो, न अपेक्षा ।

सौजन्य दर्शाने मैने ही पूछने की कोशिश की थी - " कैसी है मां की तबियत अब ? "

जवाब व्यंग्य और चिढ़ की भाषा में मिला -" घबराइये मत, मेरी मां ठीक है । मरी नहीं है । अभी उसे कुछ नहीं हुआ है । आप को चिन्ता करने की कोई जरुरत नहीं है । "

वह वनमाला जिसे मैं अपना ईमान समझ समर्पित हो चला था, अब मेरे लिए नफरत और अपमान के घड़े में बदल चुकी थी । स्टॉफ की निगाहों में वह स्वार्थ, चालाकी और धूर्तता से गढ़ी एक ऐसी औरत बन चुकी थी, जो भावनात्मक ब्लेकमैल में माहिर थी । अपने घरवालों को और साथियों को धोखा देती वनमाला अपने अहंकार में सारी सीमाएं पार करती जा रही थी । यह नियम बन चुका था कि जिस वनमाला को पहले लोग उतावली में घर की चिन्ता में भागता देखते थे, वह कॉलेज में देर तक उपस्थिति का घर में बहाना बनाती और इधर कॉलेज में भी अवसर निकाल ड्यूटी से गायब हो जाती । औरत के घर में यह जानने कोई साधन तो था नहीं कि वह कॉलेज से छुट्टी लेकर और घर में कॉलेज जाना बताकर क्या करती है । कॉलेज से निकलने का समय वह यूं चुनती कि उसके समय पर निकलने वाले दीगर सहकर्मी जा चुके होते और सड़क पर लाईन क्लीयर होती । परीक्षाओं के दिन यूं ही बीते, मगर वनमाला की आदतें तो भविष्य का स्थायी नियम हो चली थी । योजनापूर्वक यार और वनमाला के बीच सब पूर्व निर्धारित होता । इन मामलों में वनमाला और उसके नये यार ने अपनी नीति तय कर रखी थी । अब सारा कॉलेज इस खेल को जानने लगा था । प्राचार्य के पद पर काम करते हुए मेरा काम ठीक चल रहा था । भले ही वह केवल मुझे प्रसन्न करने हो , मेरी कार्यशैली की, प्रशासन की तारीफ लोग करते थे, लेकिन वनमाला की गतिविधियॉ और उसका मेरे प्रति योजनाबद्ध अवमानना, तिरस्कार, क्रूरता और षड्यंत्रों की कूटनीति मुझमें घबराहट, ईर्ष्या, खीझ और बेचैनी के कारण बन गए थे ।

वनमाला का बदला चेहरा और रुख जान मैं खुद उससे बात करने, कुछ कहने, सामान्य सा भी सरकारी कामकाज कराने में तक किंकर्तव्यविमूढ़ पाता था । जैसा मैंने सुना, हर चीज में पीठ-पीछे वनमाला अब अर्थ ढूंढ़कर मेरी बुराई निकाला करती थी। यूं भी स्टॉफ-रुम बैठे-ठाले शिक्षकों के लिए गप्पों का क्लब हुआ करता है । वनमाला की उपस्थिति और अपनी अवमानना के भय से चाहते हुए भी मैने वहां बैठना प्रायः बंद कर रखा था । यदा-कदा ही औपचारिकता में वहां बैठता था ताकि मेरे साथी यह न समझें कि मेरा उनसे संबंध नहीं है ।

वनमाला का रुख उपेक्षा से भरा था । डर के मारे मैं उसके मुंह लगता न था । अपने मन से आना और मौका देख ठीक समय पर खिसक लेना उसकी आदत में शुमार था । कॉलेज के कामकाज, उसकी योजनाओं पर और प्रायः सभी से बात हो जाती और जब वैसा महसूस हो फोन या औरों से संदेश भेजकर मैं सारे स्टॉफ से मित्रवत् जुड़ा था । वनमाला से ऐसे संबंध नहीं रह गए थे कि विशेष तौर पर मैं उससे बात करता और अपनी बातें, योजनाएं कह पाता चाहे वे सरकारी काम के ही क्यों न हो ?

'तुम भी ! कमस्कम तुमसे तो इसकी उम्मीद न थी ।'

उनको आता है प्यार पर गुस्सा
हमको गुस्से पे प्यार आता है

आप समझते क्यों नहीं कि मुझे क्या-क्या सुनना पड़ता है, वहां बैठे लोग कैसे-कैसे ताने देते हैं ?
मैं आप को कैसे बताऊँ कि क्या-क्या कहते हैं ?"

अगस्त के महीने में प्रवेश संबंधी बैठक से पूर्व एक दिन वनमाला ने मुझसे दो-तीन बार शिकायत की - " अचानक छुट्टी, बैठक या दीगर कामों की जानकारी सब को हो जाती है । आप विशेषतः मुझे क्यों छोड़ देते हैं कि क्या बैठक है, कब काम है ? बताया कीजिए ताकि मालूम पड़ जाया करे । आप सबको महिलाओं तक को फोन करते हैं, बता देते हैं । मुझे भी बता दिया कीजिए । कम से कम फोन तो आप कर ही सकते हैं । "

मैं उससे क्या कहता ? यह कि जब मैं बात नहीं करता, बच कर दूर रहता हूँ, तब भी तो तुम अपमानित करने में कोई कसर नहीं छोड़तीं । ऐसे में " संबंध नहीं " से मैं कैसे " विशेष संबंध रखूं "?

मैने सोचा । ऐसी बात वह वनमाला कह रही है, जो अपने मतलब से, यार से मिलने व्यर्थ ही आती और बैठी रहती है और अगर मैंने काम दिया हो, तो उस पर भी मुझसे मुंह चुराती है ? उसकी विनम्रता की मासूमियत को देखता मैं सोच रहा था - यह कैसी माया है ? शायद उसमें भी उसका स्वार्थ छिपा था । ताकि पूर्व सूचना मिल जाए तो वह व्यक्तिगत यार-प्रबंधन की समय-तालिका को नियोजित कर ले । मैं उससे कैसे कहता कि उसे फोन करो तो मुसीबत न करो तो मुसीबत । बात करो तो मुसीबत, न करो तो मुसीबत ! मेरे साथ हो रहे मासूम संवादों को वनमाला की कुटिलता का व्यंग भरा रंग मिल जाता था । उसका खेल शुद्धतः स्वार्थ-केन्द्रित और दोतरफा था ।

फिर एक दिन वनमाला प्रकट हुई । प्रायः मेरे पास उसके होने पर कोई भी दूसरा पास आने से झिझकता था । पुराने आत्मीय संबंधों की छबि वनमाला और मेरी एकांतिक उपस्थिति को गोपनीय और व्यक्तिगत की तरह मानती थी और सारी उठा-पटक के बावजूद 'पर्सनल मामला' की तरह वनमाला और मुझे अकेला छोड़ देने के संकोच का निर्वाह लोग परंपरा की तरह हमेशा करते रहे हैं । वनमाला की शिकायत थी कि इस साल उसे शिक्षक-पालक समिति में अकेला रख दिया गया है । उसका कहना था कि पिछले साल की टीम तो ठीक थी । जो साथ में थे, उनका ही नाम जोड़ दीजिए । मैं समझ गया कि पिछले साल पर उसके जोर का क्या मतलब था ? उसका यार विपुल तब उसके साथ था । इस बार मैंने नंदिता का नाम रखा था ।

मैंने निस्पृह औपचारिक लहजे में टाल दिया कि छोटा सा काम है, जो नाम हैं पर्याप्त है । कठिनाई आए तो मेरे पास आइए चर्चा कर लीजिए । मैं समझा दूंगा ।
वनमाला संतुष्ट न हुई । व्यक्तिगत संदर्भों में बातें उसने मोड़ दी ।

उसने कहा -" स्टॉफ-रुम में मेरा बैठना मुश्किल हो गया है । आप समझते क्यों नहीं कि मुझे क्या-क्या सुनना पड़ता है, वहां बैठे लोग कैसे-कैसे ताने देते हैं ? मैं आप को कैसे बताऊँ कि क्या-क्या कहते हैं ?"

उसका कहना था कि "आप के द्वारा मेरे अपने नाम को विशेष महत्व देने पर वहां के लोग आप के और मेरे संदर्भ में व्यंग्यपूर्वक बातें करते हैं।" वनमाला के कथन में सच क्या था मैं न जान सका । मुझे इतना प्रतीत हुआ कि वनमाला अपने यार का नाम जुड़वाकर संतुष्ट होना चाहती थी । लोग कौन थे, जो ताना देते रहे होंगे ? उसका चतुर यार और उसके द्वारा प्रोत्साहित गुट ? मैंने कह दिया कि कॉलेज में सभी बराबर हैं और योग्य हैं । जो कमिटी बना दी गई है, वही काम करेगी । मैं समझकर भी समझने की कोशिश कर रहा था कि वनमाला की मासूमियत किसी चालाकी से प्रेरित सिफारिश थी या सचमुच शिकायत ? मेरे "ना " के परिणाम धीरे-धीरे उजागर होने लगे ।

स्वतंत्रता दिवस में कॉलेज में औपचारिक समारोह पूर्वक झंडा फहराया जाता था । मैंने एन.सी.सी. की भूमिका वाला हिस्सा विराग को और शेष कार्यक्रम के संचालन का काम वनमाला को दिया था । कटुताओं के बावजूद वनमाला के गुणों की मैं कद्र करता था । दोनों को पूर्व से सूचना मिल चुकी थी । कार्यक्रम शुरु हुआ ।

एन.सी.सी. के कार्यक्रम के बाद विराग ने आगे कार्यक्रम संभालने सामने कतार में सुशोभित वनमाला को आमंत्रित करते हुए कहा -" मैडम आइये प्लीज़। "

जितना विनम्र और सौजन्यभरा आमंत्रण था, उतना ही उग्र वनमाला का जवाब था । आंखें तरेरते वितृष्णासे भरी वह चिल्लाई- " ना, ना, ना मुझे संचालन नहीं करना है। मैं नहीं करूंगी, आप ही करते रहिए । "

विराग और मेरा दोनों का मुंह क्षणांश के लिए पशोपेश में छोटा पड़ गया । वनमाला के वैसे व्यवहार से सारे लोग अवाक थे । विराग ने औपचारिकताएं पूरी कीं । मैं क्षुब्ध हो गया । यह मेरे प्रारंभिक कार्यकाल की पूजा का प्रसाद था । मैं तय नहीं कर पा रहा कि वैसा वनमाला ने जानबूझकर मुझे अपमानित करने किया था या कि वह किसी और की दुष्प्रेरण का पूर्व-नियोजित षड्यंत्र था, जो वनमाला के व्यवहार के जरिए यार को आश्वस्त और प्रसन्न करने मेरी उपेक्षा और अपमान के रूप में सार्वजनिक तौर पर प्रकट हुआ ।

पहला झटका जैसे काफी न था । मेरे स्वागत मे वनमाला की ओर से दूसरा झटका उसके तीसरे दिन फिर सामने आया । मेरे मन में यह भाव था कि मानापमान भुलाकर सभी का विश्वास और सभी की सद्भावना अर्जित करूं । यही सोचकर उस दिन सुबह **10** बजे पहुंचकर मैं टहलता हुआ स्टॉफ-रुम में जा बैठा । वाणिज्य की त्रिमूर्तियॉ बैठी थीं । मेरे सामने विभाग के प्रमुख जोशी जी और अलग दूसरे कोने पर अगल-बगल मशगूल वनमाला और उसका नया यार सलाहकार विपुल बैठे थे । छः निगाहों ने बैठे-बैठे ही मेरे चेहरे को यूं घूरा जैसे पूछ रही हों कि कहिए यहां क्यों आकर बैठ गए ? आप का काम ?

न किसी में इतना सौजन्य था कि अपनी जगह से उठे, न यह कि अनचाहे सौजन्य के बहाने ही हाथ उठाए । अपने-अपने में ये सब ऐसे मशगूल कि मैं खुद अपनी संवादहीन, अर्थहीन उपस्थिति से आहत हो गया । कहां मेरे मन की यह भावना कि सब से सौजन्य की बातें हों, मेरी शुरुआत आत्मीयता की बहाली से हो और कहां यह बेरुख तीन । वितृष्णा भरी छः निगाहों की ठंडी उपेक्षा के बाद भी किंकर्तव्यविमूढ़ मैं पल भर अपनी अवांछित उपस्थिति में रहा । न किसी ने मेरी ओर दोबारा देखा, और न बात की । माहौल ऐसा कि जैसे वाणिज्य का कॉलेज उनका अपना था और बिन-बुलाए मेहमान की तरह, नवागंतुक सा वहां मेरा पहुंचना अवांछित ही नहीं , अपराध भी था । पहुँच तो मैं कॉलेज गया ही था, पर बात करने, मिलने को अब वहां अपने काम में व्यस्त रामकिसन सेवक को छोड़ कोई नहीं था। अपने आहत मन को दबाए औपचारिक तरीके से मैंने ही बात शुरू की । जैसे दीवारों की ओर मैंने बात उछाली हो-

" क्या हाल हैं भई, छात्र आ रहे हैं कक्षाओं में ? क्या कामकाज चल रहा है ?"

कोई प्रतिक्रिया नहीं । फिर अचानक जैसे विस्फोट हुआ हो - वनमाला का चालाक नया साथी उत्तेजित हो टूट पड़ा । उसने सीधे आरोप लगाया कि वाणिज्य संकाय के प्रति मैं भेदभाव भरा रवैया अपना रहा हूँ और पूछ रहा हूँ कि क्या चल रहा है ? विभागाध्यक्ष जोशी भी साथ जुड़ गये । वे आरोप लगा रहे थे कि वाणिज्य में पढ़ाने आपने एक अतिरिक्त आदमी की योजना क्यों नहीं की, जबकि दूसरे विषयों का ध्यान रखा है ?

जैसे उतना काफी न था । रोष में पूरे गले से गुस्सा उतारने अपने यार के साथ वनमाला की भी आवाज चीखती मिली जा रही थी । मेरे नि:शब्द रहते भी मुझे अपमानित करती वह ताना दे रही थी -

" अब आप ये सब (क्या ?) छोड़िए सर ? अब आप भूल जाइए कि आप अपने एक विषय के महान प्रोफेसर भर हैं । आप को निष्पक्ष रूप से प्रिंसिपल की तरह काम करना है । अब आप प्रोफेसर नहीं प्रिंसिपल हैं । "

वनमाला की आवाज सुनकर मैं शर्म और अफसोस से गड़ा जा रहा था । चोट खाए चित्त में एक पल के लिए वनमाला के साथ पुराने संबंधों और यादों की कौंध बिजली की तरह चमक कर बिखर गई । जड़ीभूत और किंकर्तव्यविमूढ़ मेरा सर पीड़ा से नत हो चला था । रोष की जगह चित्त में गहरे अवसाद ने ले ली थी । लगातार प्रहार और अपमान के बीच कहीं उदास मन आंखों में उतर आए शून्य के साथ मैंने बड़बड़ाती वनमाला की आंखों में झांका । निगाहों के टकराते ही संदेश यहां से उसकी आंखों तक जा पहुंचा था । उसकी आंखों ने मेरी सूनी आंखों की भाषा पढ़ ली थी, जिनमें लिखा था- 'तुम भी ! कमस्कम तुमसे तो इसकी उम्मीद न थी ।'

वनमाला की आंखें उस अदृश्य पल में शर्म और संकोच से अचानक जड़ हो चली थीं । आंखों से दिल में कुछ आया और गया होगा वनमाला की अचानक स्तब्धता पर उसके यार ने उसे एकटक देखा था । दोनों की आँखें मिली थीं । न तो उसमें मेरे लिए व्यक्तिगत लिहाज़ ही रहा और न ही यह तमीज कि अगर संस्था के प्रशासनिक मुखिया के बतौर मैं वहाँ था तो उसका ही सही लिहाज़ कर लेती । स्थिति से बचने बगैर एक क्षण का विलंब किये वनमाला ने अपना पर्स उठाया और घर की राह बाहर निकल गई थी ।

उस दिन उस अप्रत्याशित हमले के बीच अपराधी की तरह जकड़े मैंने बीच में यह बताने की कोशिश की थी कि उनकी समस्या मेरे ध्यान में है और कुछ दिनों बाद एक सहायक सीमित महीनों के लिये वाणिज्य में भी नियुक्त होगी । लेकिन नहीं । मेरी आवाज उस सुनियोजित और पूर्वाग्रह से भरी लक्ष्यबद्ध अपमान की चेष्टा के बीच दबा दी गई थी ।

मेरा मन रो रहा था । क्या यह वही वनमाला थी, जिसके साथ निजी एकांत में मैं अपना प्यार, अपनी भावनाएं, अपने विचार, अपना फलसफा और जाने कितना और क्या-क्या बॉटा करता था ? यह वही वनमाला थी, जो मेरे साथ पर गर्व करती थी और मेरी तारीफें करती थीं । क्या वनमाला इतनी क्रूर और निर्मम है कि उसे अपने कहे, किए का बिल्कुल अफसोस नहीं होता ? मेरा मन वनमाला के प्रति वितृष्णासे भर उठा था।

पार्क

वनमाला यानी औरत। औरत यानी वनमाला। औरतें और वनमालाएं : सारा कुछ सामान्यीकृत। संज्ञा बेमानी हो गयी थी। सर्वनाम ने उसकी जगह ले ली है।

यादों के अलबम में उन छोटे-छोटे सुखों की न जाने कितनी तस्वीरें हैं, जिनमें से हर एक अपने आप में मुकम्मल है। ज़िन्दगी को खंगालो तो कुछ हाथ नहीं आता, लेकिन टीसती इन यादों में एक नहीं, बल्कि न जाने कितने-कितने रंगों से सजी कितनी-कितनी जिन्दगियों की आर्ट-गैलेरी सजी है।

जिसे मन चाहता हो उससे दूर रहकर तो फिर भी निजात पाया जा सकता है लेकिन रोज-रोज बिला नागा प्यार और नफरत से भरी उन आंखों के से टकराव से कैसे बचा जा सकता है, जो बरजते-बरजते भी

मिलती और उदास संकोच लिये पलकें झुकाए बगल से गुजर जाती हैं ? यादों के चिराग तब बुझने की बजाय और रौशन होकर फिर-फिर उन नाजुक पलों को जीवित कर जाते हैं जो उन्होने साथ गुजारे हैं। राहत पाने भागता मैं यात्राओं में भटकता हूं और सिर पर गठरी का बोझ संभाले जहाज के पंछी की तरह फिर वहीं लौट आता हूं। सुबह-सुबह पार्क में फेरे लगा रहा हूं ताकि इतनी आक्सीजन ले सकूं कि अंदर के मर रहे प्रियहरि को छिपाए मैं लोगों के सामने उस चेहरे के साथ जाऊं। जिसकी ताजगी के पार कोई झांक न सके। गति इतनी मंद क्यों है ? इनमें उन पांवो की फुर्ती क्यों नहीं है जो मेरी तरह ही फेरे लगा रहे हैं। मुझे महसूस होता है कि सिर पर बोझ की तरह कोई सवार है। उसका बोझ ही चाल को मंद किये हुए है। ऐसा हर रोज़, हर कहीं उसके साथ होता है, जैसे वही उसकी नियति हैं।

मुझे गुस्सा आ रहा है। यह गुस्सा किस पर है नहीं मालूम ? बस गुस्सा है। हो सकता है यह अपने लिये अपने उस तरसाव की खीझ हो जो संभाला नहीं जा रहा है। हो सकता है वह उस वनमाला को ले कर हो जिसके कारण वह खीझ अंदर दिशा ढूंढती धुंधुआ रही है। वह धुंध जिसकी खोल में दिमाग ऐसा समाया है कि कुछ सूझ ही नहीं रहा है।

क्या वह सच था जो मैने वनमाला में देखा है। मुझे प्रतीत होता है कि औरत शुद्धत:औरत होती है। आदिम औरत, वह हौव्वा जिसे आदम के बाग से ज़मीन पर ढकेल दिया गया है। नाम तो महज नाम के लिये है - उसी आदिम हव्वा के भटकते रूपों के लिये पृथक पहचान बनाते विशेषण मात्र।

बोझ को चित्त से उतार फेकने की कोशिश में मैं दूर से चली आ रही अपने सी ही मध्यायु उस औरत को देखता हूं । पार्क के गोल घेरे में यह उसका तीसरा चक्कर है। बायां हाथ नीचे लहरा रहा है लेकिन दायां हाथ मोबाइल थामे अब भी वैसे ही कान से चिपका है, जैसा आधा घंटा हुए मैने इसे देखा था। लगातार उसके होठ फड़फड़ा रहे हैं। ऐसा कौन सा काम आ पड़ा होगा कि वह घर से निकल सैर करती मोबाइल हो रही है ? देहराग में उफनती यहां टहलती किशोरियों के लिये तो वह अनिवार्य रूटीन है। मोबाइल के बगैर टहलने की उन पर मानों निषेधाज्ञा है। इधर चलता हुआ भी मैं स्थिर हूं। मुझे इन सब से ईर्ष्या होती है। कैसी छछूंदरियां हैं ? न लिहाज है, न शरम। मैं तरसता हूं। कोसता हूं कि मैं वैसा होने से वंचित क्यों हूं ?

अनुभवों ने मुझ प्रियहरि को इतना परिपक्व कर दिया था कि एक झलक में ही यह समझ सकता था कि उसे लुभाने वाली काया खा-पीकर स्वाद चख चुकी है या अक्षत यौवना है ? काया की आ-नख-शिख फिसलन भरी कसावट, आंखों और चेहरे की सरल और निर्धूम कांति, वाणी और व्यवहार की बाल-सुलभ नैसर्गिकता, बे-लचक सीधी चाल में पड़ते कदम, ठुमक से अनभिज्ञ कटि और नितंब, बनाव-श्रृंगार की अतिरिक्त छाप रहित वेशभूषा और व्यक्तित्व की ताजी तरावट से उस झुरमुटी रेख की बेदाग और बे-उभार चुस्ती का आभास हो जाता जो बे-आवाज यह बता जाती कि सोंधी खुशबू वाली यह ज़मीन अभी अनजुती और अक्षत है। इस कल्पना से ही उसमें संकोच होता कि हल की धार और फिर वर्षा की मार से यह बेचारी काया भी हाल-बेहाल होती आखिर खा-पी चुकी दुनियादार औरत में तब्दील हो जाएगी, जिसके लिए आगे आता हर अनुभव फिर बासी होता चलता है।

मेरी निगाह में अब हर वह औरत जो आदम को लुभाती है भिन्न-भिन्न नामों से महज हव्वा ही थी। वनमाला अब खो चुकी थी। अगर वनमाला वही थी जिसे मैं देख चुका हूं तो हर औरत के अंदर वनमाला थी। वनमाला यानी औरत। औरत यानी वनमाला। औरतें और वनमालाएं - सारा कुछ सामान्यीकृत। संज्ञा बेमानी हो गयी थी। सर्वनाम ने उसकी जगह ले ली है। मेरी स्मृति में वे चेहरे उभर रहे हैं जो यात्राओं से लौट आने के बावजूद चहलकदमी करते उसके चित्त में सैर कर रहे हैं।

एक महीना पर्यटन पर और एक महीना बीमार रहकर मैने हिम्मत की है कि पार्क का फेरा लगा आऊँ। बहुत पहले मैंने पार्क में टहलना शुरूकिया था, लेकिन अब महीनों से पार्क ने मेरे अंदर टहलना शुरूकर दिया है। उन आंखों को देखने की बैचैनी कमजोरी के रहते कुछ दूर चलकर लौट आने की इच्छा के बावजूद मुझे पार्क में खींच ले जाती है।

वय कोई चालीस-बयालीस के करीब। निहायत धूमिल मटमैला चेहरा। मेरी माप से कमतर संयोगानुकूल दरम्यानी नाटी देह। सपाट और अपेक्षाकृत स्थूल शरीर। कटि की माप मेरी सानुपातिक कमर से कुछ ज्यादा ही। चरबी का पेट पर हल्का सा उभार। चोली पर अनधिक उभार के बावजूद कसावट भरे स्तन। अंडाकार प्रतीत होती भी चौकोर सपाट मुखाकृति । निहायत सहज अनलंकृत केश-राशि। आकर्षण का कोई कारण तो नहीं है।

पर आंखें ? जब से मैने उन्हें देखा है, तब से वे मुझे इस कदर उलझा चली हैं कि उनमें उलझ चले दिल को वह समूचा शरीर ही प्यारा लगने लगा है। वह औरत हमेशा अपने अंदर के गोपन विषाद में डूबी आंखों की चितवनि को मेरी आंखों से उलझाती करीब से गुजर जाती है। शायद मेरी वैसी ही आंखों में वह अपनी आंखों का संधान करती है। ऐसा हर रोज़ होता है। इस अनोखे लगाव का कारण संभवत: वह आतुर अभ्यास है, जो एक-दूजे की आंखों में लिखी गोपन अन्य-मनस्कता को पढ़ लेना चाहता है। उसकी आंखें दूर से ही न देखने की बंकिम भंगिमा से टकरातीं करीब आती हैं। साथ चलते अपने पहलवानी काया वाले पति के होते भी करीब से गुजरतीं मेरी आंखों से वे आलिंगित होतीं हैं और तब फिर-फिर मिलने की प्यास बढ़ातीं पलकें झुकाए आगे बढ़ जाती हैं।

धीरे-धीरे मुझे यह महसूस होने लगा है कि वह मेरी प्यास बन चली है। तो क्या मेरा होना उसकी प्यास में महरूम होगा ? क्या उसकी आंखों में अब दिन और रात मेरी उन आंखों की छाया न लहराती होगी, जिनमें नयनों के आलिंगन के वक्त ही उनमें हमारी कायाएं भी परस्पर घनघोर भिड़न्त में गुंथ चली हैं ? क्या उसकी आंखें भी मेरी आंखों की तरह महीनों से चलती प्रणय-क्रीड़ा की उस मुद्रा को बसाए बिसूरती न होंगी जिसमें उसके कोमल-कठोर स्तनों की टेकरियों की दिशा में मुड़ चले घुटनों के नीचे की घाटी में अपने को अन्दर तक ठेलता मेरा तना हुआ पुरुष अस्तित्व जमकर धंसा पूरी तन्मयता से उसका हर कोना छान रहा है ? क्या मेरी तरह वह भी नहीं देख रही है उसकी पुष्ट जंघाओं पर डेरा जमाए लगातार अंदर घुसा पड़ता और बाहर निकलता मेरा पुरुष-गोपन अनथक दोनों दिलों की उदासी के बीच अपने और उसके रस का संधान कर रहा है ?

कायाएं कुछ यूं गुंथ चली हैं कि दृश्य-अलगाव के बावजूद अंतरमन में वह क्रीड़ा सतत् जारी रहती है। यूं कि सुबह का मिलना तो स्मरण कराना भर होता है - "आह, तुम भी उसी से गुज़र रहे हो ना ?"

आंखों की भाषा झूठ नहीं बोलती। अवश्य उसमें भी वही है, जो मुझमें है। इधर मैं देख रहा हूं कि वह आंखें चुरा रही है। उसका पहलवान चौकीदार उसके साथ नहीं आ रहा। वह अकेली ही मिलती है। यह तो मौका ऐसा था कि आंखों की भाषा ज़ुबान पर उतरती। आंखों में महीनों से क्रीड़ारत देह-युग्म को निर्भय उनका रूपाकार दे हम दोनों वैसे का वैसा उन्हें बिस्तर पर ला पटकें। पर वह अचानक यूं सहमी क्यों है ?

वह नहीं बदली। वैसा ही विषाद में कुम्हलाया चेहरा। वैसी ही प्रश्नाकुल आंखों की भंगिमा। आंख चुराती मुझसे बचना चाहती है, लेकिन अपने को बचा नहीं पाती। आंखें उठती हैं और बिजली की तरह मेरी आंखों में गिरतीं वहीं समा जाती हैं। क्या कहना चाहती हैं वे ? यह कि महीनों से सवार तुमने मेरा सारा कुछ झिंझोड़ते, निचोड़ते तार-तार कर दिया है। मैं थककर निढाल हो चली हूं। छोड़ दो प्लीज़ तुम्हारे पांव पड़ती हूं।

सिलसिला जारी है। अब तो वह सामान्या प्रिया और अधिक खींचती जा रही है। मेरा यह भ्रम था कि उसकी आंखों का अनपठ ही वह था, जिसने मुझे बांध रखा है। नहीं, मैने ग़ौर से देखा है। पाता हूं कि उसकी देह का हर अंग आंखों के गोपन विषाद की रहस्यमय भाषा में लिपटा है। चेहरा, पलकें, नासिका, माथा, केश, कंधा, बांहें, फूले-पथराए स्तन-युगल, कटि, नाभि, पुष्ट जांघें, पिंडलियां, पांव सब के सब जिज्ञासा से मेरे अंगों को आमंत्रित करते हैं कि पढ़ सकते हो ? आओ पढ़ो । पांवों की गति, नयनों की दृष्टि, अंगांग से झांकता उदास मन मुझमें प्रविष्ट हो याचना करते हैं -" हां, तुम्हीं हो। तुममें भी तो वही लिखा प्रतीत होता है, जो यहां है।"

इन सब में अपने को बसाए वह मूरत अपने मौन में क्रन्दन करती प्रतिदिन पुकारती है -

" हां, तुम्हीं पढ़ सकते हो। आओ, मैं तुम्हें पुकारती हूं। अपनी और मेरी देह-भाषा को अनन्यता में विसर्जित करते वह ग्रन्थ रचो जहां दो दुख आलिंगित हो एक सुख में तब्दील हो जाएं।"

मैं क्या करूं ? मेरा जी अभी उस नयन-प्रिया को छोड़ना नहीं चाहता जिसकी धूसरता में मुझमें एक नया स्वाद मिलता है। जुबान को धता बताता नयनप्रिया का दिल भी तो "छोड़ दो...छोड़ दो न प्लीज़" रटने के बावजूद आखिर "नहीं..नहीं..,छोड़ना मत" की मुद्रा में देह को और कसावट में बांधता मुझसे चिपका पड़ रहा है।

यह दूसरी है । मैं सोचता हूं कि इसे भला कौन सा दुख हो सकता है ? इसका आदमी तो अच्छा-खासा तंदुरुस्त, लंबा और मोटा है। अपने आदमी से तो इसे वह भरपूर सुख मिलता होगा जिसकी कमी को लंबाई-चौड़ाई में तंदुरुस्ती के साथ पूरा करने के दावों वाले विज्ञापन अखबारों में रोज छपा करते हैं और जिसेपूरा करने मैले-कुचैले कपड़ों में खुद का सूख चेहरा लिए पगड़ी बांधे पहाड़ी जड़ी-बूटियां और तेल कुंडे पसराए शहरों और कस्बों मे टैन्ट सजाए बैठे रहते हैं। फिर अन्दर से सवाल उठता है कि यार अगर वैसा ही होता तो चित्रपट की मशहूर सुन्दरियां चिकने-चुपड़े गुड्डों के पीछे भागना छोड़ उस विश्वविजेता लंबे-चौड़े पहलवान से न जा चिपकतीं जिसे अब भी तसल्ली नहीं है, और जो रोज आधा सेर तेल देह में रगड़ता दंड-बैठकें लगाया करता है ?

दिल कहता है कि नहीं, वैसा बिल्कुल तो नहीं होगा। अगर वैसा ही है तो तुममें विपरीत शरीरों के शोध की जिज्ञासा क्यों है ? क्यों उन पुष्ट-पयोधरा नाटी-मोटी नेहा, मंजरी नामादिकों का दिल सारे सभी को छोड़ " हाय, मैं भी तो हूं" कहता तुम पर बिछा पड़ता है ? क्यों तुम्हारा दिल चुनौती की तरह उन्हें आजमाकर खुद को साबित करने की तसल्ली को बेकरार उनपर टूट पड़ा था ? अवश्य ही देह के पहले वे तत्व हुआ करते हैं जो विपरीत को आकर्षित कर देह तक पहुंचाते हैं। यह बात और है कि जहां देहानुरूपता के साथ साहचर्य की सुदीर्घ निरंतरता कायम रखने वाली संस्कृति और सहधर्मिता के गुण हों, वहां वह प्यार हो जाता है और जहां देहाकर्षण में वैसा भ्रम पैदा करता फौरी आवेग हो, वहां वह अस्थिर वासना मात्र रहा आता है। विशेषत: सुपठ, सुसंस्कृत, और बहुआयामिता से संपन्न तथा सामान्यों से स्पष्टत: अलग छबि वाले व्यक्तित्वों में अनुरूप की गहरी चाहत होती है। यदि अनुरूप की जगह विपरीत स्थायी तौर पर जिन्दगी से चिपक जाए तो राहत की जगह भटकाव और खोज ही वैसे पुरुष या स्त्री की नियति हो चलतीहै।

इन सब के साथ फिर यह भी तो है कि जहां सारा कुछ यांत्रिक पुनराभ्यास का उबाऊ खेल रह चला हो ; जहां आकर्षित करने और होने की साहसिक संभावनाएं न हों ; जहां एक के बाद एक निरंतर दूसरों को जीतकर अपने होने का विजयी अहं न जुड़ता चले, वहां परिवर्तन की बेचैनी भी नये की खोज में जुट जाती है।

इस पार्क-भ्रमरी की ही क्यों, हर उन आंखों में छिपे का संधान मैं करता हूं , जो न देखने की तरह चुपके-चुपके मुझसे रोज़ वैसी ही चाहत से टकराती हैं, जैसी मुझमें हुआ करती हैं। हर-एक के लिये वैसी चाहत नहीं होती, जैसी उनके लिये लिये होती है जिनकी आंखों में दिलचस्पी का लगाव हुआ करता है। अधिकतर आंखों में बस वह तौल हुआ करता है कि टकराने की चाहत वाली इन नजरों की देह संभावित टक्कर में कितनी मुनासिब होगी। होता यह है कि इस तरह की नज़रों से रू-ब-रू होते दोनो तरफ रोज वही सवाल अटका होता है। सामने आए कि सवाल आया और दूर हुए कि सवाल गायब।

आंखों में गजब की ताकत होती है। दूर से आते समूह में ही आंखें अपनी काया को पहचान उस काया की आकृति में ढल जाती थीं। तब उनमें उस काया के अलावा सारा कुछ अपने आप ओझल हो जाता था। ऐसी बेला में मेरा चित्त अपनी काया के संपूर्ण अस्तित्व को आत्मस्थ किए मेरी उस दृष्टि में ध्यानस्थ होता था, जो स्वत: उस दूसरी काया में ढल चुकी होती थी। दूर से क्रमश: निकट आती काया भी उन आंखों के संवेदन में यंत्रचालित आवेग से सम्मोहित हो एकाग्र भाव से समाविश्ट होने की प्रकिया में ढल जाया करती थी। भीड़ से अपने को पृथक करती वैसी काया तब उन आंखों में तन्मनस्क होती बसने लगती थी, जो न देखती सी देखतीं उसकी अपनी आंखों से मुठभेड़ करती हुआ करती थीं। इस तन्मनस्कता में ही वह दृष्टिगत काया तत्काल उन हार्मोन्स को जागृत करना आरंभ कर देती थी जिन्हें मेरी काया के हार्मोन्स आमंत्रित करते होते। पहले अनुभव का रोमांच ही ऐसा स्वाद भरा होता कि फिर वह कायाओं की जोड़ी के लिए बार-बार टकराव

की चाहत हो उठती थी। रोज़ का टकराव इस तरह उस अभ्यास में तबदील हो उठता था जिसमें ज़रा सी चूक भी अभाव का टीस बन जाती थी। मन में अक्सर यह खयाल उठता है कि अभाव की वैसी टीस को प्यार के दर्जे में कहां जगह दी जाए ? उन छबियों के लिये आखिर दिल के कौन से कोने में जगह दी जाए, जो अभाव की वैसी टीस लेती और छोड़ती वक्ती तौर पर नमूदार होतीं और फ़ना हो जाती हैं?

इधर मेरा मन उन दो खूबसूरत चेहरों को देखने बहुत बेताब है, जो देखने से बहुत अधिक को ललचाते हैं। एक वह, जो हर मुठभेड़ में यह देखती आई है कि मेरी निगाहें हथेली की तरह उसके पुष्ट स्तनों पर जाकर चिपक गई हैं, कभी यह कि क्रमश:पास आती उसके सारे बदन को लीलती मेरी निगाहों ने अपने बदन में समाकर विलीन कर लिया है; तो कभी यह कि मेरी निगाह के बिछौने पर उसकी सुकोमल, दूधिया, गदरायी हुई मादरजात नंगी नाटी देह घुटनों को स्तनों तक मोड़े हुए भरे-भरे पुष्ट नितंबों के बीच गुदगुदी सुरंग में प्रविष्ट मेरे पौरुष के उद्दाम धावन को संभाल न पाती अज्ञात तरंगों में विकल हो रही है; और कभी यह कि छातियों, ओठों, और भुजाओं की शक्ल अख्तियार करती मेरी आंखें भुज-पाश में उसकी छाती को भींचतीं गुलगुली मादकता में बेहोश कर रही हैं और उसके मदभरे गुलाबी होठों से बेतहाशा भिड़े मेरे होठ उसका सारा रस निचोड़े डाल रहे हैं। इस परम युवा रमणी की जवानी में उसके चेहरे पर छायी सरलता और अबोधपन के रंग कभी मेरी आंखों को यह विश्वास नहीं करने देते कि उसकी देह में किसी पुरुष ने प्रवेश भी किया है। उसमें अप्रविष्ट रमणी की जो विशिष्ट सादगी, ताजगी और सोंधापन है वही आकर्षण का विशेष कारण बन चला है।

इस एक से भिन्न वह दूसरी है, जिसकी जवानी से किशोरपन की अल्हड़ता अभी भरपूरियत में मौजूद है। उसकी कटावदार काली भौंहें, प्रतिपल चमकती आंखों की छुअन, उसके होठों पर अविराम मचलती स्मिति की तरंगें, बन यानी गुच्छे में बंधे होने पर भी हवा की तरंगों के साथ मचलती उसकी अलकें - इन सब की छटा बेमिसाल है। बेदाग गुराई की वह छरहरी काया है। जब सामने से चलती आती है तो हाथ, पांव, अंगुलियां, गर्दन, सिरोभाग, कटि, नुकीली छातियां, श्यामा पुतलियों की सम्मोहक दृष्टि - इन सभी में लहरों से तरंगित उसके हृदय का अल्हड़पन अपने रंग बिखेरता चलता है। आंखों पर चढ़ा चश्मा उसकी खूबसूरती को बिगाड़ता नहीं, बल्कि सद्य:-प्रविष्ट यौवन के साथ बुद्धि की सहधर्मिता का रंग उसे देता अधिक आकर्षक बनाता है। यह प्रतीत ही नहीं होता कि अभी उसकी उफनती देह में धंसकर किसी ने स्नान भी किया है। इसीलिये मानों वह मुझे चुनौती देती है कि "मुझ रसभरी को निचोड़कर पी जाओ तो मैं जानूं। उसी में मेरा वह रस है, जिसे मैं पाना चाहती हूं। हां, इस कदर कि रस मात्र बनाता कोई मुझे सुखा डाले।"

इधर मेरी निगाहों में भी उसके लिए आमंत्रण है। अभी-अभी मैने गौर किया है कि वह किनारे वाली डाक्टरनी की बहू नहीं थी, जैसा कि मेरे भ्रम ने मुझे सुझाया था। तब भी पहले की तरह वह मेरे लिए अल्हड़ डाक्टरनी ही है। हर मुलाकात पर कैमरे में कैद फिल्म की तरह मेरी आंखों में अंकित उस दृश्य के साथ वह भी अवश्य साथ-साथ पार्क के फेरे लगाती है, जिसमें सजी हुई अपनी डाक्टरी टेबिल के पार कुर्सी पर विस्मित आंखों से मेरा मुआयना करती उस कामिनी की अधर में लटकी सुडौल चिकनी टांगों में टांगें फंसा अपने गोपन अस्तित्व को उस प्रिया के जांघों के बीच की पतली सुरंग में अद्वैतता के साथ कोमल गुदगुदी में प्रविष्ट कराता प्रिया कामिनी को तरंगित करता मैं भिगाए जा रहा हूं। दूसरी तरफ वह चश्मिस सुन्दरी है जो मेरे प्रवेश से आनंद-विकल संगमरमरी छातियों से ऊपर उठती मोतियों की दन्तावली को मुस्कान में थामे अपनी गर्दन को पीछे तानती बिछने की मुद्रा मे आती हुई कुर्सी पर ही ढुलकी जा रही है। दूधिया कोमल स्तनों पर जमकर स्तनाग्रों को मसलती मेरी अंगुलियों में अंगुलियां उलझाए आनन्द में खिलखिलाई पड़ती वह न बचना चाहती भी बचाव की झूठी तसल्ली के लिये बरजती हुई मुझसे कह रही है -
" आं...आं...अरे...अरे...अरे......नइं ना...नइं...ना....नो मिस्चीफ प्लीस । "....आ..आ..आ.......हह.. ।.छोड़ दो प्लीज़...मैं मर जाऊंगी...कोई देख लेगा.....।"

" ...आं....अअअ...अअआं...हा...घुसा...डाला...घुसा जा रहा है...मत घुसाओ ..प्लीज़..ना....हा..य्य..मर गई..।"

उसकी सहचरी रोज़ अपनी सहचरी को प्रेषित मेरे आमंत्रण और उस एक के नयनों की अल्हड़ जिज्ञासा पर गौर करती है। उसे बुरा लगता होगा। इसलिये नहीं कि यह अनैतिक है, बल्कि इसलिये कि उसे उसी तरह क्यों नहीं देखा जा रहा है ?

यादों के अलबम में उन छोटे-छोटे सुखों की न जाने कितनी तस्वीरें हैं, जिनमें से हर एक अपने आप में मुकम्मल है। ज़िन्दगी को खंगालो तो कुछ हाथ नहीं आता, लेकिन टीसती इन यादों में एक नहीं, बल्कि न जाने कितने-कितने रंगों से सजी कितनी-कितनी जिन्दगियों की आर्ट-गैलेरी सजी है। इनसे गुजरने का सुख एक है, लेकिन अंदर-अंदर उस सुख के भी हजार रंग हैं। हर रंग का अपना ही एक अलग रंग है और हर एक के सुख की किस्म अलग-अलग है। इनमें डूबते हुए जी कभी अघाता नहीं, कभी तृप्त नहीं होता। मिलतीं और गुम हो जातीं तस्वीरों की मानिन्द वे मेरी जिन्दगी में दाखिल होती हैं और बारी-बारी लुका-छिपी का खेल खेलतीं गायब और प्रकट होती चलती हैं।

अरे..! इधर वे कौन हैं, जिन्हें देखना ईद का चांद देखने से ज्यादा दूभर है ? सुबह-सुबह की सैर में उनका छोटा-सा शाकाहारी चेहरा उनकी मित्र-भ्रमरियों के बीच मैं रोज़ देखता। उनकी चमकीली चपल आंखों से आंखें टकरातीं और एक-दूसरे का मुस्कुराता चेहरा समेटे हम रास्ता क्रास कर जाते थे। तब एक रोज़ मुहल्ले की उस दूकान में हम टकराए जो जानी-पहचानी थी। काउंटर के उस पार अपने किसी बुज़ुर्ग की ओट में वे छिपी थीं। परिचित बुज़ुर्ग की चुहल पर चुहल करते मैने कुछ ऐसी बात कही थी कि बहाने से वह मेरे और मेरी चपल-नेत्रा के बीच का गोपन संवाद हो चला था। खिल-उठी आंखों और रसभरे होठों की मुसकान मेरी ओर मुखातिब थी -

" अच्छा ? तो तुम मेरे पीछे यहां भी चले आए ! डियर माइ, मुझे बड़ा अच्छा लगा। काश, इनकी जगह मैं तुमसे बातें कर रही होती !"

वह 'काश' दोनों दिलों में बस 'काश' ही रहा आया है। अभी पिछले महीनों में अपना वोटिंग-बूथ तलाशते अचानक आंखें भिड़ चलीं। उनकी नज़र शायद पहले से मेरी ओर लगी थीं। टकराहट में फौरन मिलन के स्वागत की मुस्कान दोनों के होठों पर खिल उठी थी। वे दुनियादार स्त्रियों के गुच्छ में घिरी थीं, लेकिन तब भी सब को छोड़ यंत्र-चालित से उनके कदम मेरी और मेरे कदम उनकी ओर बढ़ पत्ने करीब आकर थम गए थे कि भीड़ का भय न होता तो निगाहों में चमकती खुशियाँ एक-दूसरे की बांहों में समा एक हो जातीं।

चहकती हुई उनकी वाणी से निकला -"आप! इतने दिनों बाद ?"

इससे पहले कि मैं उन आंखों से निकल पाता, उनकी साथिनों ने उन्हें कहीं और बढ़ने खींच लिया था। पलटती चितवनि के साथ हम दोनों एक-दूसरे को 'टा-टा' करते रह गए थे।

वसंत के साथ पार्क की रौनक जा चुकी है। गर्मी की तपिश से बचने कमनीय लताएं, अधखिली कलियां, रंग-बिरंगे फूलों की छटा, और मौसम की खुशबू भरी सांसें इन दिनों छिप चली हैं। नीबू, संतरे, मोसम्बी, सेव, नासपाती, काले-भूरे अंगूर गायब हो चले हैं और उनकी जगह न जाने कितनी-कितनी आग में पक चुके तोतापरी-बैगनपल्ली-हापुस वगैरह आमों , पके काले जामुनों और तेन्दू के गुठलीदार कठोर फलों ने ले ली है। अब तो बीसों गर्मियों को पार लगा चुकी झंखाड़ें नितंब पर वट का तना ढोती और झुर्रीदार डालों के बीच मौसम से चुक चले पपीते लटकाए वहां इस उम्मीद से फेरे लगाती दीख पड़ती हैं कि शायद बची-खुची बहार उनपर लौट आए।

एक म्यान में दो तलवारें

दरअसल औरत चाहती ही है कि वह मर्द को दौड़ाए और छकाए ।

उसी में औरत को मजा आता है ।

मैं कह नहीं सकता कि वह चालाक मुहिम थी, या वनमाला का जागा हुआ एहसास । मैंने धीरे-धीरे वनमाला को फिर ठंडा होता देखा । कॉलेज में उस दिन वार्षिक छात्र-सम्मेलन का मौका था । वनमाला दिये गए समय पर आ पहुंची थी । वह मेरे पास आई और शिकायत से कहने लगी -

" आपने दस बजे का समय देकर बुला लिया और मैं जल्दी आ भी गई, लेकिन तब यहां कोई न पहुंचा था । मेरे मिस्टर मुझे छोड़ने आए थे । आप जरा तो सोचिए कि उन्होंने मन ही मन क्या सोचा होगा ? सोचते होंगे कि मैं ही इतने सूने में इतनी जल्दी क्यों आ जाती हूं ? "

वनमाला में कहीं कुछ जागा तो था । कभी-कभार ऐसी बातें हो जाती थीं, जिनमें पुरानी यादों की छुअन हो । एक दिन इन्हीं दिनों कभी कॉलेज के किसी कार्यक्रम के बहाने फोन पर बातें हो रही थी । बातें कुछ भी हो रही थीं, खून में तो स्मृतियॉ बसी ही रहती हैं । कब बातें मन तक पहुंच जाती है, किसे मालूम ।

मैं वनमाला से पूछ रहा था -"वनमाला तुम मुझे आधा बंगाली बनाकर क्यों छोड़ गई हो ?"

फोन पर एक उदास हंसी खनकी । हंसते हुए उसने धीमी आवाज में चुहल से कहा -"आप आधे कहां पूरे बंगाली हैं। आप को तो बंगाली आती है । आप ने तो बंगला में कविताएं भी लिखी हैं । पढ़ी तो हैं मैंने ।"

यह उसी वनमाला की आवाज थी, जिसके स्किजोफ्रेनिक मूड से सारा कुछ बर्बाद हो जाता है । मुझे याद आया कि चिढ़ के मिजाज में ईर्ष्या से भरे उसके यार ने कभी स्टॉफ के बीच तकरीबन दो साल पहले वनमाला के हवाले से व्यंग्य किया था- " मैडम कहती थीं कि एक तो हमारे परीक्षा के अधीक्षक थे, तो कविताएं सुनाया करते थे, देखिये अब दूसरे यानी डॉ. नलिन क्या करते हैं ?"

तब मुझे इसके वनमाला का यार होने की कल्पना इतनी नहीं थी । वनमाला के कितने चेहरे थे ? क्या अपने चेहरे इस तरह उजागर देख, क्या आत्मीय साथ के चेहरे को चुगली में उजागर कर जाते उसे लज्जा नहीं आती होगी ? इस स्त्री का स्वभाव मेरे सामने उजागर हो रहा था । दरअसल औरत चाहती ही है कि वह मर्द को दौड़ाए और छकाए । उसी में औरत को मजा आता है ।

मौसम पत्तों की तरह झरते गए और फिर नया साल आया । मुझे यह अहसास हो रहा था कि वनमाला से खीझकर सुबह उसके साथ से दूर भागने का मेरा निर्णय शायद ठीक नहीं था । औरत का स्वभाव ही होता है कि वह अपने को वहां सिकोड़कर, बचाकर रखे जहाँ आदमी की चाहत घुस पड़ने को आमादा होती है । प्यार चाहे जो हो, जहां ऊगता हो, अंततः शरीर तक ही पहुंचता है । शरीर ही उसका आधार होता है । औरत जात, चाहे वो दुनिया के किसी भी कोने की हो, को यह घुट्टी प्रकृति से ही पिलाई गई होती है कि मर्द की 'हाय-हाय' को, उसकी चाहत को पाना है, तो वह अपने जंगल के दरवाजे के पार न जाने दे । उसे वहीं रोक दे । औरत को यह मालूम होता है कि एक बार आदमी का प्रवेश हुआ कि उसकी कीमत घट जाएगी । तब संभावना यह होती है कि औरत हाय-हाय करे और मर्द बेवफाई करे । चाहे गाय हो, कुतिया हो, शेरनी हो- पीछे आ रही भीड़ की ओर वह गुर्राती है, झगड़ती है, झटककर भगाती है, मारती है, काटती है और दूर भागती है । टपकती लार के साथ पीछा करना पुरुष की नियति ही है । दरअसल नर को दौड़ाते, छकाते उत्तेजित करते मादा की जात खुद अपने अहं और उत्तेजना में तृप्त होती है । वही प्यार और प्यार की क्रिया का कानून है । मैं खीझकर हताश हो गया था और दूसरे को फायदा उठाने का पूरा मौका हासिल था । अब जब कि मैं चाहे-अनचाहे फिर परिदृश्य में आ गया था, बचते-बचते भी वनमाला की आंखों, उसके दिलो-दिमाग में मैं आ रहा था ।

यह मुगालता मुझे नहीं था कि अचानक उसकी बेवफाई वफादारी में बदल जाएगी, लेकिन इतना जरूर था कि अपनी ओर से मैं उसे शिकायत का मौका नहीं देना चाहता था । मैं चाहता था कि उसे मैं समझूं और वह मेरे दिल को समझने की कोशिश करे । कहावत है कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, लेकिन फिर औरत जात पर निगाह डालो तो यही सच लगता है कि आदमी-जात के अनुभव से बनाई यह कहावत औरत पर लागू नहीं होती । आदमी हर समय गर्म रहता है और मौका मिला कि ठंडा होने में देर नहीं लगती । आदमी बेचैन और उतावला होता है, वह प्रतीक्षा का धीरज नहीं रखता । इसीलिए आदमी के लिए

आमतौर पर औरत के साथ निबटना महज एक काम होता है । वह त्वरा में होता है। अगर आदमी जात की इस फितरत को ध्यान में रख जाए तो औरत के लिए दो-तीन मर्द महज उसके निचले दिल की ठंडक को भगाकर उसे गर्म करने के काम में निबट सकते हैं । यूरोप में इसके लिए जो तरकीबें हैं, उन्हें नैतिक भारतीय जन और समाज दूषित समझते हैं । ऐसी हालत में मुझे नहीं लगता कि कुन्ती और द्रौपदी का मिथक अपवाद मात्र है । स्त्रियों का समाज आने पर शायद वे बहुविवाह का चलन आदमियों के हक से बदलकर अपने नाम कर लेंगी । पहाड़ों में तो अब तक भी ऐसी प्रथा प्रचलित है । मर्द ठंडा होने के बाद खलास हो जाता है, जबकि वेश्याएं मर्द को खलास करती अपना पेट भरती हैं और फिर भी तृप्त नहीं होती । औरत चाहे कैसी भी हो, मुझे लगता है कि अपनी इस काबिलियत को पहचानती है । इसीलिए वह मर्द को खिझाती और दबाती हे । उसकी जीत समर्पण में नहीं, समर्पण के लिए आदमी को तरसाने में है । वनमाला को इस कला की घुट्टी पिलाई गई थी । उसे मुझसे प्रेम था कि नहीं था यह मैं नहीं जानता, लेकिन यह तय है कि उसे मेरे प्रेम से प्रेम था । वह बाहर से चाहे जैसा अभिनय करती हो, अंदर ही अंदर कामना करती कि मैं उसके लिए तरसूं, उसे प्यार करता रहूं और वह बड़ी चाहत से मुझे मिटता हुआ देखे । चाहे आप को अटपटा लगे, लेकिन बारीकी से देखें तो आप पाएंगे कि औरत के पास घमंड का, जीत का यही रास्ता होता है । सहज, सुलभ स्वीकार वाली औरतों को क्या यह विचित्र नहीं कि हमारा समाज और पुरुष खुद हेय दृष्टि से देखता है । इसके विपरीत चर्चा में बनी इठलाती, नखरों से खिझाती, चतुर और कुटिल कामिनियॉ उसे तरसाती, लुभाती हैं ।

काम के इन्द्रियानंद की निर्बाध कामना स्त्री और पुरुष दोनों में होती है । यह ठीक है कि मुझे औरतों से घिरा पाकर वनमाला की अधिकार-कामना आहत होती थी । लेकिन यह भी सच है कि वनमाला खुद उस कामना से रहित न थी । अब जब मैं गौर करता हूँ, तो मुझे प्रतीत होता है कि हमारे प्रेम-प्रसंग की शुरुआत के वक्त वनमाला का एक दुबले-पतले व्यापारी युवा की सेवाएं लेना कुछ वैसा ही था । वह इसका पढ़ाया हुआ लड़का था। यदा-कदा मैं देखता कि ग्यारह बजे परीक्षाओं से छुटकारे के वक्त अपनी कार ले वनमाला को उसके घर तक ढोने के लिए वह हाजिर हो जाया करता था । वनमाला से उम्र में तकरीबन बारह साल छोटा उसका यह प्रिय विद्यार्थी मैडम वनमाला के द्वारा घर में भी जब-तब छोटी-मोटी तकलीफें दूर करने बुला लिया जाता था ।

आदमी अगर किसी किशोरी या युवा कन्या को ऐसी सेवाएं देने लगे तो वह आंखों में चढ़ जाता है, लेकिन औरतों के लिए लड़कों पर रुझान ममतामयी मॉ के लाड़ की तरह ही गिन लिया जाता है । वनमाला का लगाव इसके प्रति जाहिर ही था। ऐसे ही संबंधों की ललक वनमाला में अपने चुलबुले चित्रकार साथी के प्रति उससे कुछ अधिक ही जाहिर थी । यह बात दीगर थी कि खुद वह चित्रकार अनुराधा के पीछे भागता था । वनमाला में इसकी दिलचस्पी फुरसत की ऊब में पलटकर दरकिनार कर दी जाने वाली फालतू मैगजीन जितनी ही थी। फिर वनमाला के सामने के ब्लॉक में रहता कोई एक चिकित्सक भी था, जो कथित तौर पर उसका घरेलू मित्र था । यह एम.डी कर रहा था और शायद उसके लिए ही वनमाला मुझसे चिकित्सा के पाठ्यक्रम की कोई एक पुस्तक तलाश करा रही थी । जाहिर है कि स्त्रियों में पोशीदगी और संयम का अद्भुत कौशल होता है, जिससे उनके रहस्य जानना दुष्कर होता है। यह बात और है कि दिल उनमें भी उसी आवेग से धड़कते हैं जिसके लिये पुरुष बदनाम हुआ करते हैं।

स्त्रियों पर पुरुषों की अधिकार-कामना उतावली में प्रकट हो जाती है । स्त्री अपनी अधिकार कामना मान और रोष से दर्शाती है । बदले मौसम और बदली परिस्थिति में जब कि मैं प्रतिभा और प्रभुत्व दोनों से औरों को सम्मोहित कर रहा था, वनमाला की महत्वकांक्षाओं का फिर जागना स्वाभाविक था । उसके प्रति जैसा मेरा प्रेम दीवानगी की हद तक और स्पष्ट था, वैसा उसे मेरे प्रति प्रेम न था । इसके बावजूद मेरा प्यार उसे प्यारा था और वह मेरे प्यार का अधिकार किसी और के कब्जे में देखना पसंद न करती थी । दिक्कत यह थी कि वनमाला के लिए मेरी अधिकार-कामना के बीच नया यार खड़ा हो गया था और मुझ पर वनमाला की अधिकार-कामना के बीच नीलांजना और फिर अन्य खड़ी होती नजर आ रही थीं । वनमाला और मैं, हम दोनों

नई असमंजस भरी परिस्थितियों के बीच एक-दूसरे को ईर्ष्या का शिकार बनाते आनंदित और उत्पीड़ित होते । यह अजीब खेल था । इन दिनों समय इसी तरह करवट बदल रहा रहा था । इधर मेरी कामना थी कि वनमाला के प्यार पर मेरा एकाधिकार हो और उधर वनमाला की उमंगें इस कोशिश में लगी थी कि उसकी म्यान में दोनों प्रेमी बिना टकराए तलवार की तरह कसावट में बंधे उसका गौरव बढ़ाते रहें । वह संभव होता, लेकिन तलवारों के बीच भी तो वनमाला के म्यान से दूसरे को हटा अकेले राज करने की ईर्ष्या थी । इसलिए टकराहट से उसके बचाने के बावजूद टकराहट होती । कभी-कभी तो यूं कि वनमाला पशोपेश में पड़ जाती कि क्या करे ? सामने न वह आता न मैं। तलवारें चलतीं तो वार वनमाला पर पड़ता ।

दूसरे रोज वनमाला से फोन पर बातें हुई । फोन उसी ने किया था । बात का बहाना कॉलेज में होने वाले कार्यक्रमों के निर्धारित समय से जुड़ा था । मुझे खुशी से भरा अचरज हुआ कि देखकर भी मुझे अनदेखा कर देने वाली और मुंह फुलाए मुझसे अबोली रहने वाली वनमाला का फोन था । फोन जिस लिए किया गया था, वह तो बहाना ही था । सच यह रहा होगा कि अपने मियां और बच्चों की अनुपस्थिति में मैदान साफ जान वनमाला ने यूं बात करना अच्छा समझा होगा । फोन बता रहा था कि उससे झांकती वनमाला का चित्त तनावरहित और प्रसन्न था । उसकी आवाज में सहज आत्मीयता और चुहल थी ।
मैंने पूछा था- "वनमाला मेरी एक शिकायत है ।"
"क्या," उसने पूछा **?**
मैंने कहा- "तुमने मुझे आधा बंगाली बनाकर छोड़ दिया । तुम कहो कि तुम्हें छोड़कर मैं कहां जाऊँ **?"**

फोन पर एक उदास हंसी खनकी । हंसते हुए उसने धीमे स्वर में सफाई दी- "आप को मैं आधा बंगाली कहां मानती हूं । आप को तो पूरी बंगाली आती है ।"

मुझे याद आया। हां, साथ के दौर में रची चुनिन्दा डेढ़ दो-दर्जन प्रेम-कविताओं को, जिनमें वनमाला का ही प्यार रचा-बसा था, बंगला में रूपांतरित करा मैंने उसे सौंपा था । उसने उन्हें पढ़ा था । खूब फुरसत से घर ले जाकर पढ़ा था, फिर तीसने-चौथे रोज वापस किया था ।

प्रियहरि

वनमाला : दो के बीच ठीक ड़ेढ़ बजे बाद संयोग

औरत प्रेम की दीवानगी पर मर-मिट सकती है,
लेकिन उसके सार्वजनिक इजहार से वह नफरत करती है।

कभी-कभी वर्षों जो बात नहीं हो पाती, वह अनायास, अचानक यूं हो जाती है कि पता भी नही चलता। फरवरी के दूसरे हफ्ते में उस रोज ऐसा ही हुआ था। दोपहर से पहले प्रियहरि अपनी जगह बैठा था। बिना बुलाये, बिना कहे थोड़ी देर बाद अप्रत्याशित रूप से वनमाला जुकाम से मुंह लाल किए मुस्कुराती उसके सामने प्रकट हो गई। प्रियहरि ने एक नजर देखा और उसे बिठाया। वनमाला ने अपने काम के बारे में पूछा प्रियहरि ने बताया कि बाबू को दिया है, अभी पूछता हूं।

वनमाला बोली - "आपने हम लोगों को दोपहर तक बैठने कहा है क्या ? बताइये भला क्या करूंगी इतनी देर बैठकर ? कोई कितना समय यहां बेकार गप-शप में काटेगा ? प्रियहरि के पूछने पर उसने बताया कि वैसा उसके विभाग-प्रमुख जोशी जी ने कहा है। वे कहते है कि ऐसा आपका फरमान है।

" नहीं वैसी बात नही है" - प्रियहरि ने कहा

वनमाला बोली - " तो फिर मैं नही रुका करूंगी। मैने आपको बता दिया है आप मुझे कुछ मत कहना। ठीक है न।"

दोनों की आंखें मिलीं । प्रियहरि ने कहा "वनमाला, कई बार चाहा कि मै देखूं, बात करूं; लेकिन मेरा दुर्भाग्य। संयोग से तुम्हारे सामने आ भी जाऊँ तो मुझे आता देख तुम सामान समेत मुंह फेर कर चली जाती थीं।"

" नहीं, ऐसा नही है। मैने कभी ऐसा नहीं किया। आप बताइये कब ऐसा किया ?" वनमाला के लहजे मे इतनी मासूमियत थी कि मुझे अपने आप पर शक हुआ कि मेरे वैसे अनुभव कहीं झूठे तो नहीं थे ?

" तुम्हें याद है ? शनिवार सुबह ग्यारह बजे ही मैं आ गया था कि तुमसे मुलाकात हो जायेगी, लेकिन तुम चली गई थीं।"

वनमाला बोली - "हां, उस रोज़ घर से फोन आया था तो मैं चली गई थी।"

प्रियहरि आश्वस्त नही था। उसने फिर कुरेदा। कहा - " क्यों ? उससे पहले की बात याद करो। मैने तुम्हारे कमरे में जब प्रवेश किया तुम अकेली थी। लेकिन अजीब बात थी कि तुम बिना बात किए तुरंत उठकर चली गई।"

वनमाला के मूड और उसके जब-तब बदलते व्यवहार को देखकर प्रियहरि क्षोभ से भर जाता था। उसे वनमाला की नाराजगी, कड़वाहट और बेरुखेपन से पीड़ा पहुंचती थी। फिर भी कुछ ऐसा था जो उसके साथ के पुराने दिन लौटा ले आने उसे प्रेरित करता था। पिछली बार कड़वाहट के चलते ही चाह कर भी वह उसे अधिकारी का पद नहीं दे सका था। जिससे वनमाला और अधिक नाराज हो गई थी। प्रियहरि का मन उसे प्रेरित करता बार-बार कहता कि वह वनमाला को मनाए, महत्व दे और उसकी नाराजगी दूर कर पुराना वसंत लौटा ले आए।

मन में छिपी किसी हलचल के चलते प्रियहरि ने सहज भाव से पूछा- " वनमाला, तुम मेरे साथ सुबह काम पर आओगी ?"

"हां, मैं करूंगी, लेकिन फिर मुझे दोपहर के कामों में बिल्कुल मत रखियेगा"

"यदा-कदा ही वैसा होगा",

प्रियहरि ने कहा- "वनमाला मैंने तुमसे इसलिए पूछा कि फिर लोग कुछ-कुछ कहेंगे और तुम हो कि लोगों का सारा गुस्सा मुझ पर निकालोगी"

"हां, ये भी एक बात है तो । आप खुद इसे जानते हैं" फिर उसने जिज्ञासा व्यक्त की- "लेकिन आप सुबह रहेंगे तो फिर दोपहर में कौन होगा और शाम को ? क्या आप जोशी जी, सत्यजित को रखेंगे ?"

"वनमाला, अभी मैने केवल तुमसे पूछा है । और किसी को नहीं बताया है । ठीक से कुछ सोचा भी नहीं । इस बारे में मैं देखूंगा - प्रियहरि ने कहा ।

कुछ पलों कि गंभीर चुप्पी के बाद प्रियहरि ने सहज ढंग से फिर उससे कहा - "वनमाला, एक उलझन है जो मुझे परेशान करती है । बताओ मैं क्या करूं ?" वनमाला चुप रही । प्रियहरि ने कहा - "जिन्दगी में न जाने कब क्या हो जाए ? रोज मेरे आने - जाने का दौरा होता है और कुछ भी हो सकता है । कब किस पल मुझे कुछ हो जाए कौन कह सकता है । मैं डरता हूं कि तुम्हारे नाम ढेर सा जो इधर-उधर लिखा है मेरे बाद असावधानी से किसी और के हाथों न चला जाए"

"क्यों, मुझमें ऐसा क्या है जो लिखा जाए ? बताओ क्या लिखा है" - वनमाला बोली।

"बहुत, बहुत सारा लिखा है । सारा कुछ - डायरी में, पत्रों में, स्मृतियों में, शिकायतों में, उलझनों में, प्रश्नों में जो शब्द तुम्हें सम्बोधित है।" - प्रियहरि ने कहा ।

वनमाला हंसी "शिकायतें और मुझसे ? भला कैसी शिकायतें ?"

प्रियहरि ने भी हंस कर जवाब दिया - "वैसी नहीं जैसा तुम समझ रही हो । शिकायतें तुमसे हैं तुम्हारी ही और तुम्हें ही संबोधित । वह सब मेरे और तुम्हारे बीच की बात है । हमारी आपस की बातें है, कोई तीसरा नहीं"

"आप ऐसा क्यों करते हैं ?" आप ने ऐसा क्यों किया ? वह सब लिखना ही नहीं चाहिए । यह ठीक नहीं है। क्या आप सोचते नहीं कि वह सब अधिकार से बाहर की चीज है ? आप को निजी बातें इस तरह नहीं लिख कर रखना चाहिए । मैं कहती हूं वह सब तुरंत फाड़ डालिए, जला दीजिए । आप यह क्यों नहीं समझते कि उससे आप और मैं दोनों परेशानी में पड़ सकते हैं" - वनमाला ने कहा

"वनमाला, यह केवल तुम्हारे और मेरे बीच का मामला है। कोई तीसरा यह नहीं जानता । तुम्हीं बताओ मैं क्या करूं ? उन सब में केवल तुम हो । उनमें मेरे प्राण बसते हैं, तुम्हारी स्मृतियां है जो मैंने अपने रक्त से रची है । मैं खुद उन्हें नहीं मिटा सकता.."

प्रियहरि कहता जा रहा था "वनमाला, मैं चाहता हूं उन्हें तुम धरोहर की तरह स्वीकार कर सहेज लो । यह मेरी प्रार्थना है । मैं न रहूं तो बस इन्हें एक बार अच्छी तरह पढ़ लेना और तुम खुद उन्हें नष्ट कर देना । क्या तुम इसे स्वीकार नहीं करोगी ? मेरी बात मान लो कि प्लीज़"

वनमाला असंयत हो चली थी। उसके चेहरे पर भय, आशंका और घबराहट की छायाएं तैर रही थी । जिस चीज को प्रियहरि खुद नहीं संभाल सकता और जिससे वह खुद भयभीत है उसे औरत होकर वह भला कैसे संभालेगी । उसकी आंखों में भविष्य का वह भयावह तैर गया जब वह चोरी करती पकड़ ली जाती है और बदनामी, अपमान में संसार उस पर थू-थू कर रहा होगा ।

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । मैं न कि उन्हें स्वीकार करूंगी, न पढ़ पाऊँगी। इतनी सामर्थ्य मुझमें नहीं । आप खुद क्यों नहीं वह सब नष्ट कर देते ? मेरे साक्षात् सामने रहते भला उन सब का क्या काम ? क्यों न उन्हें हम गोपन बना रहने दें ?"

वनमाला के वैसे शब्दों पर प्रियहरि आहत हो उठा । भावुक होकर वह प्रार्थना किये जा रहा था - "इसे मेरी आखरी इच्छा समझो। क्या तुम मेरे लिए इतना नहीं करोगी ?"

वनमाला आशंका से घबरा उठी थी। अब तक जो सहज था, वह अब असहज हो गया । शायद घबराहट, आशंका ने कोमलता को अचानक कठोरता में बदल दिया था । वनमाला ने दृढ़ता से इनकार कर दिया ।

"प्रियहरि तुम ऐसा नहीं कर सकते । यदि वह तुम्हारी अंतिम इच्छा है तो मैंने जो कहा उसे मेरी भी अंतिम इच्छा समझो । अब मैं देखती हूं कि मुझे चाहने वाला तुम्हारा मन किसकी इच्छा रखता है - अपनी इच्छा या मेरी ?"

वह उठ कर चलने लगी - आप ने तो मुझे परेशानी में डाल दिया । देखूं, आपकी इच्छा जीतती है या मेरी इच्छा ?" वनमाला ने कहा - "अब तो ऐसी हालत में आपके साथ भला मैं कैसे काम कर पाऊंगी ? मैं काम नहीं कर सकूंगी मुझे माफ कर देना ।"

प्रियहरि ने उसे रोकने की कोशिश की लेकिन "अब यहां बैठना ठीक नहीं, मैं दफ्तर में जाकर बैठती हूं । देखूं, मेरे काम का क्या हुआ..?" कहती वनमाला चली गई ।

प्रियहरि की निकटता जैसे उसके लिए खतरे की गंध बन गई थी । अंतर केवल इतना था कि आज न तो प्रियहरि असहज था और न वनमाला । दोनों ही आज निरुद्विग्न, सहज खुले, और प्रसन्न थे हालांकि उस प्रसन्नता में प्रेम की भावुकता के साथ भविष्य की आशंका की पीड़ा घुल-मिल गई थी ।

इस तरह अंततः अनपेक्षित रूप से वह हो ही गया जो प्रियहरि चाहता था। हालांकि ठीक वैसा नहीं, जैसा वह चाहता था । उसका जुड़ता हुआ दिल फिर टूट गया था । उसने सोचा मेरी दुविधा खत्म हो गई विकल्प अब मेरा है अब वनमाला मुझे दोष न दे सकेगी । उसका मन पीड़ा से भर गया वह सोचता रहा, अपने आप से पूछता रहा कि क्या यही वनमाला का असली हृदय है ? उसे मेरी तनिक भी चिन्ता नहीं है ? क्या

सचमुच वनमाला इस तरह स्वार्थी और क्रूर हो सकती है ? क्या वह इस भय और आशंका से ग्रस्त हो गई है कि लगातार उसे याद करती और रचती मेरी दीवानगी उसके लिए भविष्य के संकट का कारण बन सकती है ?

क्या वनमाला भयभीत थी कि पिछली यादों की तरह घटमान वर्तमान को भी शब्दों में संजो-संजोकर वह रखेगा और वह सब वनमाला की बदनामी का सामान बढ़ाता जाएगा ? कारण वह हो ; यह हो ; या दोनों - वनमाला की चतुराई भरी सोच ने प्रियहरि को उदास कर दिया था। उसे किसी मित्र का वह कथन याद आया कि औरत प्रेम की दीवानगी पर मर-मिट सकती है, लेकिन उसके सार्वजनिक इज़हार से वह नफरत करती है।

बाबू से अपने कागज लेकर वनमाला फिर लौट आई थी । प्रियहरि ने चुपचाप उस पर दस्तखत कर दिये । उसने वनमाला की ओर देखा । अंदर चाहे जो हो बाहर एक सहजता, निरुद्विग्न सहजता वनमाला के मुखमंडल पर छाई थी। हंसती हुए प्रियहरि से वह कह रही थी-

"आपके बाबू ने मुझसे कहा है कि दस्तखत के बाद एक कापी मैं उसके पास छोड़ जाऊँ ।" मानिनी की चंचलता के साथ चहकती हुई वह उस पर मरने को उतारू प्रियहरि से बड़े मान से कह रही थी - "बताओ, भला मैं क्यों जाऊँ उसके पास ? मैं नहीं जाऊँगी । आपके पास इसे छोड़ जाती हूं। अब आप ही अपने सेवकों से भिजवा दीजियेगा "

"ठीक है, तुम्हें जाने की जरूरत नहीं, मैं ही भिजवा दूंगा" - प्रियहरि ने कहा। दोनों एक दूसरे को समझ रहे थे और दोनो ही प्रसन्न थे । वनमाला चली गई और प्रियहरि उसे जाता देखता रहा ।

प्रियहरि का चित्त व्यथित था। वनमाला के बारे में वह जितना सोचता है उतना ही उलझता जाता है । आखिर वह कौन है ? उसके जीवन में वह क्यों आई ? कौन सा और कितने जन्मों का संबंध है कि वनमाला के आने से वह मिटता गया हैं। अभी-अभी हुई बातचीत के संदर्भ में वह वनमाला की मनोवृत्ति पर विचार कर रहा था । वनमाला का मूड बता रहा था कि प्रियहरि की प्रार्थना में छिपी दीवानगी से वह अभिभूत थी । वह केवल सुरक्षा का भय ही था जिसने वनमाला को पीछे लौटा दिया था। प्रियहरि उस समय मन ही मन वनमाला से प्रार्थना करता रहा था कि उसकी पूजा के फूलों का अपमान वह न करे । ऐसा न करे कि उसकी आंखों के आंसू उसके मरने के बाद भी न सूख पाएं । प्रियहरि ने याद किया कि कभी ऐसे ही किसी उदास माहौल में वनमाला और प्रियहरि को मौन बैठा देखकर चिढ़ से मुंह बनाते हुए वहां बैठी अनुराधा ने छोटी सी टिप्पणी वनमाला पर की थी - "मुझे समझ में नहीं आता कि इमोशनल ब्लैकमेलिंग करने में लोगों को क्या मजा आता है? खासकर मैं देखती हूं कि औरतें तो इसमें एक कदम और आगे हैं । मैं तो सारा दोष औरतों को देती हूं ।"

प्रियहरि ने समझ लिया था कि अनुराधा का वह कोसना वनमाला के लिए है। प्रियहरि के लिए वह टिप्पणी अनुराधा की चाहत भरी सहानुभूति थी । प्रियहरि को यह भी याद आया कि अनुराधा ने एक बार उससे कहा था - "प्रियहरि, वह आपके साथ के लायक नहीं है । इस नकचढ़ी को मैं अच्छी तरह जानती हूं।"

प्रियहरि ने अक्सर सोचा है कि क्या वनमाला का उससे परिचय का, संबंधों का बस उतना ही अर्थ था ? क्या किसी और के दोनों के बीच में आ जाने पर वनमाला का मुंह बनाना, उससे झगड़ा करना, रूठना, मांग करना सब झूठ था ? या सचमुच वनमाला के स्वार्थ शुरू से कुछ और थे ? क्या अनुराधा ने ठीक कहा है? क्या वनमाला प्रियहरि का इस्तेमाल पायदान की तरह कर रही थी ? क्या वनमाला का यह कहना झूठ था कि "बीच में कोई दूसरा नहीं है । आप बेकार ही संदेह करके परेशान होते हैं" ? क्या सचमुच वनमाला के लिए प्रियहरि की निकटता केवल सगर्व भावनात्मक मौज-मस्ती का बहाना मात्र थी ? वनमाला से उस दिली बातचीत को गुजरे तकरीबन दो हप्ता गुजर चुके थे । बाहर घटनाएं और अंदर संबंध ढर्रे पर चल रहे थे । इन दिनों कक्षाएं बंद है, परीक्षाओं का मौसम पास है । अब सारे लोग दिन-भर बैठा करते हैं। सुबह का आना अब बंद हो गया है। अब सभी को चार बजे तक बैठना होता है। करीब बारह बजे का वक्त रहा होगा जब विपुल ने प्रियहरि के चैंबर में प्रवेश किया । इधर-उधर की दो चार बातों के बाद प्रियहरि से कहा कि उसे कहीं वास्तु-पूजा में जाना है। वह चाहता था कि उसे ड़ेढ़ बजे जाने की अनुमति मिल जाए । प्रियहरि को कोई आपत्ति न थी ।

उसके जाने के ठीक पन्द्रह मिनट बाद वनमाला आई । उस समय प्रियहरि के साथ कोई और बैठा काम कर रहा था । कुछ देर तो वनमाला मौन बैठी रही जैसे संकोच में पड़ी हो । उसके चेहरे पर कुछ पशोपेश था । फिर भी एक शांत, सहज कोमल भाव वहां मौजूद था ।

प्रियहरि के पास बैठी दूसरी संगिनी जब जाने को उठने लगी तब वनमाला मुखरित हुई - "प्रियहरि, आज मुझे कुछ जल्दी जाना है । हमारे परिवार में परसों कोई गुजर गया है, जिसके तीसरे दिन की पूजा आज है जो शुरू हो गई होगी । मुझे भी पहुंचना है । मुझे आज जल्दी जाने दीजिए ।"

प्रियहरि ने पूछा था कि कितनी देर से जाना है ? वनमाला ने बताया कि "अभी तो बैठूंगी, लेकिन डेढ़ बजे निकल जाऊंगी ।"

वनमाला की याचना -'अनुमति', 'पूजा शुरू हो गई होगी'- के बावजूद यह जो दो के बीच ठीक डेढ़ बजे बाद संयोग था वह प्रियहरि को चकित कर गया और करता रहा । यह तय करना उसके लिए कठिन था कि वनमाला को वह क्या समझे और उसे कैसे समझाए । अक्सर उसे संदेह होता कि वनमाला विश्वसनीय नहीं है । वनमाला की हरकतों में प्रियहरि को एक कुटिल प्रेमिका की चालाक तरकीबें दिखाई पड़ती थीं। प्रियहरि अक्सर देखता कि उसके साथ आत्मीय एकांत में वनमाला उसे प्यार भरी तसल्ली का इशारा देती और फिर अगले ही क्षणों में गिरगिट की तरह रंग बदले उसी तरह कहीं और अपने किसी नए यार से बातों में तल्लीन दिखाई पड़ती। क्या वह सारा आयोजन एक तरकीब थी।

"नीलांजना ! साइंस ? वाह, क्या बात है !"

"प्रियहरि, क्या सोचकर आपने मेरी जगह औरों को दे दी है
बताइए, मुझमें क्या कमी है ?'

परेशानी और दुविधा के बावजूद प्रियहरि का कमजोर मन वनमाला पर ही फिदा था । एकांतिक बातों के अवसर मिलते न थें । वह कुर्सी पर आसीन था इसलिए और सबसे यारी-दोस्ती का वैसा माहौल बनाना उसके लिए संभव न था जैसा बराबर के वर्ग में हो सकता था । मर्यादा का बंधन था जिसका निर्वाह उसे करना था हालांकि संबंधों का इतिहास वहां सब जानते थे और औपचारिकताओं के बावजूद वनमाला से उसकी नजदीकियों पर सभी गौर करते थे ।

प्रियहरि अब भी चाहता था कि वनमाला उसके साथ और उसके पास रहे । वह उसे सबसे ज्यादा महत्व देते हुए ऊँची हैसियत में रखना चाहता था। वनमाला को बुलाने उसके पास अनेक बहाने थे। वहां पर वनमाला की संगिनियां गौर करतीं कि उनकी तुलना में प्रियहरि वनमाला को अधिक तरजीह देता है। औरों के बीच अंदर की बातें संभव न होती इसलिए प्रियहरि ने वनमाला को 'पत्रिका' के कूट संकेत से संबोधित करना शुरू कर दिया था। यह बात उन दोनों के अलावा तीसरा कोई न समझता था। वनमाला जानती थी कि वह ही प्रियहरि की पत्रिका थी । वैसे अवसरों पर मुग्ध हो वह प्रियहरि की आंखों के आईने में अपनी तस्वीर निहारती और खुश होती । उसे इस बात पर गर्व था चाहे जितनी दूरियां और झगड़े हों प्रियहरि के हृदय के राजसिंहासन पर वहीं आसीन है । तस्वीर का दूसरा रूप यह होता कि प्रियहरि से यारी पर गर्व के बावजूद वनमाला का रुख औरों के सामने यह दिखाने का होता कि उसे प्रियहरि से कोई विशेष मतलब नहीं है बल्कि वह तो प्रियहरि ही था जो उस पर मरा जाता था। प्रियहरि का यह संदेह निराधार नहीं था कि विश्वास में हुई एकदम निजी बातों की चुगली वनमाला अपनी तरफ से अपना रंग चढ़ाती हुई अपनी संगिनियों से यूं करती थी कि जिससे वह खुद बड़ी सदाचारी, बेदाग और तटस्थ दिखाई पड़े । यह बात अलग है कि उसके इस कुटिल अभिनय को उसकी उससे भी अधिक चतुर संगिनियां बखूबी समझती थीं और अलग होने पर उसका मजाक उड़ाती थीं ।

इन सबके बीच प्रियहरि के लिए यह समझना मुश्किल था कि वनमाला के साथ वह कैसा व्यवहार करे । यह एक बहुत बड़ी समस्या थी। महीने भर का समय यूं ही गुजर चला था । स्थितियां ऐसी बनी रहीं कि आत्मीय एकांत का अवसर न तो वनमाला को मिला और न संदेह में पड़े प्रियहरि ने उसकी पहल की । परिणाम यह हुआ कि प्रियहरि के संदेह और वनमाला की संदेहासपद गतिविधियों के चलते नीलांजना और मंजरी प्रियहरि की प्रियता का पात्र बन ऊँची हैसियत में आ गईं । दोनों रमणियां बहुत सहज रूप में पहले से ही प्रियहरि के निकट थी। इनमें वनमाला का नखरा और मान नहीं पाया जाता था । प्रियहरि ने इतनी कंजूस - उदारता जरूर दिखाई कि वनमाला के नाम की सिफारिश भी एक कोने में उसने डाल दी ताकि उसका अपना मन बाद के मसोस और पछतावे से पीड़ित न हो । उसकी चालाकी तो अपनी जगह थी लेकिन अंतरात्मा भला कहां जाती ? वह तो इस चालाकी के लिए आखिर प्रियहरि को धीकारती ही रही ।

हमेशा की आदत के विपरीत उस दिन स्वतःस्फूर्त रूप से वनमाला आई थी। प्रियहरि से उसने कहा - "बहुत दिनों से आप से मैं न जाने कितनी सारी बातें करना चाहती थी, लेकिन मौका ही नहीं मिलता । आपके पास कोई न कोई बैठा ही रहता था ।"

यह कहने पर कि "तुम तो बुलाने पर भी नहीं आती थीं । मैंने तो चाहा था कि तुम बैठो, बात करो । मेरी इच्छा तो तुमसे हर बात पर सलाह लेने की होती थी, तुमसे सहयोग पाने की होती थी, लेकिन तुम्हीं उपेक्षा करती रहीं ।"

प्रियहरि ने याद दिलाया - "साल भर हुए समितियां बनाए, एसोशियेशन का जिम्मा तुम्हें दिया, शिक्षक-पालक समिति तुम्हें दी लेकिन प्रेरणा और मेरे अपने सहयोग के बावजूद कुछ न हुआ । वाणिज्य का एक मात्र आयोजन भी जबरदस्ती मैंने ही कराया।"

वनमाला ने सुना और मुंह बनाते हुए सारा दोष अपने बड़े जोशी पर टाल दिया । कहने लगी -" वे मुझसे चिढ़ते हैं। अपने कानों पर हाथ रखकर मेरी कही बातों को अनसुनी करते कह देते है कि "मैंने कुछ नहीं सुना" । अब आप ही बताइएं मैं क्या करती ।"

आज बातचीत के दौर में वनमाला अविश्वसनीय रूप से प्रियहरि के लिए सहज और आत्मीय बनी रही। अनेक उलाहनाओं के बावजूद भी प्रियहरि को एक उदास बधाई जैसे दी - "अब आपको क्या है ? क्या तकलीफ है भला ! सब कुछ बढ़िया चल रहा है । आपने साल भर बढ़िया काम किया है। मेरी शिकायत बस यही है कि मेरा ध्यान नहीं रखते । प्रियहरि मेरा भी ध्यान रखा करो"

ऊपर से परीक्षा के अफसरों की अनुमोदित सूची आ गई थी । प्रियहरि के फोन से आग्रह करने के बावजूद वनमाला का नाम दोपहर छोड़ दिया गया था। इससे पहले इस प्रसंग में वनमाला ने प्रियहरि के साथ काम करने में अपनी ओर से ही अनमनापन बताया था इसीलिए प्रियहरि भी दुविधा में वनमाला की उपेक्षा कर गया था । खुद को अधिकारियों में नहीं पाकर वनमाला का मुंह फिर सूज गया था। प्रियहरि वनमाला के अप्रत्याशित मूड से अक्सर परेशा न हो जाया करता था। यह उसी का नतीजा था। फिर भी वनमाला ही उसे प्रिय थी। वनमाला की नाराजगी से वह खुद दुखी था और चाहता भी था कि वनमाला से बात कर उसे समझाये और मनाये ।

बुलाया तो वनमाला बेहिचक आई । प्रियहरि के सफाई देने पर उसने दो टूक कह दिया कि "आप मुझे यह सब क्यों बता रहे है ? मैंने तो कोई शिकायत आपसे की नहीं।" वह कहती चली गई कि "आपके सफाई देने का मतलब है कि कहीं न कहीं आप खुद अपने को अपराधी महसूस कर रहे हैं । मैं तो उसी दिन समझ गई थी कि आप मुझे अब अपने साथ नहीं रखने वाले है जिस दिन आपसे मेरी बातचीत हुई थी।"

यह अजीब बात थी कि जब भी प्रियहरि और वनमाला मिलते तब खवाहिश यह लेकर जाते कि पुरानी गलतफहमियां भूल कर उन्हें एक दूसरे को मनाना है लेकिन मनाने का चक्कर ऐसा कि फिर उसने नये झगड़े निकल आते। प्रियहरि ने वनमाला की बात पर सफाई देते हुए पिछली बातें याद दिलाईं और कहा कि तुम तो खुद ही उत्तेजित होकर मुझे मना करती चली गई थीं । इसके बावजूद मैंने तुम्हारे न चाहते हुए भी ससंकोच तुम्हारा नाम जोड़ ही दिया था । वनमाला अब बताओ भला कि ऐसे में मेरा क्या अपराध है ?

वनमाला ने कहा - "मैं क्या कहूं ? आप कुर्सी पर हैं। आप का अधिकार है।"
वनमाला का आरोप था कि उसके विभाग के दुष्ट जोशी और अन्य बहुत से लोग प्रियहरि के पास बैठते हैं, उसे सलाह देते है और वह उनकी बात सुन लेता है ।

उस दिन वनमाला खुद बोलने के मूड में थी । वह पूछ रही थी कि मेरा कसूर क्या था जो आपने मुझे अपना सहायक नहीं बनाया । आपको नहीं रखना था इसलिए आपने जानबूझकर मेरा नाम आखिरी में जोडा़ था जिसे कटना ही था । वह कह रही थी फिर अब सफाई देने से फायदा क्या ? वनमाला को इस बात का बेहद दुख था कि प्रियहरि उसे समझकर क्यों नहीं पाता। उसने मान दिखाते हुए प्रियहरि पर भरोसा करके थोड़ी बेरुखी क्या दिखाई प्रियहरि उसके लिए अपना सारा प्यार, सारे वादे भूलकर उसका दुश्मन बन गया। वनमाला प्रियहरि की इस वृत्ति से परेशान थी । थोड़ी सी बात पर वह रूठ जाता था । माना कि वनमाला भी थोड़ा उग्र हो जाती थी, प्रियहरि को छेड़ते वह नाराज कर देती थी लेकिन प्रियहरि भला उन बातों को मन में रखता बैर क्यों भुनाता था ?

वनमाला ने कहा - "मैं तो पिछले दिनों कौन्सिल की मीटिंग में ही आप का इशारा समझ गई थी । जब आपने हंसकर कहा था कि मुझसे बहुतों को शिकायत होगी, मुझे आप गाली भी दे सकते हैं। पूरी छूट है । मैं कुछ न कहूंगा, सब सुन लूंगा।"

वनमाला कहती जा रही थी - "तभी मैने समझ लिया था कि आपकी वह बात खासतौर पर मेरे लिए इशारा था और आप मुझसे ही वह कह रहे हैं ।"

वनमाला की मुद्रा इस वक्त ऐसे शहीद की हो गई थी जो अपनी शहादत को भी उपकार की तरह स्वीकार कर लेता है। उसने कहा - "आपने सोचा होगा कि मैं नाराज होऊंगी, शिकायत करूंगी। लेकिन नहीं, मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं। इसीलिए मैने आपसे कुछ नहीं कहा ।

यह अजीब बात थी कि एक - दूसरे से झगड़ते और दूर दिखाई पड़ने के बावजूद प्रियहरि और वनमाला के मन एक दूसरे को पढ़ते थे । वे एक दूसरे से शिकायत करते थे और एक दूसरे पर अधिकार की चाह रखते थे । वनमाला की बेलाग शिकायत और भोलेपन से भरा स्थितियों का स्वीकार मानो प्रियहरि को कोमलता से आहत कर देता था। प्रियहरि ने महसूस किया कि उसने गलती कर दी थी । प्रियहरि का मन अब वनमाला की शिकायत की भरपाई की तरकीबें निकालना चाहता था ।

दो-चार दिन बाद ही इसका अवसर आया । विराग की छुट्टी पर होने से प्रियहरि ने वनमाला को उसकी जगह अधिकारी उस दिन के लिए बना दिया । पहले दिन ही फोन करके उसे प्रियहरि ने बता दिया था।

फोन पर नखरे दिखाती वनमाला ने उसे कहा था कि "तो फिर सुबह की ड्यूटी काट दीजिये । दो-दो ड्यूटी मैं नहीं करूंगी ।"

प्रियहरि ने भी अनुनय से सफाई दी थी कि बड़ी परीक्षा है, सभी की ड्यूटी है, उसका नाम काटने पर लोग नाना प्रकार के बातें बनाएंगे, वगैरह । वनमाला ने प्रियहरि की बात मान ली । निर्धारित दिन सुबह की ड्यूटी के बाद वनमाला खुद प्रियहरि से मिलने चली आई ।

वनमाला बोली - "आपसे बात हो नहीं पाती है । मैंने सोचा आज खुलकर बात की जाए ।"
फिर बोली - "आपने जो ये पत्र मुझे आज अधिकारी बनाने का दिया है इसका मैं क्या अर्थ लूं ?"

वनमाला की आंखों में चमक थी और उसें पूरी उम्मीद थी कि आज का सिलसिला उसे अब पूरी परीक्षा में अधिकारी बनाए रखने का संकेत है। उसने इसी की पुष्टि की अपेक्षा प्रियहरि से की थी ।

प्रियहरि ने जवाब दिया कि "अर्थ स्पष्ट है । आज तुम हो, यानी हो।"

वह बोली - "इसमें कोई तो संकेत है । क्या आपने इसे मेरा और अपमान करने दिया है । शायद सबके के बीच मेरी हंसी उड़ाने या फिर इसमें कुछ और संकेत है भविष्य के लिए ।"
वनमाला को पूरी उम्मीद थी कि यह संकेत उस पर प्रियहरि के विश्वास के स्थाई प्रबंध का था वनमाला ने पूछा - " मैं इसे किस रूप में लूं - अच्छा या बुरा ?"

वनमाला की भावना प्रियहरि समझ रहा था । उसने कहा - "अच्छा ही समझो, मैं तो कोशिश कर रहा हूँ।"

अपने स्वभाव के मुताबिक स्थाई नाराजगी, शिकायत और प्रियहरि पर राज करने वाले रानी का अधिकार भाव तीनों वनमाला में थे । चहकती हुए वह बोली -"आपने पहले मुझसे नाराज होकर के गलती कर दी और अब आपको गलती सुधारने ये सब करना पड़ रहा है । आप बताइये तो भला कि मेरा अपराध क्या था ? आप मुझसे नाराज़ क्यों थे ? जो आपकी खुशा मद करती हैं, आपके पास बैठती हैं, उन्हें आपने अपना सहायक बनाया लिया और मुझे आप भूल गये । आपसे ऐसी उम्मीद न थी। इससे तो आप मुझे अब न रखें तो अच्छा है । आखिर औरों के लिए हंसी का पात्र तो आपके कारण मैं बन ही गई ।"

"यहां जो लोग" से वनमाला का इशारा नीलाजंना और मंजरी की ओर था जो इन दिनों प्रियहरि के करीब आती जा रही थी।

प्रियहरि ने वनमाला की धारा प्रवाह बातों के बीच उसे रोका । फाइल से ऊपर भेजा गया पत्र. दिखाते हुए उसने कहा - "वनमाला, मुझ पर विश्वास रखते कि मैं सब कुछ कर सकता हूँ। मुझे अभी भी तुम्हारा खयाल है" उसने पूछा कि "क्या अब वह मुझे अपनी बात भी कहने का मौका देगी ?" ।

प्रियहरि ने उससे कहा कि -"वनमाला, मेरे मन में अक्सर यह खयाल आता रहा कि काश ! तुम्हारी तनखवाह के निर्धारण पर रुका हुआ मामला अब अगर मेरे सामने खुल जाए तो कितना अच्छा हो ?" प्रियहरि ने उससे पूछा क्या ऐसा नहीं हो सकता कि वनमाला इसी बहाने सरकार से पत्र लिखकर फिर शिकायत करे कि इसके मामले पर पुनर्विचार किया जाए ।

वनमाला ने कहा कि राज्य का प्रशासकीय न्यायालय तो अब बंद हो गया है। अब वहां से क्या होगा ? आप जो कह रहे है वह संभव है क्या ? प्रियहरि ने सलाह दी कि वकील से बात करके, मुकदमा वापस लेने की बात कहकर अगर आयुक्त से पुनर्विचार के लिए पत्र आए तो इसी बहाने प्रियहरि अपने रहते मामले को वनमाला के पक्ष में निपटा सकता है । उसका कहना था इस वक्त मेरे हाथ में अधिकार है । न जाने कब तक यहां रहूं ? जल्दी हो जाए तो अच्छा है । दूसरी बात यह है कि उसने क्या सोचा है ? सहायक के रूप में प्रियहरि को क्या वह सहयोग दे सकेगी प्रियहरि ने कहा यदि वनमाला मन से चाहे तो वह अब भी प्रयत्न कर सकता है ।

प्रियहरि ने भावुक होकर वनमाला से कहा - "वनमाला, मैं तुम्हें याद करता हूं पूछता हूं तो केवल किसलिए कि तुम मुझे प्रिय हो, केवल इसलिए कि तुम वनमाला हो । कोई दूसरा यहां नहीं जिससे इतना विशेषाधिकार मिला हो । लेकिन दुर्भाग्य यह कि तुम ही मुझसे दुर्व्यवहार करती हो, मेरे खिलाफ काम करती हो - यह जानते हुए भी मैं तुमसे ऐसा पूछा रहा हूँ।" प्रियहरि ने आगे कहा - "बताओ तुम्हारी इच्छा क्या है ?"

"अधिकार पूर्वक !"- वनमाला बुदबुदाई। जैसे प्रियहरि पर एहसान जता रही हो वनमाला बोली -"यह आपको अब याद आ रहा ? आपने जो गलती कर दी, वो कर दी । मुझे यदि आपको रखना है तो जरूर रखिए। मगर मैं और लोगों के साथ दूसरे-तीसरे नंबर पर आपके सहायक बनकर काम भला क्यों करूं ? मुझे रखना है तो विधिवत पूरे अधिकार के साथ अव्वल नंबर पर अपने साथ अधिकारी बनाइएं।"

वनमाला प्रसन्न तो हुई, लेकिन आज मौका पाकर उसने अपने मन की खीझ और ईर्ष्या भी उजागर कर दी । शिकायत के भाव में थी उसने कहा - "प्रियहरि, क्या सोचकर आपने मेरी जगह औरों को दे दी है ।" उसने नीलांजना की आलोचना की और कहा कि जो समय से आती नहीं, काम करना नहीं जानती उसको आपने अपने पास रखा और मुझे भूल गये ?

नीलांजना के प्रति प्रियहरि की सह्रदयता पर अपनी शिकायत दर्ज करती, उस पर प्रहार करती वनमाला ने कहा - "बताइए, मुझमें क्या कमी है ? क्या मैंने आपके साथ काम नहीं किया है - परीक्षा में, पत्रिका में, और जगहों पर ? मैने आपको कितना सहयोग दिया लेकिन आपने मुझे ही नीचा दिखाया । ऐसा तो कभी किसी ने नहीं किया ।"

प्रियहरि समझ गया कि पिछले साल और इस साल में महत्व न दिये जाने पर वनमाला का समुचा गुस्सा और आक्रोश था । सफाई देने के बहाने प्रियहरि ने उसे याद दिलाया - "क्यों पहले भी तो बहुत से जूनियर इन पदों पर काम कर चुके हैं । क्या यह झूठ है **?"**

वनमाला ने जवाब दिया - वो सब दूसरों अफसरों ने किया आप तो कम से कम वैसा न करते आप ने तो मुझे बुलाकर पूछा तक नहीं । मेरे साथ निरंतर अन्याय क्यों कर रहे है **?** मेरी निरंतर उपेक्षा हो रही है मुझे हंसी का पात्र बनाकर ताने दिये जाते है और नाना प्रकार की बातें की जाती है । क्या इससे आपको खुशी मिल रही है **?"**

प्रियहरि के चित्त में पिछले साल से वनमाला के किसी और से संबंधों का जोर, उसका मुंह बिचकाना, आंखें फेरना, उपेक्षा करना, टालना, बुलाने पर भी न आना याद में कौंध रहा था उसने वनमाला से वह सब कह दिया । कहा - "वनमाला, तुमने निकट होकर भी ऐसा व्यवहार किया जबकि दूसरे समझे जाने वालों ने बेहिचक मेरी बात मानी और हर काम किया ।"

वनमाला बोली - "मैं सब जानती हूं । खुशा मद करने वालों को, पास बैठने वालों को आप पसंद करते है । मैंने ईमानदारी से कक्षाएं लीं । समय की पाबंद रही लेकिन वह आपने नही देखा ।" प्रियहरि ने उसकी शिकायत यह कर टाल दी की वह तो उसके विभाग के मुखिया का श्रेय है। इधर वनमाला शिकायत करती रही कि - "बताइए मेरा अपराध क्या है ? सब के बीच मेरी हालत खराब हो जा रही है **?"**

दोनों के बीच संदेह और कड़वाहट ने अब प्रवेश कर लिया इसका आभास उन्हें न था।

प्रियहरि ने कहा - "स्पष्ट कह दूं **?** सच कहूं तो तुम्हारा अनिश्चित स्वभाव, तुम्हारा व्यवहार ही मुझे आशं कित, भयभीत करते थे । जब-जब मैंने तुम्हारे हित में सोचा, तुम्हें पास रखा तब-तब तुमने मुझे धोखा दिया। तुम्हारी तनखवाह का उलझा मामला सुलझाने मैंने जी जान लगाकर काम किया, तुम्हारे लिए विवाद किया, सबसे लड़ पड़ा, लेकिन तुमने मुझे ही अपमानित किया । बताओ क्यों **?"**

वनमाला बोली - "जोशीजी और दूसरे लोग कहने लगे थे कि आखिर इनकी याने आपकी दिलचस्पी इसमें इतनी क्यों है **?"**

प्रियहरि ने कहा - "वनमाला तुम्हारा भय तुम्हारा अनिश्चित स्वभाव, तुम्हारा व्यवहार, दुश्मनों की सी तुम्हारे हरकतें - यही सब मुझे तुम्हें अपने पास रखने से रोकतीं हैं । तुम्ही बताओ मैं क्या करूं **?** तुम्ही बताओ गलती मेरी है, या तुम्हारी ।

प्रियहरि की दो-टूक साफ बोली से वनमाला का अहंकार आहत हुआ । खीझकर वह बोली - अगर इतना ही भय है मुझसे, तो मेरा ट्रांसफर करा दीजिए ताकि मैं आपके सामने ही न रहूं। भगा दीजिये मुझे । मुझे मालूम हो गया कि आप मुझसे कितना प्यार करते हैं **?"** वनमाला अपनी बात काटी जाती देख नाराज भावुक और हताश हो उठी थी उसका चेहरा रुआंसा हो रहा था ।

प्रियहरि उसे मना रहा था - "तुम अच्छी तरह जानती हो कि मैं इस जगह अगर हूं तो केवल इसलिए कि तुम यहां हो, अन्यथा कब का मैं यहां से तबादला कराके चला गया होता ।"

वनमाला बोली - "नहीं, मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि हम दोनों यहां रहे तो ऐसा ही होगा और दूसरों के भय से आप हमेशा मेरे साथ अन्याय करते रहेंगे ।"

प्रियहरि ने कहा वनमाला, और मैं ही दूसरी जगह चला जाऊँ तो **?"**

वनमाला ने जवाब दिया - "तो भी ठीक है ।सच तो यह है कि हमारा यहां साथ-साथ रहना मुश्किल है ।"

प्रियहरि के मन ने सब समझ लिया । वनमाला के उसके साथ रहने का कारण यह नहीं कि सरकारी दायित्व मे उसकी उपेक्षा हो रही थी, बल्कि यह था कि वनमाला और उसके यार के बीच प्रियहरि खुद राह का कांटा बन गया था । प्रियहरि का मन उदास हो गया । अपने मन ही मन में उसने कहा - "देखो यह वनमाला कितनी स्वार्थी है **?** उसके बिना मेरा रहना मुश्किल है, मेरे बिना उसका नहीं । क्यों क्योंकि उसने मेरा विकल्प ढूंढ़ लिया है ।

दो दिन बाद मौका मिला और प्रियहरि ने फिर वनमाला को दोपहर में अपना सहायक बना लिया। उस दिन परीक्षा में प्रश्न-पत्र कम पड़ने से भोला बाबू आसपास से उनका जुगाड़ करने बाहर गये थे। कमरे में बाधारहित वातावरण था । वनमाला के अलावा और कुछ विशेष कर्मचारी ही उनके आसपास रहं आये थे। प्रियहरि ने कुछ-कुछ जानकारियां लेनी चाहीं ।

प्रियहरि ने पूछा - "प्रश्न-पत्र पूरे हो गये ?" वनमाला फूली और प्रसन्न थी ।

वह बोली - "ठीक दो ही कम थे । मुझे पहले ही मालूम था अपनी छठी इन्द्रिय के संकेत से कि आज प्रश्नपत्र कम होने है और ठीक दो ही होंगे। देखिये वैसा ही हुआ न !"

प्रियहरि तैयारियों के बारे में और भी कुछ-कुछ पूछता जा रहा था । वनमाला ने नजाकत भरी मायूसी से जवाब दिया - "मैं तो एक दिन की हूँ । क्या मालूम फिर रहती हूँ कि नहीं ? इन लोगों से पूछिए।"

उसका इशारा वहां काम कर रहे बाबूओं की तरफ था । जाहिर है कि वह मान भरी वनमाला का प्रियहरि पर शिकायत भरा व्यंग्य था । यह विचित्र था कि खुद पशोपेश में पड़ी बेईमान होती वनमाला प्रियहरि को बेरुखी ताने देना न भूलती थी।

कुछ देर बाद फिर प्रियहरि ने पूछताछ की। प्रियहरि को नीलांजना का संदेश मिला था कि बच्चे को चोट लगने के कारण वह अस्पताल जा रही है इसलिए आने में कुछ देर हो सकती है । उसने जब जानना चाहा कि क्या नीलांजना आ गईं तो वनमाला पर विचित्र प्रक्रिया हुई।

वनमाला ने तिरछी दृष्टि और मुस्कान के साथ प्रियहरि पर व्यंग्य फेका - "नीलांजना ! साइंस ? वाह, क्या बात है !"

प्रियहरि को वनमाला के अंदर की ईर्ष्या समझ में आ गई । उसने फौरन सफाई देते बताना चाही कि दरअसल पहले से ही उसे कारण बताते हुए नीलांजना का संदेश मिल गया था इसीलिए वह अब पूछ रहा है । वहां काम कर रहे उनके सहायक जेनीफर, सुकान्त, निर्मल इन दोनों के बीच प्यार और तकरार को देखते-सुनते मजा ले रहे थे । बीच में अपने वर्ग का बाधक तत्व जब न होता तो दोनों भय की ग्रन्थि से मुक्त हो एकदम खुले होते थे । ये पल वैसे ही थे। आफिस के सहायकों से उन्हें कोई खतरा न था। प्रियहरि से वनमाला पूछ रही थी।

'ये बताइए कि आपके पढ़ने यानी रीडिंग की साइकोलाजी क्या होती है ?"

प्रियहरि अचानक आए इस प्रश्न का अर्थ न समझ पाया । कहा - "यह अलग और गंभीर समस्या है । मैं समझा नहीं कि आशय क्या है ? हम बाद में बात करेंगे ।"

इसी बहाने बाद में वनमाला प्रियहरि के अपने कमरे में पहुंची । गंभीर अकादमिक बात की जगह वनमाला की कथित रीडिंग साइकोलाजी दरअसल परीक्षा के कमरों में बैठक व्यवस्था के नक्च्चे पर त्रुटि निकालकर अपनी बुद्धिमता की छाप छोड़ने का चक्कर थी । प्रियहरि ने उसे कारण समझाना चाहा लेकिन समझने की जगह वनमाला उल्टे बहस में पड़ गई कि सभी इसे अटपटा कहते हैं। आपकी बात मेरी समझ से परे है । फिर वही नाजुक हालत बन गई थी। दोनों के बीच एक तो बात के मौके ही नहीं बनते थे और बात की नौबत बनती तो तकरार शुरू हो जाती थी। वनमाला में अक्ल की कमी पर प्रियहरि को तरस आया।

गुस्से में प्रियहरि ने कह दिया - "लोगों से मुझे कोई मतलब नहीं है । जैसा मैने कहा है, वैसा ही होगा । लोग अगर समझते नहीं तो अपनी समझ की कमी दूर करें ।"

वनमाला को ऐसा लगा कि समझ की कमी का यह वार प्रियहरि ने उसी पर किया था । वह नाराज हो गई । उठकर जाने लगी तो प्रियहरि ने महसूस किया कि कुछ गलत हो गया है । रोकने और मनाने के लिहाज से उसने पूछा - "वनमाला तुमने खाना खा लिया ?"

वनमाला ने बड़ी बेरुखी से उसे आहत करने वाली आवाज में जवाब दिया - "मेरे खाने से आपको मतलब ?"

बात बिगड़ चली थी। प्रियहरि ने अपना सर थाम लिया । बड़े तटस्थ भाव से उसके मुंह से निकला - "वनमाला, यू आर नॉट कम्युनिकेबल । प्लीज़ गो, गो अवे। प्लीज़ लीव मी अलोन ।" वनमाला चली गई ।

प्रियहरि का मन पीड़ा से भर गया । उसने सोचा कि यह कितनी अहंकार-भरी है ! वह सोचता रहा । मुझ पर अपना अधिकार समझती है, लेकिन मुझे समझने की कोशिश नहीं करती । स्वतंत्रता दिवस पर सरे आम इसने मान बताते हुए झंडा फहराने के वक्त छोटे से कार्यक्रम को संचालित करने से मना कर दिया । विराग को उसने साफ मना कर दिया कि -"नहीं-नहीं, मैं नहीं करुंगी, आप ही कर लीजिए ।"

शिक्षक-पालक योजना में सुबह के साथी के साथ सुविधा की बात कह अपने साथ दूसरों को रखने पर गुस्सा जताती टाल गई। मैगजीन के संदर्भ में दूसरों के दोष निकालती वह खुद पहल करने से बचती रही । किसी और काम मे नीलांजना के छुट्टी पर होने और उसके साथ काम लिए जाने पर मुंह फुलाकर चली गई । जब-तब वनमाला नाराजगी से मुंह सिकोड़ती और उसे दरकिनार करती रही थी। यह सब क्या था ?

प्रियहरि सोचता चला जा रहा था । वनमाला कौन है ? अगर मुझसे लगाव नही है तो नीलांजना की चर्चा आते ही वह चिढ़ती क्यों है ? वनमाला के निकलते ही मंजरी ने प्रवेश किया। वह मुस्कुरा रही थी। वनमाला के चेहरे पर खीझ मंजरी ने और मंजरी के प्रफुल्लित चेहरे की मुस्कान वनमाला ने पढ़ ली थी।

" अकेली बैठी थी। बोर हो रही थी। सोचा कि चलूं आप के पास देखूं कि क्या कर रहे हैं ? आप को डिस्टर्ब तो नहीं कर रही हूं न ! कैसा है मूड आप का ?"

प्रियहरि ने बिना छिपाये मंजरी को बता दिया कि किस तरह वनमाला चीजों को समझने की जगह हठपूर्वक बहस करती उसका और अपना खुद का मूड बिगाड़ती चली गई थी।

" वह वैसी ही है। मुझे तो यही अचरज होता है कि उससे आप की पटती कैसे है ?"-मंजरी बोली। मंजरी के आने से प्रियहरि का मूड हल्का हो चला था।

" मंजरी तुमने लंच कर लिया है ?"

" नहीं, आज मैं टिफिन लेकर आई ही नहीं "- मंजरी ने जवाब दिया।

प्रियहरि ने अपना टिफिन बाक्स उठाते हुए इशा रा किया -" आओ, अपन अंदर बैठते हैं। मेरा टिफिन शेयर करो।"

दोनों इनर चैम्बर में घुस चले। कुर्सी उस वक्त वहां एक ही थी। प्रियहरि ने चाहा था कि मंजरी आराम से बैठे। वह खुद अपने को संभल लेगा। मंजरी ने वैसा न करते हुए प्रियहरि को कुर्सी में बिठाया और खुद प्रियहरि के सामने बिन्दास पैर लटकाए टेबिल पर बैठ गई। बिल्कुल सहज ढंग से चुहल करते और एक-दूसरे में रमते दोनों ने चिर-परिचितों के अंदाज़ में साथ ही टिफिन में हिस्सा बटाया। जब इनर चैम्बर से निकले तो वनमाला का भूत दोनों के बीच से गायब हो चुका था।

प्यार की प्यास : प्यास की आग

वह एकाधिकार चाहती थी ।
यह अच्छी तरह जानती थी कि उसे कायम रखने की प्रकृति-प्रदत्त सर्वोत्तम विधि यह थी कि
प्रेमी के प्यार की प्यास को वह निरंतर कायम ही न रखे अपितु उस प्यास की आग को सुलगाती और भड़काती रहे ।

औरत की जात बड़ी चालाक होती है । यह चालाकी प्रकृति ने ही स्त्री के मनोविज्ञान में भरा हुआ है । प्रियहरि देख रहा था कि वनमाला का उदाहरण उसके सामने था। वह योग्य थी, समझदार थी, और जानती थी

कि उसकी प्रतिभा, उसकी सूझबूझ और समझदारी, उसकी औरों से बेहतर भाषा और उसकी मोती सी प्यारी लिखावट पर प्रियहरि उस पर मर मिटा था । वह जानती थी कि मानसिक तौर पर प्रियहरि ने उसे अपनी जीवन-संगिनी की तरह देखा और प्यार किया है । प्रियहरि में फिल्मी नायकों की तरह ऐसा कोई चमत्कारिक रूप-रंग या कौशल नहीं था, जो किसी को लुभा सके । थी तो केवल दुर्लभ्य विलक्षण प्रतिभा, सूझबूझ, भाषा, अभिव्यक्ति का कौशल और लेखकीय सृजनात्मकता, जो बहुआयामी थी । संसार के यावत् विषयों में उसकी रुचि थी। वह खूब पढ़ता, मनन करता और लिखता था । सब जान चुके थे कि वार्ता का कोई भी विषय हो, कोई भी प्रसंग हो, कार्य का कोई भी क्षेत्र हो, अप्रत्याशित रूप से प्रियहरि सब को अपनी जानकारियों से चमत्कृत कर देता था। संस्था में हो या बाहर - सभी जगह उसका यह व्यक्तित्व ही था जो आकर्षण का केन्द्र बन जाता था । यह सब ऐसा था जो व्यक्तित्व में रम गया था । कुछ इस तरह रम गया था कि चेहरे और आंखों में उसे पढ़ ही प्रियहरि को जान लिया जाता था । इस पर योग यह कि भावुक कोमल संवेदनाओं, सीधे मन को छू लेने वाली वाक्प्रतिभा और दार्शनिक चमक से भरी कहीं दूर झांकती आंखों की मुद्रा थी । मर्द जात से इसीलिए एक आदर भरा सम्मान उपलब्ध था और इसीलिए औरतों का मन भी प्रियहरि की ओर खिचा चला आता था। दृष्टि की सम्मोहकता से कोई भी औरत जो मुखातिब होती, चाह कर भी बच न पाती थी। अनुराधा, नेहा, मंजरी, सविता, मंजूषा, सुरंजना, फाल्गुनी, जीनत, नीलांजना, मीनाक्षी, पायल - जो थीं या पहले रहीं, कोई इससे बच न पाया था ।

प्रियहरि विचार-श्रृंखला में संबंधों को देखता डूबा हुआ था। वनमाला से उसका प्रेम विशेष परिस्थितियों में साहचर्य और एक दूसरे के अभाव को भरने समानरूप योग्यताओं, गुणों, प्रतिभा और कोमल ह्रदयों की चाहत का परिणाम था । औरों की तुलना में वनमाला इस मामले में विशिष्ट थी कि वह प्रियहरि से भी अधिक गंभीर, रूखी, अहम्मन्य और आत्मस्थ थी । प्रियहरि के सिवाय और सब - चाहे औरतें हो या मर्द - उसकी निगाह में हेय थे । स्टॉफ में केवल वह एक चित्रकार ही था जो अपनी मुद्राओं और यष्टिभंगिमा से प्रियहरि की तरह आकर्षण का केन्द्र रहा । तब भी प्रतिभा और समझ-बूझ की गंभीरता में वह अधिक गहरा और प्रौढ़ था । इसीलिए प्रियहरि की स्थिति पर उसके होने का प्रभाव नहीं पड़ता था । समवयस्कता ही एक ऐसी चीज थी जो उसे औरतों के बीच अधिक लुभाऊ बनाती थी लेकिन वह चित्रकार था कि खुद संस्था में और बाहर अपनी अनुरूपता की नफीस पसंद ढूढ़ता - फिरता था । जीनत का वह मुरीद था और उसके जाने के बाद अनुराधा पर वह फिदा था । जिस तरह प्रियहरि ने वनमाला के लिए सब को साथ रखते हुए भी छोड़ रखा था, उसी तरह अनुराधा के लिए औरों के साथ उस चित्रकार का भी रुख था ।

वनमाला को यह पसंद नहीं था कि प्रियहरि औरों के उसी तरह करीब दिखाई पड़े जैसा उसे अपने साथ वह रहा आया था । उसे इस बात की भयंकर चिढ़ थी कि कोई औरत उससे प्रियहरि की तारीफ करे या किसी को प्रियहरि के पास आने की शह उसे मिले । वह एकाधिकार चाहती थी और यह अच्छी तरह जानती थी कि उसे कायम रखने की प्रकृति-प्रदत्त सर्वोत्तम विधि यह थी कि प्रेमी के प्यार की प्यास को वह निरंतर कायम ही न रखे अपितु उस प्यास की आग को सुलगाती और भड़काती रहे । उसे अच्छी तरह मालूम था कि मर्द के प्यार का दिल और दिमांग अंततः औरत के जंघाओं के बीच की संकरी गुफा में धंसा होता है । जब तक मर्द वहां प्रवेश नहीं करता तभी तक उसकी 'आह', 'ऊह' और 'हाय' होती है। उस संकरी गुफा के परिचित प्रदेश में प्रवेश के बाद मर्द की गुलामी औरत की गुलामी में तब्दील हो जाती है। इसीलिए सारी निकटता के बावजूद प्रियहरि से खेलती वनमाला उसकी सुलगती चाहत की आंच में नहाती प्रसन्नता भरे गर्व से अपनी अंगुलियों पर उसे नचा रही थी ।

ऐसा नहीं है कि चाहत की आंच में उस तरह नहाती वनमाला खुद अप्रभावित रह पाती है । पर आकांक्षाओं को दबाए औरत की मजबूरी को सहेजते वैसा वह कर नहीं पाती। तब भी अपनी खुली आंखों में सपनों को लहराती वह प्यार से निहारती उस प्यास के बिम्ब को कुरेदती तसल्ली देती है कि मेरी सखी धीरज रखो । तुम्हारे प्रिय के प्रेम को जब मैं उस चरम आतुरता तक पहुंचा दूंगी कि वह पागल होकर तुम्हारा गुलाम

हो जाए, तब उसे अपनी गहन गुफा में कसकर बांधने और आत्मसात करने में जो आनंद मिलेगा वह अभूतपूर्व होगा ।

नारी-चातुर्य की कुटिलता वनमाला में अभूतपूर्व है। वह जानती है कि खजाने को बनाए रखकर अपने प्रिय को उस हद तक तरसाने में उसकी सफलता है जब वह अपनी ही आंच में तप कर भस्म न हो जाए । प्रियहरि देख रहा था कि वनमाला के विपरीत खुद उसमें अधीरता की वह विकलता थी, जो जब-तब उसे वनमाला के नखरों से खफा कर बेजार बना देती थी ।

ठीक ऐसी ही आकांक्षाएं उस नवागन्तुक में पनप रही थी जो इन दिनों वनमाला और प्रियहरि के बीच प्रवेश कर रहा था । उसकी ईर्ष्या संभवतः वर्षों से भड़क रही थी । मूल में यह था कि वनमाला उसकी सहकर्मिणी होकर भी उसकी उपेक्षा करती इस प्रियहरि के साथ जा बंधी थी । पिछला सारा षड़यंत्र उसी का रचा था प्रियहरि पर से वनमाला का विश्वास डिगाने में उसकी हिकमतें और कुटिल तरकीबें कामयाब होती जा रही थी। उसका हित इसी में था कि वनमाला और प्रियहरि के बीच दरार पैदा कर वह खुद मरहम लगाता वनमाला के मन को सहलाए । उसे कल्पना न थी कि दोनों के बीच अनदेखेपन की हद तक नफरत पैदा करने की सफलता के बाद वनमाला के साथ प्रियहरि की क्षणों के लिए भी होती एकांतिक मुलाकातें और बातें फिर उन भावनाओं को रच देंगी, जो लंबी अवधि के दौरान उस व्यक्ति के सारे के सारे किए-कराये पर पानी फेर देंगी । प्यार की संभावना में तकरार के बाद वह पूरा दिन प्रियहरि के लिए सोच में बीत गया ।

दिन नहीं रात नहीं सुब्ह नहीं शाम नहीं
रह गई एक 'नहीं' हां का कोई काम नहीं - अमीर

उस खास एक दिन वनमाला के इस नए शुभचिंतक को प्रियहरि ने उसी के अनुरोध पर छुट्टी दे दी थी। वह सुबह कहीं बाहर जाना चाहता था । प्रियहरि को यह देख आश्चर्य हुआ कि उस दिन वह जाने के बजाय बगैर किसी काम सुबह से ही आकर दोपहर तक वहां जमा रहा। उस रोज सुबह के बाद वनमाला ने प्रियहरि के अपने कमरे में प्रवेश किया ।

प्रियहरि से वनमाला ने कहा -" कुछ कहना चाहती हूं, कहूं या नहीं **?"**

प्रियहरि ने उसे बिठाया और पूछा कि बात क्या है **?** वनमाला ने बताया कि एक दिन पहले उसकी तैयार की हुई रिपोर्ट की बात उठाकर विराग ने उसे बहुत बुरा-भला कहा है । प्रियहरि समझ गया कि मामला आंकड़ों से संबंधित उस रिपोर्ट का था जिसे प्रियहरि ने उसे तैयार करने कहा था। वनमाला ने बताया कि विराग उससे झगड़ा करता इस बात के लिए डांट रहा था वनमाला ने प्रियहरि से यह क्यों कहा कि रिपोर्ट तैयार कर उसने विराग को सौंप दिया है ।

वनमाला बहुत गमगीन थी। उसने कहा - "आप चाहेंगे तो आपके साथ मैं घंटों बैठे काम कर लूंगी। सारा काम मैं कर दूंगी ,लेकिन मैगजीन से मेरा नाम हटा दीजिए । मेरी विराग के साथ पट नहीं पाएगी।"

प्रियहरि ने सारी बातें सुनी और कहा - "छोड़ो यह सब। मेरे पास कुछ और काम है। कर सकोगी **?"** वनमाला के पूछने पर उसने बताया कि वह चाहता है कि उसकी बंगला रचनाएं वनमाला पढ़े। उन्हें जांचे और सुधार दे । वनमाला का जवाब था -"मुझे इतनी ज्यादा बंगला नहीं आती कि मैं उसमें लिखी कविताएं जांच और सुधार सकूं ।"

वनमाला का रवैया प्रियहरि की समझ से बाहर था उसने उससे कहा - "वनमाला, यू आलवेज हर्ट मी । एक भी अवसर मुझे याद नहीं, जब तुमने मुझसे ठीक से बात की हो या अच्छा व्यवहार किया हो । बताओ क्यों **?"**

"मैंने तो कभी ऐसा नहीं किया । बताइए कब किया है **?"** वनमाला बोली

प्रियहरि ने पिछली सारी वे घटनाएं और शिकायतें उससे कह दीं,जो उसके चित्त में थीं। वनमाला ने अनमनेपन से सुना और कहा कि - "आपको तो विराग और उसकी श्रीमती के अलावा मेरे साथ रखने कोई सूझता ही नहीं। आपने उसे स्वतंत्रता दिवस पर विशेष काम दिया, मुझे तो नहीं ? तो मैं उसके बुलावे पर क्यों आती ?"

इसी तरह वह दीगर-दीगर बातों में अपने विभाग के जोशीजी वगैरह की खोट बताती रही। उसने कहा -"वे दिलचस्पी लेते नहीं। उनसे कुछ कहो, योजनाएं बताओ तो कान ढकते कहने लगते हैं कि मैंने कुछ सुना नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम।"

वनमाला के तर्क प्रियहरि के समझ से परे हैं। फिर भी उसे कुछ-कुछ समझ में आ रहा था। वह समझ चुका था कि मैगजीन से नाम अलग करने का अनुरोध और उसके लिए बनाए बहाने के पीछे क्या रहस्य था । वह समझ गया कि सारे कामों को टालने और दूसरों के खोट निकालते वनमाला के बहानों में कौन सा मनोविज्ञान काम कर रहा था । सच्चाई यह थी कि वनमाला संकोच में उस नवागंतुक का नाम जुबान पर लाने से बच रही थी, जिसने प्रियहरि से उसे अलग-थलग करने दबाव डालते ऐसे बहाने बनाने पर मजबूर किया था। यह साफ था कि वनमाला के मन की धुरी खिसककर कहीं और अपना केन्द्र बना रही थी । उस नवागन्तुक को टाल पाने की असमर्थता उसे वे चालाकियां सिखा रही थी जिनसे वह प्रियहरि को टाल सके। प्रियहरि ने कुछ और कहना उचित न समझा और बात वहीं खत्म हो गई । वनमाला की क्रूरता से उसे बहुत चोट पहुंची थी । वनमाला के जाने के बाद उसने विराग को बुलाकर पूछा कि वनमाला के रवैये और मनःस्थिति के बारे में उसकी दोस्ताना राय क्या है ? विराग ने पूछा कि आखिर वे इस संदर्भ में वह क्या जानना चाहते हैं ।

"सब कुछ । व्यक्तिगत, ऑफिसियल, और सारा कुछ " -प्रियहरि ने कहा उसने कल की घटना, पूर्व की घटनाएं वनमाला का व्यवहार, उसके वैचित्र्य भरे चरित्र के बारे में अपनी सारी आशंकाएं, अनुभव बतला दिये ।

विराग ने कहा कि वनमाला एक जटिल चरित्र है। किसी की भी राय वनमाला के बारे में अच्छी नहीं है । वह अहम्मन्य है और डामिनेट करना चाहती । उसने राय दी कि प्रियहरि को अब फौरन उसे इसी बहाने मैगजीन की कमेटी से बाहर कर देना चाहिए। उसने कहा कि वह खुद सब कुछ कर लेगा - चाहे दिन-रात क्यों न बैठना पड़े । उसका कहना था कि उसके बगैर ही मैगजीन हम इतनी शानदार निकालेंगे कि वह देखती रहें । विराग ने बताया कि उन्हें देखकर मुंह बिचकाना, चले जाना, बात न करना उसकी आदत है । उसका कहना था कि वनमाला पर विश्वास न किया जाए । उसने हर एक के साथ विश्वासघात किया है । भोला बाबू के बारे में भी उसने न जाने क्या-क्या बातें कही हैं। उसकी आदत ही अपना काम निकालने और पीछे विश्वासघात करने की है। विराग की राय थी कि वह फौरन वनमाला को हटाए। खुशा मद करने से वह और अकड़ती है । उसे हटा दीजिए। फिर देखिए कि वह कैसे राह पर आती है ?

विराग से बात करके प्रियहरि का मन हल्का हुआ। दोनों में यह राय बनी कि उसकी जगह मंजरी को ले लिया जाय । विराग के जाने के बाद वनमाला फिर प्रियहरि के पास पहुंची थी। प्रियहरि के यह पूछने पर कि आखिर मैगजीन के मामले में वह क्या कर रही है, वनमाला खुद यह पूछने लगी कि बताइए करना क्या है ? फर्क केवल इतना था कि वह विराग के साथ के बजाय प्रियहरि के साथ बैठने की बात करने लगी। उसकी जिद थी कि विराग को हटा दिया जाये तो सारा-कुछ वह खुद संभाल लेगी। इस बार फिर वह अपने नए मनुहार के साथ आई थी। उसका कहना था कि दो-तीन रोज उसे दीगर कामों से हटा दिया जाय तो वह प्रियहरि के साथ दिन भर बैठ जायेगी ।

जब यह बात प्रियहरि ने विराग को बुलाकर बताई तो उसने कहा कि आखिर इसी तरह वह रास्ते पर आती है । इधर अचानक बदले वनमाला के रवैये से प्रियहरि पशोपेश में पड़ गया था। आखिर अचानक दो-तीन दिन की राहत और उसके साथ बैठने का नरम रवैया इस औरत में कहां से आ गया था ? उसने सोचा कि अवश्य इसके पीछे कोई रहस्य था ।

यहां औरतें भी इन संबंधों पर चर्चाएं करती हैं

प्रियहरि की बात सुनकर वनमाला ने मान से मुंह बनाया और एक वितृष्ण हंसी हंसते कहा -
"चाहत । मालूम है मुझे कि आप मुझे कितना चाहते हैं । अगर वैसा होता तो आप मेरा ध्यान रखते ।
मजबूरियों के भय से मैने आपके साथ काम करने से मना कर दिया तो उसका बदला आपने मुझसे ले लिया ।"

कुछ ही दिनों में प्रियहरि ने पाया कि वनमाला का रुख अचानक बदल गया है । न वह आंख चुराती है, न बात करने से कोई परहेज है । और तो और वह खुद भी साधिकार अनेक प्रश्न करती है, अधिकारपूर्वक प्रियहरि से व्यक्तिगत शिकायतें करती है, और प्रियहरि पर अपनी उपेक्षा का आरोप लगाती है ।

सुबह ही वनमाला की ड्यूटी थी। उसकी बेरुखी के कारण पत्रिका का काम प्रियहरि ने मंजरी से दोपहर बाद तक कराया था । मंजरी रुकी रही थी । सुबह जब वनमाला से उसने रुकने कहा था तो जवाब मिल गया कि आप तो साथ काम करने कहते भी हैं और काम में मुझे लगा भी देते है। आप कहते हैं कि मुझे छोड़ देंगें लेकिन वैसा करते नहीं । प्रियहरि ने उसके भोलेपन पर विश्वास करते हुए जवाब दिया था कि अभी ज्यादा काम है। केवल तुम्हें छोड़ दिया तो दूसरे लोग कुछ-कुछ कहने लगेंगे । वनमाला ने ताना दिया - "रहने दीजिए, आप यूं ही कह देते हैं ।"

वनमाला से सुबह उसके काम के बीच ही प्रियहरि ने बात की थी। बहाना पत्रिका का काम और उसके लिए लेख लिखना था। वनमाला ने बताया कि उसके लेख की एक ही प्रति है। उसकी नकल नहीं है। फिर भी उसे ही वह रख लेगी । रचनात्मक साहित्य का अभाव बताते हुए प्रियहरि ने उससे कहानी जैसी रचना देने का आग्रह किया था। वह बोली - "हां, लिख तो सकती हूं । लेकिन जो जाना है, उसी के बारे में लिखूंगी । मेरे लिखे से आप लोगों को फिर बुरा लग जायेगा ।" बात करते-करते आगे वह बोल उठी - "यहां ऐसे-ऐसे लोग हैं कि मैं आपको क्या बताऊँ **?**" उसने कहा - "आप हमारी कक्षाएं भी सब के साथ दोपहर में लगाइए । सुबह हम ही लोग रहते है तो मुझे अच्छा नहीं लगता ।"

आगे वह यह भी कह गई कि - "कपबोर्ड अब सुधर गया है, उसकी चाबी मुझे दिलवाइए । मुझे किसी के साथ आलमारी शेयर करना बिल्कुल पसंद नहीं है । मेरे लिए कपबोर्ड काफी है। मैं अपना सारा सामान आलमारी से निकाल लेना चाहती हूँ।"

बातचीत का यह आखिरी हिस्सा चौंकाने वाला था। प्रियहरि के मन ने कहा - "इस चर्चा प्रसंग का संबंध जरूर उस व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में भी है, जो इस रमणी पर लगभग डोरे डाल चुका है । यह बात अलग है कि हाल की किसी घटना के कारण दोनों में खटपट हुई हो और वनमाला उससे कुछ बेरुख और बेचैन हो गई है।"

बात प्रियहरि की समझ में आ रही थी । वनमाला प्यार-मोहब्बत की सारी बातें कबूल कर लेती थी लेकिन पवित्र-बंधन का अपना ताला मजबूत रखती दिखाई पड़ती थी। उसके साथ यह सब गुजर चुका था । वनमाला का नया यार जिसकी आदत पिछले सालों से अपनी बीबी और बच्चों को गर्मियों में खिसका देने की है अवश्य इस दौरान अपने सूने घर को गुलजार करने की फिराक में होगा । यार के ऐसे इशा रों पर यह भड़क गई होगी। इसीलिए वह उससे नाराज थी । उसे इस हद तक जाना पसंद नहीं था । यही वनमाला की शिकायत का कारण होना चाहिए । इसके यार को यह गुमान भी नहीं होगा कि वनमाला उसके विरूद्ध उसी शैली में प्रियहरि से शिकायत कर रही है जिसमें वह पहले खुद प्रियहरि के खिलाफ नाराजगी से किया करती थी । इस वनमाला पर फिर भी प्रियहरि को कोई भरोसा न था। उसने सोचा - "त्रियाचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः।" हो सकता है नए यार की चुगली भी इस वनमाला का कौशल हो जिससे प्रियहरि को वह तसल्ली दिलाना चाहती हो कि उस नए व्यक्ति से इसका कोई संबंध नहीं है ।

उस दिन के बाद वनमाला से रूबरू होने का मौका फिर तीन रोज बाद मिला। दोपहर उसकी ड्यूटी थी । प्रियहरि ने उसे बुलाकर बात छेड़ी । उसने कहा - "तुम समय कब निकालोगी **?** पिछले दिनों

तो मंजरी को रोककर मैंने तीन घंटे काम करा लिया और तुम हो कि हमेशा छुट्टी करने की बात करकर टाल जाती हो ।" मंजरी का नाम सुन वनमाला ने हमेशा की तरह मुंह बनाया । उसने प्रियहरि से कहा - "आप कहते भर हैं । सच तो यह है कि आप खुद मुझसे काम कराना नहीं चाहते । ऐसा है तो मैं क्या करूं ? आपने खुद मुझे मुक्त करने की बात कही और आज तक ध्यान नहीं रखा । आज भी मैं सुबह-सुबह काम पर हूँ।

इन दिनों वनमाला और प्रियहरि में आमने-सामने निगाह ब निगाह बिना किसी रुकावट के खुलकर बात हो रही है । प्रियहरि वनमाला को स्मरण करा रहा था कि उसने तो हमेशा वनमाला को ही चाहा है, केवल इसलिए कि वह वनमाला है । वह कह रहा था - "मैने तो हमेशा तुम्हें ही सब से ऊपर रखना चाहा है लेकिन न जाने क्यों तुम्हीं ने हमेशा मुझे चोट पहुंचाई है । मुंह फेर कर तुम ही चली जाती थीं। तुमने कभी यह न सोचा कि उससे मुझ पर क्या गुजरती होगी।" उसने वनमाला से पूछा - "वनमाला, अच्छी तरह याद करो और एक भी अवसर बताओ जब तुमने मुझसे ठीक व्यवहार किया हो, चोट न पहुंचाई हो ।"

वनमाला ऐसे अवसरों पर मासूमियत से यूं भोली बन जाती कि वह जानती ही न थी कि उसने कभी कुछ कहा है । वह बोली -"कहां, कब मैंने ऐसा किया है ?" हमेशा की तरह इस बार भी प्रियहरि ने पूरी सूची उसे गिना दी । वनमाला ने संकोच से कहा - "नहीं, चोट पहुंचाने नहीं, मैं जान बूझकर वैसा करती थी । वैसा करने में न मुझे आपके प्रति लगाव था, और न नफरत । आप से मैं केवल दूर रहना चाहती थी ।"

यह पूछने पर कि वैसा क्यों ? वनमाला ने बड़ी मासूमियत से कहा कि कुछ-कुछ बातें मुझे बेचैन कर जाती हैं ।इसीलिए मैं उन्हें पसंद नहीं करती थी। बस केवल इतनी सी बात पर ।"

दोनों के बीच पल भर चुप्पी रही । वनमाला फिर बोली - "प्रियहरि आप में कोई भी बुराई नहीं, आप बहुत अच्छे हैं। इतना अच्छा कामकाज और शासन प्रशासन। बस वह एक आदत छोड़ दीजिए ।"

प्रियहरि समझ गया । उसने कहा - "वनमाला, तुम अच्छी तरह मुझे जानती हो । अगर वह बुराई है तो बुराई ही सही । मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और करता रहूंगा । इतने साल हो गये - बारह साल, फिर भी तुमने मुझे नहीं समझा ।"

वनमाला बोली - "आपको मालूम है या नहीं कि यहां औरतें भी इन संबंधों पर चर्चाएं करती हैं । मुझे सुनकर अच्छा नहीं लगता।"

प्रियहरि सोच रहा था कि "वह एक आदत" और "इस बार" यानी क्या ? और-और रमणियों को लुभाना या वनमाला को लुभाना ? उसने सोचा कि वनमाला को अगर प्यार की उसकी बातों से शिकायत होती तो जान-बूझकर ही उसके पास वह घुसी क्यों चली आती है ? नहीं, वनमाला को उससे नही, बल्कि इससे बुरा लगता था कि औरतें इकठ्ठा होतीं तो हर एक को इस बात की तकलीफ होती कि प्रियहरि तो उसके निकट दिखाई पड़ता है लेकिन कह सब वैसा ही रही हैं। तब प्रियहरि की चुगली दूसरों से सुनकर वनमाला को प्रियहरि की ऐसी कमजोरी अपने प्रति उसकी बेवफाई लगती थी ।

प्रियहरि ने उससे पूछा - "बताओ किसने किया, किन ने कहा और क्या कहा?" आगे वह बोला कि मुझसे तो किसी ने ऐसा नहीं कहा और जिन की बातें तुम कर रही हो वे सब यहां आती और साथ गप्पें लड़ाती हैं । वनमाला का संदेह वह मिटाना चाहता था लेकिन उसे लेकिन अफसोस था कि वनमाला के मन से वह मिटता ही न था। उसने वनमाला की आंखों में झांककर कहा - "वनमाला, मैंने आज तक तुम्हें और केवल तुम्हें ही चाहा है, लेकिन मेरा दुर्भाग्य कि और कोई नहीं, तुम ही मुझसे झगड़ा करती हो ।"

प्रियहरि की बात सुनकर वनमाला ने मान से मुंह बनाया और एक वितृष्ण हंसी हंसते कहा - "चाहत । मालूम है मुझे कि आप मुझे कितना चाहते हैं । अगर वैसा होता तो आप मेरा ध्यान रखते । मजबूरियों के भय से मैने आपके साथ काम करने से मना कर दिया तो उसका बदला आपने मुझसे ले लिया ।"

वह पूछ रही थी - "बताइए कि क्या आपकी वे चहेतियां क्या मुझसे ज्यादा योग्य है ? क्या मैंने आपका साथ परीक्षा में, पत्रिका में, और अन्य सभी मामलों में आज तक नहीं दिया है ? मैने महीनों आपके साथ देर शाम तक रुककर काम किया है, लेकिन न जाने क्यों आप ने हमेशा मेरी ही उपेक्षा की है ।"

वनमाला की मायूस शिकायत के रहस्य का खुलासा प्रियहरि पर हो चुका था। वनमाला का मन इस बात से आहत था कि प्रियहरि उससे प्यार की बातें करता था, उसका दिवाना था तो दूसरी रमणियों से उसके संबंधों की बातें क्यों सुनने मिलती हैं ? जाहिर था कि दीगर कामनियां वनमाला से विश्वास के क्षणों में होड़ लगाती थीं। यह उबल जाती थी कि रोमांस करना तो प्रियहरि की आदत थी। यह कि वह सभी का प्यार बटोर लेना चाहता था । प्रियहरि वनमाला को यह समझाना चाहता था कि प्यार तो उसे केवल वनमाला से ही है । यह तो खुद वनमाला के अनिश्चय का भटकाव, उसी की बेरुखी और जब-तब नफरत के प्रदर्शन की छाया ही थी जो प्रियहरि को लाचार और विचलित कर देते हैं । अगर वनमाला में वफादारी हो तो प्रियहरि को भटकना ही क्यों पड़े ?

प्रियहरि ने यही बात वनमाला से कही। उसने समझाया - "दूसरों से मेरे वैसे संबंध नहीं है, जैसे तुमसे हैं । मैने तुम्हें हमेशा याद किया, पास रखना चाहा लेकिन तुम्हीं ने जाने क्यों उपेक्षा की है ।"

हमेशा की तरह दोनों के बीच यह मुलाकात भी संदेह और ईर्ष्या के चलते एक-दूसरे पर आरोप और एक दूसरे से शिकायतों में बदली जा रही थी। वनमाला ने प्रियहरि के इस आरोप पर चिढ़ कर कहा - "हां-हां, मुझे अच्छी तरह मालूम है कि मुझे आप चाहते हैं। इसीलिए मेरे साथ काम में आप अपनी चहेतियों और चहेतों नीलांजना, मंजरी, विराग और उसकी बीबी को रख देते हैं। इनके अलावा आपके कोई नाम नहीं सूझता । इसीलिए मैं भी भागती हूँ।"

प्रियहरि सोच रहा था। यह अजीब बात थी कि उसके विश्वास के व्यक्तियों से वनमाला की दुश्मनी थी और वह उस "के अलावा" की ओर हमेशा इशारे करती थी, जो खुद और जिसकी शह पर यह वनमाला प्रियहरि की जड़ें काट रही थी ।

प्रियहरि ने फिर एक बार कोशिश की । उसने यह कह कर वनमाला को संतुष्ट करना चाहा कि इन्हें तो वह इसलिए रखता है कि ये प्रियहरि और वनमाला दोनों के शुभचिंतक थे और इनसे उनके संबंधों में कोई बाधा नहीं थी । वह बात सच भी थी लेकिन वनमाला के मन में अविश्वास और संदेह के बीज पक्की तरह जम चुके थे । हमेशा की तरह दोनों के बीच बनती-बनती बात फिर बिगड़ चली । वनमाला निःशब्द और निरपेक्ष समर्पण चाहती थी । प्रियहरि की चालाकी भरी सफाई से वह नाराज हो उठी थी । चिढ़कर उसने ताना दिया - "शुभचिंतक ! हुं: । मुझे अच्छी तरह मालूम है। कोई शुभचिंतक नहीं । ठीक है, अगर वो बड़े शुभचिंतक हैं तो उन्हीं से काम कराइए । आप तो बुलाइए मंजरी को और करा लीजिए काम उससे ।"

बात की आखिर-आखिर में सत्यजित प्रियहरि के कमरे में घुस आया था । पहले की बातें तो उसने नहीं सुनीं लेकिन उसे आता देख गुस्से में भरी वनमाला के उठने और उसकी अंतिम बात को उसने अवश्य लक्ष्य किया होगा।

वनमाला के वे अंतिम शब्द थे -"ठीक है, मैं कब कहती हूं कि मैं अच्छी हूं । दे आर बेटर देन मी। आप तो उन्हीं को रखिए ।" तब जैसे सत्यजित को वह सफाई दे रही हो, संकोच से वह कहती गई थी - "सत्यजितजी, आप यह न समझिएगा कि मैं अपने कमरे से भागकर यहां प्रियहरि के पास आ बैठी हूँ । इन्होंने ही मुझे बुलाया था, इसलिए मैं आई थी ।"

वनमाला का सारा व्यवहार प्रियहरि को विचित्र लगा । उसका मन स्तब्ध था । उसने सोचा - देखो तो कि जिसके लिए मैं प्राण देता हूँ वह वनमाला कितनी घमंडी, अड़ियल, कटु और अपनी शर्तों पर सहयोग और अधिकार कामना रखती है । प्रियहरि को दुख हुआ कि वनमाला को उसकी अपनी पीड़ाएं चुभती है लेकिन उसकी पीड़ाएं वह खुद क्यों नहीं समझती ?

सरला नीलांजना : कुटिला वनमाला

नीलांजना न तो प्रियहरि से लड़ती है, और न वनमाला से ।

मौन सहिष्णुता ही उसकी मुद्रा है । उसके मन पर क्या सचमुच कुछ न गुजरता होगा ?
क्या उसका मन सन्यासिनी का है, जो सब झेल जाती है ?

एक दोपहर का दिलचस्प प्रसंग । दोपहर बाद वनमाला का नया प्रेमी अपनी स्कूटर में दोबारा कालेज की ओर आता दिखाई पड़ा। पहले व्यवस्था के कमरे में, फिर कार्यालय में ताक-झांक कर गया । वनमाला तब तक अपने काम पर नहीं आई थी । जब दूसरे सारे लोग काम पर अपने-अपने कमरों में चले गये और तय हो गया कि वह अब तक नहीं पहुंची थी तब हड़बड़ी में अपनी गाड़ी उठा वह कालेज के कैम्पस गेट के बाहर सड़क पर रुका और वहां पहुंचती, रुकती मिनीडोर की ओर नजरें दौड़ाते उतरती हुई सवारियों में अपनी सवारी तलाशता रहा। अचानक वनमाला की पुरानी फियेट कार उसके पति के साथ पहुंचती देखकर यह अपनी स्कूटर स्टार्ट कर अपने घर की ओर भाग खड़ा हुआ। पच्चीस कदम दौड़ाकर वह फिर वापस मुड़ा और कुछ झिझकते हुए कालेज की तरफ घुस चला। वनमाला को छोड़कर उसका आदमी कार में ही लौट चला था । गेट से कुछ अंदर अचानक आमने-सामने पड़ने से पशोपेश में स्कूटर रुका और कार भी रुकी । कार और स्कूटर पर सवार ने अपनी-अपनी जगह से कुछ औपचारिकता निभाई । अपने कमरे के बाहर खड़ा प्रियहरि यह नजारा देख रहा था। वनमाला के इस यार को आता देख वह अंदर चला गया। फिर उसे नहीं मालूम हुआ कि इसने वनमाला से मुलाकात की या नहीं ? कुछ ही देर बाद प्रियहरि जब अपने कमरे से निकला तो स्कूटर सहित वह यार विपुल गायब हो चुका था ।

परीक्षाएं जोरों पर चल रही थीं । करीब एक हफ्ते बाद अप्रैल के महीने की यह बात है। उस रोज सुबह विपुल किसी एक दिन की दो पालियों में से एक का काम काटने का अनुरोध लेकर प्रियहरि से मिला था । विपुल को शाम की ड्यूटी कटवानी थी ।

प्रियहरि ने कहा था - "अष्टमी की पूजा करने बाहर जाना ही है तो मैं दोपहर की ड्यूटी काट देता हूँ। शाम तक तो लौट भी सकते हो । काफी समय मिल जायेगा ।"

विपुल चाहता था कि शाम की जगह उसे सुबह काम मिल जाए और दोपहर के काम से भी हटा दिया जाए । प्रियहरि ने लक्ष्य किया कि यह विपुल सुबह के काम के लिए इसलिए आग्रह कर रहा था कि वनमाला सुबह ही आने वाली थी ।

यह तय था कि कुछ है । दूसरे दिन भी प्रियहरि ने पाया कि विपुल दोपहर बाद देर तक इंतजार करता बैठा था। वनमाला पहले की तरह ही बहुत देर से यानी ठीक काम शुरू होने के वक्त पहुंची। प्रियहरि की समझ में आ गया कि इस विपुल से वनमाला की कुछ खटपट है । इसीलिए वनमाला जानबूझकर उससे बचती दिखाई पड़ रही थी । इधर विपुल था कि वनमाला से बात करने, उसे मनाने के चक्कर घूम रहा था । ऐसा लगा कि यह चालाक आदमी घर के सूनेपन को वनमाला से भरने की फिराक में था और वनमाला उसकी चालाकी से बचना चाहती थी । उस दिन विपुल आकर, वनमाला से मिलकर ही टला। भले बात दो मिनट थी और केन्द्रीय कक्ष में ही क्यों न हुई हो - कुछ था जरूर। प्रियहरि के प्रति वनमाला के तेवर वैसे ही थे - बेरुखेपन के, हालांकि मौज में आकर काम के बहाने वनमाला एकाध बार कभी-कभी सामने पड़ जाती है। प्रियहरि को लगा कि उसके प्रति वनमाला के मन की गांठ अब खुल सकती है । शाम का वक्त था। लोग उस दिन का अपना काम खत्म कर परीक्षा की कापियां जमा करा रहे थे। प्रियहरि और उसकी सहायिका की तरह मौजूद नीला उन कापियों को एकत्र कर रहे थे। इसी वक्त वनमाला ने अप्रत्याशित रूप से कापियां जमा कराते हुए भरी भीड़ के बीच प्रियहरि पर परोक्ष व्यंग्य करते हुए लेकिन मिसेस टामस जेनीफर की आंखों में झांकते हुए एक ताने भरा फिकरा कसा -

"और जेनीफर मैडम क्या हालचाल हैं ?"

वनमाला की आंखों में वितृष्णा और मुस्कुराहट में कुटिलता थी। उसके चेहरे पर विद्रूप उभर आया था । और नीलांजना ? प्रियहरि की सहायता करती नीलांजना वनमाला को सामने देखकर चेहरा उतारे अपना काम कर रही थी । समन्दर की तरह गहरी काली पुतलियों के साथ बड़ी-बड़ी सुन्दर आंखों वाली मासूम चेहरा नीलांजना पर

उस क्षण प्रियहरि का मन प्यार से भर आया। वह समझ गया था कि वनमाला के वचनों के तीर के निशाने पर केवल वह या साथ बैठी नीलांजना नहीं बल्कि वह जोड़ी थी, जो उन दोनों को मिलाकर बनती थी।

वनमाला की ईर्ष्या नीलांजना समझती है । वह जानती है कि वनमाला से ही प्रियहरि के मन को चैन पहुंचता है । यह भी कि नीलांजना के पास जाते-जाते या नीलांजना के प्रियहरि के पास आते-आते वनमाला ही उससे प्रियहरि को छीन ले जाती है। फिर भी एक क्षण की संकोच भरी पीड़ा के अलावा उसमें कुछ नहीं उभरता। न तो नीलांजना न तो प्रियहरि से लड़ती है और न वनमाला से । मौन सहिष्णुता ही उसकी मुद्रा है । उसके मन पर क्या सचमुच कुछ न गुजरता होगा ? क्या उसका मन सन्यासिनी का है, जो सब झेल जाती है ? नहीं, प्रियहरि अनुभव करता है कि उसका मन भी विषाद की अथाह पीड़ा से भर उठता होगा । नीलांजना से प्रियहरि की आंखें क्षणांश को मिली थीं । उस समय करुणा से प्रियहरि का हृदय भर उठा था। नीलांजना की लाचार उदास दृष्टि ने उसके मन को पिघला दिया था। उमड़ते प्यार के साथ उस समय प्रियहरि की इच्छा हुई कि फौरन भोली मायूस नीलांजना को अपने अंक में भरकर उसकी पीठ को जकड़ में बांध हथेली के मृदुल स्पर्श से सहलाता धीरज बंधाए। वनमाला के सामने ही नीलांजना के होठों पर वह चुम्बनों झड़ी लगा दे ताकि वनमाला की कुटिलता धधककर और जल उठे । प्रियहरि चाह रहा था कि अकारण उससे मुंह फेरने की वनमाला की मुद्रा के पीछे वह सचमुच का कारण ही पैदा कर दे। जाहिर है कि अब तब प्रतीक्षा करती वनमाला का मन टूट गया था। उसे उम्मीद थी कि प्रियहरि से जुड़ रहे रिश्तों और उससे हुई बातों के बाद प्रियहरि नीलांजना को हटा देगा और वह यानी वनमाला खुद उसकी जगह ले लेगी । लेकिन ऐसा हुआ नहीं था । वनमाला का मन नीलांजना के प्रति भयानक ईर्ष्या और रोष से भरा हुआ था। नीलांजना उसकी राह का कांटा बन गई थी उससे वनमाला को वैसी ही ईर्ष्या थी जैसी वनमाला के नए यार विपुल को करीब देखकर प्रियहरि को होती थी ।

अगली सुबह मंजरी ने मुस्कुराते हुए प्रवेश किया और हालचाल पूछती प्रियहरि के पास बैठ गई। आज न जाने क्या था कि उसने अचानक वनमाला का जिक्र आते ही उसकी तारीफ छेड़ दी जबकि पहले कभी वैसा न हुआ था। उसकी प्रतिभा उसके गुण का बखान करती हुई वह कहने लगी थी कि हर तरह से यानी बोलने में, नेतृत्व में, अपने काम में वनमाला माहिर भी है और सीनियर भी। आशय यह कि मंजरी से वनमाला की और वनमाला की मंजरी से जो शिकायतें कल तक थीं वे गुम हो गई प्रतीत होती थीं । यह भी हो सकता है कि वनमाला के प्रति प्रियहरि के रुख की टोह लेने मंजरी ने ऐसा किया हो। अब वनमाला के निशाने पर शायद केवल नीलांजना ही रह गई थी । प्रियहरि को मंजरी के मुंह से वनमाला की तारीफ अच्छी लगी जैसे उसकी जुबान से वह ही बोल रहा हो । लेकिन फिर वनमाला का अहंकार ?

प्रियहरि ने मंजरी की ओर देखकर पलभर यह अंदाज लगाने की कोशिश की कि आखिर उसके मन में है क्या ? उसने हंसकर सामने मुस्कुराती मंजरी से कहा - "अच्छा ? चलो भागो तो यहां से ।"

ऐसा लगा जैसे कि मंजरी वनमाला के प्रति प्रियहरि की उपेक्षा के विरूद्व उसे छेड़ती वनमाला की सिफारिश कर रही थी । प्रियहरि सोच रहा था। प्रियहरि की बेरुखी से अपने आहत मन को वनमाला ने मंजरी के सामने पिछले दिनों में कभी खोलकर रख दिया होगा। मंजरी की वैसी सहानुभूति क्या उस तक पहुंचाया गया वनमाला का संदेश ही था।

मैगजीन के प्रकाशन में देर हो रही थी । सारी सामग्री चयनित, सम्पादित रूप में सामने आ ही नहीं रही थी जबकि प्रियहरि उसके लिए चिंतित था। उस दोपहर विराग, कामथ और फिर वनमाला - प्रियहरि ने तीनों को बुलाया । हलकी झिड़की देते हुए कहा कि आप लोग हमेशा बहाने बनाते हैं कि फुरसत नहीं मिलती, बस अब हो ही जायेगा । इस चक्कर में फिर साल ही निकल जायेगा जबकि न जाने कितने पहले आप लोगों से मैंने यह काम जल्दी पूरा करने कहा हुआ है।

वनमाला की आंखों में झांकते उसने खासतौर पर कहा -" क्यों, तुम तो न जाने कितनी बार पहले भी मेरे साथ काम कर चुकी हो । गतिविधियों की अलग-अलग रिपोर्ट को संपादित कर एक करना, पृष्ठों का अनुमान, सूचीक्रम अभी तक कुछ नहीं हुआ ।"

यह पूछने पर कि सारी सामग्री फाइल में है या नहीं अथवा और बाकी है, वनमाला ने बताया कि उसने तो प्रियहरि के कहे अनुसार तालिका बना दी थी जो फाइल में नहीं है । प्रियहरि ने विराग की ओर देखा जो समिति का प्रमुख था । विराग ने झट से सफाई दी कि वनमाला का काम अधूरा है अब अगर फाइल उसे दे दी जाए तो वह खुद बैठकर पूरा करेगा। उसने शिकायत की थी कि भाषा और दूसरी चीजें इन मैडम यानी वनमाला को देखने थीं पर काम अभी भी शेष है । प्रियहरि पशोपेश में था कि एक दूसरे के खिलाफ शिकायत से भरे दो प्रियजनों में से वह किस पर भरोसा करे। उसने वनमाला की ओर देखा। कहा कि - "अब तुम मेरे साथ बैठना, मैं ही सब कराऊँगा । एक-एक चीज यहीं देखनी, सुधारनी होगी - भाषा, कविताओं की लय और तुक, रिपोर्ट का संपादन वगैरह सारा कुछ ।"

वनमाला ने कहा - "हां, मैं जरूर बैठूंगी। आप करा दीजिएगा । मुझसे अकेले तो सचमुच नहीं होगा ।" उसने कहा - "लेकिन उसके लिए समय कैसे निकलेगा ? आपने तो लगातार मेरी ड्यूटी लगा रखी है । दो-तीन दिन मुझे फुरसत दें तो सारी दोपहर मैं आपके साथ इस काम के लिए बैठ जाऊँगी ।"

प्रियहरि ने उसे भरोसा दिया कि वह वैसा इंतजाम करेगा। उसका चित्त पहेलियां बूझ रहा था। उसकी समझ से यह परे था कि वह उसके साथ की चाहत थी या यार के मुहिम पर मरहम लगाने, वक्त चुराने की मुहिम जो वनमाला बार-बार दो-तीन रोज फुरसत निकालने और फुरसत में रहने की जिद पर थी ।

अगले ही दिन सूचना मिली कि दोपहर के अधिकारी भोला बाबू नहीं आने वाले हैं क्योंकि उनके कोई संबंधी नहीं रहे थे । मौका अच्छा था । प्रियहरि का मन हुआ कि उस दिन भोला की जगह वनमाला को अपने पास रखे। सुबह वनमाला का काम नहीं था और इस वक्त ग्यारह बजे तक वह आई नहीं थी । आज काम कम होने के कारण बहुतेरे नहीं आए थे ।

प्रियहरि के मन में अचानक एक युक्ति सूझी । उसने विपुल से यह पूछने फोन लगाया कि वह उदयपुर जाने कह रहा था इसलिए उसकी ड्यूटी लगाई जाये या नहीं । फोन की घंटी जा रही थी लेकिन अनसुनी हो रही थी । जाहिर है कि वह बाहर रहा होगा । तब एक शंका से सहमते हुए प्रियहरि ने वनमाला का नंबर लगाया । उसने तो नहीं उसके मिस्टर ने फोन उठाया वनमाला के बारे में यह पूछने पर कि क्या वह कालेज के लिए निकल चुकी है, उसने जवाब दिया कि वह तो कुछ देर पहले निकल चुकी है ।

प्रियहरि का मन संदेह से भर उठा था सड़क पर निगाह जमाए उसने देखा कि वही पीली-भूरी पुरानी स्कूटर, सिर पर लाल दुपट्टा लपेटे विपुल की कद काठी मुख्य सड़क छोड़कर ढाल पर मुड़ चली और उसके अपने घर की राह ओझल हो गई। वह इन दिनों अकेला था ।

इसके तकरीबन पंद्रह मिनट बाद फोन की घंटी बजी । यह वनमाला थी । घर से बाहर वह जहां भी थी अब घर लौट गई थी । वह पूछ रही थी - "आपने फोन किया था क्या ? मैं कालेज जाने अपने स्कूटर से आगे रास्ते तक पहुंची कि गाड़ी खराब हो गई इसलिए लौट आना पड़ा ।" उसने कहा - "आज अब मैं नहीं आऊँगी । आप कुछ कहेंगे तो नहीं ?" आगे फिर यह कि - "फिर भी कोई जरूरी काम हो तो बताइए, मैं फिर चली आती हूं ।"

वनमाला की आवाज घबराई हुई और तनाव से भरी थी । प्रियहरि का मन वितृष्ण हो उठा था। वह समझ चुका था कि माजरा क्या था ? उसने वनमाला को बताया कि फोन क्यों किया गया था और साथ ही यह कि अब से आने की जरूरत नहीं थी । प्रियहरि सोच रहा था । यह अजीब संयोग था कि विपुल घर पर नही था और वनमाला ने अपने घर से बाहर निकलकर अपनी स्कूटी बिगाड़ ली थी । दोनों एक ही समय घर से बाहर निकले और एक ही समय घर पर वापस हुए ।

संभवतः प्रियहरि को बहलाने के लिए ही वनमाला ने बड़ी आत्मीयता से फोन पर अखीर में उससे कहा था - "पत्रिका के बारे में भी मुझे आपसे बहुत से बातें करनी हैं । आप तो समय देते नहीं।"

प्रियहरि ने अनमनेपन से उसे जवाब दे दिया था - "ठीक है, जब आओगी जब बात कर लेंगे ।"

प्रियहरि का मन उखड़ गया था वह सोच रहा था कि मासूम चेहरा वनमाला कितनी चालाक थी । वनमाला की कुटिल वृत्तियां अब उसके सामने खुलने लगी थीं। काम से दो-तीन रोज फुरसत लेकर पत्रिका के लिए प्रियहरि के साथ बैठने की बात वनमाला के लिए यार के साथ तफरीह की चालाकी भरी युक्ति भर थी । प्रियहरि को अपने आप से नफरत होने लगी कि वैसी कपटी, कुटिल और कालिख से भरे दिलो-दिमाग की औरत के पीछे वह क्यों भाग रहा था। यह औरत जिसे वह हृदय और बुद्धि की समतुल्यता में अपनी सहचरी मान बैठा था, जिसके साथ के लिए अपनी सारी प्रतिभाएं उस पर निछावर करता वह उसमें अपने उत्तराधिकारी की छवि देखता शून्य होता जा रहा था, वह कितनी कृतघ्न और नीच स्त्री थी । वह अपने आप को ठगा हुआ, दयनीय और आहत आ रहा था । शायद यह उसके अंदर छिपी उस गहरी चाहत के अधूरेपन की पीड़ा ही थी, वनमाला के साथ की कामना में चाहत की भटकती प्यास ही थी, जो सारा कुछ अनदेखा करती उस पर अपना सारा विश्वास लुटा बैठी थी । उस वनमाला पर जो कुटिल रहस्यों से आच्छादित विश्वासघात की जीती-जागती घृणित प्रतिमा मात्र थी । सरलता, सादगी, गहन ईर्ष्या से धधकती एकाधिकार की कामना, अपनेपन के एहसास से भ्रम में डालती वनमाला की अंदरूनी भयावह छबि से टकराना, और इस तरह टूटना भी जैसे प्रियहरि की नियति थी ।

स्त्रियां : वासना और प्रेम

वासना को मैं समझता हूं ,प्रेम को नहीं। वासना जीवन की निरंतरता का बनाए रखने वाला एक प्राकृतिक आवेग है। यह किसी नस्ल धर्म या वर्ग की दीवारों को नहीं जानता। प्रेम वह चमकीला आवरण है , जो वासना को सम्माननीय वनाने के लिये हम उसपर चढ़ते हैं। शुरू मे प्रेम और वासना साथ-साथ चल सकते हैं ,लेकिन जैसे ही वासना कम होने लगती है प्रेम भी अपनी चमक खोने लगता है। दोनो ही नित्य कर्म बनकर रह जाते हैं। फिर दोनों ही मानव निर्मित एकल विवाह के थोपे हुए कानून और अपने साथी के प्रति वफादारी की सीमाओं के परे नएपन की तलाश करने लगते हैं।

/भास्कर, , **14/2/09** - कालम 'दृष्टिकोण '-संदर्भ : प्यार क्या है' खुशवंत सिंह

स्त्रियों के विषय में प्रियहरि की वे सारी धारणाएं ध्वस्त होती गई थीं जिनकी घुट्टी बचपन से ही उसे पिलाई जाती रही थीं। अनुभव से उसने पाया था कि उनका संसार भी लादे गए मानसिक और भौतिक आवरणों के भीतर ठीक वैसा ही होता है, जैसा पुरुषों में होता है। जहां चेतना पर बंधनों का बोझ न हो, वहां वे भी वैसी ही, बल्कि वर्ग और संस्कार के भेद से उससे आगे पहुंची दीख पड़ती हैं, जहां जिज्ञासा में वह अपने को खड़ा पाता है।

स्मृतियों में चित्र एक-एक कर उभरते हैं। उसे ग्वालियर का वह विशाल बाड़ा याद आता है, जहां उसने अपनी किशोरावस्था गुजारी थी। उसमें दो-दो, तीन-तीन कोठरियों के कई हिस्से थे, जिनमें ढेर से परिवार पुश्तों से बसेरा डाले थे। हर परिवार में बढ़ते बच्चों की चहल-पहल हुआ करती और कोठरियां इतनी तंग कि बच्चों को ओझल कर पतियों और पत्नियों के बीच गोपन-क्रियाओं के लायक जगह की गुंजाइश नाकाफी थी। रोजी-रोटी के मुफस्सिल धंधों या बनियों की नौकरी करते पुरुष सुबह-सुबह काम पर निकलते तो दोपहर का एकाध घंटा छोड़ सीधे रात आठ-नौ बजे लौट पाते। इस दरम्यान बच्चे अपनी दुनिया बना लेते और उनसे बेखबर हो औरतें अपनी गोष्ठियां रचतीं चारी, चुगली, गप्पें करतीं अपने हालो-हवाल को बांटा करती थीं। बुद्धू प्रियहरि के लिये यह कौतुक का विषय था कि अपने बराबर के, लेकिन अपने से सयाने बच्चों के साथ दोपहर में वैसे ही अन्य बाड़ों के सूने हो चले गलियारों में गुड्डे-गुड्डी की शादी रचाता वह पाता कि शादी के बाद 'अब क्या करें' सोचते बच्चे खुद भी साथ की हम-उम्र खिलाड़िनों के साथ जोड़ी बना 'चलो सोते हैं' कहते कोनों पर चिपककर सोने का

वह ड्रामा करते थे, जो उनके अपने घरों की अंधेरी तंग कोठरियों में निगाहें बचाते प्रविष्ट माता और पिता की हकीकत हुआ करती।

उसे वह प्रौढ़ा औरत दिखाई पड़ रही थीकी, जो नीचे नल के तले खुले में नहाती और झप्प से सारे गीले कपड़े फेक पानी की बूदों से सराबोर नंगे बदन ही बिजली की चपलता से सीढ़ियां फांदते ऊपर पहुंच अपनी कोठरी में विलुप्त हो जाती। यह उसका रोज का शगल था । प्रियहरि की स्मृति में वह संवाद उभरता है जो उस जैसे किशोर को नासमझ जान प्रौढ़ा औरतों के बीच उस तन्वंगी बहू को लक्ष्य कर फेका गया होता, जो शादी के दो साल बाद भी गर्भवती न हो सकी थी।

प्रौढ़ाओं के समूह से किसी एक की ताने भरी समझाइस होती - "अरे कच्छू नाहीं आय, सारी गलती य बहुरियइ की आय। ई ससुरी अनाड़ी ही रही आई है अबहिन तक। वहिका य ठीक से खोल कै लेतइ न हुइहै। ठीक से य झोंकै तब ना ? काय री सुन रही है के नाहीं। "

ऊपर बरामदे से प्रियहरि की दृष्टि इन प्रौढ़ाओं से परे अठारह वर्ष की उस सुतवां तन्वंगी काया को देखती जो साल-दो साल के अंतर के साथ लगभग उसकी हमजोली जैसी थी। उम्र में छोटा होकर भी रिश्ते में बड़ा ठहरा दिए जाने के कारण उस बहुरिया को परदे में रखा जाता। यह दीगर बात थी कि जिज्ञासावश चोरी-चोरी वे एक-दूसरे से सैन-बैन में बात कर लिया करते थे, लेकिन खुले तौर पर दोनों का बतियाना अवैध था। यह अजीब बात थी कि साढ़े सोलह साल का प्रियहरि अठारह साल की इस बहुरिया और बीस साल के उसके पति का काका-ससुर कहलाता था। प्रियहरि को वह सब अटपटा लगता, लेकिन लगने और होने का यह अंतर ही वह समाज था, जिसमें उन्हें रहना था। उसे याद आता कि वैसे ही अजीब रिश्ते उसके उस गैर-रिश्ते की राजस्थानी भाभी से हुआ करते थे, जो कस्बे में उसकी पड़ोसन हुआ करती थी। मकान सटे हुए थे। बगल के मकान में ऊपरी मंजिल वह भाभी यदा-कदा दिखाई पड़ जाने वाले अपने पति के साथ रहा करती थी। अक्सर सांझ को अपनी छत पर हवा के साथ डोलती वह संवाद के मूड में आती थी। बजाय नाम से पुकारने या संबोधित करने के वे भाभीजी तालु से जीभ चटकाती 'ट' और 'च' के बीच सुन पड़ती ध्वनि से उसका ध्यान आकर्षित करती थीं और माकूल संयोग हो जाने पर बातें किया करती थीं। उनहोंने पूछने पर बताया था कि उनके समाज में चिल्लाकर आवाज देने का रिवाज नहीं है।

काम की व्यस्तता में इधर-उधर बिजली की छटा में लहराती इस बाड़े की उस तन्वंगी बहुरिया की अदा भी प्रियहरि को कुछ वैसी ही प्रतीत होती। प्रौढ़ाओं की बातें न सुनने जैसा सुनती वह नि:संतान तन्वंगी बहुरिया भी अपने पतले गुलाबी होठों की खूबसूरत छटा बिखेरती हौले-हौले मुस्कुराती होती, और फिर अपने को निहारते प्रियहरि की आंखों को निशाने पर साध यह संदेश उन तक अंतरित कर दिया करती थी कि -"सुन रहे हो न ! बच्चू, मुझसे कुछ छोटे तो हो नहीं। मजा आ रहा है न ! कुछ समझते हो, या नहीं।" उन आंखें में तब लिखा होता -"यार, इनकी उकताहट भरी बातों से निजात पा इसी मसले पर हम दोनों बात करते होते तो कितना अच्छा होता ?"

उन बुढियों की ख्वाहिश ही शायद बद्दुआ की तरह उस बहुरिया को लग चली थी। वर्षों बाद भी जब तक प्रियहरि ने जाना वह नि:संतान ही रही आई थी। घर को आबाद रखने उन्होंने कुत्तों का एक झुंड पाल रखा था।

बाड़े की उन प्रौढ़ाओं के प्रसंग से आगे बढ़ता प्रियहरि का चित्त लोकल ट्रेन के उस छोटे से स्टेशन पर आ खड़ा होता है, जहां से उसे रोज़ दफ्तर के लिये गाड़ी पकड़नी होती है। प्लेटफार्म पर भीड़ नहीं है क्यों कि समय के पाबंद लोग सुबह ही जा चुके हैं। प्रियहरि खड़ा हुआ उन बैठे कूड़ा-बीनकों की बातें सुन रहा है, जो बोरों में अपनी मिहनत भरे चार स्टेशन बाद के बाजार में माल पहुंचाने रेलगाड़ी के आने की प्रतीक्षा में बैठे दुख-सुख बांट रहे हैं -

" रामकली क बेटी का तो बियाह होवै का रहा ना। का हुआ ?"

" बियाहौ होइ गा अउर चारै दिना बाद उवा वपिसौ भग आई ?"

"काहे? का हुइ गा ?"

"का हुइ गा का? छोकरिया कहि दिहिस कि उवा मरद तौ बेकार आय। चार दिन हियां-हुआं करत बीति गा अउर उवा जौन रहा तउन छोकरिया से कुच्छौ न कर पाइस। रामकलियौ का करती ? अदमियै म खोट होय तौ कोउ का कहि सकत है ?"

कोई पास खड़ा सुन रहा है इसकी परवाह उनमें से किसी को न थी। उनके लिये वहां कुछ न तो अश्लील था और न गोपन।

प्रियहरि को वैसे ही लोकल ट्रेन की वह फेरीवाली याद हो आई, जो संतरे, अंगूर, केले बेचा करती थी। वह सीज़न ट्रेन में भीड़ का था। प्रियहरि डिब्बे के दरवाजे से लगी सीट के पास ही टिककर खड़ा था। डिब्बे का चक्कर लगा संतरे की टोकरी लिए प्रियहरि की समवयस्का या शायद उससे छोटी ही वह फलहारिन वहां आ थमी थी, जिसकी देह उसकी उम्र के लिहाज से कुछ अधिक प्रौढ़ता में ढल चुकी थी । बड़े एहतियात से संतरे की टोकरी उतारते उसका एक सिरा थामे हथेली की अंगुलियां सामने खड़े प्रियहरि के कपड़ों पर जाँघों के बीच से सरसराती गुज़र गई थीं। उन अंगुलियों के स्पर्श का अनुभव प्रियहरि ने बख़ूबी किया था पर संकोचवश वह कुछ कह न सका था। लेकिन तब इससे ठीक उलट विस्मय भरे रोमांच में प्रियहरि की आंखों में झांकती एक लंबी 'हा..य' के साथ वह अपनी ज़ुबान में कह पड़ी थी - "हाय बाबू, बहुत जोरदार हो तुम तो। तुमको बाहर से देखकर तो बिलकुल भी विश्वास नहीं होता कि भीतर-भीतर इतने मजबूत हो सकते हो।"

उसके कहने का सबब यह था कि अपनी सुषुप्तावस्था में लटका ही सही, और वस्त्रों में छिपा भी प्रियहरि का रसभार से पूरी तरह पुष्ट गोपन पौरुष तब उस वक्त प्रशंसनीय लंबायमानता में उस औरत की उंगलियों पर खासी लंबाई तक फिसलता उसके चित्त पर छा गया था। वह अप्रत्याशित पल था। संकोच में डूबे प्रियहरि के लिये यह समझना मुश्किल था कि वह उस स्त्री को क्या जवाब दे ? संतरेवाली की आंखों से प्रियहरि की आंखें टकराई थीं, लेकिन उसकी काया इसे कतई लुभा न पाई थी। उसके मन में यह धारणा बद्धमूल थी कि चलती-फिरती श्रेणी की वैसी कायाएं यंत्रवत् निश्पृहता में शुद्धतः देह-भोगी होती हैं। नर-देह को चक्की की तरह चलाती पिसने और पीस डालने के क्षण से परे उनका न कोई लक्ष्य होता है, और न कोई संस्कृति होती है। जब कि वह उस वर्ग से था जहां बगैर हृदय और संस्कारों की सहधर्मिता के किसी नारी-देह पर जा स्थिर होना षव-साधना जैसी क्रिया थी। वैसी हालत की कल्पना मात्र से उसका खड़ा हृदय बैठा जाता था। उस दिन भी वैसा ही हुआ था।प्रशंसा के लिए धन्यवाद की आंखों से एक नज़र डाल शराफत की चुप्पी मारकर वह उस स्त्री की ओर से प्रक्षेपित देह-याचना से निस्पृह हो चला था।

प्यार : अभ्यास की सम्मोहकता में कैद होता दिल

प्यार-व्यार जैसी कोई स्थायी चीज़ नहीं होती। सारा कुछ आंखों और मन के अभ्यास का खेल होता है। मन आवारा है।
सारा खेल आंखों से निकल भागते मन के वैसे ही किसी और मन से भिड़न्त का होता है।
प्यार अभ्यास है निरन्तर आंखों के जरिए दिलों की भिड़ंत का।

प्रियहरि को अब लगता है कि प्यार-व्यार जैसी कोई स्थायी चीज़ नहीं होती। सारा कुछ आंखों और मन के अभ्यास का खेल होता है। मन आवारा है। सारा खेल आंखों से निकल भागते मन

के वैसे ही किसी और मन से भिड़न्त का होता है। प्यार अभ्यास है निरन्तर आंखों के जरिए दिलों की भिड़ंत का। वह एक आदत है - अभ्यास की सम्मोहकता में धीरे-धीरे कैद होते दिल की, जो संचित आदिम अभावों को जी-भर जी लेने की संभावना में उसके इर्द-गिर्द भटकता है, जो उसके अभ्यास का सहयात्री है। सहयात्री भी ठीक-ठीक नहीं। उसका होना भी केवल एक इच्छित संभावना है, जो सच प्रतीत होती भी अक्सर झूठ में बदल जाती है। फिर यह भी तो होता है कि संभावना के झूठ में बदल जाने के भय से ही भयभीत निगाहें भीड़ में हर उस एक से टकराती चलती हैं, जहां संभावना के सच होने की संभावना हो। इसीलिये प्राय: ऐसा होता है कि आदमी संभावनाओं की भीड़ में ज़िन्दगी गुजार जाता है और आखिर दूर होती भीड़ में वह अकेला और अधूरा ही रहा आता है।

अतीत के अनुभवों की निरंतर स्मृतियां केवल प्यास को जगाए रखती हैं। अगर उन्हीं से तृप्ति होती तो प्यास को लिये कोई आजीवन भटकता क्यों होता ? प्यार पानी है। प्रिय केवल दिलों की प्यास और पानी के बीच ऐसा संभवित पात्र हुआ करता है जिसे साधन की तरह हासिल करने करने की उतावली में हर कोई तरसता और भटकता है। फिर यह भी क्या कम विचित्र नहीं कि संभावनाओं के असंभव को महसूस करता भी वह संभावित तृप्ति के कल्पित आनंद को, प्यास की सतत् अतृप्ति को जाने-बूझे दिल से लगाये मर जाने की, और आने वाले जनमों तक वैसे मरते रहने की कामना करता है।

इन दिनों प्रियहरि की आंखों के अभ्यास में उन दोनों की आंखें भी सहयात्री हो चली हैं, जिन्हें एक साथ निबाहने में वह कठिनाई महसूस करता है। इनमें एक उससे नाटे कद की मदमाते भूरे रंगत की बड़ी-बड़ी आंखों, और गुदगुदे बदन वाली वह यौवन-प्राप्ता है, जिससे दूर के परिचय में दोनों तरफ से जिज्ञासु आंखों के टकराव का पुराना नाता रहा आया है। पहले वह सांयोगिक मात्र हुआ करता था, लेकिन अब वह नित्य का अभ्यास हो चला है। यौवन के साकार अनुभव की बोझिल प्रतीक्षा से उकता चली उस यौवन-प्राप्ता की आंखों में अब सम्मिलन की प्यास साफ तौर पर झांकने लगी है।

दूसरी वह, जो प्रियहरि की अपनी काया के माप में बिल्कुल ठीक-ठीक ढली सुवर्णा कनकछुरी सी तन्वंगी ब्याहता है। हां वही, जिसकी छोटी-छोटी कटार सी तीखी आंखें अपनी अनब्याहता सखी की ओट से वार करती हर टकराव के साथ प्रियहरि को घायल कर जाती हैं। क्षीणता में लचकती उसकी सुतवां देह, संभवित इक्कीस की उमर से तीन कम यानी नितंबों पर थमी अठारह के माप की कटि, अपनी तंग गोपन सुरंग पर इठलाती गर्व भरी उसकी अदाएं, गुलाब की पंखुरियों की मानिन्द नाजुक बारीक ओठों पर धनुश की तरह पसरी उसकी खूबसूरत मुस्कान, और फिर प्रियहरि तक तीर की तरह विद्युत्गति से प्रक्षेपित उस तन्वंगी की दृष्टि-भंगिमाएं बिला-चूक रोज उसे आहत शिकार की शक्ल में समेट अपने साथ घसीट ले जाती हैं।

प्रियहरि हमेशा सोचता है कि व्यर्थ उस तरह के संवेग महज संयोंगों से उसमें क्यों उठते हैं ? कल सुबह उनसे आंखें लड़ाने का संयोग नहीं हुआ था। सारे दिन चित्त उनकी छबियां लिए, खासतौर पर ब्याहता कनकछुरी की यादों में अनमना रहा आया था। दिल को समझाता वह फिर उसी तरह सोचता रहा आया था । खयाल उठता कि सुबह का चक्कर मार वे तो उसे उस शिद्दत से कतइ याद न करती होंगी फिर उसका आवारा मन क्यों सुबह की सैर में भटकता फिरता है ? लेकिन यह क्या ? रात उन्हीं खयालों में डूबा वह कहीं से लौट रहा था। सड़क की दूसरी ओर से उसने देखा कि परिवार के बूढ़े बुजुर्गों के समूह में समायी वे दोनों भी टहलतीं उस दिशामें बढ़ रही हैं जिधर से वह लौट रहा था।प्रियहरि विस्मित हुआ कि अपने समूह और वृक्षों की छाया से धूमिल स्ट्रीट-लैम्प की रौशनी को चकमा देतीं उसकी प्रिय कनकछुरी की वैसी ही विस्मित निगाहें उसके लड़खड़ाते पांवों से दौड़तीं प्रियहरि की निगाहों से टकरा रही थीं। तब उस समूह में चलते भी कनकछुरी का बदन बड़ी अदा से लहरा कर तिरछा हुआ जैसे प्रियहरि के बदन से लिपटा पड़ रहा था। उस कनकछुरी की आंखों में ख्वाहिश की वही ताब थी जो इस प्रियहरि में थी। उसकी बंकिम दृष्टि चमककर विद्युत के आवेग से इसकी दृष्टि में समा चली थी। कहने को वह एक पल था, लेकिन न जाने कितना-कुछ उस एक पल में घटित हो चला था।

प्रियहरि जानता है कि नित्य के टकराव का यह संपर्कजन्य संयोग भी अनन्त असंभव-संभावनाओं की ही एक कड़ी मात्र है, लेकिन वह क्या करे ? यह उसकी ही नियति नहीं रही आनी है अपितु उनकी भी तो होगी जो खुद को इस तरह उससे जोड़े रखने के अभ्यास में रसमग्न इस सहयात्रा को एन्जॉय कर रही हैं। क्या यह संभव है कि अतृप्ति में छोड़ चले नित्य के वे नन्हें पल उन सहयात्रियों की आखों में भी दिन और रात उसकी छबियों, संभवित मुद्राओं, और कल्पनाओं के साथ ठीक वैसे ही न तैरते होंगे जैसे इसी तरह वे दोनों उसकी आंखों में तैरती हुआ करती हैं।

प्रियहरि का चित्त न जाने क्यों इस सनक से बद्धमूल था कि उसकी योग्य संगनियां वे ही हो सकती थीं, जो शिक्षिता, वैज्ञानिक सोच वाली, कला और संस्कृति की अभिरुचि के साथ भावनाओं को दर्शन की गहराई तक जीने वाली, भाषा और लेखन में सुप्रवीणा, और तन-मन की प्रौढ़ रमणियां हों। इसी कारण वह वह आत्मनिश्ठ और छांट-बीन से संगत चुनने वाला हो चला था। ऐसी बहुगुण-संपन्नाएं कहीं हाट में तो मिलती नहीं इसलिये जिज्ञासा भरी उन सामान्या ललनाओं को, जो साथ की हसरत लिये उसके गिर्द भटकती थीं, वह अपनी बेरुखी और उपेक्षा से दूर कर जाता था। अगर वे सुदर्शना न हुईं तो उसकी ऐसी बेरुखी तिरस्कार की सुनयना तक जा पहुचती थी। कुछ तो इससे दुखी और हताष होकर अनुकूल अवसर निकाल उससे इसकी शिकायतभी कर जाया करती थीं।

इसके विपरीत वे चंद, जिन्हें अपने अनुरूप जानता, प्रियहरि अपनी चाहतें लुटाता था, योग्यता में कमतर होने पर भी अक्सर घमंड के रथ पर आरूढ़ होतीं उसे अपना गुलाम बना रखना चाहती थीं।

दूसरी श्रेणी से यदि किसी सुदर्शना को पास बिठा बातें करता यदि देख भी लिया जाता तो पहली श्रेणी रूठकर ताने देना न चूकती कि अगर ऐरी-गैरियों को ही करीब रखना है तो हमारा क्या काम है ? आप तो उन्हीं के साथ खुश रहिये। उधर यह दूसरी श्रेणी शिकायत कर जाती कि उनमें कौन से सुरखाब के पर लगे है ? आप अवसर देते ही नहीं। आप साथ रखें, रहनुमाई करें तो आप हमें उन नक-चढ़ियों से बेहतर पाएंगे। संगतों का यह खेल एक ऐसी स्पर्धा को बनाये रखता जिसके तह में वैसी ईर्ष्या होती जो प्रतिद्वंदी को चिढ़ाकर खिझाने के काम आती।

इनसे अलग वे मुग्धा किशोरियां थीं, जो प्रियहरि में आत्मविश्वास से भरपूर ऐसे स्मार्ट युवा की छबि देखतीं, जिसमें सरलता और श्रेष्ठता का अद्भुत संगम है। संस्कारों, गुणों और प्रकृति से उसे वे उस उंचाई पर पहुंचा पातीं, जो किसी के लिये भी स्पृहा का कारण हो सकता था और जिसका साथ उनका सौभाग्य हो सकता था।

प्रियहरि इन्हें चाहता तो था, लेकिन उस लापरवाह वृत्ति से जो इन्हें साथ की काबिलियत के लिहाज से नगण्य समझती थी। अब जब वह अतीत में झांकता है तो पाता है कि इन किशोरियों का समूह उन युवा प्रौढ़ाओं की तुलना में कहीं बेहतर था, जो सारे अनुभवों को हजम किए आत्मीय संबंधों में भी दुनियादारी की कुटिलताओं से काम लेती थीं। वह पाता है कि वय-प्राप्त रमणियां जहां सहभोग के मसले पर समाज द्वारा खींच दी गई रेखा से बाहर जाने के प्रति इच्छुक होकर भी उदासीन 'किन्तु' -'परन्तु' और 'हां'-'ना' के बीच में फंसी हुई लटकने और लटकाने में प्यार का अचार बना डालती थीं, वहां सरला नवयौवनाएं उन अनुभवों से गुजरने के लिए अवसर ढूंढ़ा करती थीं, जिनकी आकांक्षा लिए देह और मन अपनी तैयारी में सपने देखते पक-पक कर बेचैनी की हालत में तड़प रहे होते थे। वैसी बेचैनी से राहत पाने वे उन संभवित सहारों से फौरन से पेश्तर चिपक पड़ने की विह्वलता में होतीं, जिनमें उनके सपने साकार होते दिखाई पड़ते थे। प्रियहरि में उनके लिये वैसे ही सहारे की उम्मीदें दिखाई पड़ती थीं।

प्रियहरि को जीनत की याद आई, जो अपनी पुरानी चाहत से निराश होकर उसकी बांहों में समा रो पड़ी थी। उसने बड़े जतन से अपनी वह पोटली संजो रखी थी, जिसके बारे में दुहाई देती वह कहा करती थी -" बाइ गॉड, मैने अभी तक वो काम करने से अपने को बचाए रखा है।

उसे वह परम सुन्दरी षोडस वर्षीया तन्वंगी याद आई, जो किसी फरियाद के बहाने साथ आई संगिनियों को -"तुम लोग चलो मैं आती हूं"- कहती खिसकाने के बाद प्रियहरि से यह कहने रुक गई थी कि "

हाय सर, आप मैं क्या बताऊँ कि आप मुझे कितने अच्छे लगते हैं। आप की बातें मुझे सब से अच्छी लगती हैं। आप को देखकर मुझे विश्वास ही नहीं होता कि इतनी कम उम्र में आप इतने विद्वान और इतने बड़े अधिकारी हो गए हैं।"

ऐसे ही वह एक और अक्षत-सुंदरी किसी न किसी बहाने बार-बार आती प्रियहरि के करीब आ चली थी। उसके यहां स्थनीय ठिकाने में बूढ़ी दादी के अलावा कोई न था। वह चाहती थी कि प्रियहरि उसके घर आए। वह इतने नज़दीक आ चली थी कि प्रियहरि की दराज में प्रियहरि से उंगलियां फंसाए किताबों की तलाश किया करती थी। इतने करीब थी कि टेबिल फांद कायदे के खिलाफ वह ठीक उसके बगल में बेतकल्लुफ उसमें अपने अंगों का अहसास जगाती चिपक जाती थी। मर्यादा और बदनामी के भय ने प्रियहरि को आमंत्रित करती उस खूबसूरत गुड़िया से दूर रहने और दिखने विवश कर दिया था। किसी दिन किसी बहाने प्रियहरि ने जब उसकी तलब की तो पता लगा कि वह तो बहुत दिनों से नहीं आ रही है इसलिये रिकार्ड से उसका नाम खारिज कर दिया गया है।

वह अनिंद्य सुंदरी बाला प्रियहरि को याद आती है जो यू.पी और बिहार के उन परंपरागत मद्यक व्यवसायियों के घरानों से जुड़ी समझी जाती है, जिनमें मदिरा का रंग लिये सौन्दर्य ललनाओं के अंग-अंग में उतरता है। वह उसे उन्हीं सालों में विश्वसुंदरी चुनी गई रमणी से कहीं अधिक कोमल, आकर्षक और सुरुचिसंपन्न लगा करती थी। यह बात प्रियहरि ने उस परम सुन्दर कन्या से कह भी दी थी। वह उसे यह कहता प्रोत्साहित करता कि अपने काम में कुछ भी कठिनाई हो तो वह उसके पास आ जाया करे और उसकी यह शिकायतहोती कि उसकी सीनियर मैडम उसके प्रियहरि के पास जाने से नाराज़ होती रोकती है। ऐसे ही किसी दिन किसी काम के बारे में पूछने जब वह खुद उसके विभाग में जा पहुंचा था तो अपनी व्यथा से परेशान सहारा पाने वह नवयौवना आंसू बहाती प्रियहरि के सीने से चिपक गई थी। रोते-रोते हिचकियां लेती उसने अपनी व्यथा प्रियहरि से कह डाली थी - " इस मैडम से मैं कुछ पूछती हूं तो न जाने क्यों चिढ़ उठती हैं। न तो वे कुछ बताती हैं और न आप के पास आने देती हैं।"

यामिनी, सुनयना, जयन्ती, मुक्ता, मैत्रेयी, सुमनलता, गीता और अन्य ऐसी ही कितनी ही मुग्धाएं थीं, जिनमें देह और मन की वैसी ही विकलता का साक्षात्कार प्रियहरि ने किया था।

इन दिनों उससे टकरा रही उदास भूरी आंखों वाली इस गुदगुदी नाटी काया और छोटी-छोटी कंटीली निगाहों से बिजली गिराती उस तन्वंगी कनकछुरी का संसार भी तो उन्हीं मुग्धाओं के बीच कहीं है । यह विडंबना ही थी कि इन सब की साफ-सुथरी तंग गलियों से गुजरता भी प्रियहरि उन फैली-पसरी राहों को लक्ष्य कर भटकता रहा जिनमें उसके लिये कांटे बिछे थे।

किसी एक के लिए भूला-बिसरा पल किसी और के लिए जनम भर की याद क्यों बन जाता है ? क्या वे तरंगें उन्हें भी कहीं उसी तरह उद्वेलित करती होंगी जिस तरह वक्त बेवक्त प्रियहरि उनमें तैरता होता है ? इसे प्रश्न की तरह कई बार वह अपनी प्रिया कामिनियों के सामने रख चुका है।

हर बार, हर एक से, एक ही जवाब सुनता है -" मैं कैसे बताऊँ कि मुझे भी आप की उतनी ही याद आती है, जितनी मेरी याद आप को आती है। आप कह देते हैं और मैं कह नहीं सकती ?"

"क्या फायदा ऐसी याद का जो फोन उठाने तक मजबूर न कर दे ?"- वह पूछता होता है।

वे कुछ बोल नहीं पातीं। बोल उनकी वे आंखें रही होती हैं, जो पशोपेश में प्रियहरि की आंखों में झांकती थम गई होती हैं -"बस यहीं तो मुश्किल आती है। उसके आगे एकांत-मिलन की बात आएगी। तब आप कहेंगे कि क्या फायदा ऐसे मिलन का जिसमें मन के साथ देह भी एक-दूसरे में समाकर एक न हो जाएं। "

एक समानांतर दुनिया है जो अभिनय कर रहे मनुष्य के अंदर छिपी होती है

स्मृतियां ही हैं, जो संबंध रचती हैं। हां, वे रागात्मक स्मृतियां जिनका दुख भी सुख प्रतीत होता है और जिनमें मिटकर भी मनुष्य जीवित रहा आता है। वह एक समानांतर दुनिया है जो अभिनय कर रहे मनुष्य के अंदर छिपी होती है। क्या यह

विडंबना नहीं कि मनुष्य जो है, उसे छिपाता है और जो नहीं है, उसका अभिनय करता जिन्दगी से कूच कर जाता है।

दुनिया के अधिकतर स्त्री-पुरुषों के लिये के लिये दिल की वह महक, वर्तमान को कुछ समय के लिए विलोपित कर जाने वाला वह तूफान; संबंधों में तिरती भावनाओं की वह रागिनी; एक-दूसरे की रक्त-शिराओं को प्रबल आवेग से खींचते वे फेरामोन्स; तन और मन को एकाकार कर खुद को मिटा जाने की वह अदम्य आकांक्षा, जो प्रेम की परिभाषा रचती है, शायद एक मौजूं सुविधा रही आती या फौरी तौर पर रसानंद लेकर आगे बढ़ जाने वाला काम रहा आता हो। बहुत कम होंगे, जो उन पलों की स्मृतियों के जंगल में उस तरह भटकते होंगे जिस तरह वह खुद भटक रहा है। बहुत कम होंगे जो उन्हें खूबसूरत उपहारों की तरह चित्त के शो-केस में सजाए रखते होंगे और हर पाठ के साथ और अधिक आह्लाद से भर जाने वाली पुरानी पुस्तक की तरह पढ़ते होंगे।

प्रियहरि को भी क्या वैसा ही न होना चाहिये था ? उसे ऐसा क्यों लगता है कि बाहर दिखाई पड़ने वाले सारे रिश्ते महज संपर्क हैं, संबंध नहीं। स्मृतियां ही हैं, जो संबंध रचती हैं। हां, वे रागात्मक स्मृतियां जिनका दुख भी सुख प्रतीत होता है और जिनमें मिटकर भी मनुष्य जीवित रहा आता है। वह एक समानांतर दुनिया है जो अभिनय कर रहे मनुष्य के अंदर छिपी होती है। क्या यह विडंबना नहीं कि मनुष्य जो है, उसे छिपाता है और जो नहीं है, उसका अभिनय करता जिन्दगी से कूच कर जाता है। हर कोई समझता है कि दूसरा हर कोई उसे उसी चेहरे में पहचाने जो उसके अभिनय का मुखौटा था और तब विडंबना यह भी कि हर किसी को यह अहसास होता है कि हर मुखौटे के पीछे अवश्य कोई एक छिपा था, जो उसके लिये अपरिचित ही रहा आया था।

उस खास एक दिन परिवार की एक नन्ही बच्ची का मन बहलाने और कुछेक काम निबटाने वह बाहर बाजार के लिये निकला है। सवारी आटो रिक्शे पर वे सवार हैं। आटो के इस हिस्से में पूरी आठ सवारियां हैं। मन तो सभी के उसी तरह अन्दर की यात्रा में गतिमान रहे होंगे और शायद उसी दिशा में भी। प्रियहरि और बच्ची के बाद के बाद की सुकुमारी गोरी ने प्रियहरि के मन को बरबस खींचना शुरू कर दिया है। वह उम्र में उससे आधे से भी बहुत कम है। नगर जुलूस से घिरा है इसलिये आटो राह बदल-बदल चींटी की गति से चल रहा है। बाहरी खीझ प्रियहरि और गोरी सुन्दरी की अदृश्य को संबोधित टिप्पणियों की शक्ल में चलती ही सही चोरी-चोरी परस्पर निहारती आंखों के जरिये दोनों के दिलों को चस्पा करने लगी है। वह खुद को समझाने की कोशिश करता है कि मूर्ख अपनी आदत और अपने पाले भ्रम से बाज कब आओगे ? आखिर तो पन्द्रह मिनट और देर से ही सही, वह अपने ठिकाने चलती ओझल हो जाएगी । लेकिन तब उस दूसरी में भी तो विरक्ति का यही विचार उगना चाहिए था। वैसा होना था पर नहीं हो रहा है। आंखों की टकराहट और बातों की बढ़ती चाहत को तरह देने बच्ची से खेल और बतियाव की शक्ल में उस सुन्दरी ने भी शामिल कर लिया गया है। आटो की चींटी चाल और बार बार की रुकावट उस सुन्दरी और प्रियहरि के बीच इस मधुर सम्मिलन की चाहत बन चुकी है। सब आंखों से गुजर रहा है, लेकिन सारा कुछ अन्दर की आंखें से बेमतलब और परे कब हो चला , इसका अहसास न तो उस गोरी को है, और न प्रियहरि को ।

प्रियहरि के साथ चल रही नन्ही गुड़िया भी, जिसे नासमझ होना चाहिये, गौर करने लगी है कि दो के बीच अपरिचय में यह चिर-परिचित सा कौन तीसरा बनकर चल रहा है। वह आगरे की है। उससे आगरे का जिक्र प्रियहरि यूं करता है जैसे वह प्रियहरि के लिये घर जैसा प्यारा हो। अपने संबंधियों के यहां ठहरी कोमलता की यह पुंज किसी कालेज से बी-एड कर रही है। यह नगर भी उसे अच्छा लगने लगा है। आगरे के सिविल लाइन्स में उसका असल घर है। प्रियहरि का साथ भले पलों का रहा आया था, उसे बहुत भाया है। उसे चिन्ता है कि आगे उतरने के बाद साधन न मिला तो वह अपनी उस नई कालोनी तक इस गहराती सांझ में अकेली किस तरह जाएगी ? शायद प्रियहरि के साथ उसके अंदर भी यह इच्छा थी कि वैसा ही हो। प्रियहरि की आंखें मुग्धता में साथी सुन्दरी को निहारती आश्वस्त कर रही थीं कि चिरपरिचित हृदयोंके साथ अब क्या समस्या थी। वह है ना। देर से ही सही वह स्टाप आ पहुंचा जहां जुदाई की मजबूरी थी। आती-जाती तो वह बाला रोज

ही सिटी-बस से थी, लेकिन आटो से बाहर अब वह प्रियहरि के साथ खड़ी लाचारी में थी कि उसके ठिकाने तक कौन सी बस जाएगी ? और जाएगी भी अथवा नहीं ? प्रियहरि का मन किया कि दिलों की सहयात्रा की सम्मिलित चाहत को वह आगे बढ़ाए । छोटी बच्ची की बड़ी समझ ने व्यवधान करते प्रियहरि और उस बाला को संकोच में डाल दिया था। सुंदरी सहयात्री के लिए सही बस सुनिश्चित कर और उसमे सुविधा की जगह बिठाकर पारस्परिक "बाइ-बाइ " और " थैंक यू " के साथ का वियोग उन सारी आंखों के लिये रहस्य रहा आया होगा जो उन दोनों के बीच की आत्मीयता को घूर रही थीं। साथ की गुड़िया बच्ची बार बार अधीरता से पूछ रही थी कि वे कौन थीं ? पहले से आप उनको जानते हैं क्या ?

इस सवाल का दोहराव घंटे भर बाद पुनः हुआ जब प्रियहरि उस निजी दफ्तर से बाहर हुआ जहां अपनी परिचित एक सुन्दर आत्मीय रमणी के पास बैठने और बतियाने से वंचित कर दिया था। न जाने क्यों वहां जब-जब वह जाता है उस रमणी से दिल और आंखें यूं अपनेपन से टकराते प्रकट और प्रत्यक्ष संवादरत हो जाते हैं कि वहां से वह डूबकर ही निकलता है। पिछली बार, जब दोनों कस्टमर-विहीन माहौल में निर्बाध रू-ब-रू हुए थे, तब उस रमणी से प्रियहरि की यूं बातें हुई थीं, जैसे वे काफी-हाउस में बैठे हों। उस रमणी के तांबई श्यामता में तराशे हुए पतले चेहरे पर चुम्बकीय नमकीनी है। उसके ओंठों, उसकी हरिणी सी आंखों की स्निग्ध चितवनि, उसकी घनी काली केश-राशि, क्षीणता में लहराती कटि, और सांचे-ढली कटावदार पतली काया हमेशा आमंत्रित करती प्रियहरि को अपने में गूंथ लेती है। उस रमणी की शैक्षिक पृष्ठभूमि, उस रमणी के अपने नगर, उस नगर में उसके घर तक वह पहुंच चुका है। इस बार प्रवेश करते ही सामने ही पुरुष कर्मियों ने " सर क्या काम है, यहां आइये "-कहते उसे आमंत्रित कर बिठा लिया था। अनपेक्षित ध्वनि के आघात से दिलों की हताशा तब संयोगोत्सुक उन दोनों की निगाहों के टकराव में साथ-साथ ही तैर गई थी । इसके बावजूद प्रियहरि वहां जब तक रहा, दूरी के बावजूद रमणी प्रिया और प्रियहरि की आंखें बार-बार परस्पर खींचती रही थीं। इस बार प्रियहरि के साथ की छोटी प्यारी गुड़िया बार-बार उस तन्वंगी कीदृष्टिको खींच रही थी। बार-बार उसकी आंखों से टकराती प्रियहरि की आंखें गुड़िया की आंखों के उस विस्मय और सुन्दरी ललना के हाथों के उन आमंत्रक इशा रों को पढ़ रही थीं, जिनके बीच इस अनिश्चय का रहस्य था कि आंखों और हिलते हाथों के आकर्षण का केन्द्र कौन था ? संकोच के भय ने प्रियहरि को उस तक पहंचने से रोक रखा । अंततः नन्ही गुड़िया को ही उसने प्रेरित किया कि देखो वे प्यारी-प्यारी सी आंटी बार-बार तुम्हें बुला रही हैं।

बलपूर्वक उसे भेजा कि " जाओ-जाओ, डरो मत। " उस प्यारी आंटी ने गुड़िया से बातें कीं और एक गिफ्ट बाक्स उसे उपहार में दे दिया। लौटते-लौटते उन टकराती आंखों को मैने सहेज कर अपने उपहार की तरह अपनी आंखें में बसां लिया है। बाद में अनेक बार गया पर सामने ही विराजमान पुरुष साथियों ने हर बार मुझे उनतक पहुचने से रोक लिया। क्यों ? अन्दर करने की बातें अब अटककर रह गई हैं। गुडिया खुश हुई थी, लेकिन मैं ? बाहर निकलते हुए गुड़िया ने फिर वही सवाल किया - वे आंटी कौन थीं ? आप को कैसे जानती हैं ? प्रियहरि उस सवाल का क्या जवाब उसे देता जिसे उत्तर तक खींच लाना उसकी खुद की इच्छा ही बनी रही आई है । उसके ज़ेहन में अचानक फिल्मों में अक्सर दिखाए जाते वे प्रसंग तैर आए जिनमे अबोध से लगते प्यारे बच्चे 'अंकल अंकल' हो चले किसी गैर मर्द की तारीफों के पुल बाँध अपनी कथित मम्मियों को उसकी तरफ खींच लिए जाते हैं । उसने सोचा की क्या सचमुच बच्चे इतने ही नासमझ होते हैं । उसका अपना अनुभव तो यह काहता था कि अपनी सारी मासूमियत के बावजूद बच्चों की आँखें बड़ों की अदाओं में छिपे उस बेईमान मन को भांपती हैं जो उन्हें शशंकित करती हैं ।

अज्ञात से प्रकट होतीं फौरी प्रेमिकाएं

समाज की कथित अवधारणा उसे महज निषेधों का एक वृहत् जाल प्रतीत होती जिसमें छटपटाती जिन्दगियां या तो हारकर उस झूठ को मन बहलातीं स्वीकार कर अपने प्राकृत अस्तित्व को समाप्त कर जाती हैं या फिर दुनियाबी चतुराई से सदाचार और नैतिकता की चादर में खुद को छिपाए भी अवसर पैदा कर वह आनंद चुरा लेती हैं जिसकी उन्हें तलब है।

अज्ञात से प्रकट होतीं इन फौरी प्रेमिकाओं में प्रियहरि को उस तनाव से राहत मिलती थी जिसे ढोना उसके जीवन की नियति बन चली थी। एक ओर उस पर ढेर सारे दायित्वों को लादे निपट निरक्षर कलह-कारिणी पत्नी की स्मृतियां चिपकी होती थीं जो उसके सीधेपन में दूर भाग जाने की वृत्ति से हौसलामंद होती घर की तानाशाह हुई हर उस बात पर भौंकती थी जो प्रियहरि की चाहतें थीं। दूसरी ओर उस प्रिया की स्मृतियां थीं जो उससे जुदा न हो सकने और न कर सकने के बीच बरसों से तड़पाती उसे ऐसे दौर में ले आई थी जहां प्यार और तकरार की विचित्र परिस्थितियों में दोनों को इस तरह जुदा होना पड़ा था कि अब मिलना तो दूर एक-दूसरे को देख भर लेना भी दुनियादारी की नैतिकताओं के बीच असंभव था। स्मृतियों के इन दो ध्रुवों के बीच पिसा जाता प्रियहरि अपने को असहाय महसूस करता था। ऐसी असहायता जिसमें उसका वर्तमान क्षत-विक्षत पड़ा था। सांयोगिकता में टकरातीं इन फौरी प्रेमिकाओं के साथ पूर्व और अपर से परे केवल सुखद संभावनाओं का पारस्परिक सम्मोहन हुआ करता, जो आहत अतीत पर मरहम का काम किया करता था। अमर प्रेम और सुखद परिवार की कल्पनाओं से भंग-मोह प्रियहरि ने सारे आदर्श भुलाकर अब इसी राह पर बिन्दास चलने का मार्ग चुन लिया था।

अतीत से निरन्तर चिपका रहने के बावजूद हाथ आए पलों को मदिरा की तरह खूब छककर कुछ पलों के लिये ही सही उस अतीत को इन पलों वह डुबा देना चाहता था। पर क्या ठीक-ठीक वैसा हो पाता था जैसा वह सोचता था ? होता यह कि और के संग होते भी उसके चित्त के गहन अंधेरों से निकल प्रिया वनमाला छायावत् उसे देखती आसपास मंडरा रही होती थी। तब पास आ खड़ी वनमाला की प्रेतछाया उसे संकोच और लज्जा में ढकेलती प्रश्नित करती चमकती आंखों और ओठों में दबी चिरपरिचित मुस्कान के साथ प्रियहरि को घूरती अपनी श्यामल गौर मुखाकृति की चंचल मुद्रा में उससे व्यंग्य-पूर्वक मुखातिब होती -" अच्छा ? ये क्या हो रहा है ? पकड़े गये न !"

कई बार प्रियहरि को ऐसा प्रतीत होता मानो आनंद की भरपूर मौज में जब वह किसी चंचला कामिनी के साथ अठखेलियां करता परस्पर प्रविष्ट देहातीत आनंद के क्षणों में डूबा हुआ करता है तब अचानक प्रकट होती रागावेग में भरी वनमाला पूरे आवेग से प्रियहरि के साथ भरपूर क्रीड़ारत युग्मित कामिनी पर झपट उसे दूर फेकती है और खुद प्रियहरि पर चढ़ी सघनता मे प्रविष्ट प्रहार करती उसे चुनौती दे रही है - " ये बात ? मेरा हक दूसरे को ? आओ, अब देखती हूं तुम्हें।"

ऐसे वक्त जब वह भ्रमण पर राहों पर किसी और कामिनी के साथ हाथों में हाथ डाले चुहल भरी बातों की मौज में है, प्रियहरि ने अक्सर पाया है कि उसकी हरकतों की टोह लेती वनमाला की आंखें उनके पीछे चल रही हैं।

प्रियहरि भयभीत होता है। वह खीझता है कि कोई तो हो, जो अतीत के इस प्रेत से उसका पीछा छुड़ाए जो न पास आने देता है, न दूर होने देता है। धूपछाहीं इस परिदृश्य के जाल में फंसा प्रियहरि छटपटाता है और उस संभावित विकल्प की तलाश में भटकता है, जो अतीत के इस प्रेत से उसे मुक्त कर सके।

प्रेम, प्यार, इश्क, मुहब्बत, जैसे शब्द और उनमें छिपे अमरत्व की जन्म-जन्मान्तरता का बुखार हालांकि अब भी प्रियहरि की रूह से जुदा न हो सका था, लेकिन अब हर-चंद कोशिश उसकी यही होती कि वह उससे छुटकारा पा सके। उसका मन कहता कि क्या फायदा ऐसी मुहब्बत से जो उस प्यास को बुझाने की जगह दिनों और बरसों इस कदर भड़काती चली जाए कि उसमें तनाव और शहादत के अलावा कुछ हाथ न लगे।

प्रियहरि के लाचार दिल पर अब दिमाग और भावना पर तर्क हावी होने लगा था। वह अनुभव करने लगा था कि सुख तो उन्हें ही मिलता है जो हाथ मलते स्मृतियों में भटकते नहीं फिरते बल्कि हाथ आए लम्हों को संपूर्णता में भोगते हैं और बिना किसी मलाल के आनन्द के रस में सराबोर निर्द्वंद बाहर निकल आते हैं। नैतिक और अनैतिक, पाप और सदाचारिता के बीच का द्वंद उनमें नहीं पलता। समाज की कथित अवधारणा उसे महज निषेधों का एक वृहत् जाल प्रतीत होती जिसमें छटपटाती जिन्दगियां या तो हारकर उस झूठ को मन बहलातीं स्वीकार कर अपने प्राकृत अस्तित्व को समाप्त कर जाती हैं या फिर दुनियाबी चतुराई से

सदाचार और नैतिकता की चादर में खुद को छिपाए भी अवसर पैदा कर वह आनंद चुरा लेती हैं जिसकी उन्हें तलब है। प्रियहरि देखता कि इन दो में दूसरे प्रकार की ही जिन्दगियां जीने वाले अधिक हैं। बस इतनी सतर्कता बरतनी ज़रूरी समझी जाती अपनी चादर में छिपे को चादरों में अपने को छिपाए दूसरे न देख पाएं। इस तरह छिपाने का कौशल ही दुनिया के सारे समाजों का कथित समाज और उसके कानूनों से परे समानांतर नियम बन चला था।

अपढ़ होने की तुलना में सुपठ होना अधिक खतरनाक है। अधिक ज्ञान अधिकाधिक विद्रोह को जन्म देता है। प्रियहरि के साथ यही मुसीबत थी। उसने सारा कुछ खंगाल डाला था। उसे इस बात पर आश्चर्य होता कि धर्मरक्षक आर्ष-ग्रन्थों और पुराणों की जिस ओट से पंडित और महात्माओं के उपदेश प्रवाहित होते आए हैं, उन्हीं में प्रेम, वासना, और यावत यौनाचार के लुभावने किस्से छिपे हुए हैं। कौमारिका-प्रलोभन से लेकर पर-पुरुष और पर-स्त्रीगमन तक के सारे वृतांत ही तो इनकी कथा गढ़ते हैं। च्यवन और सुकन्या, विश्वामित्र और मेनका, सूर्य और पांचाली, विष्णु और वृन्दा, इन्द्र और अहिल्या, द्रौपदी और पंचदेवता, भीम और हिडिम्बा और असंख्य पात्रों की इन कथाओं के साथ इतना ही विशिष्ट है कि ये आभामंडित अतिमानवों के चरित्र हैं। निम्न और मध्य वर्ग में बालिग युवा प्रेमी और प्रेमिकाओं का घर से भाग जाना या किसी स्त्री और पुरुष का स्वैच्छिक सहवास भयानक अपराध है, लेकिन उच्चवर्गीय-समाज अथवा अधिकार संपन्न व्यक्ति के लिये वह सब संपन्नता और स्वतंत्रता की निशानी है।

यह क्या विचित्र नहीं है कि पंडित उपदेश करता भी आम तौर पर वही करता है जिसे न करने की सीख वह औरों को दे रहा होता है। फिर उससे भी विचित्र यह कि इन उपदेशों के ग्रहीता भी वहां पर ही और वहां से बाहर जाकर सारे कुछ के साथ चादर ताने और-और धंधों के साथ ठीक उसी के ध्यान में जुट जाते हैं, जो उनके निषिद्ध चरमसुख का केन्द्र है। सामान्य जन के लिए तसल्ली बस इतनी है कि वह यहां सदाचरण करता उस आदिम इच्छा को तिलांजलि देता पुण्य कमाए जिसके बदले मरने के बाद शतगुणित होकर उसके निर्बाध और निर्द्वंद भोग की व्यवस्था अदृश्य ईश्वर के अदृश्य स्वर्ग में की गई है।

प्रियहरि अक्सर इस बात पर विचार करता कि यह संसार और सांसारिक यदि ईश्वरेच्छा की ही परिणिति हैं, यदि मनुष्य के अधीन कुछ नहीं है तो जो उसमें है और जो हो रहा है, उसे उस ईश्वर का प्रसाद मान निर्द्वंद क्यों न स्वीकार किया जाए ? ऐसा पाप-पुण्य, नैतिक और अनैतिक, जो किसी तीसरे से न जुड़ा होकर पारस्परिक आह्लाद का विषय हो क्या ईश्वरेच्छा की परिधि से बाहर है।

सार कुल इतना ही कि सामान्य जन की नैतिकताएं अन्य से भिन्न होनीं चाहिये क्यों कि वह विशिष्ट नहीं है। यह नियम आज भी है कि फिल्मों की एक अभिनेत्री अगर किसी के साथ अनब्याही सोकर बच्चा जन ले ; हर फिल्म के साथ मुहब्बत के लिये नया प्रेमी चुने ; या बिन्दास-बेलौस दुनिया की तफरीह करती यार के साथ होटलों में बन्द तफरीह करे, तो वह गुनाह न होगा। इसके ठीक उलटे इन करतबों से उसकी लोकप्रियता बढ़ेगी। इधर आम जनों के बीच कोई जवान लड़की और उसका साथी बंद कमरे में तो क्या, बाहर एकांत में भी चुहलबाजी करते पाए जाएं, तो सारा मुहल्ला उनपर पिल पड़ेगा। हंसी तो तब आती है, जब मन की मौज से दिनों और महीनों लड़के और लड़की या स्त्री और पुरुष का कोई जोड़ा स्वैच्छिक और सहमत इन्द्रियानन्द में बिता चुकने के बाद अचानक पकड़ा जाता है। कानून की निगाह तब स्त्री को महज भोली-भाली और अनजान करार देती छोड़ देती है और आदमी व्यर्थ ही बलात्कृत संबंध का आरोपी ठहराया जाता अपमान और दंड का भागी होता है। यहां व्यक्ति के रूप में स्त्री का स्वातंत्र्य और उसकी अपनी आकांक्षा, और अधिकार को अपहृत कर समाज और कानून दोनों ही उसपर सवार हो जाते हैं। अक्सर यह देखने में आता है कि ऐसे हस्तक्षेप का परिणाम या तो स्त्री और पुरुषके लिये जीवन-घाती अवसाद होता है या फिर आत्महत्या।

प्रसंगत: यह सवाल भी जुड़ा है कि दो वयस्क विपरीत लिंगियों के बीच सहमत और स्वैच्छिक यौनाचार भी अवैध क्योंकर हो ? विपरीत लिंगियों ही क्यों सम-लैंगिकों के बीच पारस्पिरिक संबंधों का मसला भी क्योंकर समाज और कानून का विषय क्यों कर हो ? वे क्या करते हैं और क्यों करते हैं इसकी तफसील प्रियहरि को

नहीं मालूम है। उसे जाती तौर पर वैसे संबंधों की कल्पना से घिन होती है। लेकिन तब क्या ? वह यह तो समझता ही है कि दो शरीरों के बीच इन्द्रियोपभोग ऐसा आपसी मसला है, जिसमें तीसरे का किसी किस्म का सरोकार ही नहीं है। महिलाओं की यौनिक पवित्रता की रक्षा अगर महत्व की है तो विशेषत: पुरुष-समलैंगिकता उसकी सहायक ही मानी जानी चाहिये। न वे ऐसे संबंधों से आबादी में इजाफा करेंगे और न किसी औरत या आदमी पर यौनिक अत्याचार करेंगे या करेंगी। तब भला दूसरों के पेट में दर्द क्यों हो ? यह कैसा न्याय होगा कि दहेज के मुसीबत की मारी और उसके कारण या उसीलिये विवाह से वंचित स्त्री की जात अगर पुरुष को पकड़कर देह बहलाये तो भी अपराध और किसी समानधर्मा के साथ प्यार में धराशायी हो पड़े तो भी अपराध ? बहरहाल, प्रियहरि न तो वातानुकूलित बुद्धि से सज्जित न कोई समाजशास्त्री है, और न कोई उस कानून और संविधान का पहाड़ उठाए हनूमान, जिसके बारे में कभी जस्टिस श्री कृष्ण अय्यर ने कहा है कि देखने में हाथी सा भारी भरकम होने के बावजूद हकीकत में वह महज चींटी सा बेदम ही है।

कामवालियों की दुनिया

ऊब का अनुभव नज़ाकत और लताफ़त की हठधर्मिता को छुड़ा देता है। प्रियहरि भी इसी स्थिति में आ चला था। तुलना करने पर अब उसे उस वर्ग की वृत्ति बेहतर प्रतीत होती थी जहां, इमारत बनाने में मशगूल समूह से कोई फटा-हाल मजदूर या गली मुहल्ले में चलते-फिरते किसी फटे-हाल छैला को कहता हुआ सुनता कि -"चल ना मेरे साथ। तू भी बहुत नखरा करती है।"

और तब वैसी ही फटी-हाल मजदूरनी या लैला उसे उसे जवाब देती होती - "नहीं न रे, हट जा। मुझको बहुत लालच में मत डाल ना। क्यों मजबूर कर रहे हो "

मनाने और नकारने का खेल यूं खत्म होता कि जाते-जाते छैला अपनी छैली को यह स्मरण कराता अलग होता कि -" याद रहेगा न....? कल इसी समय के बाद वहीं...!"

और तो और कामगारों के समूह में जहां सुरंग और बारूदी तार का संयोग-संवाद होता है, खुले-आम हंसते-खेलते वैसी बातों के साथ मामले तय हो जाया करते थे। गोपन संबंधों और क्रियाओं की छेड़-छाड़ भरी चर्चा और लुभावने ठट्ठे आम तौर पर कठोर श्रम के दौरान इस वर्ग में मनोरंजन का साधन हुआ करते हैं।

अभी कल ही प्रियहरि देख रहा था। बगल की खाली जमीन पर अपने ढोर बांध उसके मुहल्ले का हरवाहा छोकरा हट रहा था। तभी गोबर इकट्ठा कर उपले थापने वाली वह लंगड़ी ललना टांगे लचकाते हुए अपना टोकरा उठाये वहां पहुंची थी। इससे पहले कि बगल में वह अपना टोकरा खाली करती, उसकी ओर आंख मटकाते वह छोकरा बनावटी खीझ दर्शाता झपटा था - ऐ लंगड़िया, मेरी जगह गोबर न फेंकना ना ...। नही तो मैं......"

लड़की ने लड़के की बात को नहीं स्वर को पकड़ा । ठिठक कर लड़के को रोष नहीं, चाव से निहारती ललना ने वैसी ही अदा से घूरते जवाब दिया था -

" आहा...। बता तो भला क्या करेगा ?"

लड़के ने लड़की की आंखों में झांकते चिढ़ाया -" फेकना तो भला लंगड़ी...। तू देख लेना। तब मैं तुझे यहीं पटक डालूंगा न । तब मुझे कुछ मत कहना "

छोकरे के द्वारा जगायी और लड़की के अंदर जागी कल्पना उसके चेहरे पर लज्जा और कामना का रंग ले उतर आई थी। लड़के की तरफ ताकती वह इठला रही थी -" ऊं-ऊं-ऊं —नहीं ना...। ऐसा मत बोल न..... । अच्छा ले तो एक बार फिर से वो कह के तो बता ज़रा जो अभी कहा। "

इन समूहों में किसी को किसी से ईर्ष्या नहीं होती क्यों कि सभी को एक ही हमाम में रहना है। ईर्ष्या होती भी तो लक्षित को तानों और व्यंग्य के अनुहार से वशीभूत करता वह सुख हासिल कर लेता जिसकी

उसे आकांक्षा थी। कामगारों के समूह की वह चलती फिरती नैतिकता थी। बल्कि झगड़े तब पैदा होते जब कोई संबंध स्थायी और एकाग्र होता संबंधित के मरद या औरत में आता घर के स्थायित्व को खतरा पैदा करता। मध्यवर्गीय नैतिकता के खिलाफ खड़ी यह नैतिकता प्रियहरि को आश्चर्य में डालती थी। उसे इनसे ईर्ष्या होती कि उसके वर्ग में वैसा सुख क्यों नहीं है।

उसके यहां न खेत थे, न खार। इसलिये पहले-पहल उसने जो जाना वह उन देहाती साथियों से ही जाना जो आश्रम के उसके सहपाठी थे। उनमें से किसी की उम्र **15-16** से ज्यादा नही थी, लेकिन प्रियहरि को यह आश्चर्य होता कि उनमें से अनेक के पास बताने को अपने -अपने अनुभव थे। इनमे से वह एक जो भरे बदन का और शायद सब से बड़ा भी था, ऐसे अनुभवों से भरपूर था। उसकी भूरी आंखों में वासना का सम्मोहन था और वैसे प्रयोग बाबाजी के पारिवारिक आयोजनों मे जब-तब षामिल हो वह परिवार की मामियों, भाभियों पर आश्रम में भी करने लगा था। ये सभी यूं तो गांव-गंवई के थे पर सेक्स और छोकरियों की दिलचस्प चर्चाओं मे उस्ताद थे। उन सब का वह सहज स्वभाव था। वह समूह छोकरों का ही था इसलिये जब भी दो-तीन करीबी साथ की एकान्त निशा होती चर्चाओं को यौनानन्द के प्रयोगों में तब्दील होने में देर न लगती। ये प्रयोग आपस की माप-जोख और चुलबुली मुर्गा-लड़ाई से शुरूहोकर कलाइयों की दंड-बैठक, हार्दिक आलिंगन, और पेट या पीठ पर घुड़सवारी तक पहुंचकर खत्म होते थे।

प्रियहरि को प्रतीत होता जैसे वे इस मुआमले में उससे बहुत बड़े हैं। भद्रलोक के संस्कार, नैतिक पाप और पुण्य, दुनिया-जहान का जानकारियों के मामले में वह इन सब से तेज था। बराबर का होने पर भी वे सब उससे इज्जत से पेश आते, लेकिन उस खास मामले में वे उसे बुद्धू समझते थे। जब वह अपनी अरुचि प्रदर्शित करता तो वे उसे समझाते कि सब यही करते हैं । यहां तक कि लड़कियां भी वही चाहती हैं। वह सहज प्रकृति है, मौज की चीज़ है। उनकी निगाह में प्रियहरि को और ज्ञान भले ही था, लेकिन देह-संबंधों के खास मामले में उसे अभी बहुत कुछ सीखना था। ऐसे वक्त जुगुप्सा, ईर्ष्या और लोभ के बीच वह कन्फ्यूज़न में रहा आता और अपना-सा मुह लिये चुप हो जाता। ऐसा द्वंद उसमें बड़ा होने तक रहा आया। उसकी समझ में अधिकाधिक पवित्र प्रेम पर ही टिका जा सकता था। वह प्रेम जहा। आत्मा प्रमुख होती है, देह नहीं।

संबंधों की चाह में वनमाला के पड़ाव तक प्रियहरि हमेशा प्रेम के अमरत्व का भावुक संधान करता रहा था। हालांकि योग्य-अनुकूलता और दिलो-दिमाग की सहधर्मिता में साथी की तलाश में उसका चित्त बाद में भी स्थिर रहा आया था, लेकिन वह वनमाला के साथ का सतत् चलता असमाप्त द्वंद था, जिसने उसे विचलित कर वैकल्पिक राह के प्रयोगों पर ढकेल दिया था। राहत पाने के लिए फौरी-संबंधों की तलाश में जब-तब वह उस वर्ग से लिपट पड़ता जहां ज्यादा नाजो-नखरों के बगैर वह सुलभ हो सकता था, जिसकी उसे तलब थी और जिसकी सीख उसे उसके अ-शास्त्रज्ञ सहचरों से मिली थी। उसे अब प्रतीत होता है उसके अपने हठ में चाहे जितना सच हो, उसके वे साथी गलत नहीं थे। उसे अब अनुभव होता है कि नैतिक परंपराओं और शास्त्रज्ञता के सदियों से ओढ़े आवरण की गंभीर मुद्रा ने सचमुच उस रस को सुखा डाला है जो प्रकृति के खिलंदड़ेपन में है। सारी राहें अंततः वहीं जाती हैं लेकिन इतने घुमावदार चक्कर के साथ कि हम जाना कहां चाहते हैं यही भूल जाते हैं। बस थकान से भरी लंबी ऊब वहां बच रहती है। प्रियहरि ने अब पाया था कि औरतें भी लंबी गंभीरता को प्रशंसा भरी नज़रों से देखती भले हैं, उन्हें राहत उस खिलंदड़ेपन से ही पहुंचती है जो परिणाम देता है। वह याद करता है। अपने वर्ग में भी वनमाला के साथ संबंधों में घर कर गए त्रास से राहत उसे उन ललनाओं से मिली थी जो खिलंदड़ेपन के मूड को एन्जाय करतीं उससे जुड़ी थीं। यह बात अलग है कि वहां भी उन बंधनों और सीमाओं की छाया फिर भी रही आया करती थी जो उनके परिवार की वर्गीय-पृष्ठभूमि से नालबद्ध थी। प्रियहरि की स्मृतियों में एक-एक करके वे बिम्ब उभर रहे थे जहां राहत की छांव में उसने पलों का आनंद उनकी संपूर्णता में लिया था।

उसे उस रमणी का ताना याद आ रहा था जो उम्र में उससे एक-आध साल बड़ी खिली-खुली, प्रेम-पिपासी नवविवाहिता थी - " बस, हो गया ? ऐसा था तो बड़े शौक से बुला क्यों लिया था ?" वह प्रियहरि का आरंभिक अनुभव था। तब वह सचमुच कुछ भी नहीं जानता था।

उसे वह सेविका याद आई जो पहले-पहल उसके यहां काम करने आाई थी। प्रियहरि उसकी झलक पाते ही ठगा सा रह गया था। छरहरी काया में घनीभूत सुन्दरता की वह प्रतिकृति थी। दूध मे जैसे चुटकी भर गुलाल घोलकर रख दिया हो। उसकी गति क्षिप्र थी। काम में गजब की फुर्ती थी। लंबाई में पसरा प्यारा सा मुखड़ा, उसपर अपूर्व कांति में चमकतीं बछड़े सी आंखें, गुलाबी आभा से भरे पारदर्शी होठ और पतली सी खूबसूरत नासिका। नाम था गौरी। जितनी सुघड़ वह थी उससे ठीक उलटे उसकी सास और आदमी की काया थी। कहीं कोई मेल नहीं था। कुछ रोज़ छिपी-छिपी नज़रें मिलती रहीं फिर साफ-सफाई के ही दौर में उस सुन्दरी से प्रियहरि की लिपट-झपट भी शुरू हो गई थी। कभी पीछे से उसकी लहराती चोटी पकड़ खींच लेता, कभी बांहों में घेर अपनी छाती में भींचता उस सुन्दरी के गुदाज स्तनों को मसलता, कभी खुद नाश्ता करता हुआ पास ही फर्श साफ करती उस ललना के छोटे से मुंह में बड़ा सा रसगुल्ला ठूंस देता। बहुत दिनों तक वह प्रियहरि की निगाहों को पढ़ती और उसके कायर भय को भांपती रही।

तब एक रोज़ प्रियहरि की बांहों को परे झटकते हुए खीजकर वह बोली -"बस इतना ही ना....? कुछ जानते, न तानते। बस बहुत हो गया, छोड़ो मुझको । जब देखो पकड़-पकड़कर यूं मेरी चूचियों को मसकते रहते हो जैसे मै तुम्हारी औरत हूं और जेब से दस का नोट तक कभी निकलता नहीं है।"

उस दिन जैसे प्रियहरि को बिजली का झटका लगा। उसका यह भ्रम दूर हो गया कि जो कुछ उनके बीच चल रहा था, वह आपस की प्यास थी। प्रियहरि के लिये वह फौरी प्रेम रहा होगा, लेकिन उस सुन्दरी के लिये शायद वह प्यासी आंखों से हर कहीं रू-ब-रू होता ऐसा अभ्यास था, जिससे उसे गुजरना होता था। वह अभ्यास उसके लिये महज एक खेल रहा होगा, जो उसकी अभावग्रस्त आकांक्षाओं को तसल्ली देने छिपी कमाई का इंतजाम करता था। शायद वह केवल अपने अहं की तुष्टि कम लिये उसकी जिद थी। प्रियहरि ने ठंडे दिमाग से सोचकर यह तय किया था कि वह उस सुन्दरी को रुपयों से लुभाकर ही किसी मौके पर हासिल करेगा। दो-चार ही दिन गुजरे होंगे। यह खबर मिली कि उसको उसके मरद का घर पसंद नहीं था और वह किसी के साथ भाग गई है। पाठ यह कि गूदड़ियों में छिपाकर रखी गई सुंदरता अपनी कीमत जानते ही उधर भाग खड़ी होती है, जिधर उसके कद्रदां होते हैं। फिर यह कि चलती-फिरती ग्राहक आंखों से अभ्यस्त औरत की निगाहें बेहतरी इसी में समझती हैं कि इन मनचली निगाहों को दीवाना बनाने की अपनी हैसियत का भरपूर फायदा उठाते हुए क्यों न उसकी कीमत वसूल लिया जाये ? उससे वे अपनी देह-कामना को भी वैविध्य में पूरा कर सकती थीं और आर्थिक जरूरतों को भी उस हद तक खींच सकती थीं जहां तक उनका शौक पहुंच सके।

माधवी

प्रेमिका चाहे जैसी हो, या जिस उम्र या जिस तबके की हो, दो चीजें उसे खीचती हैं। एक तो उसे बहलाने वाली प्रेमी की बातें और दूसरे जब-तब उससे मिलने वाले उपहार। उपहार पर प्रेमिकाएं अपना अधिकार मानती हैं। चाहत के प्रमाण के अलावा उसमें इस बात की तसल्ली छिपी होती है कि प्रेमी अपनी प्रेमिका का इस्तेमाल जेबी माल की तरह नहीं कर रहा है, बल्कि उसमें औरत की चाहत की कद्र करने की तमीज़ भी है।

प्रियहरि ने पाया था कि कामगारों के वर्ग की स्त्रियों में भी पारिस्थितिक भेद से संस्कारों में परिवर्तन हुआ करते थे। पूरी तौर पर श्रम बेचकर जीवन यापन करने वालों की

तुलना में ऐसे वर्ग की स्त्रियां जिनमें पुरुष अर्थोपार्जन का प्रमुख स्रोत है , जिनमें मध्यवर्गीय समाज की आकांक्षाएं हैं, जो संचयन से संपत्ति की चाह रखते हैं , जो नागर हैं तथा शिक्षा की ओर आकर्षित हैं क्रमश: व्यवहार तथा चरित्र में भी बदलने लगती हैं। यह ज़रूरी नहीं होता कि उससे मूलतः अर्जित संस्कार बदल जाएं , लेकिन तब भी परिवार के स्थायित्व की साधार चाह उनमें मध्यवर्गीय नैतिकता का संचार करने लगती है। प्रियहरि की यह सेविका ऐसी ही थी। गोरी-चिट्टी , गुलाबी दोहरा बदन, कद में नाटी, छोटी सी चिबुक के साथ बिलकुल चौरस चेहरे , हल्की सी चपटी नाक , रसीले ओंठ, खूबसूरत चमकती आंखों , और सदैव मुस्कान की चपलता में खेलते खुशनुमा मिजाज वाली यह यौवनप्राप्ता माधवी थी। चंचला किन्तु सरल स्वभाव की इस गुलाबी सेविका को आंखों की पहली झप्पी में प्रियहरि ने ही पसंद कर लिया था। धीरे-धीरे उसने यह गौर कर लिया था कि सुबह-सुबह उठकर खुद सफाई कर लेने वाला , अपनी जरूरतों के लिये बीबी से बेपरवाह चाय से लेकर खाना तक तैयार कर सकने वाला , बीबी की आदतों के बरखिलाफ चुस्त और मिहनतकश वह खुद इस माधवी के निकटतर है। मौका मिलता तो वे दोनों एक-दूसरे से चुहल करने में न चूकते थे। आम कामगारों की वृत्ति के विपरीत उस एक खास काम के लिए मनाने पर माधवी लजाकर बिदक जाती थी - “नइं न , दीदी देख लेगी तो फौरन निकाल बाहर करेगी।“

जाहिर है कि उसे यह सहज भय होता कि गृहणी की निगाह में वह आ गई तो उसकी रोजी-रोटी का साधन जाता रहेगा। इधर प्रियहरि था कि भूरी-भूरी झाडियों के झुरमुट में खिली गुलाबी जमीन पर पंखुडियों में कैद माधवी की कोमलता में दहकती चटक लाल कली को खोल जाने की हसरतों में लगा रहता था। गाहे-बगाहे माधवी खुद भी प्रियहरि की याचनाओं से सुलग पड़ती थी , लेकिन ऐसा अवसर ही न मिलता था कि दोनों की कामनाएं निर्बाध होकर मिल सकें। तब भी जब अवसर निकलता प्रियहरि और माधवी दोनों बिन्दास खुल पड़ते थे।

एक अवसर आया जब दोनों ने गलबहियां डाले किचन में साथ-साथ पकौड़े बनाए, खाए और एक-दूसरे को खूब खिलाए। एक अन्य अवसर था जब फिर दोनों किचन में थे। यह चाय बना रहा था और वह साफ-सफाई में लगी थी। मालकिन तब कुछ देर को पड़ोस में गई थी। माधवी को शरारत सूझी। उसने सर के पीछे प्रियहरि को उंगलियों की हल्की सी चपत दी और यूं पलट गई जैसे प्रियहरि से बेखबर और निस्पृह हो। कुछ जानने जैसा था नहीं। प्रियहरि ने शरारत ताड़ ली थी। उसका अध-सोया मूड चैतन्य हो उठ खड़ा हुआ। वैसी ही मासूम अदा से वह पलटा। अनजान सी दूसरी तरफ रुख किये झुककर सफाई करती माधवी की कमर को प्रियहरि ने पीछे से घेरा और अपनी दोनो हथेलियां को माधवी की लचकदार गेंदों पर थाप दिया। जांघों के बीच मौज में फूलकर प्रियहरि का मुटाता मन लहरें ले-लेकर माधवी के पुट्ठों को टुनका रहा था । हथेलियों की चुटकियां माधवी के दोनों गुब्बारों के बटनों पर ऐसी कसकर चिमट चली थीं, जैसे बैटरी की गांठ को क्लच दबोच लिया करते हैं। प्रियहरि जानता था कि मन ही मन चाहने वाली माधवी तो क्या थी, न चाहने वाली औरत भी अपने गुब्बारों पर मर्द-जात की हथेलियों का कब्जा होते ही पिघलकर दोहरी होने लगती है। उसपर अगर गुब्बारे की गांठ को चिमटती उँगलियां थिरकती हों तो पनियाती देह की हालत आदमी को निगलते ही बनती है, उगलने की तो नहीं। करंट इतना तगड़ा होता है कि मादा की समूची देह लहराकर खुद लेट और लिपट पड़ती है। माधवी की हालत वैसी ही हो चली थी। उसकी आंखें भूख से भरकर प्रियहरि को ताक रही थीं और कमर दोहरी होती झुकी पड़ रही थी। उन दोनों के बीच से होश और हवाश गायब हो चले थे।

इधर और उधर बिजलियां कडक रही थीं और नम होती जमीन बूंदों से भीग रही थी। झुकती पड़ रही माधवी को कमर से संभालते और उसकी साड़ी के घेर को ऊपर फेकते प्रियहरि ने चाहतों की मिलन की मुआफिक पुजीशन बनाकर तयशुदा काम निबटा डालने के इरादे से सुलगकर लाल होती सुरंग में चिपचिपाती कड़क के साथ जैसे ही एकबारगी माधवी की जड़ को हिलाया ही था कि अचानक कंपाउंड का गेट खडका । माधवी फौरन प्रियहरि की देह से बाहर निकली। पलटकर पल भर उसने प्रियहरि की कड़कड़ाती भुजंग लालिमा को हसरत भरी आंखों से खूब घूरकर देखा और झाड़ू उठा पीछे आंगन में भाग चली। इधर प्रियहरि ने व्यर्थ ही पानी भरी चाय की पतीली गैस पर चढाई और लपककर दरवाजा खोल दिया। यह देखकर कि सब कुछ सामान्य

है घर की मालकिन को तसल्ली हो गई थी। उसे यह नहीं मालूम था कि प्रियहरि ने माधवी से वचन ले लिया है कि वह जल्द ही मौका निकाल अधूरे रहे आए काम को उसके साथ मिलकर पूरा करेगी।

प्रियहरि ने हौले-हौले इसपर गौर किया कि उसकी बीबी बिला वजह ही आए दिनों माधवी पर बिगड़ने लगी थी। यह बिगड़ती और वह उसे मनाने की कोशिश करती। अचानक माधवी का आना बंद हो गया था। प्रियहरि हैरान था कि वह आ क्यों नहीं रही है ? उसे कुछ न बताया गया था। अचानक एक रोज़ मुहल्ले की नुक्कड़ पर माधवी सेटकराया। इस संयोग से दोनों की आंखें चमक उठी थीं। प्रियहरि ने छूटते ही पूछा था -

" अरी माधवी, तुमने आना क्यो बंद कर दिया ? तुम्हें देखने मेरी आंखें तरसती रहीं।"

जवाब मिला -" आप को नहीं मालूम? आप की बीबी ने ही काम छुड़वा दिया। न जाने क्यों वो आए दिन बात-बात पर बिना कारण गुस्सा करती गलती निकालती थीं। काम छुड़वाने का बहाना था तो मैने भी आना बंद कर दिया।"

" कहीं ऐसा तो नहीं कि तुमने कभी खीझकर हम दोनों के बीच की बातों की शिकायतउससे की हो या मुझसे रूठकर अलग हो गई हो ?"

"गो माता की कसम, मैने कभी आप के बारे में कुछ नहीं कहा। और आप से क्यों नाराज होऊंगी ?आप तो हमेशा मुझको बहुत अच्छे लगते थे। मुझको कोई शिकायतनहीं।"- वह बोली।

हंसकर मैने चुहल करते कहा-" कहीं ऐसा तो नहीं कि उसने कभी हम लोगों को पकड़ लिया हो ? या उसको डर लगा हो तुम और मैं किसी दिन एक-दूसरे को बिछाकर लचकते हुए खोदा-खादी करने में न भिड़ जाएं।"

माधवी खिल-खिला कर खूब हंस रही थी।

"हो सकता है। मैं क्या जानूं ?"- उसने कहा।

"साली माधवी तू हंस रही है और मेरी जान निकली जी रही है। इतने दिन बाद आज तो तुझे देख रहा हूं। मेरा जी करता है कि अभी यहीं रास्ते पर ही तुझे पटकूं और सारी जमीन खोद डालूं। बोल क्या कहती है ?" मैने वह कह दिया जो उस वक्त सचमुच मेरे दिल में आ रहा था।

माधवी और ज्यादा मजे लेती खिलखिला पड़ी। वह बोली -

" कह भर रहे हैं। चलो न हो जाए । करके बताओ तब तो मैं जानूंगी।मैं तो तैयार हूँ ।कर सकोगे वैसा आप ?"

बातों भर की बातें थीं। वैसा संभव नहीं था। यह बात वह भी जानती थी और मैं भी। माधवी प्रियहरिऔर उसके घर के लिये एक सेविका से कहीं अधिक थी। बड़े मनोयोग से वह उनके यहां काम में यूं रम चली थी जैसे वह प्रियहरि के नहीं अपने ही घर को साज-संवार रही थी। किसी भी परिस्थिति में उसने गुलाबी मदभरे होठों की मुस्कुराहट खोई नहीं। उसकी बच्चों सी सरल खिलखिलाहट अपनी सांगीतिक खनक के साथ प्रियहरि में सदैव गूंजती सहेगी। प्रियहरि को इस बात का मलाल रहा आया कि घर मालकिन ने माधवी की सेवाओं का पुरस्कार ईर्ष्या में सेवाओं से युक्तिपूर्वक हटा कर दिया। उसकी जगह खूब चुनकर उसने छांटबीनकर ऐसी गंदी और भयावह शक्ल की सेविका को चुना जिसे देखकर, जिसकी अटपटी बोली सुनकर प्रियहरि तो क्या नन्हे- बच्चों तक को मितली आती थी।

प्रियहरि के लिये लिए अब भी माधवी वैसी ही है। उसका ठिकाना दूर हो चला है। जब भी मिलती है, दोनों के बीच चुहल ऐसी ही होती है। हर बार प्रियहरि माधवी से अपनी कामना दोहराता है। हर बार शब्दों से ही प्रियहरि को लीलती माधवी की लालसा में चमकती आंखों की पुतलियां " हाय रे, क्या करूं, काश! छककर मैं तुम्हारी सेवा कर पाती ? तुम्हारे लिए प्यासी तो मैं भी हूं, लेकिन अवसर तो बने " का मौन जवाब दर्ज कर विवशता में बुझ जाती हैं।

प्रेमिका चाहे जैसी हो; जिस उम्र या जिस तबके की हो; दो चीजें उसे खीचती हैं। एक तो उसे बहलाने वाली प्रेमी की बातें और दूसरे जब तब उससे मिलने वाले उपहार। उपहार पर प्रेमिकाएं अपना अधिकार मानती हैं। चाहत के प्रमाण के अलावा उसमें इस बात की तसल्ली छिपी होती है कि प्रेमी अपनी प्रेमिका का इस्तेमाल जेबी माल की तरह नहीं कर रहा है, बल्कि उसमें औरत की चाहत की कद्र करने की तमीज़ भी है। वह स्त्री के उस मनोविज्ञान का पोषक भी है, जो यह दर्शाताहै कि वह उस तरह आर्थिक और सामाजिक संरक्षण की उम्मीद

उस आदमी से रखती है, जो उससे लगाव रखता है। खुले या छिपे तौर पर उन सभी रमणियों में प्रियहरि ने यह वृत्ति पाई थी जो उसके दिल के करीब थीं। यह विचित्र था कि माधवी और उससे पहले आरसी इस वृत्ति का अपवाद थीं। आरसी से प्रियहरि के संबंध एकदम निर्बाध और खुले थे। उसकी आर्थिक जरूरतें भी थीं। लेकिन उसे सपने में भी खयाल न आया कि वह प्रियहरि से कभी कुछ चाहे। ठीक वैसी ही माधवी भी थी। अनेक बार माधवी की चाहत में प्रियहरि ने अपनी ही ओर से नि:शर्त सौ-दो सौ रूपयों की रकम उसके हाथों में रख दिये थे, लेकिन माधवी ने वैसा कभी स्वीकार नहीं किया। वह जैसी थी वैसे ही सहज थी। संबंध उसके लिये हृदय की आत्मिक अनुभूति और पारस्परिक विश्वास था। उसी में उसे तसल्ली थी। संभवत: उपहार को प्रेम का पर्याय बनाने का चलन पश्चिम के उस चलन की देन था जो युवा रमणियों के बीच क्रमश:बतौर फैशन इधर चल पड़ा था।

प्रियहरि को ओ हेनरी या समरसेट माम जाने किसकी वह कथा याद हो आई जिसमें अकिंचनता में दिन गुजार रहे प्रेमी और प्रेमिका के पास एक-दूसरे को क्रिसमस का उपहार जुटाने जब कुछ नहीं होता तो प्रेमिका अपने वे खूबसूरत बाल बेचकर उपहार मोल लेती है,जिनपर उसका प्रेमी फिदा है। ऐसे ही उसका प्रेमी अपनी वह खूबसूरत घड़ी बेच डालता है, जिसे देखना उसकी प्रिया को पसन्द है। हाल ही छपी वह कहानी भी, जिसमें विवश प्रिय को छोड़कर किसी और के साथ ब्याह में चालीस साल का अरसा भौतिक तसल्लियों में गुजार चुकी बुढ़िया पोती-पोतों और अपने पति की चाहत से बसा-बसाया घर छोड़ और स्मृतियों की बेचैनी में सारे बंधन तोड़ सरे आम युवाकाल के अपने उस प्रेमी को समर्पित हो जाती है, जिसे वह कभी भुला न पाने के दंष में जीती जिन्दगी खपा चुकी थी।: (कहानी : रंगमहल में नाचे राधा : नीलाक्षी सिंह :)

फिर इन दोनों से भिन्न असंभव यथार्थ को संभावना में प्रदर्शित करती वह कहानी भी तो जिसमे अपने मनो-विकलांग पुत्र की अदम्य प्राकृत-कामना को पूरी करती उसकी मां सारे संकोच तोड़ उसे वह ऐन्द्रिक-सुख प्रदान करती है जो केवल पत्नी या प्रेमिका ही प्रदान कर सकती थी। सिलसिला चला तो प्रियहरि की निगाह में उस लकड़हारे की याद आई जिससे किसी असमर्थ सामंत पति से विवशता में प्यासी रही आई बीबी उस प्यास को बुझाने टूट पड़ती है। प्रियहरि को वह मुग्धा किशोरी याद आई जिसकी उतावली प्यास अपने उम्रदराज बूढे प्रेमी से बुझती है। फिर कालिदास भी जिन्होने अपनी रचना कुमारसंभव में शिवऔर पार्वती के ऐन्द्रिक मिलन में रति का ललित शास्त्र ही रच डाला।

माधवी से तो चुहल के लम्बे सम्बन्ध बन चुके थे लेकिन चित्त जहां त्रस्त, द्विधाग्रस्त, और पिपासा की तड़पन से भरा हो वहाँ क्या सचमुच लम्बे संबंधों की दरकार होती है ? बेचैनी में प्यासे को जहां से मिले वह तो चुल्लू भर पानी से ही सही अपनी प्यास बुझा रहत पा लेना चाहता है । प्रियहरि की आँखों में उस चटक बदन श्यामांगी की तस्वीर उभर आई जो उन दिनों आकस्मिक संयोग में ही नैन लड़ाती निष्प्रयास ही उसमें धंस चली थी ।

सरबनी

दिशाहीन अंधरी गलियों में भटकता प्रियहरि का चित्त अपने आप से पूछता है कि वह क्या चाहता है ? वह किसे ढूंढ रहा है ? जवाब इतनी जल्दी नहीं मिला करते। शायद उसे अपने ही अंदर के उस स्वप्न की तलाश है। उस अभाव को भरने की तलाश, जो उसे लगातार भटकाये जा रही है। शायद सच वही है। बाहर दीख पड़ती दुनिया से परे यह एक और दुनिया है, जहां मनुष्य के अंदर भटकते अभावों के प्रेत बसा करते हैं। एक-दूसरे से टकराते एक-दूसरे में अपने सपनों की संभावनाएं वे तलाशते होते हैं, जो शायद कभी पूरे न हो सकें।

उसका नाम सरबनी था। छत पर काम करने कारीगर के साथ की मजदूरनी। निचली मंजिल से ईंट उठाकर छत पर ले जाने का काम कर रही थी। यह नई कौन आई है ? जिज्ञासा से बाहर निकल कर प्रियहरि ने गली में झांका। वहां और कोई नहीं था। दुबली-पतली, नन्हे से चौकोर चेहरे, दबे-दबे कोमल

पयोधरों, क्षीण कटि, और लहराते बदन वाली नमकीन श्यामवर्णी काया ने वैसी ही जिज्ञासा से प्रियहरि को निहारा जैसी उसे टटोलती प्रियहरि की निगाहों में भरी थी। पल भर दोनों जड़वत् एक-दूसरे की आंखों में ठहरे स्थिर हो चले थे। उस श्यामा की चमकती आंखों की चितवनि प्रियहरि की चितवनि में तरंगित होती अपने मौन में ही यह कह रही थी कि वह मैने पढ़ लिया है जो तुममें लिखा है। दोनों तरफ से आंखों का जवाब साफ था - "मुझे तुम पसंद हो। हमारी जोड़ी ठीक जमेगी।"

बगल से गुजरती उसे प्रियहरि की निगाहें थामकर रोक लेती हैं। अंदर की ठिठक से आवाज़ भी भारी होकर ठिठकती है।

" आज तुम आई हो **?**"

" हां, आज ही तो आई हूं।"

" बहुत अच्छी हो। क्या नाम है **?**"

" सरबनी नाम है मेरा।"

अंदर जो चीख मची है वह बाहर की वाणी को स्तब्ध किये है। वह प्रतीक्षा में है कि यह आगे कुछ कहे और इसे एकदम सूझता नहीं कि आगे कैसे बढ़े? मौन वही तोड़ती है -

"पानी पिलाओ ना। खूब प्यास लगी है।"

वह उसकी प्यास बुझाने का यत्न करता है। उसे मालूम नहीं कि उसकी प्यास बुझी या और बढ़ गई। सरवनी बोलती है -" मैं जाती हूं नहीं तो मिस्त्री सोचेगा कि क्या कर रही है।"

दो-तीन रोज़ में सरवनी और प्रियहरि के बीच अपनापा लगातार इस तरह गहराता चला गया कि एक-दूसरे की आनंद की गुदगुदी तरंगों से गोपेन्द्रियों में तूफान मचलने लगा था। आंखों-आंखों में एक-दूसरे को वे पीते तरसते रहे कि कब और कैसे मौका निकले और वे एक-दूसरे को अपने बदन में समूचे का समूचा लील जाएं। मगर नीचे घर की हलचल और और छत पर अधेड़ कारीगर की चौकसी। मौका बस इतना मिलता कि सीढ़ियों पर गले मिलते, छातियां मसलते, चूमते-चाटते और माकूल उपाय के संधान की राह तलाशते वे मन को मसोसते रहे।

प्रियहरि तो सारे लिहाजों को धता बताने की हद तक उतावला हो जाता, लेकिन वह कहती कि "अब छोड़ दो। तुम्हारी घरवाली ने देख लिया तो मुसीबत हो जाएगी। उसे कारीगर-ठेकेदार का भय भी सताता कि कहीं वह उसे काम से निकाल बाहर न करे। वह पूछती कि यहां हमारा काम कैसे बनेगा ? तुम्हारा तो परिवार साथ रहता है और मुझपर कारीगर की निगरानी है।"

उपाय एक ही था कि कारीगर उस अकेली को ही दीवारों की सिंचाई जैसे छोटे-मोटे काम पर ही दो-चार रोज़ के लिये छोड़ जाये। मगर कारीगर की निगाहें भी उस्ताद की थीं। वह कह कुछ न सकता था लेकिन दोनों के इरादे उसने पढ़ लिये थे। कारीगर ने इन दिनों गौर कर लिया था कि जब-तब प्रियहरी के फेरे लगते तो बहाना उससे बातों का होता लेकिन उसकी मजदूरिन और प्रियहरि के चेहरों पर लिखावट दूसरी होती।

चौथे रोज़ मिस्त्री का काम न था। न वह आया और न वो आई, जिसकी तलब प्रियहरि की चाहत को थी। पांचवे रोज सुबह-सुबह वह गेट पर नमूदार हुई। मिली तो कहा -

"मिस्त्री ने यहां से मचान ले आने भेजा है। दूसरी जगह काम चल रहा है।" कुछ समय उसी बहाने दोनों ने गुजारा। मचान उस सरवरी के लिए भारी था। वह मजदूरनी भले ही थी, लेकिन शायद नई-नई। वह दुबली-पतली तो थी ही, कोमलांगी भी थी। कठोर मिहनत से बचती थी। उसपर सामने खड़े प्रियहरि के लाड़ ने और नजाकत से उसे भर दिया था।

सरवरी ने कहा था कहा -"चलो न, मचान उठाने में मदद कर दो।"

उस बहाने देहों के बीच और छुआ-छुई और छेड़-छाड़ हुई। सरवरी ने शिकायतकी कि प्रियहरि ने कारीगर से ठीक से न कहा होगा कि उसे सिंचाई के लिये यहीं भेज दे। प्रियहरि ने कहा था, लेकिन खास सरवरी के नाम का जिकर कमजोरी जाहिर करता इसलिए इस कृश नमकीना की फरमाइशनहीं कर सका था। उस रोज़ फोन कर फिर उसे कहा। असर हुआ, लेकिन दूसरे दिन सिंचाई के लिए जो भेजी गई, वह कोई और वरिष्ठ-वया थी। तब

भी प्रियहरि की अपनी वाली दोपहर की छुट्टी में प्रियहरि के पास खिंची चली आई थी। नाना बहानों और विधियों से चुहलबाजी में समय बीत चला। मिस्त्री की चालाकी को सरवरी कोसती रही कि उसने किसी और को क्यों भेज दिया ? अनुभवों और वय में प्रौढ़ा उसकी खेली-खाई साथिन पर उजागर हो चला था कि सरवरी और प्रियहरि का मूड एक-दूसरे में प्रवेश करने मरा पड़ रहा था। उसने सरवरी से कहा-" तो क्या हुआ ? लो न बहिन, ऐसा करते हैं कि इस समय तेरी जगह अब मैं उस ठिकाने पर चली जाती हूं और तू यहीं रह जा इनके पास। तुम लोग मजे से अपना काम कर लेना।"

वैसा संभव न हुआ। कारीगर सारा माजरा भांप लेता था। सरवरी को लौटने में देर हो चली थी। यहां आने की बात कारीगर तक न पहुंचाने का अनुरोध करती वह मन मसोसती लौट गई थी। दूसरे दिन वह दोपहर बाद सीधे पहली मंजिल पर आई। प्रियहरि अपने निजी कमरे में उस वक्त अकेला बैठा काम कर रहा था। रोती हुई सरवरी बेझिझक प्रियहरि से लिपट गई। बिजली के मिस्त्री लड़कों ने, जो पहले दिन आंगन में नीचे काम पर लगे थे, ईर्ष्यावश कारीगर से जाकर दरअसल यह शिकायतकर दी थी कि सरवरी यहां आई थी और देर तक चुहलबाजियां करती बैठी रही थी। सरवरी ने प्रियहरि से बताया कि कल दोपहर-बाद देर से काम पर पहुंचने के कारण सब के सामने कारीगर ने उसे फटकारा और अपमानित किया था । आज सुबह ठिकाने पर पहुचते ही उसे फिर फटकार मिली और मिस्त्री ने काम पर रखने से मना कर दिया। चुगली करने वालों को कोसती वह आंसू बहाये जा रही थी। उसे चिन्ता थी कि आज की मजदूरी मारी गई और सबब बताने के लिये उसके पास कोई कारण न था। गले से लगाए अपने पास बिठा प्रियहरि ने भरपूर तसल्ली दी। कभी सिर और कभी गालों पर प्यार से हाथ फेरते, उस रोती के ओठों को चूमते कब और कैसे उसने होश खोया और किस तरह खुद बेहोश होती सरवरी उसे निगल गई इसका पता भी न चल सका। प्रियहरि ने उसे बिदा करते न केवल उसकी मजदूरी की भरपाई की बल्कि प्यार की अतिरिक्त भेंट दी। सरवरी की इच्छा थी कि प्रियहरि उसे दो-चार रोज़ और घर की निजी सेवा के लिये आने दे, लेकिन उसने मना कर दिया क्यों कि कारीगर के फेरे अभी और लगने थे। याद और संपर्क के ठिकाने बताते सरवरी ने प्रियहरि से फिर आकर अपने साथ ले चलने का अनुहार किया था । उसने सुझाया था कि सुबह मजूरों के हाट में प्रियहरी आए और बस एक निगाह डालता उसके सामने से गुजर जाए । उसका पीछा करती वह दूर चलकर मिल लेगी । बस फ़िर दिन भर वह मौज में प्रियह रि के साथ जहां चाहे रही आएगी । साथ की लिजलिजी कल्पना के बावजूद उस पर अमल करने की मंशा और सरवरी को याद करते हुए भी उस तरफ भटकने में प्रियहरि संकोच कर गया।

सरवरी से प्रियहरि की दोबारा मुठभेड़ नहीं हुई। वह जानता था कि नई-नई होने के बावजूद सरवरी अपने वर्ग के व्यावसायिक तौर-तरीकों में ढल चुकी थी। वह जानता था कि उसका पति रोज़ शराब पीता और अपने साथ उसे भी पीने पर मजबूर करता था। वह जानता था कि वह सरवरी से पैसे उगाहता पिटाई करता बेरहमी से रौंदता था। वह समझ सकता था कि आरंभिक अनुभवों के बाद सरवरी के जेहन में प्यार-वार से मरहूम उन मर्दों की छबि रची होगी जो रुपया फेंकते और पीते-पिलाते पूरी कीमत वसूलने उसे बेरहमी से रौंदते रहे हैं। वह अनुमान कर सकता है कि देह के अविकल यांत्रिक अभ्यास से उसकी कोमल भावनाएं पथराकर ग्राहकी और अर्थ-संसाधन में लक्ष्यीभूत हो चली होंगी।

तब भी उसे याद करता प्रियहरि सोचता है कि अगर सरवरी वैसी ही थी तो सरवरी में उसे ठीक वही कोमल आग्रह अपने प्रति क्योंकर देखने में आया, जो उन क्षणों में खुद प्रियहरि में समाया था? क्यों वह उसके साथ के लिये दीवानगी से भर चली थी? क्या वह महज चतुराई भरा एक नाटक था **?** शायद,! और शायद नहीं भी। शायद का "नहीं" इसलिये कि सरवरी में भी एक औरत छिपी थी, जिसमें यह कामना छिपी थी कि अपने वर्ग से बाहर का कोई कद्रदां उसे ऐसा मिले जिसकी छबि पर वह सम्मोहित हो, जो उसे सामान की तरह रौंदकर न चला जाए बल्कि उसे अपनेपन का, प्यार और सहानुभूति का स्पर्श दे। प्रियहरि को औरत में तब्दील उस लड़की का स्मरण हो आया जिसमें इस सरबनी की ही छबि थी। वह भी घर से मायूस एक मजदूरनी ही थी। यह सरबनी थी, वह थी सरोजनी। चलती सड़क का वह रोमांस अब भी प्रियहरि के चित्त में अक्सर कौंधता है । उसे वह सब अच्छी तरह याद है ।

सड़क का सपना : सरोजनी

प्रिंस कालेज के पचास एकड़ में फैले परिसर में मुखय सड़क से लगी चहारदीवारी को हटा अंदर जमीन पर आमदनी बढ़ाने की नीयत से बड़ी-बड़ी दूकानें बनाई जा रही थी। इंजीनियर का चतुर ठेकेदार आसपास के गांवों से दिहाड़ी पर जीवन यापन करते मजदूरों की एक फौज बटोर ले आया था। टूटी चहारदीवारी के भीतर ईंट की कच्ची दीवारों और प्लास्टिक की चादरों से काम चलाऊ ढांचे तैयार कर दिए थे। इन्हीं में इन बन्धक मजदूरों का डेरा था। वह लड़की इन्ही ढांचों के बीच से सड़क की विभाजक सीमारेखा फांद शहर की ओर जाने वाले बाजू की सड़क के किनारे पशोपेश में खड़ी थी। उम्र उसकी बाईस - तेईस से ज्यादा की न होगी। तांबई श्यामलता से भरा छोटा सा अण्डाकार चेहरा, चेहरे पर बोलती बड़ी-बड़ी आंखें, क्षीण देहयष्टि और और साधारण सी, लेकिन साधारण मजदूरों की तुलना में कुछ सलीके से लिपटी उसकी जवानी प्लास्टिक के बोरे से बने थैले को थामें इधर-उधर निगाह डालती संकोच और पशोपेश में खड़ी थी।

रविवार के उस दिन प्रियहरि ने कोशिश की थी कि छोटे-मोटे काम निबटा ले। जहां-जहां गया दुकानें बंद मिलीं। दोपहर बाद अभी-अभी लौटकर वह उन व्यर्थ गए क्षणों को कोस रहा था जिनमें उस मित्र से मुलाकात की मुहिम का क्षण भी था जिसने उसे उबा दिया था। मित्र को ग्राहकों में भिड़ा देख प्रियहरि ने वहां भी बैठना गवारा नहीं किया। वह उल्टे पांव लौट चला था। छुटकी ने जरूर उस पर गौर किया था और आवाज लगाते उसे रोकना चाहा था - " अंकल रुकिए ना, क्यों जा रहे हैं ", लेकिन वह नहीं रुका था।

ऊबकर अन्यमनस्कता की स्थिति में ही प्रियहरि किंकर्तव्यविमूढ़ता को झटका देते अन्ततः टहलने निकल पड़ा था। वह चाहता था कि बाहर कहीं इन्टरनेट पर बैठकर वह अपने कई-कई ई-मेलों पर इस नामुराद उम्मीद से मन को बहलाए कि शायद कोई चमत्कारी खबर हो। शहर की उस लम्बी मुख्य सड़क में ऐसी ही अवस्था में उस शाम उस लड़की और प्रियहरि की शक्ल में दो पशोपेश ग्रस्त अन्यमनस्कों को टकराता पाया।

लड़की की आँखों ने सामने से आते प्रियहरि की आँखों को अपनी ओर देखता पाया। उस पार थैला विहीन हाथ लहराया-

"ए भइया, सुन-तो........ सुन-तो.....।"

प्रियहरि उसकी आँखों में झांकता रुक गया था

"ए मेर अनाज के दुकान हा अभी खुले हे के बंद हो गेहे"

प्रियहरि समझ न पाया कि वह किस दूकान के बारे में पूछ रही है। वहां तो अनाज की कोई दूकान नहीं थी। खासकर अगर लड़की का आशय किसी सरकारी राशन की दूकान से था तो उसका भी उसे ध्यान नहीं था। उसने जवाब दिया कि उसे ध्यान नहीं था कि सड़क के उस किनारे ऐसी कोई दूकान खुली थी या नही। उसने पूछा कि वह किस विशेष दूकान के बारे में पूछ रही थी। लड़की ने हाथ के इशारों से बताया कि उधर आगे जो दूकानें थीं उनके बारे में उसका संकेत था। प्रियहरि ने उसे बताया कि वहां तो आस-पास अनाज की कोई दूकान नही थी।

"अरे मैं तो कुछु जानव नहीं इंहा के बारे में। कहां जाहूं"

लड़की बुदबुदाई और फिर प्रियहरि से पूछा - "भैया तोला (तुम्हे) कुछू मालूम हे का कि अनाज के दुकान ए डहर (इस ओर आस-पास) कहां होही।"

प्रियहरि के ध्यान में था कि लड़की सड़क के इसी ओर गली के किसी घर से आकर सड़क पर आ खड़ी थी। उसे अचरज हुआ कि उस लड़की को आस-पास की चीजें मालूम न थी।

उसने पूछा- "तुम कहां रहती हो **?**"

लड़की ने जिस जगह इशारा किया उससे लगा कि वहां पास किसी घर में रहती होगी।

प्रियहरि ने पूछा - "तुम नई आई हो क्या **?**"

लड़की ने बताया कि नई-नई ही वह आई है।
"तुम्हारे घर में और कोई नहीं है क्या ? नई-नई शादी होकर आई हो ऐसा लगता है। तुम्हारा आदमी क्या काम करता है?"
लड़की ऐसे सवालों के लिए तैयार न थी। उसने संकुचित भाव से संक्षिप्त उत्तर दिया -
" नही भइया, मै तो इंहा काम करे बर आए हौं। मोर कका हा मोला लेके आए हे।"
जैसे इन अप्रत्याशित सवालों को वह टालना चाहती हो। उसने प्रियहरि से उतावले स्वर में फिर अपनी समस्या रखी -
" बताओ ना, यहां कहां मिलेगी दुकान। मुझे चांवल खरीदना है।"
प्रियहरि उसके साथ मुड़ चला था।
"आओ न देखते हैं आगे।"
दोनो सहमते, सकुचते साथ-साथ सड़क के किनारे चले जा रहे थे। लड़की को संकोच था कि लोग उसे साथ देखकर कुछ और न समझें। प्रियहरि को संकोच इस बात का था कि उसकी भद्रता इस गंवई की लड़की के संयोग से संदेहास्पद न बन जाए। संदेह को बचाने दोनो के तार जुड़ रहे थे।
सड़क के किनारे की दूकानों पर नजर डालती लड़की ने कहा- " यहां दुकान खुली तो है।"
प्रियहरि ने टोका " ये छोटी दूकानें है। अनाज यहां नही मिलता। वैसे तुम चाहो तो पूछ लें।"
"जहां मिल सके वो दुकान कहां मिलेगी। कितनी दूर है?"
प्रियहरि ने हाथ के इशारे से बताया -
" ये जो सड़क जा रही है, न उससे हम मुड़ेंगे तो कालोनी में एक-दो ही दुकानें सोसाइटी भवन के पास है। मै वहीं से आ रहा हूं। वे खुली हैं। वहीं अनाज मिल पाएगा।"
साथ-साथ होती लड़की अब प्रियहरि के बगल से चलती कालोनी की सड़क पर थी। चलते-चलते लड़की को भय लगा। उसने पूछा -
" और कितनी दूर है ? बहुत दूर होगा तो मै नही जाऊंगी।"
प्रियहरि बोला - "घबराओ मत, मुझपर विश्वास करो। ऐसा वैसा मन में न लाओ। चली-चलो आगे पास ही है।"
"मुझे डर लगता है, मै रास्ता न भूल न जाऊँ। वापस कैसे जाऊँगी।" - लड़की ने कहा।
"तुम बहुत भोली हो, प्रियहरि ने कहा - मै तुम्हें वापस वहीं छोड़ दूंगा जहां हम मिले थे।"
प्रियहरि के कहने पर लड़की कालोनी की चौड़ी सड़क पार कर दायीं ओर साथ चल रही थी। अब चोरी-छिपे दोनो एक दूसरे को देखने लगे। लड़की अभी-अभी जवान हुई थी। परिस्थितियों के प्रहार ने भले उसे निचले तबके में डाल मजदूरी को लाचार कर दिया था, लेकिन उसके सुतवां बदन में अब भी कोमलता और मासूमियत थी। उसकी नजरों ने लड़की को तौला। कद उससे छोटा, वजन तकरीबन पैंतालिस किलो, मिलती-जुलती रंगत, पतली टांगे, बारीक बीस इंची कमर, ढला हुआ समानुकूल दुबला शरीर। जोड़ी की समानुकूलता का प्रतिफल चित्त की कल्पना में बावला कर देने वाली समागम क्रीड़ा की दृश्यावलियों में उभरने लगा था।
लड़की प्रियहरि के अब करीब आ गई थी। उसके चित्त में भी वैसे ही दृश्य उभरने लगे थे। यह संक्रमण लड़की से प्रियहरि में, प्रियहरि से लड़की में या साथ-साथ हुआ इसे कहा नही जा सकता।
बगल से गुजरती कार से बचाने प्रियहरि ने लड़की को हथेली लपकी और अपनी ओर खींच लिया था -
"तुम भी ! थोड़ा ध्यान रखा करो न ! अभी कुछ हो जाता तो।"
लड़की निःशब्द थी लेकिन उसकी आँखों ने प्रियहरि के चेहरे की तरक मुग्ध कृतज्ञता ज्ञापित की। उसे अच्छा लग रहा था कि कोई था जो ऐसी फिक्रमंदी और नज़ाकत से उसे संभाल रहा था। उसके अंदर इस तरह लहर मारते अपनेपन ने अतीत के उस निर्मम समय के प्रति उसमे वितृष्णा जगाई जिससे वह उबरने छटपटाती रही आई थी। अल्हड़ किशोरी थी। बाप-मां के पास छोटी किसानी और रोजी-मजूरी। गांव में बड़े मनोरंजन थे नही। औरतों के मुंह से गालियों में, किशोर लड़कों के मुख से वासना भरी ललचाती फिकरों वाली

पेशकश में, और किशोरी सहेलियों की संगत में उन ललचाती फिकरों वाली पेशकाशों की व्याखया के मनोरंजन में उसके देहाती स्कूल और खेत-खार वाली दिनचर्या गुजरती रही थी।

गरीबी की झंझट में अपनी जिम्मेदारी से छुटकारा पाने और अपना भार हल्का करने उसके बाप ने पांचवी कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते उसका ब्याह कर दिया था। जिले के ही एक गांव का उजड्ड लड़का था वह। बेढंगी सूरत का उसका आदमी भी अभी छोकरा ही था। लेकिन उजड्ड और बदतमीज। गांव में दारूखोरी की लत थी। वह भी नौसिखिया दर्जीगिरी करता, लौंडो के साथ हुल्लड़ करता और दीगर निठल्ले गंवारू मर्दों की तरह उसपर रौब झाड़ता हुआ हर बात में डांटता फटकारता था। कमाई-धमाई का नाम नही और औरतों को पेज- पसिया (चावल की माड़) पिलाता कमाई करने और रुपये लाने कोसता रहता था।

पिछले सालों से फटफटिया का शौक चर्राया तो लात मार-मार कर भगाता हुआ वह अपनी औरत को ताने देता कि बाप से मांगकर वह रुपये लाए ताकि वह भी 'फटफटिया' खरीद सके। औरत से झगड़े, फरमाइसें और बाहर साथी छोकरों के साथ दीगर औरतों को पटाने की मुहिम और ऐयाशी। घर में वह आता तो जब-तब उसे ढकेलकर चढ़ जाता और दो मिनट में खाली होता फुस्स हो जाता। लड़की यदा-कदा सिनेमा या टीवी देख लेती थी। उसे चुभता कि वैसा मौज और प्यार उसकी जिन्दगी में क्यों नही, जो सिनेमा में हीरो-हीरोईन के बीच चलता है। लड़के को छोड़कर वह बाप के घर आ बैठी थी। वहां भी वैसे ही देहाती छोकरों और मर्दों की निगाहें। छोड़ा हुआ उसका आदमी यानी छोकरा जब-तब धमक जाता और लड़की पर दावा जताता था। वह जबरस्ती करता, मारता-पिटता और लड़की थी कि उससे असंतुष्ट थी। वह जाने को तैयार न होती थी। झगड़ों-झांसो के तंग बाप ने लड़की को रिश्ते के एक चाचा के साथ मजदूरी करने यहां दफा कर दिया था। उसे समझ न आता था कि वह कहां जाये, क्या करे **?**

गांव से ठेके में मजदूरों के झुंड बटोरने इस बड़े शहर का ठेकेदार पहुंचा था । चाचा के साथ यह सरबनी भी सारे सपनों को ईंट-गारा-पत्थर बना ढोने के लिए वह यहां पहुंच गई थी। न खाने को दाने थे, न पकाने को तेल। ठेकेदार से मिली पेशगी दिहाड़ी के सौ रुपये और सीमेंट के फटे बोरे का थैला लेकर वह निकल पड़ी थी। निकल भी न पड़ी थी बल्कि उसके अधेड़ चाचा ने अपने पैसे टेंट में दवा-दारू पीते हुए उसे भगा दिया था कि ढूंढ-ढांढ कर वह जरूरी अनाज खरीद लाए। किस्मत को कोसती लड़की में इतनी क्षमता नहीं थी कि वह चाचा को दुत्कार उससे झगड़ बैठे। सरबनी दिन में ठेकेदार की मजूरी करती और यह उसका चाचा रात में उससे अपनी मजदूरी वसूलता था । सरबानी अकेली और अनजान थी । वह अकेली भाग न सकती थी लेकिन यह इच्छा उसमें जरूर थी कि भगवान उसे उन सब हालातों से मुक्ति दिलाए तो अच्छा हो। इस सब के हाथों पराश्रित, अपमानित जिन्दगी जीने से अच्छा तो उसे यही सूझता कि वह निकल भागे। अपनी जिन्दगी आप, अपनी शर्तों पर वह जिए फिर चाहे उसे कोई भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े **?**

ऐसी ही मनःस्थिति में सड़क पर भद्रलोक और सौम्य प्रियहरि उसकी आँखों से टकराया था। वे पल तूफान को छिपाये चुप्पी के थे। दोनो "आगे क्या" के पशोपेश में डूबे तूफान के बीज देख रहे थे। लड़की की चुप्पी की तरह प्रियहरि की चुप्पी भी मन को वाचाल किए थी। वह अपनी किस्मत को देख रहा था। साथ की प्यास उसे हमेशा अधूरा छोड़ गई थी। वह अपनी उन प्रेमिकाओं की छवियां देख रहा था, जिनका साथ उसे तृप्त करता बाधित परिस्थितियों में और प्यास जगाना अतृप्त कर गया था। या फिर जिनके साथ की चाहत उसे कुएं से निरन्तर और दूर ढकेलती प्यास को अमरत्व प्रदान कर रही थी। उसे वह उबाऊ क्रीड़ाभ्यास दिखाई पड़ा था जो दो टांगे खीझकर कर्तव्य की तरह पसर जाती थीं। रूखेपन से वे उसे निर्देशित करतीं कि क्यों वह "ऐसा नही", "ऐसे", "वैसे" कहता उन टांगों की मालकिन को परेशान किए जा रहा है। डरकर चुपचाप वह सीधे कुएं में उतर पड़ता और चुल्लू-चुल्लू पानी पीता कर्तव्य पूरा करने की तरह ही बाहर लौट जाता था। कभी-कभी तो ऐसा महसूस होता जैसे वह किसी शव के पास लेटा हुआ हो। अच्छी खासी पिपासा जब सवितृष्ण हो ठंडी पड़ जाती थी। मन को समझाता-बुझाता तब प्रियहरि उन छवियों की तस्वीरों में उसे उलझाता जो ठंडे पड़े मन में गर्मी जगातीं और यत्नपूर्वक प्यास को बुझाने की क्रिया के लिए जगाए रखतीं। शुरुआत एक तस्वीर से होती और पूरा अल्बम खुलता जाता था। उन क्षणों में यत्नपूर्वक बरकरार रखी प्यास तो बुझ जाती लेकिन फिर उसे

यूं लगता जैसे वह खारा पानी पीकर काम चलाता लौट आया हो। वह जानता था कि उसके जात के जितने चेहरे उसकी नजर में आते थे सब के अंदर वही घटता था। वह सोचता ऐसा क्यों होता है कि मीठे पानी का कुआं घर की चौहद्दी में बंधकर खारा हो जाता है।

दो चुप्पियों के बीच एक तार था जो निःशब्दता से जुड़ा था। बोझ से दबे पड़े मौन का भार दिलो-दिमाग पर पड़ रहा था और दिलो-दिमाग के भार से कंठ अवरुद्ध हुआ जा रहा था। ऐसे ही कंठ से प्रियहरि की वाणी फूटी -

"ऐ...इ, अपना नाम नहीं बताओगी"

'मेरा नाम सरोजनी है', लड़की ने कहा।

'तुम्हारा नाम बहुत प्यारा है, तुम बहुत अच्छी हो'- प्रियहरि ने कहा।

वह बताना चाहता था कि सरोजनी उसके प्यार की पहली छवि थी। किशोरावस्था की छवि- कोमल, अछूती, सरल, असंस्पर्शित, लेकिन उसने बताया नही। यह लड़की जिसका नाम अब तक प्रियहरि नही जानता था, यहां से सरोजनी बन चली

'सरोजनी, मुझे तुम पसंद हो। भोली सी, प्यारी सी। बताओ न तुम्हारा घर कहां है ? तुम्हारी शादी हो गई क्या ? तुम्हारा आदमी कहां है ? क्या काम करता है ?

सरोजनी ने संक्षिप्त में वह सब बता दिया जो उसकी स्मृतियों पर कुछ क्षण पहले बोझ की तरह छा गया था। उसने कहा -

'क्या कहूं, उस निकम्मे आदमी ने मुझे ढूंढने गुंडे छोड़ रखे है। मुझे कुछ समझ नहीं आता कैसे बचूं। बहुत डर लगता है इसलिए कोरबा से भागना पड़ा'

'छिः! तुम इतनी प्यारी हो, इतनी सुन्दर हो फिर उसने तुम्हारे साथ वैसे जंगलीपन का बर्ताव क्यों किया ? सचमुच वह बहुत बदमाश है।'

'क्या बताऊँ, सब किस्मत का फेर हैं'- सरोजनी ने आखें उठाते, मिलाते, गिराते जवाब दिया।

'तुम मुझे समझदार और पढ़ी-लिखी दिखाई पड़ती हो। कहां तक पढ़ी हो ?'

प्रियहरि को सचमुच वैसा लगा था और उस समय उसकी सहानुभूति में कोई खोट नही था। उसने लक्ष्य किया था कि आंचलिक भाषा से सरोजनी कुछ ही क्षणों के परिचय में सभ्य शहरी समाज की स्तरी भाषा में उतर आयी थी। सरोजनी ने प्रियहरि को बताया कि वह ज्यादा नही पढ़ी है। कितना ज्यादा, या कितना कम,- यह न सरोजनी ने बताया और न प्रियहरि ने उससे पूछने की जरूरत समझी।

सरोजनी उससे पूछ रही थी - "आपका नाम क्या है ?"

"प्यारी सरोजनी, मैं प्रियहरि हूं।"

" मुझे तो प्रिय ही काफी है- सरोजनी बोली।"

दोनो के बीच उस सिंधी भाई की दूकान आ गई थी जहां से अनाज खरीदने सरोजनी इस अजनबी प्रियहरि के साथ आई थी। उसके पास सौ रुपये का एक नोट था। वह सस्ते से सस्ता, मोटा चावल खरीदना चाहती थी जो उस दुकान में नही था। दाल की उसे दरकार नही थी। पांच किलो चावल और पाव भर तेल में ही उसके अठत्तर रुपये निकल गये थे। बचे पैसों को हाथ में लेती उसे मसाले खरीदने की याद आई। खुले मसाले नही थे इसलिए प्रियहरि के आग्रह पर उसे पैकिट वाली महंगी मिर्च और हल्दी लेनी पड़ी।

सरोजनी देख रही थी कि अधिकारपूर्वक और साग्रह प्रियहरि दुकानदार को निर्देशित करता उसे सामान दिलवा रहा है। प्रियहरि यह समझ चुका था कि उस दूकान ने उसकी मुसीबतजदा नवप्रिया का बजट बिगाड़ दिया है। मसाले के पच्चीस रुपये काटने उसे अपनी जेब से सौ रुपये का नोट बढ़ा दिया । सरोजनी प्शोपेश मे पड़ी वह देख रही थी। उसने बचे हुए खुदरा रुपये प्रियहरि की हथेली में थमाने की कोशिश की और कहा -

" आप क्यों दे रहे हैं ? मै पैसे दे रही हूं ना"

अनसुना करके प्रियहरि ने प्यार से डांट दिया - "रखो न इसे आने पास। तुम्हारे ही पैसे तो है,जिनसे मैं यह खरीद रहा हूं।"

सरोजनी को वह सब अच्छा लग रहा था। प्रियहरि उसे संरक्षित करता यूं व्यवहार कर रहा था जैसे वह उसका आदमी हो। वह उसकी बगल से यूं खड़ा था जैसे जोड़े में अपनी औरत के साथ खरीदारी करने दूकान पर खड़ा हो । वस्त्रों का अंतर ही था जिसके कारण सरोजनी पर फेकी गई दूकानदार की एक निगाह अविश्वास की पड़ी थी। बस वही एक दूरी थी, जिसने उसे सिकोड़ कर दयनीयता का अहसास कराया था। अन्यथा इस समय उसका मन हो रहा था कि प्रियहरि से फौरन वह चिपककर अपने को उसमे विलीन कर दे। सरोजनी के बढ़ाये रुपये सरोजनी की हथेली में ठूंसते प्रियहरि के हाथ की छुवन ने उसमे रोमांच पैदा कर दिया था। अब इस समय प्रियहरि ने अपने जेब से टाफियां निकाल एक अपने मुंह में डाली थी और दूसरी उसकी अंगुलियों में फंसाये दे रहा था। उसने मना करना चाहा, लेकिन आवाज इतनी कमजोर निकली कि जिसे वह खुद भी नहीं सुन सकती थी। प्रियहरि के संतुलित सुगठित शरीर से प्रवाहित होता जैसे कोई करंट था जो सरोजनी में फैला जा रहा था। बहुत दिनों से उसके भीतर वह रस उमड़ता संचित हो रहा था वह चाहती थी की इसी वक्त उसकी रससिक्त देह निचुड़ जाए और हालातों से जमी धूल उसकी हर एक ओर से यह वक्त झकझोर कर झड़ा डाले। इसकी शराफत में वह अपनी मुक्ति की संभावना देखती हुलास रही थी।

अब रास्ता वापसी की तरफ मुड़ रहा था। सरोजनी की आंखों में आशाएं जाग उठी थीं। वह चाहती थी कि प्रियहरि कुछ ऐसा करे कि तुरंत उसके पीछे भाग चले। इधर प्रियहरि उसी चाह के बावजूद राह निकालने की उधेड़बुन में डूबा था। इतनी जल्दी और अकस्मात् वह सब संभव न था जो वह चाहता था।

दोनो लौट रहे थे। दोनो की कल्पनाओं में संभावित की उधेड़बुन चल रही थी। लड़की प्रियहरि की सदाशयता और अनपेक्षित सभ्यता से अन्दर-अन्दर पिघली पड़ रही थी। यह अनुभव भिन्न था। अब तक तो उसे ऐसे ही चलते-फिरते उठाईगीर मिले थे जो उसे अकेली, गरीब और असहाय पाकर उस पर सवार हो जाने की मंशा से सीधे प्रस्ताव रख देते थे -

"चल रही है क्या ? चल ना ! साली नखरा कर रही है" वगैरह।

उसके इर्द गिर्द के दूरस्थ संबंधियों की शुभकामनाओं में भी वैसा ही लालच भरा होता था। जमीन पर पटककर रौंद डालने की कामना ही उस लालच का केन्द्र हुआ करता था। इधर जैसे आसमान से टपका हो यह प्रियहरि मिला था, जिसने बगैर एक शब्द भी अनर्गल कहे उसे समझना चाहा था। उसके लिए यह पहला अनुभव था कि प्यार से पेश आते उसकी मदद में किसी ने बिना मांगे और बिना किसी अपेक्षा के अपनी ओर से पच्चीस-तीस रुपये खर्च कर दिए थे।

इधर प्रियहरि की देह भी उफनने लगी थी। उसे किसी साथी की तलाश बहुत दिनों से थी। ऐसा साथी जिसके संस्कार जिसकी दिनचर्या उस जैसी ही हो- सहज, साधारण, मिहनती, सलीकेदार, जो उसे चाहे और थकावट के क्षणों में उससे लिपटती, देह को सहलाती, उसकी पोर-पोर को राहत दे। यह सरोजनी गरीब थी, विपन्न थी तो क्या हुआ। अपनी संगत में वह इसे संवारकर वह रूप, वैसी आभा दे सकता था जिसे हालातों ने कुचल रखा था। कल्पना में वह सरोजनी का वह रूप देख रहा था। उसके साथ रहती सरोजनी की रूखी देह पर यौवन की चिकनाई फिर लौट आई है। मलीन वस्त्रों की जगह सुन्दर साफ महंगी साड़ी और चोली ने ले ली है। सरोजनी की उदास धुंधली आंखों में प्यार की चमक है और वह उससे सहधर्मिणी की तरह पेश आ रही है।

दिशा हीन अंधरी गलियों में भटकता प्रियहरि का चित्त अपने आप से पूछता है कि वह क्या चाहता है ? वह किसे ढूंढ रहा है ? जवाब इतनी जल्दी नहीं मिला करते। शायद उसे अपने ही अंदर के उस स्वप्न की तलाश है। उस अभाव को भरने की तलाश, जो उसे लगातार भटकाये जा रही है। शायद सच वही है। बाहर दीख पड़ती दुनिया से परे यह एक और दुनिया है, जहां मनुष्य के अंदर भटकते अभावों के प्रेत बसा करते हैं। एक-दूसरे से टकराते एक-दूसरे में अपने सपनों की संभावनाएं वे तलाशते होते हैं, जो शायद कभी पूरे न हो सकें। उस वक्त क्या सरोजनी भी वैसी ही तलाश में नहीं थी ?

इस बार उधेड़बुन से निकलती सरोजनी ने आंख उठा पल भर प्रियहरि के चेहरे में झांका। झक्क साफ प्रियहरि को उसकी आंखों ने ऊपर से नीचे तक निहारा। कद, काठी, बदन की मजबूती को

आत्मसात करते सरोजनी का हदय उस पर मुग्ध हो चला था। वह सोच रही थी कि यह प्रियहरि बिल्कुल नपा-तुला ठीक उसकी अपनी देह के अनुरूप था। ऐसा जिसमे समाकर वह तसल्ली भरी राहत पा सकती थी।

प्रियहरि से सरोजनी पूछ रही थी -

" आपने अपने बारे में नहीं बताया। कौन सा काम करते हैं ? नौकरी है क्या ? "

प्रियहरि अज्ञात पशोपेश मे सिर झुकाए साथ चल रहा था। अनमने भाव से उसने कहा -

"बस यूं ही समझ लो"

सरोजनी आगे बढ़ी। अपने ढ़ंग से वह सही अनुमान की ओर बढ़ रही थी।

"मास्टर हैं क्या ?" - सरोजनी ने पूछा।

"हां, समझ लो मास्टर, लेकिन बहुत बड़ा"

" अनवरससिटी के मास्टर है क्या ? बहुत रुपये मिलते हैं क्या ? कितना कमा लेते हैं ? बताओ ना ?"- सरोजनी ने और कुरेदा।

प्रियहरि के चित्त में उथल-पुथल मची थी। एक ओर सरोजनी उसके पास खड़ी वह सब पूछ रही थी और दूसरी ओर प्रियहरि के चित्त में वह दृश्य तैर रहा था, जब अलस्सुबह सैर से अपने बुद्धिजीवी समवयस्क मित्रों के साथ लौट घर पर चाय की तैयारी कर रहा है। उसकी बीबी सुबह-सुबह की हलचल से खीझकर उसे देखती है। पशोपेश में वह खुद चाय बना रहा है और प्यालियां ढूंढ रहा है। सुबह के आठ बजने को हैं, लेकिन सारा घर अंधकार में डूबा है। प्रियहरि की खटपट से जैसे कोई सरोकार न हो वह भंग की गई नींद को फिर संभालने की कोशिश में है। पत्नी की नाराजगी की कल्पना से सहमता प्रियहरि बीबी से चाय, शक्कर और बिस्किट के ठिकाने पूछता है। ओढ़ी हुई चादर को गुस्से से फेंकती हुई बीबी प्रियहरि को घूरती है और रसोई में बड़बड़ाती सारे डिब्बे निकालती उन्हें पटकती है।

" खुद देखते नहीं बनता है क्या ? सब तो यहीं रखा है। सुबह-सुबह सब को बटोर कर ले आते हैं। बड़े आये यही। खटपट करते सब की नींद हराम कर रहे हैं।"

लिहाज में प्रियहरि अपनी उदास खीझ को जज़्ब करता सारा कुछ निबटाता है। मित्रों के जाने के बाद वह बिस्तर पर फिर जा लेटी पत्नी के व्यवहार पर खीझता है।

" सात साढ़े सात बज रहे है। ये कोई सोने का समय है क्या ? तुमने पूरे घर को बिगाड़ रखा हैं। भोर की ताजगी छोड़ साढ़े आठ-नौ बजे तक नींद में डूबी भूतहा उदासी में डूबा यह घर क्या घर लगता भी है ?" वह खीझ रहा है-" जाओ मोहल्ले में देखो। लोग नलों से पानी भर रहे है। बड़े-बड़े घर की औरतें अपने आंगन बुहार रही हैं, मंदिर जा रही है। और यहां ? आलस्य का परम साम्राज्य है। जी करता है मकान का नाम बदल कर आलस्य रख दूं।"

शहरनुमा देहात से आई उसकी खूबसूरत बीबी भी अब लड़ने तैयार है। प्रियहरि को आश्चर्य होता है कि यह कैसी औरत उसकी किस्मत बन गई है। उसने कभी उसके हाथ में गंभीर साहित्य की तो क्या साधारण स्तर की पत्रिका तक नही देखी। थी तो डिग्रीधारी, लेकिन अखबार के सनसनीखेज चालू समाचारों को यदा-कदा पलट लेने के अलावा अक्षरों से उसका कोई सरोकार न था। वह चाहता कि बच्चों को पत्नी सही समय से उठने-सोने, पढ़न-लिखने, घर को तरतीब में रखने का सलीका सिखाए लेकिन वह थी कि उसकी हिदायतों का मजाक उड़ाती बच्चों के साथ मिल शिक्षकों की, घर में लगे बूढ़े ट्यूचर की, उसके सभ्य मित्रों उनके घरों की, उनकी बीबियों की खोट निकालती उनकी खिल्लियां उड़ाती थी। पत्नी के लाड़ से लिपटे बच्चे जो अब बड़े हो चले थे प्रियहरि को ही कोसते झगड़ने लगते थे। वह हताशा में डूबा जाता था। कानों मे बीबी की झल्लाहट गूंज रही थी।

"हां-हां सब मालूम है। सब को मैं जानती हूं कौन कैसा है ? मुझसे कहलवाओ मत। बाहर की तारीफ करते हो और घर को परेशान करते हो।" प्रियहरि की बीबी चादर तकिया यहां-वहां पटकती बड़बड़ाती रही थी।

वह चीख रही थी -" सोना तक हराम कर दिया इस आदमी ने। मुझे मालूम है। इत्ते सुबह सुबह कोई नहीं उठता। सभी घरों में बच्चे नौ-नौ दस-दस बजे तक सोते हैं।"

वह चीख रही थी - "जाओ, वहीं कहीं बाहर जाकर रहना। घर में नहीं रहते, तभी तक चैन रहता है। ऐसा आदमी मैंने नही देखा बाबा।"

प्रियहरि उसे चुप कराता तो वह और जोर से चिल्लाती। बाहर सुनने वालों को ऐसा लगता जैसे वही सचमुच बीबी को प्रताड़ित कर रहा हो, जबकि प्रताड़ित वह खुद हुआ जाता था। सुबह-सुबह उसकी मनोदशा मारक उदासी से भर जाती और दिन-भर छाया की तरह उसकी परछाई उसे बेचैन किए रखती थी।

सरोजनी की जिज्ञासा उसे अतीत से वर्तमान में लौटाने का उपक्रम थी। वह सोच रहा था कि हां, मिलते तो बहुत रुपये थे लेकिन क्या फायदा ? उसकी सम्पन्नता उसके लिए इतनी भर थी की जीवन को बांधने वाली स्थायी उदासी का अनुबंध उसके नाम था अनमने भाव से उसने सरोजनी के प्रश्न का उत्तर दिया। उसे उसकी भोली जिज्ञासा मोह रही थी। -

" तुम बहुत भोली हो। प्यारी सरोजनी, हां... हां... । इतना रूपया कि बहुत आराम से, उतने आराम से जो तुम्हारी सोच से कहीं बाहर है, रहा जा सकता है।"

सरोजनी की आंखों में आशा और उमंग की विस्मयभरी झलक थी। ठिठक कर उसके पांव उल्टे मुड़ गये थे। बगल में चलती सरोजनी पलटकर अब उसके सामने थम गई थी। यूं कि प्रियहरि के कंधे तक पहुंचती उसकी देह सवक्ष प्रियहरि की देह के यूं सामने थी कि उसका बायां और इसका दायां वक्ष थोड़ी सी असावधानी में उससे भिड़ सकते थे।

सरोजनी पूछ रही थी- "यहीं इसी कालोनी मे रहते हो क्या ? उसकी आंखों के सामने तारकोल की चौड़ी सड़कों-उपसड़कों में तरतीब से बसी वे इमारतें थीं जो पेड़ों और पौधों की खूबसूरती से भरी थीं। वह मुग्ध थी। उसमे खूबसूरत संभावनाएं करवटें लेने लगी थीं। अपनी इच्छा भरी कल्पनाओं के साथ वह अब प्रियहरि में समाई पड़ रही थी।

प्रियहरि का मन इस पल अतीत, वर्तमान और भविष्य की ऊहापोह में अन्यमनस्क था। उसी भाव से उसने जवाब दिया -

"हां बस, यही समझ लो।"

सरोजनी का मन इस वक्त सड़क पर नही कल्पना के उस दृश्य पर स्थिर था जहां वह प्रियहरि के खूबसूरत घर के सजे हुए कमरों में बनी-ठनी गृहणी की तरह काम में व्यस्त है। प्रियहरि के सामने थाली सजाए बैठी वह सुगन्धित चावल का भात, बघारी हुई अरहर की गाढ़ी दाल, दो-दो सब्जियां, अचार, पापड़ का अम्बार परोसती मगन है। प्रियहरि उससे आग्रह कर रहा है कि वह भी अपनी थाली परोस क्यों नही उसके पास बैठ जाती। सरोजनी सद्‌गृहणी की तरह उसके मनुहार को टालती कह रही है - " ऊँ.. ह...., नहीं। पहले तुम खाओ बाद में मै खाऊँगी। अभी मुझे बहुत काम निबटाने हैं।" बहरहाल सड़क पर ठिठकी सरोजनी की स्थिर देह की जुबान से उस वक्त शब्द निकले -

" बताओ ना, कहां है। कितनी दूर है"

उसकी ओर सरोजनी के कदम कुछ और बढ़े। प्रियहरि संकोच से थोड़ा किनारे हुआ। सरोजनी उसे पशोपेश में डाल रही थी।

"कहा न, यहीं बिल्कुल पास।" प्रियहरि ने अंगुलियों के इशारों से उधर संकेत किया, जहां वह रहता था।

सामने खड़ी सरोजनी की सूखी लेकिन कोमल हथेली का स्पर्श प्रियहरि को सिहरा गया। सरोजनी की हथेली की दो अंगुलियों ने सामने खड़े प्रियहरि की दो अंगुलियों को उलझा लिया था। सरोजनी की अंगुलियों ने प्रियहरि की अंगुलियों को फंसाए मुड़ चलने का संदेश देते झटका दिया था। प्रियहरि की देह नन्ही अंगुलियों के इशारे से उधर उसी दिशा में मुड़ गई थी, जहां से वे दोनों लौट रहें थे।

"ठीक से बताओ न ! बिल्कुल पास है क्या ? कितनी दूर है ? कितनी देर लगेंगे। "

सरोजनी की कल्पना में प्रियहरि के मकान की खूबसूरत कल्पना छाई जा रही थी। वह देख रही थी कि अभी-अभी वह प्रियहरि का अनुसरण करती उसकी फूलों से सजी वाटिका से मकान के भीतर प्रवेश कर रही है। वह देख रही है कि उसकी मटमैली सलवटों भरी साड़ी रंग-बिरंगे फूलों वाली धूप-छाही क्रेप में बदल गई है। वह देख रही है कि उसकी रूखी देह हरिया उठी है। और सूखे चेहरे पर प्रसन्न लज्जा की लाली उमंग भर रही है। उसने पाया कि वाटिका में प्रवेश करते ही उसकी दुर्बल काया प्रियहरि की बाहों में दोहरी हुई जाती झूल रही है। पुलकित मन उसने देखा कि बड़े सूने मकान में उसे वक्ष से चिपकाए प्रियहरि हाथों में झुलती उसकी देह को संभाले उस पलंग तक पहुंचा है जहां सरोजनी की कल्पना के मुलायम गद्दों पर खूबसूरत छींटदार चादर बिछी है। उसके एक सिरे पर दो कोमल तकिए उसे खींच रहे हैं। उसने देखा कि वह खुद नवब्याही राजकुमारी की शक्ल में है और अब उसकी चहेता प्रियहरि बिस्तर तक पहुंच अचानक चौंकाने वाली शरारत से अपनी मुड़ी कुहनियों को फैला सरोजनी को उछालता धप्प से बिस्तर पर पटक देता है।

कल्पनाओं से बाहर निकलती या इच्छाओं को तरजीह देती सरोजनी पशोपेश में डूबे प्रियहरि को कुरेद रही है - “बताओ न कितनी दूर है, कितनी देर लगेंगे?"

सरोजनी यूं पूछ रही थी जैसे वह घड़ी रहित अपनी कलाई में घड़ी देखती समय का प्रबंधन कर रही हो। प्रियहरि की अंगुलियां सरोजनी की अंगुलियों में उलझी जा रही थी। वह अनुसरण करती प्यार से उसे छोड़ चली सड़क की ओर फिर लौट चलने इशारा कर रही थी। शाम का धुंधलका था। एक बौने सप्तपर्णा के सघन तरुण वृक्ष के झुरमुटे के नीचे वे कान्धार शैली के गन्धर्व युगलों की तरह ठिठके खड़े थे। गंभीर मुद्रा से आच्छन्न प्रियहरि की आंखों ने एक बार सरोजनी की चमकती आंखों में निहारा।

“ क्या सोच रहे हो, बताओ न! कहां है घर। कोई और रहता है क्या ? कि अकेले वहां रहते हो। चलो न, अपना घर नहीं दिखाओगे क्या ?"

सरोजनी की जिज्ञासु उतावली पुतलियों को निहारता प्रियहरि उसके भोलेपन से अभिभूत है। सरोजनी की फंसी अगुलियां अपनी सहचरी प्रियांगुलियों को झटका देती खींच रही है। शाम की सड़कों पर सतर्कता से नजरें दौड़ाती आंखों के समानान्तर प्रियहरि का एक हाथ प्यार से सरोजनी की क्षीणकटि को घेर हथेलियों का स्पर्श देता कोमलता से सहलाता है।

" हां, यहां भी घर है और बाहर भी घर है। यहां थोड़ी परेशानी होगी।"

प्रियहरि का उलझा दिमाग शब्दों में उतर चला। सरोजनी कुछ समझ नहीं पा रही है। वह जिद किए जा रही है।

" पास है तो चलो न! क्या परेशानी है **?** अकेले रहते हो न !"

कटि से चिपकी प्रियहरि को हथेली का स्पर्श सरोजनी को अच्छा लग रहा है। उफनती आकांक्षा उस उलझन को नहीं देखना चाहती जो प्रियहरि के मन में चल रही है। उसकी आंखों में पिछले से आगे का ऐन्द्रजालिक दृश्य उमड़ रहा है। वह महसूस करती है कि कमरे के खूबसूरत माहौल में पलंग पर उछाल दी गई सरोजनी की कोमल कटि पर प्रियहरि की हथेलियां गुदगुदी पैदा करती फिर रही हैं। वह झुका उसे निहार रहा है। प्रियहरि के निहारने पर और समर्पित हुई जाती काया मरी पड़ रही है कि प्रियहरि की देह सरोजनी की अपनी देह पर क्यों नही बिछ रही है।

"सरोजनी, तुम बहुत अच्छी हो, तुमसे ढेर सी बातें करने जी चाह रहा है।"

प्रियहरि की बुदबुदाहट सरोजनी को बिस्तर के दृश्य में सुनाई पड़ रही है। उसे प्रियहरि की सारी परेशानियां स्वीकार हैं। हर रुकावट से इस साथ को वह बाहर देखना चाहती है। प्रियहरि के बिस्तर पर बिछी हुई ही वह उसे निहारती जवाब दे रही है - "कहो ना, मुझे सब मंजूर है।"

सरोजनी देख रही है कि संकोच में मन की इच्छा को जुबान देने से बचता प्रियहरि इसकी काल्पनिक खूबसूरत चोली को हटा उसकी उन छातियों से चिपका है, जो गरीबी की क्रूरता में मसल दी जाती थीं। वह पाती है कि प्रियहरि के होंठ उसके होंठो से गुथे जा रहे हैं। इस बात की होड़ मची है कि एक दूसरे के होंठो को वे पूरे का पूरा गालों में भर ले। सरोजनी देखती है कि वह इस क्रीड़ा में जीत गई है। उसे कटि से निचले हिस्से पर

सरसराहट का आभास होता है। इससे पहले कि वह कुछ समझने की चेष्टा करे प्रियहरि के उन मजबूत हाथों को वह महसूस करती है, जिन्होने झटके के साथ उसकी जंघाओं को बलपूर्वक अलग कर दबा दिया है। वह महसूस करती है कि उस लुभावनी क्रूरता का स्वागत करती आगे बढ़ उसने किवाड़ के वे पट खोल दिए हैं, जिनमे प्रियहरि का अस्तित्व सुदृढ़ता के साथ सरोजनी के अस्तित्व की कोमल शिराओं में कसकर बंध गया है।

प्रियहरि स्वतः भी सरोजनी के पास खड़ा उसकी अंगुलियों और कटि के करस्पर्श से उस जगह में सरोजनी के साथ तैरता है, लेकिन कुछ है जो उसे अन्यमनस्क किए है। वह फिर बुदबुदाता है -

" सरोजनी.........."

सरोजनी स्वप्नों में है। उसे सारा बदन रोमांचक क्रीडा के अदृश्य लेकिन अभूतपूर्व रस में भीगता अनुभव हो रहा है। उसकी पलकें मुंदी है। वह न कुछ देखना चाहती है, न सुनना चाहती। वह एक ऐसी दुनिया में है, जो उसके स्वर्र्गिक सुख की है। उसे चाहने वाले एक कोमल हृदय भद्रलोक के स्पर्शानन्द का लोक जो उसका सपना है।

प्रियहरि की देह से लिपटी वह ऐसी नाव पर सवार है, जिससे छूट जाने के भय से वह उसे और कसकर बांधे जा रही है। ऐसा दरिया, ऐसी नाव, ऐसी यात्रा, जिसमें उसकी देह प्रियहरि की देह से बंधी हिचकोले खा रही है। जैसे और कहीं कुछ नहीं, केवल पानी भी गहराई को चीरता हुआ एक चप्पू है जो बार-बार ठोकर मारता "छप्प-छप्प" की आवाज करता चित में मादक घंटियाँ बजा रहा है।

सरोजनी प्रियहरि को वापस उसके मकान की और लौटाने की ज़िद पर है। उसकी अंगुलियां प्रियहरि की अंगुलियों को खींच रही है।

" चलो न, जल्दी करो न। फिर देर हो जायेगी।" -प्रियहरि को अनसुना कर सरोजनी ने कहा।

प्रियहरि का चित्त कौंधा। उसने तो इसे आमंत्रण दिया नही। वह तो अभी इसकी तरफ तसल्ली के परिचय भर के लिए झुका है। माना कि दोनों की कामनाएं एक हैं, लेकिन.........। लेकिन सरोजनी को मेरे घर की ऐसी जिज्ञासा, ऐसी जिद क्यों है ? एकबारगी उसे ऐसा महसूस हुआ कि कहीं वह लड़की...? उसकी मंशा कुछ और तो नहीं है ? उसे अनुभव तो न था, लेकिन उसने पढ़-सुन रखा था कि सस्ते-महंगे दामों में प्यार का फौरी मजा मुहय्या कराने शहर में चिल्लर मजदूरनियों से लेकर कालेज की जवां-देह कामिनियों और खेली-खाई प्रौढ़ा महिलाओं का जाल फैला था।

क्या सरोजनी उन्हीं में से एक थी ? ऐसा तो नहीं कि उसकी कामना प्रियहरि के संयोगिक साथ से चलते-फिरते कुछ रुपये बटोरकर कमाई कर लेने की हो ? प्रियहरि का चित्त अचानक दूसरी ओर पलटा। छिः छिः, वह क्या सोच रहा है ? अगर यह लड़की वैसी होती तो बगैर हिसाब-किताब तय किये, बिना किसी मोल-भाव प्रियहरि के साथ जाने मचल पड़ती ? अवश्य ही वैसा न होगा। प्यार-व्यार को रहने भी दें तो यह कामना अवश्य ही वैसी ही स्वतः-स्फूर्त, समान, और परिप्रेक्ष्य विहीन थी जैसी खुद प्रियहरि के भीतर पैदा हुई थी। प्यार, वासना, सहानुभूति, संग की इच्छा जो भी वह हो सांयोगिक और समान थी। वैसा न होता तो यह लड़की सरोजनी उसपर अतिरिक्त भरोसा करती मचल न बैठती। उसे इस बात का अफसोस होने लगा था कि महज इसलिए कि सरोजनी लड़की थी, गरीब लड़की थी और मजबूरी में थी, वह उस पर संदेह कर रहा था।

सरोजनी मन और देह से तैयार प्रियहरि के मकान में बिस्तर की दरिया पर कामनाओं की नौका में सवार हिचकोलों में डूबी थी।

" सरोजनी, तुम बहुत प्यारी हो, मुझे पसंद भी हो । लेकिन यहां परेशानी है। मैं अभी बाहर कहीं और रहता हूं। बिल्कुल अकेला हूं। तुम चाहो तो मेरे साथ रहकर काम कर सकती हो।"

सरोजनी समझ गई कि अभी यहां फौरन प्रियहरि के साथ उस तरह सचमुच तैर पाना मुश्किल था, जिस तरह अपनी कल्पनाओ में अभी वह तैरकर लौटी थी।

" कहां जाना होगा। मैं काम क्या करूंगी ?"

" कुछ खास नहीं, बस घर का कामकाज करना । उसी तरह रहना जिस तरह मुझे और तुम्हें दोनों को खुशी हो।"

उल्टी सड़क पर मुड़े पैर अब सीधी सड़क पर चलते वहीं बढ़ रहे थे जहां अचानक चित्रलिखित सी वह प्रियहरि के सामने प्रकट हुई थी।

" तुम मुझे ले चलोगे। मैं तैयार हूं। लेकिन कब **?"**

" आज नहीं, एक-दो दिन बाद।"

सरोजनी सोच में पड़ गई।

" ठेकेदार के यहां से मेरा निकलना मुश्किल है। चाचा भी छोड़ेगा नहीं। फ़िर मैं तुमसे मिलूँगी कैसे ?" उसने कहा।

पक्की दीवारों के पास उसकी अस्थाई झोपड़ पट्टी नजर आने लगा थी।

" कैसे बनेगा **?** बताओ न ! मै तो तुम्हारे साथ जाना चाहती हूं। मुझे नही ले चलना चाहते क्या ?"

" ऐ..ई ! सरोजनी, ऐसा नहीं हो सकता कि अभी हम कहीं और चले और फुरसत से सोंचे।"

" कहां चलना है **?"**

" चलो, कहीं किसी होटल में चलें। वहां तुम मेरे साथ खाना खाना और तब हम दोनों फुरसत से बात करेंगे। यहां तो कोई जगह भी नही, जहां हम बैठ सकें।"

सचमुच उस संक्षिप्त समय में आकस्मिक संयोग से हत्प्रभ प्रियहरि और सरोजनी को इतना समय ही नही मिल सका कि गम्भीरता से वे एक दूसरे को जानें, सुनें, समझें और तब भविष्य का सूत्र बुन सकें।

एक पल को सरोजनी ठिठकी। वह दुविधा में थी। वह बोली - "आज कैसे जाऊंगी ? जब मिले थे तभी बताना था। मै तो सामान लेने के लिये निकली थी। देर होगी तो चाचा गुस्सा होगा और मुझे मार डालेगा। खाना जो बनाना है मुझे।"

उसके अहाते की दीवार सड़क की परली ओर खड़ी थी। मेरा ध्यान नहीं था। हम दोनों यूं चलते आये थे जैसे अनन्त यात्रा पर मौज में निकले हों।

" आप कहां जा रहे हो **?** कहां जायेंगे **?** मुझे तो सड़क पार अपनी झोपड़ी में जाना होगा।"

साथ छूटे जाने का मलाल हो रहा था। प्रियहरि भी सड़क फांद उसके साथ को लिया था। जैसे ठेकेदार का पहरुआ हो, एक सिक्यूरिटी गार्ड टूटी दीवार पर तैनात था। कुछ कदम चलकर घने पेड़ के धुंधलके में हम ठहर गये थे।

" सरोजनी, तुम्हारा साथ छोड़ने को जी नही चाहता। क्या करूं **?"**

उसकी झोपड़पट्टी के लोग दिखाई पड़ रहे थे। सिक्यूरिटी गार्ड की नजरें भी पड़ रही थी। सरोजनी ने कहा -

" अब आप जाओ, फिर मिलूंगी"

इससे पहले कि प्रियहरि कुछ और कह पाता उसके कदम बढ़ चले थे। लाचार आंखों से दोनो एक दूसरे को देख रहे थे। एक विवश आह स्वर बनकर प्रियहरि की ज़ुबान से निकली- "बाय"

मुरझाए देहाती यौवन ने निगाहों से निगाहें टकराते हाथ हिला जबान में कहा "बाय" और सटपटाती दीवार के पार खो गई।

सपने की औरत की चाहत में डूबा प्रियहरि दो दिन से छाई अभिभूतता में जब सरोजनी की यादें डायरी में दर्ज कर रहा था तब दोपहर बाद के ढलते दिन में सरोजनी सिर पर कपड़े की गुड़री पर पटिया और उस पर ईंटो का बोझ लादे प्रियहरि की तरह उस चुक गई प्यारी शाम को याद कर रही थी।

" रोगही, अभी तो मोला (मुझको) धकिया डारतेस (धक्का मार देती)। आंखी हा फूट गेहे का। देखके नई चलस।"

सामने उससे बड़ी वय की प्रौढ़ा मजदूरनी के मुंह से गाली सुन सरोजनी सपनों से बाहर निकली थी। सपनों से हकीकत में ला पटकने वाली औरत को उसका जवाब था - "रोगही तैं। मोर आखीं फूट गये है तो तोरौ आंखी फूट गेहे का ? तैं देख के नई चलते...?"

एक ही वक्त पर दो अलग-अलग जगहों पर प्रियहरि और सरोजनी सपनों की संभावनाओ में बस गई चूक पर मलाल कर रहे थे। प्रियहरि सोच रहा था कि आदमी की जिंदगी भी कितनी अजीब है। संभावनाओ की चूक और सपनों के टूटने में ही तो जीवन की कथा छिपी होती है। अगर उस शाम वैसा होता तो क्या होता ? प्रियहरि इस पर देर तक विचार करता रहा था । मलिन-वसना, कृशकाय, विपत्तिग्रस्ता सरोजनी की छवि उसे खींच रहा था। वह कालिदास की शकुंतला को याद कर रहा था -
" काई में लिपटा होने पर कमल रमणीय ही होता है। चन्द्रमा पर बादलों की छाया पड़ने लगे तब भी उसकी धूसर चांदनी सुन्दरता को बढ़ाती ही है। जीर्ण वल्कल धारण करने पर भी यह तरुणी कितनी सुन्दर है ? सच कहा जाता है कि सुन्दर आकृतियों के लिए कुछ भी आभूषण हो जाता है।"

जिस वक्त दुष्यन्त शकुंतला पर मुग्ध कालिदास की पंक्तियां दोहरा रहा था, उस वक्त प्रियहरि की शकुंतला अपनी किस्मत को कोसती विपत्तियों से जूझ रही थी।

मोहग्रस्त मन सचमुच अंधा होता है

जो देखने में बहुत ही करीब लगता है
उसी के बारे में सोचो तो फासला निकले।

मैं चाहता भी यही था वो बेवफा निकले
उसे समझने का कोई तो सिलसिला निकले।

"Only the united beat of sex and heart together can create ecstasy." (Anais Nin)

"A women marries a man expecting he will change, but he doesn't.On the other hand a man marries a woman expecting that she won't change and she does." (The Holy Union)

भले ही उसका उत्स देह-कामना क्यों न हो, प्रियहरि के चित्त में ऐसी कल्पना वितृष्णा पैदा करती है, जहां युग्म के उभय पक्षों में एक-दूसरे के लिये प्यास और आकर्षण एक साथ रचे-बसे न हों । ऐसे संबंधों में जहां एक में आग हो और दूसरे में बर्फ़ जमी हो, स्त्री के लिए पुरुष और पुरुष के लिए स्त्री महज एक यंत्र में तब्दील हो जाते हैं। ऐसा यंत्र जहां उतावले पुरुषके लिये स्त्री जांघों के बीच एक लचीली सुरंग और स्त्री के लिये पुरुष मुंह में जबरदस्ती ठूंस दिए जाने वाले केले से अधिक नहीं रह जाता। प्रियहरि की दृष्टि में यह प्राय: बलात्कार ही है भले ही श्रेणी-भेद से उसे भिन्न संज्ञा दी जाती हो। परस्पर स्वीकृति का अभाव उसे बलात्कार बना देता है तो पारस्परिक सहमति उसे कुछ और संज्ञा देती है। यह कुछ और कुछ यूं है कि जिस स्त्री या पुरुष में वैसी सहमति साभ्यास भौतिक उपलब्धि में लक्ष्यीभूत हो तो उसे भद्रता की भाषा में चालू और ठेठ भाषा में वैश्या कहा जाता है। बलात्कार सामान्यत:पुरुष ही करता है। स्त्री के लिए वैसा करना संभव नहीं है क्यों कि वैसी स्थिति के लिये मनो-दैहिक तैयारी पुरुष के लिए पूर्व शर्त है जब कि इच्छा से हो या अनिच्छा से स्त्री का पक्ष मात्र इन्द्रिय-ग्राहकता का होता है। प्रियहरि को उसके एक बुजुर्ग साथी का कहा याद आता है कि स्त्री से बलात्कार भी सहज संभव नहीं है क्यों कि उसके नाजुक स्त्रीत्व की दैहिक स्थिति प्रकृति ने ही यूं छिपाकर संजोई है कि उस तक पहुँचने के लिये स्त्री का सहयोग ज़रूरी है। इसीलिये क्रूरता और हिंसा के लक्षण बलात्कार की स्थिति में अनिवार्यत: दिखाई पड़ते हैं। यह बात अलग है कि आजकल बलात्कार के आरोप में पुरुष की जात पर ऐसे मामलों में शिकायतें दर्ज की जा रही हैं, जहां स्वेच्छा से घंटों, दिनों महीनों, या बरसों कोई ललना परिचितपुरुषके साथ सह-भोगरत रही आई हो फिर चाहे वह मौज से प्रेरित स्वेच्छा हो या फिर स्वार्थप्रेरित हो ।

प्रियहरि सोचता है कि स्त्री और पुरुष के बीच वैसे संबंध को क्या संज्ञा दी जाए जहां सहभोग होता है, पर प्यार की कशिश नहीं होती **?** उसे क्या कहेंगे जहां सहभोग प्राय: बर्फ़ और बर्फ़ का ही हुआ करता

है और जहां स्वेच्छा स्थायी पट्टे की तरह जनम भर के लिए किसी एक तिथि दर्ज कर दी गई होती है ? उस सहभोग को क्या कहा जाएगा जो स्थायी युग्म के बीच अभ्यासित यांत्रिक कर्तव्य मात्र रहा आता है ? उस सहभोग को क्या कहा जाए जहां अंदर की विरक्तियों के बावजूद सहगमन का इस्तेमाल तनाव दूर करने की औषधीय टिकिया की तरह किया जाता है ? उस संबंध को किस तरह मूल्यांकित किया जाए जहां सहवास तो होता है लेकिन सहधर्मिता का अभाव सदैव दंश मारता है ? उस संबंध को क्या कहा जाए जहां उत्तरदायित्व की जकड़न में स्त्री और पुरुष के बीच से वह कल्पित आनंद खो जाता है, जिसकी तलब में जीवन-पर्यन्त भटकना ही दोनो की नियति रहा आता है ?

उस भटकाव को क्या नाम दिया जाए जो मुक्ति की राहत और आनन्द की चाहत के लिये बंधन की दीवारों में सेंध मारता अपना एक निजी संसार रचने का उद्‌यम करता है ? विवाह की संस्था और पति-पत्नी के संबंधों से स्त्री और पुरुष के बीच यौन संबंधों के विनियमन की राह तो निकलती है, लेकिन तब क्या वह देहानंद की आदिम प्रवृत्ति को नियंत्रित करने में सचमुच सफल हो सकी है ?

यह एक दूसरी दुनिया थी जहां वे रूहें भटकतीं और आपस में टकरातीं जिन्हें चोरी-चोरी नए संसार में विमुक्त विचरण की चाहत खींच लाई थी। प्रियहरि ने पाया था कि अपनी-अपनी सलीबें ढोते अभिशप्त पतियों और पत्नियों की एक समानांतर विचित्र दुनिया थी जिसमें हर कोई अपने को खूबसूरत लबादों में छिपाए किसी और की चाहत में भटकता पाया जाता था। प्रियहरि को अपने और वनमाला के बीच हुआ वह संवाद याद आ रहा था, जिसमें उसने वनमाला से पूछा था कि क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि विवाह महज एक मियादी समझौता हो दो, चार, या पांच साल का जिसके बाद कथित पति और पत्नी चाहे तो पुनर्विचार कर नई राह चुनने आजाद हो सकें और तब स्वप्न की कौंध में विचरण करती वनमाला चहकती हुई पूछ बैठी थी कि " सचमुच ऐसा हो सकता है क्या ?"

प्रियहरि के लिए वनमाला से संबंधों का लंबा अतीत एक ऐसा मायाजाल था, जिसपर वह जितना सोचता उतना ही उलझता जाता था। प्रियहरि पाता कि वह एक अलग ही अनोखी दुनिया थी जिससे निकल भागने की चेष्टा में उसके रहस्यों में विस्मृत वह और अधिक अंदर तक यूं धंसा पड़ रहा था कि बचने की कोई राह उसे सूझती न थी। इससे भी बड़ा सच शायद यह था कि बचने की सतही कामना के विरुद्ध उसकी खुद की प्रबल इच्छा ही दुर्निवार आकर्षण से उसे वहां डुबाए जा रही थी।

मोहग्रस्त मन सचमुच अंधा होता है

जो देखने में बहुत ही करीब लगता है
उसी के बारे में सोचो तो फासला निकले।

मैं चाहता भी यही था वो बेवफा निकले
उसे समझने का कोई तो सिलसिला निकले।

वनमाला के चरित्र का नया रूप अब प्रियहरि के सामने क्रमश: उजागर होता जा रहा था। प्यार का यह खेल भी अजब उलझनों से भरा था । यह ठीक है कि पारिस्थितिक दूरियों के कारण पिछले वर्षों में अचानक अजनबी होती जाती वनमाला के अंदर की जड़ता को फिर प्रियहरि की आंखों और वाणी की कशिश, उसका समर्पित प्रेम पिघला रहा था, तब भी उसके मन में ठीक-ठीक क्या था और वह क्या चाहती थी यह समझना सरल न था । अनेक चेतावनियों के बावजूद वनमाला की ओर प्रियहरि का झुकाव विराग को भी खिझा जा रहा था । यह एक दुर्निवार आकर्षण का खेल था, जो परिस्थितियों की बाधाओं, ईर्ष्यालु जनों , इसके अलावा पारस्परिक ईर्ष्याओं, संदेहों, भयों के बावजूद वनमाला और प्रियहरि - दोनों के लिए अपरिहार्य, दुर्निवार्य हो चला था । सारा संकोच अब जाता रहा था । औरों की परवाह के बगैर प्रियहरि जब-तब उसे बुला लेता था या वनमाला जब-तब बगैर बुलाए इसके पास आ बैठती थी । उस दिन सुबह की वनमाला की ड्यूटी के बाद

प्रियहरि ने ही उसे बुला भेजा था । जी कर रहा था कि सब कुछ भूलकर सहज कोमल-मन शिशु-हृदय से उन दोनों का निर्द्वद्व साथ हो । इन दिनों उन दोनों के बीच कहने के लिए पत्रिका का पुल था । ऐसे बहाने जरूरी थे क्योंकि वे एक दफ्तर की कार्यप्रणाली के अंग थे ।

प्रियहरि ने वनमाला को छेड़ते हुए कहा - "आज बैठो न एकाध घंटे, कुछ काम करते हैं ।" वे दोनों जानते थे कि बैठने का प्रस्ताव दिलों के साथ बैठने का हुआ करता था। वनमाला जानती थी कि वही प्रियहरि की पत्रिका है ।

वनमाला ने कहा - "आज मैं नहीं बैठ सकती । मुझे क्षमा कर दीजिए क्योंकि रास्ते के पड़ाव पर मेरे श्रीमान इंतजार कर रहे होंगे ।"

पत्रिका की फाइल प्रियहरि ने उसे दिखाई थी । उसे बताया था कि क्या-क्या हो गया था और क्या-क्या करना था । वनमाला ने प्रियहरि की आतुरता और आंखों में झांकती मायूसी पढ़ी और जैसे ट्रेन छूटने वाली हो, त्वरा में प्रियहरि के हाथ से फाइल छीनती बोली - "आप मुझे दे दीजिए। मैं घर में इसे अच्छी तरह से देख लूंगी । "

वनमाला की शिकायत फिर सामने आई कि काम से अलग रखने के बावजूद उस दिन उसकी ड्यूटी लगा दी गई थी । उसका कहना था कि वैसा न होता तो प्रियहरि के साथ फुरसत से बैठकर वह काम कर सकती थी । लगाव, खिचाव, कामकाजी तौर-तरीके की बात सब एक साथ माहौल में थे। कहना कठिन था कि इस सब के बीच क्या था ? प्रियहरि के मन ने अपने आप से ही प्रश्न किया । क्या सचमुच वह वनमाला के श्रीमन का इंतजार होगा, जो उसे इतनी त्वरा है ? मोहग्रस्त मन सचमुच अंधा होता है । उसका विवेक नष्ट हो जाता है । वनमाला उससे छल किये जा रही थी और उसका कौतूहल था कि सारा कुछ देखने के बावजूद यथार्थ को झुठलाने और वनमाला में वफादारी की संभावनाएं तलाशने में जुटा था।

प्रियहरि के कौतूहल का समाधान जल्द ही हो गया। बाद के चार दिनों में किसी अज्ञात सूत्र से वनमाला और उसके नये यार के बीच पत्राचार के प्रमाण मिले। इन गुजरे दिनों के बहुत से रहस्य उस पर प्रकट हो गये । उसके यार ने वनमाला को एक नया नाम दे रखा था । प्रेमपत्रों का जवाब न देने की वनमाला की आदत पहली बार टूट गयी थी । वह अप्रैल का महीना था । दस से अठारह के बीच वनमाला अपने यार से अलग रही थी । प्रियहरि को याद आया कि उससे पहले ही दिन किस तरह रूठी वनमाला का साथ पाने आतुर वह विपुल उससे दोपहर काम पर लगाने जिद कर रहा था । दोनों के झगड़े की वजहें थी । यार के फोन से वनमाला उसी तरह घर में मुसीबत फंस जाती थी जैसा प्रियहरि के फोन से पहले हुआ करता था । घर पर झगड़ा हुआ होगा । वनमाला ने इस यार को उसके लड़के की कसम देकर मना किया होगा जिस पर इसने अमल न किया। अचानक इस यार का बेटा बीमार हुआ और उसे चिंता हुई । उसने नाराज वनमाला से फरियाद की थी कि अपनी कसम वह वापस ले । यार की स्पष्ट ना-उम्मीदी के खिलाफ वनमाला ने पहली बार पत्र लिख जवाब दे डाला था । इसने भी किसी किस्म की कसम का जिक्र किया था जो इसके खुद के बेटे से जुड़ी थी । मामला शाकाहार और मांसाहार को लेकर था । ऐसा लगता है कि वनमाला के खाने की टिफिन में कुछ निषिद्ध जान पिछले किसी दिन उसके इस यार ने उपवास का बहाना कर खाना टाल दिया होगा। इससे प्रियहरि की खुद की बेवफा प्रेमिका जो अब इस यार की तरफ झुक गई थी, नाराज हो गई थी ।

वनमाला बेहद संवेदनशील थी । उसे इस बात का अक्सर बुरा लग जाता था कि शाकाहार वाले लोग मांसाहार के खानपान को घृणा की दृष्टि से देखते थे । प्रियहरि को याद आया कि उसे चिढ़ाने जानबूझकर वनमाला कई बार मछली और मांस पकाने की बात करती हंसा करती थी । एक बार तो वह महज इस बात नाराज हो चली थी कि पानी का गिलास थामे प्रियहरि ने सेवक रामकिसन से शिकायत की थी कि पानी में मछली की बू क्यों आती है । वह साफ-सफाई ठीक किया करे। वनमाला को लगा था कि उसे चिढ़ाने के लिए ही प्रियहरि ने वैसी बात कही थी । भड़क कर उसने कहा था - "इतनी गंदी मैं भी नहीं हूं । मछली हम खाते

जरूर हैं, लेकिन इतनी तमीज है कि साफ-सफाई करके खाते है ।" वनमाला को समझाना बेकार था । उसका मूड बिगड़ता, तो बिगड़ता ही चला जाता था । ऐसा ही कुछ इतिहास संभवतः वहां भी घटित हुआ होगा ।

बातें यहीं तक न होंगी । बीबी-बच्चे को मायके रवाना कर वनमाला को झांसे में फांसने, संभवतः सूने घर का मेहमान बनाने के चक्कर में उसका यह यार विपुल था । पति से इतर क्रीड़ा के प्रति पवित्रता की पट्टी लगाये और सुहागरात के वचनों का मंत्र मन में बसाए वनमाला को उसके प्रस्ताव से नफरत हुई होगी । उसने विपुल को जमकर फटकार लगाते हुए धमकी दी कि वह उसकी हरकतों और इरादों को सबके सामने लाकर उसे बेइज्जत कर देगी। पत्र में चिटठी लिखने वाले ने इस बात अनुरोध किया है कि यह आपस की बात है इसे वनमाला मेहरबानी करके उजागर न करे नहीं तो उसकी फजीहत हो जायेगी। वनमाला की नाराजगी और अनबोलेपन से मायूस और भयभीत इसीलिए यह प्रेमी एक सप्ताह छुटटी लेकर गायब था । तब भी वनमाला को यह बताने से वह विपुल न चूका था कि हालांकि इस दौरान वह वनमाला को अपना मुंह बिल्कुल न दिखायेगा, लेकिन रहा अपने घर पर ही आयेगा ।

किस्सा तकरीबन वैसा ही था। जैसा वनमाला और प्रियहरि के दौरान पहले घट चुका था । वनमाला जानती थी कि प्यार का चरम क्या होता है और पुरुष क्या चाहता है **?** ऐसे समय वनमाला की सहजता अचानक बर्फ की तरह जम जाया करती थी । शायद अतीत की कोई ग्रंथि थी । तनाव उसके चहरे पर उभरता और प्रियहरि से भी वह कह उठा करती थी - "मैं जानती हूं आप क्या चाहते हैं **?** वह संभव नहीं हो पाएगा । आप मेरी विवशता को अर्थात संबंधों के यथार्थ को स्वीकार लीजिए । इस जन्म में वह संभव नहीं हो पाएगा ।" ऐसे समय उसकी हंसी लाचार हुआ करती और मुद्रा गंभीर ।

इस समय जो चिट्ठियां उसके सामने थी उनसे पता चलता था कि 'ना-ना' करते हुए भी अंत-अंत में उदास वनमाला का धीरज 'हां-हां' करता टूट चला था। नाराजगी धीरे-धीरे अपने यार की मासूमियत के प्रति चाहत और अपनेपन के एहसास में बदल चली थी । प्रियहरि को समझते देर न लगी कि उसके अनुरोध के बावजूद उस सुबह उसकी खुद की 'पत्रिका' वनमाला उसे बहलाकर कालेज की पत्रिका के कागज समेटती जल्दबाजी में क्यों निकल गई थी । प्रेमी की अगली चिट्ठी यह बताती थी कि उस दिन दोनों की मुलाकाते हुई, रेल में यात्रा हुई और खूब बातं हुईं । वनमाला के साथ यह सब आम हो चला था। कालेज में काम करने वाले लोगों को तो क्या दीवारों और खिड़कियों तक को वनमाला और उसके दो प्रेमियों के बीच चल रहे प्यार के खेल का मौसम और ताप पता होता था। वे इसका खूब मजा लेते और चटखारे ले-लेकर आपस में बतियाते थे । चिट्ठियों से प्रियहरि को मालूम हुआ कि जो आपसी बातें उसके और वनमाला के दरमियान हुई थी उन्हें खुद अपने को वफादार साबित करने और वैसा करते यार को भरोसे में लेने की गरज से वनमाला ने सारा कुछ बता दिया था । पत्रिका की बात, कहानी लिखने की बात, बंगला की बात, सहायक अधिकारी बनाकर साथ रखने की बात सब कुछ उजागर कर दी गई थीं।

अपने अनुभव से प्रियहरि जानता है कि रूठने और अलग होने के हालातों में वह भी वनमाला से मायूस हो उसी तरह की हरकतें करता है। लेकिन तब फर्क यह कि वनमाला की आलोचना करते, औरों से करीबी जताते हुए न केवल प्रियहरि के मन में वनमाला ही रही आती है, बल्कि यह भी कि तब अफसोस में वनमाला का अभाव उसके लिये और अधिक चुभने वाला हुआ करता है । दूसरों से की गई बेमन जुबानी बुराईयों के बावजूद वनमाला और उसकी यादों को अंदर-अंदर सीने से वह और चिपका लेता है । जरूर वनमाला के साथ भी वैसा ही हो रहा था । नये यार पर अपना भरोसा जताती और चुगलियां करती भी प्रियहरि की बुराई उसके मन को जरूर कचोटती रही होगी ।

जाहिर है कि प्रियहरि का उल्लेख भी विपुल को पसंद न था । वह सब सुनता और जल-जल उठता था । उसे भय रहता कि प्रियहरि से वनमाला की निकटता कहीं उसे वनमाला से दूर न कर दे। इसीलिए प्रियहरि के खिलाफ इस नये यार ने ढेर सी हिदायतें इन चिट्ठियों में वनमाला को दी थी, जैसे -

"प्रियहरि यहीं स्थाई तौर पर हमारा बॉस हो सकता है । भोला बाबू से इनकी पटती नहीं। प्रियहरि इसलिए उसे खिसकाने के चक्कर में है । तब तुम्हें ही वे सबसे ऊपर महत्व देंगे और पास रखेंगें। इसलिए वनमाला तुम सावधान रहो। प्रियहरि से बिल्कुल सहयोग न करो।"

यह कि वनमाला प्रियहरि के चक्कर से बचकर रहे । परीक्षा में काम के लिए मिसेस जेनीफर से फोन कराना, वनमाला को सहायक अधिकारी बनाना, या वनमाला पर बांग्ला में कविता रचना इन प्रियहरि का तमाशा है वह सावधान रहे ।

यह कि वनमाला पर लिखी प्रियहरि की अर्थ भरी कथा को वनमाला संपादिका के अधिकार का उपयोग करते हुए अस्वीकृत कर दे और बता दे कि वह प्रेस में नहीं जायेगी ताकि प्रियहरि को अपनी हैसियत का पता लग जाए ।

और यह कि अब यदि प्रियहरि वनमाला को प्रसन्न करने सहायक अधिकारी बना भी दे तो वनमाला ऐसे प्रस्ताव को ठुकराकर दो टूक मना कर दे।

प्रियहरि के भूत से उबरकर पत्र में विपुल ने वनमाला की नाराजगी के मद्दे-नज़र वादे किये हैं कि अब वह दोस्ती में वनमाला से न केवल दूरी बनाए रखेगा बल्कि संबंधों में उसकी शर्तों का वह पालन भी करेगा । वह संबंधों की लाचार सशा ई को स्वीकार करेगा ।

हालांकि चिट्ठी में यह खुलासा नहीं था, लेकिन शर्तें क्या होंगी इसका अनुमान प्रियहरि लगा सकता था । मौके-बे-मौके फोन न करना, राह में पीछा न करना, सब के बीच बात-व्यवहार में ऐसा संयम रखना कि संबंध प्रकट न होने पाएं, और उस एक वर्जित की चेष्टा से दूर रहना, वगैरह ही वे शर्तें हो सकती हैं ।

रक्त कोशिकाओं का खेल

हालत बड़ी विचित्र थी। एक ओर तो वनमाला के संबंध उसके नये यार से बन-बिगड़ रहे थे और दूसरी ओर बिगड़ते होने पर भी प्रियहरि से वनमाला की करीबी बढ़ रही थी । दोनों के बीच पुराने तनाव खत्म हो रहे थे । इसके बावजूद अपने चित्त के संदेहों को प्रत्यक्ष होता देख प्रियहरि का मन आहत और परेशान हो चला था । उसकी आंखों से नींद उड़ गई थी। वनमाला को अपने खयालों से निकालने की तो कल्पना ही उसके लिए संभव न थी । जो हो सकता था वह यह कि अपना मन वह वनमाला से हटाए और मन को लगाने के दूसरे बहाने ढूंढे । प्रियहरि का मन अफसोस से भर उठता कि वनमाला उसके इतने निकट है,वह जानती है कि प्रियहरि उससे इस कदर प्यार करता है,और यह कि उसके बिना प्रियहरि का जीना मुश्किल है - फिर भी वह ऐसा खेल क्यों खेल रही है ? अब भी नजदीकियां इतनी थीं कि विश्वास न होता था कि वनमाला का चित्त चाहे चंचल हो, वासनाओं में चाहे वह भटक रही हो लेकिन उसे वह इस तरह बेरहमी से भुला पाएगी । प्रेम की यह अजीब दास्तां थी । वनमाला की बेवफाई से भटक कर प्रियहरि का चित्त भी मायूसी में बहक उठा था। तब भी वनमाला और प्रियहरि में यह अंतर था कि वनमाला के साथ के प्रति आश्वस्त हो वह सरे आम दूसरी रमणियों को दरकिनार कर फिर उसका हो उठता था। इसके विपरीत प्रियहरि से संबंध देखकर दूसरी रमणियों के प्रति ईर्ष्या से धधकती होने और प्रियहरि पर अपने एकाधिकार के दावे के बावजूद वनमाला चालाकी भरी तरकीबों से दूसरे यार को पाल रही थी ।

विपुल की जी तोड़ कोशिशों के बावजूद वनमाला और प्रियहरि के बीच रक्त कोशिकाओं का, आंखों का कुछ ऐसा अदभुत लगाव था कि जैसे वही सहज हो। मानो बाकी सब उस सहज को तोड़ने की कोशिशें हो। विपुल इस बात पर खिन्न था कि उसकी सारी कोशिशों के बावजूद वनमाला और प्रियहरि के संबंधों में नफरत वह क्यों नहीं पैदा कर पा रहा है ? उसने वनमाला से पेशकश की थी कि वह दफ्तर के फोन का तार ही काट कर रख देगा । बाद में वैसा उिसने किया भी था, लेकिन नहीं। फोन के तार टूटने से संबंध नहीं टूटते । वनमाला ने कभी विपुल को समझाया भी था कि अपने दिमाग में वह प्रियहरि का आतंक क्यों पाले है । क्यों

वह उसके नाम से भयभीत है । वनमाला ने पत्र में लिखा था कि बार-बार प्रियहरि की रट वह क्यों लगाता है । इस पर उस विपुल के पत्र में हारा हुआ जवाब था कि अगर आप नहीं चाहते तो अब मैं प्रियहरि के बारे में आपसे कोई शिकायत नहीं करूंगा ।

प्रियहरि जानता है कि वह वनमाला से और वनमाला खुद उससे दूर होने चाहे जितनी तरकीबें कर लें, कभी वे एक-दूसरे से अपने दिल को जुदा नहीं कर पाएंगे । क्या यह विचित्र नहीं था कि विपुल से वनमाला जब भी दूर होती थी, जब भी उससे विग्रह होता तो सारी भीड़ और सारी लज्जा को दरकिनार कर वह सीधे प्रियहरि के करीब जा बैठती थी।

प्रियहरि ने उन चिट्ठियों की इबारत पढ़ ली थी । वे कैसे कहां से आए यह रहस्य था। प्रियहरि का मन उहापोह से भरा था । प्रेम के रसायन शास्त्र में साथ और संपर्क की भूमिका बहुत बड़ी होती है । प्रियहरि के अंदर एक तूफान चल रहा था । गुजरे हुए साल प्रियहरि को याद आ रहे थे। उसके साथ का वह पुराना इतिहास ही इस वक्त वनमाला अपने इस नये प्रेमी के साथ फिर दोहरा रही थी । वही चोरी-छिपे प्यार के लम्हों के तलाश, एकांत का साथ, एक-दूसरे के साथ काम के बहाने काम करना, पारिवारिक पवित्रता की रक्षा की मनोग्रंथिक से बंधी वनमाला के उक्त कोमल नीचले होंठों पर बंधे सुरक्षा कवच को तोड़ने की हिकमतें, वनमाला की सनक भरी झिड़कियां, रूठने-मनाने का खेल, खेल के बीच ईर्ष्या और क्रोध का वही नजारा, सब के बावजूद पारिवारिक त्रास को भुलाने आजादी की वनमाला की कोमल आकांक्षा, आलमारी की सहभागिता में प्रेमिका के लिए चाहत भरे पत्र और वनमाला की प्रतिक्रियाएं - सारी की सारी स्थितियां, प्रियहरि देख रहा था कि, ठीक वैसी ही थी, जैसी कभी वनमाला और उसके बीच हुआ करती थीं।

आप डर छोड़ते क्यों नहीं ?

बीच में ही वनमाला झपट पड़ी - "आप डर छोड़ते क्यों नहीं ? दूसरों के कहने के चक्कर में आप मेरे साथ ही हमेशा अन्याय कर जाते है । आप लोगों से इतना डरते क्यों हो ?
वनमाला का चेहरा पीड़ा से भर उठा था वह रुआंसी हो गई थी - "आप यहां बैठे रहते है और लोग बाहर भीड़ में मुझे न जाने क्या-क्या ताने देते रहते है।

बात उस दिन की है जब वनमाला की जोरदार डांट से चोट खाया और मायूस उसका नया प्रेमी विपुल दस दिन की छुट्टी में रहकर लौटा था। इस दौरान एक से रास्ता साफ पाकर वनमाला बड़ी तसल्ली से प्रियहरि के इर्द-गिर्द घूमती पाई जा रही थी । इधर वनमाला को अपने पास चहकता देख प्रियहरि का मन मचल रहा था । कविता-कहानी उसे फिर सूझ रहे थे। उसने अक्सर वनमाला से पूछना चाहा है कि ऐसा क्यों है कि कोई जानता हो कि वहां उसकी मौत है और वह वहीं जानबूझकर खिंचा चला जाय ? उसने इस पर एक छोटी सी प्रतीकात्मक कथा फौरन लिख डाली थी । वनमाला और उसे जानने वालों के लिए वह उसकी मनः स्थिति का एक स्पष्ट संकेत थी । तीन दिन पहले ही जब यह लिखी गई थी विराग ने इसे पढ़ लिया था । यह जानते हुए भी कि पत्रिका की फाइल वनमाला के पास है, प्रियहरि ने वह कहानी सेवक के जरिये विराग या वनमाला को सौंपने भिजवा दी । सेवक ने आकर बताया कि विराग ने आपका कागज वनमाला को दे दिया है । प्रियहरि जानता था कि वनमाला से उसका आंख मिलाना और उसे तरजीह देना विराग को सखत नापसंद है ।

जैसे इन दिनों का इतिहास मालूम न हो, बड़ी मासूमियत से प्रियहरि ने वनमाला को बुला भेजा। उससे पूछा कि उसके और पत्रिका के हालचाल क्या हैं? वनमाला ने जवाब दिया कि कुछ सामग्री उसने देखी है और बाकी भी देख लेगी। उसके कहे अनुसार फाइल वह लेकर आई तो जरूर थी लेकिन स्कूटर की डिक्की में बंद रही आने के कारण वह फाइल उसके मिस्टर के साथ वापस चली गई है । मौका पाकर उसने आज फिर शिकायत की थी कि फाइल आपने मुझे दे दी है तो विराग को बुरा लग रहा है। अब वे मुझसे रूखा व्यवहार करते ताना मारते हैं।

यह विचित्र बात थी कि वनमाला प्रियहरि पर अब भी अपना आत्मीय अधिकार रखती थी । वह विश्वासपूर्वक इस आग्रह से भरी थी कि उसे जो पसंद नहीं वह प्रियहरि क्यों करता है ? उसकी मंशा यह होती कि जो भी उससे प्रियहरि की निकटता पर चिढ़ता है उसे वह क्यों नहीं अपने से दूर कर देता ? इधर वनमाला प्रियहरि से नजदीकियां दिखलाती बड़े मान से अपनी तकलीफें बता रही थी और दूसरी ओर उसका नौ दिनों के बाद लौटा यार उसकी समीपता को आतुर काम न रहने पर भी वहां जमे रहने की जिद करता ।

प्रियहरि ने पाया कि उसका अपना फोन उस रोज भी खराब पड़ा है । चिट्ठी की बातें उसे ध्यान आईं । यह समझते देर न लगी थी कि यह उस चिढ़े हुए आशिक कारस्तानी है जिसे टेलीफोन पर लगे ताले से चिढ़ थी और सुधरे हुए टेलीफोन से प्रियहरि और वनमाला के बीच बातों की संभावना का भय था ।

वनमाला के पिछले दिनों के लगातार आग्रह और आज किये गये अनुरोध से पिघलकर प्रियहरि ने तय किया था कि वह अगले दिन वनमाला की दो ड्यूटी में से एक काट देगा । वनमाला इस बात से खफा थी कि उसे बार-बार दो ड्यूटियां करनी पड़ती है। विराग ने प्रियहरि का इरादा जाना तो खफा हो उत्तेजित स्वर में लेकिन आत्मीय दखल से अपनी शिकायत रख दी । वह कहने लगा -"आप हमेशा उसी से सहानुभूति दिखाते हैं। नंदिता (जो विराग की बीबी थी) बेचारी की भी तो यही परेशा नी है। आप उसकी ड्यूटी क्यों नहीं काट देते ?" प्रियहरि इस तरह कई-कई पाटों के बीच फंसा रहता था। विराग के अनुरोध पर उसने सूचना से नंदिता की ड्यूटी हटा दी और वनमाला के नाम को यथावत् रहने दिया ।

कुछ ही क्षणों बाद वनमाला आई। ज्यों ही उसे नंदिता की ड्यूटी काट दिये जाने की बात मालूम हुई प्रियहरि पर खफा होती वह बोल उठी कि वह उसके प्रति ऐसा अन्याय दूसरों को खुश करने आखिर क्यों करता है ?

प्रियहरि ने कहना शुरू ही किया था कि "अगर वह वनमाला का पक्ष लेता तो लोग उस पर वनमाला से संबंधों और पक्षपात का हल्ला मचाते इसी डर से ......।" बीच में ही वनमाला झपट पड़ी । "आप डर छोड़ते क्यों नहीं ? दूसरों के कहने के चक्कर में आप मेरे साथ ही हमेशा अन्याय कर जाते है । आप लोगों से इतना डरते क्यों हो ?

प्रियहरि और वनमाला के संबंध पुराने समय के बदल जाने के बाद भी एक-दूसरे पर पूरे अधिकार के थे। प्रियहरि ने अपने अंदर की चुभन बिना छिपाए वनमाला पर प्रगट कर दी - "वनमाला, पुराने अनुभव मुझे डराते हैं । मुझे डर लोगों से नहीं, तुमसे रहता है । तुम्हारे लिए लोगों का विरोध सहकर भी मैं झगड़े की हद तक चला जाता हूँ। तुम्हीं लेकिन जब मुझसे झगड़ा कर उनके साथ हो जाती हो तो कभी सोचा तुमने मुझ पर क्या गुजरती है ? तुम कहो कि मुझे सहयोग दोगी और साथ छोड़ भाग न जाओगी तो मुझे दूसरों की परवाह क्यों होगी ?'

तब भी बेवफा वनमाला की चाहत को वह ठुकरा नहीं सकता था । दो दिन बाद तीन दिनों के लिए उसकी ड्यूटी प्रियहरि ने हटा दी। वनमाला की शिकायत दूर करने उसे वैसा करना पड़ा था । वह आई । स्टाफ के कमरे से प्रियहरि ने विराग और वनमाला को बुला भेजा। वनमाला पहले आ गई । वनमाला के प्रियहरि पर दखल और करीबी से नाराज विराग ने आने में काफी विलंब किया। वनमाला के पास अच्छा मौका था। दयनीय और खिन्न भाव से उसने शिकायतों की झड़ी लगा दी । कहा - "आप पत्रिका में अब जब से मुझे महत्व देने लगे है, विराग को बुरा लग रहा है । उसका साथ मुझे बिल्कुल पसंद नहीं । आप ही देखिए कि संपादक होने की काबिलियत क्या उससे अधिक मुझमें नहीं है ?"

विराग से शुरुआत हुई थी पर वनमाला उस दिन सारे लोगों के खिलाफ अपनी सारी शिकायतें प्रियहरि से कह डालना चाहती थी। वह बता रही थी - "भोलाराम जी, उसके विभाग प्रमुख जोशी, सारी औरतें - सब के सब यह प्रचारित कर रहे है कि मैं झगड़ालू हूं और मेरी किसी से नहीं पटती ।"

वह खिन्न थी । वह पूछ रही थी - "बताइए, मैंने ऐसा क्या किया है ? लोग कहते है कि तुम खुद ही दोषी हो। कहते है कि मैंने कभी आपसे सहयोग नहीं किया बल्कि हमेशा विरोध किया है ।"

वनमाला का चेहरा पीड़ा से भर उठा था वह रुआंसी हो गई थी - "आप यहां बैठे रहते है और लोग बाहर भीड़ में मुझे न जाने क्या-क्या ताने देते रहते है। अपने विभाग प्रमुख कुटिलाक्ष जोशी का नाम लेकर

उसने शिकायत की कि वे आपसे मेरी निकटता पर आक्षेप करते हैं । कहते हैं कि प्रियहरि उस रोज खासतौर पर अलस्सुबह पहुंच जाते है, जिस रोज वनमाला यहां काम पर आती है,या काम पर होती है। आज ही कमरे में घुसते मुझ पर उन्होंने व्यंग्य किया - "अच्छा, आप आ गईं, ड्यूटी तो नहीं है आपकी । है क्या ? अब आ ही गई हैं तो प्रियहरि आपको बिल्कुल काम पर लगा ही देंगे।"

वनमाला यह सब बताते-बताते लगभग रोने -रोने को हो गई थी। उसे यह बात चुभ रही थी कि प्रियहरि उसकी पीड़ा क्यों नहीं समझता ? एक-दूसरे से आत्मीय अधिकार के बावजूद वह उसका ध्यान क्यों नहीं रखता ? वह उसकी रक्षा करता नहीं और महत्व देना तो दूर उसे अपमानित होता देखता डरा करता है । उसके मन में इस बात का मलाल था कि प्रियहरि इसकी बजाय उनसे ईर्ष्या करने वाले लोगों की, सारी भीड़ की बातें चुपचाप सुन लेता है। वह उन्हें मानता है और बढ़ावा देता है ।

भोलाबाबू के बारे में उसने बताया कि -"परीक्षा के हाल में इसी बात पर मुझसे सबके सामने व्यंग्य करते यह कह दिया कि सारे लोग तुम्हें अच्छी तरह जानते हैं। जानते है कि यहां क्या-क्या हो रहा है ? कौन है, जो यह सब करा रहा है ?"

सत्यजित के बारे में शिकायत यह थी कि किसी रोज प्रियहरि के बुलाने पर वह आ गई तो सत्यजित ने डांटते हुए उस पर आरोप लगाया कि आप कमरे में रहती नहीं है और यहां-वहां घूमती-फिरती है ।" आगे यह है कि वे तो आप पर भी खफा होते मुझसे एक रोज कह रहे थे कि प्रियहरिजी खुद तुम लोगों के नाम पर खूब सोच-सोचकर काट-छाट किया करते हैं और मुझे खुद कुछ करने नहीं देते ।

जवाब में प्रियहरि ने अपनी व्यथा वनमाला से कहते पूछा था कि - "तुम खुद भी तो मेरे पीछे पड़कर गैरों के साथ मिल जाया करती हो। तुम्हारा पक्ष लेना मेरे लिए तो भी मुसीबत का कारण बन जाता है । भला बताओ ऐसा क्यों होता है ?"

वनमाला ने हताश होकर कहा - "न आप कुछ कर सकते है और न मैं कुछ करने की हालत में हूं। अब तो अच्छा यही होगा कि अपना तबादला मैं यहां से करा लूं ।"

प्रियहरि आश्वस्त नहीं था वनमाला के मन में वैसा कहते हुए कौन सी भावना काम कर रही थी ? क्या प्रेम के रास्ते की बाधाओं और पशोपेश के चलते वह भावुक हो गई है, या सचमुच त्रस्त है ? उसने कहा - "मेरी प्यारी वनमाला, केवल तुम्हारे लिए ही तो मैं यहां हूं। अन्यथा कब का मैं अपना तबादला खुद और कहीं न करा लेता ?" उसने कहा - "ऐसा न कहा करो । तुम क्यों जाओगी ? क्या मेरे रहने से ही तुम्हें परेशा नी है ? मुझसे ही शिकायतें हैं ? क्या मैं किसी और जगह चल जाऊँ ?"

वनमाला ने कहा - "मुझे तो साफ दिखाई पड़ रहा है कि हम दोनों यहां साथ नहीं रह सकते । कोई भी हमें साथ नहीं देखना चाहता । या तो मैं, या आप ही कहीं और चले जाएं। शायद इसी में हमारा छुटकारा है ।"

प्रियहरि ने जवाब दिया - "वनमाला - डरना छोड़ो । लोगों से तुम क्या नहीं निबट सकतीं ? सब की बातें सुनकर तुम चुपचाप सह लेती हो और सारा गुस्सा निकालती मुझसे लड़ती हो । लोगों से तुम खुलकर कह दो कि क्या मैं स्टॉफ की मेम्बर नहीं हूं ? उनसे पूछो कि अगर यहां और औरतें मेरे साथ काम कर सकती है बैठ और बातें कर सकती है तो तुम ही क्यों नहीं ?"

" आप मुझे कहते हैं । लेकिन क्या आप नहीं डरते ? क्या आप के विषय में भी सच वही नहीं है ?"

वनमाला के साथ के लंबे एकांत और उसकी मार्मिक शिकायतों ने प्रियहरि को पानी-पानी कर दिया था। उसने तय किया कि वह उन सबकी खबर लेगा जो वनमाला की उससे निकटता से ईर्ष्या करते हैं और वनमाला जिनसे त्रस्त थी ।

0000000

वनमाला की कही बातें प्रियहरि के ध्यान में थीं । उसे यह सुनकर बुरा लगा था कि वनमाला के उससे संबंधों को लेकर उसकी पीठ पीछे वनमाला को ताने देकर लोग उसका मज़ाक उड़ाया करते थे ।
दूसरे दिन प्रियहरि ने मंजरी और कुटिलाक्ष जोशी को इस बात की स्पष्ट ताईद की कि आपके निजी संबंध जिनसे नहीं है, उन पर साधारण को भी असाधारण बना देने वाली चुभती ज़ुबान का इस्तेमाल न करें । इस पर दोनों ने वनमाला को खूब बुरा-भला कहा । बाद में मंजरी से करीब घंटे भर प्रियहरि की बात हुई। प्रियहरि पर वनमाला का एकाधिकार था लेकिन मंजरी या और-और कामिनियां दोनों के झगड़ों के बीच प्रियहरि के मन को पिघलाती, वनमाला को धक्का देती उसके निकट आ रही थीं। मंजरी इसका अपवाद न थी। मंजरी का कहना था कि आपको उस वनमाला को लिफ्ट ही नहीं देनी चाहिए थी । उसकी बातें आपको सुननी ही न थीं । प्रियहरि ने जब वनमाला के हवाले से इस बात का जिक्र मंजरी से किया कि वह तो तुम और औरतों को पास न फटकने की बात कहती है तो मंजरी ने कहा - "आप समझते क्यों नहीं ? वनमाला आपसे बात भी करती है और बाहर जाकर उन बातों को उल्टे सीधे तरीके से अपने पक्ष में प्रचारित कर सहानुभूति बटोरना चाहती है ।"
प्रियहरि अजीब मुसीबत में था । वह किस पर विश्वास करे - इस पर, उस वनमाला पर ? उसने मंजरी से कहा कि अगर वैसा है तो तुम लोग भी उससे साफ कह दिया करो कि वह झूठ बोलती है। खुद पास बैठती भी है और बुराई भी करती है।
मंजरी ने कुछ पल की चुप्पी के बाद प्रियहरि के चेहरे पर निगाहें गड़ाये कहा - "प्रियहरि आप खुद भी अभी-अभी वनमाला को लेकर कमजोर हो रहे हैं । यह ठीक नहीं है।" प्रियहरि ने मंजरी की बड़ी-बड़ी मादक आंखों की शिकायत पढ़ी। उनमें लिखा था कि क्या दुनिया में वनमाला ही एक है । उसे छोड़िए न, मुझे आप क्यों नहीं पढ़ते ? कमजोर होना ही है तो उसे लेकर नहीं, मेरे लिए हों।

0000000000000

अगले दो दिन रचनाओं की छंटाई, कविताओं की समझ और रचनाओं के रूपांतरण का काम बेहद आत्मीय निकटता के माहौल में वनमाला और प्रियहरि ने अपने निजी एकांत में साथ-साथ किया। दोनों को साथ पाकर यूं भी प्रियहरि के निकट आने से लोगों को परहेज है। वनमाला की प्रतिभा और उसकी बेबसी न जाने क्यों हमेशा प्रियहरि को खींचती है । वनमाला भी बाहर ऊल-जलूल प्रचारित करने के बावजूद प्रियहरि को दूसरों के साथ नहीं अपने साथ ही काम करता देखना चाहती है ।
प्रियहरि द्वारा पत्रिका के लिये लिखी गई सांकेतिक लघुकथा की विराग ने वनमाला के सामने तारीफ की थी । हालांकि खुफिया तौर पर वनमाला के दूसरे यार ने वैसा करने की मनाही की थी, पर यहाँ वनमाला ने भी विराग की हाँ में हाँ मिलाते हुए बिल्कुल खुले तौर पर कहा कि सचमुच यह बहुत अच्छी रचना है। मुझे भी यह बहुत अच्छी लगी। इसे छपना चाहिए।
विराग की अनुपस्थिति में कुछ बाद प्रियहरि ने वनमाला से पूछा था कि - "प्यारी वनमाला, क्या इस कहानी का रहस्य तुम्हारे अलावा और कोई समझ पाएगा?"
उसने कहा -"क्या मालूम ?"
प्रियहरि के यह कहने पर कि कहीं इसका मतलब लोग समझ तो नहीं लेंगे ?, वनमाला ने कहा - "इसीलिए मैं सोचती हूँ कि इस कहानी को रहने दिया जाए । उस पर बेकार ही हमारी बदनामी होगी और शोर मचेगा ।"
प्रियहरि वनमाला का मन पढ़ रहा था । वनमाला उसकी भावना को स्वीकार कर रही थी । उसका प्रेम उसे स्वीकार था लेकिन नये प्रेमी पर वह इसे प्रगट न होने देना चाहती थी ।
देर दोपहर काम खत्म हुआ और वनमाला चली गई। वनमाला जब प्रियहरि के निकट होती तो माहौल यूं हो जाता कि जैसे वनमाला और प्रियहरि के सिवाय कोई उपस्थित न हो। वे साथ-साथ यूं होते कि सारे विग्रह, विग्रह का सारा अतीत एक दूसरे की तन्मयता में एक दूसरे में डूब जाता था। तब उपस्थित रमणियां हों, या

पुरुष - माहौल को सूंघते, अपने को परिदृश्य से बाहर महसूस करते हुए इस या उस बहाने वे बाहर खिसक जाते हैं । उनके बीच उस दिन विराग भी खिन्न रहा। उसने साफ कह दिया कि कल आप लोग खुद काम शूरू कर लीजिएगा मैं दोपहर देर से आऊँगा। वनमाला मुस्कुराई लेकिन बाकी किसी ने कुछ न कहा। प्रियहरि और वनमाला दोनों ने ही समझ लिया कि यह वनमाला को अपने साथ रखने के लिए प्रियहरि के प्रति विराग का प्रतीकात्मक विरोध है । औरों से प्रियहरि को उस तरह छीनकर वनमाला खुश होती थी । औरों को इस तरह पल में परास्त कर उसका आत्मविश्वास तुष्ट होता था । वह मानो यह बता देना चाहती थी कि अन्य अन्य सब भ्रम में मत रहें । जो झगड़े हैं वे केवल हमारे अपने बीच के हैं । उसका मतलब कोई और यह भूल से भी न लगाए कि एक दूसरे से हमारा संबंध, एक दूसरे पर हमारा एकाधिकार खत्म हो गया है ।

आने वाले दिनों में भी प्रियहरि के साथ वनमाला की वैसी ही दिली बैठकें जारी रहीं। वनमाला उससे यूं खुल गई थी कि जैसे उन दोनों के बीच कभी दूरी रही आई न हो । उसने प्रियहरि से शिकायत की कि उन्होंने क्लर्क या कार्यालय की सहायिका जेनीफर से फोन भला क्यों करवाया था ? फोन खुद ही करते तो बेहतर था । आपने मुझे सहायक अधिकारी बनाने की खबर उससे दिलवाई और वह थी कि सब जगह चटखारे ले-लेकर बात फैलाती चली गई । इसी से तो हमें बदनाम करने लोगों को बहाना मिलता है।

वनमाला ने प्रियहरि से पूछा -" क्या अब वह रिफ्रेशर पाठ्यक्रम के लिए बाहर जा सकती है ?"

प्रियहरि ने सहमति देते हुए बताया कि उसने तो आवेदन पर स्वीकृति की टिप्पणी दर्ज भी कर दी है ।

00000000000000

प्रियहरि के दिल पर मरहम लगाती जब वनमाला इन दिनों उससे घुलती जा रही थी तभी प्रियहरि वैसी ही गलतियां कर बैठा जैसी भय, ईर्ष्या, अविश्वास और संदेह में उसकी प्रिया वनमाला करती थी। वह निश्चयतः वनमाला के प्रति प्रियहरि का विश्वासघात था । उसने भोलारामजी को अपना विश्वासपात्र जानकर वनमाला और उसके नये यार के बीच के गुप्त पत्राचार की बातें उजागर कर दी थीं । यह पहली गलती थी । वैसी ही मन:स्थिति में दूसरी गलती तब कर बैठा जब उसने वनमाला के पति से बात की । हुआ यूं था कि दो दिन बाद सुबह वनमाला के पति ने यह बताने फोन किया था कि तबियत बहुत खराब होने के कारण वनमाला उस दिन नहीं आ सकेगी । न जाने उस क्षण अचानक प्रियहरि के सर पर कैसा शैतान सवार हुआ कि वनमाला के प्रति बदले की भावना से उसने वनमाला के पति से अवसर निकालकर मिलने की बात कह डाली। यह भी कि दोनों के बीच की यह बात खुफिया रहे और उसकी पत्नी तक को मालूम न हो । दरअसल ऐसा करने में प्रियहरि के मन का वह लोभ छिपा था जो वनमाला के अपने प्रति व्यवहार की शिकायत और दूसरों की बातों में पड़कर प्रियहरि से झगड़ा न करने के लिए वनमाला के पति से अपने पक्ष में अनुहार चाहता था ।   ज्यों ही उसने बात खत्म की वह खुद सहम उठा था। अपने खुद के किये से सचमुच उसने वनमाला के मन में संदेह और रोष के वास्तविक आधार पैदा कर दिये थे ।

वही हुआ जिसकी आशंका से प्रियहरि भयभीत था । घटना के तीसरे रोज की बात है । वह बाहर बरामदे में खड़ा था । वनमाला ड्यूटी कर अपने कमरे से निकलकर अचानक उसके सामने आ खड़ी हुई थी । उसका चेहरा म्लान था। आंखें सूजी हुईं और आवाज रुंधी हुई थी। वह रात ठीक से सो भी न पाई थी।

गंभीर आवाज में अनपेक्षित रूप से वनमाला ने प्रियहरि से सीधे कहा - "मुझे आपसे कुछ बात करनी है।"

प्रियहरि सहम उठा। वह पहले ही अपने किये से तनाव और चिंता में फंसा था । वनमाला से उसने कहा कि चलकर बैठे, वह कमरे में आ रहा है । वहां सुरंजना भी छुट्टी के बाद आवेदन के लिए आई थी । कुछेक मिनट बाद सुरंजना गई और वनमाला प्रियहरि पर नाराजगी से ज्वालामुखी की तरह फट पड़ी - "प्रियहरि यह क्या बात है ? आपने फोन पर मेरे मिस्टर से कहा कि मुझको लेकर कुछ खुफिया बातें आप उनसे करेंगे। यह भी कि इसे वे घर में किसी को न बताएं। आप बताइए कि आपने ऐसा क्यों कहा ? बार-बार आप पर मैं विश्वास करना चाहती हूं और आप कपट करते हैं। आप का क्या मतलब था ? कौन सी ऐसी खास बात थी, जो आप मुझसे नहीं कर सकते थे और उन्हीं से करना चाहते थे ?"

प्रियहरि पशोपेस में पड़ गया था अंदर ही अंदर भारी शर्मिन्दगी और आत्मग्लानि से वह गड़ा जा रहा था। बात को संभालने उसने जवाब दिया - "नाराज क्यों हो रही हो ? फोन तो मैंने किया न था । उनका फोन आया, तुम्हारी तबियत की बात पता लगी तो सौजन्य में यूं ही मुंह से निकल गया कि कभी वे अकेले मिलें ...." बीच में ही वनमाला झपट पड़ी - "बात इतनी सीधी नहीं थी जैसी आप अब बता रहे है । प्रियहरि, आपने खासतौर पर उनसे कहा था कि खुफिया मुलाकात के बारे में घर में भी न बताया जाय । आपने वैसा क्यों कहा ? क्या खास बात आप उनको अकेले में बताना चाहते थे ? वह अविराम बोली जा रही थी -"आप क्या समझते थे कि आप मेरे पति को ऐसा कहेंगे और वे मुझे नहीं बताएंगे ? उन्होंने मुझे फौरन बता दिया । मैने भी कच्ची गोलियां नही खेली हैं। आप क्या समझते हैं। यह कि मुझसे ज्यादा वे आप पर विश्वास करेंगे ?"

प्रियहरि समझ चुका था कि उसकी प्रेमिका उस क्षण प्रतिशोध की ज्वाला में धधक रही औरत मात्र थी । वनमाला ने अपना कुटिल दांव प्रियहरि की ओर फेका । संबंधों के मीठेपन की जगह अब उग्र रोष, अविश्वास और प्रतिशोध में आरोप की भाषा काम कर रही थी -

"आपको वे अच्छी तरह जानते है कि आप क्या है ? उन्हें सब बाते मालूम है । मैं सब अच्छी तरह समझती हूँ । आप हम लोगों में दरार पैदा करना चाहते है और हमारे परिवार को बिगाड़ना चाहते है । आपकी ये कोशिस कभी सफल नहीं होगी । आखिर क्या ऐसी बात थी जो आप उनसे कहना चाहते थे ? प्रियहरि ने कोशिस की लेकिन समझाने के सारे बहाने व्यर्थ गये।

प्रियहरि को शर्मिन्दा करती वनमाला उससे पूछ रही थी - "प्रियहरि संबंध आप के और मेरे बीच के हैं। फिर आप ने वैसा क्यों किया ? आप से छिपा कर इस तरह की बातें अगर मैं आपकी बीबी से करूं तो क्या आपको अच्छा लगेगा ?

प्रियहरि सचमुच पशोपेस में था । उसकी मुद्रा बचाव की थी। वनमाला आवेश में चिल्लायी जा रही थी और वह उसे रोक रहा था। एक क्षण ऐसा आया जब उत्तेजित हो रोष में प्रियहरि ने भी जवाब में कह दिया - "आपको जो करना हो कीजिए जो मुझे करना है वह मैं करूंगा।"

वनमाला की नाराजगी जायज थी। संबंधों के जुड़ते सूत्र, दोनों के बीच गहराई में पैठते विश्वास के पल तार-तार होकर पल में बिखर चले। विवेक की कमी ने प्रियहरि में सब गड्डमगड्ड कर दिया था। इस समय तो उसकी चिंता केवल इज्जत बचाने की थी। समय प्रियहरि के हाथ से निकल चुका था। दोष उसी का था। तब भी यह अजीब बात थी कि प्रियहरि के विश्वासघात से पथराई वनमाला उस वक्त अपना गुस्सा उतारती भी रो चली थी। प्रियहरि से वनमाला को ऐसी उम्मीद नहीं थी । उसे गहरा सदमा पहुंचा था। इधर प्रियहरि के पास पछताने के अलावा क्या रह गया था ? वनमाला का विश्वास खोकर अंदर ही अंदर शर्म से वह गड़ा भी जा रहा था। यह बात वह वनमाला से कुबूल भी कर सकता था लेकिन वह कायर था। कहने की उसे हिम्मत न हुई ।

प्रियहरि की गलती ने जहां उसे पछतावे और शर्मिन्दगी से भर दिया था वहीं वनमाला उस पर अपने विश्वास के आहत होने से दुखी थी । दोनों ने इस बात को महसूस कर लिया था। वनमाला की आंखों में छपी शिकायत प्रियहरि को भी दुख से भर देती थी। सप्ताह भर यूं गुजर गये । इस बीच वनमाला के घर में क्या घटा ? नये शुभचिंतक यार से जो निश्चयतः बहुत खुश हुआ होगा वनमाला की कौन सी गुपचुप बाते हुईं, सलाह मशविरे हुए होंगे ? यह सब प्रियहरि के लिए जानना मुश्किल था । सारा कुछ हो चुकने के बावजूद

कुछ ऐसा था जो अब भी वनमाला और प्रियहरि को बांधे रहता था - फिर वह चाहे नाराजगी और शिकायत की डोर से ही क्यों न हो ।

0000000000000

उस एक दिन वनमाला की ड्यूटी ग्यारह बजे से थी। वह आधा घंटा पहले ही पहुंच गई थी । उसकी बेचैन निगाहें इधर-उधर फिर रही थीं। उसका नया प्रेमी जो अमूमन आकर इंतजार करता था, आज अदृश्य था । उसी के इंतजार की बेचैनी वनमाला को रही होगी । परीक्षा की तारीख पर भोलाबाबू देर तक भी नहीं पहुंच सके थे। उनका सहायक विराग प्रश्न-पत्रों के लिफाफे काट और गिन रहा था। सबसे बड़ा होकर भी खुद वहां मौजूद प्रियहरि उसकी मदद कर रहा था । वनमाला पास ही बैठी थी । जब तक वनमाला खुद मुंह न बना लेती, प्रियहरि भी उसकी उपेक्षा नहीं करता था । दृश्यादृश्य रूप में दोनों की आंखें मिल रही थीं। अंदर छिपी उदासी आंखों के मिलन में दोनों के दिलों को जोड़ रही थी। कुछ ऐसा हुआ कि प्रियहरि ने वनमाला की ओर देख प्रश्न-पत्रों के लिफाफे बढ़ा दिये थे। यूं कि जैसे तरंगें उन तक पहले ही पहुंच चुकी थीं आंखों की भाषा समझती वनमाला के हाथ भी अपने आप उन्हें थामने बढ़ चले थे । ऐसी चीजों में बात कुछ न थी। लेकिन इसे वनमाला और प्रियहरि ही नहीं सभी महसूस करते थे कि वैसे महत्वहीन दिखाई पड़ रहे में भी बहुत महत्व छिपा होता था । वैसे आदान-प्रदान में आदान-प्रदान तो गौण हुआ करता था। प्रमुख होतीं वे तरंगें, जो चित्त, हृदय और काया तक एक-दूसरे में पहुँचतीं और टूटे हुए दो दिलों को जोड़ देती थीं । विराग ने दोनों के बीच के व्यापार को लक्ष्य किया और खिन्नता से मुंह बनाते नि:शब्द अपनी वितृष्णा जाहिर की ।

यह दूसरा दिन था । वनमाला बेचैन पाई जा रही थी । उसकी ड्यूटी परिक्षा के कमरे में लगी थी । देर से पहुंचकर भी अपने काम के कमरे में वह और देर करती हुई रवाना हुई थी। दस मिनट बाद ही लौटकर जैसे वह अपनी पेन या पर्स या कोई खो गई चीज़ तलाशती टेबिलों, कुर्सियों, आलमारियों के इर्द-गिर्द झांकती उन्हें खंगालकर फिर कमरे में वापस हो चली थी। उसका वांछित उसे न मिल सका था। इतने में उसका प्रेमी आता दिखा । बेचैन वह भी कमरों के चक्कर लगा आया था । कहने के लिए गुमी चीजें थीं, लेकिन खोया मन प्रतीत होता था। माजरा क्या था इसका अनुमान ही लगाते वहां मौजूद सब रह गये । चंचल चुलबुली नेहा इस सबका मजा लेती प्रियहरि को छेड़ रही थी ।

हालत बड़ी अजीब थी। प्रियहरि ने भयंकर अपराध किया था। जिस तरह वनमाला अपनी गलतियां महसूस नहीं करती थी उसी तरह प्रियहरि भी हताश होने के बावजूद अपने किये को बुद्धि की कसौटी पर सही सिद्ध करने वजहें ढूंढ रहा था। एक तरफ सारे तनाव और विग्रहों के बीच वनमाला के साथ गुजर रहे आत्मीय क्षण उसके सामने होते तो दूसरी तरफ वनमाला का वह अबूझ स्वभाव और व्यवहार उसे परेशान करता होता, जिसमें चालाकी और कुटिलता की गंध वह पाता था । वह सोच रहा था कि उसने जो किया वह कुछ ऐसा तो नहीं था जो पहले वनमाला ने उसके साथ न किया हो। वह भी उसी की तरह विश्वासघातिनी क्या नहीं थी ?

वह याद कर रहा था कि यदाकदा भी, मसलन पत्रिका का प्रूफ देख लेने कभी जब उसने फोन लगाना चाहा तो पाया कि वनमाला का फोन कहीं बातचीत में व्यस्त है । खेल-खेल में अपने प्रतिद्वंदी यार का नंबर लगाता तो वह भी व्यस्त मिलता। बीस-तीस मिनट बाद लाइन साफ हो जाती । यह सभी जानते और देखते थे। लोग उससे शिकायत करते कि ही वनमाला ठीक वैसी नहीं है, जैसा प्रियहरि उसे समझता है। वनमाला के

प्रमुख कुटिलाक्ष जोशी बताते कि वह अपने यार के साथ घूमती देखी जाती है । अपने घर से ठीक उल्टी सड़क पर जाते तिपहिया में वनमाला बैठती है और फर्लांग भर बाद उतरकर यार के साथ स्कूटर में सवार हो जाती है, जहां वह पहले से उसका इंतजार करता होता है। प्रियहरि खुद भी वह सब देखता और महसूस करता था। यह अजीब था कि पवित्रता की गांठ बांधे एकांतिक स्वभाव की छुई-मुई रही आई वनमाला अब हवा के पंखों पर सवार थी।

00000000000000

परीक्षाओं के दिनों की पुरानी घटना के बाद गर्मियों की छुट्टियां थीं। अब नये सत्र का पहला महीना था। प्रियहरि का पशोपेस उसे खाए जा रहा था। ऐसी चर्चा हवा में थी कि तरक्की जल्द रही होने वाली है। प्रियहरि का मन वनमाला से दूरी की कल्पना से बेचैन हो उठता। यह विचित्र था कि जिस वनमाला से और उससे संबंधों से उत्पन्न परिस्थितियों से प्रियहरि आहत और अवसादग्रस्त था, उसी का मोह उसे ऐसे वातावरण में भी बांधे रखना चाहता था । ऐसी ही किसी मन:स्थिति में एक रोज वनमाला को प्रियहरि ने याद किया । अब तक पुराने झगड़ों का आवरण मन से हट चला था। दिलों में छिपे अफसोस के एहसास ने दोनों को फिर एक-दूसरे के पास आने प्रेरित किया था ।

प्रियहरि और वनमाला दोनों यह जानते थे कि एक दूसरे को आहत करके वे खुद आहत होते हैं। दोनों को ही उससे पछतावा होता था। दोनों उस पछतावे के दर्द को भुगतते थे । दोनों को यह एहसास था कि एक दूसरे को चोट पहुंचाने के इस खेल के पीछे नफरत नहीं थी बल्कि वह चाहत थी जो एक-दूसरे को बेवफाई की सजा देता अपना एकाधिकार मांग रहा थी। वनमाला और प्रियहरि दोनों के बीच टपक पड़े शुभचिंतक नये यार विपुल का स्वार्थ वनमाला से भिन्न था। वनमाला को अपनी चालों में चलाता वह हमेशा षड़यंत्र बुनता कि वनमाला प्रियहरि से दुश्मन की तरह पेश आए। इधर वनमाला थी कि दुश्मनी के माहौल के बावजूद प्रियहरि से यारी नहीं तोड़ना चाहती थी । या यूं था कि सामने आने से पहले भरा मन का गुबार आँखों के लड़ने के साथ ही न जाने किस जादू से गायब हो पड़ता था । वनमाला को मालूम था कि प्रियहरि उसे दिल और जान से चाहता है। इसीलिए उसकी चाहत वनमाला को हमेशा पसंद थी । यह चाहत उन दिक्कतों और मजबूरियों के बावजूद बनी रही थी जो अपनी चाक-चौबन्द नैतिकता की सुरक्षा की मुहिम में उसके सामने पेश थी। घर-परिवार और बाहर का सारा कुछ सहती, अपने को संभालती भी वनमाला प्यार के तूफान में मचलते समुन्दर के पास खड़ी थी। उससे वह अपनी प्यास बुझाना तो चाहती थी, लेकिन बुझा नहीं पा रही थी । प्रियहरि ही वनमाला को यहां तक खींचकर लाया था। यह बात और है कि राह में उसे भटकाता उसके पीछे वह एक तीसरा भी हो लिया था ।

जब-जब उसकी अपनी तरक्की की बात चलती प्रियहरि यह सोचकर सहम उठता कि तब अपनी प्यारी वनमाला से उसे दूर होना पडेगा। वह आस्वस्त होना चाहता था कि दूरियों के बावजूद उनमें निकटता बनी रहे। उधर वनमाला भी सोचती कि दूरी अगर नियति है भी तो प्रियहरि से संबंधों की यादों का उसका जो पुल है, उसे क्यों तोड़ा जाए । दो प्रेमियों के बीच की कसमकस में वह खुद पिसी जा रही थी । प्रियहरि का वहां होना वनमाला की जिन्दगी का एक इतिहास था। उसके पन्ने तभी अलग किये जा सकते थे जब उसे याद दिलाने वाली पुस्तक ही गायब हो जाय ।

जुलाई के बीच का ऐसा ही वह दिन था जब वनमाला खुद ही प्रियहरि के पास उसे अकेला पाकर बैठ गई थी । यह अजीब बात थी कि प्रियहरि वनमाला का दीवाना था और वनमाला को भी प्रियहरि की

दीवानगी से प्यार था । यह ऐसी चाहत थी जिसे मुरझाता देख वह अपने प्यार के छीटों से फिर हरा-भरा कर देती थी ।

वनमाला ने पूछा - "कैसा मूड है ? मूड हो तो बैठ जाऊं, अन्यथा भगा दीजिए । हो सकता है मुझे यहां बिठाकर आपका मूड खराब हो जाय ।" वह चहकती हुई प्रियहरि को छेड़ रही थी।

प्रियहरि यूं ही दुविधाग्रस्त और उदास था। एक किस्म की गंभीरता ओढ़कर कुशल प्रशासक होने का अभिनय उसे करना पड़ता है । नेहा कहा करती है - "आप हमेशा बहुत गंभीर रहते है जैसे गुस्से में हों। इसीलिए आपके पास आने से सबको डर लगता है कि न जाने कब क्या बोल दें ।"

नेहा प्रियहरि के पास डोलती-फिरती है, लेकिन फिर भी उसके साथ की विश्वसनीयता पर हमेशा सशंकित रहती है। कारण शायद यह कि औरों की तरह नेहा को भी हमेशा यह आभास तो रहा आता है कि चाहे वह हो या यह हो, या कोई और हो - कोई भी, कितना भी प्रयास प्रियहरि के मन और चित्त से वनमाला को हटाने का करता रहे, वह था कि डूबा वहीं रहता था ।

सारे नाटक के बावजूद प्रियहरि के मन को वनमाला जानती थी । वह जानती है और भीतर-भीतर उसमें इस पर गर्व रहता है कि सारी कोशिशों के बावजूद किसी का प्रियहरि को उससे छीन लेना या उससे दूर करना असंभव था। इसीलिए उस दिन उसनेशुरू में जो कहा वह पूछना कम, प्रियहरि की कमजोरी को कुरेदना अधिक था। औरों का प्रियहरि के करीब आना वनमाला को बिल्कुल पसंद नहीं था । प्रियहरि के पास खुद आकर मानो वह और संगिनियों को जलाती थी । विडम्बना यह थी कि बाहर संगिनियों पर वह अपनी खीझ ऐसे अभिनय से उतारती जिससे यह विश्वास हो जाए कि उसे तो प्रियहरि से कोई मतलब नहीं है। वह उनसे चाहती है कि वे भी वैसा करें। प्रियहरि को यह बात पसंद न थी। इसलिए वनमाला जब भी सामने आती वह उसे एक सवाल की तरह देखता था ।

प्रियहरि ने अंदर चलती किसी उधेड़बुन में और पलभर में ही उतर आई उस पीड़ा, शिकायत और पशोपेश के साथ वनमाला की उस समय चंचल हो आई आंखों में झांका । वह जैसे वनमाला से उसका प्रतिकर्षण था । वनमाला ने भी मानो उसे पढ़ लिया था । शरारत से बोली - "मैंने तो बस यूं ही पूछ लिया था । बुरा मत मानिएगा । मैंने सोचा हो सकता है कि आप किसी और प्रिया की उम्मीद कर रहे हों । आपके पास तो आने-वालियां बहुत है न !"

आज वनमाला खिली हुई और शरारत के मूड में नजर आ रही थी । उसके ताने प्यार के थे। तभी जैसे हवा ने उसकी बात सूंघ ली हो, सचमुच सुन्दरी अनुराधा वहां आकर बैठ गई । अचानक जैसे स्थिति का पशोपेश अनुराधा के चित्त में उभरा । उसे प्रतीत हुआ कि वह गलत समय पर चली आई है । वह बोली - "सॉरी, मुझे मालूम नहीं था कि आप दोनों साथ बैठे हैं। मैं थोड़ी देर बाद आ जाती हूं। आप लोग बातें जारी रखिए।"

प्रियहरि ने उसे रोकते हुए कहा था - "कुछ नहीं, बैठो । कुछ चीजों पर वनमाला से चर्चा हो रही थी, कोई खास बात नहीं ।" अनुराधा पलभर बैठ तो गई लेकिन प्रियहरि और वनमाला की बातों के बीच असमन्जस महसूस करती उठी। वह जाती हुई बोली - "कुछ खास बात नहीं थी, छोटा सा काम था । आपसे बात करनी थी, मैं बाद में आ जाऊंगी ।"

प्रियहरि की दुश्मन, दोस्त और प्रिया वनमाला उसके जाते ही चहक कर शरारत से बोली - "देखिए मैंने ठीक कहा था न ? मैं जब भी आपके पास बैठूंगी कोई न कोई जरूर आ ही जायेगा ।" वह हंसकर कह रही थी - "कहीं ऐसा तो नहीं है कि आपने ही लोगों को इस किस्म हिदायत कर दी हो ?"

वनमाला की लगातर चुहल प्रियहरि को उदासी भरी खीझ से भर रही थी । वह बोला - "वनमाला यू नो दैट आई लव यू, एंड यू, एंड यू ओनली । तुम यह बात अच्छी तरह जानती हो कि आइ केन नॉट रिमेन विदाउट यू । तुम जानती हो कि मैं तुम पर मरता हूँ। तुम यह भी अच्छी तरह जानती हो कि यह बात और सारे लोग भी, वे सब जो तुमसे ईर्ष्या करती है, जानती हैं । इसीलिए तुम मेरा मजाक उड़ा रही हो न !"

वनमाला को बोलने का मौका दिये बगैर एक सांस में ही वह कह गया - "तुम मुझसे शिकायत करती हो, लेकिन अपनी बात कहने का शिकायत करने का मुझे मौका ही नहीं देतीं ।"

वनमाला प्रियहरि की बातों के भोलेपन पर मुग्ध हो उठी थी । सहज हंसी हंसती वह बोली - "कह तो दिया आपने जो कहना था । और क्या कहना है ? मेरी शिकायत यह है कि आप मेरी उपेक्षा करते हैं और मुझे ही दोष दे रहे हैं।"

"नहीं, यहां बात खत्म नहीं होती शुरू होती है । यहां बैठकर वह सब नहीं कहा जा सकता । हमेशा ऐसी ही स्थिति बनी रहेगी । क्यों न हम फुरसत में कहीं बैठे। बहुत सी बाते है जो तुमसे इतमीनान से करनी है।" - प्रियहरि ने जवाब दिया।

काफी समय हो चला था और ताक-झांक शुरू हो गई थी । वनमाला बोली - "मैं चलूं, नही तो लोग कहेंगे कि इतनी देर तक यह यहां बैठी क्या कर रही है। ऐसे ही जलने वाले बहुत हैं ।"

प्रियहरि ने उसे रोका । कहा - "रुको, बताओ कि मुझ पर तुम्हारा अधिकार तो है, लेकिन क्या मेरा इतना भी नहीं कि तुमसे बात कर संकू ।"

वह बोली - "किस्मत शायद वैसा मौका कभी न दे । प्रियहरि, वी हैव टू बी रियलिस्टिक । जो है उसे ही आप क्यों नहीं स्वीकार लेते ?" प्रियहरि ने कहा - "ठीक है, लेकिन तुम्हें वह सब स्वीकार करना होगा फुर्सत से वह सब पढ़ना होगा जो तुम्हीं ने मेरे अंदर अंकित किया है । मेरी पूजा के फूल, मेरे शब्द तुम्हारी ही स्मृतियों के धरोहर है उन्हें स्वीकार कर लो प्लीज, फिर मैं तुमसे कुछ न कहूंगा। मेरी ईमानदारी, मेरी निष्ठा क्या इतने तिरस्करणीय है कि तुम उन्हें स्वीकार नहीं करोगी ?"

"मेरी मजबूरियां आप कब समझेंगे । उन्हें कहां रखूंगी और कहां मैं पढ़ूंगी ? आप यह क्यों नहीं समझते ।" प्रियहरि आज खुला था। उसे जो कहना है वह वनमाला से कह जायेगा। उसने जिद्द से पूछा कि अपने सवाल आखिर वह किसे सौंप जाये ? जो उसने वनमाला के लिए कहा और लिखा है उस पर उसी का हक है । वनमाला को ही उससे गुजरना होगा । इसे वह प्रियहरि की आखरी तमन्ना समझे कि वह उस सबसे गुजरे जो उसे मन में बसाये प्रियहरि पर गुजरी है ।"

अक्सर ऐसा ही होता था। जब तक प्रियहरि और वनमाला हाथ आए क्षणों को प्रेम में डुबा पाते अपने-अपने अभावों और षिकायतों को जाहिर करने की बेचैनी उन क्षणों में प्रवेश कर जाया करती थी। ऐसे वक्त दस्तक देता प्रेम प्रवेश करता-करता भी सहमकर दिल के दरवाजों पर थम जाया करता था। शुक्र है के संदेह का पलीता उस रोज विस्फोट तक न पहुचा था। वनमाला मान से भरी उठी थी उसने बीच में ही टोका - "बस रहने दीजिए। इतना ही प्यार मुझसे करते तो मेरी सब के बीच बेइज्जती न होती। आपको क्या मालूम कि लोग हंसते है मुझ पर और मेरा मजाक उड़ाते हैं।

"तुम चीजों को कभी नहीं समझ पाओगी । वनमाला, अपनी जिद्द क्यों नहीं छोड़तीं । क्या मालूम कब तुमसे इतनी ही बात करने-कहने का अवसर जाता रहे। याद रखो अगर तुमने मुझे जवाब नहीं दिया तो मैं समझूंगा कि तुमने मुझ पर निर्णय स्वतंत्र छोड़ दिया है । तब मैं यदि कुछ करूं, मुझसे गलती हो जाय, तो नाराज न होना, दोष न देना । शुरू से अंत तक मेरे शब्द झूठे नहीं । याद रखो कि चाहे एक हजार एक बीच में आ जायें, हमारे संबंध नहीं टूट सकते । हम मिलेंगे जरूर । यह हमारी नियति है । इस जन्म में न सही अगले जनम में, जन्मों में । तब तुमसे बात होगी और तब उन सवालों के जवाब तुम्हें देने होंगे जिन्हें मैं छोड़ जाऊंगा और जिनसे तुम बचना चाहती हो" - प्रियहरि ने कहा

वनमाला उठी । धीरे से बोली - "और लोग आपसे मिलने बेताब हो रहे होंगे, मैं चलूं ?" प्रियहरि ने उसकी आंखों में झांका । जो उलझन उसकी आंखों में थी, वह वनमाला की आंखों में जा बसी थी । वह चली गई । प्रियहरि समाधान चाहता था पर हर मुलाकात समस्या को और बढ़ा जाती थी । उस मुलाकात के वे क्षण प्रियहरि के लिए अपार तसल्ली के क्षण थे ।

वह सोच रहा था कि भीड़ से अलग उसके सामने जब वनमाला होती तो वैसी ही मंत्रमुग्ध और सहज, निर्मल होती जैसा वह उसके सामने हुआ करता था । यही असली वनमाला थी । उसके मन में अगर कुटिलता होती, सचमुच उसका अहित वह चाहती तो उसका सारा कहा सुना वह उसके खिलाफ इस्तेमाल कर सकती थी लेकिन उसने कभी ऐसा नहीं किया । जैसे कहीं कुछ न हुआ हो, वह उससे यूं मिल रही थी जैसे उसके अंदर की

चाहत की आग को ठंडा करने मौका निकाल वह चली आई है । हॉ, यह विचित्र था कि बाहर झगड़े जितने बढ़ रहे थे दोनों का प्रेम उतनी ही खुलकर एक - दूसरे के साथ मजबूरियों का इजहार करता मिलन की चाहतों को बढ़ा रहा था ।

00000000000000

वनमाला के जाने के बाद अनुराधा प्रियहरि के पास आ बैठ गई थी। वह आश्चर्य व्यक्त करते हुए प्रियहरि को बता रही थी कि आजकल जब भी विपुल के मोबाइल पर वह घंटी देती है उसे तुरंत बंद कर दिया जाता था । बाद में पूछने पर विपुल कह देता कि उसका मोबाइल खराब है । अनुराधा के मुताबिक असलियत यह रही हो सकती थी कि विपुल की हिदायत के मुताबिक किसी और का नंबर देखकर वनमाला गोपन में अपने पास रहे आए उसके मोबाइल को खुद बंद कर देती थी । बीबी - बच्चों बाहर भेजकर विपुल अकेला था । फोन पर लाइन साफ थी इसलिए वनमाला घर के फोन की मुसीबत टालने बातचीत के सुविधा के लिए उसने अपना मोबाइल उसे दे दिया था । एक बार प्यार की प्यास जाग जाये तो अधूरी प्यास से दिल पर मरहम लगाने घात लगाये बैठी निगाहें फौरन टूट पड़ती है । ऐसा ही वनमाला के साथ हो रहा था ।

प्रियहरि का मन अथाह पीड़ा में डूबता - उतराता रहा । वह अनहोनी उसी के साथ थी यह बात नहीं । चोट खाये प्रेमी-हृदय और प्यार की अधूरी प्यास के साथ यह किस्सा वैसा ही बन जाता है जैसा वनमाला और उसके बीच बन गया था । उसकी यादों में बहुत सारे उदाहरण तैर रहे थे। परिस्थितियों ने ऐश्वर्या को सलमान से तोड़ा तो विवेक मरहम लगाने मौज़ूद था । दोनों की वफादारी और शादी के चर्चे चलते-चलते अभिषेक बच्चन के साथ फिल्मों का दौर चला और नजदीकियों की कीमियागरी ने विवेक को बाहर निकाल फेका और ऐश्वर्या ने उस रानी मुखर्जी को आउट किया जो बंटी की बबली बननी जा रही थी । जीवन में ऐसे व्यक्तिगत अनुभव बंद रहे आते हैं, लेकिन परदे की दुनिया में चीजें खुलकर देखने में आती है। वहीदा रहमान की याद कीजिए जिसे गुरुदत्त ढूंढ कर लाये और उसकी चाहत में हंसती-फंसती वहीदा देवानंद और दिलीप कुमार तक ख्याति के शिखर पर इस तरह पहुँची कि किनारे पड़े गुरुदत्त के टूटे दिल को आत्महत्या के सिवाय कोई सहारा न मिला । यह बात अब भुला दी गई है कि अभिताभ के इश्क में गिरफ्तार रेखा शुरुआती दिनों में दोयम दर्जे के एक बहुत साधारण युवा अभिनेता की संगिनी रही आई थी । साथ छूटा कि प्यार टूटा । औरत जानती है कि उसकी जंघाओं की कोमल दरारों में पुरुष की कामनाओं की चाबी छिपी होती है । इसलिए वह मौका दर मौका चेहरे बदलती है और आदमी ? आदमी अवसर खोकर दीवाना बना आहें भरता है ।

प्रियहरि देख रहा था कि वनमाला कौन सा खेल खेल रही है ? उस खेल का षिकार वह खुद बनाया जा चुका था लेकिन मोहब्बत की दुनिया भी अजीब है कि शिकार मरता हुआ भी शिकारी पर मरना नहीं छोड़ता। वनमाला को, जो कभी मायूस और उपेक्षित थी अब अपनी कीमत मालूम हो गई थी । उसने प्यार का खेल सीख लिया था अब वह बारी-बारी से दोनों से खेल रही थी। प्रेम में वह खुद जल रही थी और अपने प्रेमी को जला रही थी । ऐसा वह पहले भी करती थी और अब भी करती है । प्रियहरि को याद आया कि कैसे पहले भी कभी विपुल से नाराज वनमाला अपनी खुन्नस जताने भरी भीड़ में उसकी पंक्ति छोड़ जानबूझकर सामने की पंक्ति में प्रियहरि के बगल की खाली कुर्सी पर आ जमी थी । जब-तब सूनी निगाहों से एक - दूसरे को निहारते प्रियहरि और वनमाला ने एक से दूसरे हाथ पहुंची सूचना के एक कागज पर पास-पास दस्तखत किये, उन्हें गौर करता विपुल प्रियहरि को घूरता इधर की पंक्ति में आ वनमाला के समीप दूसरी कुर्सी पर जा बैठा था । वनमाला का यह प्रिय खेल बन गया था । उसे अच्छा लगता था कि उसके प्यार की प्यास बुझाने एक नहीं

दो-दो दीवाने थे । वनमाला में औरों को दिखाने यह अहंकार था कि जो मुझे लाचार, उपेक्षिता और मायूस औरत के रूप में देखते है, वे अब जान लें कि मेरी ताकत क्या है ? अपने अहंकार से और मासूकाओं को जलाकर उसे अपार राहत मिलती थी । वह यह दर्शाना चाहती थी कि उनकी बेरुखी और उपेक्षा के बावजूद लोगों को गुलामी की हद तक दीवाना बना देने की ताकत उसमें उन सुन्दरियों से अधिक थी, जो वहां उससे ईर्ष्या करती थीं । प्यार और अधिकार का यह खेल एक तरह से अपने को तेज-तर्रार और बेहतर समझने वाली स्टॉफ की रमणियों से वनमाला की प्रतिद्वंदिता और संघर्ष का खेल बन गया था । उपेक्षणीया की कोटि से खुद को निकालती प्रियहरि की प्रिया सभी प्रतिद्वंदियों से एक साथ निबटती, सभी को पटखनी देती यह सिद्ध करने आतुर थी कि अपने साधारण रूप-रंग और पृष्ठभूमि के बावजूद उसकी जंघाओं के गुरुत्व में ऐसा दुर्निवार्य आकर्षण है कि उनके बीच एक बार फंस चुके हुए किसी आदमजात को निकालने की ताकत इनमें से किसी में न थी। वह यह सिद्ध कर देना चाहती थी कि प्रियहरि का उसे प्रेमिका की तरह चुनना, उसका पक्ष लेना और उस पर मर-मिटना प्रियहरि की भूल नहीं थी, अपितु वह सकारण था । वह ऐसी योग्यता का चुनाव था जिससे ईर्द-गिर्द वे रमणियां दूर तक नहीं फटकतीं। विपरीत परिस्थितियों में भी वनमाला अडिग और दृढता से खड़ी शेष सारी रमणियों को चुनौती देती यह घोषित कर रही थी कि तुम्हारी बढ़ती ईर्ष्या ही मेरी जीत का प्रमाण है ।

इन्हीं दिनों फिर कभी अनुराधा प्रियहरि के पास आकर खुशमिजाज बैठ गई थी । उसने शिकायत की कि आपने सबको मिठाई खिलाई है। अब मैं भी आपसे मिठाई खाऊंगी। इसी समय वनमाला ने दरवाजे से प्रवेश करने झांका और संकोच में लौटती-लौटती भी अंदर आने की मन:स्थिति में मानो दृढ़ निर्णय लेती अंदर घुस आई। वह भी बातों में शामिल हो चली । हंसती हुई अनुराधा की बातों को वह लपक चली ।

"यह शिकायत मुझे भी है । आपने जान बूझकर सबको अपनी ओर से मिठाई खिलाने का आयोजन शनिवार को रखा । आपको मालूम था न कि मैं उस दिन छुट्टी पर रहूंगी" - वनमाला बोली ।

प्रियहरि ने हंसकर टाला - "नहीं वह तो बस यूं ही हो गया"

अनुराधा अभी ठीक से बैठ भी न पाई थी कि बातों की कमान उससे छीनकर वनमाला ने अपनी जुबान में थाम ली थी। अनुराधा को अवश्य बुरा लगा होगा। वनमाला और प्रियहरि को आपस में घुलता देख सौजन्यपूर्वक अनुराधा ने अपने जाने की अनुमति चाही। अनुराधा उठकर चली गई । वनमाला ने बताया कि परीक्षा का बिल उसे बनाना है और तारीखें ठीक से याद नहीं हैं । उसने प्रियहरि से मानपूर्वक कहा कि अब मेरा बिल आप बनवा दीजिएगा, मैं फिर आऊंगी । आज वनमाला खुश थी और चुहल के तेवर में थी ।

बाद में वनमाला पुन: आई । बहाना वही था। वह तारीखें पूछ रही थी । मौन प्रियहरि उसके चेहरे को नि:शब्द निहारता रहा । फिर सेवक को बुलाकर संबंधित दस्तावेज लाने कहा ।

"वनमाला ने पूछा - तरक्की पर कहां जा रहे हैं ? सुना है मेरी उस अपनी प्यारी जगह को चुना है आप ने, जहां की मैं हूं ?"

वह वनमाला की अपनी जगह थी। जाहिर है उसने सब पहले ही कहीं से सुन रखा था। उसे यूं लगा जैसे उसकी भूमि का खयाल करके प्रियहरि ने उसका ही खयाल रखा है। वनमाला नहीं जानती थी कि प्रियहरि के लिये हर वह जगह अपनी हो सकती थी जहां वनमाला उसके साथ हो।

वनमाला चहकती हुई बोली -" आप ने बहुत अच्छी जगह चुनी है। यहां से तो बहुत बेहतर है। बहुत खूबसूरत और शांत जगह है। वहां खुश रहेंगे। वह मेरी भूमि जो है।"

प्रियहरि का मन स्मृतियों मे नहाता उस पल एक साथ ही सुख और दुख के बीच डूबता और उतराता रहा। सुख सुदूर अतीत था और दु:ख था वह वर्तमान, जो प्रियहरि को आकंठ अपने में डुबाए भोग रहा था।

00000000000000

अनंगलता

चाहे वह सच हो या झूठ प्यार-मुहब्बत के रिश्तों में एक-दूसरे की बात मान लेनी चाहिये। अहंकार बोध की उपज तर्क और वितर्क से भावनाओं में बनती बात भी बिगड़ जाया करती है।
पहली बार ही वनमाला को देखकर विस्मित हो उठा था। ऐसा लगता जैसे अनंगलता से बंगाल का अनौपचारिक रहा आया परिचय वहां की उस लता को पल्लवित करता बढ़ाये जा रहा है।

हां, सचमुच वह वनमाला की भूमि थी। हजार साल पहले हुए उस महान राजा की पुरा-नगरी में वनमाला का मायका था, जिसके नाम की भव्यता का उपयोग लोक-परंपरा में तुलना करते हुए तेल के व्यापारियों जैसे जन को अकिंचन और तुच्छ बताने के लिये किया जाता था। हर साल क्वांर और चैत्र की अश्टमी-नवमी को प्राय: वह अपने मायके का दुलार पाने पहुंच जाया करती थी। किंवदंतियों में विख्यात उस राजा के द्वारा स्थापित कालिका की प्रतिमा पर औरों की तरह उसे भी अपार श्रद्धा थी। मनोरम कमलों से प्रफुल्लित विशाल ताल मंदिर प्रांगण की शोभा था। अलस्सुबह उसमें डुबकी लगाकर पूजा की थाल सजाये वह मंदिर में प्रवेश करती थी। वैसे अवसर पर जब मायके न जा सकती तो बाद में अपनी मां के साथ अक्सर मिदनापुर जाती जहां उसका ननिहाल और फिर करीब ही पुरखों का गांव हुआ करता था।वह बताती कि बंगाल में मिदनापुर का क्षेत्र ही ऐसा था जहां कालीपूजा के पखवाड़े भर बाद कालीजी अवतरित हुआ करती थीं और तब काली-पूजा मनायी जाती थी। यह पूछने पर कि वैसा भला क्यों होता है, वनमाला बताती कि किसी अपराध के कारण अंगरेजी शासन के द्वारा कारावास में रखे जाने के कारण वह देवी-भक्त मां काली की पूजा से चूक गया था। तब कारावास में चिन्तित उस राजा को देवी ने स्वप्न में आकर यह आश्वस्त किया था कि राजा के कारावास से मुक्त होने तक वह उसकी पूजा की प्रतीक्षा करती रहेगी। कार्तिक के शुक्ल पक्ष में कारावास से छूटते ही उस राजा ने अपने महल में लौटकर धूमधाम से पूजा का आयोजन किया। बस तब से वह मिदनापुर का महा-पर्व हो चला था।

बांगला भूमि, संस्कृति, और पर्वों पर वनमाला का विशेष सम्मोह था। कई अनोखे अनुभव उन्हें लेकर वह यूं बयान करती जैसे अभी ही वहां से होकर वह लौटी हो। ऐसे ही अनुभवों में वह एक विचित्र स्वप्न था, जिसम वह सिद्ध मानकर इलहाम की तरह आया बताती सच होने का दावा करती थी। उस स्वप्नानुभव या इलहाम के अनुसार वह पूर्वजन्म में नादिया जिले के किसी तंत्रस्थल की भैरवी हुआ करती थी। वनाच्छादित अंचल में एक विशाल नदी के तट पर वह तंत्रपीठ हुआ करता था। साधकों से भरे उस तंत्रपीठ में सतत् तंत्रसाधना के अनुष्ठान जारी रहा करते थे। अमावस की वह भयावह काली रात मेघों की भयावह गर्जना, अनवरत कहर ढाती मूसलाधर वर्षा और भीषण झंझावात लेकर आई थी। उस रात रति-तंत्र की साधना में सारे भैरव और भैरवियां तल्लीन थे। न जाने तब क्या था कि अचानक जिस भैरव के साथ वह साधनारत थी उसमें दैहिक आनन्द का मनोविकार जाग उठा था। भैरव में जागी तरंगों के स्पर्श से उसमें भी देहराग जाग संचरित हो चला था। साधना के बीच ही सकामता ने उन्हें स्खलित कर दिया था। उस अक्षम्य अपराध से रुष्ट अघोरभैरव ने दोनों ही साधना-भ्रष्टों को उफनती नदी के तट पर ठेलते शापित कर दिया था, जहां भटकते वे बाढ़ की उस उफान को देख रहे थे जो अगला कदम बढ़ाते ही उन्हें जलसमाधि प्रदान करने उनकी ओर बढ़ती चली आ रही थी। वनमाला का विश्वास था कि उसका वह स्वप्न सांयोगिक मात्र नहीं था। जब-तब उसे स्मरण कराने वह उसकी नींदों में दाखिल हुआ आता है। अक्सर स्वप्न से टकराती रातों को जाग-जाग उठी है। जरुर वह सपना नहीं पूर्व का कोई सत्य था, जो उसे झकझोर कर चला जाता है।

प्रियहरि वनमाला की बातें सुनता और मन ही मन मुस्कुरा रहा होता। उसकी इच्छा होती कि वह बीच में ही दखल देता वनमाला से कहे कि डियर, जिस जनम से तुम्हारे सपने आते हैं, उस जनम में तो गौरांग महाप्रभु का वैष्णव-गान नादिया में गूंजता रहा होगा। तब वहां तुम्हारे अवधूत बाबा कहां प्रवेश कर गए ? प्रियहरि को याद आया कि कालिका की सर्वाधिक भयावह प्रतिमा तो उसने बर्दवान के विख्यात पुराने मंदिर में देखी थी। क्या वनमाला को यह मालूम है ? वह सलाह देना चाहता था कि वनमाला अपने सपने का स्थल बदल दे। वैसा चाहता हुआ भी वह उसे टोक नहीं सका था। तब भी वह वनमाला को समझाता कि उसका खयाल केवल अवधारणा है। प्रियहरि अभी-अभी बंगाल में दिन गुजार कर लौटा था। जे.एन.यू के बौद्धिक-संस्कार और कोलकाता की मार्क्सवादी लहर का असर उसपर चढ़ा हुआ था। वह वनमाला से कहता -

" देखो, यह देवी-देवता,इलहाम सब अपने ही रचे तंत्र हैं। सच तो यह है कि पूजा, पाठ, धर्म, जप, साधना वगैरह सारे के सारे साधन मात्र हैं। अभ्यास और मनन की आत्मरति से ये हमारी धारणा में ऐसे गहरे समा जाते हैं कि उसके बाहर का विज्ञान फिर हमें झूठा लगने लगता है। वह उदाहरण देता कि जब कोई धर्माचार्य भावना के राग में तल्लीन भजन गाता होता है तो वह ईश्वर के बहाने अपने ही को भेगता है। उसकी तल्लीनता उसके अपने ही आत्ममुग्ध कर देने वाले संगीत, लय, और भावुक कल्पना से पैदा होती है। एक अप्रकट आत्म-प्रशंशा और अहं का भव वहां बीज रूप में छिपा होता है। इसी को आत्म-सम्मोहन या मनोविज्ञान की भाषा में आटो-हिप्नोसिस कहते हैं। इसी का प्रभाव जब उसके श्रोता समूह में दंखा जाता है तो वह सामूहिक सम्मोहन होता है, जिसके पीछे वहां उपस्थित भौतिक वातावरण कारणीभूत होता है। ईश्वर और ब्रम्ह से हम अपनी ही ईजाद आत्मविमुग्धता को जोड़ लेते हैं यह अलग बात है लेकिन सच यही है कि उस तरह का सामूहिक माहौल और उसका तंत्र हमें अपनी पीड़ाओं या तनावों से छुटकारा दिलाने की बजाय कल्पित सुख और मुक्ति के एक पसंदीदा भ्रम से बांध देता है।"

चाहे वह सच हो या झूठ प्यार-मुहब्बत के रिश्तों में एक-दूसरे की बात मान लेनी चाहिये। अहंकार बोध की उपज तर्क और वितर्क से भावनाओं में बनती बात भी बिगड़ जाया करती है। वनमाला को बुरा लगता। वह प्रियहरि की आंखें में आंखें गड़ा घूरती। बात के काटे जाने का क्षोभ लिये वम फिर जातीं। वह कहती -

" ओ़के, अपना विज्ञान अपने पास रखिये। अब मिहरबानी करके इतना याद रखिये कि ये बातें हमारी आपसी और गोपन हैं। इन्हें कल बाजार में बहस का मुद्द न बनाइगा। "

चलने-चलने को होती वह रुकती और आंखें गड़ाये गौर से प्रियहरि की आंखों में झाँकती। अपने प्रति प्रियहरि के अविश्वास को लेकर एक किस्म का खेद भरा रोश वहां झलकता होता।

" बुरा न मानना प्रियहरि, मुझे तो संदेह होता है कि मुझे भटकाने वाला वह भूत का भैरव बाबा तुम्हारा रूप धरकर मेरे पास फिर तो नहीं आ गया है। मैं चलती हूं लेकिन एक सवाल तुम्हारी तेज खोपड़ी के लिये छोड़े जाती हूं। वह प्रेम क्या है जिसे लिए तुम मेरी माला जपते हो ? वह भी तो खयाली आत्ममुग्धता ही है। और क्या यह सच नहीं कि तुम जिसे बकवास कहते हो उसी आत्मसम्मोहन को लिए हम जिन्दगी गुजार जाते हैं। "

वनमाला चली जाती और सचमुच तब उसका तर्क प्रियहरि को भ्रमित करता उलझन में छोड़ जाता था। वह सोचता कि क्या उसका तर्क सही था ? इस तरह की बातें और छेड़छाड़ वनमाला और प्रियहरि के बीच आम थी। वनमाला से रूबरू होते प्रियहरि को प्रतीत होता जैसे कोलकाता की उसकी युवा साथिन अनंगलता सामने आ गई हो। चेहरे-मोहरे, रूप-रंग, कद-काठी, बानी और बात, रुचि और स्वभाव का अद्भुत साम्य दोनों में था। पहली बार ही वनमाला को देखकर विस्मित हो उठा था। ऐसा लगता जैसे अनंगलता से बंगाल का अनौपचारिक रहा आया परिचय वहां की उस लता को पल्लवित करता बढ़ाये जा रहा है। प्रियहरि की आंखों में ऐसे वक्त वह बंगाल तिर आता था जिसे वह छोड़ आया था। कोलकाता की उस अनंगलता को प्रियहरि के यहां चले आने का अफसोस था और यह वनमाला थी कि " आमार बांग्ला ", ''आमार'' मिदनापुर की माला जपती प्रियहरि को अपने साथ वहां उड़ा लिये जाती थी।

न जाने क्यों वनमाला चाह कर भी प्रियहरि के साथ अधिक समय तक बैठने से भयभीत रहती । उसने कहा - "प्रवेश के लिए लड़के और लड़कियां बाहर इंतजार कर रहे होंगे, भीड़ है। और भी होंगे जो इंतजार में मुझे कोसते होंगे कि यह क्यों आप के पास जाकर चिपक गई है ?"

स्मृतियों में उड़ चला प्रियहरि अतीत की यात्रा से क्षणांश में ही उस वर्तमान में लौट आया था जहां इस वक्त वनमाला उसके सामने बैठी थी। प्रियहरि चुप रहा। सचमुच उसे भी उस भूमि से लगाव था लेकिन इस वक्त वह सुनिश्चित नही कर पा रहा था कि इस वक्त वनमाला की उस चहक में कौन सा भाव छिपा था ? क्या सचमुच वह चहक उस भाव से प्रेरित थी जिसमें प्रियहरि को अपनी भूमि से जुड़ा हुआ देखने की आत्मीय चाहत छिपी थी ? या फिर उसके पीछे वह चालाकी भरी कूटनीतिक आकांक्षा थी, जो संभवनाओं में प्रियहरि रूपी कंटक को टलता देखती मुदित हो रही थी ? संबंधों में निरन्तर दुर्घटनाओं से आहत प्रियहरि का मन अदृश्य आसक्ति के बावजूद वनमाला की वैसी उत्सुकता कुटिलता देख रहा था।

वनमाला पर विश्वास प्रियहरि चाहकर भी न कर पा रहा था। वनमाला के चेहरे पर निगाह जमाये उसकी आंखों में झांकते उसने कहा -"कितनी मासूम, कितनी भोली, निश्छल लगती हो तुम । चेहरे पर कुछ दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन देखता हूं कितनी चालाक, कितनी शातिर, कितनी कुटिल हो तुम । मैं सोच भी नहीं सकता था कि तुम इतनी बदल जाओगी ।"

वनमाला उसके सामने ही निर्द्वंद, शांत और सहज बैठी थी । वह कहता गया - "वनमाला, तुम अच्छी तरह जानती हो कि मैं यहां हूं तो केवल इसलिए कि तुम यहां हो । मेरे लिए महाविद्यालय एक चेहरा है, जो तुम हो । फिर भी तुम मुझको नहीं समझना चाहतीं । वनमाला तुम मेरी मौत हो ।" उसने कहा - "मैं चला जाऊँगा और तुमने उस दिन कहा कि तुम मिठाई बांटोगी। तुम्हें बहुत अच्छा लगा न ?"

वनमाला उदास हो चली। उसने कहा - "नहीं, वैसा कहने के पीछे कोई भाव न था । न अच्छा न लगने का, न ठेस पहुंचाने का ।" उसने बताया - "आप ने गलत समझ लिया और बुरा मान गये।मुझे भी कल-परसों मिठाई खिलानी जरूर है लेकिन कारण वह नहीं जो आप ने समझा और रूठ गए बल्कि महज इसलिए कि मेरा मकान बन गया है और मैं भी वहां चली जाऊँगी ।"

"कब जा रही हो ? पता जरूर देना"-प्रियहरि ने पूछा । वनमाला और प्रियहरि के बीच भय, संदेह अविश्वास की छाया इन दिनों गहरा गई है । इसीलिए शायद वनमाला संकोच में पड़ी थी । प्रियहरि ने उसकी आंखों में झांका और हंसते हुए कहा - "इसमें क्या है ? तुम न बताओ । हमेशा की तरह मैं खुद ढूंढता हुआ तुम्हारें यहां पहुंच जाऊँगा।"

न जाने क्यों वनमाला चाह कर भी प्रियहरि के साथ अधिक समय तक बैठने से भयभीत रहती । उसने कहा - "प्रवेश के लिए लड़के और लड़कियां बाहर इंतजार कर रहे होंगे, भीड़ है। और भी होंगे जो इंतजार में मुझे कोसते होंगे कि यह क्यों आप के पास जाकर चिपक गई है ?"

वनमाला के दो-तीन बार उठते-उठते भी प्रियहरि ने इस बीच अनुग्रहपूर्वक उसे रोके रखा था। वनमाला को भी जैसे प्रियहरि के वैसे ही मनुहार की प्रतीक्षा रही आई हो। वह रुकी रही थी। वनमाला के आने पर भी आजकल प्रियहरि को साथ का एकांत नहीं मिल पाता। उसके पास या तो कोई न कोई रहा आता है। आज उसके पास पहले अनुराधा आ बैठी थी। बाद में अपने कागज ढूंढता बाबू रामजी वहां बना रहा आया था । वनमाला के जाने के बाद बहुत देर तक प्रियहरि उदास सोचता रहा कि विश्वास के बीच वह कैसा

अविश्वास था कि वे दोनों अंदर-अंदर एक-दूसरे के प्रति निजता और प्रेम से भरे होकर भी एक-दूसरे के दुश्मन बने जा रहे थे । नियति का यह कैसा विचित्र खेल था ? वह खेल उन्हें कहां ले जाएगा ?

बिग बॉस

बिग बॉस कालेज के राजा थे । नये कमरों के उद्‌घाटन और भविष्य के कमरों के लिए भूमि-पूजन करने पधारे थे । एक समारोह ही था । चाय-पान के दौरान गपशप के बीच उनके खास चहेती अनुराधा ने मुंह बनाते हुए उनसे शिकायत की कि आप सबसे मिलते हैं और हम लोगों को मौका नहीं देते । आपसे हमें भी बातें करनी है। अनुराधा अन्य औरतों की पंक्ति में थी । बिग बॉस अचानक कही गई उसकी बात ठीक से समझ न पाए ।

उन्होंने कहा - "ठीक है आ जाना, लेकिन अकेली नहीं । मैं तुम्हें अकेले नहीं झेल पाऊँगा। आना तो इन सबको लेकर आना।"

अनुराधा के इरादे क्या थे ? प्रियहरि स्तब्ध हो सोचता रह गया था। अनुराधा को उससे भला क्या शिकायत हो सकती थी ? यह दुर्भाग्य ही था कि जिसे वह अपने करीब पाता था अचानक वह नाराज होता नज़र आता था। क्या अनुराधा उससे नाराज़ हो चली थी ? आखिर क्यों ?

अनुराधा की चालाकी सभी की पकड़ में आ गई थी । आखिर ऐसी क्या मुसीबत आ पड़ी थी कि अनुराधा को उस तरह 'हम' की जुबान में बिग बास से मिलने की सूझी थी ? अनुराधा को नियमों की जकड़ में बनाए रखते भी प्रियहरि अच्छा और आत्मीय समझता था। उसे उसके ऐसे अप्रत्याशित रवैये से दुःख हुआ था। प्रियहरि ने किसी से कुछ न कहा, लेकिन स्टाफ के उसके साथियों ने अपने बीच ही यह महसूस किया था कि अनुराधा का वैसा रवैया गलत था। इस बात को लेकर व्याखया के दौर चले कि बिग बास के आमंत्रण को मिलनातुर तक सीमित समझा जाए या सब के लिये माना जाये ? यह संभव था कि बाकियों के न पहुचने पर राजाजी को बुरा लग सकता था, निष्कर्ष आया कि जाएंगे तो सभी जाएंगे क्योंकि फरमाइस के व्यक्तिगत होने के बावजूद बुलावा सब के लियये था। निर्धारित दिन सभी ने यह लक्षित किया था कि पिछले रोज गायब रही वनमाला दिन, तारीख, समय की सूचना न होने पर भी अदृश्य सूचना से अपने नये यार विपुल के साथ सुबह-सुबह आठ बजे से सूने भवन में खड़ी थी। जाहिर था कि छिपा कर रखी मोबाइल पर उसे विपुल का संदेश मिल गया था ।

बिग बॉस के यहां औपचारिकताओं के बाद बातें चलीं तो कुछ ने छोटी-मोटी शिकायतें उठाने शुरू कीं । मुहिम जिसने भी बनाई हो उनके बिचौलिये नेता अनवर भाई ने दखलअंदाजी करते हंसी ओढ़ी और कहा - "मुखिया के सामने शायद औरों को संकोच हो रहा है । वे यहां कुछ देर न रहें तो अकेले में बातचीत आपसे ये लोग कर सकेंगे ।"

बिग बॉस खुद हतप्रभ थे कि माजरा क्या था ? उन्होंने तो सौजन्य आमंत्रण दिया था। उनकी असहजता चेहरे पर साफा झलक आई थी। हंसते हुए वे बोले -" क्यों ? वे बैठे भी रहें तो क्या हर्ज है ? यहां सब सद्‌भवना में बैठे हैं। जो बात हो सब के बीच ही कहने दीजिये। "

प्रियहरि को स्टॉफ का बहुमत ही मनाकर साथ ले गया था। बिग बॉस के सामने बहुतों ने साफ तौर पर कह दिया कि उस तरह छिपाने और शिकायत की तो कोई बात ही न थी । उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि हमारे मुखिया हमारे साथ हैं और हम उनके । वे बाहर क्यों जाएं ? अप्रिय माहौल बन जाने से प्रियहरि खुद ही बाहर निकल आया और उसके साथ ही अधिकांश लोग निकल गये । सभी अनुराधा के रवैये पर बेहद नाराज थे । नीलांजना, मंजरी, सुरंजना, वल्लरी, भोला बाबू, उदयन, चौधरी, सत्यजित, विराग और

अन्य सभी ने अनुराधा को खूब कोसा । वनमाला का नया साथी और खुद वह मौन रहे आए। विपुल की यह खूबी थी कि गोटियां बिछाकर वह खुद सीधा-साधा और मौन रहा आता था । उसकी सारी मुहिम उस दिन फ्लाप शो में तबदील हो गई। जलालत में डूबी अनुराधा उसके बाद दो दिन नजर नहीं आई।

000000000

"कुछ नहीं, यह छाता नहीं खुल रहा है ।"

वनमाला के गालों पर नवेली दुल्हन की तरह हया उतर आई थी। आधी मुस्कान और आधी हंसी से संकोच में वह बोली -"कुछ नहीं, यह छाता नहीं खुल रहा है ।"

पिछली घटना के चार दिन बाद की बात है । सवा दो बजे अपने कमरे से बाहर निकलते हुए प्रियहरि ने देखा कि वनमाला अपना छाता और पर्स उठाये स्टॉफ रूम से निकल चैनल गेट के पास ठिठकी खड़ी है। वह छाते के साथ उलझ रही थी। प्रियहरि उसी ओर बढ़ रहा था। वनमाला ने गर्दन घुमाकर प्रियहरि की ओर देखा । दोनों की नजरें टकराईं और उलझकर वैसे ही थम गई थीं। वनमाला जहां थी, वहीं जड़वत स्थगित हो गई। एक-दो लड़के-लड़कियां और उसी तरह महिलाओं का एक झुंड कुछ दूरी पर खड़ा था।

न जाने किसे संबोधित प्रियहरि के मुंह से निकला - "क्या हो रहा है **?"**

उस अनजान संबोधन को वनमाला ने ग्रहण किया। प्रियहरि और वनमाला की नज़रें एक-दूसरे में डूब चली थीं। वनमाला के गालों पर नवेली दुल्हन की तरह हया उतर आई थी। आधी मुस्कान और आधी हंसी से संकोच में वह बोली - "कुछ नहीं, यह छाता नहीं खुल रहा है ।"

तब तक प्रियहरि उसके पास पहुंच गया था। वनमाला और वह साथ खड़े थे। पिछले दिनों की घटना-दुर्घटना की छाया तक न उसे छू गई थी, और न इसे। प्रियहरि ने सहज, प्रसन्न स्वर में कहा - "लाओ मैं देखूं ।"

अपना छाता वनमाला ने उसे सौंप दिया । प्रियहरि ने छाता लिया । ऊपर से नीचे सिकोड़ा, बटन दबाया और थोड़े ही प्रयास से छतरी खुल गई ।

"लो खुल गया ।" प्रियहरि से वनमाला ने प्रसन्नतापूर्वक छाता थामा।

लजाती हुई संकोच से एक बार उसने प्रियहरि को निहारा और फिर बढ़ चली। उस समय यह नजारा पीछे से आती मंजरी, नेहा और नीलांजना ने देख लिया था । शरारत से नेहा ने प्रियहरि की आंखों में झांका और उसे चिढ़ाते हुए हंसी से चुटकी ली -"मैने देख लिया ।" उसकी संगिनियां भी मुस्कुरा रही थीं । नीलांजना को प्रियहरि से कुछ काम था। वह कुछ पूछना चाहती थी । प्रियहरि ने उससे कहा कि चलो अंदर बैठो वहीं बात करेंगे ।

इधर सलज्ज वनमाला से चुहल करता प्रियहरि उसकी छतरी खोल रहा था और उधर ईर्ष्या से आहत विपुल उसके खिलाफ अब नये षड़यंत्रों का सूत्रपात कर रहा था । प्रियहरि को विभिन्न सूत्रों से सूचनाएं मिल रही थीं। प्रियहरि को याद आया कि कुछ ही दिनों पहले वल्लरी, नेहा फिर मंजरी ने प्रियहरि को आगाह किया था. पूछा था कि यह उसे मालूम है या नहीं कि उसके खिलाफ षड़यंत्र में दूसरी संगिनियों को साथ लेने भड़काया जा रहा था ताकि आगे और शिकायतों की मुहिम बन सके। उन दिनों वहां एक अजीब तरह की राजनीति चल रही थी। वनमाला कामों से बचती-फिरती रही थी । जब भी बैठकें होती, काम पड़ता वह विपुल के इशारे पर उपेक्षा से खिसक जाया करती । सुबह देखने वाला कोई था नहीं इसलिए यदाकदा उसके गायब रहने की शिकायत भी पाई जाती थी । प्रियहरि उससे कहता तो अपने सुबह के गुट के साथ अन्य दूसरों की शिकायत करती झगड़ने पहुंच जाती। दूसरी तरफ कला और विज्ञान संकाय के साथी जो दोपहर में आते और

जिनसे वह ढेर से काम कराता था, इस बात की शिकायत करते कि वनमाला न तो उनके साथ कमेटियों में हाजिर होती और न वह अन्य कामकाजों दिलचस्पी लेती । वे प्रियहरि को ताने देते कि वह कैसे वनमाला की शिकायतें सुनता है ? उन्हें इस बात से चिढ़ थी कि दो घंटा काम कर खिसकने वालों को प्रियहरि प्रश्रय क्यों देता है ? वनमाला के साथ व्यक्तिगत रागात्मक संबंधों और उसकी गतिविधियों, कुटिल योजनाओं के पशोपेश में फंसा प्रियहरि इन समस्याओं से भी परेशान हो जाया करता था ।

वनमाला की हालत भी प्रियहरि से जुदा न थी। झगड़ों की दुरभिसंधियां इधर-उधर गुटों में रची जातीं और उनकी मार प्रियहरि और वनमाला को झेलना होता। न चाहते हुए भी ओट की तरह दोनों का इस्तेमाल एक-दूजे को सामने रख कर लिया जाता था। इस बात के लिये वे खुद भी कम दोषी न थे कि परस्पर अनाश्वस्त मनोदशा में वे दूसरों के लिये अपने इस्तेमाल के अवसर मुहैया करा बैठते थे। इन्हीं सबके चलते इधर वनमाला नाना तरीकों से प्रियहरि पर अपना गुस्सा उतारती थी और उधर प्रियहरि को मजबूरन व्यक्तिगत लिहाज छोड़कर वनमाला के खिलाफ प्रशा सनिक तौर-तरीके अपनाने पड़ते थे । वनमाला के अनबूझ व्यवहार की पीड़ा एक ओर से और निद्गपरिणाम प्रेम संबंधों की उकताहट दूसरी ओर से उसे पीसे जा रही थी। रही-सही कसर असल कामकाज से परे परेशा नियों की वे परिस्थितियां निकाले ले रही थीं जो वनमाला की कुटिल चालों से पैदा नित नए बखेड़ों की उपज हुआ करती थीं।

बनाम घर वह चहारदावारी

विवाह की संस्था अगर महज ऐसी लाटरी है, जिसमें झगड़े-झांसे से बचाने हर पुरुष को चमड़ी के खोल की तरह एक स्त्री और हर स्त्री को जीवन की भौतिक आश्रय के लिये एक पुरुष की व्यवस्था का विधान होता है तो उसकी कोई अर्थवत्ता नहीं है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि दुनिया के आम स्त्री और पुरुष के लिये विवाह का यही दर्शन है।

"Marriage is like a cage; one sees the birds outside desperate to get in, and those inside equally desperate to get out." (Michel de Montaigne)

इधर ऐसी स्थितियां थीं, तो उधर उसका घर था। घर नहीं, बल्कि बनाम घर वह चहारदावारी थी, जहां यांत्रिक दिनचर्या के साथ एक अजीब किस्म की प्रेतछाया हावी रहा करती। ? घर एक सराय की तरह था । वहां सब आते अपना काम निबटाते , चाय-पानी , खान-पान-आराम करते और अपना सामान समेट चले जाते थे। वह घर की और घर के एक-एक की चिन्ता में घुला जाता लेकिन किसी को यह फिक्र न थी कि प्रियहरि की ओर कोई देख भी ले। सब ने यह मान लिया था कि प्रियहरि अपनी फिक्र आप सकता है। अस्त-व्यस्तता के बीच बीबी सोमा भी बाल-बच्चों की भीड़ में गुम हो जाती थी। किसी से भी प्रियहरि अगर कुछ कहता तो या बात उन कानों से टकराती शून्य में इस तरह गुम हो जाती जैसे उसके शब्दों का कोई अस्तित्व ही वहां न हो। अगर सुनाई पड़ती भी तो बात सुनने से पहले ही काट दी जाती थी। वह पैसों की ऐसी मशीन बनकर रह गया था , जिसपर धूल की परतें चढ़ती जाती थीं। उसके सारे स्वप्न तिरोहित हो चले थे।

प्रियहरि की कल्पना की सहचरी , सहधर्मिणी अब केवल विषादमय इच्छाओं में ही निवास करती थी। अब केवल अतीत के वे खयाल थे जिन्हें वह भंग हो चुके स्वप्नों की तरह देखा करता। सभा , समाज , कला की प्रदर्शनियों, पारिवारिक उत्सवों , सुबह और शाम की खुली हवा में सैर, सुबह की चाय और रात के भोजन में सब का साथ और आत्मीय गप-शप , यात्रा-पर्यटन और सप्ताहान्त पिकनिक की जिन्दादिल तरकीबें , नगर में सड़कों-बाजारों में टहलते-फिरते जरूरत के सामानों की छांटबीन और खरीद , अखबार या किताबें पढ़ते दुनिया भर की चीजों पर बात और विचार, नई-नई चीजों को सीखने जानने की पहल , घर को सजाने संवारने की नित नई मुहिम वगैरह के अतीत के वे खयाल अब उन्हीं भंग- स्वप्नों में विचरण किया करते। हकीकत के धरातल पर वह सोमा ही उसके सामने होती जिसके लिये इन चीजों का कोई मतलब न था। उसकी सारणी बिल्कुल अलग हुआ करती जिसमें बुद्धि , भावना, श्रम और सौन्दर्य के लिये कोई जगह न थीं।

पुस्तकें बेकार का कचरा थीं , जिनकी ओर आंख उठाकर देखना भी उसे पसन्द न था। बड़े चाव से जुटाकर लाई गई पेन्टिंग्स और कलाकृतियों, साज-सज्जा की नई-नई सामग्रियों पर सोमा एक निगाह इस भाव से डालती कि ये भला कौन से काम की चीजें हैं और उन्हे किसी पुरानी संदूक में ऐसे ठूंस देती कि संयोग से बरसों बाद खोल दिये जसने पर वे सब बीमार, टूटी-फूटी और आंसू बहाती अवस्था में प्रियहरि से मिलती थीं।

वह सोचता कि इससे भले तो वह बाहर ही हुआ करता था जहां अपने आप को ही उसे संभालना हुआ करता था। कमस्कम वहां उसपर अपना बोझ लादकर चले जाने वाले तो न थे। बल्कि होता यह कि उसके बाहर के सहचर ही प्रशंशा-भाव से देखते उसका खुद खयाल रख लिया करते थे। अब वह सारी चीजों पर गौर करता है तो उसे प्रतीत होता है कि विवाह की संस्था अगर महज ऐसी लाटरी है, जिसमें झगड़े-झांसे से बचाने हर पुरुष को चमड़ी के खोल की तरह एक स्त्री और हर स्त्री को जीवन की भौतिक आश्रय के लिये एकपुरुषकी व्यवस्था का विधान होता है तो उसकी कोई अर्थवत्ता नहीं है। यह कम आश्‍चर्य की बात नहीं कि दुनिया के आम स्त्री और पुरुष के लिये विवाह का यही दर्शन है। स्त्री याने घर की भौतिक व्यवस्था का यंत्र औरपुरुषयानी घर को चलाने के लिए अर्थ की व्यवस्था का यंत्र। इस व्यवस्था के बीच का तनाव उस राजीनामे से खत्म कर लिया जाता है जिसमें हर दो-चार रोज़ में सुविधापूर्ण अंधेरे में एक से गुजरता वह दूसरे की डिबिया में झोंक दिया जाता है।

यहां से वह यात्रा पुन: शुरू होती हे जहां विवाह और परिवार के औपचारिक सूत्र में बंधे दिखाई पड़ते भी पति और पत्नी महज पुरुष और स्त्री की तरह भंग स्वप्नों के संधान में अपनी-अपनी दिषाएं तलाशते हैं। चहारदीवारी की आश्‍वस्त सुरक्षा और अपनी देह का विस्तार रहे आई उसकी सन्ततियां स्त्री का वह सम्मोह हुआ करत हैं जिनमें कुछ सीमा तक वह अपनी राहत तलाश लेती है, लेकिन पुरुष**?** वह अपना अधूरापन लिये भटकता है।

प्रियहरि के चित्त में उस महान कवि की स्मृति उभरती है जो तंबाखू के पैतृक व्यवसाय मे फंसा छटपटा रहा है। भुलावे की तलाश मे भागता वह उस प्रिया की स्मृतियो में भटकता कभी अपने उसे अपने आंसुओं से रचता है और कभी मिथकों के महानायक उस आदम में तब्दील हो जाता है जो सपनों की सृष्टि बुनती अपने शिशु में इस कदर खो चली है कि उपेक्षित आदम दर्शन के जाल में समस्या का संधान करता अज्ञात लोक में विचरण करता राहत ढूढता है। कभी वह भौतिक संपन्न्ता में लिपटे राजाओं और राजकुमारियों के अंदर छिपे सूनेपन , उनके अभावों की आह में तब्दील हो जाता है जिनके पास सारा कुछ होने के बावजूद वह कुछ नहीं है जो उनके नाजुक दिल की तमन्ना है। प्रियहरि की तरह वे भी आकाशदीपों में जलते उन एक-एक की प्रतीक्षा करते हैं , जो महज असंभव संभावनाएं हैं। वह उस तहसीलदार को देख रहा है जो टेढ़े-मेढ़े रास्तों मे भटकता किसी लाचार गृहणी के साये में विश्राम कर रहा है। प्रियहरि की आंखों के सामने दिलो-दानिस में भटकते वे मियांजी खड़े हैं, जिन्होने घर से राहत पाने सुकून का कोई एक और ठिकाना बना रख है। वह उन गजाधर बाबू को देख रहा है जो बाहर से लौटकर गए तो अपने घर ही थे, लेकिन वहां किसी-किन्हीं और-और को पाकर बिस्तर-पेटी लिये वे प्रियहरि से घर का ठिकाना पूछ रहे है।

विवाह सुविधा है , समाधान नहीं। स्त्री-पुरुष संबंधों के प्रसंग में कमस्कम उस एक वर्ग को तो विवाह से संतुष्ट हुआ रहना ही चाहिये था, जिसकी कामनाएं स्त्री को लेकर देह के पार नहीं जाती। तब यह विचित्र था कि वहां देह की कामना ही समस्या बन आती है। इतर वर्गों में कुछ वे थे जो आदर्श पति-पत्नी के गौरव में जीवन जी रहे थे। कुछ वे, जो टूट-फूट दुरुस्त करते समायोजन में उस तरह ठीक-ठाक थे कि " अब यह सब तो चलता ही रहता है।" अंतत: वह समूह जिसकी काया पर भावनाओं, कल्पनाओं, और विचारों की नजाकत और लताफत के साथ उसका दिलो-दिमाग हावी हुआ करता है। कवियों, कलाकारों और नाजुक चिन्ताओं वाले बौद्धिकों के इस वर्ग के लिये हिपोक्रिटीज़ के चेले " सेरोटोनिन " की खुराक की ज़रूरत बताते हैं और होमर का दुश्मन प्लेटो तो इन्हें राज्य से खदेड़ दिये जाने के काबिल करार देता कूच कर चला था। खूब सोच-विचारकर प्रियहरि के दिमाग मे यह आता है कि सारा खेल काया और मनो-बुद्धि के उन अल्पज्ञात से अज्ञात की हद तक रसायनों का है जिनके संधान में विज्ञान और ज्योतिश, धर्म, और समाजादि के आदि के

शास्त्र सदियों से तुक्का भिड़ाते चले आ रहे हैं। सारा खेल गणित का है। चाहे उसे स्वभाव और संस्कार का नाम दें या अज्ञात रसायनों का आंकड़ा स्त्री और पुरुष के बीच समानुपातिक न रहा तो समस्या आती ही है। फरहाद नहर खोदता ही रह गया शीरीं को वह न पा सका। स्त्री-पुरुष संबंधों के दर्शन में ' पचि-पचि ' हारते प्रियहरि का ध्यान भटककर वनमाला पर जा टिका। वह सोचने लगा कि समीकरणों में वनमाला और उसके बीच का अनुपात क्या हो सकता था ? दोनों के बीच आंखों की नमी और पछतावे की हालत में जो सौ प्रतिशत नज़र आता था, वही विवादों और विग्रहों में बदलकर दस और नब्बे हो जाता था। अपने इस खयाल से उसका मन फिर उचाट हो चला। आखिर वैसा होता क्यों है ? जहाज का पंछी उड़कर फिर उसी ठिकाने पर लौट आया जहां उसका बसेरा था।

प्रियहरि के चित्त को विश्राम कहीं नहीं था। राहत की नामुमकिन उम्मीद में बस दौड़ना होता - संस्था की एक इमारत से घर कहे जाने वाले मकान की दूसरी इमारत के बीच। पहुंचने की बलवती आकांक्षा होती लेकिन वह कहीं न पहुंच पाता।दोनों ठिकानों से बेहतर तो उसे यात्राओं की राह से ही मिला करती, जो उसे मंजिल सी तसल्ली का अहसास दिलाती थी। प्रियहरि को यहीं छोड़ चित्त वहां उड़ चलता है,जहां वह इसकी कैद से बाहर है।

यात्राओं के प्रसंग : कैद से बाहर मै

- मसूरी की वह गुड़िया

साहचर्य में असंभाव्यता की संभावना सामुहिक यात्राओं के दौर में संभव की उम्मीदें लेकर आती है। सुबह से रात तक सहचरों के खुले साथ में स्त्री-पुरुष के फेरामोन्स को अपनी-अपनी चाही मंजिल तक पहुंचने में सैन-बैन और छुआ-छुई का खेल खूब सहायक होता है। दौड़कर मंजिल को छू लेना हमेशा संभव नहीं होता लेकिन तब भी साहचर्य में दौड़ की होड़ भी कमतर मजा नहीं देती। उन यात्राओं मे ऐसा ही मजा था।

स्मृतियों मे एक-एक कर वे तरंगित हो रही हैं। मसूरी की वह गुड़िया याद आ रही है, जो मुझसे मिलकर इस कदर खुश हुई थी कि "वाव वंडरफुल"कहती वह सचमुच अपनी जगह पर उछल पड़ी थी। उछल पड़ने का मुहावरा तो खूब पढ़ा था, लेकिन उस रोज़ पहली बार उसकी भौतिक चरितार्थता मैने उसे साकार पाया था। मैं पर्यटन पर था और बात मसूरी की है। आंखें उस यात्रा में पहली बार तब टकराई थीं जब वे मसूरी पहुंचकर माल रोड पर अपनी बस से उतर रहे थे। दरवाजे के पायदान पर हैन्डल की बार पर दोनों के हाथ थमे थे और पांव छः इंच की दूरी लिये आगे-पीछे शायद इसलिये थम गए थे कि आगे के सहयात्री उतर नहीं पाए थे। तभी उस रमणी ने सिर को तिरछा कर कनखियों से मुझ प्रियहरि के चेहरे को जिज्ञासा से निहारा था। उस क्षण ठीक उसी जिज्ञासा की तरंगें मेरे जेहन में भी करवटें ले रही थीं। तरंगों का सम्मिलन आंखों की उस टकराहट में हुआ था, जहां यह लिखा था कि "दिलचस्प हो। मैने तुम्हें पसंद किया। अपन देखेंगे।"

दो घंटे बाद पुल के दूसरी तरफ उसी बस को हमें कैम्प्टी फाल तक पहंचाना था। उतरे तो ऐसा कुछ संयोग या प्रेरणा कि वह रमणी और मै अपने परिवार यानी बीबी- मियां के जोड़े में करीब के फासले पर रहे आए । जल्दबाजी में पहले तो करीब-करीब चलते हम लोग भी उतावली में दीगर सहयात्रियों की तरह पुल के पार पहुचने मसूरी के ब्रिज पर बढ़ चले थे,लेकिन तभी मुझे सूझ आई कि क्यों न पहले यहां ही खाना खाया और घूम-फिर लिया जाये।

मसूरी की उस गुड़िया ने फौरन मेरी सूझ की तस्दीक की -" हां जी, ये ठीक तो कह रहे हैं। भूख का समय है। पहले खाना खाएं और यहां घूम-फिर लें, तब पुल के पार चलेंगे।"

इस दौरान देखा-देखी और रस्मी बातो के बहाने उस गुडिया और मैने नजरों की पहली भिड़न्त के आगे देखना शुरूकर दिया था। मालरोड के मोड़ पर ही हम एक ढाबे में जा घुसे। आगे मैं और पीछे-ओछे वे। जहां मैं बैठा वहीं इशारे भर से वह भी आ पहुंची थी। टेबिल के सजने और खाना परोसे जाने के बीच परिचय और बढ़ा। मेरी बातों से रीझती मसूरी डॉल पूछ रही थी - आप बहुत विद्वान हैं। आप की भाषा बहुत अच्छी है। मैं तो बस में ही देख रही थी। अवश्य आप शिक्षा के क्षेत्र से हैं।।"

मैने टाला -" अरे छोड़िये। आप भी कहां लगाईं ? मैं तो आवारा और घुमक्कड़ हूं। बस इतना है कि पढ़ना, लिखना और कला का संसार मेरी दिलचस्पी है।"

मेरे वैसा कहते भी बीबी ने अपने गौरव के बखान की तरह यह जाहिर कर दिया था कि ये बड़े सम्मानित शिक्षाविद हैं। मैने अपनी उस गुड़िया की आंखों में झांकते पूछा -" और आप ? आप भी तो बातें बहुत अच्छी करती हैं। भाषा भी कम अच्छी नहीं है। अवश्य आप भी शिक्षिका होंगी।"

"अरे, अपनी ऐसी किस्मत कहाँ ? चाहती तो थी, पर हो न सका ।"

उसने बताया कि वह संस्कृत में एम.ए है, लेकिन हिन्दी के साहित्य से उसे प्यार है। हिन्दी में एम-ए. करने की और शिक्षा के अपने पसंदीदा क्षेत्र में काम करने की उसकी ख्वाहिश थी, जो शादी की वजह से अधूरी रही आई। वह सब बताते उसका मूड कुछ उदास हो चला था।

मैने उसके पति से पूछा -" और आप भाई साहब ? आप कहीं पढ़ाते हैं या किसी और सर्विस में हैं ?"

पत्नी को कुछ मायूस देख वे खिन्न हो गए थे। बोले - अरे कहां भई साहब । अपन तो इतना पढ़े-लिखे हैं नहीं। बी.ए कर लिया है किसी प्रकार और मैं एक छोटा सा व्यापारी हूं।"

वार्ता का सूत्र उस गुड़िया सी काया के और मेरे हाथों ने थाम रखा था। बचे केवल श्रोता और दर्शक थे। गुड़िया की अभिरुचि की प्रशंसा करते मैने उससे संस्कृत के कुछ सुंदर श्लोक सुनने की इच्छा जाहिर की। मैने उसे तसल्ली देते कह रख था कि संस्कृत भाषा और साहित्य की समृद्धि का क्या कहना ? वे तो मुझे बहुत प्रिय हैं। सच तो यह है कि साहित्य चाहे जिस भी भाषा का हो मैं खूब पढ़ता रहा हूं।

मसूरी-डॉल सकुचा गई। सूक्ति के एक-दो साधरण से श्लोक उसने सुनाए । मैने जब उसे साहित्य के कुछ रसमय श्लोक सुनाने की बात कही तो वह सोचती ही रह गई और याद कुछ भी न कर पाई।

उस तरह सकुचाई जब वह मेरी ओर देख रही थी तब मैने सिलसिले से उसे अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मेघदूत, और कुमार-संभव के तीन-चार श्लोक रस लेते हुए प्रसंग सहित सुनाए। उसकी सुन्दर आंखें मुझे सुनते हुए प्रसन्नता से चमकतीं और विस्मय से फैली जा रही थीं।

" वाव...! वंडरफुल...! मुझे विश्वास नहीं होता कि आप में ऐसी गजब की खूबी है। अद्भुत हैं सचमुच आप। काश आप के साथ मैं भी कुछ सीख पाती।" - रमणी गुड़िया अपनी जगह से उछल पड़ी थी।

बाद हुआ यूं कि सब के बीच भी सह-यात्रियों के बिन्दास जोड़े की तरह बातों में खोए हम घूमते रहे थे। सड़क पर, पार्क में, माल की दूकानों में, प्रकृति को निहारते और फोटोग्राफी करते हम यूं साथ हो गए थे कि साथ के साथी अकेले हो चले थे। समूह के आगे-पीछे होते बे-खयाली में कायाओं का लहराते हुए छू पड़ना, अंगुलियों का उलझ पड़ना, कदमों की लरज में एक-दूसरे को थाम सहारा देना, वाणी के संवादों में नयनों के संवाद का शामिल हो रहना उस दिन का हमारा युगल-सुख था। यह बात अलग है कि उसकी तस्वीर उतारने के बाद जब मेरी तस्वीर लेने वह मेरे कैमरे में आंखें गड़ाए देर तक झांकती रही थी तब उसके हाथ से कैमरा छीनते उसके व्यापारी पतिदेव ने न जाने किस प्रेरणा से यह कहते हुए कैमरा छीन लिया था कि तुम हटो, इनकी तस्वीर मैं ले लेता हूं।

शाम को ही होटल का कमरा खाली कर कहीं और जाने का कार्यक्रम था, लेकिन रात लौटने में बहुत देर हो गई थी। मसूरी की उस गुड़िया और मेरी आगे की योजना बन चुकी थी, लेकिन समस्या यह थी कि ठहरने के ठिकाने अलग थे। आखिर हम क्या करते ? हां, सचमुच हमारे वश में कुछ न होता अगर संयोग हमारी सहायता को वैसी परिस्थितियां हरिद्वार के ठिकाने तक पहुंचने से पहले ही न पैदा कर देता। उस प्रसंग को फिलहाल यहीं रहने दिया जाये तो कुछ अन्यथा न होगा।

उस दिन के वे क्षण आए और गए, लेकिन मसूरी की याद आते ही मसूरी-डॉल ज़रूर याद आती है। बल्कि सच शायद यह कि मसूरी-डॉल की यादों से ही चित्त में मसूरी की याद कायम है। चित्त के लहरों की एक परत को ठेलकर दूसरी परत चढ़ी जा रही थी ।

वह गोरी बंगालन x

वह गोरी बंगालन भला मेरी क्या लगती थी, जिसकी खूबसूरत आंखें मुझसे अक्सर टकराया करती थीं। उससे तो केवल सहयात्रा का परिचय था। पहले-पहल हम दोनों के बीच भद्रता का संकोच दिखाने की होड़ बनी रही आई थी। महीनों बाद होठों के लरजने का सिलसिला शुरूहुआ। होंठों से हमने जुबान तक बढ़ने और फिर जब अवसर मिलता आसपास या साथ-साथ बैठने तक तरक्की की। दूरी दर्शाते सभ्यता निभाने का ढोंग करते हम कब करीब आते रस से बतियाने लगे इसका फिर पता ही न चला। साथ बैठना वैसे ही चाहत में तब्दील होती गई थी। उस दिन भी हम बस की गति के साथ और उसके बहाने एक-दूसरे को हिचकोलों में डुबाते चले जी रहे थे। अचानक तेज गति से भागती बस ने आगे सामने और पीछे से पहले निकल भागने स्पर्धा करती दूसरी बसों से अपने को बचाने लहराकर हिचकाले का ऐसा झटका दिया कि मेरी सुंदरी सहचरी झुकती और अपनी सीट से लुढ़कने की मुद्रा में हो आई थी। कब और कैसे उसकी एक बांह और कटि से उसे मैने थाम लिया था इसका खुद मुझे भी भान न हुआ था। संयोग ऐसा कि वैसी आपात हालत की मुद्रा में भी उसकी और मेरी आंखों को ठहरने की जगह दिखाई पड़ी भी तो एक-दूसरे की आंखों में ही दिखई पड़ी। आंखों की दृष्टि तब परस्पर डूबती-डुबाती यूं विलंबित हो चली थी कि उन्हें जैसे चिरकाल से ऐसे ही किसी संयोग की प्रतीक्षा रही हो। होश आने पर अंदर का भाव सरे आम पकड़ लिये जाने के संकोच से आंखें दोनों तरफ झुक गई थीं।

इन्हीं दिनों किसी एक दिन बतियाते वह पूछ बैठी -" महीनों से आप के दफ्तर की वह हीरोइन नहीं दिखाई पड़ रही है। काम-वाम क्या करती होगी ? वह तो मुझे अक्सर घर पर ही बैठी नज़र आती है।

उसका इशारा अनुराधा की ओर था, जो उस सुन्दरी के पड़ोस में ही रहती और मेरे साथ काम करती थी।

मैने जवाब दिया -" वे तो छुट्टी लेकर टोरेन्टो प्रवास पर हैं। वहां उनके भाई और भाभी बसे हुए हैं।"

कंटीली मुस्कान लिये मेरी सहचरी सुन्दरी ने मेरी आंखों में झांका।

" क्यों ? आप को वह साथ नहीं ले गई ?"

चंदन की रंगत में सोने की चमक वाली यह बंगालन लपक लेने की लालसा मुझमें हमेशा पैदा करती थी, लेकिन महज भद्र औपचारिकता के परिचय के कारण वैसी आत्मीय छेड़छाड़ का साहस खुलकर मैं कभी न कर सका था। रस के उस रंग में शायद पहली बार वैसा साहस उस सुन्दरी में भी जागा होगा। मैं सोचता हूं कि अपरिचय की वजह से जिससे मैं दूर-दूर भागता रहा, उस रमणी के मन में अचानक मुझसे छेड़छाड़ की चाहत क्यों जागी ? कुछ तो रहा आया था, जो बरसों की रेल और बस की सहयात्रा में कोमलता से संचित होता निकल पड़ने को बेकरार था। इससे क्या फर्क पड़ता है कि संकोच की जो दीवार मुझसे न तौड़ी जा सकी थी आज उसने तोड़ दी थी।

यह प्रियहरि अजीब है। मैने उसे दरकिनार कर रखा है तब भी वह मुझपर सवार रहा आता है। वह मुझे ठेल रहा है - "तुम अलग बैठो और चुपचाप देखते रहो।अब यहां से मुझे चलने दो।"

प्रियहरि

जरूरी नहीं था कि सारे संबंधों में इच्छाओं का युग्म उस अवसर तक पहुँच सका हो जहां वह निर्विकल्प एक होता परम तृप्ति पा सके। तब भी अनुभव कहता है कि चलते-फिरते संयोगाश्रित संबंधों के छोटे-छोटे लम्हों में ही वे बीज होते हैं, जो दो के बीच पड़ी तृप्ति की कामना को झकझोरते अतृप्ति के अहसास को

यूं जगा जाते हैं कि दिल में लंबी दूरी तक यह धुन गूंजती होती है कि -" अभी न जाओ छोड़कर अभी तो दिल भरा नहीं।"

राह पीछे छूट जाती है और अदृश्य हो चले राही की स्मृति 'आह' की कसक में चिर-संचित रही उनींदी आती है। राह उस मुकाम तक पहुंचाने के लिये होती है जो राही का गन्तव्य है, लेकिन चलती डगर के उन पड़ावों का क्या कोई महत्व नहीं जो पथिक को वृक्षों की घनी छांह में बिलमाकर शीतल जल से प्यास बुझाते राहत देते हैं। ऐसा भी तो होता है कि मंजिल की तलाश में भटकता पथिक अक्सर राह में ही किसी पड़ाव पर रीझता अपनी यात्रा को वहीं विराम दे देता है। इस वक्त प्रियहरि किसी और के साथ सवार है।

किसी भद्र वर्ग और परिवार की तकरीबन हम-उम्र उस हमसफर को वह कैसे भुला सकता है जिनकी बगल में वह भीड़-भरी बस में स-संकोच जा बैठा था। छोटी सी सीट पर हिचकोलों के सफर में बैठे दो निरीह कभी अपने को संभालते और कभी 'संभालते' की ओट में देहस्पर्श से बचने का बहाना करते स्पर्शित हो चलते हैं। कनखियों से एक-दूसरे में यह जांचती निगाहें टकराती हैं कि समीकरण अनुकूल है या नहीं ? आश्वस्त होकर हाथ-पांव, कंधों, सामने की सीट को थामी हथेलियों को छूट देते प्रियहरि और वे वार्तान्मुख होते हैं। साथी महिला ने समझ लिया है कि उसका सहचर सामान्य से बहुत आगे की कोटि का है। एक-दूसरे को संभालने की प्रक्रिया में दोनों क्रमश: द्रवित हो रहे हैं। बातों के साथ चित्त यूं आत्मीय हो चले हैं जैसे जाने कब के परिचित हैं। मध्यायु सहचरी छरहरे बदन की ऐसी सजनी हैं जिनकी खूबसूरती को उनके हालात ने धूमिल कर रखा है। लेकिन तब क्या ? श्लथ काया के बावजूद संस्कारों की अनुकूलता और अजाना आकर्षण प्रियहरि को भी उनमें प्रवेश के लिये उसी तरह बांधता है, जिस तरह वे आत्मीयता में उससे बंध चली हैं। परस्पर यूं मशगूल कि जैसे वह सहयात्रा ही मंजिल हो चली हो। बातों में डूबी वे बता चली हैं कि कहां से आ रही हैं, कहां जा रही हैं, परिवार में कैसा सूनापन है, किस तरह पति किसी दूकान की साधारण सी नौकरी में बे-बरक्कत खटते हैं, कैसे बेबसी में वे घर और बाहर के सारे दायित्व निभाती हैं, और यह कि विवाह के उतने बाद भी संतान का अभाव किस तरह उनकी स्थायी व्यथा बन चला है....वगैरह। उनके नैनों और वाणी की व्यथा ने प्रियहरि को भी आत्मसात कर लिया है। कारुणिक समस्या ने दोनों को एक-दूसरे के चेहरों और आंखों में अवस्थित कर दिया है। जैसे वे दोनों परस्पर पूछ रहे हों कि अब आगे क्या ? मुद्राएं यूं बन चली हैं कि उनकी व्यथा और इसकी सहानुभूति बस अभी ही साश्रु लिपट पड़ें और समस्याओं के हल के संधान में डूब चलें। प्रियहरि उनके रहने के ठिकाने, घनी आबादी के बीच किसी बाड़े में अवस्थित किराये के उनकी कोठरियों, उनकी दिनचर्या, फुरसत में खास सब्जी मार्केट और विशिष्ट लोकेशन वाले बाजार के लिए निकलने का उनका समय, समस्याओं के निदान के लिये पुनर्मिलन की गुंजाइस, टेलीफोन पर बात के लिये संपर्क का नंबर वगैरह सारा कुछ खंगाल लेता है। वे बताती हैं कि एक मोबाइल है तो लेकिन उनके पति के पास रहता है। टेलीफोन घर में तो है नहीं। ज़रूरत पड़ने पर वे मेडिकल की उस दूकान के फोन का उपयोग कर लेती हैं, जो बाड़े के मालिक की है। संपर्क का जरिया माकूल न था। प्रियहरि को आभास होता है कि उनका बताया ठिकाना, वह दूकान उन परम सात्विक संपन्न अहिंसाधर्मियों की हो सकती थी, जो उसे जानते थे। समय, बस की भीड़, काम की थकान, ठेलम-ठेल की बोरियत, गंतव्य पर पहुंचने की उतावली जो इन पैंतालीस मिनटों में अन्तर्धान हो चले थे अचानक त्वरा से कंडक्टर की हांक में सवार लौट आए थे।

एक परिवार की तरह प्रियहरि के साथ उनका उतरना हुआ था। सामान उनका कहने भर को कुछ ज्यादा था। यानी एक की जगह दो-तीन छोटे बड़े थैले। आत्मीयता में मिल चले मुखिया के अधिकार से प्रियहरि ने रिक्षा तय किया, उन्हें बिठाया और साथ जाने की अपनी और साथ होकर पहुंचा देने की उनकी इच्छा के बावजूद वह अपनी जगह पर तब तक स्थिर रहा जब तक रिक्षे में बैठी आंखों का विदा लेता और विदा करता हाथ ओझल न हो गया।

प्रियहरि को मैं विदा करता हूं -" लटक गए ना । जाओ अब या तो उस रिक्शे के पीछे भागो या यहीं खड़े प्रतीक्षा करो । मैं जल्द ही लौटता हूं। मेरे पीछे न भागना। "

लेकिन भागना छूटा कहां ? वह एक सुसंस्कृत सुन्दरी नवयौवना उसे याद आती है, जो वैसे ही कभी उसके बगल मे आ बैठी थी। कान्वेन्ट में पढ़ी अंगरेजी में दक्ष वह उस मारवाड़ी परिवार में ब्याही गई थी , जिसका सरोकार कपड़ों के व्यापार भर से था। वहां न तो पढ़ाई-लिखाई की कद्र थी; और न उस चमकीली अंग्रेजी की जिसमें बात करने साथी को वह तरसती थी। प्रियहरि के साथ भिड़कर तब ऐसी यारी हुई कि घंटे भर बाद खिलखिलाहट की सुहानी महक लिये दोनों ने इस शानदार मुलाकात की दाद देते हुए 'हाय', 'बाय', और 'सी यू अगेन' के साथ विदा ली थी।

वैसी ही महक उन पलों में भी तो थी जब माटी से सने और पसीने की गंध से सराबोर देहाती यात्रियों की बस में वह एक सरला शिक्षिका अनुकूलता में प्रियहरि को पसंद कर आ बैठी थी। दो घंटों में ही वे यूं करीब आए कि साथ छूटने का अफसोस दोनों तरफ आंखों में उतर आया था।

स्मृतियां प्रियहरि में उतरती आ रही हैं। उस लंबी यात्रा का तो आनंद ही कुछ और था, जो उस एक श्यामा की ऊंगलियों के अनजाने स्पर्श के बाद एक यादगार सहयात्रा में तब्दील हो चली थी। यह विपाशा थी ।

मैं : विपाशा x

उससे मेरी देखा-देखी तो यात्रा के दिन पहले पड़ाव में ही हो गई थी। खाना खाते वक्त प्लेट लिये मेरा हाथ उठा तो कुछ जाने और कुछ अनजाने मेरी हथेली उसकी हथेली के निचले तल से छू गई थी । पहती बार तभी आंखों ने एक-दूसरे को गौर से देखा था। स्लेटी आकाश की रंगत वाली विपाशा तब मुझे किसी स्कूल की मास्टरनी प्रतीत हुई थी। सिकुड़ा सा चौरस चेहरा, हवा के साथ डोलती उसकी क्षीण काया में सिवा उसकी बड़ी-बड़ी आंखों के कुछ भी आकर्षण नहीं था। एड़ी से चोटी तक सपाट काया में कुछ और खींच सकता था तो वह अति क्षीण कटि पर थमी उसकी जवानी ही थी। अपनी निराधार बकबक और बहस की वृत्ति से वह अठारह-बीस की लगती थी, पर रही होगी वह तकरीबन छब्बीस -सत्ताइस के वय की। बस की पिछली सीटों से कलहपूर्ण बहसों में उसकी आवाज़ हमेशा ऊंची सुनाई पड़ती रही थी। उसे उलझाकर पटाने के चक्कर में मजे लेते कुछ लोग और उकसाते थे और वह थी कि औरों को मंदमति समझती वह अपने अहं का रस लेती उनपर तरस खाती थी। अपनी जगह बैठा मैं उस कोलाहल पर खीझता इस लड़की पर तरस खाता था। वह मुझे नितांत बड़बोली और उपेक्षणीया प्रतीत होती। उसके ठीक विपरीत अपनी सार्थक मित-भाषिता और सौम्य व्यक्तित्व की वजह से पहले दिन से ही मैं सह-यात्रियों के बीच जिज्ञासा और आकर्षण का केन्द्र हो चला था।

यह बीस दिनी यात्रा समूचे दक्षिण भारत की थी। वह तीसरी सुबह थी जब हम गोदावरी में भद्राचलम से होते कावेरी के तट पर कनकदुर्गा के दर्शनार्थ विजयवाड़ा पहुचे थे। बस यहीं से न जाने किस प्रेरणा से वह मेरे समीप खिंची चली आई थी। औपचारिक देखा-दाखी और बातें आरंभ यहां हुई और इसी दिन श्रीशैलम के रास्ते डोरनाल के पड़ाव पर वह घनिष्ठता की कशिश में बदल गई। डोरनाल में एक ठेले पर पास-पास खड़े हम जूस पी रहे थे। भुगतान करते वक्त मुझे बरजते हुए उसने रुपये दिये। इतनी सी बात ही मुझपर असर कर गई। उसके बाद तो जैसे शेष सत्रह दिन वह यूं संग हो ली जैसे वह मेरे परिवार की एक इकाई हो। बात, व्यवहार, की सारी औपचारिकताएं टूटकर हंसी-मजाक, छेड़छाड़ और रूठने मनाने की हरकतों में तबदील हो गईं। श्री शैलम, तिरुपति, मदुरै, कन्याकुमारी, पांडिचेरी, रामेश्वरम, ऊटकमंड, मैसूर, बैंगलोर, कलाडि-मठ, चिदम्बरम, कालाहस्ती, त्रिवेन्द्रम, कोवलम समुद्र-तट, पंढरपुर, और दारुका-वन ज्योतिर्लिंग की सैर करते सुबह से रात तक हम यूं साथ रहे आते कि सारे सहयात्री ओझल हो जाते थे।

विपाशा कहने को आंटीजी के साथ की तारीफ करती उनके साथ होती थी, लेकिन इस साथ में उन्हें मौन में छोड़ बतकही और चुहल में मेरे साथ डूबी हुआ करती थी। दायें-बायें, आगे-पीछे रहते विपाशा और मेरी

अंगुलियां अपने-आप एक-दूसरे में उलझकर पंजों में कस जाया करती थीं। पास चलते बदन छुआ-छुई का खेल खेलते चिपक चलते थे।

दर्शनार्थियों की लाइन में खड़े भीड़ का हल्का दबाव कसकर झेलते बांहों, छातियों, गालों पर हम दोनों बे-शिकायत चिपके मन की मौज में यूं बतियाया करते जैसे उस बहुत-कुछ में कुछ न हो रहा हो। रेस्त्रां मे खाते-पीते गप्पों के बीच नयनों का संवाद साथ का रस को दो गुना कर जाता था। मंदिर हो, बाजार हो या हमें डुबकियां लगवाता समुद्र का तट - हर जगह मस्ती छाई होती। आग्रह कर-करके विपाशा ने मुझसे खूब तस्वीरें खिंचवाई। हमारी संगत बच्चों की ऐसी चुहल हो चली थी कि उसके साथ की कामना करने वाला एक छैला जिसे वह खुद से कमतर आंकती अक्सर रोष से झिडक दिया करती थी मायूसी में खुद बिदक गया था। सहयात्रियों का समूह हमपर गौर करता आश्चर्य से भर हमें ताका करता था। कुछेक ने फब्तियां भी कसीं - "वाह भइ, क्या जादू है, आप से तो वह बिल्कुल पट गई है", "अरे वाह, वह तो अब आाप की शिष्या बन गई है", " आप की दोस्त बड़ी चालाक है, अपना पैसा बचाने वह आप के साथ चिपक गई है", "हां-हां लगे रहिए आप लोग, हम सब देख रहे हैं" वगैरह। विपाशा और मैं वह सब समझा करते थे। जहां उसकी आन्टी या किसी और की निगाहों का अहसास होता हम दोनों के परस्पर गुंथे हाथ अलग हो जाया करते थे। सुबह निगाहों के भिड़ने के साथ हमारा दिन शुरूहोता और रात खाना खाने के बाद आंखें भिड़ाए हम जुदा होते। विपाशा के और मेरे भी दिल में यह बात थी कि रात में भी हम साथ ही रहें। मैं चाहता तो था और विपाशा से उस बारे में मशविरा भी हुआ, लेकिन दिक्कत यह थी कि उसकी आंटी को यह प्रस्ताव बिल्कुल भी न भाता कि रात में उसे अपने बीच रखा जाए। जहां पृथक व्यवस्था न होती, वहां विपाशा यह ध्यान रखती कि उसके बिस्तर के ठीहे के बगल से वह हमारे लिये जगह रोक रखे। एकाध रात हमारे बिस्तर बगलगीर रहे लेकिन भीड़ से भरे विशाल कक्ष में हाथ-पांवों को लड़ते खुद भिड़ पड़ने का मौका वहां महफूज न था। सफर के दौरान हमारे बीच राय बनी कि मेरे बगल की सीट से बुजुर्ग सहयात्री को अपनी जगह पीछे भेज विपाशा खुद मेरे करीब बैठे। विपाशा ने बताया कि वैसा वह कर चुकी है, लेकिन मैनेजर सरदारजी नहीं मानते हैं।

आखिर में एक बात और। जैसा कि आम ललनाओं की वृत्ति होती है, विपाशा को भी यह तो मंजूर था कि होते-होते अपने-आप जो भी होता चले वह उसे कुबूल है, लेकिन उल्लेखपूर्वक उस खास गोपन दिव्य का प्रस्ताव उसे अप्रिय है। मदुरै में उसके संयुक्त कमरे की चाबी उसकी संगिनियों के पास थी। मैने केवल इतना कहा था -"तुम क्यों न यहीं रुककर अपने को तरो-ताजा कर लो ?"

उसे न जाने क्या सूझा था, जवाब दिया -" मैं और चाहे जो कर लूं पर किसी के साथ बिस्तर शेयर करना मुझे मंजूर नहीं। मुझे उससे नींद नहीं आती।"

मैं अब तक सोचता हूं कि विपाशा के चित्त में क्या था ? उसे अपनी आंटी के साथ बिस्तर शेयर करने से गुरेज था या मेरे साथ ,या हम दोनों के साथ ? वैसा इशारा उस वक्त तो मेरा था नही, तब उसके मन में वह खयाल क्यों आया ? क्या सचमुच उसके खयाल में उस वक्त कामना भरी यह कल्पना न उभरी थी कि आंटी और मेरे बीच सोती वह खिसकती मेरी बांहों में अपने को आ समाया पाती है और तब दखल देती हुई विपाशा की चेतना उसे झकझोरती जगाती है कि 'हाय, यह क्या कर डाला तुमने, चलो हटो यहां से ?'

बात-मुलाकात अब भी विपाशा से होती है लेकिन न जाने क्यों उसमें वह आकर्षण मैं नहीं पाता जो अपनी सहचरियों में मुझे लुभाता है। बेहद अज्ञता, किन्तु चित्त में इस भ्रम-भरे फितूर का बड़बोलापन इस बूढ़ी युवती में है कि बगैर पढ़े-लिखे-सुने-समझे भी उसकी सनक-भरी बातों में महानों जैसी महानता है।

विपाशा को याद करता मैं यात्रा से विराम लेता हूं। मेरे कंधे पर किसी के हाथ का स्पर्श मुझे चौंकाता है। प्रियहरि मुस्कुराता हुआ खड़ा है। उससे मैं घबराता हूं। यह पीछा करता चला ही आता है।

उससे कहता हूं - " यार तुम मेरे पीछे क्यों चले आते हो। कभी तो अकेला छोड़ो। चलो अब मैं तुम्हें उस खूंटे से फिर बांध आऊँ जिसे तोड़कर तुम यूं भाग आते हो। "

प्रियहरि : मालूम नहीं ऐसा क्यों हो जाता है ?

सहज भाव से प्रियहरि ने सामने बैठी वनमाला से कहा - "भाग्य की विडंबना भी कैसी है ? हम मिलते रहे, झगड़ते रहे, लेकिन क्या वहीं हमारे संबंधों का सच है ? क्या यह सच नहीं कि भय, संदेह, ईर्ष्या और तनाव में हमेशा
मुझसे कहना तुम कुछ और चाहती थीं, लेकिन कह कुछ और जाती थीं ?
यही हाल क्रिया-प्रतिक्रिया में मेरा भी था। ऐसा क्यों हुआ?"

"हां यह सच है । मालूम नहीं ऐसा क्यों हो जाता है ? लेकिन आपने भी तो वैसा किया । बताइए, क्या नहीं किया ?

बैल अपने खूंटे से बंधा रह भागेगा तो कितनी दूर जाएगा ? प्रियहरि भी लौटकर फिर वहीं पहुंच जाता है, जहां उसकी नियति का खूंटा गड़ा था। वनमाला की ओर से और उसके रवैये के खिलाफ स्टाफ की शिकायतों की वजह से प्रियहरि खिन्न था। न चाहते हुए भी वनमाला से उसे इस बारे में जवाब-तलब करने की मजबूरी रही आती थी । वैसा न करता तो पक्षपात का आरोप लगाते वे मातहत साथी नाराज़ होते, जो प्रियहरि के यूं भी वनमाला के प्रति नरमदिल रखने और वनमाला की गैरअदबी को नज़रअंदाज़ करने की शिकायत करते खिन्न रहा करते थे। एक दिन वनमाला आईऔर उसके सामने बैठ गई।

व्यक्तिगत संबंधों के दखल से नाराज होती वह प्रियहरि से बोली -"बताइए यह सब क्या है ? आखिर मेरा अपराध क्या है ? आपने विभाग प्रमुख कुटिलाक्ष से शिकायत की कि मैं यहां उपस्थित नहीं रहती, मेरी कक्षा नहीं लगती, और मैं छुट्टी लिए बिना बाहर होती हूं।"

वनमाला नाराज थी कि प्रियहरि ने कुटिलाक्ष से कहकर इस बारे में पूछताछ की थी । वनमाला का कहना था - " मेरा टाइम-टेबिल तो कुटिलाक्ष ने खुद बदल दिया है इसलिए जिस समय मेरे न होने की शिकायत आप को है, उस समय कक्षा नहीं होने से मैं चली जाती हूँ।" मानिनी बनकर साधिकार वह प्रियहरि पर अपनी शिकायतों के साथ बरस रही थी ।

"साल भर से मैं बिल्कुल उपेक्षित हूं । लोग मुझ पर हंसते है, ताने देते है। बताइए मैंने क्या किया है ? मेरा अपराध क्या है ? आप सुबह आकर देखिए कि कक्षाएं बहुतों की है लेकिन लोग आते ही नहीं है । आ भी जाएं तो कक्षाएं नहीं लेते और स्टाफ रूम बैठकर समय बिताते है । अनुराधा, नंदिता, जूथिका, भोला बाबू वगैरह सबकी कक्षाएं टाइम - टेबिल में हैं, लेकिन क्या ये सब अपने समय पर रहते हैं ? अभी चलिए मेरे साथ और घूमकर देखिए कि कितनी कक्षाएं लगी है और कौन आया है, और कौन नहीं ?"

कला-विज्ञान संकाय वालों की सुबह गैरहाजिरी के सवाल पर वनमाला की तसल्ली के लिए आखिर प्रियहरि ने उसी के सामने विभाग प्रमुख कुटिलाक्ष से यह कह दिया था कि वह सुबह सभी की उपस्थिति पर नजर रखे और उसे रिपोर्ट दे। अपनी चुगली पर अनुकूल रुख देख वनमाला प्रसन्न हुई। टाइम-टेबिल के अंदरूनी बदलाव के मामले में हकीकत जानने तीसरे दिन जब कुटिलाक्ष को प्रियहरि ने तलब किया तो वनमाला और विपुल भी साथ घुसे चले आए थे । कुटिलाक्ष से प्रियहरि ने पूछा था कि बदलाव की बात उसे क्यों नहीं बताई गई थी ? कुटिलाक्ष चुपचाप अपराधी की तरह सिर झुकाये रहे। शेष दो खुश हुए कि कुटिलाक्ष दोषी पाये गये। दोनों को संदेह था कि वनमाला की शिकायत में जरूर कुटिलाक्ष का ही हाथ रहा होगा ।

दोपहर तक वनमाला द्वारा कला-विज्ञान के लोगों के खिलाफ शिकायत की बात उजागर हो गई थी । अब वनमाला के विरुद्ध प्रतिक्रिया में दोपहर का करीब सारा स्टॉफ लामबंद हो पहुंच गया था। कानन, चौधरी,

जूथिका, सत्यजित और दीगर सभी वनमाला के रवैये से नाराज थे । नेहा और अनुराधा ने बताया कि सारे लोग नाराज़ हैं। इन्होने कहा कि उन्माद में आकर वनमाला स्टॉफ रूम में औरों को कोसती चिल्ला रही थी । वह हमेशा चीखती है कि परीक्षा में, समितियों में, अन्य मामलों में इन्हीं लोगों के कारण उसकी उपेक्षा होती रही है । उसका आरोप था कि वे सभी प्रियहरि के पास बैठ-बैठ कर उसकी चुगली करते और करीब बने रहते हैं । वह चीखती है कि प्रियहरि के पास जा-जाकर उनसे बतियाने का इन्हें क्या काम है ? वह सब को उकसाती है कि लोग उनके पास न आएं, और न बैठें । अनुराधा और नेहा दोनों की राय थी कि प्रियहरि उस अहंकारी और ईर्ष्यालु महिला की बातें न सुना करे । वनमाला और उसकी गतिविधियों को वे अच्छी तरह जानती है और यह भी कि वह क्या है ?

मंजरी ने भी बाद में प्रियहरि से ऐसी ही बात कही थी - "जीनत के साथ के दिनों से वनमाला की हरकतों से हम वाकिफ हैं । कभी कभार भी स्टॉफ रूम में चले जाने, बैठने पर वनमाला हमें देखते ही प्रायः भड़क उठती थी । वह व्यंग्य किया करती थी कि न जाने लोग यहां क्यों चले आते है, स्टॉफ रूम में इनका भला क्या काम रहता है । वह शिकायत करती थी कि लोग वहां उसकी जासूसी करने आते है ।"

अनुराधा का निष्कर्ष था -"आप देखिएगा कि अगर यह आदत वनमाला में ऐसी ही बनी रही तो एक दिन वह आयेगा कि यह सभी से कटकर अकेली पड़ी रहेगी और कोई इसे दो कौड़ी में नहीं पूछेगा ।"

अनुराधा, नेहा, मंजरी तीनों अलग-अलग प्रियहरि के पास आई थीं। उसने महसूस किया कि सचमुच वनमाला उसी दिशा में जा रही थी, जिसका संकेत इन सब ने किया था । उसका अहंकार, उसकी ईर्ष्या और अंतर्विरोधी चरित्र का खुद का बुना जाल इसके लिए जिम्मेदार थे। वह सभी का विश्वास खो रही थी । प्रियहरि को उस दिन इस बात का जबरदस्त मलाल हुआ था कि सरकारी रिकार्ड में दर्ज जन्म की उसकी वह तारीख वनमाला से मुलाकात की तो रही लेकिन केवल शिकवों, शिकायतों और विवादों को लेकर गुजरी। उसे दुख हुआ कि क्या ऐसे मौके पर उसका ध्यान वनमाला नहीं रख सकती थी ?

पिछली मुलाकात के बाद वह सप्ताह यूं ही बीत चला था । और चाहे जो हो इतना जरूर हुआ कि अपनी बात सुनी जाने पर वनमाला खुश हुई थी । शायद बाद में उसे वह तारीख ध्यान में आई हो जिसे उसने प्रियहरि के साथ महज विवादों और शिकायतों में बिताकर जाया कर दिया था । इसीलिए उस एक दिन फिर वह प्रियहरि पर अपना प्रेम उजागर करने प्रकट हुई । उसके विषय के दूसरे साल के छात्रों ने पहले साल वालों के स्वागत का कार्यक्रम रखा था । प्रियहरि दस बजे पहुंच गया था । कक्षाएं प्रथम वर्ष के सिवाय सभी चल रही थीं । प्रथम वर्ष के कमरे में कार्यक्रम की तैयारी चल रही थी । उसी दौरान वनमाला खुद होकर आई और लगभग आधा घंटे प्रियहरि के पास बैठी रही ।

"अकेली स्टॉफ रूम में बैठी थी । सोचा कि चलूं आपसे मिल आऊँ और कुछ बातें करूं । ऐसे तो यह मुश्किल रहता है "- उसने कहा। कक्षाओं का मुआयना कर लौटे होने की बात पर प्रियहरि से वनमाला ने हंसकर पूछा था - "क्यों, आज आपने मुझसे नहीं पूछा कि मैं कक्षा में नहीं थी ?"

प्रियहरि ने भी हंसकर जवाब दिया - "मुझे मालूम था कि आज वहां आयोजन है इसलिए तुम नहीं हो ।"

प्रियहरि से वनमाला की बातें निर्विघ्न, तनावमुक्त और खुलकर इस तरह होती रहीं जैसे किसी का भय, किसी की परवाह न हो । यह अजीब बात थी कि नफरत की दीवार खड़ी करने कराये गये झगड़ों और षड़यंत्रों के बाद वनमाला के मन में प्रियहरि के लिए और ज्यादा प्यार बढ़ जाता था । मन में दबी उदास शिकायतों के बावजूद प्रियहरि के अंदर भी वैसे ही जज्बे और बातें करने की वैसी ही बेताबी मचल उठा करती जैसी इस वक्त अपनी उस प्रिया में वह देख रहा था।

आज वनमाला ने बैठते ही प्रियहरि से पूछा था कि - "अब तो आप यहां से कहीं नहीं जा रहे है न ! यहीं रहेंगे न !"

प्रियहरि का जवाब था कि क्या मालूम, क्या होता है ? आगे यह कि - "मेरा रहना क्या तुम्हें अच्छा लगेगा ? तुम तो चाहती थी कि मैं यहां से चला जाऊँ ।"

उसने कहा - "वैसा नहीं है । मैंने वैसा कभी नहीं चाहा । यहां का माहौल ऐसा बन गया है कि मेरा आपके पास बैठना, सरकारी काम तक के लिए बात करना मुश्किल हो गया है । मैं तो चाहती थी कि मेरा खुद का तबादला यहां से हो जाये । देखिये क्या होता है ?" उसने पूछा "अब भी तबादले हो रहे हैं क्या ?"

सहज भाव से प्रियहरि ने सामने बैठी वनमाला से कहा - "भाग्य की विडंबना भी कैसी है ? हम मिलते रहे, झगड़ते रहे, लेकिन क्या वहीं हमारे संबंधों का सच है ? क्या यह सच नहीं कि भय, संदेह, ईर्ष्या और तनाव में हमेशा मुझसे कहना तुम कुछ और चाहती थीं, लेकिन कह कुछ और जाती थीं ? यही हाल क्रिया-प्रतिक्रिया में मेरा भी था। ऐसा क्यों हुआ?"

"हां यह सच है । मालूम नहीं ऐसा क्यों हो जाता है ? लेकिन आपने भी तो वैसा किया । बताइए, क्या नहीं किया ? आप भी तो लोगों के कहने पर आ जाते है।" वनमाला ने कहा - "स्टॉफ रूम में आजकल मेरा बैठना मुश्किल हो गया है। लोग ताने देते है और ऐसी-ऐसी बातें करते है कि बताना मुश्किल है। आजकल कुटिलाक्ष और उसका साथ् देते दो-तीन अन्य लोग मेरे पीछे पड़े हुए हैं । तीन अवसर तो ऐसे हैं जिन्हें मैं कभी नहीं भूल सकती । कुछ लोगों ने मुझे न जाने क्या-क्या कह कर बुरी तरह आहत और अपमानित किया है ।"

प्रियहरि ने वनमाला से कहा -"और लोग तो हैं, लेकिन क्या यह सच नहीं कि कोई और तीसरा हमारे बीच है जो तुम्हें बहुत पहले, शुरू से भड़काता रहा, हमारे बीच दूरियां पैदा करता रहा और तुम्हें मेरे पास आने से रोकता रहा ?"

वनमाला ने जैसे असल प्रश्न को अनदेखा कर दिया । वह बोली - "मैं क्या करूं ? मैं आपके पास आना चाहती हूं तो तुरंत लोगों में हलचल मच जाती है। लोग जासूसी करने लगते है । देखिएगा, आज भी चर्चा जरूर होगी।" सफाई देते हुए वनमाला ने आगे कहा - "मैं जब भी यहां आती हूँ, सब टोह लेने लगते हैं कि हमारे बीच क्या बात चल रही है ।" वह कहती चली गई कि - "आज भी आप देखिए, दो-तीन लोग - कुटिलाक्ष, उदयन और फिर वल्लरी मेडम झांक कर चले गये हैं । ऐसा अक्सर होता है । आप मुझे बुलाते हैं तब भी ऐसा ही होता है । आपके पास से लौटते ही लोग, यहां तक कि मैडम लोग भी पूछने लगते है कि क्यों, क्या बात थी ? क्यों बुलाया था ? और तो और आपके परम मित्र डॉ. भोलाराम भी इससे बाज नहीं आते । उस दिन जब मैं आपके पास से गई तो झटपट सब मुझसे पूछने लगे कि क्या बातें हुईं ? आज भी देखिएगा कि ऐसा ही होगा । स्टॉफ रूम में पहुंचते ही लोग पूछेंगे कि क्या बात होती रही ?"

वनमाला का मन दुख से भर गया था। इस वक्त उसमें प्रियहरि की प्रिया सौ फीसदी समाई हुई थी। जैसे प्रियहरि के बहाने वह अपने से ही पूछती कह रही थी - "न जाने मेरे ही साथ ऐसा क्यों होता है ?"

प्रसंग बदला । वनमाला ने कहा - "मैने पत्रिका देख ली जो आपने मुझे दी थी। उसमें जो सामग्री आपके बताने पर मैंने तैयार की थी वह तो नहीं है । उसे बिल्कुल बदल दिया गया है । बहुत सारे वाक्य या तो बदल दिये गये है या उन्हें काट दिया गया है ।" उसने पूछा - "आपने ऐसा किया है क्या ?"

यहां प्रसंग उस पत्रिका का था जो संपादन के दौर से निकलकर अब छप चुकी थी। प्रियहरि ने समझाया कि सामग्री तो वही थी जिसे वनमाला ने लिखा था । दो-चार वाक्य मात्र संपादन में उसके साथियों ने काटे या बदले होंगे लेकिन खुद उसने वैसा नहीं किया था । प्रियहरि ने वनमाला से शिकायत की कि क्यों ऐसा हुआ कि ठीक जब वह वनमाला के निर्धारण का मसला हल करने, उसे परीक्षा अधिकारी बनाने उसके हित में सोच रहा था, तभी वनमाला को कोई उसके खिलाफ कपट सिखाता भड़का रहा था ।

प्रियहरि ने कहा - "तुमने कभी सोचा कि इससे मुझे कितनी पीड़ा हुई होगी ।"

वनमाला बोली - "मैं क्या करूं ? आपको और मुझको लेकर लोग पीछे ही पड़े रहते है । जब आपने निर्धारण संबंधी मेरा आवेदन मुख्यालय को भेजा था तो बात आग की तरह सारे स्टॉफ में फैल गई कि प्रियहरि ने केवल इनके आवेदन पर विशेष सिफारिश करके भेजा है । देखना, अब इनका काम हो जाएगा और दूसरों का नहीं होगा ।"

"मेरी बड़ी इच्छा थी कि मेरे रहते तुम्हारा लटका हुआ निर्धारण का मसला हल हो जाए। एक बार यदि लिख कर आ जाता तो कोई बाधा उसे रोक न सकती थी" - प्रियहरि ने कहा

वनमाला ने कहा - "मैने तो लिख दिया था । सरकार को समझना चाहिए था कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण जब रहा ही नहीं तो उसका मामला खत्म हो गया। न जाने क्यों मेरे आवेदन को नहीं माना गया ?" वह बोलती रही थी - "अब तो कोई उम्मीद ही नहीं रही। हाइकोर्ट जाऊँगी नहीं । आपके होते काम बन जाता तो अच्छा था"

देर काफी हो चुकी थी उठते-उठते भी वह दो-तीन बार रुक चुकी थी। प्रियहरि ने वनमाला से पूछा - "वनमाला यह बताओ कि जो बातें हम दोनों यहां विश्वास में करते है, वह दूसरों और तीसरों तक क्यों पहुंच जाती हैं ? तुम ऐसा क्यों करती हो ? फिर होता यह है कि हमें - यानी मुझे और तुम्हें - दोनों को औरों के बीच सफाई देनी पड़ती है । तब एक तमाशा खड़ा हो जाता है। प्रियहरि पूछ रहा था - "क्या तुम्हें यह अच्छा लगता है ?"

वनमाला ने प्रियहरि की आंखों में झांका । पलटकर उसने उससे पूछा कि - "लेकिन आप भी तो वही कर जाते हैं । लोगों के कहने पर आप भी वैसा कर जाते हैं। ऐसा भला क्यों होता है ?"

प्रियहरि ने स्वीकार किया - "हां मैने भी गलतियां की है ।" वनमाला के चलते-चलते उसने कहा - "वनमाला, क्यों न हम आज यह तय करें कि पुराने दिनों का हमारा आपसी विश्वास फिर कायम हो और आपस की बातें अब से हम बाहर न जाने दें ।"

वनमाला ने आश्वस्त किया - "हां, ठीक है । मैं आप से वादा करती हूं। लेकिन यह बात आप भी याद रखिएगा।"

बातें और भी होतीं लेकिन अधूरी रह गईं । प्रियहरि वनमाला से पिछले दिनों के उसके रवैये और खुद के अधिकारी हो जाने के बाद वनमाला की अपेक्षा के अनुरूप उसे सहायक परीक्षा अधिकारी न बना सकने और फिर बाद के घटनाक्रम की पृष्ठभूमि पर खुलासा बातें करना चाहता था । वह बताना चाहता था कि कैसे क्रिया-प्रतिक्रिया ने वह सब करा दिया था । प्रियहरि अपना पशोपेश उजागर करना चाहता था कि वनमाला को बुलाए, उससे काम कराए तो वह खुद औरों को सफाई देती उसकी चुगली करती मुसीबत खड़ी कर जाया करती थी । अगर उसे न बुलाए, उसे महत्व न दे, तो उपेक्षा और दुश्मनी की वनमाला से शिकायत आनी थी। ऐसे में भला वह क्या करता ?

प्रियहरि ने वनमाला के उठते-उठते कहा भी कि हमेशा उन दोनों की बातें अधूरी ही क्यों रही जाती है ? देर बहुत हो गई थी । लड़के-लड़कियां बहुत देर से अंदर आने रूके हुए थे जिन्हें कभी प्रियहरि और वनमाला 'पॉच मिनट बाद' कहते टाले जा रहे थे । कक्षाएं छूटे काफी वक्त हो चुका था। स्टॉफ रूम में लोग कक्षाओं से लौट चुके थे । कुछ तो कई बार झांक-झांक कर जा चुके थे । उठते हुए वनमाला ने कहा भी कि - "बाहर आपके छात्र मिलने आतुर हो रहे हैं और वहां स्टॉफ रूम में लोग बेचैन हो रहे होंगे कि मैडम कितनी देर तक क्या बातें कर रही हैं ?" वह कहती गई,- "देखना आज फिर हमारे बारे में चर्चाएं होंगी ।"

वनमाला और प्रियहरि की आशंकाएं ठीक थी । बाद में नेहा ने बताया कि यहां आप लोग बैठे खूब बातें कर रहे थे और उधर स्टॉफ रूम में अन्य लोगों के साथ कुटिलाक्ष घड़ी की सुइयां गिन रहे थे - 'पूरे बीस मिनट।'

प्रियहरि ने शरारत से जवाब दिया - "इसमें कक्षाओं के छूटने के पहले के बीस मिनट और जोड़ लो ।"

उसने बहुत धीरे से दबी आवाज में निमंत्रण दिया - "आओ"

कुछ तो वनमाला के अंदर ऐसा है, जो बाहर के सारे कलह और दिखाई पड़ रहे विग्रहों के बावजूद प्रियहरि को ही अपना समझता है। उसी के पास आने, आत्मीय एकांत में उससे राहत पाने के लिए उसे प्रेरित करता है । तब आखिर वह खुद इतना निष्ठुर क्यों है ?

ऐसी बातों-मुलाकातों का आत्मीय एकांत ढूंढता फिर सप्ताह गुजर गया । फिर प्रियहरि और वनमाला आमने-सामने हुए । उस दिन ग्यारह बजे कालेज में पहुंचते ही परिसर के गेट पर

कुटिलाक्ष, चौधरी, कानन, उदयन चाय पीने जाते हुए मिले। प्रियहरि अंदर पहुंचा तो भवन के चैनल-द्वार पर वनमाला निकलने को तैयार दिखी । प्रियहरि को आता देख पशोपेश में वह ठिठकी हुई थी। उनकी नजरों ने एक-दूसरे से मुलाकात की ।

प्रियहरि के मन ने कहा कि अवश्य वनमाला के मन को उससे कुछ कहना है । उसने बहुत धीरे से दबी आवाज में निमंत्रण दिया - "आओ ।"

वनमाला को जैसे इसी की प्रतीक्षा थी। प्रियहरि के पीछे उसकी अनुचरी की तरह मंत्रमुग्ध वह उसके कमरे मे प्रवेश कर चली । वनमाला सलज्ज भी थी और उदास भी । उसने कहा - "मैं बहुत परेशान हूं। स्टॉफ रूम में रहना मुश्किल हो गया है । कानन, कुटिलाक्ष, चौधरी और अनुराधा - सब आज मेरे पीछे पड़ गये । व्यंग्य से इन सब ने मुझे आहत करते हुए कहा कि मैने उनकी सुबह अनुपस्थिति की शिकायत नाम ले-लेकर आपसे की थी ।" प्रियहरि से उसने पूछा - "आपने मेरा नाम ले लिया था क्या ?"

वनमाला उसके सामने खड़ी ही रही आई थी । प्रियहरि ने उसे बैठाया । वह बैठी तो पर झिझक और परेशानी की मुद्रा में ही रही आई । उसने कहा कि - " ये लोग मुझे ताने देते है कि आपके पास जा-जाकर मैं सबकी शिकायत करती हूं और आपसे सब को डांट खिलवाती हूं ।" आगे यह कि "आज भी ये आपस में कह रहे थे कि देखना, आज भी ये मोहतरमा प्रियहरि के पास जाएंगी और शिकायतें करेंगी।" वनमाला बोली -"मेरा जीना मुश्किल हो गया है।"

इससे पहले कि और बातें हो पातीं, सेवक गोबरधन और रामकिसन कमरे में इधर-उधर कुछ ढूंढते काम के बहाने घुस आये थे। ऐसा लगा जैसे वनमाला और प्रियहरि के बीच चल रहे की दोनों की टोह ले रहे हों। यूं जैसे उन्हें इस काम पर विशेषतः लगाया गया हो ।

वनमाला से प्रियहरि ने धीमी आवाज में कहा - "देख रही हो न ! यहां बात संभव नहीं, फोन पर बात करना ।"

वनमाला बोली -"फोन तो घर में है नहीं, मैं कैसे बात करूंगी ?" इस भय से कि लोग फिर यह सब देखेंगे और चर्चा होगी वनमाला त्वरा में निकल कर चली गई ।

उसके जाने के बाद अनुराधा ने खबर दी कि वनमाला सुबह रो रही थी । वह परेशान थी । विपुल ने जो आधे दिन की छुट्टी लेकर चला गया था, अनुराधा को बताया था कि मैडम का बच्चा बाथरूम में नहाते, गाना गाते अचानक गिर कर बेहोश हो गया था - इस तरह कि बाद में वह घर वालों को पहचान भी नहीं रहा था ।

प्रियहरि का मन उससे पूछता रहा या अपने आप से पूछता रहा कि वनमाला के उद्‌विग्न होने का कारण क्या सचमुच घर की घटना ही रही होगी ? विपुल उसे छोड़कर श्राद्ध के बहाने छुट्टी लेकर क्यों चला गया था ? वनमाला टेबिल पर सिर झुकाये रोई तो क्यों ? अवश्य ही परेशानी कुछ और थी । मामला भावनात्मक था, लेकिन घर को लेकर या उससे संबंधों को लेकर ?- यह कहा नहीं जा सकता था ? इसे केवल तीन समझ सकते थे । एक तो खुद वनमाला, दूसरा प्रियहरि, और तीसरा वह विपुल जो दृश्यादृश्य रूप से बीच में सारा खेल खेल रहा था । अपने आप से प्रियहरि पूछता रहा कि वनमाला के मन में चल रहे तूफान, उसकी परेशानियों, मुसीबतों को वह वनमाला में प्रवेश कर क्यों नहीं देख पाता ? प्रियहरि का मन क्यों उसकी पीड़ा में झांक नहीं पाता जो उतनी ही गहरी होंगी जितनी प्रियहरि के खुद के अंदर छिपी है । वनमाला की सरलता और आत्मीय विश्वास के क्षणों में भी वह क्यों संदेह को पालता है ? कुछ तो वनमाला के अंदर ऐसा है, जो बाहर के सारे कलह और दिखाई पड़ रहे विग्रहों के बावजूद प्रियहरि को ही अपना समझता है। उसी के पास आने, आत्मीय एकांत में उससे राहत पाने के लिए उसे प्रेरित करता है । तब आखिर वह खुद इतना निष्ठुर क्यों है ?

कामकाजी जगह और भीड़ की निगाहों के बीच विपुल की इस आकांक्षा का पूरा होना मुश्किल था कि वनमाला को वह उस एकांत में ले जा सके जहां दोनों की कामनाएं तृप्त हो सकें । इधर रूठने-मनाने और खतो-किताबत के पिछले दिनों के दौर से गुजरी वनमाला में भी अनियंत्रित आकांक्षाएं रिसने लगी थीं। विपुल ने जो युक्ति सुझाई थी उससे वनमाला के लिए एक तीर से ही दो शिकार करना संभव था । सितम्बर के अंतिम

सप्ताह की शुरुआत थी। अपनी आत्मीय मुद्रा से उस रोज वनमाला प्रियहरि के पास जा बैठी थी। उस दिन भी वनमाला ने भूमिका में शेष स्टॉफ की उससे ईर्ष्या और उनके द्वारा खुद को परेशा न किये जाने की शिकायत की ।

उसने प्रियहरि के पास खुद के आने पर और लोगों के झांक-झांक कर जाने और बहानों से जासूसी करने की दुहाई दी थी। फिर "कहूं या न कहूं, कहीं आप टाल न दे" का पशोपेश दर्शाती उसने अपनी बात प्रियहरि से कह दी थी । उसने अंततः प्रियहरि को इस बात के लिए राजी कर लिया था कि वह उसे बगैर किसी अधिकृत आमंत्रण के वडोदरा जाकर वर्कशाप में शामिल होने की पहल करने दे । प्रयास सफल हुआ तो स्वीकृति का आदेश वह भेज देगी अन्यथा छुट्टियों का आवेदन बाद में सौप देगी । वनमाला यह जानती थी कि वर्कशाप के नाम पर बाहर जाकर उसके लिए प्यार का खेल खुलकर खेलने और विपुल को तृप्त करने के पूरे अवसर थे । पीछा करती निगाहें वहां न होंगी । स्वीकृति की संभावना पर वनमाला को संदेह था लेकिन उसने कोशिश की और प्रियहरि को रिझा लिया । पिघल चुके प्रियहरि की तसल्ली के लिए उसने वादा किया कि संपर्क का अपना नंबर वह भेजेगी और उससे बातें करेगी ।

तीसरे दिन वनमाला के घर का कोई एक उसे रात की बस से वडोदरा छोड़ आया था । वनमाला का मोबाइल नंबर देने की पेशकश उसने वनमाला के भेजे गये धन्यवाद के साथ की थी । प्रियहरि ने संकोच से कम, नफरत से अधिक वनमाला का नंबर रखने से मना कर दिया था । उसके सामने वनमाला के यार का आवेदन पड़ा था । वह वनमाला से जा मिलने की गरज से छुट्टी ले अलस्सुबह रवाना हो चुका था । वहां सभी को यह बात मालूम हो चुकी थी। प्रियहरि के चित्त में विपुल और वनमाला के प्रेमपत्रों की उनमें उजागर योजनाओं और बातों की स्मृतियां कौंधती हुई उसे विचलित और विरक्त कर रही थीं । ऐसी अवस्था में प्रियहरि के जखमों पर मरहम लगाने अनुराधा आ बैठी थी ।

अनुराधा को अपनी भूल का अहसास हो गया था । वनमाला के प्रति उसमें भी संदेह और रोष था । उसे मोहरा बनाकर पिछले दिनों प्रियहरि के विरुद्व बिग बॉस की चाय-पार्टी में जो लज्जास्पद स्थिति बना दी गई थी उसकी भरपाई करती वह प्रियहरि का विश्वास जीतना चाहती थी । अपनी गलती कुबूल करती उसने सारा रहस्य उगल दिया था। उसने बताया कि वनमाला ने अपने मिस्टर से आप की बात वाली घटना के बाद स्टॉफ रूम में रो-रोकर उससे, उदयन से और अन्य लोगों से शिकायत की थी कि आप उसे बदनीयती से तंग करते हैं । अनुराधा ने बताया कि पिछले सालों से ही वनमाला आपसे नाराज है । वनमाला अक्सर शिकायत करती है कि निकटता के बावजूद उसकी उपेक्षा करके आपने औरों को तरजीह दी है। वनमाला इस बात से क्षुब्ध थी कि सारे कुछ के बावजूद उसकी इस उम्मीद को आपने तोड़ा कि आप उसे ही परीक्षा अधिकारी बनाएंगे और करीब रखेंगे ।

प्रियहरि का विश्वास जीतती अनुराधा अपनी बात जारी रखे थी । अनुराधा ने बताया कि उसने खुद इस बात की पहल की थी कि आपसे निजी ताल्लुकातों के मद्देनजर वनमाला आपके साथ बाहर किसी होटल मे या कहीं अन्यत्र एकांत में सारे गिले शिकवे कहकर सारी बातें साफ क्यों नहीं कर लेती ? लेकिन वनमाला राजी न हुई। अनुराधा का कहना था कि अगर शिकायत सचमुच ही थी तो आपसे, सरकार से, आपकी बीबी से बात कर एक बारगी दुश्मनी निकाल लेने की बात तक उसने वनमाला से कही थी । वनमाला ने वैसा भी नहीं किया । उसके मन में आखिर क्या था यह अनुराधा के अनुसार उसके खुद के लिए समझ पाना मुश्किल था ?

अनुराधा ने कहा - "एक तरफ तो वनमाला आपके पास बैठती है, बातें करती है और दूसरी तरफ बाहर जाकर कुछ भी बकती है और रोना रोती है । आगे यह भी कि वनमाला नाटक बहुत करती है । उसका व्यवहार किसी भी कि समझ से परे है । इसमें आपकी कोई गलती नहीं है । मैंने तो कभी नहीं देखा कि आपने उससे खराब व्यवहार किया है ।"

अनुराधा ने ही तब आगे रहस्योद्घाटन करते बताया -" उलटे मैने देखा है कि पिछले सालों में भी सुबह-सुबह क्रय समिति की बैठक में सत्यजित के न आने की अवस्था में मेरे सामने ही वनमाला ने आपसे

दुर्व्यवहार किया था। बुरा-भला तो खुद उसने आप से कहा और मुझे लेकर नलिनजी के यहां आपकी शिकायत करने चली गई थी । वहां पूछने पर मैंने नलिनजी से साफ कह दिया था कि बात कुछ थी ही नहीं । वनमाला व्यर्थ ही बिना कुछ कहे प्रियहरि पर नाराज हो रही थी ।"

अनुराधा ने कहा - "वनमाला नाटक बहुत करती है । उसका व्यवहार किसी भी कि समझ से परे है । इसमें आपकी कोई गलती नहीं है । मैंने अभी नहीं देखा कि आपने उससे कभी खराब व्यवहार किया हो ।" अनुराधा के अनुसार वनमाला को संदेह था कि उसे जानबूझकर अकेले बुलाया गया है । अनुराधा ने प्रियहरि से अंततः वही कहा जो मंजरी ने भी उससे कहा था - "आप खुद भी तो न जाने क्यों उसके सामने कमजोर पड़ जाते हैं । मैं अच्छी तरह जानती हूं कि वह आपका भावनात्मक शोषण कर रही है ।"

वह दिन अनुराधा के द्वारा वनमाला के चरित्र के इस तरह रहस्योघाटन का था। कुटिल वनमाला की चालाकियों की सारी तस्वीरें एक-एक कर प्रियहरि की स्मृतियों में तैर चली थीं। इस स्त्री पर अब विश्वास करने की कोई वजह उसके सामने नहीं थी। उसका मन वनमाला के प्रति वितृष्णाऔर नफरत से भर चला था। वह व्यर्थ ही वैसी बेईमान और बेवफा औरत के पीछे पागल हुआ भाग रहा था। वनमाला को सबक सिखाने प्रतिशोध की एक क्रूर आकांक्षा प्रियहरि के अंदर जन्म ले रही थी। वह सोच रहा था कि क्या वनमाला के सिवाय दुनिया की सारी स्त्रियां मर गई थीं जो वह उसे ही मन में बसाये बेतहाशा भागा जा रहा है ? वनमाला के अंदर का ईमान अब विचलित हो चला था इसमें उसे कोई संदेह नहीं रह गया था। अनुराधा की बातों ने प्रियहरि को दुविधा में डाल दिया था। उसे कुछ भी झूठ प्रतीत नहीं होता था। यह शाश्वत समस्या थी ? वह किस वनमाला पर विश्वास करे ? एक वह छबि थी जिसमें वनमाला अपनी नितांत गोपन निरीहता में उसके साथ बिल्कुल उसकी अपनी हुआ करती थी। दूसरी वह जिसे अनुराधा और दीगर साथी बाहर से तलाशकर उसके सामने ला खड़ा करते थे ?

पद्मिनी और हयवदन - हयवदन और पद्मिनी

क्या वनमाला महज उस सुन्दरी पद्मिनी का विस्तार ही न रही आई थी, जिसकी आकांक्षा पहले तो योग्यता, प्रतिष्ठा, बुद्धि, संस्कृति और सुन्दरता का साथ चाहती है और इन्हें हासिल कर चुकने के बाद अवसर मौजूं होते ही वहां झांकना शुरू कर देती है, जहां औरत का आदिम रूप कैद रहा आया है ? पद्मिनी और हयवदन - हयवदन और पद्मिनी। औरत का मनोविज्ञान भी क्या इसी सच के आसपास नहीं भटकता होता है ?

प्रियहरि सोच रहा था कि आदमी के चित्त को तो किसी ने वैश्या का चित्त कहा है लेकिन औरत का चित्त क्या हुआ करता है ? यह ठीक है कि औरत का स्वभाव एक के प्रति समर्पण का बतलाया जाता है , लेकिन वह एक क्या सचमुच ही एक हुआ करता है ? प्रियहरि यह मान भी ले कि पुरुष एक के साथ ही अनेक के लिये चित्त को हमेशा खुला रखता है तो स्त्री के साथ भी सच क्या यह नहीं था कि उसका ' एक ' भी सहूलियतों के साथ बदलकर केवल एक समय में एक के रवैये से अनेक हो जाता है। हां, सवाल सहूलियत का ही हुआ करता है। वह सहूलियत जो उसे आश्वस्त करा दे कि अब वह सुरक्षित है। अपनी सुरक्षा में उन जकड़नों से राहत के उपाय वह निकाल सकती है, जिनमें उसकी कल्पनाएं , आकांक्षाएं अब तक बंधी रही आई हैं। तब किशोरियों की स्वप्निल तन्द्रा में जाती स्त्री के वे निचले ओठ पुनः वैसे ही स्पंदित हो फुरकने लगते हैं, जैसे बंधन के पूर्व की कामनाओं में फुरकते ,मचलते किसी को अंतरस्थ कर लेने वे आतुर रहा करते थे। वैसा न होता तो स्त्री के साथ पर-पुरुषगमन के किस्से ही नहीं बनते।

उसे दीवान जरमनीदास के वृत्तान्तों में समाई महारानियों के किस्से याद आ रहे हैं। रजवाड़ों की वे भ्रमरियां, जो चुनिन्दा मर्दों से उनका सारा रस अपनी फुनकती जीभ से निचोड़ गहन गुफा की धधकती लालिमा में उन्हें झोंक जाया करती थीं। उसे पुराने फिल्मी जमाने की मशहूर उस महानृत्यांगना के किस्से याद आये जिसके बारे में मन्टो ने लिखा था कि उसकी भट्ठी की धधकती आग को बुझाने की तलब लिये करीब जाने

वाला हर पहलवान पानी मांगता खुद वहां से भाग खड़ा होता था। उसके सामने उस सुविख्यात चित्रकला निपुणा की तस्वीरें थीं, जिसके बारे में यह मशहूर था कि घर पहुंचे अतिथि पर दिल आते ही अनामंत्रित ही वह झटपट पारदर्शी वस्त्रों में अपनी काया की दूधिया नक्काशियों का जादू बिखेरती खुद ही टूट पड़ा करती थी।

प्रियहरि को यह आशंका होती कि क्या वनमाला में भी वह सोई महारानी अब जाग चली थी जिसे जगाने के लिये पहले-पहल उसने झकझोरा था ? तब वनमाला की रुचि का केन्द्र वह क्रिया शायद न थी जिसके सुख की तसल्ली का जिक्र वह यह कहकर किया करती थी कि " यह तो घर में ही मुझे भरपूर मिल जाता है। "

उस वक्त वनमाला की चाहत में उसकी चाहत में उस अभाव को भरने की कामना बलवती थी, जो बुद्धि, संस्कार , और कला की कोमलता से उसके उस तन और मन को सहलाए जो पाशविक यांत्रिक आघातों से जखमी होता तंग आ चुका था। अलग आस्वाद की इस चाहत को लिये ही प्रियहरि के साथ वनमाला जुड़ती चली गई थी।

लेकिन अब ? अब उसे हासिल करने के बाद अब वनमाला उसे समेटे ही शरीर की उस यात्रा पर पुनः लौटना चाहती थी , जहां उसे एक के बाद किसी और एक के साथ मिलकर नूतन आस्वाद मिल सके।

हां , वनमाला अब बारहवीं शताब्दी में सोमदेव के रचे ' कथा सरित्सागर ' के हयवदन के आसपास भटक रही थी। नायिका पद्मिनी की उस बदलती हुई रसाकांक्षा में वह विचरण करती हुई प्रतीत हो रही थी जहां उसके लिये बारी-बारी से दो सरिताओं में तैरने का सुख मिल सके। देवदत्त बना रहे और कपिल उसकी वक्ती जरूरत को पूरा करता रहे। म्यान एक , तलवारें दो।

कुटिलाक्ष का व्यंग्य वनमाला के लिये दूसरी नदी में जाने का सुविधा भरा बहाना था। वह सरे आम उसे चिढ़ाता -" एक अब पुराना पड़ चला है। बेचारी का काम न चले तो दूसरे की तलब होगी ही। कब तक एक से चिपकी रहेगी ? "

प्रियहरि से उसे बहकाने, बहलाने, लांछित करने विपुल और उसकी फौज जुटी ही थी। वनमाला के लिये प्रियहरि को मन में रखते भी मन से बाहर निकलने का पूरा सामान मौजूं था। वनमाला ने वही तो किया था। पद्मिनी, देवदत्त, कपिल। वनमाला, प्रियहरि, विपुल। कहानी मुकम्मल थी। हयवदन वहां मंचित हो रहा था।

क्या वनमाला महज उस सुन्दरी पद्मिनी का विस्तार ही न रही आई थी, जिसकी आकांक्षा पहले तो योग्यता, प्रतिष्ठा, बुद्धि, संस्कृति और सुन्दरता का साथ चाहती है और इन्हें हासिल कर चुकने के बाद अवसर मौजूं होते ही वहां झांकना शुरू कर देती है, जहां औरत का आदिम रूप कैद रहा आया है ? पद्मिनी और हयवदन - हयवदन और पद्मिनी। औरत का मनोविज्ञान भी क्या इसी सच के आसपास नहीं भटकता होता है ?

प्रियहरि सर पर हाथ धरे बैठा है। वह मुझे याद करता है। मैं पूछता हूं - क्या हुआ ?

" फिर वही " - वह कहता है। मैं ऊब चला हूं। चलो मुझे कहीं और चलो ।"

मैं कहता हूं - " मेरी परेशानियां क्या कम हैं जो तुम्हें साथ ले चलूं ? साथ ले भी चलूं तो तुम चुप कहां बैठोगे ?"

" वादा करता हूं। मैं अंदर छिपा रहूंगा। देखकर भी कुछ न देखूंगा। तुम्हारी परेशा नियां मैं समझता हूं और मेरी तुम। फर्क केवल यह है कि जहां तुम होते हो वहां यह प्रियहरि खो जाता है और जहां मैं होता हूं वहां मुझसे अलग एक तुम्हारी दुनिया होती है। क्यों न इन्हें साझा करते बांट लें ?"

प्रियहरि को जेब में छिपाये मैं चल पड़ा हूं।

****

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

3

गर्मी, तपिश, और ठंडी हवा के झोंके

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

There is no way escaping out. That queen captivated within the four walls of the conscious rushes to the hole and peeps out.

Gravitation is not responsible for people falling in love...How on earth are you ever going to explain in terms of chemistry and physics so important a biological phenomenon as first love? - Albert Einstein

Chastity: The most unnatural of the sexual perversions. ~Aldous Huxley, *Eyeless in Gaza*, 1936
Love ain't nothing but sex misspelled. ~Harlan Ellison

Love is not the dying moan of a distant violin - it's the triumphant twang of a bedspring. ~S.J. Perelman

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

हम दोनों के बीच गोल्डन ब्रिज ,सोने का पुल बनना शुरू हो जाता है. मै उसकी टांगो को अपनी टांगो के बीच से निकलकर उसे सीधा लिटा देता हूँ. अधबैठा होकर उसके स्तन के सिरे को अपने होटों में कैद कर लेता हूँ. वह बिस्तरे पर थोडा-सा उछलती है. उसकी कमर अकड़ कर बिस्तर मै एकाध इंच ऊपर उठ जाती है. मेरे दांतों का दबाव बढ़ता है, वह एक छोटी सी सुखद सिसकार भारती है. मेरे बालों को खीचकर मेरा सर ऊपर उठती है. मै झटके से उसके हाथ परे करके दूसरे स्तन को भी मै भीच लेता हूँ. अब वह जोर-जोर से हिल रही है. ....(१२५-२६)
पुल हिलता है . मै हिलता हूँ. वह हिलती है. सोना और तेजी से पिघलता है. छोटी लहरें बड़ी लहर का रूप धारण कर लेती हैं. मेरी लहर ऊंची उठ रही है. उधर से भी लहर आगे बढ़ रही है. पुल का बीच का हिस्सा टूट जाता है. दोनों विशाल लहरें आमने-सामने से आगे बढ़कर टकराती हैं , एक-दूसरे पर सवार होकर आगे-पीछे निकल जाती हैं. हम दोनों लहरों के पालने में सवार होकर तेज-तेज झूल रहे हैं.(१५३-५४)
नदी और सागर का मुंह आपस में जुड़ जाता है. उसे धीरे-धीरे नीचे करता हूँ. अब मैं उसमें प्रवेश कर गया हूँ. वह हिलती है. उसके नितम्बों को दोनों हाथों से नीचे दबाता हूँ. उसे हिलने से रोकता हूँ. (१५३-५४)
कमरे में आर्तनाद बढ़ गया है. मनुहार, मिन्नतें, धमकियाँ, कुछ भी कारगर नहीं हुआ.
मैं उसके अन्दर मोटा हो रहा हूँ. मोटा,और मोटा. लगता है बर्स्ट कर जाऊँगा. उसे पता चल जाता है की पुल टूटा की टूटा.
"नहीं, अभी नहीं प्लीज़.".............."नहीं, ओ गाड. मैं मर जाउंगी. प्लीज़ संतोष. मूव. हिलो न."
उसका जिस्म एकबारगी तड़पता है. मुंह से छोटी-छोटी सिस्कारियां निकली हैं. (२२२-२३) **- (मायापोत , स्वदेश दीपक)**

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

नाभिदेश निहितः सकम्पया शंकरस्य रुरुधे तया करः
तद्दुकूलमय चाभवत्स्वयं दुरमुछवसितनी विबंधनम् - कुमारसंभव / अष्टम सर्ग /०४

- जब शंकरजी अपने हाथ उनकी नाभि की ओर बढाते तब पार्वतीजी कांपते हुए उनका हाथ थाम लेतीं. पर न जाने कैसे इनकी सादी की गाँठ ढीली पडकर अपने आप खुल जाती.

क्लिष्टकेशविलुप्ताचंदनं व्यत्यार्पितनखं समत्सरम
तस्य तच्छिदुरमेखालागुणं पार्वतीरतमभून्न तृप्तये - कुमारसंभव / अष्टम सर्ग /८३
दोनों मानो दूसरे को हारने तुले हुए थे. इसलिए उमा और शंकरजी ने ऐसा सम्भोग किया कि दोनों के केश छितरा गए, चन्दन पुछ गया, नखचिन्ह भी इधर के उधर हो गए और पार्वतीजी की करधनी भी टूट गई. तब भी पार्वतीजी के साथ शंकरजी का जी नहीं भरा.

नीरा और मैं : ऐसा क्यों होता है ?

"Graze on my lips; and if those hills be dry, Stray lower, where the pleasant fountains lie."
(William Shakespeare)

उसकी भूरी आंखों में बिल्ली की चालाक चमक है। वह महानगरों के जीवनानुभवों से संपन्न है। उसकी सिधाई में भी चतुराई का रहस्य है। दोपहर बाद का समय तय हुआ। मैं सशंकित हूं। न जाने इसके अंदर क्या छिपा है ? वही जो मुझमें है ? या कुछ और ? भय होता है। लेकिन तब भी संभावना का संयोग मुझे उसकी खींचती आंखों में डुबा ले जाता है। मैं उसे आमंत्रित करता हूं।

न जाने क्यों ऐसा होता है। मन की बातों पर मैं इन दिनों अक्सर खीझता हूं। वह मुझे बरगलाता है। मैं विरक्त होता मन को यह समझाने की कोशिश करता हूं कि वह अपना भ्रम तोड़ दे। वह यह क्यों माने बैठा है कि किशोरियों से लेकर प्रौढ़ाओं तक को घायल कर जाने वाला जादू अब भी उसकी आंखों में बरकरार है। ऐसी आत्मसम्मोहकता क्यों ? यह आत्मरति ही तो उसके भटकाव का कारण है। क्यों वह बेचैन मृत्यु को आमंत्रित कर गले लगाए रखना चाहता है ? मेरी विरक्ति मन से खूंटा तुड़ाकर मुझे दूसरी ओर ले जाना चाहती है ,लेकिन यह क्या ? दूर भागते अचानक कुछ होता है जो फिर मन के विश्वास को हरा करता फिर मुझे वहीं लौटा बांध जाता है। जो हो रहा है वह मेरी समझ से और शायद मेरे नियंत्रण से भी परे है। मेरे साथ खेला जा रहा नियति का यह कैसा खेल है ?

कोई है जो मेरे घर के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। यह कौन है ? सांझ के धुंधलके में सामने एक अपरिचित खड़ा है। फिर दिखाई पड़ता है एक और चेहरा जो पीछे खड़ा है। यह खूबसूरत चेहरा मेरी उदास पीड़ा का है जिसे अचानक सामने पाकर दुख के सुख में खिलता मैं विमुग्धता में विस्मित हूं। मध्य वय की प्रौढ़ता में भी सुन्दर नक्काशियों मे संवारा गया गुलाबी चेहरा। बादामी भूरेपन में चमकती लुभाती दिलकश आंखों की पुतलियां। मेरे बदन को अपने में बांधता देखने का वही अंदाज़। मेरे शरीर के कटावों में सांचे की तरह समाकर एक हो जाने वाली उसकी छरहरी काया। नीरा मेरे सामने खड़ी है। यह कैसे हुआ ? अवश्य उसमें भी वही सारा कुछ रहा आया होगा जो मुझे उसकी यादों में रुलाता लगातार बेचैन करता रहा आया है। वही अफसोस, वही ठंडा गुस्सा, किसी तरह मनाकर लिपट पड़ने की वैसी ही धुंधुआती आग, तरह-तरह की जुगतों में समाधान का कल्पित संधान करता बेचैन चित्त - सारा कुछ ठीक वैसा ही। गुमसुम सकुचाता और मौन में अपनी भूरी आंखों से मुझसे अकथ वाणी में कुछ वैसा ही कहता जैसा मैं सुन रहा हूं ,यह प्यारा सा चेहरा प्यारी नीरा का है। मैं ठगा सा रह जाता हूं। क्या यह संभव हो सकता है ? अपनी समग्र चेतना से एकाग्र पिछले सप्ताहों में निरंतर उस चेतना में समाया टैलीपैथिक संदेश मैं खुद में सांगोपांग समायी उस प्यारी मूरत में भरता रहा हूं। यह संदेश कि वह उस पीड़ा को गहराई में डूब महसूस करे जो प्यार की खीझ को अपना अपमान मान बैठ अपने क्रोध भरे उग्र तिरस्कार से उसने मुझे पहंचाई है। समझना भ्रम हो सकता है, लेकिन तथ्य यह है कि इस वक्त वह प्यारी मूरत मेरे आंगन में सकुचाई-सी खड़ी है। स्मृतियों की कातरता मेंभीगी मेरी आंखें अरसे के अंतराल के बाद झुकी उन खूबसूरत पलकों से टकराती हैं जिनमें छिपा अफसोस मुझसे कह रहा है कि तुम इतना भी नहीं समझते। इतना बुरा मानने की क्या ज़रूरत थी ?

साथ आए आगंतुक को मैं नहीं पहचानता। वह अब मेरे आमंत्रण पर अंदर बैठा हैं। वह बताता है कि मैडम बीमा-सहायक हैं और वह उनका मार्गदर्शक अधिकारी है। वह मुझे अपनी योजनाएं समझाता व्यस्त है। मेरी आंखें हैं किएक ओर गुमसुम बैठी अपनी संचित कामना की छबि की आंखों में चोरी-चोरी डूबती संवाद कर रही हैं। मैं उन आंखों में समाए मौन से कह रहा हूं - आज तुम्हें देखकर अच्छा लग रहा है। बहाने की

ज़रूरत क्या थी ? नाराज़ तो तुम थीं, मैं नहीं। मेरा मन तो तुम रूठीं को मनाने, फिर से देखने तरस रहा था। तुम अकेले नही आ सकती थीं क्या ?

सामने बोलता हुआ व्यवधान है इसलिए मौन की मुखरता संभव नहीं है। केवल प्रिया नीरा और मेरी निगाहें हैं, जो बार-बार टकरातीं, एक-दूसरे के गम को पुचकारतीं अफसोस और शर्मिन्दगी का इकरार करतीं प्यार में लिपटी पड़ रही हैं। आलमारियों में समाई न पड़तीं पुस्तकों के अंबार से वह और उसका बीमा-साथी दोनों आते ही विमुग्धता में चकित हो चले थे। उसपर इजाफा करती नीरा ने साथ के व्यक्ति से कहा था -

" आप को मालूम है ? सर हैं तो हिन्दी के लेखक-प्रोफेसर, लेकिन इनमें वह बात हैं, जो साधरण किसी के बस की बात नहीं।"

मेरा मन सुन दूसरे आगंतुक को रहा है लेकिन बातें नीरा से कर रहा है। मुखर आगंतुक को रोकता मैं उठता हूं। कहता हूं - ज़रा ठहरिये। हमारी बातों के दरम्यान ये बोर होंगी। मैं इन्हें कुछ पढ़ने को दे देता हूं।"

अंगरेज़ी की किसी एक लोकप्रिय पत्रिका का वह अंक जिसमें समूचे भारत के शिक्षविदों की टिप्पणियों के साथ मेरी अनेक टिप्पणियों को हाइलाइट करके छापा गया है और दूसरी वह जिसमें मेरी कहानी छपी है मैं नीरा के हाथों में थमा देता हूं। प्रशंसा भरी निगाहें कभी मैगजीन के पन्नों पर जाती है कभी मेरी निगाहों से टकराती हैं। दूसरी पत्रिका को पलटते अचानक वह पृष्ठ सामने खुलता है जिसपर एक मादरजात नंगी जवान यूरोपियन सुंदरी की जांघ पर वैसी ही अवस्था वाली हबसी तन्वंगी सवार दिखाई पड़ रही है। दोनों की नंगी जंघाओं पर लहराते मुलायम बालों के बीच दरकी हुई बारीक फांकें हैं जो हौले से उभरती जिह्वाग्र के साथ मुस्कुरा रही हैं। दोनों सुन्दरियों की दृष्टियां यूं उठी हैं कि पन्ना खोलते ही सीधे उनकी अपनी दृष्टियों से नज़रें उस पन्ने पर फिरती जा टकराएं। नीरा और मेरी दो जोड़ी आंखें उन सुन्दरियों की आंखों से टकरातीं उस विशिष्ट को देखती हैं, जिसे दिखातीं वे दो हम दो से पूछ रही थीं -

" कम आन। लाइक्ड इट ना।"

सकुचाते मैं नीरा की हथेलियों पर थमी पत्रिका के पन्ने फौरन पलटता कहता हूं - "सॉरी, न जाने कहां से यह पन्ना सामने आ पड़ा ?"

नीरा ने क्या समझा मुझे नहीं मालूम। धीरे से बोली - आप के पास बाद में फुरसत से आकर बैठूंगी। तब आप जो चाहेगे दे दूंगी। अभी मुझे मेरा टारगेट मारे जा रहा है। मुझे मालूम है। आप पर मेरा अधिकार है। आप इनवेस्टमेन्ट के फार्म पर आंख मूंद मेरे नाम पर दस्तखत कर दीजिएगा बस। उसका बीमा साथी दूर बैठा है। वह सारा कुछ वह न देख और समझ सका जिसे हमने बाहर और अंदर की आंख से देखा था।

विभाग के लंबे गलियारे में चलते-फिरते छरहरी काया वाली वह खूबसूरत मूरत आंखों की पहली मुठभेड़ में ही सीधे दिल में उतर गई थी। फिर एक दिन किसी और का कमरा था - हम अपरिचित। लेकिन दोनों तरफ यूं था जैसे बरसों के जानते एक-दूसरे में उतर पड़ने आतुर हों। फिर लंबे गलियारे में विमुग्ध भाव से एक-दूसरे के चेहरे को निहारतीं आंखों की किंकर्तव्यविमूढ़ टकराहट, जिनमें दिलों का संकोच यह लिखता होता कि 'पहल कैसे की जाए। तब वह एक दिन आया जब पार्किन्ग-कैम्पस में अपनी-अपनी गाड़ियों की ओर बढ़ते हमारे"हम' से उस'का निकलना हुआ जो नीरा थी। अब नीरा उससे मुखातिब थी जो प्रेम था। उसने मुझसे कहा कि उसे अपना सेमिनार-पेपर तैयार करना है और समय कम है। वह मुझसे विश्वासपूर्वक मदद मांग रही थी।

मैने कहा था कि वह जिस विषय-विभाग की है उसका अधिकृत विद्वान मैं नही हूं। टालने के लिये नहीं, विनम्रता के भाव से मैने कहा था कि यहां तो एक से एक जानकार हैं क्यों नही वह उनकी मदद लेती ?

उसने जवाब दिया था कि मैं जानती हूं कि आप में क्या है ? आप के सिवा किसी के लिये यह संभव नहीं कि वह इतनी जल्दी यह काम करा सके। फिर यह भी कि मैं आप से ही यह काम कराना चाहती हूं। उसने विषय-प्रसंग बताया। कहा कि सब कहते हैं कि तुम्हें सब से कठिन विषय मिला है।

मैने सुना। हंसते हुए नीरा से कहा कि यह तो सब से सरल विषय है। वह जब जहां चाहे मेरे साथ बैठने तैयार थी। मैने आगाह किया कि इसके लिये उसे मेरे साथ घंटों बैठना होगा।

नीरा ने पूछा - मैं आप के घर आ जाऊंगी और जितनी देर हो साथ बैठूंगी।

उसकी भूरी आंखों में बिल्ली की चालाक चमक है। वह महानगरों के जीवनानुभवों से संपन्न है। उसकी सिधाई में भी चतुराई का रहस्य है। दोपहर बाद का समय तय हुआ। मैं सशंकित हूं। न जाने इसके अंदर क्या छिपा है ? वही जो मुझमें है ? या कुछ और ? भय होता है। लेकिन तब भी संभावना का संयोग मुझे उसकी खींचती आंखों में डुबा ले जाता है। मैं उसे आमंत्रित करता हूं।

नीरा आई। वह वहां साथ रही जहां मेरा एकांत था। हम दोनों की निगाहें टकराईं। दोनों एक दूसरे को पल भर सर से पांव तक निहारते रहे। मै कम्प्यूटर पर था । आंखों में निष्पलक उलझी आंखों के साथ उसके मुस्कुराते ओठों में एक सार्थक मुस्कुराहट तैर रही थी। उसके होठों से अचानक शब्द फूटे -

" आप मुझे छोटी न समझिये। मैं और लड़कियों के समान छोटी थोड़ी हूं, बहुत सीनियर हूं। मेरी भी अब उम्र हो चली है।"

यह दूसरी थी जिसने प्रसंग-विहीनता में अपने तईं ही यह खुलासा करने की पहल की थी कि वह जितने की समझी जा रही होगी उससे ज्यादा उम्र की खायी-पियी अनुभव संपन्न है। ऐसी ही बात इससे पहले श्रुति ने कही थी। यह अब मेरे लिये जिज्ञासा का विषय बन चला है कि बगैर पूछे ही दोस्ताना मुलाकात में किसी औरत के वैसा कहन का क्या अर्थ हो सकता है और उसके पीछे कौन सा मनोविज्ञान काम कर रहा होता है ?

नीरा ने बताया कि उसने बहुत पहले अमुक साल में पी-जी की डिग्री हासिल कर ली थी। उठकर दोस्ती का सम्मान दिखाते नीरा की कलाई थाम मैने उसे अपने करीब ला बिठाया।

मैने कहा -" मैने कब वैसा कहा ? यह सफाई तो तुम ही दे रही हो। अपने मुआफिक जानकर ही तो मेरी आंखें पहली ही मुलाकात में तुम्हारी आंखों में फंसकर लट्टू हो गई थीं।"

हम दोनों मौज में इन बातों के चलते हंस पड़े थे। गपशप करती नीरा देर तक बताती रही कि अपनी शादी के बाद वह कहां-कहां रही आई, अलग-अलग जगहों पर उसने क्या देखा, उसे कैसा लगा।

छेड़छाड़ करते हम मौज में उस तरह उलझते चले गए थे कि हिलते-डुलते जिस्मों के धराशा यी हो जाने की नौबत आ चली थी। संभलते हुए मैने ही यह कहने की पहल की कि चलो पहले तुम्हारे काम पर लगा जाये जिसे विभाग में सौपने की जल्दी मची है अन्यथा तुम ही कहोगी कि मैने काम तो किया नहीं और कामेतर काम में अपने साथ तुम्हें भी निबटा डाला।

" वैसा क्यों कहते हैं ? मैं वैसी शिकायत करने वाली नहीं हूं "-नीरा बोली।

उसके टापिक पर धड़ाधड़ मेरी वाणी मुखरित हो चली थी। यूं कि उच्चरित शब्द उसकी पहुंच से बाहर न चले जाएं ताबड़तोड़ कलम और कागज पर झपटती उसने शब्दों को घसीटना शुरू कर दिया था।

"आह आप का तो बोलना ही काफी है- बिलकुल परफैक्ट। वंडरफुल।आप बस बोलते जाइये। मैं लिखती चलती हूं" - उसने कहा था।

नीरा की परम प्रफुल्लित वाणी चमत्कार के सम्मोहन में डूबी मुग्ध भाव से मुझपर प्रशं सा बरसा रही थी और उसकी टांगें मेरी टांगों से चिपकतीं मुझे समूचा का समूचा लील जाने की व्यग्रता में थीं। कहीं मुझे भ्रम तो नहीं हो रहा है ? अनर्थ को टालने मैं हटकर सोफे पर आ बैठा था। वहां भी नीरा निसंकोच पास आ बैठी थी। व्यक्तिगत और उसके काम का विषय दोनों साथ-साथ चलते रहे, लेकिन खास यह कि परस्पर मुग्धता की चासनी में सारी बातें डूबतीं और उतराती रही थीं। यूं ही परम निर्बाध एकान्त में हम खोए रहे थे। शाम का धुंधलका कब गहरा आया इसका पता ही न चला। नीरा और मैं दोनों ही की तबीयत मचलने लगी थी। दोनों साथ मिलकर रस्सी की बुनावट की शक्ल में आते हुए ओठों और जीभों की माप में तल्लीन थे तभी किसी एक मित्र का फोन आया कि वे पहुंच रहे हैं। संदेश था कि पहले हम साथ चहल-कदमी करेंगे और फिर बैठकर एन्जाय करेंगे। मैं नहीं चाहता था कि उतनी शाम गए मेरे अलग कमरे में नीरा को मेरे साथ कोई देखे। दूसरे

दिन सुबह विभाग में ही जगह ढूंढकर सब से अलग होकर कहीं साथ-साथ बैठने की बात कहते मैने नीरा को रुखसत किया था।

मेरे वैसे अचानक बदल आए मूड से नीरा की निगाहें मुझे हैरत से देख रही थीं। इससे पहले कि रवाना होती वह अपनी गाड़ी स्टार्ट करती, मेरे मित्र आ पहुंचे थे। झेंप छिपाते मैने उन्हें बहलाया था। नीरा चली गई।

रात भर उसकी काया मेरी आंखों मे बसी रही थी। दूसरे दिन सुबह से ही मैं इंतज़ार में था कि बस अब आएगी ही, आता ही होगी। मेरा दिल आगे की भूमिका के लिए बेचैनी मे तड़प रहा था। काम के बहाने काम से बाहर के काम की आत्मीय बातें कल खूब हुई थीं। वह तो सात बजे तक बैठने तैयार थी। हम दोनों निर्विघ्न थे। मेरा भीरु मन ही था जो सांझ होता जान घबराने लगा था। ग्यारह बजे मैं अपने कमरे से निकला तो दूर खड़ी नीरा से मेरी आंखों का टकराव हुआ। मैं नाराज़ था कि अब तक वह मुझसे क्यों नहीं मिली थी ? उस तक पहुंचते मैने देखा कि वह सामने किसी और कमरे में घुस चली है।उसका वैसा करना वादे के बरखिलाफ मुझे टालने की चालाकी जैसा प्रतीत हुआ। उतना काफी था। मैने तभी तय किया कि अब उससे बात ही न करूंगा।

दोपहर अचानक मेरे मोबाइल पर उसका नंबर बजा। वह पूछ रही थी कि मैं आ जाऊं। ? मेरा गुस्सा बिना किसी लिहाज फूट पड़ा। मैने जवाब दिया कि तुम्हारा खयाल करते मैं रात ठीक से सोया नहीं। तुम्हारे विषय पर सोचता और नोट्स तैयार करता मैने बेताबी से सुबह तुमसे मुलाकात और बात की प्रतीक्षा की पर तुम थीं कि मुझसे मिलना तो दूर रहा, मुझे देखकर भी अवाइड करने सामने किसी और के कमरे में जा घुसीं।

नीरा सफाई देती रही कि अपनी क्लास के बाद वह मुझसे मिलना चाहती थी। लेकिन क्लास में व्यस्त देखकर डिस्टर्ब करने की हिम्मत वह नहीं कर सकी। गलियारे में भी वह मेरी प्रतीक्षा में ही रुकी थी कि सामने कमरे में बैठे सर ने उसे आवाज़ देकर अंदर बुला लिया।

मेरे उचाट मन को अब कुछ भी सुनना गवारा न था। मैने उससे दो टूक कह दिया कि मैने उसकी उतनी परवाह की और उसे मेरा कुछ भी खयाल न आया। वह कतई अब न आए। मुझ उसके काम में कोई दिलचस्पी नहीं रह गई है। हां, जितनी मिहनत मैने कर ली है उसे वह चाहे तो कल मुझसे ले ले और अपने किसी और पसंदीदा टीचर का सहारा ले ले।

टाइल्स की दूकान पर

" नो यू कैन नाट टाक टु नीरा। शी वोन्ट टाक टु यू। एंड रिमेम्बर स्ट्रिक्टली दैट नेवर ट्राइ टु कान्टैक्ट हर इन एनी वे। अन्डरस्टैन्ड **?"-** नीरा के शब्दों में निहायत तटस्थ निर्देश था। उसमें अपमान का विषाद गहरे पैठ चुका था। प्यार में स्वतः समर्पित हो चले रूप भरे यौवन का तिरस्कार उसे आहत किये था।

यह कोई खास बात नहीं है तब भी कुछ खास तो है। दोपहर बाद का वाकया है। मै अपने युवा कंस्ट्रक्शन एजेन्ट के साथ टाइल्स चुनने के लिये शहर के एक सिरे पर विक्रेता की दूकान पर हूं। आश्चर्य कि नीरा को वहां पहले से मौजूद पाता हूं। उसके साथ नौकरानीनुमा एक लड़की है। सजी कतारों पर निगाह दौड़ाती नीरा रंग-बिरंगी टाइल्स का मुआयना कर रही है कि किसे पसंद करे ? किसी नए ग्राहक के आगमन की आहट से उसकी निगाहें उत्सुकता में पलटती हैं। मुझसे आंखें टकराती हैं। मन मचलता है लेकिन उसकी पहल की उम्मीद में जानबूझकर मैं तटस्थता ओढ़ लेता हूं। उसकी आंखें भी वैसे ही " मुझे भी परवाह नहीं " की मुद्रा में देखती भी मुझे अनदेखा कर जाती है। तभी मुझसे वय में काफी कम अंतर का एक जोड़ा आता है। नीरा की उस तरह उपस्थिति से असहज हो उठा मेरा मन नीरा को चिढ़ाने के बहाने ही इस नए आए जोड़े की तरफ रुख कर लेता है। इसका पति और मेरा एजेन्ट मोल-तोल और चुनाव में लगे हैं लेकिन उसी प्रसंग में नवागंतुक उस पति की बीबी और मेरे बीच आंखों का टकराव जारी होता उसकी पसंद , उसके घर, शिक्षा, ठिकाने वगैरह से

गुजरता पन्द्रह मिनट में ही यहां तक पहुंच गया है कि दोनों के बीच आंखों की भाषा ने दिलों में लगाव पैदा करते बांध लिया है। हम एक-दूसरे के घरों का ठिकाना बयां करते " कभी आइये न " और " आप पहले आइये न " तक यात्रा कर चुके हैं। बातों का सिलसिला इस तरह जारी है जैसे बाकी रह गई ख़लिश को भरने अपने श्रीमान के साथ स्कूटर पर आसीन हो चुकी उस परिपक्व रमणी के फड़कते ओंठ बातों में रह गए को पूरा करने उसी मुद्रा में उसका पीछा करते मेरे ओठों को अपने साथ बांध ले जाना चाहते हैं। स्कूटर फड़फड़ाकर चल पड़ता है। उसके हाथों के साथ मेरे भी हाथ " हाय , बाय " करते हिल रहे हैं। चलते-चलते भी हम एक-दूसरे को छोड़ने की जगह चिपका लेने की मुद्रा में पलट-पलट जाती निगाहों में बसे होते हैं।

मालूम है कि वह महज संयोग है, लेकिन उससे क्या फर्क पड़ता है ? एक, दो, चार, आठ रोज के लिये तो जिन्दादिली के आनंद का टानिक स्मृतियों ने समेट लिया है। उस रमणी का चित्त भी इस तसल्ली से प्रसन्न रहेगा और मेरा भी कि बांधने और बंधने की कुव्वत अभी बरकरार है। नीरा अनमनी है। न देखती भी वह सारा कुछ देख रही थी। जैसे टाइल्स के सारे नमूने खंगाल कर निराश हो चुकी हो, दूकानदार से यह कहती वह निकल जाती है कि बाद में फिर कभी वह आकर और स्टाक तसल्ली से देखेगी, अभी उसे जल्दी है।

घर लौटा तो मुझे होश आया। दूकान वाली वह अपरिचित आगन्तुका तो साथ के वे चंद पल छोड़कर चली गई। स्मृतियां रही आएंगी, पर वह तो नहीं आएगी। अब नीरा मुझो फिर याद आने लगी थी। उसकी आंखों की नाराजगी भरी शिकायत स्वाभाविक थी। मुझे क्या जरूरत थी कि वैसे संयोग में उस दिन मैं उसे उपेक्षित कर चला था ? मेरे मन मे अफसोस जागा। शायद मेरी क्रूर-बेरुखी नीरा को अपमानित करने वाली थी। शायद सचमुच सुबह मजबूरी रही हो। उसके और भी पेपर्स थे और शायद औरों से भी उसे सहायता की अपेक्षा थी।

मैंने तुरन्त नीरा को रिंग किया । उसने रेस्पान्ड नहीं किया । मैंने संदेश भेजा - " सारी प्लीज़ ",लेकिन व्यर्थ। मैंने फिर कोशिश की। अब सन्देश भेजा कि उसका लेख बहुत अच्छा तैयार कर दिया है। वह चाहे तो कलेक्ट कर ले। यह भी व्यर्थ।

नीरा और मेरी आँखें शिकायत -भरी मायूसी में रोज़-ब-रोज़ टकरातीं ज़रूर, लेकिन गुस्से भरी उदासी के मौन में सिले होठों के साथ। तब किसी एक दिन अपनी एक सुन्दरी शिष्या के जरिए नीरा को अपने पास बुला उसके नाम से तैयार लेख सौंपते मैंने खुद ही सुलह की पहल की। तब भी मुझे मायूस करती नीरा की जलती आंखों में मैंने केवल एक मौन पाया था। मुझसे हुआ उसका एक अपमान उसकी ओर से मेरे लिए लगातार अपमानों की कड़ी बनाता मुझमे गहरी पीड़ा का अवसाद रच रहा था। उस रोज़ शाम मैंने नीरा को रिंग किया। उम्मीद थी कि सारा कुछ भूल वह मेरी मायूसी पर पसीजेगी।

- " मे आई टाक टु नीरा प्लीज़।"

" नो यू कैन नाट टाक टु नीरा। शी वोन्ट टाक टु यू। एंड रिमेम्बर स्ट्रिक्टली दैट नेवर ट्राई टु कान्टैक्ट हर इन एनी वे। अन्डरस्टैन्ड ?"- नीरा के शब्दों में निहायत तटस्थ निर्देश था। उसमें अपमान का विषाद गहरे पैठ चुका था। प्यार में स्वतः समर्पित हो चले रूप भरे यौवन का तिरस्कार उसे आहत किये था। उसकी दृढ़ता में प्रतिशोधात्मक तिरस्कार का निश्चय था। वह वैसा करने में सफल हुई।

मेरा इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता था ? अपमान का गहरा अवसाद लिये मैंने तय कर लिया था कि उससे मेरा अब संभवना में भी कोई संबंध न रहेगा। बावजूद इसके दिल कहे जाता कि बाहर के सच को दर-किनार कर अंदर का सच शायद कभी सामने आएगा ज़रूर ।

वैसा ही हुआ है। क्यों और कैसे ? क्या यह टैलीपैथी का जादू है। मनस्तरंगों का संक्रमण भी होता है ? एक-दो नहीं चार-छः बार नीरा की आत्मीयता की दुहाई देती उसकी किसी ट्यूशन छात्रा के काल मुझे अचंभे में डालते आते रहे थे कि मैं बीमे की किसी पालिसी में दिलपस्पी दिखाऊँ। अविश्वास, आशंका और भय में चाहते हुए भी एक-दूसरे से सीधे न मैं नीरा से बात कर सका और न वह मुझसे।

वह सामने आई और आती रही है। बार-बार संदेशा आता रहा कि नीरा मैडम ने कहा है कि आप उनको और वो आप को बहुत मानते हैं। कहना कि उन्हें याद करके दस्तखत भर कर दें शेष सारा वे खुद भर लेंगी। बार बार नीरा ने खुद भी अनुरोध किया लेकिन मैने उसका सारा कहा पिघलते हुए भी अनसुना कर दिया। मैं सोचता रहा कि क्या वह महज बीमे पर इनवेस्टमेन्ट की उम्मीद भर है जिसने नीरा को प्रत्यक्ष और परोक्ष संपर्क करते मुझपर अधिकार की चमक से भर दिया है **?** वैसा न हो तो भी मुझे लगता है कि अपने जादू के हुनर से काम निकाल जाने का स्वार्थ ही वहां प्रबल होता है। प्यार की मौज भी और मर्द को गुलाम बना सकने का अहं भरा गौरव भी। आप को लुभाकर विजेता का अहसास लिये ये चली जाती हैं। तब भी मन नहीं मानता कि नीरा केवल ऐसी ही थी। मन कहता है कि जहां पारस्परिक भावनाओं का अदृश्य संक्रमण एक से दूसरे के हृदय को तरंगित करता प्रेषक उत्स की छाया से प्रेषित को अनिवार्यतः आच्छन्न करता तन्मय अन्यमनस्कता में डुबा जाता हो वहां सारे के बावजूद क...कु...कु...कु...च्छ और भी होता अवश्य है। उस कुछ को अभिधान दे पाना क-क-क-क-ठिन्न है।

हमारी कामनाओं की अपनी जगह थी लेकिन नीरा को लेकर मेरी दूसरी आशंका लगभग सिद्ध हो चली थी। बीमे के काम के बहाने एक लंबी रकम मेरी तरफ से उसके शिकंजे में जा पड़ी थी। शायद वह दोस्ती का अधिकार था जिसके बहाने बड़ी चालाकी से नीरा ने उसे अपने आंचल में गांठ मारकर रख लिया था। उसका बहुत-कुछ भाग वापस पा सकने के यत्न में मुझे बहुत संकोच और थोड़ी बेशर्मी का सहारा लेना ही पड़ा था। दिल चीखता रहा -"हाय नीरा ! वाइ डिड यू स्पोइल दोज़ टाइज़ आफ आवर हार्ट्स **?** आई नेवर एक्सपेक्टेड यू टु बी लाइक दैट।"

नेहा

उंगलियों को तराश दूं फिर भी
आदतन तेरा नाम लिक्खेंगी - परवीन शकिर

नेहा ठीक ही पूछती है। नेहा के रहते भी वह छलना ही उसे क्यों याद आती है **?**
सुंदरी नेहा कंधों पर कोण बनाती कुहनियां पीछे ताने अंगड़ाई ले रही थी। ठीक वैसी ही नुकीली अंगड़ाई जैसी पहले-पहल की मुलाकात के दिनों में नेहा मेरी आंखों में और दिलो-दिमाग में ठेल चली थी। उसकी वैसी अंगड़ाई हमलावर हुआ करती है।

मुझे सुन्दरी नेहा का खयाल आया। नीरा के अंतिम चक्कर से ठीक एक दिन पहले तक कई बार उसके फोन इन दिनों आते रहे हैं। एक दिन वह आधे घंटे बैठ गई है। उसका कुछ काम है। नेहा को मालूम है कि अक्षर-जगत का हर वह काम मेरे लिये चुटकियों का है, जो किसी भी गैऱ के लिये असंभव हुआ करता है। मैने शर्त रख दी कि मुझे उस नेहा से सरोकार नहीं, जो महज अपने काम से मुझे बिठाए खीझ से भर खिसक जाए। मैं उस बिन्दास गुड़िया से मिलना चाहूंगा जो मेरी दोस्त रही आई है और मुझसे खुलकर चुहल करती खेलती रही है। उसे मैने अच्छी तरह सोचकर और फुरसत निकालकर समय से बे-पाबंद दिन भर साथ रहने की शर्त रखकर किसी छुट्टी में पहले से समय लेते हुए आने को कहा। दो दिन बाद ही अपना काम लेकर मेरे सामने हाजिर हो गई।

" आजकल आप मुझसे नाराज़ रहते हैं" - नेहा बोली।

" क्यों **?**"

" पहले तो आप जब-तब बिन्दास मुझे फोन कर लेते थे। खूब बातें अपन में होती थीं। लेकिन अब तो आप ने फोन तक करना छोड़ दिया है।"

" खुद से भी तो पूछो। तुम मुझे कितना याद करती हो **?** अब रही मेरी बात । तो सोचता हूं कि क्या मालूम कि कहीं मेरा फोन करना तुम्हें बुरा न लगे **?**"

" चलिये जाइये। मैने तो हमेशा आप को याद किया है। हमेशा मैं ही तो पहल करती हूं। हर मौके पर संदेश भेजती विश करती हूं।"

पिछली बार वह ऐन होली जलने के दिन आ धमकी थी। मैने पूछा था कि उसे रंग के माहौल का डर नहीं लगा ? उसने कहा था कि उस दिन ईद भी तो थी इसलिए कोई चिन्ता न थी। कोई रंग डाल भी देता तो क्या हो जाता ? "

“माइ डियर बेबी अगर वैसा ही था तो रंग के दिन मेरे पास आ जातीं। फुरसत ही फुरसत थी। तब मुझे तुम्हारे और तुम्हें मेरे बदन पर रंग मलते खेलते रहने का बिन्दास मज़ा आ जाता।“- मैनें कहा था.

" अूं-अूं-अूं , आप भी न। कहते भर हैं। यूं तो याद करते नहीं और अब सामने पड़ गई तो ऐसा कह रहे हैं।"

इन दिनों न जाने क्यों नेहा का काम करते मुझे ऊब होती थी इसीलिये मैं प्रायः उसे ठेठ टरकाऊ व्यवहार से टालता भी था। लेकिन उसके लिये कोई सहारा और न था। वह जानती थी कि ना-ना करते भी मैं मान जाऊँगा और वह अपना काम करा लेगी। मैं उससे कहता हूं -

" यार तुम्हारे साथ काम करने में बोरियत हो जाती है। तुम्हारे पास अपना कुछ होता ही नहीं। साथ का आदमी यदि खुद भी दिमागदार हो तो बोलते, बताते, डिस्कस करते काम करने में मज़ा आता है।"

नेहा से मैं कहता हूं कि क्यों नही वह अपने काम की जगह पर ही साथियों से नहीं पूछती। आखिर वहां भी दिमागवाले हैं। मैं नाम सुझाता हूं जिनमें वनमाला का नाम भी शामिल है।

नेहा का कहना है कि वहां किसी में इतना दिमाग नहीं, जितना आप में है। वहां भी सब आप को ही तो मानते थे। इस बात पर नेहा का मुख बिगड़ने लगता है कि अब तो वनमाला से नेहा की पटने लगी है। उसकी मदद वह क्यों नहीं लेती ?

"सब घमंडी हैं। उसके तो और भी भाव बढ़े हैं। वह क्या मदद करेगी ? न जाने कैसे आप को ही वह मानती थी।"

नेहा को आभास हो जाता है कि मेरे जेहन में बसी वनमाला की स्मृतियां मुझे उससे विमुख कर रही हैं।

" हां भई ठीक है। मैं उनके सामने कहां लगती हूं ? आप के साथ के काबिल तो और लोग ही हैं। वनमाला के गुण मैं कहां से लाऊँ जो आप मुझे चाहेंगे। आप की चहेतियां तो वे ही हैं।"

सचमुच मेरा मन यूं नेहा को उलझाकर अपनी प्रिया वनमाला, सुंदरी सन्यासिन वल्लरी, और सरला सखी नीलांजना के बारे में अधिकाधिक खोज-खबर लेना और पहुंचाना चाहता है। नेहा की बेरुख उदासी , उसकी चिढ़, उसकी सतर्कता मेरी नीयत पर लगाम लगाते हैं। सांत्वना देता नेहा को मैं बहलाता हूं। बातों का रुख मैं दूसरी दिशा में मोड़ देता हूं। उसकी मार्ग-दर्शिका के बारे में पूछता हूं। कहता हूं कि वे जो उससे चाहती हैं उसे ठीक-ठीक समझ पाना मेरे लिये कभी संभव नहीं होगा। बेहतर हो कि वह मुझसे कराया जा रहे काम के बारे में अपनी उन मार्ग-दर्शिका को इसी वक्त फोन पर बता जाए और पूछे कि वह ठीक है या नहीं ? अन्यथा मेरा किया अकारथ जाएगा और नेहा को खुद को भी तसल्ली न हो पाएगी। नेहा के पास कोई चारा नहीं। मेरे अलावा वह सभी से डरती है। उसकी ज़िद है कि जैसा भी हो मैं करा दूं। जो होना होगा उसे वह देखती रहेगी।

उस तरह बातें चलती रहीं और मैं नेहा का काम भी करता रहा। इस बीच मूड तो नेहा को बेचैन बांहों में बांधने का था, लेकिन उसके काम की ओर से मैं सजग था। वह अपने आप में डिप्रेस्ड और अन्यमनस्क थी । इसी कारण वैसे बंधन का सुख उठाने वाला मूड उसमें जगाना मेरे लिये कठिन हो रहा था। मुझे इस बात का खूब अहसास था कि उसका काम किये बगैर अगर समय बिता दिया तो इस गुड़िया को मलाल होगा कि अपना मतलब निकालकर छुट्टी कर दी। तब भी काम पूरा करते उसे मूड में लाने कभी गालों, कभी बालों, कभी हथेली और उंगलियों, कभी थाप देता उसकी सुपुष्ट जंघाओं से मैं मन बहलाता रहा। मेरी आंखों से उसकी बड़ी-बड़ी आंखें जो कुछ थकी-थकी लग रही थीं टकराती रही थीं। इस खेल में हम दोनों एक-दूसरे के मूड की गहराई माप रहे थे।

मैने उसे छेड़ा था - " तुम्हारी आंखें थकी-थकी सी लग रही हैं। बदन भी कुछ ढीला-ढीला सुस्त है। लगता है रात भर खूब मिहनत की है "

मेरी निगाहों की शरारत से वह कुछ सकुचाई।

"ऐसा लग रहा है क्या ? हां , लेकिन बात कुछ खास नहीं है। क्या है कि रात फुरसत में देर तक बैठे हम लोग बच्चों सहित ताश खेलते समय बिता डालते हैं।"

नेहा की आंखों में मेरी आंखें गहराई तक धंसती समा चली थीं। मेरी आंखों में छिपे सवाल को उसकी आंखों ने पढ़ और समझ लिया था। लिखा था -" स्साली स्थूल नितंबिनी। यह कहने में शरमा क्यों रही है कि उसके बाद जमकर ठोकने-ठुकाने की भी मशीनी रस्म अदायगी हुई और थकावट में निढाल तुम अध-नींदी ही रही आई हो - ठीक वैसे ही जैसे और जिस हालत में इस वक्त मैं तुम्हारी आँखोंके सामने खड़ा हूं।

मेरी सुस्ती में नेहा के देह की गदराहट तनाव भर रही थी। मेरी आंखों ने उसकी आंखों से कहा - " चलो, क्यों न हम दोनों थके हुए इस वक्त अपनी कामनाओं की ताजगी से रात की बासी थकावट को छकाकर मनपसंद और यादगार बना लें। मैने उसे थामा और बिस्तर की ओर ढकेला।"

उसका काम अभी भी थोड़ा बच रहा था। वह पशोपेश में थी। उसने ध्यान हटाया - "नहीं न, कैसा करते हैं आप ? बगल के कमरे में लड़का है। बिना देखे भी वह वाच कर रहा होगा सब । फिर दरवाजा भी खुला है । कोई आ गया तो ?"

उसने बिलकुल ठीक फरमाया था। मैं शुरू से गौर कर रहा था कि बगल के कमरे का लड़का जो सारे दिन बाहर काम पर हुआ करता है, आज ज्यादा ठहरे हुआ है। हो न हो, उसकी दिलचस्पी मेरे एकान्त कक्ष में घंटी की तरह खनकती नारी-कंठ की मीठी आवाज़ और यहां बीच-बीच में चलते गोपन संवाद और फिर अप्रत्याशित चुप्पी से आतुर जासूस में तब्दील हो चली थी।

" चलो अंदर के कमरे में चलो। किवाड़ मैं बंद किये देता हूं। कोई यहां न आएगा " -मैंने कहा।

" नहीं न। आप समझते नहीं। सब को शक हो जाएगा। आज रहने दीजिये। मैं तो आती ही रहूंगी न।" - नेहा बोली। "

हम दोनो अच्छे बच्चों की तरह फिर काम से लग चले थे। यूं आधा-एक घंटा गुजर चला। अब हम फुरसत में थे। बगल के कमरे का लड़का पिछले चार घंटों में कुछ न हाथ आया जान शायद खीझकर चला गया था। इस वक्त दिन के दो बज रहे थे।

" चलिये, जितना काम था आप ने पूरा करा दिया। अब ! अब मैं फुरसत में हूं। अब कहिये क्या इरादा है ? मैं रुकूं या जाऊं। ?"

नेहा सुंदरी कंधों पर कोण बनाती कुहनियां पीछे ताने अंगड़ाई ले रही थी। ठीक वैसी ही नुकीली अंगड़ाई जैसी पहले-पहल की मुलाकात के दिनों में नेहा मेरी आंखों में और दिलो-दिमाग में ठेल चली थी। उसकी वैसी अंगड़ाई हमलावर हुआ करती है। सोफे पर पसरती उसने फिर अपनी आवाज़ की लजाकत भरी नखरीली ज़ुकामिया अूं-अूं-अूं के लंबित लय में उसने फिर दोहराया - " बताइये ना, अब क्या करना है ? मैं रुकूं या जाऊं। ? आप तो कुछ बोलते भी नहीं।"

मैने अपने को सोफे पर उसकी बगल में अवस्थित किया। उस गुड़िया से चिपकते उसे बाहों में घेरने का उपक्रम किया।

" अूं-अूं अूं , नईं ना --" उसके लहराते बदन में सिसकरी का सुर लहराया।

मै उठ खड़ा हुआ। उस सुरत-दुखिता नेहा को भोगने की इच्छा से मैं लगातार विरत हो रहा था, जिसका दोहरा बदन पहले ही शिथिल हो रहा था । कुछ पल सोफे पर पसरी पड़ी रहकर वह भी उठकर मेरे सामने आ खड़ी हुई थी। उसने फिर एक अंगड़ाई लेते सर के पीछे कुहनियों को टिका एक 'आह' के साथ पुष्ट बेरियों वाला तिकोना पहाड़ मेरे सामने ठेल दिया।

" आं-आं-आं---, बताइये ना प्लीज़ । मैं रुकूं या जाऊं। ? आप तो कुछ कहते भी नहीं । बोलिये ना--। चुप क्यों हैं ?"

मैं ऊब रहा था। मेरे मुंह से निकला -" तुम जाओ। तुम्हारा काम मैने जितना बना कर दिया है। शायद तुम्हे भूख भी लगी होगी। आज मैने तुम्हे रोक भी लिया तो तुम कहोगी कि काम का बदला वसूलने मैने तुम्हे रोका है। मैं नहीं चाहता कि तुम यहां से ऐसा भाव लेकर जाओ। माइ डियर बेबी, यू आर फ्री नाउ।"

" आं-आं-आं---, नइइ....ईं....ईं ना । मै जानती हूं आप मुझसे नाराज़ हो गए हैं। बताइये ना--। मुझे कोई जल्दी नहीं है। आप जब-तक चाहेंगे मैं रुकने को तैयार हूं। मुझे कोई ऐतराज नहीं है।"

औरत निश्चिन्तता में और देर से मूड में आती है । शायद नेहा अब उस क्रीड़ा के मूड में आ चली थी । मन में मेरे लिये कोमल हो चला उसका वह हृदय अब उस खास उदास प्यास को बुझाने पानी मांग रहा था, जिसे उसकी सलवार संजोकर छिपाए थी। नेहा में सचेष्ट प्यास जगाकर उसे पानी पिलाने उद्यत अब तक टांग उठाता मेरा मन अचानक सिद्धांतवादी हो चला था। मेरा निश्चय कठोर था।

" नहीं। अब मैं उस वक्त की प्रतीक्षा करूंगा जब तुम उसी बिन्दास रूप और बिन्दास कामना के साथ मुझे याद करती आओगी, जिसे पूरा करने छेडछाड़ भरे अपने गुजरे दिनों से हम तरकीबें सोचते रहे हैं। तुमने वह सब भुला दिया है, लेकिन सारों के रहते भी तुम्हारे उस रूप को नहीं भूला हूं। अब जब भी आना वैसी ही और उसी प्रयोजन से आना। यदि वैसा न हो तो कभी मैं नही चाहूंगा कि तुम आओ। गुड लक एंड गुड बाइ "- मैने कहा।

"मैं अब भी बिल्कुल वैसी ही हूं। आप के मन की सारी बात जानते भी आप के पास वैसे ही आती हूं । वैसी ही बिन्दास। उसी तरह आप को याद करती हूं और चाहती हूं। यह बात और है कि आप मुझपर विश्वास नहीं करते। आप भला क्यों करेंगे ? आप को तो मेरे रहते भी उन्हीं की याद सताती है जिन्हों ने आप को सिवाय तकलीफों के कुछ न दिया। मुझे बहुत बुरा लग रहा है। मैं क्या कहूं आप से ?"

नेहा को जाता मैं देखता रहा। वह मुझे फिर घसीटती हुई वहीं ले आई थी जहां से भागकर बार-बार मैं दूर चला जाता हूं। जिस तस्वीर को मैने अंधेरे कोने में छिपाकर रख छोड़ा है, उसे तलाशकर क्यों कोई मेरे बर-अक्स रख जाता है ? क्या सच था और क्या झूठ ? इसका निश्चय करना मेरे लिए केवल स्मृतियों को छीलने वाला सतत् द्वन्द बनकर रह गया है।

प्रियहरि रहा तो साथ ही आया था। पर प्रतीत होता है कि मेरा साथ उसमें ईर्ष्या और घुटन पैदा करता है। न जाने नेहा के साथ मुझे छोड़ कब वह उस वनमाला के पास जा पहुचा था जहां उसका सुख था। हां वही चिर-परिचित जीवनी : उसकी अनवरत पीड़ा और द्वंद का विचित्र सुख। नेहा ठीक ही पूछती है। नेहा के रहते भी वह छलना ही उसे क्यों याद आती है ?

प्रियहरि

बदन के दोनों किनारों से जल रहा हूं मैं
के छू रहा हूं तुझे और पिघल रहा हूं मैं
मैं खवाब देख रहा हूं कि वो पुकारता है
और अपने जिस्म से बाहर निकल रहा हूं मैं॥ - इरफान सिदि्दीकी॥

वे दोनों जानते थे कि एक-दूसरे को आहत करना अपने को ही आहत करना होता था ।
प्रियहरि अक्सर सोचता कि अनंत काल में ऐसे कौन से बीज छिपे थे कि अनचाहे वह हो रहा था जो उन दोनों की चाहत में नहीं था । वनमाला और प्रियहरि के बीच अक्सर इस पर बातें होतीं लेकिन हल कुछ न आता । प्रश्न की तरह वह रहस्य हमेशा स्थिर रहा आया।

वनमाला और प्रियहरि के बीच विश्वास का जो पुल एक बार फिर बनता जा रहा था वह पूरी तरह अब ध्वस्त हो चला था। यह कहावत कि "प्रेम और युद्ध दोनों की कोई सीमा नहीं" उन दोनों के बीच चरितार्थ हो रही थी। प्यार के खेल में ही प्यार की जगह अब प्यार में युद्ध ने ले ली थी । वनमाला के विरुद्ध उसके

मिस्टर से मुलाकात और बातों पर प्रियहरि अपने आप में अफसोस और शर्मिन्दगी से भर गया था । यूं वह वैसा न करता तो भी वनमाला के बदलने की कोई संभावना नहीं थी । बल्कि यह कहा जाय तो ठीक होगा कि वनमाला के न बदलने की संभावना ने ही प्रियहरि को वनमाला के खिलाफ जाने और बेइज्जत पर उसे विवश कर दिया था ।

उस साल नवंबर के अंत में किसी दिन वनमाला प्रियहरि के सामने आ खड़ी हुई थी। उसकी आहट ने प्रियहरि के दिल पर दस्तक न दी हो ऐसा न हो सकता था, लेकिन उसे वैसी मुद्रा बना लेनी पड़ी थी। वनमाला के रवैये की स्मृति से भरे मन की पीड़ा और क्षोभ को जगाकर प्रियहरि ने अपने को ऐसा बना लिया कि उस वनमाला की ओर देखना तक गवारा नहीं किया जिसे मन की आंखों से वह चौबीसों घंटे निहारता रहा था । वनमाला के चेहरे पर संकोच और पीड़ा भरी उदासी के बादल थे । उसका अस्तित्व मानो प्रियहरि की निर्ममता की शिकायत लिए उसे उलाहना देता साकार खड़ा था ।

बड़ी मासूमियत से वनमाला ने प्रियहरि से पूछा - "संस्था के मूल्यांकन के मामले में आपने मुझे पत्र दिया है । मुझे कुछ समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूं ? आपसे बात करना चाहती हूँ कि इस मामले पर क्या किया जाये ?"

अंदर झांकती तो वनमाला देख सकती थी कि प्रियहरि का मन उसे सामने पाकर कितना असहाय और कमजोर हुआ जा रहा है । शायद उसने देखा भी हो । बाहर-बाहर प्रियहरि अपने को संभालता कठोर दिखाने के लिए प्रतिबद्ध था । वनमाला के लिए वह अफसर कभी न था । दोनों के संबंधों में वनमाला स्वामिनी के अधिकार की अभ्यस्त थी। अवश्य ही उसे ऐसी परिस्थिति क्रूर और असहज लग रही थी । पर हालात ऐसे हो गये थे कि जो वे दोनों न थे उसका ही अभिनय उन्हें वहां करना पड़ रहा था ।

प्रियहरि ने गौर किया था कि इस बीच अनेक बार वनमाला का चेहरा अपनी लोच भरी देहयष्टि के साथ भीतर प्रवेश करने की आतुरता में पर्दे से झांक कर संकोच लौट चुका था । कारण मात्र यह कि प्रियहरि के पास अन्य लोगों की या तो मौजूदगी थी या खुद प्रियहरि की ओढ़ी हुई व्यवस्तताएं बीच में थीं । प्रियहरि ने देखा था कि एक बार तो वनमाला उसे अकेला पाने की उम्मीद में दफ्तर के भीतरी दरवाजे से प्रवेश करती उसके कमरे में चली भी आई थी और फिर उसके पास किसी को बैठा देखकर प्रियहरि की आंखों में एक झलक देखती लाचार हो किनारे ही किनारे दूसरे दरवाजे से बाहर हो चली थी । उन आंखों में शिकायत भरी खीझ लिखी थी कि जब भी मिलना चाहती हूं क्यों यहां कोई न कोई बैठा पाया जाता है ?

अजब लाचारियों के दौर में उस दिन अवसर मिला था । पास बैठी वनमाला प्रियहरि से कह रही थी - "बहुत दिनों से सोच रही थी कि आपसे मिलूंगी, पूछूंगी लेकिन आपकी व्यस्तता के कारण संभव न हो सका ।"

प्रियहरि का मन तो पिघलता है लेकिन सशं कित मस्तिष्क को वनमाला की हर बात, उसका हर कदम चालाकी भरा दिखाई पड़ता है । यत्नपूर्वक कि मस्तिष्क को ठेलता मन न झांक जाए, वनमाला की ओर देखे बिना, बगैर उस पर सम्मोहित हुए अखबार पर नजर गड़ाए प्रियहरि ने रूखेपन से जवाब दिया - "जो करना है, वह पत्र में स्पष्ट तो कर दिया गया है । वह बहुत साफ है । आप वैसा कीजिए।"

"पिछले साल कौन-कौन थे ? उन्होंने कुछ किया है क्या, यह बता दीजिए? कोई और फाइल हो तो मुझे दे दीजिए उससे मदद मिल जायेगी।" - वनमाला ने कहा ।

प्रियहरि समझ गया कि इन "कौन-कौन" से वनमाला की चर्चा अवश्य हो चुकी है । इनमें से एक "कौन" सत्यजित का नाम लेती वनमाला ने कहा - मैने उनसे भी पूछा था । उन्होंने कुछ नहीं बताया । बताइए मैं क्या करूं ?"

कोमलता वनमाला को कठोर बना देती है और कठोरता उसे पिघलाती है । आज उसे पिघलता देखना ही प्रियहरि को अच्छा लग रहा था । उसने साफ कह दिया - "यह समझिए कि पिछला कुछ नहीं है । जो है, आपके पास है । आप खुद पढ़िए और कीजिए।"

प्रियहरि को ऐसा लगा कि वह वनमाला के प्रति वह कुछ ज्यादा ही कठोर हो गया था । संतुलन बनाने के लिए बाद में उसने इतना जोड़ दिया कि - "पिछले एक साल में लोगों में कुछ नहीं किया है । इसीलिए एक व्यक्ति और एक प्रभार के रूप में मैंने तुम पर सब छोड़ दिया है जिससे कि आपसी आरोप और बहानेबाजी में चीजें टलती न रहें । हां, विश्वास करके विशेषतः तुम पर । इसलिए कि तुम योग्य और समझदार हो ।"

प्रियहरि ने पाया कि उसका अपना मन कठोरता का कवच भेद निकल ही आया था। कुछ इस तरह कि वनमाला आखिर-आखिर में उसके लिए "आप" से "तुम" बन चली थी और "योग्यता" के विशेषण का मरहम उस पर लग चुका था। प्रियहरि से इस तरह बेरुखी की उम्मीद वनमाला को न रही होगी । अपनी उपेक्षा और पशोपेश से उदास वनमाला सूनी सूनी आंखें लिये जैसे आई थी, वैसी ही लौट गई । उसके चेहरे पर अज्ञात पीड़ा और थकान की छाया तैर रही थी ।उस दिन वनमाला को अपनी बेरुखी से आहत करता प्रियहरि खुद भी आहत हो रहा था । वनमाला और प्रिंयहरि जैसे एक ही हृदय की दो शिराएं थे । वे दोनों जानते थे कि एक-दूसरे को आहत करना अपने को ही आहत करना होता था । नियति का यह अजीब चक्र था कि वैसा जानते और गहराई तक महसूस करते हुए भी वे दोनों मानो किसी अज्ञात सूत्रधार के हाथों कठपुतलियों की तरह नाच रहे थे । ऐसा सूत्रधार, जिसे सारे भौतिक के पीछे कोई अभौतिक अपने रहस्य के पर्दे में छिपाए था । प्रियहरि अक्सर सोचता कि अनंत काल में ऐसे कौन से बीज छिपे थे कि अनचाहे वह हो रहा था जो उन दोनों की चाहत में नहीं था । वनमाला और प्रियहरि के बीच अक्सर इस पर बातें होतीं लेकिन हल कुछ न आता । प्रश्न की तरह वह रहस्य हमेशा स्थिर रहा आया।

निरंतर रंग बदलती परिस्थितियों से प्रियहरि का मन एक अजीब सी उदासी से भर चला था । उसने मान लिया था कि वनमाला अब उसकी पहुंच से बहुत दूर है । हालांकि दिल की हर धड़कन में समाई वह हर पल प्रियहरि के चित्त में समायी थी, दुनियाबी तौर पर वनमाला की ओर से बेरुखी की चादर प्रियहरि ने तान ली थी । न तो वह उसे बुलाने की कोशिश न उसकी ओर देखता और न कभी बात करने की चेष्टा करता । यह विचित्र था कि अपने मिस्टर से हुई गोपनीय बातों में प्रियहरि के होने के संदेह के बावजूद वनमाला ने प्रियहरि से न कभी उस बारे में बात की और न कभी झगड़ा किया । उल्टे प्रियहरि ने पाया कि सबके बीच विशेषतः वनमाला के प्रति उसकी खुद अपनी खास बेरुखी के कारण वनमाला के चेहरे पर एक अजीब तरह की खिन्नता और उदासी के बादल छाए रहते थे । जैसे प्रियहरि से अनकही शिकायत बुझे चेहरे की उन आंखों के द्वारा की जा रही हो - "इतनी भी बेरुखी कैसी **?** आखिर मेरा अपराध क्या है **?**"

ऐसे ही तकरीबन तीन सप्ताह का समय गुजर गया था । बेरुखी अपनी जगह थी और सरकारी कामकाज अपनी जगह थे । वनमाला को सौंपे गए कामों की प्रगति के बारे में जानकारी जरूरी थी । इसी के मद्देनजर जानकारी मांगने पर एक रोज अपने कागज-पत्तर, रजिस्टर समेटे वनमाला आई भी, तो पहले से ही लोगों की लाइन वहां लगी थी । वनमाला के कागज महीनों के थे इसलिए प्रियहरि ने कह दिया कि यहां लाइन पहले से लगी है, तुम बाद में आना । वनमाला बाद में फिर तब आई जब प्रियहरि के पास कोई न था । जो अंदर दबा होता वह सारी कठोरता तोड़कर एक-दूसरे के सामने का एकांत पाकर उन दोनों के बीच प्रकट हो उठता था । उन दोनों ने एक-दूसरे का आवरण भेद एक-दूसरे की मायूस उदासी पढ़ ली थी ।

उस दिन वनमाला ने प्रियहरि की उदास, सूनी आंखों में झांका था। वह बेलाग कह रही थी - "अब मैं आपके साथ बैठूंगी और काम करूंगी। मुझे अब किसी का डर नहीं । जिन्हें बुरा लगता हो, लगता रहे ।"

चुप्पी की बर्फ टूटी तो टूटती चली गई । हफ्तों से अनदेखे चेहरे को निहारते, एक-दूसरे की आंखों में झांकते, एक-दूसरे के दिलों को पढ़ते वनमाला और प्रियहरि देर तक बातें करते रहें ।

वनमाला कह रही थी -"आपके साथ बैठकर, आपसे बातें करके, आपके सामने ही, आपकी सहायता से ही मैं सारा काम पूरा करूंगी ।" उसने साफ तौर पर कहा - "आपने जो काम मुझ पर विश्वास से छोड़ा है उसे मैं पूरा करूंगी । उसमें मेरी खुद की दिलचस्पी है । शर्त केवल यह है कि आप मेरे

लिए समय निकालेंगे और मुझे टालेंगे नहीं । अक्सर मैं पाती हूं कि आपके पास लोग भीड़ लगाये खड़े रहते हैं और मुझे आप के पास बैठने, बातें करने का मौका ही नहीं मिलता ।"

विचलित और उदास मन प्रियहरि ने जैसे वनमाला से वनमाला की ही शिकायत की हो, कहा - "मैं क्या कहूं ? तुम खुद नहीं आईं । तुम्हें भी तो औरों से फुर्सत नहीं मिलती । सब कुछ मैं तुम पर छोड़ता हूं । तुम पर मेरा विश्वास हमेशा रहा है और रहा आएगा । अपनी बात तुम जानो ।"

वनमाला की बात सच थी। प्रियहरि के आते ही हर रोज वह उसके निकट पहुंचने की कोशिशें करती । कई बार ऐसा हुआ कि आपने कागज-कलम लिए वह अंदर आने पर्दे से झांकती। प्रियहरि से नजरें मिलतीं और फिर उसके पास किसी या किन्हीं लोगों को बैठा पाकर वनमाला लौट जाती थी । सारी दूरियों और अपने बाहरी साधारण के बावजूद कुछ ऐसा था कि चाह कर भी न तो प्रियहरि से वनमाला दूर जा पाती थी और न प्रियहरि ही वैसा कर पाता था । यह इसके बावजूद भी था कि परिस्थितियां हमेशा दोनों के विपरीत रहीं और हमेशा दोनों ही झगड़ों में उलझते दिखाई पड़ते थे । सारे कुछ और सारी भीड़ के बावजूद शिराओं में बहते रक्त, हारमोन्स, जीन्स, फेरामोन्स में ऐसा कुछ रचा था जो वनमाला की ओर प्रियहरि को और प्रियहरि की ओर वनमाला को चुम्बकीय आकर्षण से खींचता। आवेग इतना प्रबल होता कि परिस्थितियों और बीच में आई भीड़ के सारे आयोजन झटके से दूर जा फिंकते थे । वनमाला और प्रियहरि, प्रियहरि और वनमाला - यही दोनों की अजब कहानी थी जो नियति ने बुनी थी ।

प्रियहरि ने अक्सर सोचा है कि प्यार क्या है ?

प्रियहरि ने अक्सर सोचा है कि प्यार क्या है ? क्या वह स्त्री और पुरुष के बीच दिल से शुरू करके वहां एक हो जाने की बेताबी है, जो टांगों के बीच तमन्नाओं का केन्द्र हुआ करता है ? या वह पिपासा प्यार है जो उस फल को पाने के लिए मुसीबतों से गुजारती स्त्री और पुरुष को बेचैन दीवानगी में धकेल देती है ? ऐसी दीवानगी, जिसमें वर्जित फल के स्वाद की चाहत लिये प्रेमी और प्रेमिका एक-दूसरे को लुभाते, बचते, रूठते, मनाते, झगड़ते अपने जोड़ीदार को सेड्यूस करने की फिराक में दिनो-रात घुले जाते हैं।

यह नया साल था । द्वंद्व और ईर्ष्या के उस माहौल को प्रियहरि भुगत रहा था जो वनमाला से उसकी करीबी को पाकर प्रतिद्वंदियों ने रच रखा था । दिसम्बर के अंतिम सप्ताह से इस नये साल की शुरुआत तक छुट्टियां लेता, बढ़ाता विपुल गायब रहा। इसी बीच वनमाला भी इसी एक दिन छुट्टी पर रही । छुट्टी के दूसरे दिन आई तो प्रियहरि की नजरों ने उसे चितकबरी-पीला रंगत के साथ सूजे हुए गालों वाले उदास चेहरे और थकी हुई आंखों में देखा । उसके चेहरे पर अवसाद की खिन्नता और हवाइयां थी । प्रियहरि के लिए कुछ भी समझ पाना मुश्किल था। क्या वनमाला का अवसाद इस दौरान अपने यार के सूने घर में ठंडे बिस्तर को गर्म कर यार की तसल्ली के लिए अपना सुरक्षा कवच तोड़ जाने के बाद पैदा हुआ अफसोस था ? या फिर बेताब यार के वनमाला से मिलने और शय्या पर ले जाने की चालाकी भरी मुश्किल कोशिशों को लेकर दोनों के बीच हुई खटपटों और असफलताओं का नतीजा यह दृश्य था ? संभावनाएं दोनों हो सकती थी। पशोपेश में पड़ा अपने आप में खीझता, अपने आप से प्रियहरि पूछता रहा - वनमाला..,वनमाला..., वनमाला ..। आखिर चित्त में वह इस कदर क्यों बस गई है कि चाह कर भी वह उसे नहीं भुला पाता ?

तीन सप्ताह बीत चले थे प्रियहरि ने कौन्सिल की एक बैठक रखी थी वनमाला उस दिन आई तो थी लेकिन जानबूझकर बैठक से पहले ही घर लौट गई थी । सारा स्टॉफ इन चीजों पर गौर करता था । वनमाला से प्रियहरि की आशनाई सभी को मालूम थी । लोगों ने इशा रों में ताने दिये कि प्रियहरि आखिर ऐसी बेअदबी नजर-अंदाज क्यों कर जाता है ? बहुतों ने कहा कि वैसा करने में प्रियहरि का वनमाला के प्रति पक्षपात नज़र आता है। या तो ऐसे लोगों से स्पष्टीकरण मांगा जाय या फिर अन्य सबको भी वैसा करने छोड़ दिया जाय । स्पष्टीकरण जारी हुआ । दूसरे दिन वनमाला ने शिकायत की कि उसे वैसा पत्र प्रियहरि ने क्यों दिया ? वनमाला की आंखें प्रश्न कर रही थीं कि प्यार में उसपर जान देने वाले का अंदाज क्या अब वैसे सरकारी

फरमानों से ही मिलेगा ? उसके चेहरे पर उदास नाराजगी थी कि प्रियहरि उसका ध्यान क्यों नहीं रखता ? वह क्यों औरों के कहने पर जाकर उन्हें खुश करता है ? वनमाला ने सफाई दी थी कि अपनी बीमार सास को अस्पताल ले जाने उसे जल्दी घर लौटना पड़ा था ।

प्रियहरि ने अक्सर सोचा है कि प्यार क्या है ? क्या वह स्त्री और पुरुष के बीच दिल से शुरू करके वहां एक हो जाने की बेताबी है, जो टांगों के बीच तमन्नाओं का केन्द्र हुआ करता है ? ऐसी बेताबी, जो पुरुष और स्त्री के लिए स्वर्ग के बागीचे के उस परमोत्तेजक आहलाद्कारी वर्जित फल का वह स्वाद चखने विवश कर दे, जो सारा कुछ भुला दे ? हां, वही फल तो है, जिसे आदम और हव्वे को रचते कथित स्वर्ग की सत्ता ने पुरुष और स्त्री के जांघों के बीच बसा रखा है । या वह पिपासा प्यार है जो उस फल को पाने के लिए मुसीबतों से गुजारती स्त्री और पुरुष को बेचैन दीवानगी में धकेल देती है ? ऐसी दीवानगी, जिसमें वर्जित फल के स्वाद की चाहत लिये प्रेमी और प्रेमिका एक-दूसरे को लुभाते, बचते, रूठते, मनाते, झगड़ते अपने जोड़ीदार को सेड्यूस करने की फिराक में दिनो-रात घुले जाते हैं।

हां, प्रियहरि ने अनुभव किया है कि एक-दूसरे की जांघों में समाकर एक हो जाना मात्र प्यार नहीं है । वैसा होता तो विवाह की संस्था में बंधे शरीर कभी बेचैन नहीं होते । जो सुलभ हो, अनचाहे मन का सहवास हो वहां प्यार नहीं मिलता । वैसा होता तो टकों पर बेचकर एक-दूसरे को निपटाने वाली औरतों से आदमी संतुष्ट न हो जाता ? इससे उल्टे होता यह है कि प्यासे मन का तरसाव आदमी को भटकाता हुआ वैसी स्थितियों से गुजरने मजबूर करता है । कल्पना कीजिए कि कोई चकले वाली आपके सामने बिछने वस्त्र खोलकर जांघ पसारकर कहे कि चलो, तो आपकी हालत क्या होगी ? तनाव से राहत पाने की मजबूरी में आप अपने को हल्का कर सकते हैं लेकिन वह राहत क्या सचमुच आपको तसल्ली दे पाती है ? वहां शरीर की तसल्ली भले हो जाये दिल की तसल्ली न होगी । दिल की तसल्ली तो उसी गढ्ढे में गिरकर होगी जहां गिरने आप बेचैन है और जहां आपकी चाहत है । कमस्कम दिल रखने वाला संवेदनशील आदमी तो उससे तुष्ट हो ही नहीं सकता । संभावना इसकी अधिक होगी कि टकों पर उपलब्ध उस गड्ढे को उभारती औरत के प्रति वितृष्णा से भरकर आपका मन चाहत की जगह वीभत्स नफरत से भाग खड़ा होगा । अगर उसने ही राहत होती तो बेचैन, तरसते, जिन्दगी बर्बाद करते स्त्री और पुरुषों की जोड़ियां प्रेम-कथाओं में तब्दील नही हो पातीं । हां, इसीलिए पिपासा की वह तड़प ही प्यार है जो अनंत होती है । जितनी लंबी वह होती है, प्यार उतना ही गहराता है । विवाह की संस्था और स्त्री की जैविक समस्याओं के साथ समाज से थोपी मर्यादाएं पुरुषों की तुलना में औरतों को अधिक मजबूर बनाए रखती हैं । इसीलिए प्रेम में स्त्री और पुरुष के बीच एक-दूसरे को हवस का शिकार बनाने का यह खेल पुरुष के प्रयासों और स्त्री के बचाव के बीच झूलता अनंत पिपासा का विवश खेल हो जाता है । वेच्च्या स्त्री कहलाती है लेकिन दरअसल स्वभाव पुरुष का वैश्या का होता है । स्त्री अच्छी यह जानती है कि पुरुष स्वतंत्र और उच्छृंखल होता है । वांछित को पा लेने के बाद पुरुष राहत पा लेता है और स्त्री बंध जाती है । इसीलिए स्त्री का स्वभाव अपने को बचाने, अपने सुरक्षा-कवच तक पुरुष को न पहुंचने देने और अपने खुद के खोल में सिकुड़कर बचे रहने का होता है । इसके विपरीत पुरुष के सारे प्रयत्न स्त्री को लुभाकर, मनाकर, बहलाकर, प्रलोभित कर या बलात् चेष्टा से स्त्री के सुरक्षा-कवच को तोड़ उसमें प्रवेश कर जाने की दिशा में होते है। एक तरह से यह लड़ाई वर्चस्व की होती है । पुरुष का वर्चस्व उसके आक्रमण की सफलता में निहित होता है और स्त्री का वर्चस्व पुरुष के आक्रमण विफल करने में और उसकी पिपासा को बनाए ही नहीं बल्कि बढ़ाए रखने की सफलता में होता है । पुरुष पर स्त्री के अधिकार का यही रहस्य है । वनमाला अपने दो चाहने वालों के साथ प्यास में खुद लोटपोट होती अपने प्रेमियों को तड़पाने का यही खेल खेल रही थी ।

इस खेल का एक पहलू यह भी है कि आदमी के रबर का खिलौना औरत जब चाहे तब हासिल करने की हैसियत रखती है। उसे यह मालूम हुआ करता है कि मर्द की बेचैन जात उस खिलौने को हर किसी औरत के हाथों थमा देने आतुर ही रही आती है । मर्द जात की वैसी वृत्ति के विपरीत अपनी मजबूरियों से दबी औरत की जात इस फिक्र में होती है कि वह अपने को सर्वसुलभ करके मर्दो के बाजार का चालू खिलौना न

बना दे। क्या यह अजीब नहीं कि मर्द और औरत के खेल में भी मांग और पूर्ति का वह सिद्वांत लागू होता है जो अर्थशास्त्र में हुआ करता है ? हवा और पानी की कोई कीमत नहीं है क्योंकि वे सहज सुलभ हैं। कीमत सोने की है, जो दुर्लभ है । औरतों की बढ़ती तरक्की की दुनिया में शायद वह दिन कभी आए जब औरतें खरीदें और मर्द की जात बाजार में हो । शायद कभी वह दिन आए जब औरतें अपनी जैविक और पर्यावरण की मजबूरियों से स्वतंत्र हों । शायद कभी वह दिन आए जब विवाह की संस्था ही खत्म हो जाये । मगर फिलहाल तो औरत अपनी जानी पहचानी पुरानी औरत के दायरे में ही है । इसीलिए स्त्री बहुत नाप-तौल कर तभी कदम बढ़ाती है जब वह देख ले कि उसका प्यासा कितना धीरज वाला और ईमानदार है । वह यह तय कर लेना चाहती है कि उसके प्यासे की प्यास मर्द जात की जानी-पहचानी वह उतावली तो नहीं है कि जिसमें मर्द की चाहत औरत की नहीं, केवल जांघों के बीच छिपाए उसके खोल पर नजर रखती है।

स्त्री को हमेशा यह मालूम हुआ करता है कि मर्द जात की वह आम आदत होती है । स्त्री अपनी कीमत और पुरुष की कमजोरी का अच्छी तरह ज्ञान रखती है । स्त्री जानती है कि वह अगर चाहे तो मर्द के खिलौने को अपनी इच्छा से किसी भी समय हासिल कर सकती है जब कि पुरुष के लिये स्त्री को पाना दुर्लभ है। इसीलिए चुनाव और परीक्षा की बेहतर हैसियत को कायम रखती स्त्री बहुत धीरे-धीरे गर्म होती है । प्रकृति और पर्यावरण ने ही उसके शरीर को ऐसा तंत्र दिया है कि वह देर से गर्म हो, और गर्म होने के बाद देर से ही ठंडी हो । इसके विपरीत पुरुष हमेशा उतावली गर्मी से बेचैन होता है और उसे जल्द उतार भी जाता है । स्त्री और पुरुष के बीच प्यार का खेल भी इसी नियम से चलता और बढ़ता है ।

वनमाला के सुरक्षा कवच को उसके मन से तोड़ना प्रियहरि ने ही शुरू किया था । औरत वह नहीं पाना चाहती जो उसे मिला हुआ है । पाना वह चाहती है जो उसकी आकांक्षाओं में हो । वनमाला ने बहुत पहले ही प्रियहरि से इसे कहा भी था । वनमाला शिक्षिता, सुरूचिसंपन्न, मेधावी और गंभीर थी । उसमें ऐसे साथी की चाहतें दबी थीं जिसमें ये गुण हो । जिसका साथ उसे भाए और जो उसकी कद्र करे । घर का वातावरण उसके लिए दमघोटू था। बच्चे लेकिन बीच में थे, जिनकी फिक्र उसे बांधती थी । घर के कामकाज का बोझ था जो उसे प्यार-व्यार के सोच के लिए अवकाश से मजबूरन अलग कर देते थे । इसीलिए यदाकदा खींचती उसकी आकांक्षाएं मर कर बुझ जाती थीं। प्रियहरि का साथ उसके लिए ठीक वैसा था जैसा वह चाहती थी । वनमाला में प्रियहरि ने भी वैसे साथी की झलक देखी थी जिसकी कल्पना उसके चित्त में थी । दोनों के बीच शरीर की चाहतों में वह कुछ था जो मन के बगैर नहीं अपितु मन के साथ उन्हें जोड़ता था। दाम्पत्य की विवशता में ऐसा नहीं होता । वहां प्रायः मजबूरी में शरीर ही जुड़ते हैं, मन इधर-उधर हुआ करता है ।

प्रियहरि का मन किया कि वह वनमाला से पूछे कि वनमाला प्रिये, अगर अब भी तुम्हारा मुझ पर इतना विश्वास भरा अधिकार है तो मुझे क्या यह अधिकार नहीं कि पिछले दिनों मुझसे बेवफाई करतीं, मुझे चोट पहुंचातीं अपने उस नये यार के साथ तुमने क्या गुल खिलाये ? यह पूछने का मन किया कि यार की मुहिम पर पिघलतीं अगर उसका बिस्तर वनमाला ने गर्म किया तो ऐसा क्या है कि सदियों के संबंधों के बावजूद उसने प्रियहरि से बहाने बनाते, उसे टालते हुए उसके दिल को उस सुख से वंचित किया जो वनमाला के साथ हम-बिस्तर होकर उसकी कोमलता में प्रवेश कर बाहों में बंधी प्यारी वनमाला की आंखों में झांकते, झकझोरते उसे मिलता । प्रियहरि पूछना चाहता था कि अचानक वह अपना और यह पराया क्यों हो गया ? आखिर वह भी तो वनमाला के दिल के करीब था। उसने फिर संयोग के उस चरम पल से वनमाला ने क्यों उसे परे रखा। यह वह चरम पल था जिसकी चाहत में वनमाला की प्यारी, कोमल, उस अंतरेन्द्रिय आंख को पाने प्रियहरि ने अपने को दीवाना बना बर्बाद कर लिया और जिस पर वह गिरवी पड़ा है । वह पूछना चाहता था कि वनमाला ने विश्वासपूर्वक उसे क्यों नहीं यह अवसर दिया कि प्रियहरि सिद्ध करके उसे बता देता कि उसका बाहर जितना सुन्दर और मजबूत है उसके अंदर भी वही था । इतना दृढ़, मजबूत और संकल्पित कि अंदर की सारी कोमल शिराओं को छिन्न-भिन्न करता वनमाला को सारी रात जगाए रखता । उसे बार-बार उसे स्वर्गिक ताल में गहराई तक वह ऐसे डुबाए रख सकता था कि चिकनी, रसीली स्वेतकर्दम में भीगतीं, नहाती, तैरती उसकी कंदराओं में फैला उसका शिरा-जाल अफसोस से नहीं, अकल्पनीय आनंद की चीख से रात भर "आह,

ओह, मैं तो मर जाऊँगी" के मंत्रों से उच्चरित होता बीतता । प्रियहरि पूछना चाहता था कि टकराव की उस स्वर्गिक चाहत को वह क्यों रोकती रही थी जिसके लिए उन दोनों की कोमल कठोर जंघाएं जमाने से मुसीबतें झेलती आह भरती रही हैं।

अगर पिछले दिनों वर्जित को अवर्जित करने का खेल वनमाला ने अपने यार से नहीं खेला था तो वह कैसी कशमकश थी जिसके जाल में वह बेचैन रही ? प्रियहरि पूछना चाहता था कि पिछले सप्ताह की उसकी बदहवाश बेचैनी आखिर क्या और क्यों थी ? प्रियहरि की अपनी बेचैनी से खुद अपने को छिपाती वनमाला उसे वैसी ही उदासी के अंधेरों में धकेल रही है, जैसी इस वक्त खुद वनमाला के अंदर पल रही है ?

लेकिन नहीं । उस दिन वैसा अवसर न था । फिर थीं मर्यादाएं। बाहरी जिन्दगी से फैलीं वे इस तरह मनुष्य के अस्तित्व को अंदर तक जकड़ लेतीं कि मनुष्य के अंदर छिपा आदम होने सच मरता जाता है। हाँ, वह सच जिससे जिन्दगी की खुशी होती है । वनमाला के उदास सवाल का जवाब देता प्रियहरि इतना ही कह सका-

"वनमाला, मेरी भी मजबूरी थी । वह मेरे अनुशासन, प्रशासन के काम से बंधा है जिसे सब देखते हैं और जिस पर सब सवाल उठाते हैं।"

विश्वास और अधिकार की चाहत में डूबी वनमाला की उदासी को संबोधित करते प्रियहरि ने कहा - "वनमाला, न जाने क्यों ऐसा होता है कि जब भी तुम्हारे पक्ष में कुछ अच्छा, पाजिटिव सोचता होता हूं, तुम कोई न कोई ऐसी चूक कर बैठती हो । यह कैसा संयोग है ? इस बार भी ठीक ऐसा ही हुआ ।"

प्रियहरि ने उसे तसल्ली दी थी। लेकिन भाषा के अंदर छिपी भाषा के मायने क्या थे, यह शायद प्रियहरि ने समझा दिया था और वनमाला ने भी उसके चेहरे पर उदास पीड़ा की शिकायत पढ़ ली थी । वह चली गई ।

तनाव, रात, और फोन की घंटी

"तुम मुझे भूल भी जाओ तो ये हक है तुमको
मेरी बात और है मैने तो मोहब्बत की है ।"

"मेरी वाइफ बहुत टेंशन में है । अभी-अभी उसे सुलाने मैंने नींद की गोली दी है ।"
इतनी रात गए फोन ? वनमाला रानी की गहरी बेचैन उदासी और अवसाद की वजह को ठीक-ठीक समझ पाना प्रियहरि के लिए मुश्किल था । लेकिन यह हकीकत थी वह उन दिनों लगातार ऐसी ही हालत से गुजर रही थी।

अगली रात ग्यारह बजते-बजते बिस्तर के पास रखे फोन की घंटी ने प्रियहरि को सोते-सोते जगाकर खिझा दिया । फोन पर आती आवाज को वह नहीं पहचान सका था ।

"अरे वाह, आपने पहचाना नहीं ? इतनी जल्दी भूल गए मैं वनमाला का मिस्टर बोल रहा हूं ।"

प्रियहरि के अंदर एक खीझ उठी। इतनी रात गए फोन ? यह वही अविश्वसनीय आदमी था, जिस पर भरोसा करके प्रियहरि ने भूल की थी । गोपनीयता का वादा तोड़ने के पिछले अनुभव से वह इस व्यक्ति पर नाराज था ।

वनमाला का मिस्टर शिकायत कर रहा था - "आपके कालेज में क्या-क्या होता रहता है ? आप देखते नहीं क्या ? मेरी वाइफ बहुत टेंशन में है । अभी-अभी उसे सुलाने मैंने नींद की गोली दी है । आपने उसे कोई मेमो दिया है, जिससे वह परेशान है ।"

उसने आरोप लगाया कि आपके यहां कुटिलाक्ष जोशी जो इनका हेड है वह ठीक आदमी नहीं है । उसने बैठक के बारे में वनमाला को कुछ नहीं बताया था । वनमाला के श्रीमन् के अनुसार मैडम को वह कुटिलाक्ष कुछ भी बोलता रहता है, उन्हें परेशान करता है । फोन पर ही प्रियहरि को हिदायत मिली कि वह कुटिलाक्ष को समझाए कि वह ठीक-ठाक रहे । आगे यह भी कि यदि उस कुटिलाक्ष को प्रियहरि नहीं सुधार

सका तो फिर एक दिन उसे खुद आना पड़ेगा और वह खुद कुटिलाक्ष को देखेगा और उससे निपटेगा । प्रियहरि जानता था कि कुटिलाक्ष से औरतें खफा रहती हैं । सस्ते द्विअर्थी चुटकुलेबाजी की आदत से वह बाज नहीं आता था । प्रियहरि एक दो बार डांटता उसे आगाह कर चुका था । लेकिन फिर प्रियहरि यह जानता था कि वनमाला के तनाव, उसकी बेचैनी और अवसाद के लिए इस बार कुटिलाक्ष बहाना भर था । जरूर वे लोग खुश हुए होंगे जिन्होंने वनमाला को उसी के चहेते अफसर से नाराजगी भरी चिट्ठी दिलाई थी । कुछ ताने भी इसी झोंक में वनमाला को मिले होंगे । जो भी हो, वनमाला की अपनी हालत के पीछे कारण केवल उतना ही नहीं था जितना उसने घर में बता रखा था । अगर था, तो वह कुछ था जो बीते सप्ताह वनमाला और उसके नये यार के बीच गुजरा था ।

प्रियहरि सोचता रहा कि ऐसा क्या था जो वनमाला के लिए गहरे तनाव, विषाद, द्वंद, बेचैनी और अंततः बीमारी का कारण बन गया था ? प्रियहरि की समझ में उसका असल कारण उस नये यार का दबाव हो सकता था जो वनमाला की उस गांठ को खोलने के मसले से जुड़ा था और जिसे वनमाला ने सजग और सतर्क होकर अपनी जांघों के बीच और मजबूती से कस दिया था । या कारण यह कि वनमाला खुद प्रियहरि से बंधी अपनी गांठ को मजबूती से तोड़ क्यों नहीं डालती ? या फिर यह कि जंघाओं पर कसी गांठ वनमाला ने ही अचानक अपने यार के स्वागत में खोल दी हो और अब एक ओर वह अपनी कमजोरी, अपने अपराध के पछतावे से, पाप-बोध से गड़ी पड़ रही हो। अंततः क्या यह संभव नहीं था कि खोल दी गई गांठ के स्वागत का उत्सव वनमाला को उसी रंगीन माहौल में फिर जाने ढकेल रहा हो और परिस्थितियों से बंधी-बंधी वह बेचैन महसूस कर रही हो ।

वनमाला रानी की गहरी बेचैन उदासी और अवसाद की वजह को ठीक-ठीक समझ पाना प्रियहरि के लिए मुश्किल था । लेकिन यह हकीकत थी वह उन दिनों लगातार ऐसी ही हालत से गुजर रही थी। एक तरफ नये यार के साथ इसके रूठने, मनाने और अज्ञात मतभेदों के झगड़े के और दूसरी तरफ उसके नये संबंधों और संदिग्ध गतिविधियों के चलते खुद प्रियहरि की नाराजगी और खिन्नता थी, जिसने उसे वनमाला की तरफ से पशोपेश में डाल दिया था । यह दूसरा पक्ष भी उसे परेशान करता हो सकता था । वनमाला और उसके यार के खेल में प्रियहरि खुद भी उलझ कर रह जाता था । न जाने उन दोनों के बीच क्या चलता था कि बीच-बीच में दूरियां अचानक दोनों में उसी तरह बढ़ जातीं जैसी वनमाला की प्रियहरि के साथ बढ़ जाया करती थीं। ऐसा ही कुछ था कि उन दिनों वनमाला और प्रियहरि के बीच का यह प्रतिद्वंदी अपनी मायूसी में विशेष काम से बाहर छुट्टी पर या कहीं कापियां जांचने-जंचवाने चला गया था । इन दो पक्षों के समानान्तर तीसरा कारण वनमाला की पुरुषों के स्टॉफ के प्रति वे शिकायतें थीं जिनसे वह परेशान रहा करती थी ।

पुरुषों और रमणियों का जो घेरा खुद उठकर प्रियहरि के पास चला आता उससे पता चलता कि स्टॉफ रूम की हवा इन दिनों ठीक न थी । वनमाला के मिस्टर की शिकायत पर प्रियहरि ने कुटिलाक्ष को डांटते हुए आगाह किया था कि वह अपनी जुबान पर लगाम लगाए अन्यथा स्थिति बिगड़ सकती है । बावजूद उसके आमतौर पर सारे लोग वनमाला को ही दोषी बताते थे क्योंकि उसकी किसी से न पटती थी।

प्रायः ऐसा होता है कि आदमी अपने स्वार्थ तक सीमित रहा आता है। स्वार्थ उसे अंधा बना देता है । किसी और पर ठीक-ठीक क्या गुजरती है इसका आभास या तो उसे होता नहीं या वह करना नहीं चाहता । प्रियहरि को खुद का ध्यान आया। शायद उसके अपने साथ भी यही कमजोरी थी । वनमाला को उससे प्यार था । वह आधिकारिक अपेक्षा के साथ प्रियहरि की सहानुभूति और अपनी सुरक्षा चाहती थी। इसके ठीक विपरीत अपने अनुभवों पर वनमाला को तौलती प्रियहरि की खुद की ईर्ष्या और खिन्नता शायद वनमाला के साथ वैसा न्याय करने में असमर्थ थी, जैसा कि वनमाला की अपेक्षा में वह हुआ करती थी । प्रियहरि को पहली बार यह प्रतीत हुआ कि वह वनमाला की पीड़ा के प्रति बेरुख रहा आया है। यह अब उसे महसूस हुआ कि वनमाला की जिन्दगी और उसके मन की उलझनों, उसकी पीड़ाओं, उसकी तनावों, द्वंदों और अवसाद को उसके मन की

गहराइयों तक पहुंचकर समझने में उसने कहीं भूल कर दी है । वनमाला से प्यार की अठखेलियां प्रियहरि की भी चल रही थीं। प्यार और नफरत के मौके बहुत से हुआ करते थे । यदि प्रियहरि के प्रति वनमाला के मन में सचमुच खोट होती तो नाराजगी और रूठने-मनाने के दौरों में फंसी वनमाला प्रियहरि की शिकायत कभी भी कर सकती थी । क्या यह वनमाला का ही बड़प्पन न था कि प्रियहरि से रुष्ट होने पर भी, प्रियहरि की बेईमानियों के बावजूद उसने उसकी शिकायत अपने श्रीमन् से नहीं की थी ? शिकायत की थी तो औरों की, जिनसे वह परेशान थी । यह जाहिर हो चला था कि पुरुषों में कुछ मनचले ललचाई आंखों से वनमाला और अन्य रमणियों को देखते थे और उन्हें आकर्षित करने सस्ती तरकीबें अपना रहे थे ।

अनुराधा बहुत दिनों से कुछ खास बातें करने की चाह में आकर लौट गई थी । आज दोपहर बाद प्रियहरि को फुर्सत में पाकर बात करने वह बैठ गई थी । स्टॉफ रूम के गंदे होते जाते माहौल की शिकायत उसने की । खास तौर पर एक चौधरी जयदेव सिंग पर तो सभी औरतें खफा थीं। उसकी बदतमीजी की मिसालें कथित रूप से अनेक थीं। कभी किसी को देख फब्ती कसता कि - "लो, ये सजधज कर अभी चली आ रही हैं।" कभी किसी के वस्त्रों पर नजर डालता टिप्पणी करता कि - "वाह मैडम, आज तो आप खूब जंच रही हैं।" कभी इन सबके प्रियहरि से करीबी संबंधों पर गौर करता व्यंग्य से कहता - "इन लोगों ने तो प्रियहरि को खूब पटा रखा है, और वो भी इन्हें खूब लिफ्ट देते हैं।" कभी वह चिढ़ से महिलाओं को नसीहत करता कि -"आप लोग क्यों जा-जाकर वहां बैठती है आप लोगों को प्रियहरि के पास जाना ही नहीं चाहिए ।"

उसकी हरकतों से सभी तंग थीं । अनुराधा से किसी रोज उसने अपने बगल की कुर्सी की ओर इशारा कर आसीन होने आमंत्रित किया था । अनुराधा ने पूरी तटस्थता से पेश आते हुए उस पर अपना रोष जता दिया था - "मिस्टर चौधरी, आप जिस तरह की हरकतें करते है उससे आपके पास बैठना तो दूर आप से बात तक करने लायक नहीं है । आपको जरा भी तमीज नहीं ।"

इसी तरह अपने कपड़ों पर टिप्पणी से नाराज नेहा ने भी एक रोज उसे डांटा था । अनुराधा ने बताया कि खासतौर पर वनमाला के तो वे पीछे ही पड़े रहते हैं । ऐसी-ऐसी टिप्पणियां करते है कि उसका बैठना मुश्किल हो गया है । अनुराधा ने बताया कि वनमाला की उपस्थिति में ही प्रियहरि और वनमाला के दरम्यानी रिश्तों को लक्ष्य करके वे बड़े अर्थपूर्ण ढंग से गुनगुनाने लगते हैं - "तुम मुझे भूल भी जाओ तो ये हक है तुमको, मेरी बात और है मैने तो मोहब्बत की है "... और इसी तरह कुछ-कुछ । अनुराधा का कहना था कि वहां मौजूद कुटिलाक्ष, कानन, उदयन वगैरह भी होते हैं। ये सब एक गुट की तरह इन सब चीजों का मजा लेते हैं। और तो और चाय के ढाबे पर बैठकर भी इनके बीच यही बातें चलती है जिन्हें सुनकर वहां के नौकर-चाकर भी मजा लेते है और बाद में उन चर्चाओं को प्रसारित करते हैं । अनुराधा ने यह संकेत दिया कि दरअसल इसी माहौल की बातें पिछले दिनों बिग बॉस के यहां वे करने वाली थीं। अनुराधा की बातों पर विश्वास न करने का कोई कारण न था । नेहा, मंजरी, नीलांजना के अलावा पुरुषों में सुदर्शन, विराग, देवदत्त वगैरह ने भी जयदेव की वैसी हरकतों को अशोभनीय बताया था ।

उस रोज अनुराधा की तरह ही वनमाला भी प्रियहरि के पास जा बैठी थी । वनमाला का साथ अब प्रियहरि से इन दिनों यूं सहज होता जैसे जन्मों से उनका साथ है और दोनों के बीच कभी विग्रह न हुआ हो। प्रियहरि की प्यार-मोहब्बत की बातों को वनमाला अब बहुत ही सहज ढंग से लिया करती थी। वह अनुराधा के आने से पहले आई थी और अनुराधा के आने के बाद ही उठकर गई । लोगों को जैसे उस दिन वनमाला पर प्रियहरि के साथ अकेले बैठना गवारा न था । दोनों के बीच लगातार उस दिन वनमाला के विभाग के लोग और दूसरे अनेक भी आते-जाते और बैठते रहे थे । वनमाला को संदेह था कि ऐसी हरकतें ये जानबूझकर करते हैं ताकि वह खुद वहां बैठ न पाए । व्यवधानों के बीच ही वनमाला ने कहा था कि वह प्रियहरि के पास फुर्सत से बैठने, बातें करने की इच्छा रखती है । वनमाला ने यह भी बताया था कि स्टॉफ रूम में लोग कैसी हरकतें करने लगे हैं और माहौल को किस तरह गंदा किया जा रहा है । उस दिन जैसे लोगों ने तय कर लिया हो कि उन्हें चैन से न बैठने देंगे । वनमाला को देखते, घूरते बार-बार लोग इस तरह आते-जाते रहे कि एक-दूसरे से कहे जा रहे वाक्य को भी पूरा करना प्रियहरि और वनमाला के बीच मुश्किल हुआ जा रहा था । वनमाला ने

इसे अच्छी तरह समझ लिया था। वह बोल उठी - मुझे लगता है, आज अब ये सब यहां बैठने न देंगे । फिर कभी फुर्सत से बैठूंगी । वह उठकर चली गई थी ।

बीच के जो पल वनमाला और प्रियहरि ने चुराए थे वे आंखों ही आंखों में एक-दूसरों को पी जाने के रहे । उन पलों में एक-दूसरे के साथ के दिनों और होनी के अफसोस की बातें हुईं । एक-दूसरे के गुणों और प्रतिभा की तारीफें की जाती रहीं । प्रियहरि ने वनमाला से कहा था - "प्यारी वनमाला रानी, तुमने मैने बहुत कुछ देखा और पाया है । तुम मेरे साथ के काबिल हो इसीलिए मैंने हमेशा तुम्हें ही चाहा और तुम पर ही मर बैठा ।"

लज्जा और संकोच से निहारती वनमाला मुग्ध होती प्रियहरि के शब्द सुनती रही थी। उस दिन अनुराधा का बाद में आना मानो वनमाला की शिकायतों के उस अनकहे बाहरी पक्ष की पूर्ति के लिए था, जो वह बाधाओं के चलते नहीं रख सकी थी और जिसका जिम्मा उठाए उस रोज देर दोपहर बाद अनुराधा प्रियहरि के पास आ बैठी थी ।

आज मन
इतना हल्का हुआ
इतना
कि बहुत भारी हो गया ।

वनमाला के चेहरे पर आत्मविश्वास थी चमक थी जो सलज्ज गर्व से उन स्पर्धारत रमणियों पर विजय का ऐसा संदेश था जो उन सभी को संकोच में डालता घोषित कर रहा था कि मैं अपने प्रिय से दूर हुई तो क्या हुआ, उसके हृदय में है तो केवल मेरा साम्राज्य। अपने सारे भ्रम अब दूर कर लो ।

जिस देर रात वनमाला के मिस्टर ने प्रियहरि से फोन पर शिकायत की थी उसके ठीक दूसरे रोज कालेज में विशिष्ट कवि-मित्रों के कविता पाठ का आयोजन पूर्व नियत था । पति के साथ घर की अज्ञात परिस्थितियों में और बाहर दोनों प्रेमियों को अपने मायाजाल में फंसाए पुचकारती और फटकारती वनमाला की हालत इन दिनों विचित्र थी । वह अपनी दोनों चाहतों को प्रसन्न करना, रखना चाहती थी। कभी अपने को नितांत उपेक्षित पाकर अफसोस की घुटन में जीती वनमाला के इस तरह अब तीन दावेदार थे । एक उसका घर, जिससे विधिक रूप में वह बंधी थी और दो बाहर जो उसके लिए जान देने उतारु थे । उठती-गिरती परिस्थितियों के बीच संतुलन साधने के चक्कर में कभी उसका वह यार रूठा पाया जाता और कभी खुद प्रियहरि। न जाने क्या था कि पिछले दिनों से वनमाला के प्रियहरि से फिर जुड़ने और कटने के दौर में उसका नया यार खिन्न था । इन दिनों वह बाहर था जो अमूमन वनमाला को प्रियहरि की नजरों से बचाता खुद उससे चिपकने की कोशिशों में लगा रहता था ।

आयोजन की खासियत यह थी कि संयोग से वह उस दिन के साथ जुड़ा था जब सारा स्टॉफ विशेषत: प्रियहरि की संगिनी अन्य रमणियों, खासतौर पर नेहा की उमंग भरी शह से कालेज में सामूहिक भोज की मुहिम बन चुकी थी । वनमाला इसमें शरीक होने की मनःस्थ्ति में न थी। एक तो स्टॉफ में उसे सारे शत्रु और षड़यंत्रकारी नजर आते थे और दूसरे वह प्रियहरि था, जो वनमाला की उम्मीदों और अपेक्षाओं की परवाह और रक्षा उस तरह न कर पा रहा था जैसा वह चाहती थी । इन दोनों से परे खास एक कारण यह भी कि चाहे बीच की खटपट जैसी और जितनी हो, वनमाला के मन में यह भय तो था ही कि काम के बहाने कालेज से बाहर अटके यार को वनमाला का प्रियहरि की खुशी के लिए किये गये ऐसे आयोजन में शरीक होना जरूर चुभेगा और उसके तानों का शिकार वनमाला को होना पड़ेगा ।

नेहा ने प्रियहरि को बताया था कि "वनमाला भोज के उस आयोजन शरीक नहीं होना चाहती थी । वह छुट्टी लेकर उस दिन से दूर रहना चाहती थी। यह तो मेरा हुनर था कि आपके इस आयोजन में खासतौर पर आप का हवाला देकर रहने प्रेरित कर वनमाला को मैंने मना लिया है । आप यह ध्यान रखियेगा कि ऐसी-वैसी

कोई बात न हो जिससे उसे बुरा लग जाए । वे आएंगीं तो जरूर। बड़ी मुश्किल से समझाकर मैंने उन्हें राजी किया है ।"

वनमाला आई । वह सलज्ज और संकोचशीला की तरह उदासी की प्रसन्नता में थी । दिल में अफसोस ऐसे मौकों पर प्रियहरि को यह हमेशा रहा आता कि वनमाला संगिनी उसकी रही थी लेकिन वह उससे दूर दूसरों यानी इर्द-गिर्द की रमणियों से घिरा अकेला महत्व और आकर्षण केन्द्र बन जाता था । प्रियहरि पर अपने अधिकार के आहत होने का अफसोस वनमाला के सांवले चेहरे पर झलक जाता था । उस दिन भी चोरी-चोरी झांकती उसकी निगाहों में वह शिकायत प्रियहरि पढ़ रहा था । वनमाला के मन की चुभन उसका अफसोस प्रियहरि का भी अफसोस था । अगर नियति की पैदा की हुई परिस्थितियां बीच में न होतीं तो वे दोनों इस तरह दूर एक-दूसरे की आंखों में झांकते साथ होकर भी साथ न रह पाने के मलाल से उदास न होते। वनमाला का शरीक होना प्रियहरि की भी उदास प्रसन्नता का कारण था । वह अगर उस रोज न होती तो सारा कुछ होकर भी प्रियहरि अंदर-अंदर उसे बसाये टूटा हुआ होता । दोनों के बीच घुस आया उसका नया यार आज नहीं था इसलिए माहौल में चाहे प्रियहरि और वनमाला दूर-दूर रहने मजबूर रहे लेकिन उन दोनों के ही दिल जानते थे कि सारी निगाहों की गलतफहमी से परे प्रियहरि - वनमाला की जोड़ी उस दिन माहौल में छाया की तरह बसी थी ।

प्रियहरि खुश होकर भी उदास था । वनमाला से वह कैसे कहता कि - "मेरी प्यारी, मेरे हृदय की साम्राज्ञी, लाचारियां नहीं होती तो आज तुम्हारी आंखों में यह शिकायत न आने देता कि सबसे पास होकर भी तुम्हें मैं दूर क्यों रखता हूँ। अगर मेरा वश चलता तो ठीक मेरी बगल में महारानी की तरह तुम श्रृंगारित होती और सारा आयोजन यूं हो जाता कि जैसे हनीमून से पहले हम दोनों की जोड़ी सभी की स्पृहा का केन्द्र बनी विवाहित-युगल की तरह स्वागत के समारोह में बैठी हो । काश ! काश, वैसा होता ।"

चाहत की कल्पनाओं और कठोर यथार्थ के बीच का यह फासला था । इस फासले को देखता प्रियहरि कल्पनाओं की ओर झुकता संभावनाएं रचना चाहता था और परिस्थितियों की मुसीबत में जकड़ी वनमाला उन संभावनाओं को धकेलती यथार्थ की ओर रुख किये प्रियहरि से (और शायद उस नये यार से भी) मिन्नत करती कि किस्मत के टेढ़े खेल में इस यथार्थ को वह क्यों नहीं स्वीकार लेता ? प्रियहरि वनमाला को कैसे समझाता कि संबंध यूं नहीं टूटते । संबंधों की भौतिक दूरियां लाचारी में टूटने का आभास दे सकती है लेकिन उन स्मृतियों को वे दोनों कहां ले जा सकते थे, जो कभी नहीं तोड़ी जा सकतीं। उन्हें दूर करने की कोशिश में वे - और इतने करीब दिलों को ले आती है कि सारी कोशिशें धरी रह जाती हैं। वनमाला भी इसे अच्छी तरह समझती है । वनमाला प्रियहरि की ढेरों कविताओं की नायिका थी । दिखाती वह चाहे जो हो, लेकिन प्रियहरि की सारी की सारी रचनाएं उसके अंदर बसी थीं ।

उस विशेष दिन सबसे पहले भोज की ही व्यवस्था थी । स्टॉफ के सदस्यों ने जिनसे वनमाला अलग न थी, स्वेच्छापूर्वक घरों से खाना लाकर व्यवस्थापूर्वक शानदार आयोजन किया था । वनमाला और प्रियहरि के बीच के नाजुक संबंधों को सारा स्टॉफ जानता और शरारत की निगाहों से देखता था । इसलिए भीड़ में अपने निजी एकांत के अनुभवों को तटस्थ दूरी में प्रयासपूर्वक दिखाने की लाचारी दोनों ही लाचारों की थी । फिर भी सूप का प्याला उठाये प्रियहरि और वनमाला टकरा गये ।

प्रियहरि ने अपनी आत्मीय कवि-मित्र अनामिका से वनमाला का परिचय वहीं करा दिया । वनमाला की तारीफ करते हुए उसने कहा था - "वनमाला भी लिखती हैं लेकिन संकोच में छिपाए रखती है ।" वनमाला लजा गई थी । संकोच में मुंह से इतना ही निकला - "ये तो ऐसे ही मेरी तारीफ कर रहे हैं, मुझे लिखना नहीं आता ।"

कविता-पाठ का आयोजन सलीके का था । वह सभी को अच्छा लगा । अनामिका, ताहिर, एकनाथ, और तन्मय ने अपने-अपने रंग की कविताएं पढ़ी थीं । एकनाथ की कविताओं में चलता-फिरता मंचीय व्यंग्य था। ताहिर की कविताएं दैनंदिन जीवन के छोटे-छोटे दृश्यों और अनुभवों बुनी छबियों में थीं। तन्मय की

कविताएं राजनीतिक तंत्र के खिलाफ तल्खियों से भरी विद्रोह की थीं। अनामिका ने भावनाओं की मिठास से भरी गजलें और कुछ गीत सुनाए थे ।

अनामिका की स्वर लहरी में मिठास थी। रचनाएं गाकर पढ़ी गई थीं। वे नारी के कोमल मन और जीवन से जुड़ी थीं । उसे इसीलिए विशेषत: पसंद किया गया । अंत में इन सबने प्रियहरि से भी अपनी कविताएं सुनाने का आग्रह किया । प्रियहरि मंच का कवि नहीं था । दीवाने प्यार में गहरी प्यास की कविताएं उसकी चाहत थीं। फिर यह भी तो कि उसकी प्रिया वनमाला जो कविताओं की नायिका थी साक्षात सामने बैठी थी ।

संकोच से प्रियहरि ने बहाना बनाते मना किया - "पुस्तक है नहीं और कविताएं खुद को याद रहती नहीं । फिर यह भी कि यह आयोजन खुद हमारा है इसलिए अपनी कविता पढ़ना मुझे खुद अच्छा नहीं लगेगा, मुझे क्षमा करें।"

अनामिका प्रियहरि का संकोच पहले से जानती थी । पहले ही फोन पर बातचीत में प्रियहरि से उसे आभास मिल गया था कि वह कविताएं नहीं पढ़ेगा । अनामिका को उसकी कविताएं पसंद थीं। एक बार प्रियहरि की कविताएं पढ़ते रात दस बजे उसने प्रियहरि के फोन की घंटी टिनटिना दी थी। प्रियहरि की बीबी, जो उसके बाहरी संबंधों, खासकर औरतों की निकटता के प्रति एलर्जिक थी, ने फोन उठाया था और मुंह बनाते उस वक्त प्रियहरि के हाथ में उसे थमा दिया था । अनामिका की आवाज में अद्भुत मिठास और सुरीलापन है । अचानक और अनपेक्षित अनामिका की आवाज न पहचानते प्रियहरि चौंक पड़ा था । वह पशोपेश में पड़ा परिचय पूछ रहा था और अनामिका प्रियहरि की ही प्रेम-कविताएं भावनापूर्वक सलीके से फोन पर सुनाती उससे ही उसका अपना परिचय बूझना चाहती थी ।

मंच पर ही अनामिका ने हौले से अपना पर्स खोला और प्रियहरि की कविताओं की पुस्तक उस आयोजन में उसके सामने ही रख दी । प्रियहरि दुविधा और संकोच में गड़ा जा रहा था । उसने अनामिका से कहा - "मैं नहीं पढ़ना चाहता । जरूरी ही हो तो मेरी ओर से अपनी मर्जी से चुनकर और अपनी पसंद से ही मेरी कुछ कविताएं आप पढ़कर सुना दें ।"

प्रियहरि आश्चर्य से स्तब्ध रह गया जब अनामिका ने चुन-चुनकर ठीक उन्हीं रचनाओं को सबके सामने तल्लीन भाव से स्वरों की मिठास के साथ संतुलित यति और गति से पढ़ना शुरू किया जो उसकी प्रिया वनमाला के लिए परम व्यक्तिगत थीं। अनामिका पढ़ती रही, स्टॉफ के बीच वनमाला सुनती रही, और पढ़ने और सुनने के बीच प्रियहरि निरंतर संकोच में धंसा जाता रहा। उसने पाया कि वनमाला के लिए खुद के प्रेमपत्र जिन्हें वह पढ़ चुकी थी जैसे अनामिका के द्वारा सार्वजनिक रूपा में पढ़े जा रहे थे -

जिया मैं उस जगह के लिए
मिटा मैं उस जगह के लिए
जहां
नहीं थी मेरे लिए जगह

000

आज
मन
इतना हल्का हुआ
इतना
कि
बहुत भारी हो गया ।

चाहा
कि
रोऊँ आज जी भर
पर
रोया न गया ।

शायद
करता हो याद कोई
जो
आ रहा है याद
बार-बार ।

000

वर्णमाला
के
बहुत से अक्षरों के बीच
ठहर जाती है आंख न पर

चित्त फिर रटता है
'न... न... न....'
आंखें फिर देखती है
'न.... न.... न...'

अस्तित्व की सारी वर्णमाला
सिमट
जाती है
दुनिया
जैसे खत्म हो जाती है
'न' पर।

000

पत्थर मारे
मरा नहीं वह
चाकू मारे
मरा नहीं वह
आग लगाई
जला नहीं वह
पानी डाला
गला नहीं वह
बात लगी

वह ढेर हो गया ।.

000

क्रूरता कितनी **?**

जिन्दगी
वे दे नहीं सकते

मौत
भी देंगे
अगर
तो
रुलाकर
तिल-तिल रुलाकर ।

काश ! न्यायाधीश
भोगते
वह दंड
निर अपराध
कोई
गुजरता आया रहा जिससे।

अनामिका प्रियहरि की कविताएं तल्लीनता से सस्वर पढ़ी जा रही थी। प्रियहरि को यूं लग रहा था कि जैसे अनामिका ने उसे सबके सामने अंदर से खोलकर रख दिया है । वह संकोच और लज्जा से गड़ा जा रहा था । यह नेहा की चतुराई थी या मैत्रीपूर्ण सामूहिक षड़यंत्र कि इस दिन के कार्यक्रम की संचालिका वनमाला को ही बनाया गया था और आश्चर्य कि वनमाला राजी भी हो गयी थी. वनमाला उसके सामने ही बैठी थी। भीड़ के बीच भी प्रियहरि ने चोरी से उसे निहार लिया था । अपने प्रति प्यार की इस सार्वजनिक अभिस्वीकृति से वह परम तुष्ट दिखाई पड़ रही थी । तन्मय, प्रसन्न, सहज और तनावमुक्त वनमाला उस क्षण जैसे सारा कुछ भूल गई थी। उसके चेहरे पर आत्मविश्वास थी चमक थी जो सलज्ज गर्व से उन स्पर्धारत रमणियों पर विजय का ऐसा संदेश था जो उन सभी को संकोच में डालता घोषित कर रहा था कि मैं अपने प्रिय से दूर हुई तो क्या हुआ, उसके हृदय में है तो केवल मेरा साम्राज्य। अपने सारे भ्रम अब दूर कर लो ।

अनियंत्रित भौतिक परिस्थितियों के बहाव में वनमाला किसी और में तब्दील हो जाती थी लेकिन जब वह अपने में लौटती तो खुद पर आश्चर्य करती अपने को पछतावे से भरा पाती। ऐसे वक्त प्रियहरि उसके सब से करीब होता। वनमाला महसूस करती कि बाहर के झूठ से परे प्रियहरि उसके अंदर वैसे ही गहरे बसा हुआ है जैसे खुद को प्रियहरि में समाया देखती है। कोई जादू था जो आमने-सामने होते ही चित्त को परे झटकता तूफान के वेग से दोनों हृदयों को खींचकर आपस में बाँध जाता था। उस वक्त निजता शून्य में विलीन हो जाती। तब भावनाओं और पारस्परिक विश्वास के अतल तल में डूबा वनमाला और प्रियहरि का अस्तित्व कहां जाकर खो जाता इसका पता ही न चलता था। वह दिन ऐसा ही था जब भीड़ के बीच सारी ग्रन्थियों से मुक्त आंखें झुकाते और मिलाते दोनों हवा में तैरते एक-दूसरे से विदा हुए थे। दोनों इस कामना से मचल रहे थे कि वे पल अब उनकी जिन्दगी में शाश्वत रहे आएं।

उस खास दिन वनमाला और प्रियहरि जैसे सारी दूरियां मिटाते फिर एक बार एक-दूसरे के दिलों में डूब चले थे । प्रियहरि समझ सकता है कि जागी हुई यादों के साथ वनमाला की रात वैसे ही तसल्ली और खुशी में कटी होगी जैसी उसने खुद ने काटी थी । उस रात फोन करके अनामिका से प्रियहरि ने जानना चाहा था कि कि उसकी पसंद की व्यक्तिगत कविताएं अनामिका ने क्या जानबूझकर वहां पढ़ दी थीं ? प्रियहरि ने संदेह किया कि क्या अनामिका से किसी की उस पर बात हुई थी? क्या किसी और ने उस दिन पुस्तक देखी थी और उसे वे चुनिन्दा कविताएं सुझाई थीं ? अनामिका ने बताया कि वैसा कुछ नहीं था । कविताएं उसने खुद चुनकर पसंद की थीं ।

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आप कुछ जल्दी आ जाया करें

चाहत की दुनिया का यह अजीब चलन है, जिसमें शिकार और शिकारी दोनों घायल होते अपनी नियति को बरकरार रखने में ही खुशी पाते हैं ।

कविता-पाठ के उस आयोजन के बाद जनवरी के उस अंतिम सप्ताह में प्रियहरि लगभग छुट्टी पर रहा आया था । उसकी मनःस्थिति इस दरमियान उसकी ही कविता की पंक्ति बनी रही - "आज मन इतना, इतना हल्का हुआ कि बहुत भारी हो गया।"

उस अंतराल के बाद प्रियहरि के कालेज पहुंचते ही लगभग फौरन वनमाला उसके सामने नमूदार हुई । इस तरह जैसे उसे प्रियहरि के पहुंचने के ही प्रतीक्षा रही हो।

वनमाला ने पूछा - "क्या बात है ? मैंने इन दिनों कई बार देखना चाहा लेकिन आप मिले नहीं। स्वास्थ्य खराब था क्या आपका ?" उसने बताया कि दो-तीन बार उसके कमरे में वह इस उम्मीद में झांक-झांक कर लौट गई थी कि वह मिलेगा लेकिन उसने प्रियहरि को पाया नहीं था । बाद में एक दिन पूछने पर उसे क्लर्क जेनीफर से जानकारी मिली कि आप सप्ताह के अंत तक नहीं आएंगे । वनमाला का कहना था कि उससे पहले उसे यह मालूम न पड़ सकता था कि प्रियहरि नहीं आ रहे हैं ।

वनमाला ने कहा -" मैं चाहती थी कि आपके पास लगातार बैठूं और आपके साथ मिलकर ही संस्था के मूल्यांकन की योजना पर काम करूं ।" फिर आगे यह कि "अब कल से हम साथ बैठेंगे ।"

वनमाला की बदली मनःस्थिति के संबंध में प्रियहरि का अनुमान ठीक निकला था । वनमाला का उस तरह आना, बात करना और इशा रों ही इशारों में चाहत की बरकरारी की दिलचस्पी, प्यार का इजहार उसे अच्छा लगा । वादे के मुताबिक वह प्रियहरि से मिली। वनमाला बोली - "अब आपके पास नियमित रूप से बैठा करूंगी । बतलाइए कि फिर कब काम शुरू करना है ? कब फुर्सत मिलेगी आपको ? मैं आती हूं तो आप व्यस्त रहते हैं।"

वनमाला प्रियहरि के सामने सशरीर बैठी थी और प्रियहरि का मन था कि कहीं दूर अंधेरों में भटक रहा था। वनमाला के चेहरे पर उसकी सूनी आंखें जमकर रह गई थीं। वनमाला के बदलाव पर उसकी खुशी में भी यह दुखभरी शंका थी कि कहीं वह फिर बदलकर उसे और अधिक गम में न छोड़ दे। प्रियहरि ने अविचलित भाव से उससे कहा -

"वनमाला, तुम्हें मालूम है न कि तुमसे व्यक्तिगत बातें किये बिना मैं नहीं रह सकता। फिर भी आना तुम्हें पसंद है तो आया करो" वह कहता गया - "तुम मुझे उलझन में डाल देती हो । तुम्हारा आना मुझे उलझा जाता है । पिछली बातें याद करता हूं तो यह सोचकर भी दुख होता है कि तुम केवल औपचारिकता के लिए मेरे पास बैठी हो ।"

वह सच भी था । प्रियहरि यह तय नहीं कर पा रहा था कि वनमाला स्वेच्छा से बिगड़े संबंधों को जोड़ रही है या पुनः महत्व पाने की उसकी वह तरकीब है । पल भर की चुप्पी के बाद प्रियहरि ने आगे कहा - "तुम्हें भी

सचमुच मुझसे मिलकर मेरे पास बैठकर प्रसन्नता होती हो तो बैठा करो। अन्यथा तुम्हें मैंने कह ही दिया है कि स्टॉफ में जहां और जिसके साथ बैठकर तुम यह काम कर सकती हो कर लो । कोई मजबूरी नहीं है ।"

वनमाला ने पशोपेश भरी नजरों से उसे देखा । प्रियहरि के संदेह से संभवतः वह आहत हुई थी। वह कुछ झिझकी। वनमाला मानो खुद से और प्रियहरि से भी सवाल कर रही हो कि बेबसी की जिन्दगी में प्रसन्नता का वजूद है कहां, जो मुझसे पूछते हो ? अर्थपूर्ण ढंग से उसने प्रियहरि का शब्द दोहराया -"प्रसन्नता" और खामोश हो गई ।

वह बोली - "नहीं, आपके साथ बैठकर ही यह काम हो सकेगा । मैं कोशिश करती हूं लेकिन बहुत सी चीजें, बहुत से अंग्रेजी शब्द मुझे समझ में नहीं आते । आपकी अंग्रेजी की समझ अच्छी है इसलिए आप ही कराइएगा ।"

उसने कहा - 'व्यक्तिगत वाली बात आपने ठीक कही मैं उससे बचना चाहती हूं ।'

प्रियहरि ने उसकी आंखों में झांका । अविचलित गंभीर वाणी में उससे कहा - " वनमाला, तुम्हीं बताओ, व्यक्ति से उसका व्यक्तिगत कभी अलग हो सकता है ? खासकर तुम्हारे बारे में ? शायद तुम ऐसा कर सकती हो लेकिन मैं कैसे करूं ? सब कुछ जानकर भी तुम ऐसा क्यों करती हो ?"

कुछ पल मौन में बीते । न जाने क्यों वनमाला के चेहरे पर उदासी ने जैसे स्थायी बसेरा बना रखा था । वह गुमसुम रही फिर उसने पूछा -" मैं जाऊँ ? लोग आपके पास आने इंतजार करते होंगे ।" प्रियहरि ने उसकी ओर देखा और दृढ़तापूर्वक कहा - " नहीं, तुम बैठो प्लीज़ । कितनी मुश्किल से तो तुम्हारा साथ मिल पाता है । "

वनमाला निर्विकार बैठ गई । जैसे उसके मन में हामी भरी हो और प्रियहरि से उसे ऐसे ही मनुहार की प्रतीक्षा रही थी । कुछ पलों के लिए खामोशी भरा पशोपेश फिर छाया रहा । प्रियहरि ने उससे पूछा - "कवि-गोष्ठी वाला कार्यक्रम कैसा लगा ?"

चहक कर वनमाला ने कहा - "बहुत अच्छा । खासकर उन मैडम की कविताएं मुझे सबसे अच्छी लगीं।"

प्रियहरि ने पूछा - "और बाकी लोगों की ?" थोड़े ही शब्दों में वनमाला ने संक्षिप्त टिप्पणियां सभी पर रख दी थीं।

"और वे कविताएं जो मेरी ओर से मैडम ने पढ़ी थी ?" - प्रियहरि ने पूछा

"बहुत ही अच्छी थीं । उन्हें तो पहले ही आपकी फाइल में मैंने पढ़ ली थी और फिर बाद में आपकी पुस्तक में भी तो" - वह बोली ।

प्रियहरि ने पूछा - "तुम्हें ऐसा नहीं लगा कि जैसे जैसे कोई योजना हो, चुन-चुनकर, उन्होंने ठीक वही कविताएं पढ़ी थीं जो प्रेम की हैं और ठीक तुमसे जुड़ी हैं।"

वनमाला हंसी, बोली - "हां मुझे ऐसा लगा । मैंने तो यही सोच रखा था कि आपने चुन-चुनकर वे ही कविताएं उन्हें पहले से बता रखी हैं।"

" वनमाला, तुम्हारी कसम । मैंने वैसा नहीं किया । बल्कि मुझे तो खुद शक हुआ कि वे कविताएं यहां पुस्तक देखकर किसी ने शरारत से उन्हें सुझा तो नही दी थीं ।" प्रियहरि ने बताया कि उसने मैडम से भी इस बारे में बाद में पूछा था जिस पर उन्होंने जवाब दिया था कि 'आपने मुझ पर छोड़ दी थी इसलिए मैंने वही कविताएं पढ़ीं जो मुझे सबसे ज्यादा पसंद थीं । "

वनमाला प्रसन्न थी । भीड़ को बाहर जमा होता देख उसने कहा - " मैं अब चलूं । लोग देख-देखकर वापस जा रहे हैं । " वह पूछ रही थी - "क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आप कुछ जल्दी आ जाया करें ताकि भीडभाड़ न हो और दूसरों के आने से पहले बाधा के बगैर बैठकर काम किया जा सके ?"

प्रियहरि के चित्त में अचानक फिर वनमाला के दो चेहरे तैर गये थे। वनमाला के मूड से वह हमेशा भयभीय रहता था । साथ की तमन्ना लिये आज वनमाला की चाहत जिस तरह उसपर बरस रही थी उससे वह अचरज में था। वह न 'हां' कह सका और न 'ना'।

वनमाला चली गई थी । तब भी प्रियहरि खुश था कि अपने इश्क में गिरफ्तार को बीमार बनाए रखते खुद भी बीमार बना रहने की तमन्ना वनमाला में थी। चाहत की दुनिया का यह अजीब चलन है, जिसमें शिकार और शिकारी दोनों घायल होते अपनी नियति को बरकरार रखने में ही खुशी पाते हैं ।

प्रियहरि ने उस रात अपनी डायरी में लिखा -

"मैंने अक्सर सोचा है कि वनमाला और मेरे बीच झगड़ा क्या है ? जो है वह क्या सचमुच झगड़ा है ? अगर सचमुच कोई झगड़ा होता, सचमुच नफरत थी कोई दीवार हमारे बीच होती तो एक दूसरे को जानते हुए भी हम दोनों एक-दूसरे की ओर चुम्बकीय गति से क्यों खिचे चले जाते है ? मैं यह मान लेता हूं कि मुझे वनमाला से हर हाल में और सारी हदों से बाहर प्यार है । उसके लिए मैं हर अपमान की शर्त स्वीकार कर सकता हूं, लेकिन तब वह ? उसे अगर मुझसे नफरत है, वह अगर जानती है कि मैं बुरा हूं, मेरी बेचैनी उस पर सवार हो जाने की है, वह मुझे नहीं पसंद करती है तो क्या कारण है कि मेरे मन में उसके लिए चल रहे बुरे को जानने, बार-बार जानने के बावजूद, बार-बार बचकर मुझसे भागने के बावजूद सारी पाबंदियां तोड़, सारे अच्छों को छोड़ बार-बार मेरी उस बुरी नीयत से भरी प्यार-मोहब्बत की अप्रिय बातें सुनने का मोह यह वनमाला नहीं छोड़ पाती है। वह चाहती है कि अपनी वह आदत मैं छोड़ दूं । वह चाहती है कि मैं उससे प्यार न करूं, वह चाहती है कि मैं उसे भूल जाऊँ । वह चाहती है कि मैं उसके पीछे न पड़ूं लेकिन क्या यह अजीब नहीं है कि भीतर-भीतर वनमाला को उसके अपने ही अनचाहे से ऐसा प्यार हो गया है कि जो वह चाहती है, जिसे वह अपनी चाह की तरह बताती है उसकी सारी बंदिशें फांद वह उसी अनचाहे के लिए दौड़ी आती है।"

"हां, हममें झगड़ा है । हमारे बीच झगड़ा यही है कि झगड़ा जैसा दिखाई पड़ने के बावजूद कोई झगड़ा नहीं है । कहीं ऐसा तो नहीं कि झगड़े की सही जगह (जो प्यार में आखिर कर बिस्तर हुआ करता है) तन और बदन को तृप्त कर छका देने वाले मुरीद झगड़े का वह तरसाव है ? उसकी रुकावटों और जासूसी निगाहों की जलनखोर दखलन्दाजी से पैदा वह उबाऊ खीझ है जो हमें बाल नोचने और एक-दूसरे पर गुर्राकर ही सही यूं बदला लेने हमें उतारू कर रही है ? वे दिन मैं कभी नहीं भूल सकता जब हम दोनों हालत से परेशान एक-दूसरे से एक-दूसरे की शिकायत करते असहाय रो पड़ते थे । उसने मुझसे कहा था - "इसमें आपकी कोई गलती नहीं है । आप न जाने मेरे बारे मे क्या-क्या सोचते होंगे । मेरी किस्मत ही ऐसी है कि कभी किसी को कोई सुख न दे सकी। काश, अपने अंदर की पीड़ा को मैं दिखा पाती । मैं ही अभागी हूं, क्या करूं ?"

"ऐसे मौकों पर दर्द की तड़प उठकर कमरे में पसरती समूचे माहौल के साथ हमें यूं डूबा देती कि जी करता था सब कुछ भूलकर कमरे में एक-दूसरे के पीछे दौड़ते-भागते, फर्श पर लोट-लिपट-उठा-पटककर, चीखते, झपटते, हंसते, रोते और चिल्लाते समूची ताकत को अस्तित्व में समेट फौरन तन, बदन और जुबान से पूरे जोशोखरोश के साथ हम ऐसे भिड़ जाएं - इतना और इस कदर भिड़ें और टकराएं कि झगडे की भूख और प्यार की वह प्यास दोनों छक कर, एक-दूसरे को थकाकर और थक कर मिटा डालें जो बरसों से हमें अंदर ही अंदर खाये जा रही थी । लड़ाई की यह ऐसी चाहत थी जिसे समझाया नहीं जा सकता अपितु केवल हृदय की गहराइयों में जाकर ही उसका अनुभव किया जा सकता था। इस पीड़ा को भी वही समझ सकते हैं जो वनमाला और मेरी तरह हालात के मारे हों ।"

"काश, वैसा होता । होता था, मगर लाचारी की खीझ के उन लम्हों में जब ख़्वाबों में वनमाला का चेहरा बसाए, दिल ही दिल स्वर्गिक सुख से तृप्त करने वाले उस झगड़े के माहौल को रचता मैं किसी और के गड्ढे में जा गिरता था । शायद यही नियति वनमाला की भी थी । अक्सर ऐसा होता कि रात को मशीन की तरह जोती गई वह और रात भर अनचाहे गड्ढे को खंगालता मैं सुबह मिलते और एक-दूसरे का गिरा-थका बदन देखते तड़प कर रह जाते । लाचारी को एक-दूसरे ने टटोलते हम दोनों मन को मसोसते कि काश, अपनी विवश दुर्घटना को हम वांछित बना पाते । गिर-थके बदनों के पीछे के क्रीड़ा-व्यापार मे चाहत का बदलाव लिए वनमाला और मेरी प्यारी निगाहें एक-दूसरे से एक-दूसरे को पल की कौंध में भिड़ा देखती और रात के उस रोमांच की पुलक जिससे हम चूक गये होते थे, एक मीठी कसक के साथ हमें झकझोर देती थी ।"

"धीरज से सारा कुछ सहने की आदत और नियति को स्वीकारने की जिद्द में मेरी प्रिया बंधी थी । इधर मैं था कि सारे बंधन तोड़ उस पर टूट पड़ने की जिद्द पर अड़ा था । उतावली की हद तक पहुंची मेरी जिद्द, मेरे फोन, मेरी चिट्ठियां, मेरा अनुहार, दीवानगी भरी मेरी चाहत उस पोशीदगी को शायद घर और बाहर उजागर किये दे रही थी जिसे छिपाया जाना चाहिए था और जो घर और बाहर वनमाला की लोक-लज्जा की मुसीबतें बढ़ा रही थी। कहते है कि इश्क और मुश्क छिपाये नहीं छिपते। मै न छिपा सका, यही मेरा अपराध और वनमाला की नाराजगी का सबब था । उसकी नाराजगी मेरा दिल तोड़ देती थी और मायूस मैं उसके लिए जान देने पर उतारू था ।"

"न जाने कितनी बार नजदीकियों और दूरियों के बीच दिलों की ऐसी कश्मकश वनमाला और मेरे रुबरू हुई है। उदास और सूनी आंखों से वह मुझे निहारती, मनाती और दुआ करती कि वैसा नहीं होना चाहिए अन्यथा उसके जीने से भी क्या फायदा ? न जाने कितनी इबारतें शेरों, नज्मों, कविताओं और गीतों की शक्ल में मैंने लिखी है और 'न-न' के नखरों से वनमाला ने पढ़ी हैं । यह कैसी अजब लाचारी है ? हां, यही तो वह झगड़ा है। इस हद तक बढ़ा झगड़ा कि वनमाला रानी की तरह मेरे दिल पर राज करती है। उसका मुझ पर वैसा ही हक है जैसा गुलाम पर शहजादी का होता है। लेकिन काश !"

"काश, वनमाला समझ पाती कि लोगों के भीड़ के बीच निष्पक्ष और निरपेक्ष साबित करने का अभिनय मेरी मजबूरी है । वनमाला रूठती है तो रूठती ही चली जाती है । फिर इतना मान, ऐसा अहंकार, इतना गुस्सा कि कोई भी उसे बहका सकता था । उफानों के गुजरने के बाद वह खुद कुबूल करती है कि 'न' जाने मुझे क्या हो जाता है कि गुस्से की हालत में मैं बदहवाश हो उठती हूं । मुझे होश तब खुद नहीं रहता कि वैसी हालत में मैं कुछ का कुछ, क्या-क्या कह और कर जाती हूँ।"

"हां यही तो है । हमारे दरमियान यही कुछ है । अगर यह झगड़ा है, तो प्रेम की वह हद क्या होगी जहां पहुंचकर वह सब करना लाचारी हो जाता है जो हमारे - यानी वनमाला और मुझ प्रियहरि के दरम्यां घट रहा है ?"

जिसके वादे पे है उम्मीद टिकी
देखिये कितना वो तरसाता है

हर कोई पहले तो अपनाता है
बाद फिर दिल को तोड़ जाता है
जिसके वादे पे है उम्मीद टिकी
देखिये कितना वो तरसाता है
वो मेरे पास भी है दूर भी है
दिल को क्यूं इस कदर सताता है
कितनी रौशन चिराग यादें हैं
पर ये दिल है कि बुझा जाता है
आदमी भीड़ से धिरा लेकिन
कितना तनहा सा नज़र आता है
- मौलिक

वनमाला अब जब-तब मौके निकाल प्रियहरि के पास आने लगी थी । एक दिन बातों का सिलसिला फिर चला। वनमाला ने शिकायत की कि आजकल मेरा कामन रूम में बैठना मुश्किल हो गया है। पॉच-छः रोज से महिलाएं मेरे पीछे पड़ी हैं । नाना प्रकार की बातें सुनाती हैं। कहती हैं कि जब भी मैं आपके पास जाती हूं मैं शिकायत करती हूं और दूसरों को डांट खिलाती हूं। लोग वहां इतनी गंदी-गंदी बातें करते है और मुझे ताने देते

हैं कि मैं क्या बताऊँ ? उसने कहा कि दैनिक मजदूरी वाली वह मैडम तिवारी तक मुझे ताने दे रही थी। वह बड़-बड़ा रही थी कि यही औरत सब कराती है। वनमाला ने बताया कि अभी एक दिन जब वह सुबह साढ़े नौ बजे पहुंच रही थी तब वह औरत घड़ी देखकर उसे घूर रही थी।

प्रियहरि सुन रहा था। उसे याद आया कि वनमाला के सामने ही कभी उसने जूथिका को डांटा था कि वह गैरहाजिर पाई गई थी और उसका कोई बहाना वह नहीं सुनना चाहती। वनमाला बोले जा रही थी - "आप ही बताइए मैने आपसे शिकायत की थी क्या ? आपने क्या मेरा नाम लिया था ? मैने तो कब से इस बारे में बात करना ही बंद कर दिया है फिर मेरा ही नाम बार-बार क्यों आता है ?"

वह कहती रही - "मेरे विरुद्ध न जाने क्या-क्या गलत प्रचार किया जा रहा है। नाना प्रकार की बातें कही जा रही हैं। मैं लोगों को कैसे समझाऊँ कि मेरा किसी से कोई संबंध नहीं है, सब झूठ है। अपने पति के अलावा मैं किसी से संबंध नहीं रखती। न जाने यह सब कौन कर रहा है ?"

दो पल चुप रहती वह बोली कि मैं जानती हूं कि ये हरकतें कौन कर रहा है ? उसने नहीं बताया कि वह "कौन" कौन था ?

प्रियहरि ने उसे तसल्ली देते समझाया कि उसका नाम उसने नहीं लिया था। सबकी हाजिरी तो वह सामान्य नियम से जांचता है। शायद गलतफहमी और पूर्वाग्रह से उस पर शक किया जा रहा होगा। प्रियहरि ने यह पेशकश की कि अभी ही वह बुलाकर पूछता है कि वैसा क्यों कहा जा रहा है ? वनमाला घबराई - "ऐसा आप हरगिज मत कीजिए अन्यथा और बवाल मच जायेगा । इसमें भी लोग मेरा ही नाम लेगें।"

"लोग क्यों तुम्हारा ही नाम लेते है जबकि तुमने तो खुद चीख-चीख कर सब जगह लगातार बता रखा है कि मुझसे तुम्हारा कोई संबंध नहीं है । तुमने तो खुद ही सब जगह मुझे गाली दी है, मेरी शिकायत की है, मेरे विरुद्ध प्रचार की है। स्टाफ रूम में क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है इसके बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता क्योंकि मैं वहां बैठता नहीं । लेकिन तुमने मेरे साथ लगातार जो किया है, जो कर रही हो उससे मैं बहुत दुखी हूं ।" - प्रियहरि ने कहा - "तुम्हें लेकर मैं बहुत उलझन में हूं । क्या करूं समझ में नहीं आता ?"

वनमाला ने पूछा - "कैसी उलझन ?"

"बहुत सी बातें है । क्या हम कभी फुर्सत में बैठकर बात नहीं कर सकते ? यहां या बाहर कहीं और जहां कोई बाधा न हो।" प्रियहरि ने कहा - "तुम्हें याद है मैंने बहुत पहले तुमसे कुछ कहा था । मेरी प्रार्थना तुम स्वीकार क्यों नहीं करती ?"

टालने की वृत्ति में वनमाला यूं अचानक अनजान बन जाती थी जैसे उसे कुछ न याद हो। उसने कहा - "मुझे कुछ याद नहीं आ रहा है । कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि आप क्या करना चाहते है ?"

"हां अब तुम्हें क्यों याद रहेगा ? परिस्थितियां, स्वार्थ, चीजें, लोभ - सारे बदल गये हैं। अब तुम्हें चीजें क्यों याद आएंगी ?"

पशोपेश में पड़ी वनमाला को प्रियहरि ने पिछले साल इन्हीं दिनों उससे व्यक्त की गई इच्छा की याद दिलाई -"वनमाला, तुम्हारा सामान मैं दूसरे को नहीं सौंप सकता। मैं नहीं चाहता कि वह दूसरों के हाथ पड़े। बताओ मैं क्या करूं?"

वनमाला चौंकी - "सामान ? कैसा सामान ? मुझे तो याद नहीं पड़ता कि मेरा कोई सामान आपके पास है।" सशंकित और भयभीत उसने पूछा - "आप बताइए कि क्या है ?"

"वह हमारा है - हम दोनों का। उसमें मैं ही नहीं, वनमाला तुम भी हो" - प्रियहरि ने कहा। वनमाला का कहना था कि वह उसका नहीं, प्रियहरि का ही होगा। उसका उसमें कुछ भी नहीं था ।

प्रियहरि ने उससे कहा - "तुम भूल जाती हो मेरे अंदर प्रवेश करके वह तुमने ही रचा है। उसे स्वीकार कर लो प्लीज़।"

भयभीत वनमाला को इस आग्रह से खीझ हो रही थी । वह बोल पड़ी - "वह सब मेरा नहीं आप का ही है । वैसा आपने क्यों किया है ? इस विषय में आपसे मैं कोई बात नहीं करूंगी - न यहां, और न और कहीं ।

मेरी समझ में नहीं आता कि आपने वह सब क्यों लिख रखा है ? मैं क्या कहूं आपसे ? आप उसे क्यों रखे हुए हैं ? उसे फाड़ डालिए, जला डालिए।"

प्रियहरि को बहुत बुरा लगा। उसने कहा -"वनमाला, तुम चीजों को इस तरह टालती क्यों हो ? तुम्हें मुझसे शिकायतें हो सकती है। तुम बात कर सकती हो। मैं क्यों नहीं कर सकता ? मेरे सवालों, मेरी उलझनों के जवाब मैं क्या दूसरों से मांगू ? ऐसा नहीं हो सकता। मेरी रचना तुम्हारे पास ही जायेगी - मेरे यहां या इस दुनियां में न रहने के बाद भी। मैं केवल यह चाहता हूं कि तुम वह सब गंभीरता से देखो-पढ़ो। वह सार्वजनिक नहीं है। केवल हमारा है, हमारे बीच का। वैसा करने के बाद भले तुम उसे फाड़ डालो, जला डालो । तुम मुझे उलझन में डाल रही हो। बताओ मैं क्या करूं ? मेरे न रहने पर कोई तीसरा विश्वसनीय होगा - तुम्हारा या मेरा, जो उसे तुम्हें सौंपेगा ।"

"आप क्यों ऐसा कर रहे हैं ? मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है । विश्वास कीजिए, मैं आपको कैसे समझाऊँ कि मेरा आपसे, या जैसा आप सोचते हैं किसी और से उस तरह का कोई संबध नहीं है। न जाने आपने क्या समझा, और लिखा है। न जाने मेरे साथ ऐसा क्यों हो रहा है ? मैं सच कहती हूं कि अपने पति के सिवाय मेरा किसी से कोई संबंध नहीं है। न जाने कौन मेरे विरुद्ध यह सब प्रचार कर रहा है ? समझ सकती हूं कि यह कौन कर रहा है ? मैं उसे जानती हूं " - वनमाला ने जवाब दिया।

फिर वही सफाई और फिर वही "कौन" ? संबंध थे या नहीं, किससे कैसे थे - यह वनमाला और प्रियहरि के बीच की बात थी। आगे का हवाल उन गुमनाम पत्रों से स्पष्ट था। स्वीकार और अस्वीकार के बीच द्वंद्व में जीती वनमाला अपने को बाहर निकालने की असफल चेष्टाएं करती थी ।

प्रियहरि की आंखों के सामने क्षणांश में वनमाला और उसके नये छैला की इबारतें तैर गईं। उनकी गतिविधियां कौंध गईं । उसे वनमाला के अभिनय पर खीझ हुई और खुले तौर पर आवेश में वह साफ कह बैठा - "वनमाला, तुम झूठ बोलती हो। बहुत कपटी, स्वार्थी और मक्कार हो। दिखती तुम बहुत सीधी और भोली हो, लेकिन वैसी हो नहीं। तुम दूसरों को दोष देती हो लेकिन सच तो यह है कि जो कुछ बाहर हो रहा है उसके लिए तुम खुद दोषी हो। तुमने मेरे विरुद्ध क्या नहीं किया, क्या नहीं कहा ? क्या रख छोड़ा है तुमने ?"

इस अचानक प्रहार से घबराई वनमाला बोली - "मैं ? मैंने क्या किया है?"

"वनमाला, यहां सब बातें संभव नहीं हैं। तुम कहना तो चाहती हो, सुनना नहीं चाहती। तुम पर मैंने विश्वास किया, यही मेरा अपराध है । तुमसे तो बात करना भी बेकार है। तुम्हारा निर्णय अपना है। अब मैं तुमसे कभी नहीं कहूंगा । जो होगा, खुद देखूंगा । अपनी समस्याओं के साथ मुझे अकेला छोड़ दो । मैं बहुत बचता हूं कि मुझसे गलती न हो जाय लेकिन हो सकता है कभी गलती कर बैठूं । वैसा हो तो मुझे माफ कर देना प्लीज़ -" प्रियहरि ने कहा ।

प्रियहरि ने भावपूर्व नेत्रों से वनमाला को निहारा, उसकी आंखों में झांका । वहां कोई उत्तर न था । बस थी एक स्तब्धता । वह चली गई ।

बीमारी के बहाने दो दिन की छुट्टी का आवेदन वह सौंप गई थी । उसके हाथ में मोबाइल फोन था। प्रियहरि ने पूछा था -"यह तुम्हारा ही है न ?"

जवाब मिला था -"नहीं मिस्टर का है । कार से छोड़ गये थे । फोन कर दूंगी तो फिर लेने आ जाएंगे आधे रास्ते पर ।"

यह अजीब बात थी कि कार से लेने आता उसका पति आधे रास्ते पर ही रुककर उसका इंतजार करता । प्रियहरि ने सोचा ऐसे ही मोबाइल फोन लाई तो है, लेकिन किसे करने और सुनने ? बीमारी का कारण कहीं और है । वह एक पीछे लगा होगा मिलने, और यह बचने की कोशिश में होगी। मन न माने तो क्या करे ? रूठे यार को मनाने यहां से बाहर जाकर कहीं मिलने संदेश भेजेगी ।

प्रियहरि का सोचना जारी था । मासूमियत, भोलेपन, लाचारी का यह पुलिंदा कितना मौका-परस्त, कितना कुटिल, चालाक है ? वनमाला ने उस दिन फिर प्रियहरि से कहा था कि उनकी कक्षाएं भी दोपहर में कर दी जाएं । भला क्यों ? वनमाला भरसक उलझनों से बचना चाहती है लेकिन नियति ऐसी कि बचना मुश्किल

हो रहा है। बल्कि शायद यह कि बचना चाहती है, लेकिन खुद को सौंपने की इच्छाओं के साथ और खुद को बचाना न चाहती हुई ।

कैसे आऊँ पास देख लो कैसी मजबूरी है
घूर रही जलती ऑंखें हैं साथ मगर दूरी है

प्रियहरि सुबह ग्यारह बजे कालेज पहुंचा ही था । उसका चित्त वनमाला के साथ हुए पिछले संवाद से ही तनावग्रस्त था और उदास भी । वनमाला उसका प्रेम चाहती थी । अनकहे स्वीकार करती थी। वे दोनों एक-दूसरे से अलग न होना चाहते थे लेकिन वनमाला थी कि जुबान से स्वीकार करने में हिचकती थी । दो प्रेमी हृदयों के बीच यह स्वीकार और अस्वीकार की भाषा का झगड़ा था । अचानक वनमाला ने प्रवेश किया । पूछा कि कल आप आए और कहां चले गये थे ? मैं देख रही थी कि आप रुकेंगे। प्रियहरि ने बताया कि वह आकर जरूरी काम निपटा फौरन भोलाबाबू के साथ देवास चला गया था। सब सहज था, जैसे पिछले दिनों कुछ हुआ ही न हो । प्रियहरि सोचता रहा कि वनमाला क्यों आई थी ? क्या उसने तय कर रखा था कि उस दिन जब सारे अन्य पुरुष साथी चुनाव के प्रशिक्षण पर होंगे तब वह फुर्सत से उसके साथ फिर बैठ पाएगी और बातें करेगी ? क्या वह महज दिलासे की औपचारिकता थी ? प्रियहरि वनमाला से कैसे कहता कि वह खुद वनमाला की संभावित इच्छा जानकर कालेज पहुंचा था, लेकिन जगत से यह जानकर कि उससे पहले केवल विपुल वहां आया था और आधा घंटे वनमाला से बातें कर चला गया था, वह कैसे कहता कि वनमाला के साथ उसका व्यक्तिगत जब किसी और से चुगली और निर्णय की वनमाला की तरकीब है तो वह उससे संवाद की आशा कैसे करता ? संदेह के बावजूद प्रियहरि के मन ने कहा कि सुबह अपने नये यार से मिलने के बाद, उसे तसल्ली देने के बाद वनमाला के मन में अवश्य यह उम्मीद छिपी रही थी कि उसके यार सहित सारे पुरुषों के बाहर होने पर उस दिन परम एकांत में प्रियहरि के हृदय को सहलाती हुई वह अपने खुद की कसकती चोटों को भी सहलाने का सुख निर्विघ्न और देर तक उठा सकेगी। यह स्थिति अजीब थी कि वनमाला की तमन्ना अपने एक ही म्यान में दो-दो तलवारों को डालकर रखने की थी। समस्या केवल यह थी कि एक को वह संभाले तो दूसरे को उसका आभास न हो।

दूसरी सुबह पहुंचकर प्रियहरि ने प्रतीक्षा की कि शायद वनमाला आए। आजकल पहले से ही अनेक लोग, वनमाला का विभाग भी, पांच-दस मिनट के लिए ही सही प्रियहरि के पास आकर बैठ जाता। उस दिन भी वैसा ही हुआ था। बाद में बाहर निकल वहां ही खड़ी कुछ सहयोगियों से बात करते हुए प्रियहरि ने देखा कि वनमाला जा रही है । वह भवन के द्वार पर प्रियहरि की ओर देखती ठिठकी खड़ी थी। दोनों की आंखें टकराई थीं। प्रियहरि ने स्पष्ट पढ़ा था । वे आंखें कह रही थीं कि मिलना और बैठना तो था, लेकिन आप देख ही रहे हैं कि कैसी मजबूरी है ? तब दोनों का मन मसोसकर रह गया था। एक-दूसरे से मिलने को बेताब दिलों को मिलने का मौका दो दिन बाद ही मिला ।

उस रोज ग्यारह बजे जब प्रियहरि पहुंचा तो वहां छात्रों और शिक्षकों की खूब हलचल थी। परीक्षाएं निकट आती देख काम का समय सभी के लिए अब दोपहर से ही कर दिया गया था।

व्यस्तताओं के बीच करीब सवा बारह बजे जब प्रियहरि को थोड़ी फुर्सत हो पाई तो उसकी प्रिया वनमाला उसे अकेला पाकर अपने कागज समेटे आकर जम गई और घंटे सवा-घंटे वहां अटल रही। दोनों के अकेलेपन में भी हमेशा के विपरीत उस रोज लड़कों-लड़कियों और शिक्षक-कर्मचारियों की आवा-जाही बनी

रही । चाहते हुए भी दोनो कभी एक-दूसरे को और कभी हालात को देखते लाचार रहे । केवल एक बात हुई जो खास थी । प्रियहरि की शंका को पुष्ट करते हुए वनमाला ने अपनी आशंका को व्यक्त किया।

वह बोली -" पिछले दिनों तकरीबन रोज मैं आपके पास आने और साथ बैठने सोचती रही लेकिन मैंने देखा कि जैसे मेरी मंशा भांपकर ठीक उसी वक्त चार-छह लोग आपके पास आकर बैठ जाते थे । इन्हें मालूम है कि यह जाकर बैठ जाएंगी तो हम लोगों को जाने नहीं मिलेगा । इसीलिए आज आपके आने के बाद पहला आधा घंटा मैंने इन जलनखोरों के लिए छोड़ दिया था ताकि जो जाना-बैठना चाहे पहले बैठ आएं । "

प्रियहरि ने उसकी आंखों में झांकते हुए जवाब दिया -" तुम इनकी परवाह क्यों करती हो ? जिसे जो सोचना है, सोचता रहे । जितना डरोगी, उतनी डराएंगे। "

उस दिन वनमाला का अंदेशा बिलकुल ठीक था । वनमाला और प्रियहरि के मिलन के हर संयोग पर लोगों की निगाहें जमी रहती थीं। प्रियहरि से निकटता को लालायित नेहा कई बार यह संकेत छोड़ गई थी कि वह 'कुछ-कुछ' उसे बताना चाहती है लेकिन मौका ही नहीं मिल पा रहा है । आखिर फोन पर बात करती उसने वह बात उजागर की - " वनमाला मैडम की इन दिनों आपसे खूब छन रही है । उनके आपके पास जा बैठने से लोग फिर आप दोनों के बीच वहां आने से झिझकते है । आपको मालूम है कि इसे लेकर लोग नाना प्रकार की बातें कर रहे हैं ? "

प्रियहरि ने नेहा की बात पर चुहल भरे अंदाज में जवाब दिया -" क्यों ? तुम ही तो बताती हो कि वनमाला चिल्लाती फिरती है कि मुझसे उसका कोई संबंध नहीं है । उल्टे वह मेरी बुराई करती है । वैसा ही मैं भी कहता और करता हूं । तब फिर तुम और वे लोग ऐसा क्यों समझते कहते है ? लोग सब देखते रहे हैं, जान रहे हैं, फिर भी नासमझ हैं क्या ? "

" ओ .. हो, रहने दीजिए । कोई इन बातों पर विश्वास नहीं करता । सब को लगता है कि कुछ न कुछ है जरूर " - नेहा बोली

" तुम्हें तो विश्वास है न ?" - प्रियहरि ने पूछा ।

नेहा की शरारत भरी खिलखिलाहट प्रियहरि ने फोन पर सुनी - " मुझे भी विश्वास नहीं होता आप पर । कुछ है तो जरूर, जो आप छिपाते हैं। आप दोनों के बीच क्या बातें होती हैं यह आप भी कहां बताते हैं ? "

नेहा कहती रही -"आप दोनों की बातों के बीच कोई आए, यह खुद वनमाला को भी पसंद नहीं है । एक दिन आपके पास उनके रहते आपने जयदेव चौधरी को बुलाकर बिठा लिया था तो स्टॉफ रूम लौटकर मैडम आप पर बहुत नाराज हो रही थी। बड़बड़ा रही थी - " अपने से मेरी बातचीत के चलते बीच में उन्होंने एक जूनियर को जानबूझकर बुलाया और बिठा लिया । वनमाला खफा हो रही थी कि उसके सामने प्रियहरि ने मुझे अपमानित कर दिया। "

नेहा प्रियहरि से पूछ रही थी -" आप ने वैसा किया क्यों ? आपस के विश्वास में संदेह को बीच मे लाकर आप ने गलती की । आप को वैसा नहीं करना चाहिये था। "

बताओ न, मैं क्या करूं भी तो क्या ?

इन सबके चलते अगले दिन प्रियहरि ने पाया कि वनमाला का चेहरा उदासी से रंगहीन और अवसाद की उदासी से भरा है । उसने अनुमान लगाया कि फिर किसी तूफान से वह गुजरी है । जरूर उसके नाराज नये साथी ने तानों और उलाहनों के कहर वनमाला पर ढाये होंगे । जरूर यह कहा होगा कि जिस प्रियहरि के आकर्षण से बचने वनमाला ने उसका सहारा लिया था, अब वह उसे छोड़ कर क्यों बेचैन होती भाग-भागकर उसी प्रियहरि से चिपकी चली जा रही है ? आज सचमुच प्रियहरि से बचती वनमाला विभागीय कमेटी में आयकर का काम देखने के बहाने कुटिलाक्ष और विपुल के साथ बैठी थी । जैसी हालत वनमाला की थी, वैसी ही हालत विपुल की भी थी । उसका चेहरा भी रंगहीन उदासी में डूबा था । जैसे प्रियहरि के दिल का भी

उसे खयाल था, वनमाला इसी बहाने एक बार उसके सामने प्रकट हुई थी । क्षणांश को प्रियहरि और वनमाला की आंखों का उदास सूनापन टकराया था । प्रियहरि के मन को तसल्ली देती वनमाला की आंखों में मानो संकोच भरा उत्तर दर्ज था - "बताओ न, मैं क्या करूं ? मेरी तो मुसीबत है। मुझे तो उसे भी वैसे ही खुश रखना है जैसे आपको ।" कमेटी में बैठने की मजबूरी बता वह चली गई थी ।

दो प्रेमियों के बीच झूलती वनमाला से प्रियहरि के मन की रुझानें लगातार बढ़ती जा रही थीं। औरत का यह रहस्यमय पक्ष था । हां, वनमाला रहस्यमयी थी। उसके बरअक्स पुरुष-मन का रहस्य था । यह अजीब था कि सारा-कुछ आंखों के सामने होने के बावजूद प्रियहरि का मन अपनी लाचार प्रेयसी से और बंधा जा रहा था । रहस्य को जानने-समझने प्रियहरि एकबारगी वनमाला से जी भर उन बातों में उलझ लेना चाहता था जो शायद कभी न खत्म होती । लेकिन वनमाला ? वह थी कि सुलझाने की जगह प्रियहरि की उलझनें और बढ़ा जाती थी । ठीक अपनी ही तरह - जो अपने आप में एक जीवंत पहेली थी । प्रियहरि के पास वनमाला यूं ही आती रही थी, बैठती रही थी, लेकिन हमेशा चिरपरिचित उदासी और पशोपेश में ।

उस दिन जब वे थे आमने-सामने हुए तो ठीक वैसी ही स्थिति थी । जैसे प्रियहरि ने उस दिन दृढ़ निश्चय कर रखा हो, मूल्यांकन वाली फाइल सरकाते उसने सीधे वनमाला की आंखों में झांका और पूछ डाला - "वनमाला, मैने जो बात तुमसे कही है वह याद है ? तुम मुझे उलझनों में क्यों डालना चाहती हो ?"

प्रश्न को टालती वनमाला बोली - "क्यों ? आज काम नहीं करना क्या ? मैं जाऊँ ?"

"नहीं। तुम्हें बैठना होगा । बताओ कि तुमसे पूछने की बातें मैं तुमसे न कहूं तो किससे कहूं ? तुम जवाब क्यों नहीं देती कि आखिर मैं क्या करूं ? मेरे प्रेम, मेरे समर्पण की, तुम्हारे लिए मेरे ईमान की क्या कोई कद्र नहीं ?"

उस दिन न जाने क्या बात हुई ? वनमाला की आंखों में भी शिकायत थी । प्रश्न के जवाब की जगह उनमें अविश्वास, अनिश्चय, संदेह से भरे प्रतिप्रश्न तैर रहे थे ।

वह हौले से लेकिन दृढ़ स्वरों में बुदबुदा रही थी - " बातें ? ... हां बातें तो मुझे भी करनी हैं आप से । "

न जाने क्यों आगे वह न बढ़ पाई । कोई संकोच था, कोई दुविधा थी जो उसे यूं पशोपेश भरी चुप्पी में अचानक तबदील कर जाती थी । वनमाला की यही सब से बड़ी खूबी थी और सब से बड़ी खामी भी कि बहुत कुछ कहना चाहती भी अपनी पीड़ाएं, अपने दुख अपने अंदर ही संचित किये वह खामोशी की अंतहीन गुफा में सिमट रहती थी। उनसे अंदर ही अंदर वह छीजती होती। चेहरे और आंखों में वह छीजन उतर आई होती, लेकिन होठों की अभेद्य दीवार उन्हें ज़ुबान पर न आने देती।

अवश्य कुछ गंभीर रहा आया होता। उससे अधिक जितना वनमाला के शब्दों में समाया होता । अवश्य ही वह प्रियहरि से सरोकार रखता था। लेकिन तब सारा कुछ उसने छिपा लिया जैसे कहने की बजाय कथ्य को उसने प्रियहरि की सोच और अपनी ही पीड़ा में गुजरने छोड़ दिया हो। पर्यावरण से संबंधित कापियों के आंतरिक मूल्यांकन के मसले में अपने विभागाध्यक्ष कुटिलाक्ष के तिरस्कार और दुराग्रह भरे रवैये की शिकायत करती वह अपने दिल की बात बहाने से टाल गई थी । प्रियहरि ने इसे समझा तो लेकिन उस बहाने पर ही सही वनमाला का पक्ष लेते शिकायत का अंत किया था लेकिन तब ? वे शिकायतें भला क्या रही होगीं जो वनमाला की आंखों में तो बसी थीं, लेकिन जिन्हें उजागर करने से ज़ुबान सकुचा रही थी ?

उस वक्त स्वार्थ और अपनी ही शिकायतों में डूबा प्रियहरि का पागल मन भले ही वनमाला की आंखों में बसे उसके चित्त को न समझ पाया हो, लेकिन आज वह समझ सकता है कि लिहाज और संकोच में बात को टाल गई वनमाला के मन में छिपी वह बात क्या थी ? प्रियहरि एक तरफ तो वनमाला पर जान देता था और दूसरी ओर वही था कि जिसने लगातार उसकी उपेक्षा कर, उसे अपमानित करने औरों को महत्व दे वनमाला को जलाने उन्हें सर पर बिठा रखा था । इस कदर कि भरी पूरी भीड़ में वनमाला हंसी का पात्र बनी जा रही थी । बाहर-बाहर उसकी तारीफें करते भी प्रियहरि ने ही वनमाला के कामकाज से नाराजगी जाहिर की थी। सरकारी तौर पर उसने वनमाला को बेकार घोषित कर दर्ज कर दिया था ।

यह प्रियहरि ही था जिसकी सिफारिश पर वहां की सारी रमणियां तनखवाह में तरक्की पा चुकी थी और वनमाला सबसे काबिल और ऊपर रहकर भी नीचे अटकी पड़ी थी । वनमाला पर उन सबसे क्या बीत रही है इसका एहसास काश उसे हो पाता । क्या प्रियहरि के पास उन सवालों के जवाब थे जो वनमाला की आह भरी उदास नजरों मे छिपे थे ? नहीं, प्रियहरि के पास तो वही सवाल थे, जो वनमाला की देह को भोग कर समाधान पाना चाहते थे । वनमाला के सवालों में झांकने की फुर्सत उसकी बेताबी में भला कहां थी ?

वह दो पाटों के बीच फंसा था। एक तरफ नीलांजना थी, जो दिल ही दिल प्रियहरि को चाहती भी यह सोचकर उसमें डूबने से बचती कि उसकी चाहत व्यर्थ है। वह समझती थी कि उसके अपने उस तरह डूबते-डूबते वनमाला आ पहुंचेगी और जैसा कि अक्सर वह पाती है कि डूबने से बचता प्रियहरि अचानक उस रकीब की बांहों में समा जाएगा। दूसरी तरफ यह वनमाला है, जो दिल ही दिल यह मसोसती प्रियहरि से छिटक रही है कि उसकी मजबूरियों को समझने से परे अपनी अधीर बेताबी में बेवफाई करता उसका अपना समझा जाने वाला प्रियहरि जब उस साली नीली को बांहों में बांधे मुझ वनमाला को बेलिहाज जलाए रहा है, तो कैसे उसपर भरोसा किया जाये ?

ऐसा नहीं कि प्रियहरि को अपने किये और वनमाला की हालत पर मलाल न होता था । वे क्षण भी आते थे लेकिन दोनों के बीच हालात ऐसे हो जाते कि वनमाला की पीड़ा उसे ऊपर-ऊपर छूकर ही गुजर जाती थी । संवादहीनता में संवाद की सुधरी हालत और वनमाला से बढ़ती नजदीकियों ने प्रियहरि में फिर पीड़ा का वह एहसास कुछ-कुछ जगा दिया था, जो पिछले महीनों दब चला था । उसने मन ही मन यह ठान लिया था कि इस बार की परीक्षाओं में वनमाला को उसका सम्मान लौटाने वह परीक्षा अधिकारी अवश्य बनाएगा । उसने वैसा किया भी था लेकिन तब शायद बहुत देर हो चली थी।

वनमाला और प्रियहरि के दरम्यान शिकवे-शिकायतों और प्रियहरि के पछतावों की मनःस्थिति के चलते ही ठीक अगले दिन नेहा सुन्दरी इठलाती हुई प्रियहरि के पास आ बैठी थी । एक-दूसरे और तीसरों के हालचाल कहते-सुनते अचानक नेहा ने खुफिया रिपोर्ट दी ।

"आपको मालूम है ? वनमाला मैडम और विपुल में कल खुसर-फुसर हो रही थी । आपने मैडम को कुछ काम दिया है शायद ? मैंने उसके यार को उससे यह कहता सुना है कि तुम बिल्कुल मत मानना, मना कर देना, लिखकर लौटा दो कि मैं यह काम नहीं कर सकती... वगैरह ।"

नेहा ने बताया कि उस वार्ता के वक्त स्टॉफ रूम में केवल एक-दो मैडम लोग थीं। जाहिर था कि प्रियहरि के पास से लौटकर पिछले दिन की बातें वनमाला ने विपुल से कह दी होंगी । मनाही की सलाह निश्चयतः संस्था की गुणवत्ता के मूल्यांकन की योजना में वनमाला के दायित्व के संदर्भ में रही होगी। मकसद यह कि वनमाला प्रियहरि के पास न जाए और न उसके साथ बैठ पाए । इस सूचना से प्रियहरि का चित्त एकदम खिन्न हो गया । बाद में उसके एक विश्वस्त सुदर्शन ने भी उसे बताया था कि विपुल और वनमाला के बीच गुपचुप कुछ चल तो जरूर रहा था । पता लगा कि करीब सवा दो बजे वनमाला स्टॉफ रूम से बाहर निकली। एक मिनट बाद ही वहां बैठे विपुल का मोबाइल बजा। वहां बैठे लोगों ने गौर किया था कि दस कदम दूर ही भवन-द्वार के बाहर मोबाइल पर वनमाला व्यस्त थी । आधे घंटे बाद जब विपुल सहित वे सारे दोस्त कैम्पस के करीब ही होटल कोहिनूर में चाय पी रहे थे विपुल के मोबाइल पर फिर बुलावे की घंटी आई थी । उस पर "हां..हूं...", ..."वैसा कर लेना " जैसे संक्षिप्त जवाब देता विपुल अंततः " मैं आ रहा हूं" कहकर मोबाइल बंद करता अपने घर या उसके बहाने कहीं और खिसक लिया था । नेहा को भी ये बातें मालूम थी । प्रियहरि को आभास हो चला कि अवश्य कोई गंभीर संकट सन्निकट था। संभवतः अज्ञात सूत्रों से प्रियहरि तक पहुंचे वनमाला और उसके सलाहकार यार के बीच के बीच पत्र-प्रेमाचार की नकलें ठीक उसी वक्त अज्ञात सूत्रों द्वारा शिकायतों में बाहर भी यहां-वहां पहुचा दी गई थीं, जिस वक्त वे प्रियहरि के पास पहुची थीं। हो, न हो विपुल को भी वह सब कहीं से मालूम हो चुका था। वनमाला से विपुल की उस तरह की मंत्रणा उसी की कड़ी

थी। प्रियहरि के लिए वह आने वाले संकट की दस्तक थी। प्रियहरि उस सब से बेखबर और लापरवाह रहा आया था लेकिन इस सच की तसदीक बहुत बाद में तब जाकर हुई जब सारा कुछ मिट चला था।

न जाने कौन सी प्रेरणा थी कि प्रियहरि ने सारा कुछ देखते, सुनते, जानते भी वनमाला को शिकायत का मौका न देने किसी भी सूरत में अब उसे परीक्षा अधिकारी बनाना तय कर लिया था। तब भी अपनी मंशा बताते नीलांजना, मंजरी, विराग, उदयन वगैरह को उसने विश्वास में ले लिया था ताकि अपनी महात्वाकांक्षाएं आहत होने पर बाद में इन्हें शिकायत न हो । प्रियहरि का कहना था कि अपने पर पूर्वाग्रह और दुराग्रह के लांछन से बचने वनमाला को उसका इच्छित न्याय वह देना चाहता था । यह चाह इसके बावजूद थी कि उसके खुद के अनुभव में वनमाला के साथ अच्छा करना, उसे दूर रखने से ज्यादा खतरनाक होता है ।

उदयन विश्वास के पक्के और सज्जन थे । सौजन्यपूर्वक उन्होंने कहा कि वह प्रियहरि का अपना अधिकार है और उस पर आपत्ति का प्रश्न ही नहीं पैदा होता । नीलांजना दूध की जली थी और छाछ को भी फूक-फूक कर पीने में ही भलाई समझती थी। वनमाला से फिर टकराने की जगह उससे बचना उसने बेहतर समझा और अपनी अनिच्छा दर्शायी । विराग ने अप्रसन्न होकर भी कुछ न कहा और मंजरी को भी प्रियहरि का प्रस्ताव मंजूर था । सहमति के बावजूद सबकी राय आमतौर पर यह थी कि प्रियहरि भले ही भयग्रस्त होकर घबराता है लेकिन वनमाला को मनाने की जगह अगर वह दूर भी रखे तो कोई कुछ नहीं कहने का । बल्कि वैसा करने से लोग ज्यादा खुश होंगे। अगले ही दिन निर्णय पर अमल करते हुए प्रियहरि ने वनमाला को शाम की परीक्षा का परीक्षा अधिकारी घोषित करके फरमान जारी कर दिया ।

उस बेवफा ने और हवा दी लगा के आग ।
जलने को सिर्फ दिल ही जला और कुछ नही ॥ -सुखनवर हुसैन

प्रियहरि ने पाया कि लोगों का वह पूर्वानुमान सही सिद्ध हुआ कि वनमाला के साथ अच्छा करना उसे दूर रखने से ज्यादा खतरनाक होगा । यह कि प्रियहरि के लिए वनमाला खुद एक जंजाल बनेगी। आने वाले अनुभव ठीक ऐसे ही थे । मार्च के मध्य में शाम की परीक्षाएं आरंभ हो गई । प्रियहरि ने पाया कि तकरीबन दो महिनों का परीक्षा का वह पूरा दौर उसके लिये त्रासदायक यंत्रणा, उपेक्षा और नफरत का था जिसका भरपूर प्रदर्शन उसके प्रति बकायदा योजनाबद्ध ढंग से अपने साथी की प्रेरणा और सहयोग लेकर वनमाला ने उसके प्रति किया । वह सब इतना खुला, क्रूर और बेशर्मी भरा था मानो जानबूझकर प्रियहरि और उसके समर्थकों को वैसे करते हुए चुनौती देकर चिढ़ाया जा रहा हो । प्रियहरि ने देखा कि किसी काम से यदाकदा तलब करने पर भी वनमाला उपेक्षा दर्शाती और आना टालती थी । एक रोज संयोग ऐसा हुआ कि काम में समय से न आने पर तीन-चार लोगों से उसने जवाब-तलब किया । विपुल भी उनमें एक था । इसी दिन किसी काम से प्रियहरि ने वनमाला को भी बुलाया था । आधा घंटे इंतजार के बाद भी आने के आसार न दिखाई पड़े तो सरकारी तरकीब से एक पुर्जा जारी कर उसने वनमाला के नाम भिजवा दिया । प्रियहरि नेहा, सुदर्शन वगैरह ने उस रोज देखा कि भवन के दरवाजे से बाहर भरी धूप में वनमाला और भवन के पीछे सायकिल स्टैंड के एक कोने में खड़ा विपुल मोबाइल के तार से जुड़े वार्ता-परामर्श में तल्लीन है । देर बाद वनमाला ने पारा चढ़ाये प्रियहरि के कमरे में प्रवेश किया । पुर्जी सामने रखती उसने तैश ने पूछा कि यह सब क्या है ? सेवकों से यूं सूचना भेजने का कौन सा तरीका है ? यह मुझे पसंद नहीं मैं इस तरह काम नहीं कर सकती । मैं वहां अपना काम करूंगी या आपके पास आऊँगी ? प्रियहरि के सामने वनमाला का अपनी ड्यूटी से त्याग-पत्र रखा था ।

प्रियहरि अब भी वनमाला के मन में यह बात नहीं आने देना चाहता था कि उसे हटाने वह परेशान करना चाहता है। उसने पुनर्विचार करने के आग्रह के साथ त्याग-पत्र वापस करते कहा -"इतना बुरा मानने से

कैसे काम चलेगा ? मैंने अगर तुम्हें बुलाया या पुर्जा भेजा तो अपने संस्था प्रमुख के दायित्व के कारण वैसा किया । तुमसे अपनी उपेक्षा का अहसास क्या मुझे दुखी नहीं करता ?" उसने कहा "जो तरीका है वह सभी के लिए है । वनमाला, तुम्हें खासतौर पर बुरा इसीलिए लगता है कि तुम मुझ पर अपना विशेषाधिकार समझती हो, बावजूद इसके कि अपने पर मुझे सामान्य अधिकार भी नहीं देना चाहती ।" उसने वनमाला की आंखों में जो खुद को बचाना चाहती थी झांका और कहा -" वनमाला, पिछले साल परीक्षाओं के दौरान और उसके बाद तुम्हें इस पूरे साल इस बात की शिकायत रही कि मैंने सबके बीच तुम्हारी उपेक्षा की, तुम्हें परीक्षाधिकारी नहीं बनाया । तुम मुझ पर इस बात को लेकर नाराज रहती आई हो और अब जबकि मेरे मन ने तुम्हारी शिकायत सुन पक्ष में निर्णय लिया है, तुम मुझसे ऐसा बर्ताव कर रही हो । क्या यह ठीक है? "

आशंकित संकट का मुहूर्त आ चला था। यह केवल इब्तिदा थी। वनमाला ने जो जवाब दिया वह ऐसे स्वर में था मानो प्रियहरि का उसे परीक्षाधिकारी बनाना उसके लिए महत्वहीन था। यूं जैसे वैसा करके वनमाला ने उल्टे प्रियहरि पर ही अहसान किया हो । वह कह रही थी -" बनाया तो आपने अपनी मर्जी से है । मैंने तो आपसे कहा नहीं कि आप मुझे बनाइए । "

गिरगिट में शायद वैसी बेईमानी न होगी जैसी और जितने रंगों के साथ प्रियहरि इस वक्त वनमाला के तेवरों में देख रहा था । वनमाला के रंग बदलने में कितनी कुटिलता और बेईमानी थी । उसे बहुत पीड़ा हुई ।

प्रियहरि के विक्षुब्ध, आहत मन ने अफसोस से यह तय किया कि अगर अब वनमाला ने हटने की लिखित पेशकश की तो वह उसे तुरंत हटा देगा । उधर उसके नये प्रेमी को इतने भर से तसल्ली न थी। वह वनमाला की प्रियहरि से समीपता के भय से दिनभर वनमाला की चौकसी में बैठा और उसे बांधे रहता था । उसे इस बात की शिकायत भी थी कि वनमाला के कार्यकाल में विधिवत् उसे भी अन्यों की तरह वनमाला के साथ काम पर क्यों नहीं रखा जा रहा है ? वह वनमाला को उकसाता था कि या तो वह वैसा प्रबंध कराये या फिर वनमाला खुद प्रियहरि से झगड़ा कर अलग हो जाये। अपनी चालाकी और कुटिलता से उस विपुल ने ऐसा प्रबंध किया कि उन दिनों स्थानीय निकायों के चुनाव की सरकारी मुहिम में केवल वह और वनमाला काम से बचे रहे आएं। मौका यूं बने कि प्रियहरि सहित सारे पुरुष और अन्य विरोधी सरकारी फरमान से बंधे चुनाव की तैयारी और दीगर कामों में बार-बार बाहर बाहर रहने को बाध्य हो जाएं ।

अप्रैल के दूसरे हफ्ते की शुरुवात का वह खास एक दिन ऐसा ही था। उस दिन विपुल और प्रियहरि - वनमाला के दो यारों के अलावा दोपहर बाद सारे पुरुष सदस्यों को बाहर ऐसे ही काम में रहना पड़ा। स्त्रियों का समूह ही वहां बच रहा था। प्रियहरि ने बाबू से ऐसा इंतजाम करने कह दिया था, जिसमें उस रोज दोपहर और शाम की परीक्षाओं का सारा जिम्मा औरतों पर हो । वह सहज निर्णय था और प्रियहरि की समझ में एक अलग ढंग का प्रयोग भी ।

ऐसे इंतजाम की चर्चा के दौरान ही वनमाला की नाराजगी भरी एक टिप्पणी से प्रियहरि चौक उठा था - "हां डबल-ड्यूटी है तो मेरी भी, लेकिन सब की नहीं है ।"

प्रियहरि को बाद में ध्यान आया कि "सब की" से इशारा दरअसल वनमाला का अपनी डबल-ड्यूटी और उसके मलाल का नहीं था । उसके पीछे अफसोस इनमें अपने प्रेमी विपुल के छूट जाने का था जो औरतों की ही जिम्मेदारी वाले उस दिन छोड़ दिया गया था ।

उस दिन यानी तकरीबन तारीख आठ को परीक्षा की सारी जिम्मेदारी महिलाओं पर थी और देखरेख का काम प्रियहरि पर था । वनमाला का रवैया प्रियहरि देख रहा था । शाम की परीक्षाओं में उस वनमाला के पास जाने, उसे बुलाने, उससे बात करने या अन्य किसी सहयोग की कतई संभावना नहीं थी। ऐसे में उसने तय किया कि बाहर गये वरिष्ठ अधिकारी की जगह वह अपनी विश्वसनीय और निकट मंजरी को प्रमुख परीक्षा अधिकारी का जिम्मा सौंप दे । ऐसे में वनमाला दूसरे नंबर पर सहायक परीक्षा अधिकारी की अपनी जगह पर ही रही आती । वनमाला को यह बात न पसंद आनी थी, और न पसंद आई । बजाय यह सोचने के कि उसके

विरोधी रवैये के चलते वैसा करना प्रियहरि की मजबूरी हो गई थी, वनमाला की सोच में केवल प्रियहरि की उपेक्षा और अपनी स्वार्थ सिद्ध का लक्ष्य ही था । उस दिन दोपहर की परीक्षाओं से ही ड्रामा शुरू हो गया ।

दोपहर की परीक्षा से पहले ही नीलांजना का फोन पर संदेश मिला था कि परिवार में किसी रिश्तेदार की मृत्यु के कारण वह नहीं आ सक रही है । इधर प्रियहरि के मन ने कहा कि अवश्य वह वनमाला के ड्रामे का संभावित आतंक ही रहा होगा जिससे बचने नीलांजना डर कर खिसक चली थी । प्रियहरि को बुरा लगा लेकिन वह करता भी क्या ? नीलांजना की जगह तब भी उसने नहीं भरी । वनमाला के मन में सुलगते गुस्से का धुंआ दोपहर में ही उस तक पहुंचना शुरू हो गया था । परीक्षा शुरू होते ही उस दोपहर अनुराधा ने प्रियहरि को इत्तिला की थी कि वनमाला मैडम ने गुस्से में बड़बड़ाना शुरू कर दिया है कि जूनियर को परीक्षा अधिकारी आखिर कैसे बना दिया जा रहा है ? दोपहर में नीलांजना ही केवल उस खास दिन के लिए परीक्षा-अधिकारी नियुक्त थी । अनुराधा ने बताया कि मंजरी मैडम भी वनमाला को तसल्ली देती हां में हां मिलाती मुंह बनाती नजर आ रही हैं। प्रियहरि की समझ से यह परे था कि मंजरी के वैसा करने के पीछे क्या कारण था? जाहिर है कि शाम की अपनी प्रमुख परीक्षा अधिकारी की हैसियत से वनमाला के भय ने मंजरी को अभी से डराना शुरू कर दिया था। वनमाला के खौफ की आशंका और उससे भय के बारे में वह पहले ही प्रियहरि को बता चुकी थी। फिर यह बात भी थी कि नीलांजना को दोपहर में प्रमुख परीक्षा अधिकारी बनाया जाना शायद मंजरी को भी पसंद नहीं था । हो सकता है यह नापसंदगी वनमाला के गुस्से और उसकी प्रेरणा से उपजी हो ।

उस रोज ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे प्रियहरि के अलावा सारे के सारे किसी आशंका को पहले से सूंघते अज्ञात दुरभिसंधि का हिस्सा बन चले हैं। अब तक रिहर्सल से गुजर रहा वनमाला का असल ड्रामा तब शुरू हुआ जब शाम की परीक्षाओं का समय आया । सवा दो बजे घबराई हुई मंजरी प्रियहरि के पास पहुंची । वह बोली - "देखिए, वही हुआ न जिसका अंदेशा था । वनमाला मैडम काम छोड़कर जा रही हैं । प्रश्न पत्र निकालने की बात जब मैने उनसे कही तब चाबी मेरी ओर फेकती उन्होंने कह दिया कि मैडम सुपरिनटेन्डेन्ट आप है, आप जानिए । यह चाबी आप संभालिए, मैं जा रही हूं ।"

वनमाला के बड़बड़ाने, उसे प्रमुख परीक्षा अधिकारी न बनाकर किसी और को तरजीह देने के खिलाफ उसकी शिकायत, नीलांजना को महत्व देने के बावजूद उसके नहीं आने, फिर घर में बच्चे को कुछ चोट लग जाने के बावजूद खुद के कालेज आने की मजबूरी पर वनमाला के मिजाज की खबरें - इन सबकी बातें तो मंजरी और अनुराधा दोपहर से ही किये जा रही थीं लेकिन वनमाला से ऐसे व्यवहार और ब्लैक-मैलिंग की उम्मीद प्रियहरि को कतई नहीं थी । वनमाला का इरादा ऐन वक्त पर दिक्कतें खड़ी कर परीक्षा का सारा काम ठप्प कर देने का था । वनमाला के बच्चे को चोट लगने की बात अनुराधा ने प्रियहरि को बताई थी लेकिन खुद वनमाला ने वैसी कोई बात उससे नहीं की थी । और तो और काम छोड़ कर छुट्टी लेने पहले से वनमाला की कोई दरखास्त भी नहीं थी। यदि वैसा होता, तो प्रियहरि अवश्य विचार करता। रहस्य यह भी कि अनुराधा को वनमाला के द्वारा दी गई खबर के अनुसार बच्चे को चोट लगी तो थी, लेकिन कोई खास चिंता वाली बात नहीं थी। यह सोचकर वनमाला मैडम खुद ही काम पर आ गई थीं।

प्रियहरि से मंजरी की बातों के दौरान ही उसकी रूष्ट प्रिया वनमालाजी सामने नमूदार हो गईं। बोलीं - "यह रखिए छुट्टी का मेरा आवेदन। आधे दिन की छुट्टी के लिए यह आपके सामने रखा है ।"

वनमाला का तैश में आकर यूं छुट्टी लेकर अहसान जताने का लापरवाह रवैया प्रियहरि को पसंद नहीं आया । उसने जवाब दिया - "यह कोई मन-मर्जी वाली बात नहीं है । इस पर कोई कारण दर्ज नहीं है। कारण दर्ज कीजिए तब देखा जाएगा ।"

आज प्रेम-प्यार का मौसम नहीं था । वनमाला के रवैये से प्रियहरि का भी पारा चढ़ गया था । वनमाला ने पहले जुबानी बताया फिर लिखा कि बच्चे को चोट लगने की वजह से वह जा रही है । प्रियहरि ने उस पर ताना देते हुए वार किया ।

"तुम यूं क्यों नहीं कहतीं कि तुम्हारा इरादा केवल नाराजगी जताना और परेशान करना है ? बच्चे को चोट सुबह लगी थी और फिर भी तुम आ गईं । अब जब तुम्हारा महत्व का अनिवार्य दायित्व है, तब चोट का

बहाना बनाकर काम अटकाने की गरज से तुम खिसकी जा रही हो । साफ-साफ क्यों नहीं कहतीं कि असली कारण क्या है **?"**

वनमाला ने खुद ही अपनी बात में आगे जोड़ दिया - "हां मैं आप से नाराज़ हूं। असल बात यह भी है कि आपने मुझे प्रमुख अधिकारी न बनाकर मुझसे जूनियर को मेरे ऊपर क्यों रखा है **?"**

प्रियहरि ने व्यंग्यपूर्वक जवाब लौटाया - "यूं कहो न कि यही असल बात है । बच्चे का बहाना व्यर्थ था । अगर सचमुच तुम्हारी खिन्नता का कारण वही होता तो तुम मैडम और सेवकों से शिकायत करती हुई बड़बड़ाती न घूमतीं। सीधे आकर तुम मुझे ही बता सकती थीं ।"

बाहर जो व्यंग्य की कड़वाहट थी, वही अंदर छिपी वह पीड़ा थी जो आगे प्रियहरि के वचनों में उतरती चली आ रही थी।

"यह कैसा अजीब संयोग है कि तुम्हारी भावना की मैने कद्र की, तुम्हें संकल्पपूर्वक परीक्षा अधिकारी बनाकर मैने सम्मान दिया और तुम हो कि मार्च में परीक्षाएं शुरू होने के बाद आज पहली बार तुम्हें मेरी याद आई । तुम आईं भी, तो केवल इसलिए कि मुझसे लड़ाई करो, गुस्सा दिखाओ और मुझे अपमानित करो।" वह कहता गया था - "वनमाला, मै भी इंसान हूं । मुझ पर क्या गुजरती होगी तुम कभी सोचती हो **?** काश, तुम वैसा करतीं ! तुम जो कर रही हो उस पर मुझे बहुत अफसोस है ।"

वनमाला की नाराजगी पर अचानक बर्फ की परतें चढ़ आई थीं वह जैसे इन्हीं शब्दों की प्रतीक्षा में थी वनमाला के विक्षुब्ध हृदय में गहराता भारीपन मुख पर उतर आया था गर्दन झुक चली थी और आँखों में नमी लहरा आई थी अपनी ओर मुखातिब प्रियहरि की आँखों से उसकी आँखें पल भर को टकरा स्थिर हो गयी थीं परस्पर प्रतिबिंबित हृदय की करूणा दोनों में अविकल भाव से छपी थी - "तुम ऐसे क्यों हो ? तुमने ऐसा क्यों किया ?"

उस तरह प्रियहरि और वनमाला का वह दिन मानाभिमान के युद्ध में गुजरा और हृदय को पीड़ा पहुंचाते एक-दूसरे पर तानों से खत्म हुआ । वनमाला के विदा होते-होते उनके बीच अहं का टूटता अबोलापन अब दोनों तरफ चेहरों पर गहरी उदासी की शक्ल में उतर चला था। दोनों घायल और दोनों दुखी। वनमाला और प्रियहरि के चित्त पर एकबारगी यह एक ही सवाल चढ़ चला था - यह कैसी नियति थी **?** सोचते हम कुछ और थे, हो कुछ और जाता था। वैसा क्यों होता था **?**

मेरी नींद चुराने वाले जा तुझको भी नींद न आये

जैसे जखम दिये तूने रोया जैसे तेरी यादों में
आंसू बन मेरी यादें भी रात रात भर तुझे रुलायें
तड़पे करवट करवट तू भी जैसे तू मुझको तड़पाये
मेरी नींद चुराने वाले जा तुझको भी नींद न आये
- मौलिक

वनमाला का दुख क्या उसे दुखी नहीं करता था **?** यह तय था कि आज पीड़ा से भरा उसका ताना,
उसकी आत्मीय शिकायत अंततः वनमाला के मन में अंदर तक चुभ चले थे । इतनी रात गये यह
फोन मानो वनमाला की ही चुभन की आवाज था ।

उस रात जब प्रियहरि परेशान चित्त सोने के उपक्रम में था तभी बिस्तर से लगा फोन फिर उसी तरह घनघनाया जैसा इससे पहले भी हो चुका था ।   वनमाला के मिस्टर फोन पर थे। वनमाला ने उनसे शिकायत की थी कि बच्चे को चोट लगने की बात पर जब उसने छुट्टी की एप्लीकेशन प्रियहरि को दी थी तो वह नाराज हो गया था। वनमाला के मिस्टर को प्रियहरि से शिकायत थी कि सच बात यानी स्कूटर से सचमुच चोट आने की बात बताए जाने पर भी भला उसे क्यों नाराज होना था**?** उसका कहना था कि वनमाला मां होकर

भला झूठ क्यों बोलती और यह कि प्रियहरि ने उस पर विश्वास क्यों नहीं किया ? उसे कुछ तो वनमाला का ध्यान रखना था?

प्रियहरि ने उन्हें समझाया कि बातें उतनी ही नहीं और भी थीं। 'फिर कभी बात करेंगे' कहता उसने बगैर दूसरे सिरे की परवाह किये फोन रख दिया । प्रियहरि को वनमाला पर अब प्यार भी आ रहा था और गुस्सा भी । प्यार इसलिए कि उसे विश्वास में लेने, उस पर अपना मान जताने, अपना दुख जताने का ऐसा जिद्दभरा अधिकार कि अपने मिस्टर को भी वह उसके लिए बतौर जरिया इस्तेमाल करती है । गुस्सा इसलिए कि क्या वह वनमाला से इतना दूर था कि बजाय खुद उससे अपनी बातें कहने, झगड़ने के वह किसी और के उकसावे की, किसी और से शिकायत कराने के अवसर और बहाने ढूँढती थी । प्रियहरि सोच रहा था । वनमाला का दुख क्या उसे दुखी नहीं करता था ? यह तय था कि आज पीड़ा से भरा उसका ताना, उसकी आत्मीय शिकायत अंततः वनमाला के मन में अंदर तक चुभ चले थे । इतनी रात गये यह फोन मानो वनमाला की ही चुभन की आवाज था ।

प्रियहरि के लिए वनमाला अहंकार, नफरत और दुष्प्रेरित ईर्ष्या का अभेद्य स्तूप थी। यह समझ से परे था कि 'संबध-नही' के बावजूद प्रियहरि से ही अपेक्षाओं और विग्रहों के वैसे संबंध क्यों वनमाला के चित्त में बसे थे ? यह तय था कि प्रेम में उसकी सारी आकांक्षाए पूरी करने विपुल भी उसका गुलाम हो चला था। उसके पास तो अब निर्बाध आनंद के सारे अवसर थे । तब क्यों वह प्रियहरि को आहत करती खुद भी आहत होने के अनवरत उपक्रम में थी ? उसके लिए तो प्रियहरि को मुसीबत डाल परेशा न और परास्त करने का वह दिन विजय के गर्व पर था, लेकिन फिर ...? फिर वह क्यों रोई ? क्यों उसने खुद को भयानक तनाव, बेचैनी, गहरी उदासी और अवसाद के भंवर में फंसकर बीमार कर लिया ? फोन पर प्रियहरि ने सुना था कि वनमाला वैसी हालत में रही आई थी और नींद की गोलियां देकर उसे सुलाया गया था ।

अपने चित्त में समायी वनमाला को प्रियहरि देखता । वनमाला से हर टकराहट उसके हृदय को पीड़ा पहुंचाती अफसोसनाक उदासी की अंधेरी गुफा में ठेल जाती थी । उस दिन उसने जो किया, जो हुआ वह प्रियहरि की निर्विकल्प लाचारी थी । वनमाला को वह क्या और कैसे समझाता ?

उन्नीस से इक्कीस अप्रैल के तीन दिन फिर कालेज में प्रायः महिला-दिवस थे । प्रियहरि और विपुल के अलावा सारे पुरुष स्थानीय निकायों के चुनाव पर तैनात थे । इन दिनों में परीक्षाएं तो न थीं लेकिन मेडिकल और इंजीनियरी की आने वाली परीक्षाओं के फॉर्म लिये-दिये जा रहे थे। विपुल और वनमाला आते और पूरे तीन घंटे दोस्ताना एकांत में न जाने क्या बुनते स्टॉफ रूम गुजार जाते । वे जान-बूझकर योजनापूर्वक प्रियहरि की व्यवस्था से असहयोग कर रहे थे। विपुल ने क्लर्क के काम में मदद करने से दो-टूक मना कर दिया था और वनमाला ? उससे बात करने के तो प्रियहरि के संबंध ही अब न थे । प्रियहरि के कहने पर नीलांजना, नेहा, नंदिता, मंजरी वगैरह कार्यालय में क्लर्क जेनीफर की मदद करती रहीं । स्टॉफ रूम में बैठकर आराम से काम करने की मेरी सलाह पर सारी रमणियां होठों और नजरों की शरारत भरी मुस्कुराहट लिए प्रियहरि की वैसी ही मुद्रा से टकराई थीं। इन सभी का विपुल-वनमाला से प्रायः अबोला था । बेलिहाज, बेहया माहौल में जाकर खुद शर्मसार होना किसी को स्वीकार न था । देर से पहुंचती भी जल्दी जाने की आज्ञा में प्रियहरि की हिचक देख चंचल नेहा अपने समूह के साथ एक रोज तो स्टॉफ के कमरे से बाहर बरामदे में शरारत से चीखती अंदर बैठे हुओं को ताना भी मार गई थी - "लोग यहां फालतू ही आकर गुटर-गूं करते बैठते हैं और जो काम करते हैं, उन्हें जब-तब नियम सिखाते हैं । ऐसी भी बेहयाई किस काम की ?

खबरें जुटाने में नेहा माहिर थी। उसकी ख्याति ही चालू मामलों में दिलचस्पी रखने और हिकमत करने वाली चंचल छोरी के रूप में थी। प्रियहरि को वह खबर दे रही थी कि आप लोगों में झगड़ा चाहे जो हो, वनमाला आपकी तारीफ तो हमेशा करती है। कविता-प्रसंग के बाद नेहा ने किसी रोज कैम्पस की सड़क पर बाहर निकलतीं वनमाला और वल्लरी की बातें सुन ली थीं। छरहरी, कृशकाय, वल्लरी रानी ने कवि सम्मेलन के

दिन की प्रियहरि की कविताओं का जिक्र वनमाला से छेड़ते हुए कुछ कहा था और उसकी तारीफ की थी । नेहा बतला रही थी कि वनमाला ने पुष्टि करते हुए वल्लरी से सहमति दर्शाते खुद भी तारीफ की थी - "हां, प्रियहरि लिखते तो बहुत अच्छा हैं। इसमें शक की कोई बात नहीं ।"

उस महाविद्यालय में स्टॉफ के सदस्यों के जन्मदिन पर बधाई की परंपरा शुरू हुई थी। यह नेहा की ही मुहिम थी। एक रोज जिद्द-पूर्वक चंदा मांगती वह प्रियहरि के पास बैठी रही थी। वह कतई उस मुहिम में शामिल न होना चाहता था। उसे मनाती नेहा ने हारकर अंततः वनमाला का हवाला दिया।

"देखिए, मैने वनमाला मैडम से भी चंदा ले लिया है और उन्होंने ही शरारत से मुझे कहा है कि प्रियहरि को भी अब न छोड़ना। उनसे तो सबसे ज्यादा चंदा लेना ।"

प्रियहरि को मनाती नेहा बोली - "अब आप मना मत कीजिए । आपके नाम पर ही कवि-सम्मेलन वाले आयोजन में शरीक होने वनमाला मैडम को मैंने बहुत मुश्किल से राजी किया था। अब आपकी बारी है। जैसे वे मान गई थीं, अब आप भी मान जाइए।" नेहा की अदाएं फिर वनमाला का हवाला ऐसा था कि प्रियहरि को बिना माने बनता ही न था। नेहा उस दिन कहती रही थी - "आप से तकरार के कारण मान बताती वनमाला जानबूझकर अपने नये यार के साथ मिलकर आपको जलाना चाहती है ।"

प्रियहरि का जवाब था - "क्या मुझे जलाना ही मकसद था ? उससे तुम सब को भी तो वह जलाती है ।" नेहा यह कहती टाल गई थी कि छोड़िए न उन्हें जो बेहया हैं । जिन्हें जानने अब कुछ बचा ही नहीं है, उनकी क्या चर्चा ?

परिस्थितियां उन दोनों को चाहे शत्रुओं जैसी भूमिका में बदल रही थीं
पर तब इधर और उधर कुछ था, जो कभी टूटता न था।

परीक्षाएं मई की ग्यारह तारीख को खत्म हुई । लोगों ने देखा कि नियमतः बड़ी मुस्तैद पाबंदी के साथ विपुल उस दिन तक वनमाला की निगरानी में जमा रहा था। अक्सर संदेह होता कि घर तक वनमाला को ले जाने की नैतिक बाधा को काटने के लिए क्या पिछले दौरों में ऐसी कोई तरकीब कहीं बाहर जाकर निकाल ली गई होगी जिससे वैधता से बाहर, लेकिन विधिक रूप से वनमाला के साथी ने उसे फेरे, सिन्दूर, मंदिर, आर्य समाज वगैरह के चक्कर से बांध लिया हो। अगर वैसा न था तो अन्यथा छिड़कने वाली वनमाला ने अपने पहरे का हक उस पर क्यों स्वीकार कर लिया था ? कौन सी ऐसी बाध्यता थी कि वनमाला उसे सामने पाकर उसकी आज्ञाओं से स्वतः को बांधे रखने लाचार हो गई थी ? जो भी था बड़ा अटपटा और रहस्यमय था। निःसंदेह कुछ ऐसा हो चुका था कि गुप्त वैधता से यह व्यक्ति वनमाला की निगरानी का हकदार बन गया था। किसी रोज अनुराधा ने किसी और महिला लाइब्रेरियन का उदाहरण देते हुए वनमाला के इस मामले में टिप्पणी की थी कि जिसे जो करना है वह सारी हदें फांद लेता है।

गर्मी की छुट्टियों के दौरान इंजीनियरिंग और मेडिकल की प्रवेश परीक्षाएं थीं। विशेष तौर चिट्ठियां भेज दो-चार रोज के लिए तकरीबन सब को छुट्टियों से वापस बुलाया गया था। वनमाला के घर से चिट्ठी 'अधूरा पता है' की टीप के साथ लौट आई थी जबकि पता वही था जो रिकार्ड में दर्ज था। अनुराधा से वनमाला ने आत्मीय शिकायत की थी - "देखा, प्रियहरि ने सबको चिट्ठी भेजकर बुलाया, लेकिन मुझे छोड़ दिया।" प्रियहरि ने अनुराधा को हकीकत बता दी। उसने सोचा कि जब उससे वनमाला का कोई लेना-देना रहा नहीं फिर क्यों वह अधिकार जताती अपेक्षाएं रखती है ? अनुराधा की निगाह में उस वक्त वनमाला जैसे मासूम थी । इस वक्त बस में प्रियहरि के साथ बैठी अनुराधा वनमाला की सिफारिश करती उसकी ओर से सफाइयां दे रही थीं -

"मैं वनमाला को अच्छी तरह जानती हूं प्रियहरि। पहले हम जहां थीं, वहां वनमाला दीदी चुस्त-दुरुस्त पाई जाती थीं। काम-काज खूब करती थी। उत्साही रही है। वह बहुत ही इन्टेलिजेन्ट है। यहां आने के बाद ही न जाने उसे क्या हो गया है।"

प्रियहरि समझ नहीं पा रहा था कि अनुराधा आखिर उसे क्या बताना चाह रही थी **?** वनमाला ने जो बातें अनुराधा से की थीं, उसके पीछे का सच क्या हो सकता था **?** अनुराधा जैसे वनमाला की वाणी बोल रही थी - "आप जैसा सोचते हैं प्रियहरि, वैसा नहीं है। ऐसा नहीं है कि वनमाला-दी आपके पास आना नहीं चाहती। वह आपके पास आना चाहती है, लेकिन केवल इसलिए आने से हिचकती है कि कुटिलाक्ष और स्टॉफ के कुछ दूसरे मेम्बर उसे आप के पास जाते ताकते होते हैं। वे वनमाला-दी का मजाक उड़ाते उसे अपमानित करते हैं ।"

प्रियहरि को खयाल आया कि नेहा, मंजरी, वल्लरी भी पिछले दिनों वनमाला के पक्ष से वैसी ही सफाई देतीं उसके उदास मन को पिघलाने-सहलाने की कोशिशें करती रही हैं। वह अपने आप से पूछ रहा था -" क्या यह वनमाला का मन है, जो संदेशों में उस तक पहुंच रहा है **?** "

परिस्थितियां उन दोनों को चाहे शत्रुओं जैसी भूमिका में बदल रही थीं पर तब इधर और उधर कुछ था, जो कभी टूटता न था।

वनमाला की उन आंखों में एक चेतावनी थी, आदेश था, और अनुरोध भी।

अचानक प्रियहरि ने पाया कि दो आंखें उसे घूरतीं मंच से नीचे अवतरित हो रही हैं। यह वनमाला थी
जो मंच पर पति की प्रतीक्षा में खड़ी थी। वनमाला की उन आंखों में एक चेतावनी थी, आदेश था, और अनुरोध भी।

यह नया साल था और जुलाई की नौ तारीख थी। नेहा और उसके श्रीमान के साथ की प्रियहरि भी भोला बाबू की लड़की की शादी के निमंत्रण पर पहुंचा था। रात के साढ़े नौ बजे थे। कालेज का बहुतेरा स्टॉफ वहां खाने-पीने में व्यस्त था। वल्लरी के साथ वनमाला चहक रही थी। विपुल अनमना औरों के साथ खड़ा आंखों के खेल के मौके भुना रहा था। प्रियहरि की पुरानी चहेती जीनत अपने परिवार - यानी अपने मिस्टर और अब बड़ी हो चुकी अपनी बच्ची के साथ आई थी। इस बार उससे बात तो हुई, लेकिन वह अपनापन न था जो कभी हुआ करता था । जाहिर है कि मंजरी, नीलांजना वगैरह से सदमा पहुंचाती यह खबर उस तक पहुंचती रही थी कि प्रियहरि का तो किसी और के साथ चक्कर चल रहा है।

एक जगह घेरा बनाए विपुल की बीबी यानी वृन्दा, अन्य लोगों की श्रीमतियों से घिरी पाई गई। प्रियहरि ने सभी का अभिवादन स्वीकार किया, बातें कीं, लेकिन पहचान में उसकी झिझक पकड़ ली गई थी। विपुल की बीबी ने आधी उदासी और आधी हंसी के साथ तपाक से कहा - "जरा हम लोगों को भी याद कर लिया कीजिए, हमारा भी ध्यान रखा कीजिए प्रियहरि।" उसके शब्दों में संकेत निहित थे। उसकी बात सुनकर साथ की सभी स्त्रियां मुस्कुरा रही थीं । इशारा साफ था । संस्था के बर्तनों की खड़खड़ाहट घरों तक सुनी जाती रही होगी।

मंच पर जैसे ही वर और वधू का पहुंचना हुआ रस्मी बधाइयों के लिए लोग पहुंचने लगे। कालेज का समूह प्रियहरि के साथ पहुंचा जिससे वनमाला बाहर रही आई थी। मंच से उतरकर सब फिर अलग-अलग व्यस्त हो गये थे। वनमाला के मिस्टर की नजर प्रियहरि पर पड़ी। प्रियहरि की बीबी साथ थी। घर-बार, बाल-बच्चे की बातें चलीं तो प्रियहरि के बच्चों की जानकारी से विस्मित वनमाला के मिस्टर कह रहे थे - "अरे, मैं तो समझता था कि आपके बच्चे उतने ही बड़े (छोटे) होंगे जितने हमारे हैं।" उन्हें याद था कि उनके और प्रियहरि के एक बच्चे का नाम समान है। अलबत्ता यह नहीं मालूम था कि उनकी खुद की दूसरी संतान का नाम भी

वनमाला के आग्रह और उससे हुई आपसी बातचीत में प्रियहरि ने ही तय किया था। प्रियहरि का दायां हाथ वनमाला के मिस्टर के कंधे पर था ।

अचानक प्रियहरि ने पाया कि दो आंखें उसे घूरतीं मंच से नीचे अवतरित हो रही हैं। यह वनमाला थी जो मंच पर पति की प्रतीक्षा में खड़ी थी। उसकी घूरती आंखों से प्रियहरि की आंखें टकराईं। उनमें लिखा था -" खबरदार, मेरे पति से दूर रहो। क्या हमारे बीच विश्वास इस कदर टूट चला है ? यह ठीक नहीं है प्रियहरि । मुझे तुमपर कोई भरोसा नहीं । तुम फिर वैसी ही गलती दोहरा सकते हो।"

वनमाला की उन आंखों में एक चेतावनी थी, आदेश था, और अनुरोध भी। बगैर इस बात की परवाह किये कि वह एक सार्वजनिक आयोजन था और वे सब वहां परिवार मात्र थे, वनमाला अपने पति को झटक कर खींचती तुरंत मंच की ओर बढ़ गई। उससे ऐसे सौजन्य की अपेक्षा प्रियहरि ने की भी नहीं कि औपचारिक तौर पर सही वह प्रियाहरि के साथ खड़ी उसकी बीबी से मिले, दो बातें करे।

oooooooo

वह एक खास दिन संस्था में छात्रसंघ के चुनाव का था । संयोग से वही प्रियहरि का जन्मदिन भी था। खुद उसका उदास और निस्पृह मन तो बेखबर था लेकिन उसे आमंत्रित करते हुए सुबह-सुबह इसी दिन अनुराधा और जेनीफर ने जन्मदिन परंपरा में प्रियहरि के लिए संक्षिप्त लेकिन जोरदार आयोजन कर डाला । बाकायदा केक काटने का इंतजाम था और दिखाई पड़ने वाला उपहार भी । फूल, गुलदस्तों का ढेर तो था ही । उस रोज बाहर के भी बड़े अफसर काम पर वहां मौजूद थे । सभी ने देखा कि लंबी टेबिल के अंतिम सिरे पर वल्लरी के साथ खड़ी वनमाला के चेहरे के रंग फीके पड़ गये थे और बार-बार बदल रहे थे । उसका साथी विपुल हमेशा की तरह निस्पृह सबके बीच खड़ा था । वनमाला को शायद यह गवारा नहीं था कि प्रियहरि पर वैसा लाड़ कोई और, खासतौर पर नेहा, बताए और नजदीकी दिखाए ।

वनमाला के लिए वह सहना मुश्किल था । वल्लरी को साथ ले मानो अपना तिरस्कार दर्शाने ही वह बाहर निकल दरवाजे के पास जा खड़ी हुई थी । इसे प्रायः सभी ने दर्ज किया था । वनमाला का सा झटका प्रियहरि को भी लगा था। यह बात दीगर थी कि वह झटका उस वक्त प्रियहरि की खुद की कल्पना में दर्ज अभाव की उस चाहत का था जिसमें नेहा की जगह वनमाला को वह अपने करीब देखना चाहता था। ऐसे वक्त प्रियहरि के दिल से निकलती आह का अहसास अगर कोई कर सकता था तो उसके अंदर समायी हुई और बाहर उस तरह मुंह बनाती सामने से गुजरती वनमाला ही कर सकती थी।

विपुल को छात्रसंघ के अधिकारियों में रखा गया था । दूसरे दिन छात्रों के साथ चल रही बैठक के दौरान उसका मोबाइल फोन बजा । जयदेव सिंग ने लक्ष्य किया था कि जवाब में विपुल बुदबुदाया था कि 'मैं आ रहा हूं न ।' यह आवाज तीन बजे कालेज छोड़ती वनमाला अपने मोबाइल फोन पर सुन रही थी । यह विचित्र बात थी कि ढाई बजे वनमाला ने मासूमियत भी अंदाज में प्रियहरि से अनुमति लेते हुए उसी के फोन से कहीं बात की थी - शायद घर । बात बंगला भाषा में थी इसलिए ज्यादा सुन-समझ पाना प्रियहरि के लिए संभव न था । तीन बजे वही वनमाला मोबाइल फोन कान से चिपकाए बाहर राह पर थी। अर्थ यह कि घर की जानकारी में वनमाला के पास मोबाइल फोन नहीं था। अनुराधा का अंदेशा सही था।

इसके बाद का घटनाक्रम बड़ी तेजी से घटा। वनमाला इस बात से रुष्ट रही आई थी कि प्रियहरि की दूसरी सारी चहेतियों और चहेतों यानी नीलांजना, मंजरी, उदयन, सुदर्शन, विराग, जयदेव वगैरह के वेतनक्रम में तरक्की हुई थी। उसे इस बात का मलाल था कि उस पर जान देने का अभिनय करते भी प्रियहरि ने उसे धोखा दिया था। वह इन सभी से वरिष्ठ थी। फिर भी वेतन-क्रम का लाभ उसे ही नहीं मिला था । प्रशा सन में वनमाला की पूर्वसंगिनी सौदामिनी अच्छे ओहदे पर थी । उससे वनमाला पर यह बात उजागर हो गई थी कि प्रियहरि ने कामकाज में लापरवाही और उपेक्षा के आरोप उस पर सरकारी रिकार्ड में लगाए थे। पिछले दिनों प्रियहरि की जन्मदिन की बधाइयों में उसकी चहेतियों का धूम-धड़ाका भरा आयोजन वनमाला को अंदर तक

चुभ गया था। उसकी स्मृति में वह दृश्य था जब कभी किसी अवसर पर प्रियहरि ने नलिनजी की पहल के बावजूद उसके हाथों विभाग का सम्मानवत उपहार लेने से मना कर दिया था। इस साल वनमाला के खुद के जन्मदिन पर भी बधाई और उपहार स्टॉफ की ओर से खुद उसे भेंट करना प्रियहरि टाल गया था। कितनी चोट तब उसके मन को पहुंची थी इसकी कल्पना क्या उस प्रियहरि को हो सकती है **?** प्रियहरि के प्रति प्रतिशोध की तीव्र ज्वाला वनमाला के मन में धधक रही थी।

"आपको कुछ मालूम पड़ा ? अभी शाम पांच बजे पहुंच रही हूं
तीन बत्ती चौराहे पर मिलिए।"

प्रियहरि के लिए उसकी चहेतियों के आयोजन के ठीक दो दिन बाद की बात है । वह सितंबर की ग्यारह ग्यारह तारीख थी। वनमाला और उसका शुभचिंतक दोनों छुट्‌टी पर रहे आए थे। शाम को लौटते हुए प्रियहरि के पास बैठे सुदर्शन ने बस से बाहर झांकते इशारा किया था। सामने विपुल अपनी नयी कार में बैठा उल्टी दिशा से लौट रहा था। जरूर वनमाला पीछे रही होगी जिसे गहरे बंद शीशों की वजह से नहीं देखा जा सकता था। सारा कुछ घट चुकने के बहुत बाद प्रियहरि ने देखा था कि उस तारीख के ठीक एक सप्ताह बाद की तारीख में वनमाला की शिकायत पर विभागीय मंत्री जी की तल्ख टिप्पणी दर्ज थी कि वनमाला और प्रियहरि में से किसी एक को उस जगह से हटाया जाय। मंजरी, वल्लरी, नेहा वगैरह वनमाला की सारी खबर रखती थीं। अक्सर वे ऐसी सूचनाओं से प्रियहरि को आगाह करतीं। यह बात और है कि खुद वह इन बातों को हंसकर टाल जाता था।

आने वाले दिन प्रियहरि के लिए लगातार भयानक तनाव, निराशा और परेशानी के रहे। घात-प्रतिघात में नई-नई कड़ियां जुड़ने लगी थीं। नीलांजना से वनमाला का तीन और छः का आंकड़ा था। उसे भी बीच में घसीटा जाने लगा था। नीलांजना को प्रियहरि एकांत में कभी-कभी 'मेरी प्यारी नीला' कह संबोधित कर जाता था। एकाध बार किसी ने इसे सुन लिया था। अब वह देख रहा था कि उसके नाम इस बात को लेकर भी लड़कों से फोन पर लड़कियों की आवाज में छद्‌म-ताने दिलाये जा रहे थे। कोई कहता - 'हाय प्रियहरि, आह मैं क्या करूं अब **?** आपने तो मुझे बर्बाद कर दिया। मैं कहीं की नहीं रही।' पूछने पर कि 'यह कौन बदतमीजी कर रहा है' जवाब मिलता कि 'मैं नीलांजना बोल रही हूं। हाय रे, आपने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा है । अब मैं क्या करूं .....**?**" ये सब विपुल और मंजरी के चंद पालित गुर्गे हुआ करते थे, जो बरायेनाम एक राजनीतिक संगठन से जुड़े हुल्लड़ किया करते थे।

ऐसे ही माहौल में परेशान-हाल प्रियहरि राहत पाने के लिये अक्टूबर की उस खास तारीख पर छुट्‌टी में बैठ गया था। शाम करीब चार बजे नेहा ने उसके मोबाइल पर बात की। पूछा - "आपको कुछ मालूम पड़ा **?** अभी शाम पांच बजे पहुंच रही हूं तीन बत्ती चौराहे पर मिलिए।" शाम नियत स्थल पर नेहा अपने मिस्टर के साथ उसकी प्रतीक्षा में थी। उसने सूचना दी कि आज वनमाला की शिकायत पर कोई सौदामिनी मैडम आप दोनों के संबंधों को लेकर लोगों से खोज-खबर मालूम करने आई थी ।

नेहा ने सारा कुछ बयां कर दिया था। प्रियहरि ने जाना कि वनमाला की पूर्वसंगिनी सौदामिनी वहां आई थी। अपनी दुखिनी सखी वनमाला के खिलाफ प्रियहरि के रवैये को टोहती सौदामिनी यह कहती वापस लौट गई थी कि - "अरे, मैं तो हैरान हूं। मैने तो जो समझा था उससे ठीक उल्टी बात यहां मुझे नजर आ रही है।"

गुज्जी ने बताया कि लोग प्रियहरि के पक्ष में होते-होते भी ज्यादा कहने से कन्नी काट गये थे। विपुल और कानन उस रोज विश्वविद्यालय में काम करते रहे थे। वनमाला के अलावा केवल दो से सौदामिनी की लंबी बातचीत हुई थी। संभावना यह थी कि वनमाला की हरकतों का बयां करती भी मंजरी ने इसे कुछ-कुछ नफरत और प्रेम की आपसी टकराहट बताई थी। उसके विपरीत जयदेव ने वनमाला की संदिग्ध गतिविधियों और उसकी नई पनपती यारी का चिट्ठा सौदामिनी के सामने रखा था।

वनमाला हमेशा ऐसी मुहिमों के बाद अनमनी और हताश नजर आती थी, लेकिन विपुल पर तो मानो ओले बरस पड़ते थे। वह अलग-थलग हुआ अपना चेहरा छिपाये फिरता था। इधर प्रियहरि था कि खिन्न-मन दुविधा में पड़ा सोचता कि वह सब क्या था और किस तरह वह वनमाला को समझे और उससे पेश आए **?**

वल्लरी : सन्यासिन का केसरिया बाना

वनमाला चाहे झूठी थी, लेकिन अपनी छरहरी कृशता में सुन्दर वल्लरी की सूचनाएं उस पर एकदम सही थीं।

वल्लरी वनमाला की सहचरी थी । दोनों में कोई समानता न थी सिवाय इस बात के कि दोनों ही भीड़ से अलग थलग अपने में अहम्मन्यता में रहने वाली आत्मकेंद्रित रूहें थीं । यह कहना मुश्किल था कि ऐसा होना किस हद तक इनकी प्रकृति में था और किस हद तक इनकी परिस्थितियों की उस मजबूरी में जिसकी वजह से इनमें निकटता आ गयी थी । वल्लरी की निगाह वनमाला के साथ ही उन उतरते चढाते संबंधों पर थी जो वनमाला और प्रियहरि के बीच थे । यह अजीब बात थी कि परोक्षतः शिकायतों भरी नाराजगी के बावजूद प्रत्यक्षतः वनमाला और उसकी सखी वल्लरी से प्रियहरि के संबंध वैसे बुरे न थे। बस एकांत की दरकार होती और दोनों की सिकुड़ी पंखुड़ियां वह खोल देता था। वल्लरी को यह बात उसी तरह मालूम थी जैसे प्रियहरि को कि दूर दिखाई पड़ने और अवसर कम मिलने के बावजूद दिल ही दिल वह प्रियहरि उसे अपने ज्यादा करीब ठीक उसी तरह पाता था जैसे वह वल्लरी अपनी निजता में उसे पाती थी। वल्लरी से प्रियहरि के व्यक्तिगत चुहल और मान-मनौवल के अपनी तरह के संबंध थे। संबंधों के बावजूद ऐसे संबंधों के कहीं पहुंचने की गुंजाइश कम थी। सारी ललनाएं जानती थी कि साथ के लम्हों में चाहे प्रियहरि उन्हें अपना दिखाई पड़े पर श्यामा वनमाला का सशरीर बीच में आना तो दूर, उसका नाम आते ही वह सारा कुछ भूल उसी के गड्ढे में जा गिरता है। प्रियहरि को विश्वास में लेतीं, उसका विश्वास जीततीं भी वे सदैव वनमाला के बीच में आ पड़ने की आशंका से भयग्रस्त रहती थीं। प्रायः अपनी शिकायतों में इस भय को स्पष्ट कर वे कह भी जातीं कि - **"**क्या ठिकाना, कल को आप उससे मिल गये तो, मैं बुरी हो जाऊँगी**".......**वगैरह।

वल्लरी इन रमणियों के बीच इस लिहाज से विशिष्ट थी कि औरों से अलग वह वनमाला के करीब थी और प्रियहरि-वनमाला के बीच पुल का काम करती थीं। ऐसा पुल जो उस पार के खतरे से मायूस प्रियहरि के मन को अक्सर अपने आप में बांध लेने आमंत्रित करता था। वल्लरी का आकर्षण अलग ही था। अक्षर और ज्ञान के प्रति लगाव न दिखाई पड़ने के बावजूद वह सुरुचि-संपन्न और गंभीर थी। केसरिया साड़ी में वल्लरी का रूप यूं निखर आता कि उसकी सुन्दरता पर मुग्ध प्रियहरि अनायास कह बैठता -**"**सन्यासिन के केसरिया बाने में तो तुम्हारी खूबसूरती और ज्यादा मादक लगती है । मेरा बस चले तो तुम्हें इसी भेष में अपने पास बिठाए देखता रहूं ।**"**

वल्लरी गौर से ताकती अपनी चंचल आंखों में मुस्कुराकर रह जाया करती थी। कहती - **"**हटिए, आप तो बस यूं ही तारीफ करते रहते हैं। मुझसे आप नाराज रहते है। मेरी बात आप मानते कहां हैं **?"**

वल्लरी का इशारा नेहा की ओर हुआ करता था जिसे वह प्रियहरि के गिर्द तितली की तरह मंडराता देखती थी। वल्लरी के विषय और विभाग में ही जमी हुई नेहा उससे हमेशा कलह के अवसर ढूंढ़ती थी। नज़दीकी संबंधों के चलते ही उस पूरे सप्ताह वल्लरी से पूरे विश्वास में प्रियहरि की तीन बार मंत्रणामूलक बातचीत हुई थी। नेहा, फिर उसी के साथ उसके सर्किल की अन्य संगिनियों मंजरी, नीलांजना, जेनीफर वगैरह से वल्लरी का मनमुटाव है। वल्लरी इसके बावजूद प्रियहरि को प्रिय थी। वह सलाह देती कि नेहा 'फालतू लोग' है, 'झक्की' और 'झगड़ालू' है इसलिए प्रियहरि को उससे दूर रहना चाहिए था।

पिछले आयोजन में जब वनमाला के साथ वल्लरी के स्टाफ रूम से बाहर चले जाने की शिकायत प्रियहरि ने की तो सफाई में वल्लरी बोली -"नहीं, वह तो वनमाला मैडम ने कहा तो भीड़ से निकलकर उनके साथ दरवाजे पर चली गई थी। लेकिन हम लोग थे तो वहां पर ही ।"

वनमाला और प्रियहरि के बीच वल्लरी ही एक थी जिसे वे दोनों पसंद करते थे । वल्लरी भी सब देखती-समझती तो थी लेकिन राजनीति की झंझटों से अपने को दूर रखती थी। अपनी ओर से संबंधों की सफाई वनमाला को न सही वल्लरी को प्रियहरि देता है और वनमाला भी शायद वैसा ही करती थी। वल्लरी अपने प्रति प्रियहरि की प्रियता को समझती तो थी ही, उसके साथ हंसने-बोलने, चुहल और मजाक में दिलचस्पी भी लेती थी । वनमाला की बातें प्रियहरि अमूमन वल्लरी से पूछ लेता है। वह भी फूल जाती है और वनमाला से अपनी दोस्ती के बावजूद प्रियहरि को उसके काम की सूचनाएं दे देती है ।

इसी सबके चलते वल्लरी ने प्रियहरि को बताया था कि वनमाला मैडम आप की शिकायत कभी नहीं करतीं। वे इस बात से नाराज रहती हैं कि दूसरे आपको भड़का कर संबंध बिगाड़ रहे है। कहती हैं कि प्रियहरि से मेरे बहुत अच्छे संबंध थे स्टॉफ के लोगों ने उन्हें मेरे खिलाफ भड़काया है।

यह कहने पर कि औरों ने नहीं बल्कि जिसे सब जानते है उस एक की सह पर वनमाला उसके खिलाफ हो गई है, वल्लरी प्रियहरि को बताती - "लेकिन वनमाला मैडम का तो कहना है कि विपुल से उनका कोई संबंध नहीं है । उन्होंने मुझसे बताया है कि वे उसे बिल्कुल पसंद नहीं करतीं । उसकी हरकतों से तंग आ गईं हैं । स्टॉफ रूम में जब वे अकेली होती है तब विपुल के होने पर उन्हें घुटन महसूस होती है। इसीलिए वहां बैठना छोड़ वे मेरे साथ यहां बैठना पसंद करती हैं ।"

प्रियहरि ने वल्लरी से कहा था कि वह खुद समझे कि सच क्या है **?** अगर वनमाला का कहा सच होता तो वह चोरी-चोरी सभी से अपना नंबर छिपाती दिनभर किसी और के साथ उस पर बातें करती नजर नहीं आती । प्रियहरि के आग्रह पर वल्लरी ने भी वनमाला का नंबर मालूम करने की कोशिश की थी। तब वनमाला उसे बड़ी सफाई से यह कहती टाल गई थी कि उसका उपयोग केवल वह अपने पति से बात करने के लिए ही करती है। वल्लरी ने पहले ही वनमाला की इन दिनों गुजरी मुहिमों से प्रियहरि को आगाह कर लिया था ।

वल्लरी उसे आगाह करती हुई आग्रह करती कि "आप किसी से बताइएगा नहीं कि मैंने आपसे ये कहा है । आप सावधान रहिये, ये लोग कुछ भी कर सकते है।"

वनमाला चाहे झूठी थी, लेकिन अपनी छरहरी कृशता में सुन्दर वल्लरी की सूचनाएं उस पर एकदम सही थीं।

थी खबर गर्म कि ग़ालिब के उडेंगे पुर्जे
देखने हम भी गए थे पी तमाशा न हुआ - मिर्ज़ा ग़ालिब

शक-ओ-शुब्हा, रश्क, बेवफाई गम का उपहार दिया ।
किस्मत का चक्कर यूं हमने इक-दूजे से प्यार किया ॥
मर मरकर हम जिया किये जिस शै पर सब कुछ लुटा दिया ।
जान उसी ने ली हंसते हंसते ही लहू लूहान किया ॥ -मौलिक

" आश्चर्य है कि आपको कुछ नहीं मालूम रहता। हम लोग तो टीवी वाले है। हम सब खबर लगा लेते है। "

प्रियहरि उस सूचना से बहुत दुखी था जो उसे नेहा से मिली थी। रविवार के अवकाश के बाद अगला दिन कालेज में छात्रसंघ के शपथ ग्रहण समारोह का था। उसके अंदर एक उदास संकोच था कि बात फैल गई होगी। लोग उसे किस निगाह से देखेंगे ? क्या सोचेंगे ? ...... वगैरह । बस एक खयाल था कि उसके पीछे पड़ा प्रतिद्वंदी विजेता की कुटिल मुस्कान से देखता उसकी हंसी उड़ाएगा। लेकिन जो हुआ वह ठीक उल्टा ही निकला । प्रियहरि को उसके लोगों ने बताया कि अपनी ही मुहिम में वनमाला - विपुल की असलियत खुल गई है । पासा उल्टा पड़ा है जिससे वे क्षुब्ध हैं।

सुबह-सुबह प्रियहरि ज्यों ही अपने चैम्बर में पहुंचा, त्यों ही जैसे उसकी प्रतीक्षा ही हो रही हो, उस क्षेत्र का स्थानीय केबल टी.वी का रिपोर्टर अपने कैमरामेन के साथ उसके पास आ जमा। शिक्षक कामथ प्रियहरि के पास बैठ कुछ कहना-पूछना चाहते थे। अन्य लोग भी दुआ-सलाम करने आ रहे थे। तभी उस आगन्तुक रिपोर्टर ने "सर, प्लीज़ थोड़ी देर बाद" कह कर उन सभी को यह कहते खिसका दिया कि "मुझे प्रियहरि जी से कुछ बातें करनी है। प्रियहरि से उसने पूछा कि आठ तारीख की घटना के बारे में आपको क्या कहना है, कुछ बताएंगें ?

प्रियहरि ने कहा - "भाई, कल तो मैं दिन भर परेशान था, परसों परेशान था, छुट्टी पर था। मेरी तबीयत खराब थी। अभी तो मुझे खुद ठीक से कुछ नहीं मालूम। आप लोगों को सब कहां से पता लग जाता है, कौन बता देता है ?"

" आश्चर्य है कि आपको कुछ नहीं मालूम रहता। हम लोग तो टीवी वाले है। हम सब खबर लगा लेते है। "

उसने सूचना दी कि उसे तो परसों दोपहर में ही उन जांच वाली मैडम के उनके मुख्यालय से चलने के पहले ही खबर लग गई थी। कब चलीं, कब पहुंची, यहां किससे-किससे क्या-क्या बातें की ? एक-एक सेकंड का समाचार उसे मिल रहा था। जैसा वह रिपोर्टर बतला रहा था हालांकि उस दिन वह कहीं और दूर रिपोर्टिंग पर था।

प्रियहरि ने आश्चर्य व्यक्त करते पूछा था कि आखिर उनका स्रोत क्या है ? कैसे वे सब सूंघ लेते है ? जबकि उसे तो किसी चीज का आभास तक नहीं हो सका?

जवाब था कि हमारे अपने लोग है। प्रियहरि को उस पत्रकार के आत्मविश्वास पर अचरज हुआ। जब तक भीतर के लोग ही, खासतौर पर वे जिन्होंने शिकायत की गोपनीय मुहिम रची थी शामिल न हों, किसी बाहरी के वैसा कहने का कोई कारण न था। यह तय था कि विपुल और उसके गुर्गे प्रियहरि को बदनाम करने की उस मुहिम में शामिल थे।

पत्रकार यह आश्वस्त करता बयान लेने उतारू था कि "आप चिन्ता मत कीजिए। हमें सब पता है। आप पर आरोप लगाने वालों की असलियत खुल गई है। आप अपना बयान दीजिए। कुछ और भी सामग्री हो तो दे दीजिए। मैं टी-वी के लोकल चैनल पर असलियत दिखा सारे शहर को खबर दूंगा।"

प्रियहरि ने उसे टाला - "भाई, मेरे पास कहने को कुछ नहीं है। मेरा आपसे निवेदन है कि यहां की हर सड़ी बात को, आंदोलन-गाली-गलौच को आप कैमरे पर कवर करने मत आया कीजिए। मेरी अनुमति इसमें नहीं है और इससे शिक्षक अपमानित होता है। इससे अराजक तत्वों को प्रोत्साहन मिलता है।"

बार-बार के आग्रह के बावजूद प्रियहरि ने कुछ न कहते हुए दो-टूक जवाब दे दिया कि - "मेरा कुछ भी कहना अशोभनीय होगा। इसलिए मेहरबानी करके आप बाहर जाएं और अपने स्रोतों से पता लगाएं। उनसे पूछें जो यहां रहे हों।"

बाद में उसे पता लगा कि पत्रकार ने स्टॉफ रूम में जाकर तब वनमाला का बयान लेने की कोशिश की थी। वह भड़क उठी थी - "इनको यहां किसने बुलाया? मैं आपसे कुछ नहीं कहना चाहती।"

भोला बाबू ने अप्रिय हालात टालने उस पत्रकार को रफा-दफा कर दिया था ताकि लोगों के बयान से वनमाला के लिए और मुसीबत न खड़ी हो। बाद में नेहा ने भी यह बताया कि षड़यंत्र का पर्दाफाश हो जाने और गोटियां उल्टी पड़ जाने से वनमाला और उसका साथी विपुल उस दिन छिपे-छिपे फिर रहे थे। प्रियहरि के लिए

यह संयोग विचित्र था कि उसे जाल में फांसने का इरादा रखने वाले खुद उसमें फंस चले थे। यह रहस्य तब भी बना रहा कि पत्रकार, कैमरा, केबल टी़ वी का झमेले-भरा आयोजन आखिर किसका करतब रहा होगा ?

उसने बुदबुदाया - "मैं क्या करूं ? मेरी किस्मत ही ऐसी है, किसको दोष दूं।"

वनमाला का चेहरा मुरझाया हुआ था। अपने आप से बातें करती जैसे उसने बुदबुदाया - "मैं क्या करूं ? मेरी किस्मत ही ऐसी है, किसको दोष दूं।" सुबकती हुई वनमाला आंखों में भर आए आंसुओं को ढकती दीवार के उस कोने पर जा चिपकी जहां सरकारी कैलेन्डर टंगा था।

पिछली घटना-दुघर्टना को दो दिन गुजर गये थे। प्रियहरि कालेज पहुंचा ही था कि बुलाने पर भी न आने वाली और पिछले दिनों उसे टालने वाली वनमाला रानी उसके सामने खुद आ खड़ी थी। उदास, विषण्ण मुंह वह अवाक् सामने यूं खड़ी थी जैसे उस तरह अपनी उपस्थिति को ही भाषा बनाकर वह मन में चल रहे को आवाज दे रही थी। उसके चेहरे की ओर प्रियहरि की आंखें उठीं। पल भर उसने देखा लेकिन वनमाला की नजरों में देखे बगैर कड़वाहट और क्षोभ की शिकायती मुद्रा में उसके चेहरे से आंख हटा फिर उसने सिर नीचा कर लिया। वनमाला खुद पशोपेश में थी और प्रियहरि क्षुब्ध, विचलित था। शायद उस वक्त वनमाला के पशोपेश भरे मौन का कारण प्रियहरि के मन में छिपी उसके प्रति शिकायत और उसकी पीड़ा थी वनमाला कुछ कहना चाहती थी। शायद सफाई देकर प्रियहरि के पीड़ा से भरे मन को वह तसल्ली देना चाहती थी लेकिन प्रियहरि की पीड़ा का अहसास शायद उस 'बोलना चाह रही' को सलज, स-संकोच बना रहा था। वितृष्णा और क्षोभ से भरे प्रियहरि ने ताने देते हुए शुरुआत की थी -

"मैने सुना कि मेरे खिलाफ शिकायत कर सुनवाई करने कोई यहां आया था? तुमने जो किया बहुत बढ़िया किया। उसके लिए तुम्हें बधाई" कहते-कहते प्रियहरि का गला भरा आया था और स्वर रुंध गये थे।

वनमाला निरुत्तर रही। कुछ पलों के पशोपेश के बाद बोली - "मैने वैसा नहीं किया था। मुझे तो सौदामिनी मैडम ने बताया कि कोई औरत थी जिसने फोन पर शिकायत की थी।" मौन की स्तब्धता में कुछ पल सिर नीचा किये वनमाला ने उदास स्वर में शिकायत की -"आखिर आपने मुझे बदनाम कर ही दिया। आपने शिकायत की थी न ?"

"मै...?" प्रियहरि ने कहा -"तुम मुझसे यह कहना चाहती हो कि अपने खुद के खिलाफ जॉच के लिए मैंने किसी को बुलाया था? मुझे तो ये चीजें नौ तारीख को छुट्टी से लौटने पर पता लगीं। मैं तो पहले से ही लड़कों के दबाव से परेशान, बीमार और तनाव में था।"

"बताइए कि उस दिन टी.वी वाले को क्या आपने ही नहीं बुलाया था ?"

"मैं कैसे बुलाता ? मैं तो खुद अचरज में पड़ गया था जब उसने सीधे कमरे में घुसकर मुझ पर प्रश्नों की बौछार शुरू कर दी। मुझसे यह पूछना शुरू किया कि उस दिन जब आप नहीं थे तब जो घटना यहां घटी उसके बारे में आप को क्या कहना है ? वह मेरी प्रतिक्रिया उस दिन की घटना पर जानना चाहता था। मैं तो इसी बात पर स्तब्ध था कि उस दिन की घटना को वह टीवी वाला कैसे जानता था।"

रुक कर लंबी सांस लेते दुख भरी शिकायत में वनमाला से प्रियहरि ने कहा - "तुम्हें मालूम है कि उस टीवी वाले ने मुझसे क्या कहा? उसने कहा कि मुख्यालय में जांच की घटना की भूमिका से लेकर कौन और किस समय आ रहा है, कालेज में इसके बाद क्या-क्या हुआ इसकी पल दर पल खबर उसे मिलती रही थी। यहां से बाहर कहीं होने पर भी हर पल की खबर - यहां तक की सौदामिनी मैडम के निकलने और चलने तक खबर उसे मिल रही थी। मुझे तो खुद उसके कहने पर अचरज हुआ था। मैंने तो उस टीवी वाले को यह कहते भगा दिया कि मेहरबानी करके आप जाइए और जो पूछना है दूसरों से पूछिए। न तो मैं यहां था और न जानता हूँकि यहां ठीक-ठीक क्या हुआ था।" वनमाला को प्रियहरि बता रहा था कि - "मैंने तो उससे यह भी साफ कह दिया था कि वह कैम्पस में न आया करे और न बिना अनुमति यहां की घटनाओं की वीडियोग्राफी करे।"

प्रियहरि अपने आपको को ऐसी विचित्र स्थिति में विचलित और भावनात्मक सदमे से भरा पा रहा था। वह औरत जिस पर वह बहुत भरोसा करता था अपने खुद के किये से अपने को अनजान बताती मासूमियत में उसके सामने खड़ी थी। उसके अविश्वसनीय करतबों से आहत प्रियहरि की सूनी आंखों में विषाद की छाया थी। किंकर्तव्यविमूढ़ उसका सिर शर्मिंदगी से झुक कर दोनों कोहनियों पर टिक गया। आंखों के विषाद को दोनों हथेलियों में छिपा लिया। आंखों में आंसू भर आये थे और वह बुदबुदा रहा था - "वनमाला, मैंने हमेशा तुम्हें खुश करने की कोशिश की। जो-जो तुम चाहती रही मैंने किया, लेकिन तुमने हमेशा मेरा बुरा किया। मुझे तुमसे एक शब्द भी और कुछ नहीं कहना है। तुमने जो किया इसके लिए धन्यवाद, बहुत-बहुत धन्यवाद।"

वनमाला का मकसद यदि प्रियहरि को अपमानित करना मजा चखाना ही होता तो वह खुश होती और अपने यार के असफल अभियान को अपने हाथों ले प्रियहरि को जलील करती चीखती। लेकिन यह विचित्र था कि वह खुद विचलित थी। वह स्पष्टतः आहत और दुखी दिखाई पड़ रही थी।

वनमाला का चेहरा मुरझाया हुआ था। अपने आप से बातें करती जैसे उसने बुदबुदाया - "मैं क्या करूं ? मेरी किस्मत ही ऐसी है, किसको दोष दूं।"

सुबकती हुई वनमाला आंखों में भर आए आंसुओं को ढकती दीवार के उस कोने पर जा चिपकी जहां सरकारी कैलेन्डर टंगा था। पल भर वहां ठहरी। दीवार की ओर मुंह किये वह अपने आंसू पोंछती रही । विषाद की छाया से ग्रस्त चेहरे को मलकर ताजा करने की कोशिश की और फिर हौले-हौले कदम बढ़ाती दरवाजे के बाहर निकल गई। वनमाला के शब्दों, उसकी पीड़ा, उसकी उदासी, उसकी विडम्बना वही तो थी, जो प्रियहरि में थी। उसने दोनों को भिगा दिया था। यदि वह मुहिम वनमाला की नहीं थी और न प्रियहरि की , - तो चाल किसकी हो सकती थी ? प्रियहरि ने समझ लिया कि वह उस विपुल की करतूत थी, जो उस रोज अनजान और दूर बना रहने के लिए बाहर दूर कहीं जमा आया रहा था।

आंसू और पछतावे से मन का मैल दोनों से तब उतर चुका था। यूं फिर लहलहा उठी आत्मीयता में आने वाले दो-चार दिन वनमाला और प्रियहरि के लिए एक-दूसरे के जख्मी दिलों पर मरहम लगाने जैसे थे। प्रायः दोनों की आंखें टकरा जातीं और मन उदास, कसमसाकर रह जाता कि वह एकांत उन्हें क्यों नहीं मिल पाता कि एक-दूजे से लिपटकर वे खूब रो लें। जो मन में है उसे खूब कह-सुन लें। वल्लरी के कमरे में ही टहलते-फिरते जाकर इसी बहाने वनमाला से मुखातिब होने का मौका प्रियहरि को मिलता था। उसे सामने पाकर तब वनमाला यूं शरमाती जैसे नई-नवेली दुल्हन हो। हवा पढ़ रही थी कि बाहर के इन बदलावों के साथ दोनों की धकड़नों के बीच मौन की भाषा में वे बातें भी चलती थीं जो समस्या बनकर उनके बीच छाई जा रही थीं। वनमाला के उस तरह मिलने, उससे हुए संवाद और उसकी आहत मनोदशा की स्मृतियां प्रियहरि में स्थिर हो चली थीं। वनमाला झूठी नहीं हो सकती थी। उसकी वेदना में वैसी ही सच्चाई थी, जैसी प्रियहरि की पीड़ा में थी। तब कौन था जिसका वह आयोजन था ? विपुल! अवश्य खुद दूर रहकर जासूस मैडम को भिजवाँव और साथ ही मीडिया के लोगों को ठीक उसी वक्त भेजने का आयोजन उसी का रहा होगा। पर तब वनमाला ने बताया था कि वह कोई औरत थी जिसने फोन कर सौदामिनी से शिकायत की थी। यदि वह सच था तो वह औरत कौन हो सकती थी ?

तन्वंगी सुतनुका वल्लरी

तब ऐसा प्रतीत होता मानों प्रियहरि के लिये छायाशेष रह गई वनमाला दूर हुई जा रही है
और मृदुहासिनी, मृदुभाषिणी, चम्पकवर्णी, कमनीया तन्वंगी सुतनुका वल्लरी की चमकती भूरी आंखों में
वह विद्युत्तरंगों के चुम्बकीय आकर्षण में लहराता विलीनित हुआ जा रहा है।

वल्लरी का विभाग अपने-अपने अहं में कैद दो उपेक्षिताओं वल्लरी-वनमाला की बैठक था। वल्लरी प्रियहरि को प्रिय थी। जैसे औरों से थे वैसे ही व्यक्तिगत स्पर्श वाले संबंध प्रियहरि के वल्लरी से थे। अपनी

शरारत भरी निगाहों और अदाओं के साथ वह प्रियहरि से पेश आती थी। इस मुद्रा के साथ चुइंगम चबाते उसके चिकने गाल जिस तरह ऊपर-नीचे डोलते और उनके साथ जिस तरह बारीक नर्म गुलाबी होंठ अपनी गुलाई में गले की गहराई तक फांक में सिकुड़ते और फैलते थे, उसे देखते प्रियहरि को यूं गुदगुदी होती जैसे वल्लरी खुद उसे अपने मुंह में चबाती और निगलती जा रही है। गुदगुदाता मन रोमांच से सीत्कारता अपनी मौन भाषा में आंखों के जरिए वल्लरी की खुबसूरत आंखों में झांकता राहत की पनाह मांगता था - "आह, जरा ठहरो प्लीज़, आहिस्ता चबाओ। तुम तो मेरी जान ही निकाल लोगी।"

वनमाला से रूबरू होने का ठिकाना प्रियहरि का निर्विघ्न कमरा या फिर सुन्दरी वल्लरी का विभाग ही हुआ करता था। अपने में संयत और निरपेक्ष दिखाई पड़ने पर भी वल्लरी प्रियहरि और वनमाला की सारी अंदरूनी बातें जानती और उससे जुड़ी खबरें रखा करती थी। अपने और वनमाला के एकांत में प्रियहरि के दाखिल होने का मतलब दोनों औरतों के लिए अपने-अपने ढंग से निकालने की गुंजाइश भरा था। यूं असली कारण तीनों समझते थे। पास होकर भी "एक-दूसरे से मुखातिब हों या न हों" और फिर "हों तो कैसे हों" की दुविधा के बीच वनमाला और प्रियहरि की बातें होती थीं। बहाने थे नहीं, बनाने पड़ते थे। दोनों की मौन उपस्थिति और लजाई संकोच भरी उनकी आंखों के हिलने-मिलने का अर्थ वल्लरी को बखूबी मालूम था। कम्पित अधरों से हो रही घ्परी बातों के पीछे मौन में चल रही दोनों की बातें वह सुन सकती थी। अक्सर वह देखती कि प्रियहरि बातें तो उससे कर रहा है, लेकिन बातों से दोहरी वनमाला हुई जा रही है। वह देखती कि जवाब देती वनमाला की बातें तो 'इकॉनामिक सर्वे' पर चलती होतीं पर संदेशा यह होता कि "हाय, ऐसी भी क्या मजबूरियां कि सामने होकर भी तुमसे न दिल की बातें कर सकती हूं और न मिल पा रही हूं।"

उन दोनों के बीच विस्मय, खीझ, अजनबीयत, व्यंग्य, चाहत और स्पृहा से भरी वल्लरी की आंखें प्रियहरि में विशेषतः झांकती थी । उनमें दर्ज लिखावट प्रियहरि पढ़ता । लिखा होता कि - "बाबा रे, इतनी आत्मीयता **?** इतनी नजदीकी **?** ये लोग सचमुच झगड़ते है या झगड़ने का ड्रामा करते हैं **?**"

कभी लिखा होता - "अच्छा, तो ये बात है **?** इसी पर तो मुझे गुस्सा आता है । आते हो मेरे पास, मेरे कमरे में और फिर मुझे ही दरकिनार कर मेरे सामने ही चाहत में बिछे वनमाला पर जा रहे हो **?** मुझ पर लाड़ दिखाते हो, 'सेक्सी सन्यासिन' कहते मुझे पर रीझते हो और मेरे होते मुझे छोड़, मेरे ही बहाने तुम वनमाला को मना रहे हो **?**"

तब ऐसा प्रतीत होता मानों प्रियहरि के लिये छायाशेष रह गई वनमाला दूर हुई जा रही है और मृदुहासिनी, मृदुंभाषिणी, चम्पकवर्णी, कमनीया तन्वंगी सुतनुका वल्लरी की चमकती भूरी आंखों में वह विद्युत्तरंगों के चुम्बकीय आकर्षण में लहराता विलीनित हुआ जा रहा है।

वल्लरी की उन आंखों को पढ़ता प्रियहरि झेपकर रह जाता। वल्लरी को मालूम था कि अगर श्यामा वनमाला वहां बीच में न होती तो प्रियहरि की हृदय-तरंगों का केन्द्र केवल वह, और वही रही आती। कहती तो कुछ नहीं थी लेकिन अक्सर उन दोनों के बीच ही सीधे प्रियहरि की आंखों में निहारती वल्लरी की आंखें अपने अर्थ भरे सवाल दाग जाती थी। प्रियहरि उन खूबसूरत आंखों को क्षणांश में ही पढ़ सकता था। वे पूछती - "क्या कहते हो **?**"

प्रियहरि की आंखें उन आंखों को जवाब देती - "कहना क्या है **?** सचमुच चाहती हो कि मेरा प्यार तुम्हारा हो तो झपटकर तुम्हीं पहल क्यों नहीं करती **?** इतनी खुशामद क्यों कराती हो **?** छोड़ो डर। धराशायी करो मुझे नीचे-अभी और यहीं। सवार हो जाओ मुझ पर.. और सारा संकोच तोड़ धीरे से लगने वाला जोर का झटका देती प्रवेश कर जाओ मुझमें ।"

प्रियहरि की आंखें उन आंखों से कहती होतीं - "उस वक्त मैं मानूंगा तुम्हें- जब कहने और सुनने को हमारे बीच जो भी है, वह चुपचाप अपनी बेहोशी में लड़ते-झगड़ते हमारी काया के मांसल पठारों पर पसरे उरुओं के बीच बसे वे मन कहेंगे जिन्हें हम व्यर्थ ही अपने संकोची, भीड़-भीरु दिमाग से बहलाते खीझा करते हैं।"

दो के बीच वहां पहुंचे प्रियहरि से बने तिगडड्म में उसके और वनमाला के बीच संकोच की दूरी से जो शून्य पैदा होता, उसे वल्लरी की खीझी और प्रियहरि की लालायित आंखों के बीच की टकराहट क्षणांश में ही मिलन की जादुई कौंध भर गायब हो जाती थी।

वल्लरी की चमकती आंखें जैसे शिकायत करतीं प्रियहरि को आमंत्रण देती - " हाय, तुम्हीं क्यों वैसा नहीं करते ? थोड़ा तो समझो। छोड़ो उस अधेड़ श्यामा को। मैं सामने खड़ी पिघली जा रही हूं और तुम हो कि उसी के पीछे भाग रहे हो। आओ, समा जाओ मुझमें। जानो कि जिस रस के लिए तुम अधीर हुए जा रहे हो वह मुझमें इतना और ऐसा भरा है कि तुम्हें नहलाकर हमेशा के लिए तृप्त कर जायेगा। "

वल्लरी और प्रियहरि की आंखें उन क्षणों को देखती होती जिनमें प्रियहरि का सुपुष्ट कोमल मन अकड़ता हुआ वल्लरी के नाजुक लचीले दिल की झुरमुटों में फंसा, उसकी शिराओं को टटोलता मूर्तिमान दिखई पड़ता। वे उन क्षणों में तरंगित होतीं जब उन दोनों की रसवंचित आहें, रसानंद में "वाह-वाह" की "आह-आह" भरतीं और प्यास बुझाने को बेताब एक-दूसरे में समाए जा रहे होठों की सिसकियों में उच्चरित होतीं। लेकिन अफसोस, तब उन प्यासी चाहतों के बीच दोनों ही की प्रिय वह वनमाला नाजुक दीवार बन खड़ी होती , जिसे वल्लरी और प्रियहरि दोनों न निगल सकते थे, और न निगलना संभव था।

जीत अंततः श्यामा वनमाला की ही होती । वल्लरी के विभागावरण में कूद-फांदकर कपाटों की संधि से बाहर निकलते ही तात्कालिक देहराग विलुप्त हो जाता। वनमाला तब पुनः सुमित्रानंदन पंत की सुप्रसिद्ध "आह" /आह से उपजा होगा गान/को आकार देती प्रियहरि के चित्त में गुनगुनाने लगती थी।

दिन यूं ही बीते जा रहे थे। वनमाला और प्रियहरि की काबू से बाहर और समझ से परे परिस्थितियां बार-बार रूबरू होती उन्हें सताए जा रही थीं। बगैर सोचे और चाहे वे दोनों एक-दूसरे को परास्त करने और जीत की कूटाकांक्षा से भरी कूटनीतिक चालों में फंसा देखते थे। एक तरफ यह था और दूसरी तरफ कोने-कानों के आत्मीय अवसरों की युक्ति से खुद वे ही आपस में इस बात पर अचरज करते कि उन्होंने तो वैसा चाहा नहीं, फिर वह सब क्यों हो रहा है ? अनचाहे गलतफहमियों और झगड़ों में वे क्यों उलझते जा रहे हैं ? एक तरफ लोग थे, परिस्थितियां थीं, भय-संदेह-अविश्वास-ईर्ष्या से भरा-सहमा प्रियहरि और वनमाला का चित्त हुआ करता था और दूसरी तरफ वह मन, जो सब को दर्शक की तटस्थ स्तब्धता से देखता हुआ पछताता और उस परम विश्वास पर जाकर टिक जाता जो सारे-कुछ के बावजूद उन दोनों की आत्मा में बसा रहता।

वनमाला और प्रियहरि के संबंधों के बीच जो भी था अपार था - अपार प्रेम, अपार नफरत, अपार भय। ईर्ष्या और वफादारी की उहापोह में प्रियहरि के उदास पड़े मन में इच्छा जागती थी कि वनमाला के मिस्टर से वह कभी शिकायत करे कि उसने गोपनीयता के वचन क्यों तोड़े ? उसे बताए कि जो आशंका उसने व्यक्त की थी वह सच निकली। उसी की गलती से प्रियहरि यहां मुसीबतों की जाल में फंस चला है। झिझकते मन से आखिर एक दिन फोन करने की गलती उसने कर ही डाली। औरत की बेवफाई से लांछित पति की पीड़ा और नाराजगी का अनुमान प्रियहरि को नहीं था। इससे पहले कि वह बात करता वनमाला के मिस्टर की खीझ गुस्से में उबल पड़ी थी।

फोन के दूसरे सिरे ने बाद में जरूर जिज्ञासा दिखाई लेकिन - " सॉरी, मुझे अब आपसे कोई बात नहीं करनी है, बातचीत का यह सलीका मुझे पसंद नहीं है " - कहते प्रियहरि फोन रख दिया था।

पत्नी का रुदन, नाटकीय मान और पति के चित्त में उल्टे भरा गया जहर कामयाब हो चुका था। लांछित पति की नाराजगी भरी खीझ तुरंत उस समय वल्लरी के पास बैठी वनमाला की मोबाइल पर उतर आई थी। परिस्थितियों का तकाजा चाहे जो रहा हो, ईमान के अपने ही आईने में जब प्रियहरि ने झांका तो पाया कि वह कोशिश उसकी बेईमानी थी। वनमाला जैसी थी, वैसी थी। भला प्रियहरि को क्यों नीचे गिरना था ? एक-दूसरे का संदेह मिटाते, मरहम लगाते प्रियहरि और वनमाला की नजदीकियों ने फिर दूर जाने की राह पकड़ ली थी। दोनों के बीच यह विचित्र नियति थी कि दिलों में परस्पर अथाह प्यास लिए अतृप्ति का अनंत भटकाव

दोनों में था। दोनों के एक-दूसरे के करीब आते नियति यूं बीच में आती कि अविश्वास, संदेह, ईर्ष्या से भरे साथ की राह तलाशते प्रियहरि और वनमाला के मन दुष्प्रेरणाओं के वशीभूत हो झगड़ते, पछताते और आंसू भरे ठीक विपरीत दिशाओं में भटकते पाए जाते थे।

सच में झूठ, झूठ में सच था कैसे मन को बहलाओगी
मेरा दुख तुमको सालेगा तुम भी मन में पछताओगी । -मौलिक

जब मोती सी लिखावट में वनमाला की चिट्ठी सामने रखी गई तो प्रियहरि संज्ञा शून्य और आहत था।
वह बोली - "हां मैंने वैसा किया। लेकिन अपने आपसे भी पूछिए कि क्या आप भी वैसा ही मेरे साथ नहीं कर रहे थे ?
आप भी तो दोषी हैं।"

मैं सच कहूंगी और कह के हार जाऊंगी
वो झूठ बोलेगा और लाजवाब कर देगा
- परवीन शाकिर

सबकी टोह तो सौदामिनी पहले ही चुकी थी। प्रियहरि से चर्चा का अवसर नहीं मिला था। नवम्बर के तीसरे हफ्ते की उस एक खास तारीख को प्रियहरि जब किसी सरकारी काम से सौदामिनी के दफ्तर में उससे रूबरू हुआ तो सौदामिनी और कृष्णन ने उसे पकड़ लिया। यह रूपसी थी और वह सुबुद्ध । इसीलिये ये विभाग के सुप्रीमो के चहेते मातहत थे। प्रियहरि का मन वनमाला की स्मृतियों और नियति के खेल से खिन्न और उदास था।

प्रियहरि ने इतना ही कहा -"गई तो थीं तुम सौदामिनी। जो तुमने पूछा और जाना वह काफी है । उससे अधिक न और कुछ मुझे कहना है और न जानना है। मान लो कि दोष मेरा ही है, वनमाला का नहीं । मुझे सब स्वीकार है । "

शुभ-चिन्ता में प्रियहरि का अहित टालने की बात कहते जब कृष्णन ने और अधिक जानना चाहा तो प्रियहरि ने कुछ छिपाते और कुछ उजागर करते संक्षेप में किस्सा बयां कर दिया। सौदामिनी और कृष्णन दोनों की राय थी कि आपस की सारी बातें तो ठीक थीं, लेकिन उस श्यामा के घर फोन करना और उसके पति से बात करना ही अनर्थ कारण बना। प्रियहरि को इस बात का कतई विश्वास नहीं था कि वहां शिकायत खुद वनमाला ने की थी। अपनी शंका उन दोनों के सामने उसने रख दी थी। पर उसे विश्वास दिलाने प्रमाणस्वरूप जब मोती सी लिखावट में वनमाला की चिट्ठी सामने रखी गई तो प्रियहरि संज्ञा शून्य और आहत था। हाँ, यह वही मोतियों में गुंथी लिखावट थी जिसपर प्रियहरि मर मिटता इस मुकाम तक पहुँच आया था । हालांकि उसका मन अब भी विश्वास न करना चाहता था पर सचमुच वनमाला ने खासतौर पर फोन करने और पारिवारिक जीवन तबाह करने का हवाला देते हुए अबला की इज्जत बचाने की दुहाई दी थी। वनमाला और अपने बीच की आंसू-भरी मुद्राओं, पछतावों भरे आत्मस्वीकार, और गुजरे वर्षों के दौरान साथ गुजारे पलों की असंखय छबियां एक पल में ही उसके चित्त को झकझोर तैर गई थीं। वह समझ नहीं पा रहा था कि जो सामने था वह महज एक बुरा सपना था या सारा कुछ ध्वंस करता यथार्थ ?

प्रियहरि का सर घूम रहा था। सारी दुनिया उसे नष्ट होती दिखाई पड़ रही थी। सौदामिनी और कृष्णन के समझाने पर वह यह कहता लौट आया था कि ठीक है, उसे जो समझ में आएगा वह जवाब में लिख भेजेगा।

वनमाला और प्रियहरि के बीच जो घट रहा था उसका सबसे विचित्र पहलू यह था कि जितनी टकराहट परिस्थितियां उनमें पैदा करतीं, उतनी ही जोर की चाहत दोनों तरफ से एक-दूसरे को तसल्ली देने और जो

अनचाहे घटता जाता उस पर अपना मलाल एक-दूसरे पर उजागर करने उन दोनों के दिलों में उछाल मारने लगती थी। बाहर जो दुश्मनी दीखती थी उसके परदे में भी एक-दूसरे को आहत देख दोनों के पछताते दिल एक-दूसरे की चोटों में मरहम लगाने के लम्हे चुराने की हरचंद कोशिश करते। हंसते-रोते इन पलों में वे उन कोशिशों को बखूबी अंजाम देते। प्रियहरि खुद पछताता, बिगड़ते हालातों पर अफसोस जाहिर करता।

वनमाला को तसल्ली देता वह कहता -"वनमाला, मैं तुम्हारे लिए कुछ न कर सका। काश, अपने रहते मैं तुम्हारा लटका हुआ वेतन निर्धारण निपटा देता । मुझे बहाना चाहिए, मैं जोखिम ले सकता हूं । मैंने कर दिया तो कोई बाधा न होगी । बाद में भला कौन दिलचस्पी लेगा ? तुम्हारा काम अटका ही रहेगा ।

वनमाला प्रियहरि से कहती - "आपने तो अपनी तरफ से वह कर ही दिया था। लोगों ने दिक्कतें पैदा की तो क्या करते ? दोबारा भी कोशिश कर ली आपने, सरकार ने ही मना कर दिया। छोड़िए अब उसको। जो हो गया उस पर दुःख मनाना व्यर्थ है।"

वनमाला को यह मालूम हो गया था कि दफ्तर के मुख्यालय से शिकायत संबंधी सारा मामला, उसकी चिट्ठी का मजमून प्रियहरि ने जान लिया है। प्रियहरि उससे बहुत नाराज था। वह सामने होती तो प्रियहरि की आंखें बेरुख हो जातीं। उसका चित्त वनमाला को सवितृष्ण अनदेखा कर देता। ऐसे में ही किसी एक दिन वनमाला प्रियहरि के पास पहुंची। काम का छोटा-मोटा कुछ बहाना था जो बहाने की तरह ही जाहिर हो रहा था। वनमाला की जुबान से तो एकाध वाक्य ही निकला था लेकिन चेहरे का पशोपेश और आंखों का संकोच बता रहे थे कि कहने को कुछ और था। प्रियहरि की अहंकार से भरी प्रेमिका उस 'कुछ और' को कहने से बचती हुई भी बहुत कुछ कहना चाहती थी। प्रियहरि की नाराजगी और उसके व्यथित मन का क्षोभ वनमाला ने पढ़ लिया था और वनमाला का पशोपेश प्रियहरि ने समझ लिया था। चुप्पी की दीवार प्रियहरि ने तोड़ी। उसकी उदास आंखों ने वनमाला की आंखों में झांकते भारी गले से कहा -

"वनमाला, मुझसे गलती हो गई थी कि मैं तुम पर मर बैठा। मुझे नहीं मालूम था कि तुम यूं कुछ भी करोगी। तुमने चीजों का इतना उलझा दिया है कि कुछ समझ में नहीं आता। हैरान हूं कि मैं क्या करूं ? तुमने मुझे धर्मसंकट में डाल दिया है। मैं आज तक तुम्हें समझ नहीं सका। शायद कभी समझ भी न पाऊँगा। काश ! समझ पाता ।"

प्रियहरि ने वनमाला का कपट उसी पर उजागर करके कह दिया था कि उसकी शिकायत उसने देख ली है। उस पर पहले तो उसे भरोसा न हुआ लेकिन प्रत्यक्ष देखकर उसका सिर शरम से गड़ गया था।

वनमाला में शर्मिंदगी थी, संकोच था, लेकिन कोई जवाब न था। भारी मन से खीझकर उल्टे शिकायत में वह बोली - "हां मैंने वैसा किया। लेकिन अपने आपसे भी पूछिए कि क्या आप भी वैसा ही मेरे साथ नहीं कर रहे थे ? आप भी तो दोषी हैं।"

उसकी बात सच थी। शर्मिंदगी की वजह दोनों तरफ थी और दोनों ही कुसूरवार थे। उस दिन आगे दोनो ने आपस में किसी से कुछ न कहा। उदासी और पश्चाताप भर साथ रहे गये थे। शायद यही उन्हें फिर उस मुठभेड़ के लिए उकसाते थे जो झगड़े में प्यार और प्यार में झगड़ा होता था ।

दिसम्बर के आखिरी हफ्ते की शुरुआत थी। कालेज में सालाना जलसे का आयोजन था। सुबह कोई दस-चालीस का वक्त रहा होगा अपनी गाड़ी से उतरकर प्रियहरि और वहीं ऑटो-रिक्शे से उतरी वनमाला दोनों ही कैम्पस की सड़क पर कुछ आगे-पीछे और कुछ साथ-साथ चल रहे थे। एक जो मलाल दिल में रहा आता था वही दोनों तरफ से निकटता का सूत्र बन जाता था। खामोश नजरें चोरी-चोरी मिल चुकी थीं और वे दोनों जानते थे कि उस सड़क पर भौतिक दूरी के बावजूद उनके दिल पास-पास चल रहे थे। चहल-पहल और आमद-रफ्त उस वक्त सड़क पर न थी। प्रियहरि ने छेड़ा -

"ए...इ....वनमाला, तुम भी अभी आ रही हो।"

वनमाला ने हंसकर जवाब दिया - "मैंने तो सोचा था कि न आऊँ । वह तो आपकी नाराजगी का खयाल था कि आ गई।"

"अच्छा हुआ चली आईं। देखती तो हो कितना परेशान रहता हूं" - वनमाला की आंखों में समाते हुए प्रियहरि ने कहा।

अल्हड़ अदाओं, बाँकी मुस्कान और तिरछी नजरों से निहारती वनमाला बोली - "आ...ह, आपको भला क्या परेशानी ? अच्छे खासे आराम से अपने चैम्बर में बैठते हैं। परेशानी तो हम लोगों को झेलनी पड़ती है।"

"तुम हमेशा बात चतुराई से टाल जाती हो। अफसोस है कि मेरा साथ तुमने कभी न दिया। हां तुम, जो मेरे सबसे करीब रहीं ।" यह प्रियहरि की शिकायत थी।

वनमाला बोली - "अच्छा बताइए तो कब नहीं दिया ? हमेशा तो दिया है।" सड़क का समय खत्म हो चला था। अब दोनों भवन के करीब पहुंच गये थे जहां कुछ चहल-पहल थी। दोनों ही अपने-अपने कमरों की ओर सिर झुकाए एक-दूसरे से अनजान की तरह मुड़ गये। प्रियहरि को आगे सोचने वनमाला ने अकेला छोड़ दिया था। प्रियहरि का मन आहें भर रहा था - "वनमाला, मेरी कातिल - सचमुच कितनी मासूम, इन्नोसेंट है।"

वनमाला और प्रियहरि यूं ही मिलते रहे थे - हमेशा अधूरे और परिणामरहित। चलती सड़क खत्म हो जाती थी। वल्लरी की प्रयोगशाला सिकुड़ जाती थी। तब भी अंदर-अंदर कुछ था, जो वनमाला और प्रियहरि के दिलों में चलता रहता था। वह एक ऐसा संवाद था जो कभी खत्म न होता था या शायद खत्म न होना चाहता था। कोई भी ऐसे मौके पर उन्हें देखता तो अचरज करता कि झगड़े की यह कौन सी किस्म है जिसमें केवल प्यार ही प्यार नजर आता है। मजबूरियां इस संवाद को तोड़ जाती थीं और अवसर मिलते ही इस युगल की प्यास उसे फिर शुरू कर जाती थी - मानो फिर अधूरा छोड़ जाने के लिए। यह अधूरापन ही उन दोनों की नियति थी।

वह दिन वनमाला का था

वनमाला की आंखें आंसुओं से भीग चली थी। आवाज में रुदन का कम्पन था और शिकायतों से भीगा
उसका हृदय प्रियहरि पर बरसता उसे सर्वांग डुबाए जा रहा था।

हल्ले-गुल्ले के साथ पुराने साल का अंत हो चला था यह नये साल के पहले महीने का पहला सप्ताह था। नियति का चक्र कुछ ऐसा चला था कि न तो वनमाला प्रियहरि के चित्त से जाती थी और न उसकी चाहत। एक ऐसा अधूरापन घर कर गया था जो उसे दिन-रात खाये जा रहा था। दोपहर बाद हाजिरी रजिस्टर और डायरी वगैरह थामे वनमाला ने प्रियहरि को अकेला जान प्रवेश किया। वे दोनों जानते थे कि वनमाला के हाथ में थमे रजिस्टर और कागज सरकारी तो थे लेकिन उनका असल उपयोग उस वक्त, उस दिन वनमाला के लिए प्रियहरि के कमरे में घुसने के लिए प्रवेश-टिकिट जैसा था। हवा एक ऐसी चुप्पी से भरी थी जिसमें गहरे आशय तैर रहे थे। वही वनमाला की आंखों में भी तैर रहा था, जो प्रियहरि की आंखों के साथ मिलकर उदासी और शिकवों से भरे हृदय की बातें कह और सुन रही थी। वनमाला की आंखों ने प्रियहरि के चित्त में बसी उदासी को पढ़ा और गहरी विकलता के बोझ से कोहनियों का सहारा ले झुककर टिके प्रियहरि के उस सिर को देखा जिस पर वनमाला का ही भूत सवार था। अन्यमनस्क और यंत्रचालित ढंग से निःशब्द वनमाला के कागजों पर प्रियहरि दस्तखत करता रहा। इन पलों में निःशब्द के शब्दों को वनमाला की पशोपेश भरी उदासी पढ़ती रही। आखिरी दस्तखत होने के बाद भी वनमाला के हाथ कागजों पर थमे रहे थे और आंखें प्रियहरि को पढ़ती रही थीं। अचानक वह जागी। कागजों को वापस खींचने का हल्का सा उपक्रम उसने किया। ठीक तभी प्रियहरि का हाथ वनमाला के हाथ पर चुपचाप अचानक जा थमा। हथेलियों के संवाद के बीच वे दोनों पलभर स्तब्ध और किंकर्तव्यविमूढ़ रहे आए थे। वनमाला को देखकर प्रियहरि ने कहा -

"मत जाओ, बैठो।"

जैसे उस मौन में वनमाला को इसी अनुरोध की प्रतीक्षा थी। आज्ञाकारिणी की तरह वह बैठ गई। कुछ पल दोनों के बीच का मौन बोलता रहा। फिर अचानक प्रियहरि का उदास मन बुदबुदाया - "वनमाला, तुमने कभी मुझे समझने की कोशिश न की। हमेशा मुझे ठेस पहुंचाई। भला क्यों ?"

प्रियहरि की सूनी आंखों में निहारती वनमाला की सूनी आंखों ने जुबान को भाषा दी- "मैं कब आपके साथ नहीं रही ? मैने हमेशा आपके साथ रहना, काम करना चाहा है लेकिन .....। पलकों में भर आए आंसुओं और भावना के आवेग को संभालती पल भर की चुप्पी के बाद फिर बोली "...लेकिन, मैं अब आपसे क्या कहूं। " एक बार फिर मन की गहराती उदासी ने उसके स्वरों को थाम लिया था। चुप्पी से निकल मन में अटके को उजागर कर वनमाला ने वाक्य पूरा किया -".... आपने ही मुझे समझने की कोशिश न की। कभी आपने मेरा खयाल नहीं रखा। कभी मेरा पक्ष नहीं लिया।"

उदास शिकायत के स्वर वनमाला में बोल रहे थे - "और आपको भला इसकी जरूरत भी क्या थी ? आपके पास तो चक्कर लगाने वालियां बहुत हैं न। परेशा नी में तो मैं पड़ी हूं। देखूं कि मेरे साथ अभी और क्या-क्या होना किस्मत में बाकी है।" वह शिकायत करती रही - ".....आपको भला क्या परेशानी है ? आप तो आराम से मजे उठा रहे हैं। "

वह दिन वनमाला का था। प्रियहरि उसे समझाना चाहता था कि जो वह सोच रही है वह सब नहीं था। वह वे पल गिनाना चाहता था जब वनमाला के विश्वासघात ने उसे चोट पहुंचाई और आहत किया। पर उस दिन वनमाला के सामने प्रियहरि जैसे हार गया था। शिकायतों और सफाइयों के इस सिलसिले में उस दिन वनमाला उस पर भारी पड़ रही थी। वनमाला के मार्मिक वचनों के सामने प्रियहरि अवाक् हो गया। वनमाला की आंखें आंसुओं से भीग चली थी। आवाज में रुदन का कम्पन था और शिकायतों से भीगा उसका हृदय प्रियहरि पर बरसता उसे सर्वांग डुबाए जा रहा था।

वनमाला कहे जा रही थी - "आदमी अपने हितों में कितना स्वार्थी हो जाता है कि सब कुछ भूल जाता है। आपने हमेशा मेरे खिलाफ काम किया, मुझे आहत किया है। आपसे ऐसी उम्मीद मुझे नहीं थी। किस्मत भी कैसी अजीब चीज है। जिसको मैंने अपना हितैषी समझा, जिस पर सबसे ज्यादा निर्भर रही, सबसे ज्यादा भरोसा किया, उसी ने मेरे विश्वास को चोट पहुंचाई।"

प्रियहरि समझाने की कोशिश करता रहा - "वनमाला, चीजें उतनी आसान न थीं जितनी तुम बता रही हो। बहुत सी बातें हैं। दोष मेरा ही नहीं, तुम्हारा भी है। तुमने वैसी परिस्थितियां निर्मित कीं जिनमें वह सब होता रहा जो हमारे हाथों से बाहर था।"

कुछ पल के चुप्पी के बाद प्रियहरि ने आगे कहा - "मैने तो हमेशा चाहा कि हम मिलकर साथ बैठें और बातें करें। चाहा कि हमारे बीच का सारा कुछ किसी तीसरे के बगैर हम खुद सुलझाएं, लेकिन तुम ! मैं क्या कहूं ? तुम्हीं हमेशा चीजों को बेरुखी से टाल जाती हो।"

वनमाला बोली -"क्यों नहीं हम यहीं बैठ जाएं और मन की सारी बातें कर ले ?"

"वनमाला, तुम अच्छी तरह जानती हो कि यहां किस तरह घुटन और दुविधा में लोगों की घूरती निगाहों के बीच हम बैठते हैं, डरे हुए। यहां बैठना क्या संभव है ?"

जब दिलों के खुलने के ऐसे मौके आते थे, वनमाला अपनी ओर से खुद दरवाजा बंद कर देती थी । उसे बाहर कहीं बैठने से डर लगता था। सिवाय खीझने के प्रियहरि कुछ न कर सकता था। उस दिन फिर वनमाला से यह बात उसने स्वीकार की कि उसे आहत करके वह खुद आहत होता है। काश, वनमाला के गम वह दूर कर सकता, उसके काम आ सकता। काश, वह उसके वेतन और दूसरे अटके मामले सुलझा सकता। जिस तरह वनमाला की पीड़ा को उस वक्त ईमानदारी से प्रियहरि यूं महसूस कर रहा था उसी तरह वनमाला भी सामने बैठी प्रियहरि के मन पर पसीज रही थी। वैसे खुले, निर्विघ्न आत्मीय माहौल में भीड़ की वनमाला और भीड़ का प्रियहरि खुद - दोनों, दो से परे केवल दो ऐसे दिलों में तब्दील हो जाया करते थे, जिन्हें एक-दूसरे से प्यार था और एक-दूसरे की परवाह थी।

प्रियहरि के अफसोस को वनमाला ने यह कहते सहलाया कि - "मैं उन सब बातों की शिकायत कहां कर रही हूं ? आपने तो अपनी तरफ से भरपूर कोशिश की थी। आखिर क्या हुआ ? लोगों ने ही आपका साथ नहीं दिया तो आप क्या करते ?"

वे दोनों इस तरह खो चले थे कि उनके बीच से समय गायब हो चला था। वनमाला को जैसे अचानक उस गायब समय की याद आ गई। उसने कहा - "बहुत देर हो गई मुझे बैठे। मैं अब चलूं, नहीं तो बाहर लोग कहेंगे कि यह अंदर गई और वहीं जमकर रह गई है।"

दो जोड़ी लाचार आंखें एक-दूसरे में झांक रही थीं। न तो वनमाला कुछ बोली, न प्रियहरि कुछ कह सका। चुप्पी तोड़ते हुए अंतिम शब्द प्रियहरि के ही थे -"वनमाला, तुम खुद महसूस करती हो न इसे ? फिर भी बाहर चलने राजी नहीं होती तो मैं क्या कहूं ?"...... लौटने की मुद्रा में ठिठकती वनमाला को देखते उसने कहा - "वनमाला, हमारी किस्मत में न जाने क्या लिखा है। शायद लाचारी ही हमारी नियति है। ऐसी लाचारी कि हम बात भी जी भरकर न कर पाएं। ठीक है, जो होना है होता रहे.. "भाग्यं फलति सर्वत्र।"

उदासी, तकरार और शिकायत से उस दिन दोनों के मन इस तरह खिले कि समूचे दिन और रात उसकी खुशबू से दोनों भीगते रहे थे। यह विचित्र था कि बहसों और शिकायतों से प्रियहरि और वनमाला के बीच जहां दूरियां बढ़ती थीं वहीं उसके विपरीत आत्मस्वीकृति और पश्चाताप हमेशा पुनः उन्हें खींचकर एक-दूसरे से बांध जोड़ जाते थे। क्या यही प्रेम का शाश्वत सूत्र है ?

दिलों का पछतावा एक-दूसरे के बीच दूरियों को पाट रहा था। बीते दिनों के जखमों पर मरहम लगाने और खोये हुए भरोसे को लौटाने मौके की तलाश प्रियहरि को भी होती और वनमाला को भी होती। जनवरी के उस दिन फिर ऐसा मौका था कि किसी प्रशिक्षण में प्रायः सभी पुरुषों और कुछ महिलाओं को भी बाहर रहना था। वनमाला और एकाध कोई और भी रही होगी जो उस परेशानी से बची रही थीं। ऐसे में प्रायः कालेज में छुट्टी का सूनापन छा जाता था। वनमाला और प्रियहरि के बीच की धूप-छांही मिठास के पुनः जुड़ते संबंधों के लिए मौका मुफीद था। उस दिन दोनों फिर मिले।

प्रियहरि के पहुंचते ही वह पास आ बैठी थी। उस रोज के निष्कंटक माहौल में प्रसन्न वनमाला प्रियहरि से पूछ रही थी -"आज तो आप यहीं रहेंगे ना।" वह तनावरहित, उन्मुक्त थी। तनाव तब होता था, जब वनमाला और प्रियहरि के बीच आया वह तीसरा या जासूसी करती भीड़ की निगाहें उपस्थित हों।

चहक कर प्रियहरि बोला - "तुमसे मुलाकात के मौके दुर्लभ होते हैं। कैसी खुशकिस्मती कि आज तुम हो और मैं हूं, बीच में कोई नहीं।" उस दिन शिकवा करते प्रियहरि ने फिर कहा - "न जाने कैसी किस्मत है कि तुम्हें अपना और काबिल जान मैं पास रखता हूं और बदकिस्मती इक तुम हो कि मानने की जगह रूठती दूर चली जाती हो। मुझे ही बदनाम कर जाती हो। न जाने क्यों तुमसे अब डर लगने लगा है। वनमाला, चाहते हुए भी मैं कुछ कर नहीं पाता। यह शायद तुम्हें प्यार करने की ही सजा है। तुम्हारा रुख, तुम्हारा अनमनापन न जाने क्यों कल्पना में भी मुझे उदास और दुखी कर जाता है।"

वनमाला की उदास झिझक ने जवाब दिया - "मैंने तो सदा आपको चाहा है। आपके साथ रही हूं और काम करना भी चाहा है। मैं तो नहीं, लेकिन न जाने क्यों आप ही मुझसे नाराज रहते हैं।"

प्रियहरि की चाहत आज फिर वनमाला के साथ फुरसत से बतियाने की थी, लेकिन मजबूरी कि उसे भी जाना था। फिर मिलने, बैठने की बात कहता वनमाला से विदा ले प्रियहरि चला गया था।

पिछले साल के खराब अनुभवों के बावजूद शहीद होने की नियति को मनसः स्वीकारता प्रियहरि उस क्षण संकल्प में था कि बेबस वनमाला को इस बार महत्व देते हुए फिर से परीक्षाधिकारी वह बनायेगा। परिणाम की चिन्ता उसे नहीं थी। उसका इरादा था कि उसने जो अपराध वनमाला के प्रति किये हैं, उसका प्रायच्चित्त करता वनमाला को वह ऐसी जगह स्थापित करे जहां उसका अहं गौरवान्वित हो, जहां पहुंचकर उसकी सारी शिकायतें तिराहित हो जाएं।

प्रियहरि को इस बात की खबर थी कि पिछली दुर्घटना के बाद महीनों हुए वनमाला और विपुल के बीच बोलचाल के संबंध खत्म हो चुके हैं । वनमाला विपुल से खफा थी। इन दिनों वह उससे दूर ही दूर रहती है। संभवतः वनमाला को यह अनुमान हो चला था कि प्रियहरि को उससे दूर करने की अतिउत्साही उस मुहिम के पीछे अवश्य विपुल का ही हाथ था जिसमें परदे के पीछे रहते भी टी-वी और अखबार वालों को उसने इस उम्मीद से जुटा भेजा था कि प्रियहरि को सरेआम शर्मशा र करता वह वनमाला से उसे हमेशा के लिये दूर कर दे। इतनी दूर कि मरने के अलावा कहीं उसके लिये शरण न हो। हालांकि तब वह उस बाहरी दुर्घटना से साफ बच निकला था, प्रियहरि को आभास हो चला था था कि देर-अबेर वनमाला से खुद उसे भी जुदा होना ही है। यह जनम साथ के लिए नहीं था। उसका मन बार-बार अपने आप से कहता था कि जुदा होते-होते क्यों न वे सारी दूरियां मिलकर मिटा जाएं ? लेकिन क्या वैसा हुआ ? नियति के लेख में तो कुछ और ही लिखा था।

चाहा न कभी जो वो अजब हादसा हुआ।

तकदीर ने किया जो महज इत्तिफ़ाक था
दिल से जुदा न तुम हुई न मै जुदा हुआ
गैरों का तमाशा था जो हम पर कहर हुआ
चाहा न कभी जो वो अजब हादसा हुआ।
- मौलिक

ईश्वर और आदमी चाहने में फर्क होता है। प्रियहरि सोचता कुछ और था पर हुआ कुछ और। ऐसा कुछ और, जिसने प्रियहरि और वनमाला के बीच फिर संदेह, अविश्वास, अनचाही कटुता की खाई को और चौड़ा कर दिया। औरों के बहकाने पर वे दोनों गलतियां करते और पछताते थे। लेकिन भला उससे क्या होता था ? एक बार गलती से छूटा तीर फिर ऐसे सिलसिले पैदा करता था कि चाहते हुए भी वे उन्हें नहीं रोक सकते थे। उनके हाथों मे कुछ न होता। एक-दूसरे के जखमों पर मरहम लगाने, पिछली गलतियों और उनसे पैदा दूरियों को पाटने का सिलसिला दोनों बनाते और तभी दूसरों के हाथों पहुंचे तीर ऐसी परिस्थितियां रच जाते कि दोनों ही उनसे बिंधते "हाय-हाय करते"। वह सब लोगों के लिए महज एक तमाशा हुआ करता। वनमाला और प्रियहरि दोनों इस उम्मीद से राहत में थे कि जो भयावह घट चुका था उसे भुला दिया जाय। वे फिर से पुराने दिनों में लौट जाना चाहते थे। खासतौर पर वनमाला के मन में यह चाहत तेजी से फूल रही थी। लेकिन काल की उस चाहत को क्या कहा जाए जिसने फिर ऐसी परिस्थिति पैदा की, कि पास आते-आते दिलों को हमेशा के लिए जुदा होना पड़ा। ऐसी नौबत आई कि प्रियहरि को अपने प्रति विरक्त पा कर वनमाला को मुंह छिपाने की बन आई।

वनमाला की सखी सौदामिनी रानी ओहदे में बहुत छोटी थीं। वह तो महज पूछताज के लिए चली आई थीं। इस बार सौदामिनी की औपचारिकता को कायदे में बांधने एक और बड़े अधिकारी ब्रम्हस्वरूप आ पधारे थे। इस वक्त वनमाला और प्रियहरि दोनो की इच्छा बच निकलने की थी । फिर वही जवाब-तलब, पूछताछ का सिलसिला चला।

वनमाला का मन संकोच और और पछतावे में डूबा था। प्रियहरि और वनमाला की नजरें एक-दूसरे से टकरातीं संकोच और अफसोस से भरी थीं। लेकिन तब यहां समस्या केवल दो दिलों की नहीं बल्कि उस झूठ की रक्षा की थी, जो वनमाला से नादानी में छूट पड़े तीर ने रच रखा था। खुद की निगाह में वनमाला भले ही गिरती चली जा रही थी समाज की निगाहों में विश्वास जीतने फिर उस दिन वनमाला ने और उसके खिलाफ प्रियहरि ने एक-दूसरे के कपड़े उतार फेके।

एक तरफ यह हो रहा था और दूसरी तरफ वनमाला का यह संदेश मिला था कि उसके लांछन के दस्तावेज वे गुमनाम पत्र प्रियहरि प्रमाण में न सौंपे, जो उसे मिले थे। वादा यह था कि वनमाला की प्रियहरि की खिलाफत में कुछ नहीं लिख रही है।

प्रियहरि उदास, स्तब्ध और स्थिर था लेकिन वनमाला चंचल, परेशान और पशोपेश-ग्रस्त थी। यह विचित्र था कि ऐसे समय में भी वनमाला से प्रियहरि को सहानुभूति थी। प्रियहरि की दिली इच्छा थी कि वनमाला से उसकी आपसी एकांतिक बात हो और पश्चाताप की आत्मस्वीकृतियों के बीच दोनों का पारस्परिक विश्वाश कायम हो। ऐसा होता तो दोनों का यह स्वीकार कि सारा कुछ गलतफहमी का परिणाम है, कि उन्हें एक-दूसरे से कोई शिकायत नहीं है, समूचा फसाद तुरन्त खत्म कर देता। उसमें न किसी तमाशबीन की भूमिका होती न उनके लिए तफरीह का कोई अवसर होता। खासतौर पर सहानुभूति रखते और चीजों को समझते भी वनमाला से प्रियहरि वैसा केवल इसलिए नहीं कह सका कि अपनी ओर से की गई वैसी एकतरफा पहल उसके खुद के लिए ही स्टाफ की बेरुखी और संदेह का कारण बन जाती। वनमाला के रुख का कोई भरोसा नहीं था। हो सकता है वैसा करने में प्रियहरि का अपराध-बोध देखा जाता और उसे प्रताड़ित किया जाता। मजबूरी थी कि अपने को तमाशा बनाए जाने की उस मुहिम को चुपचाप वह देखता रहा। इसे अपनी कमजोरी कहें या कुछ और कि ऐसे अवसरों पर वह सारा कुछ अपने साथियों के विवेक पर छोड़ देता था ।

इस तरह तूफान आया और गुजर गया। हुआ केवल इतना कि प्रियहरि और वनमाला एक-दूसरे के जिन जखमों पर मरहम लगाते भर रहे थे उन्हें नियति का छूट चुका तीर फिर वापस लौटकर हरा कर गया।

मुझे नहीं मालूम था कि चीजें यूं खत्म होंगी।

सच में झूठ, झूठ में सच था कैसे मन को बहलाओगी
मेरा दुख तुमको सालेगा तुम भी मन में पछताओगी ।
-मौलिक
वनमाला की उदासी में झांकते प्रियहरि की उदासी ने तब यह कहा था -"मुझे नहीं मालूम था कि चीजें यूं खत्म होंगी।
जिसके प्यार में जान देते मैंने अपने को मिटा डाला उसी ने मेरा सिर आज शर्मिन्दगी से झुका दिया है।"
उदासी के गहरे अंधेरे से समूचा माहौल भर गया था। गम के उन गहरे बादलों में घिरी दोनों की ही आंखें नम हो चली थीं।

सप्ताह भर के सदमे भरे मौन के बाद दोनों फिर आमने-सामने हुए थे। एक-दूसरे के प्रति अविश्वास, भय, संदेह, अनचाहे आ पड़ी परिस्थितियों - इन सब के बावजूद कुछ था जो प्रियहरि और वनमाला को समीप आने प्रेरित करता था। प्रियहरि वनमाला से कह रहा था - "तुमसे संबंध अब ऐसे हो चले है कि सरकारी काम तक के लिए तुमसे बातें करना, तुम्हें बुलाना मेरे लिए दुष्कर है। तुम आ नहीं सकती, मैं बुला नहीं सकता। न जाने मुझसे तुम्हारी क्या दुश्मनी है ? जो मैं नहीं चाहता था और शायद तुम भी नहीं चाहती थी - वही हुआ और हो रहा है। मैं शर्मिन्दा हूं कि तुमसे किस मुंह से बात करूं ?"

तीन हफ्ते पहले विश्वास में किसी काम के लिए सौंपे कागज प्रियहरि ने यह कहते वनमाला से वापस ले लिये उसने वनमाला से कहा- "चाहते हुए भी अब मैं तुमसे कोई काम न कहूंगा या तो मैं खुद कर लूंगा, या किसी और से करा लिया करूंगा।"

गुजर रहे दिनों की उथल-पुथल का विषाद और पीड़ा की छायाएं वनमाला के चेहरे पर भी घिरी थीं। पशोपेश और संकोच की निगाहों से जैसे कि उनमें यह शिकायत भरी हो कि - जो हुआ वह तुम्हारा ही नहीं, मेरा दुर्भाग्य भी तो था । मेरी मजबूरी क्यों नहीं समझ सकते, मैं भी तो परेशान हूं - वनमाला की जुबान ने आत्मीय सफाई दी - "मैने मना कब किया है ? इन दिनों बड़ी परेशान रही हूं। जरा समय दीजिए तो मैं कर दूंगी।"

प्रियहरि के हारे हृदय ने मान लिया था कि वनमाला की छवि में चाहे लाख अपनापन वह देखा करे, वह उसकी नहीं है। बहुत पीड़ा से प्रियहरि ने उसे विदा कर दिया। उस रोज प्रियहरि की इच्छा थी कि वह वनमाला को अपने पास बिठाए, शायद वनमाला की इच्छा भी रही कि प्रियहरि उसे प्यार से पेश आता पास बिठाए, लेकिन वैसा नहीं हुआ । बाहर गमगीन और अंदर आंसुओं की चीख से भरे मिलन की चाहत से भरे दिल कोशिशों के बावजूद न मिल पाने की नियति को स्वीकारते अलग हो गये।

प्रियहरि को अंदर ही अंदर बेहद पीड़ा हुई कि वनमाला की 'हां' पर भी उसके प्रति उसने बेरुखी दिखाई है। वनमाला के जाते-जाते भी वह बेहद कठोर और विरक्त हो चला था। उसने कह दिया था - "वनमाला तुमसे मेरा कोई संबंध नहीं रहा। मैंने भूल की कि तुम्हारी तारीफ करता तुम पर यकीन करता, तुमको अपना जान छोटे-मोटे काम विश्वास से तुम्हें सौंपता रहा। अब तुम्हारी जगह किसे दूं ? मुझे तो कुछ सूझ ही नहीं रहा है।"

तब वनमाला अवसाद से विषण्ण-मुख सिर झुकाए सामने खड़ी थी। पलभर उसके चेहरे को निहारते प्रियहरि के सामने वनमाला के साथ के पिछले सारे वर्षों की यादें जैसे उसमें सिमट आई थीं। अथाह स्मृतियों के भार से दबा उदास चित्त वनमाला की उदासी से मिलकर पिघला जा रहा था। वनमाला की उदासी में झांकते प्रियहरि की उदासी ने तब यह कहा था -"मुझे नहीं मालूम था कि चीजें यूं खत्म होंगी। जिसके प्यार में जान देते मैंने अपने को मिटा डाला उसी ने मेरा सिर आज शर्मिन्दगी से झुका दिया है।"

उदासी के गहरे अंधेरे से समूचा माहौल भर गया था। गम के उन गहरे बादलों में घिरी दोनों की ही आंखें नम हो चली थीं। प्रियहरि का जी किया कि उन अंतिम क्षणों में वह और वनमाला दोनों एक-दूसरे से लिपट खूब रो लें ताकि जुदा होते-होते ही सही जी हल्का हो जाए। लेकिन नहीं, वैसा नहीं हुआ। भय! भय! भय! समाज का भय, दुनिया का भय। मरते-मिटते भी भय का आतंक इतना कि अफसोस से मन मसोसने के अलावा प्रियहरि और वनमाला कुछ न कर सके। हथेलियों से अपनी नम आंखों को पोंछती सिर झुकाए वनमाला लौट गई और प्रियहरि आंसू बहाता देर तक अपनी टेबिल पर सिर थामे बेहोश पड़ा रहा था। उस रोज की वह मुलाकात वहां उन दोनों की अंतिम मुलाकात थी। काल ने इतनी तीव्र गति से उन्हें अलग करने प्रवेश किया कि फिर एक-दूसरे की चोटों पर मरहम लगाने का अवसर भी न मिल सका था। वनमाला को आगे कर शिकार प्रियहरि को बनाया जा रहा था, लेकिन विरोधियों की उस मुहिम में सामने खड़ी वनमाला खुद भी शिकार हो रही थी। प्रियहरि और वनमाला दोनों भयानक तनाव, पशोपेश और द्वंद की स्थितियों से गुजर रहे थे।

प्रियहरि का मन टूट चुका था। उसकी सारी दिलचस्पियां खत्म हो गई थीं। उसके लिए तो वनमाला ही वहां सारे-कुछ का पर्याय थी। जब उसकी जिन्दगी में वह ही नहीं थी तो बाकी भी कुछ न रहा था। दोनों अब इतने मजबूर थे कि आस-पास रहते भी सामने पड़ने से बचते थे। विपत्तियों के आघात से दूर होने की जितनी विवशता थी, उतनी ही सघनता से करीब आते उनके मन गुंथे पड़ते थे। किस्मत की लाचारी ऐसी कि औरों को दिखाने के लिए जो सार्वजनिक नाटक उन्होंने तैयार किया था, उसे निभाना था - ताकि बाहर जो दर्शक थे उनका विश्वास बना रहे, ताकि वे उन्हें झूठा समझ अपमानित न करें।

इमारत
स्मृतियों से रचा एक चेहरा है

हांफता हुआ भागता है मन
कि पहुंचूं तुम तक
इससे पहले कि तुम निकल जाओ

इमारत
स्मृतियों से रचा एक चेहरा है
मेरे लिए

साधारतः फरवरी और मार्च के महीने राहत के होते हैं लेकिन वनमाला और प्रियहरि के बीच ईर्ष्या से जली जाती निगाहों ने जैसे तय कर लिया था कि अब तक जारी मुहिम को अंतिम अंजाम तक पहुंचाकर रहेंगी। उन निगाहों में भय था कि अगर यह अवसर चूक गया तो फिर वनमाला और प्रियहरि को एक-दूसरे के टूटे दिलों को जोड़ने में देर न लगेगी। खासकर ऐसी स्थिति में जबकि पिछले महीनों से ही विपुल की खुराफातों से तंग वनमाला उससे विमुख रही आई थी। अज्ञात षड़यंत्रों से उत्पात, उपद्रव और परेशान करने के मुहिम जारी थे।

प्रियहरि का चित्त स्मृतियों से घिरा था। वनमाला की स्मृतियां घनीभूत होकर उसपर छाई जा रही थीं। उसका जी करता था कि वनमाला से भेंट हो, बातें हों, फिर वे एक-दूसरे को कहें-सुनें, फिर आंसू बहाएं और एक हो जाएं। दूसरी ओर बाहर का वह तनाव था, जो वनमाला से मिलने की संभावनाओं को दूर ढकेल रहा था। ऐसे ही किसी दिन फोन पर नजदीकी लोगों की प्रियहरि से पूछताछ शुरू हुई कि क्या सचमुच उसके तबादले के आदेश हो चुके हैं। पहले गुड़िया सी प्यारी नेहा, फिर उसके विश्वस्त सुदर्शन ने ऐसी ही बातें उससे पूछीं। फिर उस सत्यजित से, जिसे वह काम-काजी चार्ज दे आया था, बाद में पुख्ता खबर आई कि आदेश आ चुका है। दूसरे दिन यानी छः मार्च को फौरन से पेश्तर सुदर्शन के हाथों उसने वह कागज घर पर ही भेज भी दिया था।

वह सात मार्च की तारीख थी और दो हजार पांच का साल था जब नई खबर को थामे अपनी दशकों पुरानी संस्था से बाइज्जत नहीं ,बेइज्जत रुखसत होने प्रियहरि उस इमारत में पहुंचा जिसे उसने वनमाला का पर्याय बना रखा था। उसकी आंखों में उस वनमाला का चेहरा तैर रहा था, जिसकी छबि की एक झलक पाने वह बिला नागा किए रोज़ उसके निकल भागने से पहले हांफता हुआ जा खड़ा होता था। वह जैसे उसी के आने की प्रतीक्षा में रुकी होती। अपने लिए प्रियहरि से सुनी पंक्तियां वनमाला के हृदय में बसी थीं -

हांफता हुआ भागता है मन
कि पहुंचूं तुम तक
इससे पहले कि तुम निकल जाओ
इमारत
स्मृतियों से रचा एक चेहरा है
मेरे लिए
जिसका नाम वनमाला है

परम एकांत में सुनी इन पुर-सुकून पंक्तियों को दोहराती वनमाला अक्सर अपने आप से पूछा करती कि क्या कविता की वनमाला से वनमाला का प्रियहरि अलग है। यह केवल कविता है। प्रियहरि की नहीं ,वनमाला की नहीं । वह दोनों के बीच की है जहां वह और उसका प्रियहरि अभिन्न हैं। इतने अभिन्न कि उसे जाना नही जा सकता। बस ,केवल महसूस किया जा सकता है।

नज़र उठती ,नज़रें मिलतीं और उपहार में अपनी प्यारी मुस्कान प्रियहरि को नज़र करती वनमाला दोनो दिलों की बेकरारी को आने वाले कल तक के लिए बढ़ाती उठ खड़ी होती। दोनों का मिलना ,बैठना ,और बातें करना तो क्या आमने-सामने आ टकराना भी बाकियों के लिये उस दिन के लिये खबर का मसाला हो जाती थी। प्रश्नित करती आंखों से जूझना वनमाला के लिए एक ऐसा संकट था जो निरुपाय था। इसी के चलते लिपट रहने की कामना के बावजूद दूरी के नाटक का अनन्त अभिनय वनमाला और प्रियहरि के बीच की मजबूरी हो चला था। हद यहां तक थी कि वैसी हालत को भी लोग संदेह से देखते और चर्चा इस बात की चल पड़ती कि उन दोनों के बीच बात इन दिनों क्यों नही हो रही है **?**

गड्डमगड्ड हो चली स्मृतियों के बीच बीत चले वर्षों का एक परिदृश्य उभरकर सामने आ रहा था। सारा-कुछ काल के गुबार की तरह गुज़र चला था ,लेकिन स्मृतियां थीं कि अटल हो स्थिर हो गई थीं इतिहास के फॉसिलों की तरह। वनमाला और प्रियहरि दोनों उस इतिहास मे प्रेतों की तरह भटक रहे हैं , लेकिन यह सहयात्रा मानो सागर की लहरों पर तैरते उन व्दीपखंडों की है जो एक होकर भी अलग-अलग रहने नियत हैं।

इश्क में क्या की न बुराई लोगों ने ,क्या मेरे जुनूं की-
कुछ तुमने बदनाम किया कुछ आग लगाई लोगों ने ,
मेरे लहू से मेहंदी चमकी जाने कितने हाथों में
शहर में जिस दिन कत्ल हुआ मैं ईद मनाई लोगों ने

यह इस इमारत में प्रियहरि की भौतिक उपस्थिति का आखिरी दिन था। वनमाला की एक झलक वह पा लेना चाहता था। प्रियहरि के लिये वह पराई अब भी न थी। काश, उस दिन वनमाला और वह जुदा होते-होते ही सही उस तरह आंखों में आंसुओं के साथ मिलते मन का सारा मलाल मिटा पाते ; काश वे उस प्यार का निर्मल इजहार कर पाते जो हर झगड़े के बाद और ज्यादा उछालें मारता उमड़ा पड़ता था । पर नहीं, इस बार वनमाला नहीं आई। जिस झूठ को उसने लापरवाही में रच लिया था, उसे फांद पाना उसके लिये संभव न था।

गैर अब सचमुच गैर हो चले थे। उनके लिये निकटता केवल तब तक का अभिनय था, जब तक प्रियहरि का वहां से टलना अनिश्चित था। अब उसके पास आने, उससे बातें करने में किसी को दिलचस्पी नहीं रह गई थी। उपस्थित परिवर्तन ने अचानक सभी को बदल दिया था। पुराना अब गुजिश्ता साल की तरह केवल समीक्ष्य रह गया था और नए की उत्कंठा से सारा परिदृश्य परिचालित था। यह सरकारी रवैये की असलियत थी, जिससे प्रियहरि रू-ब-रू था। माहौल को जैसे सांप सूंघ गया था। प्रियहरि कह नहीं सकता था कि वह बदलते परिदृश्य के साथ करवट बदलने की तैयारी थी या महीनों से जारी उतार-चढ़ाव भरी घटनाओं के अप्रत्याशित अंत का झटका था ? प्रियहरि से सहानुभूति जताने दफ्तर के अधीनस्थों के सिवा उसका कोई साथी न फटका। प्रियहरि का होना सब के लिए अब मरे हुए आदमी के प्रति बेचारगी से भरी निगाह भर थी। सप्ताह बीतते मेरे अफसोस पर अफसोस न जता पाने का अफसोस लिये बाद में कुछ साथी ज़रूर आए थे लेकिन यह कह पाना मुश्किल है कि उसके पीछे दिल की सचाई ही थी या कुछ और था ? चुलबुली नेहा हमेशा की तरह अपने खुले दिल की ही तरह खुली रही। उससे प्रियहरि की बातचीत बाद में भी होती रही थी ,लेकिन वह एक बहुत खास , जिससे उसकी शिकायत रही आई ,उसकी वनमालानुवर्ती प्रिया नीलांजना थी।

वनमाला अब भी प्रियहरि की रूह मे अंदर तक समाई थी ,लेकिन इसे वह किस्मत का फेर कहे या और कुछ कि वनमाला को वह, या वनमाला उसे, या वे दोनों ही ठीक-ठीक एक-दूसरे को समझ पाने की कोशिश मे लगे रहे। इक-दूजे की प्यास बुझाने की चाहत में वनमाला भी सुलगती रही और प्रियहरि भी सुलगता चला गया। नीलांजना को यह मालूम था कि प्रियहरि का प्रेम वनमाला पर है ,लेकिन यह विचित्र था कि उसने जब मौका आया अपनी मायूसी में ही शिकायत दर्ज की। जुबान पर उसके कभी कुछ नहीं आया। इसके विपरीत वनमाला थी कि जो हमेशा नीलांजना से छिटकती रही। नीलांजना को लेकर अकारण वनमाला का गुस्सा प्रियहरि पर फूटता था ,लेकिन नीलांजना थी कि हमेशा प्रियहरि की मायूसी में बगैर कुछ मांगे हमदर्द की तरह पेश आती थी। नीलांजना की बड़ी-बड़ी कज्जल-गहरी पुतलियों मे प्रियहरि की आंखों की पुतलियों का उदास भूरापन बसकर राहत पाता था। नीलांजना हमेशा उलझनों से दूर भागा करती थी । अब इन विदाई के क्षणों में भी उसका कायर संकोच उसे प्रियहरि से दूर किये रहा। प्रियहरि से नीलांजना के रिश्ते इस कदर सहज और प्राकृतिक थे कि वह इससे या यह उससे कभी किसी हालत में जुदा न थे। बात दिलों की

निहायत अंतरंग हो, या दिमाग की - दोनों के बीच खुली होती थी। तब ऐसा क्या था कि उसने अपने को हमेशा संकोच में रखा ? नीलांजना के मन की गहराइयों में उतरकर कठोरता से वर्जित उसकी मनोदशा को प्रियहरि कभी न बूझ पाया।

वह बात ठीक-ठीक क्या थी ? वह चाहती तो प्रियहरि को वनमाला से छीन सकती थी ,लेकिन वैसा साहस वह कभी न जुटा पाई। क्या नीलांजना को अपने पर ही विश्वास न था कि बार-बार वनमाला की ओर भागते प्रियहरि को वह नही छीन पाएगी ? क्या उसे प्रियहरि पर विश्वास नही था कि वह उसका रह पाएगा ? या फिर यह कि प्यार-मुहब्बत के लफड़ों के भयानक अंजाम उसे डराते थे और वह प्रियहरि की ओर खिंचकर भी भाग खड़ी होती थी ? जो भी हो ,असहायता की उस अंतिम वेला में नीलांजना का अभाव प्रियहरि के लिये अचानक बहुत बड़ी कसक छोड़ गया।

कभी-कभी प्रियहरि इस बात को लेकर पशोपेश में फंस जाता है कि वह किससे अधिक प्यार करता था - वनमाला से या नीलांजना से ? वनमाला उसके लिए अगर ऐसी चोट थी, जो अपने को हमेशा जीवित रहने में विश्वास रखती थी तो नीलांजना वह मरहम थी, जो हमेशा चोट से राहत दिलाती थी। मुश्तकिल तौर पर प्रियहरि का दिल वनमाला के अपनी जिन्दगी में आने के साथ ही उसपर कुर्बान हो चला था। नीलांजना से प्यार की वजह शायद पशोपेश का वैसा ही भटकाव था, जैसा नीलांजना के दिल में प्रियहरि को लेकर था। ऐसे ही भटकाव के कारण नीलांजना संभवतः कभी आश्वस्त हो न पाई कि प्रियहरि सचमुच उसे चाहता है और उसके प्रति वफादार रहा आएगा। नजदीकियों के हर मौके पर नीलांजना और प्रियहरि के बीच पत्नी के से अधिकार से वनमाला आ धमकती थी। जैसे भटके हुए को उसकी अपनी जगह पहुंचा रही हो सदाचारणी तपस्विनी की तरह नीलांजना मौन रही आती सब सहती थी। बजाय इसके कि अपनी आकांक्षाओं को पालने नीलांजना झंझट मोल ले, उसकी उदास खुशी सारा-कुछ धीरज से सह जाती थी । नीलांजना की सी भोली मासूमियत और सहिष्णुता प्रियहरि में न थी, लेकिन नीलांजना के दिल की तरह का अनिश्चय और भटकाव की मायूसी उसे भी विचलित करते थे। जैसे नीलांजना के लिए यह निश्चय करना मुश्किल था कि प्रियहरि उसे सचमुच चाहता था या नहीं, वैसे ही प्रियहरि के लिए यह समझना हमेशा दुष्कर आया रहा कि वनमाला उसे सचमुच चाहती है या नहीं ? प्रियहरि के और अपने बीच किसी या किन्हीं और को देखना भी वनमाला को गवारा न था। यह अजीब था कि प्रियहरि को सगर्व छीन लेने के बाद वनमाला उससे यूं पेश आती जैसे वह उसकी कोमल-अंधकारमयी गुहा में कहीं रखने लायक महज ऐसा सामान है, जिसका उपयोग करना या न करना उसकी अपनी मर्जी भर थी। यही भटकाव वनमाला से अब और वितृष्णा जगाता प्रियहरि को उस नीलांजना प्यारी की ओर खींचता था, जो हमेशा उसकी सहज-संगिनी रही आई थी।

नियति अपना काम पूरा चुकी थी वनमाला और प्रियहरि की जुदाई का समय आ पहुंचा था। काल अपनी पूरी निठुरता के साथ मार्च की उस नौ तारीख को यूं अवतरित हुआ कि दोनों को एक-दूसरे से मिलना तो क्या देखना तक नसीब नहीं हुआ। कथा का वह अंतिम कूर्रर अध्याय था जिसे काल ने रचा। प्रियहरि की स्मृतियां उस जगह और वहां के अपने सहचरों-सहचरियों को समेटकर ले चलीं। उधर वे सब थे जिनकी स्मृतियों में प्रियहरि को रहा आना था। घटनाओं-दुर्घटनाओं से सहमे सभी कम मन शंकाओं-आशंकाओं से भरे थे। प्रियहरि और वनमाला के बीच का माजरा बाहर-बाहर तो प्रकट दिखाई पड़ा लेकिन उसके पीछे के रहस्य और उलझनें समझ से परे थे। वनमाला की दुस्साहस भरी कूटनीति की अविश्वसनीय सफलता ने सभी को अचंभित कर दिया था। सभी को उत्सुकता थी कि अब प्रियहरि का क्या हाल होगा ? भविष्य असूझ और अबूझ था ।

" क्या करूं ? मैं कहां जाऊँ ? मेरा क्या होगा ? मुझे और कितने बुरे दिन देखने हैं ?" -वह सोच रहा था।

****

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

4

मरुभूमि की प्यास : आदिम स्वप्नों की तलाश

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

Love's mysteries in souls do grow,
But yet the body is his book. -~John Donne, *Extasy*

Why should we take advice on sex from the pope? If he knows anything about it, he shouldn't! ~George Bernard Shaw

What is commonly called love, namely the desire of satisfying a voracious appetite with a certain quantity of delicate white human flesh. ~Henry Fielding

Sex is emotion in motion. ~Mae West

"Graze on my lips; and if those hills be dry, Stray lower, where the pleasant fountains lie." (William Shakespeare)

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

देह के अदम्य आवेगों में थोड़ी सी हिंसा भर दीजिये फिर देखिये क्या होता है. मैं उस मायावी फूलबगिया का विध्वंस करने में जुट गया . खूबसूरत फूलों और उनकी कमनीयता पर शान से फूले रहने वाले गमले टूट-टूटकर बिखर रहे थे, फूल और उनको पोसने वाली कोमल पत्तियां रौंदी जा रही थीं. नकली चांदनी का चांदोबा तार-तार हो गया. होक और बटन टूटी हुई माला के मोतियों की तरह छिटके जा रहे थे. शरीर चकमक पत्थरों की तरह आपस में रगड़ खाकर चिंगारियां छोड़ने लगे थे..

- यू आर हंटिंग मी ... फॉर गाड सेक प्लीज़ ...

- शट-अप यूं बिच! ब्लडी बिच इन हीट! आई नो यू आर एन्जोइन्ग इट. *******

" राजीव! आर यू ड्रंक?"

"नो! बट आई हेव बीन पुश्ड टु वाल. इन-फैक्ट बीन नेसली फक्ड...." ********

मैं अचानक जगा. मेरी देह जाग गयी थी. उसकी कामनाएँ भी. ऐसी प्रबल उत्तेजना को अनुभव करके मैं कुछ करता कि उसकी कड़कदार आवाज़ ने मुझे कील दिया. ' उठ साले!...कहीं के. खुद आग लगाकर आराम से सो रहा है. तेरी..! देखूं तेरा...' हैरानी से मेरी आँखें फटी रह गईं. वह साक्षात् चुड़ैल लग रही थी. एक खूबसूरत चुड़ैल...

..जब मै आजिज आ गया तो वह अदृश्य हंटर उससे छीनकर खड़ा हो गया मुकाबला करने के लिये.

फिर क्या हुआ पता नहीं. कैसे मैं उसकी चमड़ी धुनते-धुनते बेदम होकर गिर पड़ा, मुझे बिलकुल पता नहीं. सिर्फ इतना याद है कि होश में आया तो मेरा सर गोद में लेकर बैठी थी. मैनें आँखें खोलीं तो वह मुस्कुराकर उसी चिर-परिचित शीरीं ज़ुबान में बोली,

" शाबास! यू हैव परफारमड वेरी वैल. यू वर टैरिफिक."

(हंस जून, २००९ - कहानी "कितने शीरीं हैं तेरे लब कि" - राजेन्द्र राव से ,पृ. २५)

0000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

श्रुति

कामिनी काय कांतारे कुच पर्वत दुर्गमे ।
मा संचर मनस्पान्थः तत्रास्ते स्मरतस्करः॥ - शुक-रंभा संवाद

दुःस्वप्नों की तरह अकल्पनीय दुर्घटनाओं से गुजरते अंततः वनमाला से मुझे दूर होना पड़ा था। वैसे दुःस्वप्नों के बीच नेहा ही थी जिसके साथ ने मरुभूमि में भी हमेशा मेरी प्यास बुझाई। कुछ काल के लिये सुदूर वनांचल में स्थित किसी एक संस्था में मुझे भेज दिया गया था। अदृष्ट की कृपा थी या संयोग मैं नहीं जानता लेकिन शांत और स्वच्छ प्राकृतिक सौन्दर्य से यह जगह भरी-पूरी थी। योग्यता और प्रतिभा अपने परिचायक आप ही होते हैं । यहां मेरे अधीनस्थ छोटे-बड़े ओहदे के सभी साथियों को यह आभास हो चला था कि उनके बीच मेरा होना समूचे माहौल को समृद्ध ही करेगा और किसी को भयभीत होने की जरूरत नहीं थी। मित्रों और घरवालों जैसी आत्मीयता जल्द ही पनप चली थी। दूर होने के बावजूद नेहा से संपर्क बना रहता था। नेहा का दिल साफ था। इसीलिये औरों की तरह आंख से ओझल होते ही बदले दिलों की कतार से वह बाहर थी। मेरे लिये वह सरल-हृदया संगिनी थी और उसके लिये मैं भी निर्कुन्ठ, उसी की तरह बिन्दास और योग्यतर साथी था। तब भी वह शायद मेरी ही गलती थी कि वह भी कुछ खिन्न हो मुझसे रूठ गई थी। इन दिनों नेहा अनेक बार मुझे फोन कर चुकी थी। दरअसल वह चाहती थी कि अगले किन्ही महीनों में प्रस्तावित सेमिनार के उसके आयोजन में उसका मैं खुलकर साथ दूं और बतौर मिहमान उस पुरानी इमारत में एक बार फिर से प्रवेश करूं।

मेरे साथ कठिनाई यह थी कि दूर होने के बावजूद मेरे मन में वनमाला ही रही आई थी। दूरियों से संबंध नहीं मिटते बल्कि स्मृतियां और प्रगाढ़ होती हैं। परिस्थितियां ऐसी रची जा चुकी थीं कि उस पुरानी जगह जाकर करीब होते भी न तो मैं वनमाला से मिल सकता था और न वह मेरे करीब आ सकती थी। एक उदास संकोच होता जो वनमाला को मुझसे और मुझे वनमाला से बरबस दूर किये होता। दूसरी बात यह थी कि व्यक्तिगत अनुरोध नेहा का था, वहां के संस्था प्रमुख का नहीं, जिसे जाहिर है मेरी पृष्ठभूमि से चिढ़ हो सकती थी। नेहा ने चाहा कि मैं कुछ लोगों के नाम से सेमिनार-पेपर लिख दूं। कई-कई फोन उसके आए और कुछेक बार मेरे घर के फेरे लगे । मेरी बीबी को नेहा का मुझसे अपनापन दिखाना पसन्द न था। पुरानी संस्था की यादों से ग़मगीन मैने भी नेहा से बेरुखी दिखाई,। मैने उसका चाहा समय न दिया । नेहा के बहुत पीछे पड़ने पर मैने विभाग की एक दीगर सहचरी के लिए लेख लिख उसके नेहा के यहाँ आयोजनीय सेमिनार में भेजने वादा किया था। नेहा चहककर उसकी शक्लो-सूरत, कद-काठी और मुझसे उसके ताल्लुकात की जानकारी ले रही थी। हमारे बीच चर्चा का केन्द्र बनी कामिनी श्रुति संबंधों मे मेरे निकट थी पर उतनी नहीं, जितनी नेहा थी। नेहा का ईर्ष्यालु संदेह मैने उसकी जिज्ञासु आँखों मे पढ़ लिया था। ईर्ष्या-भरी शरारत से चमकती नेहा की फैली जाती आंखें, अंदर छिपी कामना की लाली से चमक उठे उसके गुलाबी गाल, और चपल ओठों में बिज़ुरी सी खिलखिलाती दंतच्छटा मुझे रह-रहकर उसे लील जाने लुभा रही थी। मेरे अंदर इच्छा जागी कि सामने बैठी नेहा को वहीं अंक में समेट कर उसके और अपने अंदर की वाटिका को सींच जाऊं। अवसर लेकिन तब मौजूं नहीं था। भाग-दौड़ करती उस वक्त वह कहीं से आयी थी और उसके लौट जाने की त्वरा के

बीच ही सह सब चल रहा था। मजा लेने और नेहा को चिढ़ाने मैने कह दिया कि यहां जल्दबाजी में न तुमसे बात हो पा रही है और न मैं तुम्हारी मदद इस जल्दबाजी में कर सकता। एक रोज मौका निकाल बाहर मेरी नई जगह पर चली आओ और साथ रहो तो काम बन जाए। नेहा समझ चुकी थी कि दो-घंटे के खेल को दिन-भर के लिए पलंग पर फैला मै उसके साथ पिकनिक मनाने के इरादे में हूं। 'हां-ना' के पशोपेश में झिझकती उसने फिलहाल सामने पड़ी चिन्ताओं की वजह से उतनी दूर न जा सकने की मजबूरी बताई। नेहा की चाहत थी कि वह अपनी फुरसत पर कभी फोन करे आ जाए और मैं बोल-बोलकर उसके लेख तैयार करा दूं। नेहा को मालूम था कि वैसा करना मेरे लिये मामूली बात थी और पहले मैं उसके लिये वैसा कर भी चुका हूं। इस बार मैने वैसा करने साफ मना कर दिया। मैं चाहता था कि नेहा दिमाग पर बोझ लादकर महज उसे हल्का करने नहीं, अपितु खुद भी सुन-सीखकर मित्रवत काम करने और कराने की गरज से आया करे। नेहा खिन्न हो गई। रूठकर फिर उसने मुझसे बातचीत ही टाल दी। बाद में मैं समझाता रहा कि वह सब मज़ाक था। मेरी बेरुखी ने नेहा को मायूस कर दिया था। नेहा के दिल को ऐसी चोट पहुंची थी कि वह फिर दूर ही चली गई।

इधर श्रुति की फरमाइशों और आग्रहों पर ही मैने उसे नेहा के सेमिनार में भेजने का इंतजाम कर रहा था। श्रुति और नेहा के बीच इस मामले में बातचीत के लिए मै ही माध्यम था। श्रुति मुझमे नेहा के बारे में पूछने लग जाती और नेहा श्रुति के बारे में कि वह देखने में कैसी है ? आप के कितने करीब है वह ? कितने गहरे तआल्लुकात हैं उससे आप के वगैरह।

नेहा कह रही थी -" श्रुति नाम की लड़कियां बहुत अच्छी होती है। मेरी एक सहकर्मी सहेली थी अमुक कालेज में । हम दोनों साथ-साथ रहतीं और हममें खूब पटती थी।"

मेरे संबंध वाली नई श्रुति के बारे में नेहा की पूछताछ पर, बात टालते और चिढ़ाने की गरज से मैने कहा था -" उसकी बात छोड़ो। अपनी उस श्रुति के बारे में बताओ। खूबसूरत है क्या ? कहां है ? क्या उम्र है। उससे मिलाओ ।"

वनमाला की यादों की छाया से बेजार और वितृष्ण मैने नेहा को रिझाने और चिढ़ाने ही वे सारी बातें उस दिन कही थीं। औरतें मन की अपनी उतावली जिज्ञासा और ईर्ष्या यूं उजागर कर देती हैं, लेकिन खुद को समर्पित करने से बचना चाहती हैं। इधर मुझे नेहा पर गुस्सा आ रहा था और उधर वह थी कि खुद "नई ना" कहती टालती अपने अंदर की गुदगुदी को छिपाए मेरी ही जासूसी करती मुझे छेड़ रही थी। नेहा को जिस शरारत भरी क्रूरता से मैने टाला था उससे उसके मन में यह खयाल भर गया कि मैं झूठा हूं और उसके प्रति मेरा लगाव केवल उस आवारगी की छाया थी, जिसका इजहार मैं बेरुखी से उसके सामने कर रहा था। नेहा को चिढ़ाने, जलाने, नाराज करने में मै कामयाब हो गया और इसी कामयाबी का नतीजा था कि नेहा ने उसके बाद खुद मुझे फोन करना तो क्या मेरे फोन का जवाब देना काफी दिनों तक बंद कर रखा था। इस तरह नेहा पुराण के पहले चरण की मेरे जीवन में इतिश्री हुई। सम्बन्ध तो बाद में भी बने रहे लेकिन नेहा का संदेह भरा मन फिर मुझसे ठीक-ठीक उस तरह नहीं जुड़ पाया, जैसा अब तक मुझपर उस बिंदास गुडिया की उम्मीद ने मुझे अपने से जोड़ रखा था.

श्रुति

मै खुद वैसा उत्तेजित नही हूं जितना मज़ा मुझे उसे उत्तेजित करने में आ रहा है। यह अजीब बात है कि इस सांवली, प्रायः सूखी औरत को उसकी सजावट में भी पूरे मन से मैं स्वीकार नही कर पाता। वह केवल आपद्धर्म का आनंद है। मैने अनुमान लगाया कि फोन पर मादक उन्माद से उछलती आवाज में लिपटी नंगी देह की क्या कह रही थी।

रमणियों से अपने संबंधों के दौरान मैं यह अनुभव करता रहा हूं कि मर्द जहां बग़ैर लंबे इंतजार ट्रेन में सवार हो सफर में चला जाना चाहता है वहां हम-सफरी को बेचैन रमणियां उस सफर का रोमांस जगाती ट्रेन पर ट्रेन छुड़वाती आप को प्लेटफार्म पर बिठाए लंबे इंतजार में ढकेलती मजा लेती है। इस अनुभव से मै

ऊब चला था। यात्रा की बातें, यात्रा की कल्पना का रोमांस, यात्रा का लंबा इंतजार मुझे बेरुख करता अपने उस हरफन-मौला आशिक ख़ूबसूरत दोस्त की वह बात याद दिलाता जो एक बार उसने मुझसे कही थी-

"ज्यादा इंतजार करते यात्रा की उम्मीद में बैठना बेकार होता है। यह बात आप जान लीजिए कि जहां वैसा अवसर हो वहाँ कुछ रोज़ आप देख ले कि सामने वाले को यात्रा करनी है या नहीं। कहीं उलझकर अपना समय बरबाद करना ठीक नही है। अगर सामने वाला तैयार हो जाता है तो ठीक, अन्यथा उसे छोड़ अपनी राह लीजिए।" उसने कहा था- "मैं इंतजार नहीं करता। दो-चार रोज़ की तैयारी मे भांप लेता हूं और औरत को सीधे बिस्तर पर ले जाना पसंद करता हूं। आप भी इसका ध्यान रखा कीजिए।"

औरत का संसार चाहे मर्द को रोमांस की रस्सी मे बांधकर मजे लेने की कामना में रहता हो, मर्द के लिए वह सचमुच दुखदाई पीड़ा का कारण बन जाता है। औरत की सुरक्षा में उसका अपना तरीका व्यवहारिक होता है लेकिन आदमी के लिए भला उसी में संभवतः है, जिसका जिक्र मेरे उस मित्र ने मुझसे किया था। इन दिनो मै भी वैसा ही बिन्दास, लापरवाह और संबंधो के मामले में क्रूरर और उजड्ड हो चला था।

श्रुति से तआल्लुकात में मेरा रवैया यही था। साल भर पहले ही मुझे मालूम पड़ गया था कि कहीं और से भगाई जाकर तबादले मे वह मेरे मानहत आने वाली है। अनेक ने साफ-तौर पर आगाह कर दिया था कि वह बहुत उजड् सिनिक प्रवृत्ति की झगड़ालू और बदत्तमीज औरत है। महीनों छुट्टी मे टालकर आखिर वह तबादले पर मेरे रूबरू हुई। चंद दिनों में ही शिकायतों का अंबार लगने लगा। एक-दो-तीन-चार, अनेक ने कहा कि ये औरत तो बेहद खतरनाक और पागल है। किसी को कुछ भी बोल देती है, अपमानित करती है और सज्जनता से बातें करने पर भी उन्मादी हो जाती है। शिकायत मिली कि उसने एक दिन चौकीदार और चंद लड़कों के खिलाफ शरारत और हंसकर हल्के ढंग से आवाजे कसने का आरोप लगाते हंगामा खड़ा कर डाला और बात थाने तक पहुंच गई। शिकायत मिली कि उन्माद मे गाली-गलौच करती किसी रोज़ वह पढ़ने वाले छोकरों पर पिल पड़ी और पत्थर उठाकर मारने दौड़ी थी । क्या लड़के और क्या प्रोफेसर सभी उससे आतंकित थे। मुझे समझाया गया कि यह औरत उन्माद का शिकार है और आप भी इससे बचकर रहें ।

कुछेक बार आमना-सामना हुआ, कुछेक बैठकों मे मैने पाया कि मेरी उपस्थिति मे वह वह शरीफ और संयत थी। औरों के खिलाफ यह शिकायत करती कि वहां सब निकम्मे और कामचोर हैं। मै इनके खिलाफ कड़ाई का रुख अपनाऊं। अंदर मेरे चाहे जो छिपा हो, बाहर मेरा व्यक्तित्व, बातें, व्यवहार, चीजों के प्रति तर्कसंगत वैज्ञानिक अप्रोच और फिर साथ ही ज्ञान और संवेदना की दुनिया के हर कोने से परिचय की महारत इस औरत को मेरी तरफ खींच रहे थे।

यह अजीब बात थी कि मेरी प्रशंसक और तरफदार यह भी थी और वे भी थे। यह कहती कि यह कंपनी आप जैसे विद्वान और कर्मठ के लायक नहीं है और वे कहते कि इस सिनिक औरत को आप दूर रखें। इस बीच मुझे पता चल गया था कि उसका मर्द कहीं दूर नौकरी पर है और यह अकेली ही रही आती है। एक दिन बातों के दरम्यान मैने पुरुष-मित्रों से मुस्कुराकर कहा-

"आप लोग उसे समझते क्यों नहीं ? उसे सहानुभूति और साथ की जरूरत है। वह अपने को अकेली और कुंठित पाती है।"

ठहाके की हंसी के साथ पुरुषों का समूह बोला- " आप ऐसा कहते ज़रूर हैं, लेकिन वह सब हम कर चुके। वह तो सीधी बात मे भी काटने दौड़ती है और हम लोगों पर बद-खयाली का आरोप लगाती बदतमीजी से पिल पड़ती है।" इन्होने कहा कि "हम लोगों ने तो उससे बात करना उसकी मौजूदगी मे बैठना तक छोड़ दिया है।"

बहरहाल मै सचमुच बहुत सहानुभूति और सरलता से इस औरत से पेश आता। वह अब जब-तब छोटे-मोटे कामों पर बात करने, राय लेने, मिलने मेरे पास चली आती थी। मेरी सहानुभूति, मेरी गंभीर सलाहियतें, धार्मिकता और दर्शन की उसकी रुचि के आवरण पर मेरी वाणी का प्रभाव श्रुति को खोलता चला जा रहा था। अब जब भी सामने हो, बैठती तो वह मुझे ताकती, मेरी बातों से मुग्ध देर तक बैठी रहती और फिर कहती- "अब चलूं, नहीं तो लोग कहेंगे कि यह उनके पास इतनी देर तक कैसे बैठी रहती है।"

औरतों से संबंधो मे रमणियों के श्रीमुख से यह वाक्य अक्सर मै सुनता था। हर बार मुझे इस वाक्य से अपनी उस प्रिया वनमाला की याद ग़मगीन कर जाती थी जिसने करीब होने क्या दिल मे घर बना लेने के बावजूद केवल इसलिए बार-बार वितंडे खड़े किए थे कि बाहर की जमात को वह भरोसा दिला सके कि उसका मुझसे संबंध दिल और रोमांस का नहीं था बल्कि वह तो अपनी शिकायतें लेकर मुझसे झगड़ा करने मेरे पास आया करती थी। अंदर वनमाला की तरह हर रमणी से दिलगोई की बातें होती थी लेकिन बाहर उनका वक्तव्य होता- "कुछ नहीं, बस अपने किसी मामले में चल रही थी।"

मेरी यह वृत्ति रही है कि सामने बैठी रमणी बतियाती होती और मेरी आँखों की गंभीर, पैनी दृष्टि उसकी आँखों मे झांकती यह भेदती कि बातों के प्रस्तुत और आँखों की पुतलियों के अप्रस्तुत के बीच भाषा और भाषा में छिपे दिल का कितना तालमेल है। जुबान से बहुत कम, बहुत संयत बातें मै करता, लेकिन आँखों की भाषा को पढ़ने और आँखों की भाषा मे अपने को सामने उपस्थित के दिल मे संक्रमित करने की वृत्ति मेरी रही है। इतनी बींधने और बांधने वाली दृष्टि कि सामने वाली घबराकर या तो पशोपेश में पड़ बगले झांकती दिल की लिखावट को छिपाने की फिराक मे होती या हारकर मेरी आँखों को समर्पित हो जाती। ऐसी दृष्टि जिसमें मेरी शिराओं के हार्मोन्स प्रवाहित होते और सामने बैठी के हार्मोन्स का संतुलन बिगाडती उसे उस रमणी की आँखों में संकेन्द्रित कर आंखों से आंखों के बीच प्रवाह का पुल बना देती। आँखों में छिपे के अथाह रहस्य को बींध पाना ऐसी रमणियों के लिए असंभव होता और उस असंभव को संभव करने की चाहत उन्हे मेरे और करीब ले आती।

वह अब अक्सर मेरे पास आ बैठती। उसका रोग मुझे मालूम था। एक दिन लंबी बातचीत के दौरान मैने कहा कि अकेलापन और विश्वास के एक साथी का अभाव जीवन का ऊब से भर देता है। कोई ऐसा हो जिससे जी की हर बाता हम कह सके, साथ का आनंद उठा सके तो जी हल्का होता है। उसने मेरा नंबर लिया और कहा कि अब वह मुझसे बातें किया करेगी। मैने कहा कि क्यों न वह मेरे घर आ जाया करे ?

'वाह आप बड़े है, इज्जतदार है। आपके यहां आऊंगी तो लोग बातें न बनाएंगे' -उसने कहा ।

'यह तो सुविधा है। एक इज्जतदार और बड़े के पास तुम जाओगी। बातें करोगी, सलाह लोगी- तो भला संदेह की बात कैसी।

"फिर भी ..." -वह बोली

'फिर भी क्या ? तुम पढ़ी लिखी हो, दबंग हो, अकेली हो। तुम्हें भला कौन क्या कहेगा और क्या बिगाड़ लेगा। जब मुझे भय नहीं, तो तुम्हें क्यों?

वह जब-तब उस मुहल्ले में आती दीख पडी। ठीक मेरी गली में, जहां मै रहता था। देखती, पर आंखे चुरा निकल जाती। वह संगीत सीखने की जिज्ञासा लिए वहां आती थी। कभी बगल के बैंक से पैसे निकालने आती, कभी सबजी खरीदने, कभी घी और मक्खन की तलब में । एक दिन उसने शिकायत की -

'मै तो दो-तीन बार उधर गई । दो बार जाना पड़ा था। आप नहीं थे क्या?'

मैने बताया- 'छुट्यों के दिन प्रायः मै बाहर चला जाता हूं। और रही शाम की बात तो तब मै खुद अक्सर दफ्तर में पाया जाता हूं।'

अब उससे मेरे ताल्लुकात बढ़ने लगे थे। मैने ही सुझाया था कि दोपहर दफ्तर में कभी-कभी मै ऊब जाता हूं। वह चाहे तो इस या उस बारे मे लिखने-पढ़ने, सलाह मशविरे के बहाने उस समय आ जाया करे। वह ऐसा ही करती थी। फिर धीरे-धीरे नौबत रातों को फोन पर बतियाने तक पहुंची। शुरुआत उसी ने की थी। फोन अक्सर देर रात आते जब मै थक कर सोने के उपक्रम में रहा करता।

"सो गए थे क्या ? क्या कर रहे हैं ?"

"बिस्तर पर पड़ा करवटें बदल रहा हूं"

हंसी की खनक सुनाई पड़ती। वह कहती-

"आज आप मीटिंग में बड़े हसीन लग रहे थे। बाप रे, कितना ज्ञान है आप का ! सब आप से घबराते हैं । लेकिन आप के ज्ञान का इन जाहिलों पर कोई असर तो हो। सब निकम्मे हैं।"

"झूठी तारीफ कर रही हो। वहां तो कई जवान है। मै तो साधारण आदमी हूं, निहायत साधारण। न पहनने का सलीका, न ओढ़ने का।"
"हूं ......,ऐसा मत कहिए। बाप रे, मैं तो पाती हूं कि आप के चेहरे पर जो रौनक होती है, जो आप का व्यक्तित्व है, चुस्ती है उसके सामने तो ये सब बीमार लगते है।"

'सच ?'

'सच्ची, मै क्यों झूठ बोलूंगी। आप सब पर छा जाते हैं। आज मैं देख रही थी कि मेरी तरफ बार-बार देख रहे थे।"

"तुम्हें कैसे मालूम"

"क्यों कि मैं भी तो आप को देख रही थी।"

फिर रात देर फोन की घंटी।

'क्या कर रहे हैं ?'

"सो रहा हूं"

"कितनी जल्दी नींद आ जाती है आपको ? मुझको तो नींद नहीं आती।"

"यार, तुम चली आओ न मेरे पास। तुमको भी नींद आ जाएगी और मुझको भी।"

"हट, बड़े बेसरम है आप"

"तुमने मुझे जगा दिया। अब मेरा शरीर जागने लगा है और तुम ऐसा कह रही हो।"

फोन पर खिलखिलाहट।

"आज क्या बना था? क्या खाया आपने" -वह पूछती है और मै उसे बताता हूं।

मैं कहता हूं -'तुमसे एक बात कहूं ?'

'कहिए न'

तुम बड़ी बिंदास हो यार।

"जी चाहता है एकाध रोज वहीं सबके बीच ठंड की गुनगुनी धूप में पटकूं और भिड़ जाऊं।"

"खिलखिलाहट। हो जाने दीजिए न किसी दिन। बड़ा मजा आएगा। मै तो तैयार हूं।"

मै उसे और उत्तेजित करता हूं-

"ज़रा कल्पना करो कि मै और तुम साथ खूब जमकर भिड़े हों सरे आम, और इर्द-गिर्द जमा भीड़ हम दोनो को बड़े कौतुक से देखे। बड़ा मज़ा आएगा न।"

"चलिए हो जाए एक दिन सरे आम। जोरदार मज़ा आएगा।"

"तुम्हें डर नही लगेगा।"

"आप डरते होंगे। मै नही डरती किसी से।"

"ऐ श्रुति, यार तुमने मेरा मूड जगा दिया है। अब बताओ क्या करूं ? जी चाहता है पहुंचूं और तुम पर चढ़ जाऊं, परमांनद में तुमको तार-तार कर दूं ।

"मैं तैयार हूँ आ जाइए न आप।"

मेरे पास गाड़ी नहीं है। तुम्हीं क्यों नहीं आ जातीं ?"

"वाह लोग देखेंगे तो ?"

"इस वक्त रात के ग्यारह बजे हैं। देहात की इस ठंड मे यहां लाइन क्लीयर है। बाहर गाड़ी रख देना । सुबह-सुबह लौट जाना।"

**

फिर फोन की घंटी।

"सो गए थे क्या?"

"हां, बड़ी ठंड है। तुम इतनी रात फोन करती हो। सात-आठ-नौ-दस बजे तक फुरसत नहीं मिलती ?"

"कहां अभी देर हुई है। ये कोई सोने का समय है। इसी समय तो मजा आता है।"

"तुम अभी तक सोई नहीं ! क्या कर रही हो?"

"मै तो अभी-अभी नहा कर उठी हूं। खाना अभी ही खाया है। बड़ी गरमी लग रही थी।"

"आ जाओ मेरे पास गरमी दूर हो जाएगी- तुम्हारी भी, और मेरी भी। रात भर वो मजा आएगा कि तुम कल्पना नहीं कर सकती। मन में सोच कर देखो कि तब क्या जोरदार दृश्य होगा।"

"मै साफ-साफ देख रहा हूं कि तुम कहां हो, क्या कर रही हो ?"

"अच्छा बताइये तो कि मै क्या कर रहीं हूं ?"

"तुम, बिल्कुल ढीले कपड़े पहनी हो और अपने अंगों को देख रही हो। ठंड की गरमी से तुम सिहर रही हो । तुम्हारी कल्पना में मैं तुम पर सवार हूं और तुम चीखी जा रही हो।"

"हाय...... ! आप ने कैसे जाना ? कैसे देख लेते हैं आप। सचमुच मैं इस वक्त प्रायः कुछ नहीं पहने हूं। चाहती भी हूं कि आप आ जाएं।"

"श्रुति, यार तुमने मुझे खड़ा कर दिया है। तुमसे कैसे बदला हूं समझ में नहीं आता। तरसा कर छोड़ देती हो।

"जी चाहता है ...."

"उह बोलिए ना । रुक क्यों गये" - वह बोली

"आह, तुम्हारे मूड ने सब समझ लिया है । तुम बस चलती चलो । कहो, कहूं फिर भी ?"

श्रुति खिलखिलाई किलक रही है । वह आनंद से चीख रही है। ऐसा लगता है कि उद्दाम आवेग मे है। किसी मशीन की तरह घुराघुराने लगी है।

"आह..... आह..... मै तो पागल हुई जा रही हूं। और बोलिए ..... बोलते जाइए ..... मुझको बड़ा अच्छा लग रहा है।

फोन पर उद्दाम अपेक्षा की चीख सुन पड़ रही है।

""आह'....... 'आह'........ 'मर गई'..... 'मै तो पागल हो रही हूं' " के साथ यूं उसकी आवाज आ रही है जैसे वह सचमुच इस परिदृश्य के बीच भोगी जाकर चहक रही हो।

"आह...., बोलते जाइये, बोलते जाइए प्लीज़। बहुत दिनो से मै संयम मे हूं। मेरा बाँध टूटा पड़ रहा है। आह....... आह......... "जैसे फोन के अंदर श्रुति हवा मे उछली पड़ रही हो।"

मै खुद वैसा उत्तेजित नही हूं जितना मज़ा मुझे उसे उत्तेजित करने में आ रहा है। यह अजीब बात है कि इस सांवली, प्रायः सूखी औरत को उसकी सजावट में भी पूरे मन से मैं स्वीकार नही कर पाता। वह केवल आपद्धर्म का आनंद है। मैने अनुमान लगाया कि फोन पर मादक उन्माद से उछलती आवाज में लिपटी नंगी देह की क्या कह रही थी। अवश्य उसने अपनी गुफा में केले, ककड़ी, मोमबत्ती लिए खुद प्रवेश किया था- लहराती, बलखाती, मुझसे बातें करती। औरत की देह और भोगवृत्तियां, भोगाभ्यास पुरुष से कतई भिन्न नहीं होते। हां वह आपद्धर्म है -वक्ती तौर पर स्वाभाविक।

फोन पर उस रात मुझसे "और-और" बतियाती बतियाने का आग्रह कहती अपनी शैया पर, अपने घर पर ही हर बात के साथ उत्तेजना में चीखती और आहें भरती श्रुति को मैने पढ़ लिया था। यह अजीब बात थी कि कभी अगर फोन पर अपनी तरफ से मैं भोग-राग छेड़ता तो वह आध्यात्मिक हो उठती थी।

"नहीं .... ये पाप है। मै उपवास करती हूं। पति की पूजा करती हूं। आप ऐसी बातें मत किया कीजिए..". - वह कहती थी।

जब उससे बात न करता तो फोन पर छेड़ती वह मुझसे उन बातों की तलबगार हुआ करती थी -

'ऊँ....ऊं....आप तो बुरा मान गए" -वह कहती ।

कभी छुट्टियों मे एक साथ हफ़्तों के लिए कहीं यात्रा पर जाने, कभी अपनी कार मे मुझे साथ खजुराहो ले चलने, कभी किसी आयोजन मे अपनी साथी बनाकर ले जाने की तमन्ना श्रुति करती। मै ही था कि मजे तो लेता था लेकिन प्रेरणा के अभाव मे खुद वैसा असंयत न था। और टाल जाता था।

मेरे पेशकश का ध्यान रखती एक दफा अचानक वह मेरे डेरे पर आ धमकी। तकरीबन बारह बजे का समय था और छुट्टी का दिन। मन न होने के कारण अपने नौकर को घर साफ-सफाई के बाद ही मैने छुट्टी दे दी थी। खराब टेलीवीज़न की हालत देखने-पूछने उस वक्त मैने उसे भेज रखा था।

श्रुति बेखौफ चली आई थी। उसके आते ही मैने उसे पीछे के भीतरी कमरे मे दाखिल किया और बाहर के पट भी बंद कर दिये। अंदर की खिड़की पर परदा पड़ा था। अंदर पीछे कमरे में मेरे कागज़ फैले थे और मै काम मे लगा था।

" क्या आप भी सब बिखराए बैठे रहते हैं ? देखूं तो ज़रा क्या-क्या लिखते रहते हैं ?" - उसने कहा।

मैं नहीं चाहता था कि वह मेरे कागजों में हाथ लगाए। मैने सारे कागज समेट कर एक तरफ किये। दरअसल उस वक्त श्रुति के यूं अनपेक्षित आगमन से मैं सकपका गया था। उसके साथ की जाती रही बातें मज़े और मौज की थीं, लेकिन उसका अचानक यूं नमूदार हो जाना मेरी उम्मीद से परे था। अपने हाथ का पर्स एक तरफ उछाल वह मेरे पलंग पर बैठी और फिर बिन्दास पसर गई।

अनपेक्षा और प्रेरणा के बगैर भी उसे लेटा देख मेरे अंदर कुछ जागने लगा था। हौले से मैं भी पलंग पर बैठा और श्रुति पर सवार हो चला। गहरे चुम्बनों की क्रीड़ा ,हथेलियों की जुंबिश ,आपस में टकराती छातियों की धड़कनें मुझमें यह आकांक्षा जगाए जा रही थीं कि मैं अपने अकड़ते ,लहराते तनाव को श्रुति की जंघाओं के बीच भेज दूं। बिन्दास श्रुति भी पूरे मूड में थी ।

" कैमरा नहीं है क्या ? फोटो लेते तो बड़ा मजा़ आ जाता "-वह बोली।

मैने ज्यों ही आगे बढ़ना शुरू किया ,श्रुति ने कहा -

"आज नहीं ना ,आज ऐसे ही रहिये "

"क्यों ?"

"मैं महीने से हूं"

"अरे इस वक्त मैं लाल फीते में हूँ "

"झूठ"

"विश्वास नहीं तो खुद चाहें देख लीजिये"

"उसमें तो औरत को और मज़ा आता है, मैंने सुना है"

"हां, है तो। लेकिन आप के सारे कपड़े खराब हो जाएंगे"

बाहर दरवाजे पर दस्तक हुई। सामने नौकर खड़ा था। सामने मेरा वफादार सेवक नमूदार हुआ ।

"साहब, टी.वी बन गई है। मैं ले आया हूं" - रिक्शे से टी.वी उतारते उसने कहा। टी.वी उठाए वह पीछे उस कमरे की तरफ बढ़ा, जहां उसके रखने की जगह थी।

"रहने दो वहीं बाहर बरामदे में।बाद में देखेंगे। मैं अभी सो रहा हूं"- मैने टाला।

वैसा मैं कभी न करता था। न जाने नौकर ने इसका क्या अर्थ लगाया होगा ? वह झेंपकर चला गया। बाहर का किवाड़ और बाहर की खिड़की बंद कर दिये गए। श्रुति को साथ रहा आना था और मुझे भूख लग आई थी। मेरा पाक कौशल श्रुति देखती रही और खुद भी साथ देती रही। वक्ती तौर पर उसे चाय पिला सारा बचा दूध पी डाला था। श्रुति ने जिज्ञासा से मुझमें झांका और बोली -

"दूध इस वक्त क्यों ? खास तैयारी ?" - वह मुस्कुराई

"नहीं। कल से पड़ा है। खराब हो जाता। बस इसीलिये" - मैनें जवाब दिया ।

आसपास लहराती श्रुति को जब-तब दबोचता मैं चूमना, चिपकाना शुरू कर देता था। अब मैं उस क्रीडा के लिए तत्पर था जो बातों में हमारे बीच रही आई थी। श्रुति उस लंबाई, चौड़ाई और मुटाई के घनत्व को अपनी जांघों पर महसूस करती पिघली जा रही थी, जो उसके चिपकाव से मुझमें तन रहा था। **उस तनाव पर हाथ की अंगुलियाँ थिरकाती** वह बोली -

"उफ़ आप का दिल तो उछालें मार रहा है । लगता तो बड़ा जोरदार, बड़ा मजबूत है। इच्छा तो है, पर क्या करूं ?"

मेरी लंबाई-चौड़ाई का बेशर्मी से टोह लेती काम-क्रीड़ा के उस आनंद का वह जिक्र किये जा रही थी जो साल भर किसी और के साथ सोते फ़ौज के उसके प्रौढ़ जवान पति से उसे यदा-कदा मिल पाता था। दुखी वह रहा करती थी, लेकिन तसल्ली से यादों को संभाले भारतीय पत्नी की नाटकीयता भी निभा जाती थी। वह दिन यूं ही बीत गया।अगले हफ्तों में फिर कभी का दिलासा देती दोपहर-बाद वह चली गई। श्रुति के रूखे चेहरे पर, चेहरे की नक्काशी में, रूप या रंग में ज़्यादा कुछ ऐसा न था जो मुझे लुभाता, लेकिन मेरी क्रीड़ा उसके लिए प्रस्ताव के स्वीकार की प्रेरणा थी।

आधी रात घड़ी के कांटों के साथ शून्य से आरंभ होती वेलेन्टाइन की तारीख

वह मुझसे पूछ रही थी - "क्यों ,आप को अच्छा नहीं लगा ? मुझे लगता है आप को मज़ा नहीं आया।"

उसने मेरे अनमने चित्त को पढ़ लिया था ,जिसमें उस आधी रात घड़ी के कांटों के साथ शून्य से आरंभ होती वेलेन्टाइन की तारीख पर मेरा हृदय मजबूरियों के चलते मुझसे जुदा होती अपनी प्रिया वन्या ,श्यामा ,निम्मी ,वनमाला , की छबियों में डुबा उसके साथ की कामना और कल्पना में एक साथ ही खोया जा रहा था।

तीन दिन के लिये मैं अवकाश पर था और उन्हीं तीन दिनों में उसे मेरे नगर के समीप एक समारोह के बहाने बिताने थे। वह वैलेन्टाइन डे के ठीक पूर्व का दिवस था। मेरा मन ऐसे खास वक्त प्रेम की अपनी मूल प्रेरणा में डूब उदास हुआ करता था। तब वनमाला दिन-रात चित्त में छाई रहती थी। शाम चार बजे मेरा फोन बजा।

"मैं अपने सामान के साथ आ रही हूं। बताइये कहां मिलूं ?"

यह श्रुति थी। मैं फंस चुका था। पीछे हटता तो उसे शिकायत होती। मैंने जल्दबाजी में कपड़े बदले और अपना काम छोड़ निश्चित जगह पर पहुंचा। जाहिर है कि ठहराना उसे होटल में था और अकेले छोड़ जाना उसे नागवार गुजरता। सिनेमा-थियेटर, बाजार-उपहार, खाने-खिलाने के चक्कर में देर होती चली गई थी अन्यथा मेरा इरादा दोनों के बीच के असल मकसद को फटाफट निबटाने का था। श्रुति के रात-रात के चक्कर में देर रात होती चली गई। मै कहां गया इसका अता-पता घर में किसी को था नहीं और फिर मेरी वफादार-बेवफा वनमाला की छबि मेरे खून में उछालें मार रही थी। **तन बेबसी में यहाँ फंसा था और मन आँखों में बसी अपनी वेलेंटाइन की तरफ दौड़ता भोर की प्रतीक्षा कर रहा था ।**

श्रुति ने मुझे रोक लिया। मेरे कहने पर मेरे अपने घर उसने ही फोन कर सूचना दी किसी कार्यक्रम में अन्य समीपस्थ नगर में होने के कारण मेरा रात को लौटना संभव नहीं होगा। नई झीनी खूबसूरत नाइटी में श्रुति बिस्तर पर नमूदार हुई। नाइटी की खूबसूरती में श्रुति का बदरंग, रूखा चेहरा उसके मोटे काले ओठों के साथ बदसूरत और बेमेल लग रहा था।

हम-बिस्तर होने पर नियमानुसार कसरत हुई। अब तक मेरा पाला ऐसी रमणियों से पड़ा था जिनसे रमण मेरे लिये भी दुर्लभ हुआा करता था जैसा उनके लिये। यहां तो वह स्वतः तत्पर थी जो योग, आध्यात्म, पूजा और पातिव्रत्य की चेली थी। साधारणतः काली रेखा के बीच की आग भरी अंधेरी गुफा तक पहंचना भी श्रम-साध्य हुआ करता है लेकिन श्रुति इतनी पटु थी कि बगैर किसी यत्न उसकी गुफा खुली और वह मुझे तुरन्त निगल गयी। मैंने देखा था कि प्रवेश से पूर्व ही उसकी बदरंग गुफा पूरी तौर पर खुलकर अपनी गोलाई में उभर आई थी। काम की तरह 'काम' पूरा हुआ।

साधारणतः औरतें छातियों और अंगूरी उभारों को हैवानियत से मसला और दबाया जाना नहीं पसन्द करतीं, लेकिन जाने क्यों श्रुति की छातियां न तो कोमल थीं, न सुन्दर। उनकी ठोसता पथराई हुई थी।

"अरे ऐसे नहीं, और कसकर दबाइये न, खूब जोर से।"- वह आमंत्रित करती कहती।

रोमांस का मजा जाता रहा था। भले ही वे आवरण हैं - लज्जा, शील, अनगढ़ता और कोमलता स्त्री में लुभाते हैं।

जाहिर है कि कदली और मोमबत्ती के मनमाने और भरपूर इस्तेमाल ने श्रुति की गुफा को खोखला कर दिया था। आदमी पर आत्म-संतुष्टि के ऐसे कृत्रिम प्रयोगों का कोई असर नहीं होता, बल्कि अधिकाधिक उपयोग उसे पुष्ट करता है। औरतों के बारे मे यह ठीक विपरीत है। नक्काशीदार सुरंग ज़िन्दा मानुषों के लिये होती है। हाथी और ऊँट का प्रवेश अगर वहां होने लगे तो पहाड़ की दरार पूरी खोह बन जाती है। झरनों वाली सुरंग जहां रस बहता हो तब खो जाती है। श्रुति के साथ मेरा अनुभव यही था।

वह मुझसे पूछ रही थी - "क्यों ,आप को अच्छा नहीं लगा ? मुझे लगता है आप को मज़ा नहीं आया।"

उसने मेरे अनमने चित्त को पढ़ लिया था ,जिसमें उस आधी रात घड़ी के कांटों के साथ शून्य से आरंभ होती वेलेन्टाइन की तारीख पर मेरा हृदय मजबूरियों के चलते मुझसे जुदा होती अपनी प्रिया वन्या ,श्यामा ,निम्मी ,वनमाला , की छबियों में डुबा उसके साथ की कामना और कल्पना में एक साथ ही खोया जा रहा था। वैसे खास दिन भला क्या वह भी मेरी यादों की विकलता से कैसे बच सकती थी ? अवश्य यह उसी एक धुंधुवाहट का असर था जो सारी दूरियां मिटाता मिलकर घनीभूत हो गया था।

मैने अटपटे से बहानों से जवाब टाल दिया था। उस वीभत्स सम्मिलन के बाद भी श्रुति ने मुझसे अपने साथ यहां-वहां चलने की पुरजोर पेशकश रखी थी ,लेकिन हर बार उसे बहलाकर मैं रह गया।

वह कहती रह जाती-"बस आप तो यूं ही टाल देते हैं।“

तकरीबन डेढ़ महीने बाद एक दिन फोन पर श्रुति ने अचानक मुझे चौंकाते चिन्तित कर दिया। उसने कहा था कि उसका नियमित प्रवाह बंद हो चला है। कहीं ऐसा तो नहीं कि वह खास एक रात उसमें प्रवेश कर चली हो ? अदृश्य भय से मैं तभी मुक्त हो सका जब पखवाड़े बाद उसने यह सूचित किया कि समस्या हल हो गयी है।

वन्या

वहां सब शून्य था। प्रतीक्षा जैसे थक कर निढाल हो चुकी थी । खिड़कियां बंद थी। किवाड़ की संधि से झांका तो पाया कि वन्य-कन्या अपनी भारी देह लिए करवटों मे बेचैन थी।

मैने धीमी आवाज दी। उसने सुनी। कुछ सामान शायद इधर से उधर किया और अधबुझी आंखें लिए प्रकट हुई। उसकी ठुड्डी पकड़ मैने आंखों मे झांका।

उस तरह फोन पर श्रुति को भोगते अचानक मुझे मोटी, श्यामांगी लेकिन आपाद यौवन के भार से लदी वह एक आदिवासी काया याद आती है। शुरू में उसके दृश्य से ही मुझे वितृष्णा होती थी। कैसा जंगल है, मै सोचता। यहां मरुथल ही मरुथल है- न सुन्दर वनस्पतियां, न मादक पुष्प। लेकिन तब यह भी तो कि 'निरस्त पादपे देशे, एरण्डो अपि द्रुमायते'। जहां वृक्ष न पाए जाते हों, वहां अण्डी की कमजोर डंडी वाला पौधा वृक्ष मे गिना जाता है। वह पुष्टांग श्यामा इस श्रुति से पहले यहां थी। मै उसकी उपेक्षा करता और वह थी कि मुझे योग्य और गुणी पाकर हतप्रभ थी। बाद में मैने पाया कि भभूत के रंग वाली वह हस्तिनी नायिका उतनी उपेक्षणीया नहीं थी, जितना मैं उसे बरत रहा था। अभी उसमें वह कसाव था जिसकी तमन्ना गोपन पुरुष को हुआ करती है। साहित्य, संगीत, पत्रकारिता, कला में उसकी रुचि प्रशंसनीय थी, फिर चाहे ज्ञान और प्रावीण्य कम ही क्यों न हों।

खुलती-खिलती वह मेरे समीप आ रही थी। धीरे-धीरे उसकी बड़ी-बड़ी आंखें, भरे-भरे चौकोर गाल, श्यामल चेहरे पर ओठो से झांकती श्वेत दंतावलि की स्थिति मुझे लुभाने लगे थे। वह मेरे घर आने लालायित थी, लेकिन संकोच था कि आड़े आता था। एक रोज़ देर शाम कामकाज से लौटते राह में वह साथ हो चली थी। मैने इशा रे से कहा था-

"चलो बैठ जाओ स्कूटर पर, मेरे घर चलो"

कुछ दूर साथ चलकर भी औरों को आसपास देख वह कार्यालय के पास ही किराए पर लिए अपने कमरे की तरफ बढ़ गई थी। पास के कमरों की दूसरी संगनियां जब बाहर होतीं, तब माकूल मौका जान वह अपने फोन पर मुझसे बतिया लिया करती थी। यहां-वहां जाने, साथ होने की चाह परस्पर तारीफ के साथ बढती गई थी। एक दो बार मेरे सूने घर में आई भी तो संकोच उसके साथ उसकी सहेली को भी घसीट लाया था। मैं बेचैन था कि घनी बस्ती में निगाहों के बीच रहने की जगह त्यागकर में खुले मे खुलेपन को भोग सकूं।

बड़ी-बड़ी आंखों वाली, गदराए गालों और श्यामलता में श्वेत-स्मिति वाली वन-कन्या मुझसे कहती-

'बगल का कमरा खाली है, आ जाइये। फिर मेरी खिड़की और आप की खिड़की आमने-सामने होगी। नज़र दौड़ाई और बस। मज़ा आ जाएगा।'

वह दावत देती- 'मेरे घर आइए किसी एक दिन, ज़रा बताइये कि कैसा है।'

“मुझे घर से नहीं तुमसे मतलब है बताओ बुला तुम रही हो या घर ?”

“ आँ..आँ.., आप सब समझते हैं. यूं बनिए मत ना..” - श्यामा बोली.

टलते-टलते मुहूर्त तब निकाला गया जब वह अपनी कंदरा मे अकेली थी। संयोग कि तयशुदा वक्त गुजर चला। भीड़ से अपने आप को न मै ओझल कर सका था, न उसे फोन कर सका । उसके सूने घर में तब न उसका मालिक था, न उसकी संगिनियां। लाइन साफ थी। सब से टलकर दबे पांव शून्य मे स्थित उसके द्वार पहुंचा तो मन मे आया कि अचानक उसे चौकाऊँ ।

वहां सब शून्य था। प्रतीक्षा जैसे थक कर निढाल हो चुकी थी । खिड़कियां बंद थी। किवाड़ की संधि से झांका तो पाया कि वन्य-कन्या अपनी भारी देह लिए करवटों मे बेचैन थी।

मैने धीमी आवाज दी। उसने सुनी। कुछ सामान शायद इधर से उधर किया और अधबुझी आंखें लिए प्रकट हुई। उसकी ठुड्डी पकड़ मैने आंखों मे झांका।

'क्या हुआ? तुम उदास क्यों हो?' -मैने पूछा।

'मैने तो मान लिया था कि अब आप नही आएंगे। इसलिए चाय पीकर लेटी थी।'

मैने, उसके ओठों पर होठ रखते, उसकी पुष्ट काया पर फूली मौसंबियों को हथेलियों से कसे उसे ठेलते सीधे उसी बिस्तर पर ढकेल दिया, जहां वह थी।

"आह........ आह.......... , थोड़ा रुक जाइए न।" वह दबी-दबी सिसकारियों में याचना कर रही थी।"

"क्यों, तुम ही तो कह रही थी कि देर हो चली है। अब जल्दी क्यों न हो"

मैने उसकी पुष्ट जंघाओं पर थाप दी और मोटी कमर पर बंधा नाड़ा खींच लिया। अंदर केवल प्रकृति थी। अंधकार के जंगल में पहाड़ी की काली दरार जो कंदरा के पटों को छिपाए थी। गालों को बेरहमी से काटा। होठों को तेंदूफल की तरह खोलता, काटता, चखता रहा। पुष्ट, परिपक्व पूरी गोलाई की मौसंबियों को हथेलियों से कसता नीचे से ऊपर लहराता रहा। काले अंगूरों को ललचाया देखता हुआ सहलाता, निचोड़ता और चूसता रहा। तभी मेरी निगाह उसके सिरहाने तिपाई पर छिपाए पके पुष्ट केले पर गई।

"वाह, मेरा प्रिय फल। पहले इसे मै खाऊँ फिर तुम्हे खिलाऊंगा।"

मेरे बढ़े हाथ को कलाइयों से थामती वह बोली,

"उसे रहने दो ना प्लीज़। जूठा है।"

"तब तो और मज़ा आएगा" -मैने उसके कानों की लवों को बारी-बारी हौले से होठो में दबाते, दांतों से काटते जवाब दिया।

अपनी कलाई छुड़ा उसकी बांहो को कंधों से दबाते मैने वह केला उठा लिया। और यह क्या ? चिपचिपाहट से मेरी हथेलियां भर गई थी।

उस वन्या श्यामा की छातियों पर पूरा बोझ डालते मैने उसका मुख चूमते अपनी हथेली का क्रीम उसके गालों पर मल दिया।

उसकी बाहों को उसके सिर से ऊपर पसारता मैने उसकी हथेलियों पर अपनी हथेलियां फंसा अंगुलियों को कसकर कैद कर लिया था।

"आह मै मर जाऊंगी" बुदबुदाती वन्या, श्यामा की आंखे लाचार संकोच से मुझे निहार रही थी। उसके ओठों पर अपने ओठ रखकर जीभ के लिए राह बनाता मैं उसके मुंह मे टहल रहा था। छाती पर दबाव, पंजों के कसाव, और होठों के अवरोध से उसकी साँसें फूली पड़ रही थी।

"मेरी प्यारी श्यामा सुंदरी, तुम्हारे लिए तो केला लेकर आज मै खुद पहुंचा हूं। इस बेचारे से अपने ओंठ भला तुम्हे जूठे क्यों करने थे?"

वह शरमा गई थी। उसकी सुपुष्ट जंघाओं को फैलाते मैने उस गुहा संधि पर अंगुलियाँ फिराई जहां से झरना फूटना शुरू हो चला था।

"इतनी तैयारी काफी है। तुम तो पहले ही तैयार हो चुकी हो"

-श्यामा की संधि पर जोर की चपत लगाते मैने पीत की जगह श्याम-गौर वर्णाभा में पुष्ट वह प्राकृतिक खिलौना उसकी हथेलियों में थमा दिया, जो अकड़ता दायें-बायें, ऊपर-नीचे कंपायमान डोल रहा था। कमर के बल वह उठी थी। ओठों के बीच दबाती, चूसती, कसती उसने अततः मेरे उत्तेजित, उत्थित, कंपित -दृढ मन को थाम क्षीण-रेखा मे छिपी गुफा-संधि में धंसा दिया। मेरा मन तरंगों से लहराता उसकी गुफा मे दौड़ता, टोहता, टकराता रहा था और वह थी कि आँखें मूंदे बाहों में जकड़ती "आह.... आह.... हाय.." करती बार-बार अपने पुट्ठों को उछाले जा रही थी।

थककर जब बारिश में भीग चले, तब अलग होने की बजाय वह और चिपकी पड़ रही थी।

"अभी से मत छोड़िए। देर से आए हैं तो सजा भोगिए भी" -वह बोली

उसके आग्रह की नाफरमानी मेरे लिए चुनौती थी। चाय, नाश्ते, फल के साथ मैने फिर सांस ली। वन्य-श्यामा के परिपुष्ट पुट्ठों को दबाता, फिर छाती पर मुसंबी से अब बेल बन चुकी गोलाइयों को मसलते मैने उसे इस बार सिरहाने के तकियों पर ला पटका। खाट से निकली टांगों को फैलाता मैने पैमाना सही करते हुए खड़े ही खड़े उसकी संधि- रेखा पर ठोकर दी। निशाना सही न था। अपने हाथों मे पुरुषत्व की लंबाई, चौड़ाई और घनत्व को उसके पूरे आकार के साथ मैने जंघाओं की संधि के द्वारों पर ठेलना और घुमाना शुरू किया। श्यामल गुफा-द्वार पर दो-तीन प्यारी चुटकियों ने रक्तपट के उस जिह्वाद्वार को खोल दिया जहां सिराओं में उस वन-कन्या की ज्वालामुखी प्यास से उबल रही थी। सरसराता हुआ मैं उसमे प्रवेश कर चुका था।

उस आनंद से इस आनंद की बात कुछ और थी। हर बार बाहर आता और हर बार गुफा-संधि की गोलाइयों से ऊपर जाने में जो गति और लय बनी वह 'घप्प-घप्प' का नाद झंकृत करने लगी थी।

वह चीख रही थी- 'बस करो प्लीज़, मैं मरी जा रही हूं। मेरी टांगें अकड़ी जा रही है।'

"सचमुच?" कहता निगाहों में उसे प्रश्नित करता मै उससे बाहर निकल द्वार पर थम जाता था।

उधर 'ना' मे 'हां' के साथ निहारती मुझसे कहती कि -"बुद्वू" यह भी एक अदा है। चीखना मेरा काम है लेकिन इस कष्ट में जो आनंद है, उसे अधूरा छोड़ने क्यों पूछते हो?

ऐसे अवसरों पर वह उठ बैठती और मेरे सिर को थाम अपनी छाती से दबाती मुझे बदहवास चूमती जाती थी। उसे फिर दबाता मै पुनः उस स्वर्गिक ध्वनि की ओर ले जाता था जो हर बार आनंदोत्सव के किसी प्रमाणपत्र की तरह हुआ करती थी।

मै जाने लगा तो मुस्कुराती हुई वन्या ने कहा- "खिड़की तो आप ने जो खोल दी।" मकान की खिड़की की तरफ इशारा करती फिर बोली -" अब भूल न जाइएगा आना।, खिड़की खुली ही रहेगी। मजा करेगें- मैं और आप।"

खिड़की खुली रही लेकिन न वन्या वहां रह सकी , न यह प्रियहरि खुद भी। जल्द ही दोनों को वह जगह छोड़कर जाना पड़ा।

प्रियहरि

ये इश्क पुराना पापी है हर बार ख़ता करता है ।
हर बार बचाता हूं उसको हर बार ये जा कर मरता है ॥
-गजल झूम बराबर झूम अल्ताफ रजा

दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है। उसका भविष्य अधर में और अनिश्चित था। ऐसे में खास तौर पर ललनाओं से वह बचना चाहता था। लेकिन उनकी निगाहें थीं कि प्रियहरि की जतन से ओढ़ी मासूमियत के पीछे झांकने आतुर थीं। निगाहों के टकराव की भी अपनी कीमियागिरी होती है । जिज्ञासा और अनुकूलता का आकर्षण बहाने बनाते और बचते भी उनमें मुठभेड़ के रास्ते ढूंढ लेता है ।

उस साल मार्च की वह दस तारीख थी जब प्रियहरि ने सरकारी फरमान के मुताबिक अपने बाईस साला अड्डे से निकलकर भटकते हुए एक बार फिर उस इमारत में प्रवेश किया था ,जो प्रदेश में उसके विभाग का सर्वोच्च प्रशा सनिक दफ्तर था। ये उसके बुरे दिन थे। प्रियहरि को लोग वहां भी पहचानते थे। बैठने के लिए एक कुर्सी तो मिल गई लेकिन बिना किसी महत्व के पद के उस बड़े दफ्तर में उसे चिपकाए जाने का मतलब लोगों को बख़ूबी मालूम था। वह जैसे अपराधी और कलंकित करार दिए जाने का फरमान था। जहां था, और जहां भेजा गया था - दोनों ही जगह निगाहें प्रियहरि में एक ऐसे बेचारे अपराधी की शक्ल देखती थीं, जिसे फांसी, अब या तब, बस दी ही जाने वाली थी। अब तक जो जांचे हुई थीं वे वनमाला की शिकायत पर असलियत की टोह लेने के लिए सरकारी पूछ-परख कोटि की थी। इनका तब-तक कोई गंभीर महत्व न था, जब तक सरकारी निगाह में उसे बकायदा जांच के लायक समझा भी जाए। तब भी चीजें हैं कि एक बार शुरू हो गईं तो दफ़न होने तक सुगबुगाहट बनाए रखती हैं। ऐसे में मामला प्यार-मुहब्बत की चाशनी में डूबा हो तो लोगों का मज़ा और बढ़ जाता है। प्रियहरि के आदमी की जात के साथी अफसर प्रायः उसे और उसकी काबिलियत को जानने के कारण अवमानित तो न करते, लेकिन दर्जा उसका यूं था कि जैसे उसे वहां ठूंस भर दिया गया था। प्रियहरि वहां बेकाम था। सजा के लिए प्रतीक्षित, अफसरों के कोपभाजन ,और दफ्तर के अधीनस्थों की कृपा का पात्र समझा जाने के कारण अनपेक्षा से उनके बीच मौजूद अवांछित की तरह उसे देखा जा रहा था। बड़े आफिस में प्रियहरि अपने को खासतौर पर तटस्थ, बेकसूर-प्रताड़ित, निर्दोष और बेहद कायदा-पसन्द शरीफ आदमी की तरह पेश आता दिखलाना चाहता था और आम तौर पर वैसी छबि सिद्ध करने की खुशफहमी में रहा आता था। तब भी अर्थभरी निगाहें थी कि जब-तब उसकी खुशफहमी में सेंध मार जाती थीं। प्रियहरि की परेशा नी ही जैसे उन निगाहों का मज़ा हो। दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है। उसका भविष्य अधर में और अनिश्चित था। ऐसे में खास तौर पर ललनाओं से वह बचना चाहता था। लेकिन उनकी निगाहें थीं कि प्रियहरि की जतन से ओढ़ी मासूमियत के पीछे झांकने आतुर थीं।

निगाहों के टकराव की भी अपनी कीमियागिरी होती है । जिज्ञासा और अनुकूलता का आकर्षण बहाने बनाते और बचते भी उनमें मुठभेड़ के रास्ते ढूंढ लेता है । वहां तीन-जोड़ी निगाहें थीं जिनसे रोकते-रोकते भी ऐसी मुठभेड़ का शिकार प्रियहरि की निगाहें हुई जा रही थीं। बड़े अफसर की कृपा से परम विश्वसनीयता

में बाबू से निजी सचिव की हैसियत तक पहुंची गर्वोन्मत्त, चपल सुरम्या इनमें अव्वल थी । यह अजीब बात है कि आंकड़ों के शास्त्र के लिहाज से उसकी ही तरह नौ नंबरी होने पर भी यहां मुठभेड़ की सुरम्या की शैली समीकरण की नही, अपितु वनमाला की शैली जैसी टकराव भरे समीकरण की थी। गहरी श्यामल कांति वाली गोल-मटोल सुरम्या का सर्वांग आकर्षक कटावों से भरा ठोस बदन था। ऐसा ठोस, जैसे इस्पात में ढालकर कोई चलित चपल कृति आंखों के सामने नमूदार कर दी गई हो। उसकी अदाएं बेमिसाल थीं। 'नहीं देखती' की तरह कनखियों से उसकी बड़ी-बड़ी चपल निगाहें मादक कटार की तरह चुभन पैदा करतीं प्रियहरि पर सतर्कता से नजर रखती थीं। उन निगाहों की सशंकता और प्रश्नों की चुभन से बिंधा प्रियहरि का मन सुरम्या की ओर शिकार की तरह खिंचा जाता था। उधर सुरम्या थी कि जैसे अपनी ठोस मादकता का असर ढूंढती हो, 'न देखती हुई की तरह' उसे ही निहारती प्रियहरि की निगाहों में ठीक वैसी ही अदा से झांक जाया करती थीं ।

सुरम्या की भरी हुई पुष्ट पेशियों वाली पिंडालियां; भरी हुई कमर को थामे ठोस जंघाएं जो पूरी गोलाई के पुट्ठों के बीच अपने रहस्यमय रतिबिंदु को गहराई में छिपाए हुआ करतीं; उसके ठोस, सांचे में ढले वक्ष की गोलाइयां और फिर उसपर बेरियों की तरह उभरी नुकीली चूचियां बड़ी कारीगरी से यत्नपूर्वक संजोई गई और मदमोहक लगती थीं। मुस्कान की कुटिल चपल मुद्रा और उनके बीच तरासी दंतावली की छटा बिजली की तरह चमक दिल पर गिरती थी। ओंठ ऐसे लबालब भरे कि कभी न बुझने वाली प्यास को आमंत्रित करते थे। सांचों में ढली बांह और कलाई के कटाव; नुकीले कटावों से पूरी नमकीनी के साथ उभरे भरे-फूले गाल ; मादक प्यालों जैसी बड़ी-बड़ी आंखें ; उनके बीच बींधती काली पुतलियां और फिर घनीकाली केश-राशि के बीच दमकती मांग की रेखा - सब के सब - जैसे एकबारगी मन को लुभाते, खींचते और चिपकाते थे। अदम्य आकर्षण की यह प्रतिमा प्रियहरि को खींचती भी थी और डराती भी थी। बड़े साहब के चैम्बर की यह नायिका सभी को भयभीत करती थी। हल्की सी नकसुरी उसकी आवाज़ उसकी वाणी की शक्कर सी मीठी ध्वनि में समाकर जादू का असर पैदा करती थी। सुरम्या से प्रियहरि का संबंध शिकारी और शिकार का हो चला था। प्रियहरि के अंदर के अज्ञात को सुरम्या टोहती नज़र से देखती और प्रियहरि फिर झंझट में न पड़ने की दुआ करता भी सुरम्या को कसकर बांध लेने और उसके मादक होठों को अपने होठों में बांधकर सारा रस निचोड़ लेने की चाहत छिपाए मजबूरी में अंदर-अंदर आहें भरता रहता । धीरे-धीरे प्रियहरि को वहां यह आभास हुआ कि अपनी श्यामल-मोहक-गदराई छवि का उपयोग करने में सुरम्या माहिर थी। उसकी मादक छवि महिलाओं में ईर्ष्या और पुरुषों में चर्चा का विषय थी। उसकी ख्याति यह थी कि जो अफसर काम का हो उसे लुभा वह बांध लेती थी।

सुरम्या से इतर पहले से आते-जाते प्रियहरि की निगाहों में लता की तरह डोलती एक बेहद कमसिन किन्तु परिस्थितियों से कठोर बना दी गई रिया की छवि भी थी। रिया की देहयष्टि सुरम्या के गदराए बदन से ठीक विपरीत थी। किन्चित लंबी काया, जिसपर कंजूसी से चढ़ाई गई मांसलता थी। सूखी देहयष्टि पर यत्न से आकर्षण को संजोए रखने की कोशिश रिया थी। उसकी खूबसूरती उस छोटे से प्यारे चेहरे पर थी जिसपर स्निग्ध सरल आंखें और बोलती पुतलियां थीं ; उसके सूखे गाल थे जिनपर उसकी हल्की स्मिति की छटा से भंवर की डूबी गोलाइयां उभर आती थीं । इन सब से परे उसकी मीठी वाणी और भाषा थी जो असर करती थी। अंग्रेज़ी और हिन्दी भाषा में रिया समानतः निष्णात थी। भाषा का संस्कार यहां पारस्परिक लगाव का पुल बन रहा था। बचते-बचते भी एक-दूसरे की आंखों में झांकना, डूबना और वाचाल-मौन में तैर जाना आखिरकार आंखों में वह चमक पैदा कर रहे थे जो अपरिचय को आत्मीयता में तब्दील करता था।

तीसरी ललना गुड़िया सी नाज़ुक और अनिंद्य खूबसूरत देहयष्टि की प्रतिमा सौदामिनी थी। नज़ाकत और लताफ़त के साथ अकृत्रिम नैसर्गिक खूबसूरती की वह धनी थी। जाहिर है कि अफसर से मंत्री सभी तक उसकी पहुंच थी। उसे चाहना बेकार ही चाहत की अपेक्षा थी क्योंकि चाहत का उसका प्रतिदान ऊंची अपेक्षाओं के साथ ऊंचे तबके के लिए था।

हाथ छूटे भी तो रिश्तेनहीं छूटा करते
वक्त की शाख से पत्ते नहीं टूटा करते

खूबसूरती और आकर्षण कहां और क्यों होते हैं, यह ठीक-ठीक कह सकना कठिन हैं। भाषा, ज्ञान, वाक्पटुता, कार्यकुशलता, और भीड़ के बीच भी भीड़ से अलग करती वह मेधा ही प्रियहरि की ऐसी निधियां थीं, जो उसे अनायास विशिष्ट और अन्य में दिलचस्पी का केन्द्र बना देती थीं। संभवतः उन अभावों को पूरा करने की स्पृहा-भरी आकांक्षा ही थी जो अन्यों को प्रियहरि से संबंध बनाने आकर्षित करती थी। स्त्रियों को प्रशं सा, सहानुभूति, सहयोग और उनकी छिपी महत्वाकांक्षाओं को अपनी अनुकूलता से इस तरह उभरने की कला प्रियहरि के पास थी, जो अंततः इन ललनाओं की अदाओं को उससे बांधने विवश कर जाती। शायद इतने भर से काम न चलता अगर प्रियहरि के पास बींधने वाली, निगाहों को प्रश्नित करती और प्रश्नों को जगाती गहरे मौन की वह भाषा न होती जो इन ललनाओं की निगाहों में मादक सूनेपन से झांककर उस अनंत को संप्रेषित कर देती जो भाषा की पहुंच से बहुत, बहुत बाहर होता है । यह वह अचूक अस्त्र था, जो इन ललनाओं को प्रियहरि की निगाहों में छिपे का संधान करने प्रेरित करता, पिपासा जगाता, जिज्ञासु बनाए रखता और क्रमश: करीब आने को मजबूर कर देता। कठिनाई केवल तब पैदा होती जब उसके अपनापे के साथ एक साथ ही अनेक टकरा उठतीं और स्वत्वाधिकार की संभावना टूटने पर दिल टूटने की बेबसी से प्रियहरि को धिक्कारतीं।

बड़े दफ्तर की इन ललनाओं को उस पृष्ठभूमि का अहसास था जिसने प्रियहरि को वहां ला पटका था। खासतौर पर सुरम्या और सौदामिनी को, जो जाने या अनजाने इस खेल में रहीं सहभागिनी भी बन चुकी थीं। उनकी सहभागिता का आभास प्रियहरि को धीरे-धीरे बहुत समय बाद जाकर हुआ। जब वैसा हुआ तब उसे अपने पुराने ठिकाने के एक सहयोगी शिक्षक साथी उदयन की बात याद आई। उसे आगाह किया गया था कि सौदामिनी, अंशुलता और वनमाला की पहचान पुरानी किसी जगह से रही आई थी। वहां इनमें दांत-काटी दोस्ती थी। यह संभव था कि सौदामिनी के जरिए ही वनमाला ने वह सब आयोजन किया हो जिससे प्रियहरि के खिलाफ वह जीत सके। उसने पाया कि उदयन और दीगर साथियों जैसे सुंदरी वल्लरी के उन पूर्वानुमानों में दम था। यहां आकर उसने यह भी जाना कि सांवली-सलोनी चपल बाला सुरम्या का भी संबंध वनमाला की उस पुरानी जगह से रहा है, जहां वह पहले रही आई थी। अतीत की घटनाओं के पुनरावलोकन और क्रमश: उद्घाटित हो रहे नए सूत्रों के रहस्यों से यह पुष्ट हो रहा था कि प्रियहरि के पुराने साथियों की आशंकाएं और परामर्श सही थे। वस्तुतः वह खुद ही था, जो ज़रूरत से ज्यादा आत्मविश्वास से भरा लापरवाह था और जिसने अपनी दीवानगी में 'जो भी हो मंज़ूर है' की मुद्रा में उस भविष्य को आमंत्रित किया, जो छिपा था।

नई जगह पर प्रियहरि का मन उससे कहीं ज़्यादा गमजदा था जितना पुरानी जगह पर हुआ करता था। पुरानी जगह की यादें और यादों के बीच अपनी प्यारी वनमाला का चेहरा चौबीसों घंटे उसे पागल बनाए दे रहे थे। समय के षड्यंत्र ने उसे ऐसे मुकाम पर ला पटका था, जहां वनमाला को एक नज़र देख भर लेने की राहत भी मुहय्या न थी। यह एक ऐसी स्थायी दुर्घटना थी, जिससे प्रियहरि को अब जिन्दगी भर तो क्या जिन्दगियों तक गुजरना है। हां तब-तक, जब-तक काल की सारी गुत्थियों को सुलझाती ऐसी जिन्दगी प्रियहरि से रूबरू न हो जब वह और उसकी रहस्यमयी प्रिया दृश्यादृश्य परिस्थितियों से परे दो विग्रहों को छोड़ आत्माओं की परम एकता में नहीं समा जाते ।

दिलों के तार प्रियहरि और वनमाला के इस तरह जुड़े हैं कि दोनों के बीच झगड़े कराने वाले तक उन तारों की झंकार को महसूसते हैं। युवा सुदर्शन जो प्रियहरि के अंतर का सहभागी रहा है उसके सामने पड़ता, बातें करता मौन हो जाता है। अनुराधा पहले की तरह रहस्यमय चुप्पी से तौलती संकेत करती है कि आप लोगों के बीच क्या था, जो हुआ वह क्यों हुआ उसका रहस्य वह कभी न समझ पाएगी। चुलबुली नेहा जो निकट होकर भी दूरी महसूस करती पूछती है कि आप उसे अब तक भुला नहीं पाए न **?**

वह दिलासा देती है-" छोड़िये न ! जो हो गया, सो हो गया। अब भूल जाइए न उसको। आखिर वो भी तो वैसी ही थी। आप के-जितना उसे ध्यान होता जो इतना होते ही क्यों **?** भूल जाइए उसे ।"

नीलांजना से कितने सालों का साथ रहा। देर से ही सही मंजरी पास आने की तमन्ना रखती थी ; लेकिन वनमाला का इतना दखल कि उसके पास आते ही भय से सभी भाग जाती थीं। दूर होती हुई भी जीनत केवल सुनकर ही सदा सूंघती रही थी। जीनत की निगाहों की वह सर्द शिकायत प्रियहरि को नहीं भूलती जो कह रही थीं कि "आप से ऐसी उम्मीद नहीं थी।" वह उम्मीद कैसी थी **?** यह कि " मुझ-सी परी की यादों को निकालकर आपने एक साधारण सी श्यामा को अपने दिल की कुंजी सौंप दी।"

औरतों के बारे में यह गलतफहमी हो सकती है कि पुरुषों की तुलना में वे संयत, और निस्पृह होती हैं लेकिन प्रियहरि अपने अनुभव से देखता है कि वे सागर की गहरी धाराओं की मानिन्द होती हैं। उन गहरी धाराओं की मानिन्द, जो उत्ताल तरंगों की तरह गिरती-उठती, चलायमान और तरंगित भले ही दिखाई नहीं पड़तीं, लेकिन जो शाश्वत होती हैं और अपने भीतर आग छिपाए होती हैं। राग, ईप्सा, स्पृहा, अधिकार-कामना सब उनमें भी होती हैं। अंतर केवल इतना है कि उन्हें आत्मीय स्पर्श की तरंगों में ही आप प्रकट होता देख सकते हैं।

इक खलिश दिल में रही आई जो ता-उम्र रही
देख लूं आंख भर उनको ये तमन्ना ही रही

प्रियहरि का जी करता कि वह उसकी बातें करें, लोग उसके बारे में बातें करें और वह उसे किस तरह याद करती है, उसके साथ क्या बीत रही है, वह उससे क्या कहना चाहती है - वह सब प्रियहरि जान, सुन सके।
वनमाला को प्रियहरि के कहे शब्द याद आ रहे थे - "वनमाला, याद रखना कि 'टू इज़ ए कंपनी, द थर्ड मैक्स ए क्राउड।"

वनमाला प्रियहरि की पहुंच से बाहर थी। उससे मिलने तो क्या उसे देखने की संभावना तक छिन गई थी। प्रियहरि की ज़िन्दगी के, उसके दिल के सूत्र वनमाला के हाथों थे। वे इतने उलझ गए थे कि उन्हें सुलझाना वनमाला की पहुंच में था न प्रियहरि के। अपने अंदर छिपी कोमल वनमाला के बचाव के लिए बाहर की वनमाला ने कठोरता का आवरण धारण किया था।बाहर से ओढ़े इस कवच के बावजूद अंदर-अंदर वह यूं पिघलती कि टूटकर बिखर जाती थी। शायद उस बिखराव से ज्यादा जिसे प्रियहरि प्रकट कर देता था। चेहरे की उदासी, आंखों का उदास सूनापन और जड़ता मे उसे बांधता मौन इसी बिखराव की निशानी हुआ करते थे, जिन्हें प्रियहरि पढ़ सकता था। वनमाला की तरफ लालायित, लेकिन परिणाम-विहीनता से रुष्ट ऐसे शुभ-चिन्तक सहयोगी भी थे, जो वनमाला को प्रियहरि के दिल में और उसे वनमाला के दिल में निरंतर घुसता देखकर वनमाला की नैतिकता और मर्यादा को जागृत करते सजग हो उठे थे। लक्ष्य यह कि वनमाला अगर उन्हें तरजीह नहीं देती तो प्रियहरि के पास भी न फटके। वनमाला ने खुद प्रियहरि से कहा था कि उसके जात-भाई भोला ने संकेतों ही संकेतों में अपने समूह की औरत की मर्यादा की दुहाई देते अपवादों से बचने सलाह दे डाली थी। उसके अलावा वह दूसरा तो था ही जिसे प्रियहरि के मोहजाल से खुद को बचाने वनमाला ने अपना सहयोगी बना रखा था। यह बात और थी कि सहयोग की मुहिम में यह खुद वनमाला से सहभोग को लालायित हो उठा था। उस मुहिम में वनमाला को सिखाता-पढ़ाता वह छैला उसकी ओर से शस्त्र संभाल प्रियहरि का पत्ता काट देने ही उतारू था। पिछले वर्षों के दौरान खुद को बचाने वनमाला ने जितनी मुद्राएं अपनाई थीं वे प्रियहरि

के सामने थीं। प्रियहरि की आंखों के सम्मोहन से बचाव के लिए नजरें चुराते योगमुद्रा में अखबार पर नज़रें गड़ाए रखना ऐसी ही एक मुद्रा थी। उसके सामने पड़ते ही उठकर कहीं और चले जाने की मुद्रा दूसरी थी। कालेज में प्रियहरि के आते ही खुद कालेज छोड़ देने की मुद्रा तीसरी थी। प्रियहरि से बात न करने की, उसके कमरे में न फटकने की, उसके साथ या उसका दिया काम न करने की, न चाहते हुए भी उसपर रोष दिखाने की मुद्राएं ऐसी ही थीं जो वनमाला के उस प्रशिक्षक ने सिखाई थीं। इनके बहाने बड़ी चतुराई से वह खुद अपनी नजदीकियां बना रहा था। विपुल सफल हुआ ; वनमाला सफल हुई - लेकिन दोनों की सफलताओं की प्रकृति भिन्न थी। विपुल जहां अपनी सफलताओं का परिणाम देख खुश होता था, वहां वनमाला की सफलताएं उस पछतावे को लेकर सामने आती थीं, जहां उसका खुद का मन प्रियहरि के साथ अपनाए अपने रवैये पर उसे पश्चाताप की आग में जलाता था।

वनमाला का धुंधुंआता मन घोर संयमों के बावजूद ऐसा विचलित होता कि प्रियहरि की चाहत का विस्फोट जुटाए गए सारे संयमों को तोड़ उसे प्रियहरि के सामने लाकर उस आत्मीय एकांत मे बिठा देता, जहां उदास आंखों में ग़म के बादल उन दोनों के मौन को तोड़ती आंसुओं की बूंदों में उभर आते थे। वहां सारा प्रतिरोध मौन के शब्दों में चीत्कार करता एक-दूसरे की आंखों में, सूने दिलों में यूं प्रवेश करता कि लोग दुनिया के आठवें अजूबे की तरह प्यार के इस सम्मोहन पर दांतों तले उंगली दबाए अचरज और खीझ से भर उठते थे। वनमाला और प्रियहरि के बीच प्यार के जो अटूट रिश्ते थे उसका इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता था कि अपने को रोकती, संयमित करती भी प्रियहरि के सामने वनमाला टूटकर यूं पिघल जाती कि बाहर उन्हें एक-दूसरे के जुदा करने जो किया जाता, उसे वह खुद बयां कर जाती थी। ऐसी मुहब्बत में यह विडंबना नहीं तो क्या थी कि परिस्थितियों की विवशता और अपनी खुद की गलतियों के फेर में पड़कर वनमाला और प्रियहरि दोनों ने लोगों के बीच प्रचारित सच के नकार और झूठ को सच ठहराने का एक ऐसा अभिनय रच दिया था जिसमें जान फूकने की प्रतिद्वंदिता में इनके प्रेमी दिलों को सब के सामने शत्रुता में नोचकर लहू-लुहान कर दिखाने का खेल-खेलना था। आपसी विश्वास पर लोक के विश्वास को जीतने की यह मुहिम दो पक्षियों या दो जानवरों की उस मुठभेड़ की तरह थी, जो अपने-अपने समूहों से घिरे अपने स्वामियों की गुलामी निभाने अकारण एक-दूसरे से लड़ते प्राण लेते या देते थे। लड़ाई की मानसिकता बनाने, उत्तेजित करने जैसे पक्षियों या पशुओं को उनके मालिक नशा कराते, सिखाते, पुष्ट करते थे, वैसे ही औरों के हाथ खेलते वनमाला और प्रियहरि के दिलों के बीच भी जहर भरा जाता। परिणाम यह कि दूसरों के हाथों खुद से हारे और क्षत-विक्षत हृदय सूनी आंखों में उदासी के साथ एक-दूसरे को निहारते पछताते कि - 'हाय हमने वैसा क्यों किया।' वनमाला पास हो, या न हो - उसकी परछाई प्रियहरि की जिन्दगी के साथ यूं जुड़ी रही कि जहां संभावना न हो, वहां भी उसकी जिंदगी की करवटों मे वह दाखिल रहा करती थी।

अतीत की स्मृतियां दुखदाई होती हैं लेकिन उन्हीं में कुछ ऐसा होता है, जिन्हें बसाए रखकर मरना मनुष्य प्रायः जीने की तुलना में अधिक पसंद करता है। अतीत कितना फैला होता है **?** शरीर के जीवन के पिछले वर्षों तक या उनके पिछले वर्षों के पार अदृश्य पिछली जिन्दगियों तक जो मौजूदा शरीर के सुदूर पार क्षितिज के अदृश्य विस्तार या सागर की अथाह अदृश्य गहराइयों की मानिन्द फैली होती हैं **?** बाद की बात ही सही जान पड़ती है। अगर वैसा न होता तो प्रियहरि उस तरह विचलित क्यों होता जैसा वह है और जो उसकी नियति बन गया है। वनमाला का हृदय भी उससे भिन्न न था। जिस तरह उससे दूर प्रियहरि बेचैन था उसी तरह वह भी अपनी जगह बेचैन रही आई थी। प्रियहरि का जी करता कि वह उसकी बातें करें, लोग उसके बारे में बातें करें और वह उसे किस तरह याद करती है, उसके साथ क्या बीत रही है, वह उससे क्या कहना चाहती है - वह सब प्रियहरि जान, सुन सके। बाहरी तौर पर एक-दूसरे की चाहत को बुरा कहते और कोसते सामाजिक मुखौटा बचाना उन दोनों की मजबूरी थीं - प्रियहरि की भी और वनमाला की भी। बाहर-बाहर दोनों अपनी को खुश दिखाने और एक-दूसरे से दूरियों को कोसते-मसोसते एक-दूसरे को जलाने औरों के पीछे भागते नजर आते थे। प्रियहरि को खुले तौर पर वनमाला को खिझाने वैसा करता था लेकिन सच यह था कि हर किसी रमणी के

साथ रहते भी प्रिया वनमाला की छवि उसकी आंखों में तैरती होती। वह चाहा करता कि किसी न किसी बहाने- चाहे वह शिकायत की क्यों न हो - वनमाला चर्चा में विद्यमान रहे और वह खुद वनमाला के पास न रहता भी वनमालामय बना रहे। उधर वनमाला थी कि सारे अभिनय और मजबूरियों में अपनी सामाजिक इज्जत बचाने की सारी राजनीति के बीच भी प्रियहरि से नफरत न कर सकी थी, गोकि वह दिखाई वैसा ही रही ।

जैसी दशा इधर प्रियहरि की थी, वैसी ही दशा उधर वनमाला की भी थी। प्रियहरि के साथ की स्मृतियां घनीभूत हो उस पर छाई जा रही थीं। विग्रह और समागम, रूठना और मनाना, ईर्ष्या के विवश प्रहार और फिर खुद ही टूटना और पछताना - दोनों के प्रेम की जीवनी बन गये थे। वह होता ही रहता था। तसल्ली इतनी रहा करती कि भाग्य के विपरीत होने के बावजूद प्रियहरि वनमाला की आंखों के सामने तो था। प्रियहरि के आकर्षण से बचने का सारा उपक्रम उसका ही था। यह भी कि इसी उपक्रम में विश्वासघात ने जिस तरह प्रियहरि को नीलांजना, नेहा, वल्लरी, मंजरी की तरफ खीच लिया था वैसे ही वह भी अनचाहे ही कहीं और जा पड़ी थी। लेकिन उससे क्या ? क्या संबंध टूट गये थे ? क्या प्रियहरि उससे और वह खुद कभी प्रियहरि से दूर जा सकी थी ? नहीं, वैसा नहीं हो सका था। यह बात वे सब भी अच्छी तरह जानते थे जो उन्हें एक-दूजे से दूर देखना चाहते थे।

वनमाला भी प्रियहरि की तरह ही अवसाद और टूटन लिए स्मृतियों के बीहड़ वन से गुजर रही थी। उसका चित्त व्यथित था। यह तूफान के गुजर जाने के बाद का भयावह सन्नाटा था। परिस्थितियों के दबाव से उसकी मति मारी गई थी। वे क्षण याद करके वनमाला को अपने आप पर पछतावा हो रहा था, जब किसी और की दुष्प्रेरणाओं के वशीभूत होकर प्रियहरि के साथ के आत्मीय गोपन को उजागर करती और प्रियहरि को नंगा करती वह अपने आप को भी नंगा किये जा रही थी। प्रियहरि की तरह उसे भी अपनी बेहयाई पर शर्मिन्दगी और पछतावा हो रहा था। तमाशबीनों के लिए वनमाला और प्रियहरि तब महज तमाशे की कठपुतली बन रह गये थे। प्रियहरि को गये हप्ता गुजर चला था। जाते-जाते उसे एक नजर देखना भी वनमाला को नसीब न हो सका था। आज प्रियहरि का वनमाला के लिए कभी यह कहा ही उसके मन में गुंजित होता उसे बेचैन किये था

इक खलिश दिल में रही आई जो ता-उम्र रही।
देख लूं आंख भर उनको ये तमन्ना ही रही॥

वनमाला को प्रियहरि के कहे शब्द याद आ रहे थे - "वनमाला, याद रखना कि 'टू इज़ ए कंपनी, द थर्ड मैक्स ए क्राउड।"

हां, प्रियहरि का कहना बिल्कुल ठीक था। ठीक वैसा ही हुआ था सारा किया-धरा उस तीसरे का ही था जिसे प्रियहरि के मोह से बचने वह बीच में ले आई थी। सारा सरअंजाम उसी का था। उसी ने वनमाला को दुष्प्रेरित किया था। लेकिन हुआ क्या ? सारी बदनामी, सारा अपमान, सारी चोटें वनमाला और प्रियहरि ने झेलीं। उस तीसरे का क्या अहित हुआ ? वनमाला को ढकेल वह खुद अदृश्य तमाशबीन बना रहा था। पिछले कई महीनों से यही सब देखती वनमाला उससे बेरुख हो चली थी। अपने को अलग करती उसने विपुल से बात करना बंद कर दिया था। वनमाला का जी करता कि बदनामी, कलंक और अंदर ही अंदर खाए जा रहे विषाद से भरा अपना चेहरा छिपाए वह कहीं और रही आए। लेकिन काम तो काम ही है। कब तक उससे वह भागती ?

जिस दिन का यह वाकया है ,उस दिन वनमाला की ड्यूटी दस नंबर के कमरे में थी। पिछली महीनों से प्रियहरि और विपुल के बीच टूटती वनमाला पर लगातार नजरें गड़ाएं अपने आहों, कुटिल व्यंग्यों और भद्दी टिप्पणियों से अपमानित करने वाला छैला जयदेव उसके साथ ड्यूटी पर था। इन दिनों सहानुभूति का मुलम्मा चढ़ाए उसकी नजरें वनमाला के इर्द-गिर्द मंडरा रही थीं। प्रियहरि और वनमाला के साथ की स्मृतियों का साक्षी निर्मल बाबू, दुष्ट हृदय कुटिलाक्ष वगैरह वहीं खड़े बतिया रहे थे। इन सबसे विमुख वनमाला हाल ही घटे हादसे से विकल और प्रियहरि की स्मृतियों से अवसाद में डूबती-उतराती सिर नीचा किये परीक्षार्थियों की कतारों के बीच चक्कर लगा रही थी।

तभी अबोली वनमाला की चोटों पर मरहम लगाने के चक्कर में विपुल भी कमरे में आ घुसा था। किसी बहाने बात करने आतुर वह सीधे वनमाला के समीप जा खड़ा हुआ। वह अपने किये पर पछतावे का इजहार

करते हुए वनमाला को मनाने की फिराक में था। इससे पहले कि विपुल अपने प्रयास में सफल होता, वनमाला के अंदर छिपा लावा फूट पड़ा था। उस पर अपने स्मृतियों और दुःखों से टूटी वनमाला को इस व्यक्ति के चेहरे से नफरत हो आई। यही सारे झगड़ों की जड़ था। इसी के चक्कर में वनमाला वह अपराध कर बैठी थी जिसने प्रियहरि उससे दूर कर दिया था। प्रियहरि के हृदय पर पहुंचाए आघात की स्मृतियां, उससे किये वादों-वचनों की मार्मिक स्मृतियां वनमाला को आच्छादित किये थीं। वह रो पड़ी थी। उसे लगा कि विपुल मानो उसे और कलंकित कर रहा था। करुणा, रोष और खीझ से वह सबके सामने ही विपुल पर उबल पड़ी थी -

"रहने दीजिए अब ये सब बातें। आप ही के कारण मेरी बदनामी हुई और यह काण्ड हुआ। अब किस मुंह से मुझसे माफी मांग रहे हैं ? न जाने वे मेरे बारे में क्या सोचते होंगे ? कितनी शर्मिन्दगी में आपने मुझे डाल दिया कि प्रियहरि से जाते समय भी न मैं कुछ कह सकी, न उनसे माफी मांग सकी। किस मुंह से मैं वैसा करती ? माफी मांगने लायक चेहरा ही मेरे पास आपने नहीं रख छोड़ा।"

चीखती वनमाला के वे उद्‌गार मानो सार्वजनिक घोषणा की तरह थे। विपुल का मुख विवर्ण हो चला था। वनमाला की उस मुद्रा को सांस थामें सभी ने देखा था। अनियंत्रित आवेग में उस क्षण वनमाला को अपनी ही याद न थी। परीक्षा में तल्लीन छात्रों और छात्राओं की निगाहों में औचक अपनी उस मैडम के इस रूप को विस्मय से देखा था। उस रोज का वह दृश्य, वनमाला की वह मुद्रा फौरन हवा में चर्चा बनकर फैल गई थी। प्रियहरि तक उसकी खबर उसी शाम जयदेव और सुदर्शन ने पहुंचा दी थी।

प्रेम को नहीं पाने से बदतर केवल एक चीज़ है और वह है उसे पाना और खो देना

उसे सुनते हुए मैने अपने को आश्चर्य से भरा पाया। कितने सालों बाद भी जो वर्षों पहले हुआ था उसे वह क्यों नही भूल पाई ? क्या वह प्रेम था जिससे वह उसे याद रख सका ? या वह अपराध का बोध था ? इन दोनो में भेद करना मेरे लिए कठिन था। आप अपराध-बोध इसलिए अनुभव करते है कि आपको यह चिंता होती है कि आपके जीवन में उनका मूल्य है, जिन्हें आपने अपमानित किया है ।
प्रेम को नहीं पाने से बदतर केवल एक चीज़ है और वह है उसे पाना और खो देना । क्यों कि जिन्दगी भर के लिए वह अपनी छाप छोड़ जाता है। उसके बाद जिन्दगी में हर कुछ एक समझौता, एक बेचारगी रहा आता है। जरूर वह मै था। मैने एक बार वैसा किया था ।

-'लव एण्ड गिल्ट' शार्ट स्टोरी, विक्रम कपूर द हिन्दू **30/10/05**

प्रियहरि ने सुना लेकिन क्या करता ? वनमाला उसकी पहुंच से बाहर थी। उससे मिलने तो क्या उसे देखने की संभावना तक प्रियहरि से छिन गई थी। वनमाला की तरह वह भी लाचार था। आखिर कौन सा चेहरा लेकर वह उस विश्वासघातिनी से मिलता जो हमेशा की तरह अब पछतावे से भरी थी। अपने अंदर छिपी निहायत कोमल, निरीह वनमाला के बचाव के लिए कठोरता के अभेद्‌य आवरण से खुद को छिपाए रखना वनमाला का स्वभाव था। अंदर-अंदर वह टूटती और फिर टूटन के असह्‌य भार से असहाय हो पिघलकर समर्पित हो पड़ती थी।

वनमाला और प्रियहरि - दोनों नियति के दास थे। प्रियहरि जानता था कि उस विचित्र नियति से उसका पीछा मरने तक तो क्या उसके बाद भी तब तक नहीं छूटने का है जब तक नियति अपने उस रहस्य को स्वतः न सुलझाए। प्रियहरि अक्सर नियति से सवांद करता पूछता कि तुम ऐसे प्राण-हारक रहस्य में मुझे क्यों उलझाए रखती हो ? कितने जन्मों में रहस्य की वे गांठें खुलनी है जब करुणा और पीड़ा से निरंतर आहत उसके और वनमाला के प्राण एक होंगे - ऐसे कि फिर जुदा न हों। कब वह पल आयेगा जब जन्मों की संचित पीड़ा घनीभूत हो उस आनंद में संक्रमित होगी जो दो विकल हृदयों का ताप मिटाने उनकी निर्द्‌वंद क्रीड़ास्थली बने।

प्रियहरि की तरह वनमाला भी चेतन और अवचेतन से द्वंद की साकार प्रतिमा थी। दोनों में अंतर केवल इतना था कि अचेतन को वनमाला के सामने प्रियहरि खुला छोड़ देता था और वनमाला थी कि टूटन के असह्य पलों के अपवाद को छोड़ अपने कठोर संकल्प से क्रूरतापूर्वक अपने अवचेतन को कुचल देती थी। वह नारी थी। समाज और परिवार की सारी मर्यादाएं नारी के खाते में ही होती हैं। वैसा न होता तो वनमाला भी अपनी उस उद्दाम पिपासा को एक बार निर्बाध भोग लेना चाहती जो एकांत की नाजुक पलों में उसमें समर्पण की उत्कट कामनाएं जगाती थी।

पुरुष और स्त्री के बीच आकर्षण-विकर्षण का खेल यूं तो प्रकृति प्रदत्त है लेकिन वह प्रियहरि ही था जिसमें वनमाला की जिन्दगी में आकर उसे नियति का स्थायी खेल बना दिया था। हां यह वही था जिसने वनमाला के प्राणों में प्रेम की वे तरंगें उठा दी थीं, कामनाओं के फूल खिला दिये थे, जो वनमाला को स्वप्नों के उस संसार में ले गये थे जिन्हें अपनी नीरस जिन्दगी की यंत्रणाओं में वनमाला ने विस्मृत कर रखा था। प्रियहरि ने उसे भरपूर प्यार दिया था। प्रियहरि के साथ वनमाला ने एक-दूसरे में अपने स्वप्न साकार होते देखा था। प्रियहरि उसे एक ऐसी संगिनी मानता था जो बुद्धि, प्रतिभा और रचनाधर्मिता की कलात्मक प्रतिमा थी वनमाला को प्रियहरि में वह आत्मीय साथी मिल गया था, जिससे एकाकार हो वह अपने अभावों को संपूर्णता में बदल सकती थी। वनमाला ने उसके साथ संकल्प लिया था कि वे दोनों कभी, किसी परिस्थिति, चाहे सारी दुनिया बीच में आ जाए एक-दूजे का साथ न छोड़ेंगे । यह विश्वास था कि एक-दूसरे में संक्रमित उनकी सम्मिलित प्रतिभा का कोई विकल्प हो ही नहीं सकता था। दोनों का यह मानना था कि उनका मिलन आकस्मिक नहीं है, उसने पूर्व जन्मों के बीज थे लेकिन.....? दुर्भाग्य की वही नियति जिसे उन्होंने अपनी सहायिका जान यात्रा आरंभ की थी स्वतः बीच में आ गई। तब भी क्या हुआ संबंध, जो बन गये थे, मिटाए नहीं मिटने। अगर वैसा ही होता तो अब भी परस्पर पति-पत्नी जैसे एक-दूसरे से पेश आते, आकांक्षाएं पालते अधिकार के वैसे दावे न करते जैसे वे किया करते थे। हां वैसा विग्रह था प्रेम का, जो तोड़े न टूटता था। चित्रकार कानन ने कभी दोनों को झगड़ता देख किसी रोज चुटकी लेते कह भी दिया था - "बाप रे, कितनी भयानक तनातनी, ऐसा झगड़ा ?" फिर मुस्कुराकर उसने सब को सुनाते अपनी बात पूरी की थी - "कहा जाता है कि जितनी गहरी मोहब्बत होती है, उतनी ही गहरी शिकायत भी होती है। यह भी मोहब्बत के इजहार की एक निशानी है।"

हां, वह सच था। संबंध उन स्मृतियों में बसे होते है जो तोड़े से भी नहीं टूटते नहीं। पारिजात की मोहक महक बनकर वे जिन्दगी भर और जिन्दगी के पार तक आत्माओं को भटकाते हैं। हां, वनमाला के प्राण भी प्रियहरि की स्मृतियों की महक में बसे थे। प्रियहरि उसकी जिन्दगी से दूर हुआ तो क्या ? स्मृतियों में तो सदैव बसा रहता। नियति के चक्र को वह देखती तो पाती कि प्रियहरि से बचने जिस विपुल को उसने पाला था उसमें भी प्रियहरि छाया हुआ था। सारी घटनाएं ठीक उसी तरह घटी थीं, घट रहीं थीं जैसी प्रियहरि के साथ के जीवन में घटी थीं। मानो प्रियहरि ही वनमाला के अनुभवों को अब भी दोहरा रहा था। समवयस्कता और समर्पण का सूत्र ही था जो अधूरी रही आई वनमाला को सहारे के लिए ललचा गया था। लेकिन तब भी प्रियहरि तो प्रियहरि ही था। वैसा न होता तो सभी की प्रियता के उस पात्र को काबू से निकलता देख वनमाला को ईर्ष्या और पीड़ा न होती।

प्रियहरि की तरह विपुल भी उसके पीछे लगा रहता था। प्रियहरि को दूर रखने वनमाला जैसी बेरुखी से पेश आती वैसी ही बेरुखी से इसे भी वह टालती रही थी। प्रेमी के प्यार और समर्पण की कद्र करती भी वनमाला समर्पित होकर अपने को खोना नहीं चाहती थी। फिर यह भी तो था कि अपने आप में प्रियहरि को दोहराते विपुल को देख वनमाला में कहीं प्रियहरि भी जीवित हो उठता था। तब उसकी आत्मा में जागी स्मृतियां अपनी बेवफाई के लिए उसे धिक्कारती थीं। यदि यही सब था तो प्रियहरि को उसने दूर क्यों किया ? क्या सचमुच प्रियहरि उससे दूर हो सका था ? दूर जाकर तो वह अब और पास आ गया था अपने को धिक्कारता वनमाला का मन प्रियहरि के साथ निरंतर घटी क्रूरता और खुद को उसका साधन बना दिये जाने के लिए विपुल को ही अपराधी मानता था। उसके चित्त से गुजरे दिनों की दूर स्मृतियां निकलती ही न थी।

जिस दिन का यह वाकया प्रियहरि को सुनने में आया, उस दोपहर किन्हीं मनःस्थितियों में उदास वनमाला पास ही बैठे अपने विभाग प्रमुख कुटिलाक्ष के साथ कुछेक फाइलों के कागज पलटती अपने कामकाज को लेकर बातों में लगी थी। स्टॉफ के दूसरे अनेक लोग वहीं गपशप करते अपने में तल्लीन थे। विपुल को वनमाला से बात करने के लिए बहानों की तलाश हमेशा रहती थी। वनमाला ने उसे तिरस्कृत कर रखा था।

उस रोज फिर विपुल ने कोशिश की। वनमाला और कुटिलाक्ष के बीच चर्चा में अपनी बात जोड़ने के बहाने उसने प्रवेश किया ही था कि एक अनोखा दृश्य उपस्थित हुआ। बहानों से बात को मुखातिब और संपर्क को उत्सुक विपुल के इरादे देख वनमाला का रौद्ररूप अचानक प्रकट हो उठा था। जिस तरह गुस्से से चीखती वनमाला ने उसे सबके सामने फटकार लगाई उसकी कल्पना तक किसी को नहीं थी।

"आपसे जब मैं बात ही नहीं कर रही तो बेकार आप मुझसे बात करने, बीच में आने की कोशिश क्यों कर रहे हैं ?"

क्रोध से उबलती वनमाला चीख रही थी - "आप क्या समझते है ? आपकी हरकतों को क्या मैं नहीं समझती ? ज्यादा स्मार्ट मत बना कीजिए। याद रखिए कि आप हमेशा अपनी लिमिट में रहें। बेकार मुझसे बातें करने की कोशिश मत किया कीजिए...।"

जैसे हवा को सांप सूंघ गया हो। सारे स्तब्ध रह गये थे। सरे आम अपमान और खुद के इरादों को नंगा होता देख विपुल का मुंह छोटा सा हो गया था।

सारी दुनिया की टोह लेते मानिक जी को यह बात उसी दिन चित्रकार कानन से मालूम हुई थी जो तभी किसी काम से वहां आ टकराया था। आचार्य मानिक जी का वह चेला था। मानिकजी के टोहने पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते कानन ने तब कहा था - "क्या बताऊँ मैं ? मेरी तो समझ से परे है। वहां तो बड़ा भंयकर देखने मिल रहा है।"

मानिक जी बहुत पहले से कानन से उसके कालेज के हालचाल लेते रहे आए थे। प्रियहरि-वनमाला प्रसंग की चर्चा पिछले सालों से थी। तब से वे चटखारे लिए प्रियहरि के हालचाल पूछते मजा लिया करते थे। इन दिनों प्रियहरि मानिकजी के निकट था। प्रियहरि से उन्हें सहानुभूति थी। प्रियहरि के मन में चल रहे उथल-पुथल और चेहरे पर उभरती गहरे विषाद की छिपाई जा रही उन छायाओं को वे औरों से बेहतर पढ़ सकते थे जो छिपाए जाने के बावजूद कहीं से झांक कर उनसे सारा - कुछ कह जाती थीं। प्रियहरि को छेड़ते हुए वे पूछते - "उस रमणी को तुमसे प्रेम था, वह तुम्हें चाहती थी यह तो मुझे मालूम है लेकिन सच-सच बताओ कि तुम भी तो उसे चाहते थे न ?"

जानने के लिए जवाब की जरूरत उन्हें न थी। वे सब जानते थे।

वनमाला को इस बात की कल्पना भी नहीं रही होगी कि प्रियहरि को उससे छीनकर ठीक वहां भेज दिया जायेगा जहां उसकी सुन्दरी सखी सौदामिनी विराजमान थी। प्रियहरि का मन वनमाला से टूटा था। लेकिन मन टूटा हो या जुड़ा हो - उससे दुनिया को क्या मतलब? वह तो काबिलियत देखती है।

अपनी जगह से निष्कासित अपने ही मन से हारे प्रियहरि को आरंभ में विचित्र जीव की तरह कौतुक भरी निगाहें बेचारगी से देखती थीं। महीने दर महीने गुजरते गये और धीरे-धीरे यूं हुआ कि उसकी काबिलियत और शखिसयत इस कदर ऊपर उठी कि निर्वासन का दंड ही प्रियहरि के लिए वरदान हो गया था। क्या छोटे और क्या बड़े सारे उसकी मुरीद हो गये थे। हरफन-मौला अफसर आचार्य मानिक जी उसे बहुत चाहते थे। वनमाला की सखी सौदामिनी ही नहीं दूसरी अंगनाएं भी प्रियहरि में वह कुछ विशेष देख रही थीं, जो सहज ही हर किसी को बांधता था। उसके अतीत के रहस्य जानने इन सबकी और इन तक पहुंचे अपने रहस्यों की थाह लेने प्रियहरि की कामना बलवती हो उठी थी। दोस्ताना रवैये से पेश आते मानिक जी ने किसी एक दिन जो बताया उससे सारी तस्वीर जीवंत हो प्रियहरि की कल्पना में तैर आई थी। सारा कुछ जैसे उसकी आंखों के सामने घट रहा हो।

सौदामिनी अपनी पुरानी संगिनी वनमाला के रूबरू जा खड़ी थी। अकेले में दोनों की बातें चलीं। सौदामिनी ने देखा कि वनमाला उसे सामने पाकर खुश तो थीं लेकिन संकोच और लज्जा में इसका मुंह फूल नही रहा था। सौदामिनी ने ही उसे कुरेदा -

"अच्छा चल अब बता कि मामला क्या था ?"

"कुछ नहीं रे, बस यूं ही ......"

"क्या यूं ही ? ठीक से बता न ! तेरे कारण ही तो मैं यहां आई हूं । तू ही नहीं बोलेगी तो कैसे काम चलेगा ? बता कि प्रियहरि से तेरे संबंध कैसे है ? किस बात का झगड़ा है वगैरह ?"

"झगड़ा वैसे तो कुछ नहीं है। वे तो मुझे चाहते हैं, उनके साथ तो मैंने बरसों काम किया है, मुझे पसंद करते है लेकिन ......"

"लेकिन ! फिर क्या ?"

"लेकिन उन्होंने ही मेरी यह दशा बना रखी है। न जाने क्या गलफहमियां हैं कि झगड़े बढ़ते ही जा रहे हैं। घर और बाहर दोनों जगह मेरी हालत खराब हो रही है।"

"तुम बता भी रही हो और छिपा भी रही हो। ठीक-ठीक बताओ कि बात क्या है ? अच्छा, चलो ये सच-सच बताओ कि मामला कुछ प्यार-मोहब्बत वाला है क्या ? मुझसे क्यों छिपाती हो ? साफ-साफ बताओ न !"

वनमाला सिर झुकाए मौन रही तो सौदामिनी ने फिर कुरेदा - "बता भी न, मौन क्यों हो गई ?"

"समझ लो कि वैसा है भी, और नहीं भी है।"

"यानी ?"

"जब से मैं यहां इस कालेज में आई हूं न जाने क्या था कि प्रियहरि मुझ पर मर मिटे। वे जैसे मेरे प्यार में दीवाने हो गये थे।"

"और तुम ? क्या तुम उन्हें पसंद नहीं करती थीं ?"

"नहीं वैसी बात भी नहीं है। हैं तो वे बहुत अच्छे। हम दोनों की तो बहुत पटती थी। एक-दूसरे के साथ हम हमने खूब काम किया है और बोला-बताया है। लेकिन बिना कुछ ध्यान रखे जब-तब बेचैन हो प्रियहरि मुझे घर में फोन कर दिया करते थे। वे तो मुझे प्यार के पत्र लिखा करते थे, कविताएं लिखा करते थे। बस यही सब मेरी मुसीबत का कारण बनते गए। मेरे मिस्टर मुझ पर संदेह करने लगे थे और घर में बवाल मच जाया करता था।"

सौदामिनी मुस्कुराई। बोली - "वनमाला, तू तो बड़ी घाघ निकली रे। सच बता, तुम्हें क्या प्रियहरि का वैसा करना क्या बुरा लगता था ? कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम भी प्रियहरि से प्रेम करती थीं ?"

वनमाला के चित्त में इस वार्ता प्रसंग से अतीत की सारी स्मृतियां तैर गई थीं। वह संकोच में गड़ी जा रही थी। वह नहीं चाहती थी कि उन स्मृतियों को और अधिक कुरेदा जाए। उसे चुप होता देख फिर सौदामिनी ने जगाया - "तुम फिर कहीं खो गईं। बताओ फिर आगे क्या हुआ ?"

"हां, तुम समझ सकती हो कि प्रेम करती भी थी और नहीं भी करती थी। पहले इनसे मेरे बहुत अच्छे और करीबी संबंध थे। हम साथ काम किया करते थे और खूब बातें होती थीं। ये मुझे बहुत चाहते थे और हम दोनों खूब पटती थी।"

"यह भला क्या बात हुई ? ये तो दो-दो बातें हुई कि करती भी थीं, और नहीं भी। मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

"ये इतने नजदीक आते जा रहे थे कि मेरे लिए संभालना मुश्किल हो रहा था। 'ना'...'ना'... करते भी मैं 'ना' नहीं कर पाती थी। घर में मेरे मिस्टर को आभास होने लगा था कि कुछ चक्कर चल रहा है। प्रियहरि के फोन आते तो झगड़े शुरू हो जाते। इस जगह भी लोग हमारे ताल्लुकात से चिढ़ने और बातें करने लगे थे। सभी को संदेह होता था।"

"मैं समझ गई। तो मामला यहां तक बढ़ चला था..... फिर ?"

"मैंने, प्रियहरि से दूर रहने का निश्चय किया। ये मुझसे प्रेम जताते, मेरे करीब आते तो मैं बेरुख होने लगती। मैं इनसे बचने की कोशिश करने लगी। कोशिश करती थी इनसे बचूं और इनके सामने न पड़ूं।"

"तब ?"

"तब क्या ? मैं वैसा करती तो प्रियहरि को बुरा लगता था। ये मायूस हो जाते थे और इस प्रकार हमारी दूरियां बढ़ने लगी...."

"ठीक है। तो फिर बात क्या थी ? लेकिन क्या वैसा करके भी तुम संतुष्ट नहीं थी ? कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हारे मन में भी कुछ-कुछ होता हो।"

"यही तो मुसीबत है। दूर रहना चाहकर भी मैं वैसा नहीं कर पाती थी। ये तो मेरी चाहत में दीवाने हो ही गये थे। कभी इनसे दूर रहते, इन्हें अपने से दूर करते मैं कुछ कहना, करना भी चाहती थी तो हालत यूं बन जाती कि चाहकर भी मैं वैसा नहीं कर पाती थी। बचते-बचते भी मैं इनके पास चली जाती थी। न जाने इनकी आंखों में वह क्या जादू होता कि सामना होता तो सारा कुछ भूल मैं इनके एकदम करीब हो जाती थी। तब कुछ याद न रहता कि मैंने क्या सोचा है, और मुझे क्या करना है ? इनकी आंखों में न जाने क्या लिखा होता, क्या भरा होता कि वे मुझे अपनी ओर खीच लेती थीं। सारा कुछ भूल जैसे मैं उनसे सम्मोहित हो जाती थी।"

"तो फिर ऐसी मुसीबत क्यों आई ? इसका मतलब तो यह हुआ कि तुम दोनों के बीच कोई झगड़ा ही नहीं था।"

"अब मैं कैसे समझाऊँ। उसे झगड़ा कहूं या कुछ और ? जो भी था वह था तो।"

"मैं तो समझ नहीं पा रही हूं। ठीक-ठीक समझाओ न कि बात है क्या ?"

"झगड़ा यूं हुआ कि प्रियहरि से संबंध मेरे लिए समस्या बनते जा रहे थे और वे थे कि किसी भी तरह मुझे छोड़ना नहीं चाहते। मेरी समस्या यह थी कि मैं इनसे अपने को कैसे अलग करूं ? इसके लिए मैंने इनसे ध्यान हटाने किसी और की मदद लेनी शुरू की। प्रियहरि को यह पसंद नहीं था कि मैं किसी और के साथ दिखाई पड़ूँ। उन्हें इससे ईर्ष्या होने लगी।"

"फिर ?"

"प्रियहरि और मेरे बीच गलतफहमियां बढ़ती गईं, दूरियां बढ़ती गईं। उन्होंने मेरी हर बात में उपेक्षा करनी शुरू कर दी। लोग उन्हें मेरे खिलाफ भड़काते थे। मैं भी देखती कि प्रियहरि के इर्द-गिर्द मेरी दूसरी संगिनियां डोलती-फिरती थीं। उन्हें वे मुझसे ज्यादा महत्व देते थे। मैंने इनके साथ हमेशा काम किया। मेरी हमेशा वे तारीफ करते, मुझ पर चाहत दिखाते थे, लेकिन हालत इस कदर बिगड़ गई कि ये मुझे छोड़ उनका पक्ष लेने लगे। मुझसे ज्यादा वे उनके हितों का ध्यान रखने लगे। सबके बारे में अच्छा लिखते थे और मैं इतनी उपेक्षिता हो गई कि ये तो ये, सब मुझे ही दोष देने लगे इन सबसे मैं अलग-थलग हो गई थी। मेरी हालत पर लोग हंसते और मेरा मजाक उड़ाते थे। सबको इनकी सिफारिश पर तनखाह में बढ़ोतरी का फायदा मिल गया और मेरा मामला लटक गया। मैं खुद को अपमानित और उपेक्षिता महसूस करती थी। मुझको वह सब बुरा लगता था। प्रियहरि ने मुझे बे-इज्जत छोड़ रखा था। मेरी बात सुननी, माननी इन्होंने बंद कर दी थी। यही मेरी इनसे शिकायत है।"

"बस इतना ही ?"

"इतना ही नहीं। मुझसे इनका झगड़ा इस कदर बढ़ा कि इन्होंने हमारे आपस की बातों को लेकर मेरे मिस्टर से शिकायत भी कर दी। फोन पर आए दिन ये उनसे बातें करने लगे थे। घर में शक की वजह से मेरी जिन्दगी बर्बाद होती जा रही थी। यहां तो झगड़े थे ही, घर में भी कलह शुरू हो गई। तुम्ही बताओ मैं क्या करती ?"

"और वह दूसरा व्यक्ति ? उससे तुम्हारे क्या संबंध थे ?"

"पहले तो कोई संबंध नहीं थे। मैंने उसे बीच में केवल इसलिए रखा था कि वह मुझे प्रियहरि के आकर्षण से रोक सके, मैं उनसे बची रहूं। बाद में प्रियहरि से झगड़ों के चलते वह मेरे करीब आता गया।"

"और तुम भी उसे चाहने लगीं ?"

वनमाला का सिर झुक गया। वह नीची निगाहें किये चुप हो गई। फिर धीमे स्वर में बोली - "हां, ऐसा ही समझ लो।"

सौदामिनी खुद भी पशोपेश में पड़ गई। उसने जैसे अपने आप से कहा हो - "अरे, यह तो बड़ी गंभीर समस्या है। मैं आखिर लिखूं तो क्या लिखूं ? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

कुछ पल वनमाला और सौदामिनी के बीच चुप्पी का अंतराल रहा। आखिर सौदामिनी ने ही चुप्पी तोड़ी - "तुम ही बताओ क्या किया जाय ? तुम क्या चाहती हो ?"

"समझ लो कि चीजें इतने बिगड़ चुकी है कि मेरा जीना मुश्किल हो गया है। मैं मुसीबत में फंस गई हूं। मेरी पारिवारिक जिन्दगी तबाह हो रही है। अगर यह सब आगे बढ़ा तो मैं कहीं की नहीं रहूंगी।"

"उपाय ?"

वनमाला उदास हो चली थी। उसके हृदय पर जैसे किसी ने पत्थर रख दिया हो। उसका मन भारी हो चला था।

"हम दोनों एक साथ यहां नहीं रह सकते। प्रियहरि और मैं जब तक एक साथ यहां बने रहेंगे, न वह सुखी रहेंगे, और न मै। या तो मैं यहां से कही और चली जाऊँ या उन्हें कहीं और भेज दिया जाय।"

"ठीक है, मैं देखती हूं।" - सौदामिनी ने कहा।

हालांकि वनमाला का मन तब उसे कचोट रहा था, सौदामिनी के कहने पर उसे वनमाला ने अपनी तकलीफों के कुछ कागजी दस्तावेज जुटाकर सौंप दिये थे। इन्हीं में पत्रिका का वह अंक भी था, जिसमें अपने हृदय की 'पत्रिका' वनमाला को अपने संपादिकीय के बहाने प्रियहरि ने अपने हृदय का संदेश लिखा था। वह प्रियहरि और वनमाला के बीच का निजी और गोपन था जिसे केवल वे दो ही जानते थे। यह बात अलग थी कि अनुराधा ने उसे समझ लिया था। उसमें वे सारे शब्द थे, जिन्हें प्रियहरि और वनमाला के बीच ही अनुराधा ने उच्चारित करते हुए और साथ ही प्रियहरि की लेखनी की तारीफों के पुल बांधते हुए वनमाला में ईर्ष्या जगा दी थी। यह वही संदेश था जो अनुराधा की मध्यस्थता के बहाने फिर वनमाला के हृदय में प्रियहरि के उदास चेहरे को अंकित करता उसके प्यार की स्मृतियां जगा गया था। इतनी सघन स्मृतियां कि वनमाला से रहा न गया था और तुरंत मिलने का संदेश भेज किसी बहाने वह प्रियहरि के रूठे मन को मनाने उसके पास जा बैठी थी।

सौदामिनी जब वहां पहुंची थी तब उसकी कल्पना में वनमाला की शिकायतों की जो शक्ल थी, वह बिल्कुल बदल गई थी। किसी ने लौटती हुई सौदामिनी के वे शब्द सुन लिये थे जो इस बिल्कुल अनोखे किस्से पर उसके मुंह से अनायास निकल गये थे - "अरे ! मैं तो यहां कुछ और ही सोच कर आई थी। यहां तो मामला लेकिन बिल्कुल उल्टा निकला।"

हां वह सच भी था। जिन एक-दो और से सौदामिनी की लंबी बातें हुईं, जो कुछ औरों से उसने जाना था उससे यही प्रकट हुआ कि मामला निहायत निजी था जिसकी पैदाइश प्रेम के त्रिकोण से हुई थी। उसे लोगों से ऐसा आभास हो चुका था कि वहां जो चल रहा था उसमें प्रियहरि ही नहीं, वनमाला खुद भी दोषी थी। जो कुछ वहां घटा और घट रहा था उसमें वनमाला का खुद का रवैया जिम्मेदार था। प्रियहरि तो क्या औरों से भी वह अलग-थलग, क्रूर, कटु हो चली थी। जो था उसमें वनमाला के रहस्यमय नाटकीय चरित्र और व्यवहार की भूमिका भी कम नहीं थी। तब भी वनमाला सौदामिनी की संगिनी थी। दोनों में से एक यानी प्रियहरि को ही अलग करने उसने चुना था।

गाफिल प्रियहरि जीवन के रंगमंच पर वनमाला के साथ अब तक अपनी भूमिका मे इतना खोया रहा था कि यवनिका के पीछे क्या घट रहा था इसका उसे तनिक भी बोध नहीं था। अब रहस्य खुलता जा रहा था। वह चाहे कुछ न देख सका हो लेकिन जैसे विराट महाकाल सारा कुछ देखता रहा था। प्रियहरि पर उसकी करुणा मानों जाग पड़ी थी। महाकाल की किंवदंतियों की दयामयी सहचरी ने जैसे उन्हें प्रेरित किया हो कि अब वे निरीह प्रियहरि पर कुछ भी कुछ दया करें। महाकाल द्रवित हुए। तब आसमान से वह परी अवतरित हुई

जिसने कुछ काल के लिये मुझ प्रियहरि को साथ का वह असंभव सुख दिया, जो अंदर गहरे में कहीं जीवन की कामना ही रही आई थी। उस सुख का एक-एक पल तब स्मृतियों की धरोहर बनता चला गया था।

०००००००००००००००००००००००००००००००००००

मैं : मेरी रानीप्रिया

१

किसी के प्रति आकर्षित होने के सर्वाधिक रहस्यमय कारणों में से एक यह भी है कि उसकी नसों में कौन सा रक्त प्रवाहित हो रहा है,**----** जो न सिर्फ विपरीतता की वजह से बल्कि अन्य किसी अनजानी वजह से भी, जिसे अनुमानित नाम देने की उतनी आवश्यकता इसलिये भी नहीं है किवह मन-गढ़ंत मन-गढ़ंत ही होगा, हमें अपनी ओर खींचता है।- सृष्टि को संचालित करने के तमाम जाने-अनजाने नियमों में से यह भी है। परस्पर आकर्षण विकर्षण और घर्षण। - / उपन्यास : कुछ न कुछ छूट जाता है पृ**088,** जया जादवानी/ऋतु/

घनघोर पीड़ा के बादलों के बीच कभी-कभी आनंद बिजुरी की चकाचौंध की तरह जीवन में बरस आता है। उसका प्रियहरि की जिन्दगी में आना भी दैवी चमत्कार की तरह था। प्रियहरि के उदास मन को कल्पना भी नहीं थी कि जीवन के अंधेरों के बीच अयाचित, अनायास, अप्रत्याशित सुख बिना कोई आहट किए वरदान की तरह उसकी जिन्दगी में प्रवेश करेगा।

नाम में क्या रखा है ? लेकिन फिर नाम ही तो है, जो बोध को पहचान देता है। उस रोज जब अपने काम के तीन घंटे गुजारकर लौटा तो हमेशा की ठंडी यांत्रिक उदासी के विपरीत मैने घर को चहक की मिठास से गूंजता पाया। आप मानें या न मानें माहौल को बनाने या बिगाड़ने में जीवित तत्वों की बड़ी भूमिका होती है। यूं आमतौर पर होता यह था कि बाहर से संचित कर लाए उल्लास की मेरी ऊर्जा घर की चौहद्दी को छूते ही एक ऐसे अवसाद में डूब जाती थी जिसे झेलना मेरी नियति थी। वहां वह व्यक्तित्व बुझ कर रह जाता था, जो बाहर चुम्बकीय आकर्षण रखता था। किसी को मुझसे सरोकार न था। सब यूं निस्पृह, तटस्थ, और अपने में तल्लीन हुआ करते कि मेरा वहां प्रवेश मुझमें ही अजनबीयत का गहरा विषाद भर जाता था। भ्रम होता कि जिस इमारत में मैने प्रवेश किया है, वह मेरा घर है भी या नहीं **?** कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं गलत जगह आ पहुचा हूं **?** पर तब क्या हो सकता था **?** सही हो या गलत हो, बरसों से दोहराए जाते अभ्यास से बंधे उस अहसास में ही मेरी नियति छिपी थी।

प्रवेश करते ही मैने पाया कि उस खास दिन अनुभव के वैसे अप्रत्याशित बदलाव का रहस्य सौम्य सुंदरता की यौवन से भरपूर उस प्रतिमा में समाया था, जिससे मेरा साक्षात्कार अब तक न हुआ था। जिज्ञासा व्यक्त करने पर परिचय कराया गया। वह मुहल्ले की सुशिक्षिता, सुसंस्कृत, विदुषी नई पड़ोसन रानीप्रिया थी। हर विषय में उसकी अभिरुचि थी। विज्ञान की वह प्रवीणा वैज्ञानिक सोच से संपन्न थी। उसकी समझ साफ थी। कला, साहित्य और संस्कृति में उसकी गहरी रुचि थी। पढने-पढ़ाने का उसे महज शौक ही नहीं था बल्कि उनकी बारीकियों को समझने और चर्चा कर सकने की उसमें पूरी तमीज़ भी थी। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर उसका समानाधिकार था। दोनो ही लिपियों मे उसकी लिखावट मोतियों जैसी ही नहीं, मोतियों की थी। अपने और अपने घर को सजाने संवारने की कला में वह निष्णात थी। संगीत, नृत्य, नाटक, चित्रकला के प्रति उसमें भरपूर लगाव था। जाहिर है कि देहयष्टि और मन के कमनीय सौन्दर्य से अलंकृत व्यक्तित्व की रमणी रानीप्रिया में वह सब कुछ था जिसकी कल्पना मेरी चाहत अपनी संगिनी में किया करती थी।

मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि मन, आत्मा, और चित्त की सुन्दरता और अन्तर्निहित गुण व्यक्तित्व से कैसे झांक लिये जाते हैं **?** आंखें मिलीं और उस प्रथम परिचय में रानीप्रिया और मैं एक-दूसरे के

प्रति सम्मोहित हो चले थे। उसके नगर की गलियों, वहां के समाज, वहां की संस्कृति और परंपराओं, कलाविदों और साहित्यकारों, खान-पान के तौर तरीकों और रहन-सहन, वहां के इतिहास और भूगोल, उस अंचल की राजनीति की अंतरंग चर्चाओं के दरम्यान मेरी जानकारी और दिलचस्पी पर विस्मित और मुग्ध हो उठी थी। हमारे आपस में भिड़ जाने के पल से ही वहां पहले से मौजूद पत्नी और लड़की की उपस्थिति अजनबियों की तरह हो गयी थी। उनमें अप्रसन्नता की उदास खीझ प्रकट हो आई थी। वह उनके लिए हमेशा का अनुभव रहा आया था। रानीप्रिया तो क्या किसी भी ऐसी रमणी के सामने मेरा हो पड़ना हो पड़ना उनके व्यक्तित्व को अपहृत कर जाता था। इसीलिये उनकी कोशिश होती कि मुझे वैसे मौकों से ओझल रखा जाए।

उस पहले परिचय के बाद से ही रानीप्रिया दोपहर में आ बैठना जैसे उसकी दिनचर्या का अंग हो चला था। उस जैसी सुसंकृत रमणी के लिये मुझ से आत्मीय संगी को छोड़ पाना वैसा ही कठिन था जैसा उसके अभाव में मेरा रह पाना। समय का अदृश्य कांटा एक खास पल पर पहुंचता इसके पहले से ही प्रतीक्षा की बेचैन धुकधुकी से मन धड़कने लगता। पुस्तकों-पत्रिकाओं की मुहिम पहले दिन से ही शुरू हो गई थी। वह बड़े शौक से उन्हें मांग कर ले जाती और पढ़ती ही नहीं थी बल्कि उनपर अपनी प्रतिक्रिया बतलाती बेलौस और बेधड़क दोस्त बनी मुझसे खूब बातें भी करती। वह जान चुकी थी कि मैं भी लिखा करता हूं।दूसरे-तीसरे दिन ही यूं हो चला कि उसने मेरे लेखन में दिलचस्पी दिखाई और अब मेरा लिखा भी पढ़ने लगी। यह तय हो गया था कि मेरे लिखे को वह खर में या कहीं और न पढ़ने देगी और न उनकी चर्चा करेगी। वह हमारी आपस की खुशी होगी। मेरी प्रेम कविताओं का संग्रह पढ़ते हुए उसने मेरी खूब तारीफ की थी। उसका कहना था कि अंदर से उसके उदास मन को मैं फिर उसकी बीत चली दुनिया में लिये जा रहा हूं। ऐसे मे ही मैने रानीप्रिया को मैने अपनी अंगरेजी की वह कहानी सौंप दी थी जिसमें कुछेक खुले और वर्जित समझे वाले अंश थे। संकोचवश मैने उन पन्नों को इस तरह चिपका दिया कि रानीप्रिया न पढ़ना चाहे तो उन्हें न पढ़े। कहानी सौंपने से ही पहले मैने उससे कह दिया था कि लेखन में कुछ भी नाजायज नहीं होता। अगर वह चाहती है तो कहानी उसे मैं दूं । वह इतना तो कर ही सकती थी कि अंग्रेजी के लेखन के बारे में जांचकर मुझे अपनी राय दे और उसपर चर्चा करे।

वह मुस्कुराई। बोली - रहने दीजिये न ! मैं सब समझती हूं। आप बेकार ही इतनी चिन्ता करते हैं।

रानीप्रिया : कहानी प्रसंग
२

नैतिकता क्रोधित वहीं होती है, जहां लक्ष्य अपरिचित या अवांछित होता है और जहां दो के बीच रजामंदी के समीकरण नहीं होते। रानीप्रिया और प्रियहरि के बीच लगाव का सिलसिला तो नयनों के प्रथम टकराव से ही बन चला था। अब आकांक्षाओं की भी पुष्टि हो गई। रानीप्रिया ने प्रियहरि की कहानी लौटाते हुए उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। पूरी कहानी उसने पढ़ ली थी । पूछने पर हया से निगाहें झुकाती उसने बताया कि हां उसने वे भी पृष्ठ पढ़ लिये थे, जिन्हें वर्जित बता पहले ही उनका पढ़ना या उन्हें चिपका ही छोड़ जाना प्रियहरि ने रानीप्रिया पर छोड़ दिया था। कहानी को लौटाते वक्त प्रियहरि की आशंका के विपरीत उससे टकराती रानीप्रिया की निगाहों में रसभरी मादकता थी। कहानी के सघन संभोग वाले उस खास अंश की न केवल उसने तारीफ की थी, बल्कि दिलचस्पी लेते हुए यह पूछा था कि क्या वह प्रसंग सच्चा है और क्या वैसा संभोग संभव है ?

प्रियहरि की आंखों में झांकते हुए उसने कहा था -" आप ने बहुत जोरदार लिखा है,। बहुत मज़ा आया। ऐसा लगा जैसे घटना एकदम लाइव घट रही हो। क्या वह सच था ? मुझे लगता तो नहीं कि यह संभव होगा।" हालांकि वह प्रसंग सच्चा था, लेकिन झेंपते हुए किसी और का प्रसंग बताकर प्रियहरि ने जवाब टाल सा दिया था।

उस रोज के बाद दोनों के बीच मांगने-पढ़ने-लिखने-बतियाने का परम गोपन साहचर्य अपने-आप बन चला था। आठ-दस मुलाकातों में ही रानीप्रिया और प्रियहरि ने यह समझ लिया था कि वह सबंध अब अपरिहार्य था। उसे औरों की निगाहों से बचाए रखने के लिये अब किसी सतर्क तंत्र का शोध जरूरी हो चला था। दोनों में उसकी उधेड़बुन समाई होती।

रानीप्रिया और मैने यह महसूस कर लिया कि बगैर तरकीब निकाले हमारा काम नहीं चलने वाला था। विपरीत लिंगियो के पारस्परिक आकर्षण में हम दोनों के बीच मेरी शुरू की गई चर्चा से हमारा प्रवेश उस क्षेत्र में हो चला था जो निहायत अंतरंग था। दोनों के बीच अंग्रेजों की भाषा हमारा वह सुरक्षित पुल थी जिससे गुजरते हमें वहां और उतनी दूर जाने की सुविधा थी जहां केवल हम रहे आते। बातों ही बातों में हमने रजामंदी कर ली थी कि ज्यादा ज्ञान प्राप्त करने अब हम मेरे कमरे में कम्प्यूटर जी के पास बैठा करेंगे।

ooooooooooo

सुबह-सुबह : रानीप्रिया
३

उस दिन सुबह-सुबह किस्मत मेरे लिए चांद और सूरज दोनो को मेरी निगाहों में बिछा गई थी। सूरज तो आसमान पर लाली बिखेरता दीख पड़ा था और चांद खुद मेरे घर चला आया था। आसमान के सूरज को प्रणाम कर मेरी निगाहें फौरन विदा कर देती हैं। मन विकल था तो उसे देखने जिसमें रोज़ प्रात: मैं एक-साथ ही पूर्णिमा के चांद को उशा की लालिमा के साथ दिन-भर के लिये आंखों में समेट लेता था।

स्नान करने के बाद अपने काम पर जाने के लिए अलस्सुबह तैयार होकर मैं अपने कमरे में बैठा था। कोई साढ़े सात बजे का समय रहा होगा। मुझे आठ बजे निकलना होता है। बेतरतीबी और अस्त-व्यस्तता में बिखरे सतत् अंधेरे में रहे आने के आदी इस मकान को झेलना मेरी नियति बन चली थी, जिसे मेरा घर कहा जाता था। इसके जागने की बेला साढ़े आठ के बाद कमरे-दर कमरे दस-ग्यारह बजे तक हुआ करती है। मैं अक्सर सोचा करता कि जीते-जागते आदमी को शव बना देने के लिये नियति की यह क्रूरतम विधि है कि उसे वहां ला पटका जाए जहां बुद्धि, भावना, संस्कार, आचार, व्यवहार, परिवार - सारा कुछ उसके ठीक प्रतिकूल हो। इस मकान और उस संस्थान की कुंडली एक जैसी है। यह अजीब संयोग था कि वहां पहुंचते और यहां लौटते ही मेरा चित्त प्रेतग्रस्त हो उठता रहा है। क्या यह दोनों की दक्षिण-मुखता का प्रसाद है या जनमपत्री के चौथे घर में बैठे शनि, मंगल ओर राहु का प्रतिफल ? मंगल ने जमीन-मकान तो दिया, लेकिन षनि और राहु के साथ। कर्म और आय का स्वामी शनि प्राय: समभाव रखता भी बुध के घर यहां बैठा है। एक तो कमजोर का घर पाया है और उसपर कर्म और वैभव की 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' की चाल। यह सब तो होना ही था।

जहां घर कुम्भकर्णी प्रकृति का हो, वहां जाहिर है कि गृहस्वामी का चित्त सदैव जागने को ही नियत है। यह किस्मत थी कि अपनी चहार-दीवारी से ज्यों-ज्यों मैं दूर जाता त्यों-त्यों मेरे कद्रदानों और मनचीती संगिनियों का साथ मुझे अपने में समेट लिया करता था। बाहर का गेट खड़का और झीनी सी आवाज़ से उत्सुक मेरे कक्ष का दरवाजा खुला। अपनी प्रिया रानीप्रिया को सामने पा आंखों को यकीन न हुआ। ठिठकी खड़ी रानीप्रिया ने चिर-परिचित सौम्य मुस्कान के साथ मुझे निहारते हुए पूछा -" अंदर आ जाएं क्या ?"

रानीप्रिया के साथ उसकी सम-वयस्का कोई और भी थी। रानीप्रिया ने बैठते ही मुझसे सवाल किया -" आज आप दिखाई नहीं पड़े। आप घूमने नहीं निकले थे क्या ?"

मैने बताया कि आज तैयार होते ही कुछ देर हो चली थी। इसलिए नहीं निकल सका। रानीप्रिया के चेहरे को निहारते मैने प्रति-प्रश्न किया -"आप गईं थीं क्या ?"

" हां, हम लोग वहीं से तो लौट रहे हैं। कहीं जाने की तैयारी है क्या ?"
" अपने काम पर जाने के लिये तैयार बैठा हूं। बस कुछ ही देर में निकल जाऊंगा।"
" बड़े स्मार्ट हैं आप। इतनी जल्दी नहा-धोकर तैयार हो गए। हमें तो अब जाकर सब करने में घंटे-दो घंटे लग जाएंगे " - हंसते हुए रानीप्रिया बोली।

लेकिन यह क्या कम था कि इतनी सुबह भी रानीप्रिया सज्जित वेशभूषा में थी ? वैसा ही दमकता चेहरा, वैसी ही बड़ी-बड़ी बोलती निगाहें, पतले गुलाबी होठों पर तैरती वैसी ही सम्मोहक मुस्कान और झीनी-झीनी संगीत-लहरियों पर तैरती वही मधुर वाणी, जैसी मैं उसमें हमेशा देखा करता था। रानीप्रिया और मैं एक-दूसरे को निहारते मुखातिब थे। मैने कहा -
" माइ गुडलक। आई कुडन्ट बिलीव माइ आइज़ व्हेन आई सा यू अपीयरिंग हियर।"

फिर अचानक साथ संकोच में बैठी उसकी हम-उम्र संगिनी पर ध्यान गया जो बड़े ध्यान से हमारी मुद्राओं पर गौर कर रही थी। मैने सौजन्य में पूछ लिया -" सॉरी, इनके बारे में पूछना तो मैं भूल ही गया। आप कहां रहती हैं ?"

" अरे, मैं तो समझती थी कि आप इन्हें जानते होंगे। यहां पीछे ही तो रहती हैं। शी इज़ मिसेज़ जायसवाल।"

अचानक रानीप्रिया को जैसे ध्यान आया। बोली-"हम लोग आंटीजी से मिलना चाहते थे। सोकर उठ गईं क्या ? "

मैने उठकर धीरे से अंदर के कमरे को जोड़ते दरवाजे का परदा इस तरह हाथ से उठाया कि अपनी जगह से ही देखकर वे अपनी जिज्ञासा का समाधान कर लें। हमारे बीच यह सब संकेतों में ही हो चला था। उन्होंने देख लिया था कि आंटीजी अपनी आदत के मुताबिक दुनिया-जहान से बेसुध सो रही थीं।

रानीप्रिया ने अर्थभेदी मुस्कान से मेरी आंखों में झांका। मेरे लिए यह समझना कठिन था कि उसकी आंखों में उस वक्त क्या लिखा था ? वह मेरी निरीह लाचारगी पर सहानुभूति थी या अपनी जैसी संगिनी से वंचित रहे आने की दयनीयता पर रानीप्रिया का व्यंग्य ?

"आप को देर हो रही होगी। ठीक है, मैं बाद में फिर आऊंगी" कहती रानीप्रिया संगिनी का साथ लिये चली गई थी। सुबह-सुबह खुशनुमाई का अहसास कराती भी वह मुझे अपने साथ के अभाव की वंचना से भर गई थी।

"का.....श.." बाहर निकलता मेरा चित्त सोचता रह गया।

oooooooooooooo

रानीप्रिया :
मैं नहीं चाहती कि कुछ ऐसा हो जिससे आप की इज्ज़त पर आंच आये।
४

रानीप्रिया का आना अब नियमित हो चला था। यह रोज़ की ही झंझट थी कि रानीप्रिया और मैं एक-दूसरे के सामने बैठे होते और तब भी वह इस संकोच में होती कि परिवार के अन्य सदस्यों की निगाहों के सामने वह मुझसे कैसे मुखातिब हो। इधर भय मुझे संकोच में डालता कि मैं उससे मुखतिब हो चलूं तो बीबी की खीझ कहीं कटुता बनकर हम दोनों के लिये अप्रिय हालात न पैदा कर दे। यह तो साथ का ऐसा सिलसिला था जिसमें फुरसत में देर तक समय गुजारने के एकांत की तलब हम दोनों की चाहत हुआ करती थी। मुसीबत यह कि हल इन्हीं परिस्थितियों के बरकरार रहते तलाशने की मजबूरी दर-पेश रहा करती। धीरज साथ छोड़ रहा था। जी में आता कि संकोच छोड़-छाड़कर अपनी स्वतंत्रता के अधिकार से मैं खुल चलूं। रानीप्रिया से मैने बतला दिया था कि अपने अनुकूल माहौल में निजी व्यस्तताओं के लिये मैने पहली मंजिल पर खाली पड़े मकान को

आशियाना बनाने का इरादा किया है। तब उसे भी संकोच छोड़ जानने-सीखने के बहाने सीधे मेरे करीब आने की सुविधा रहेगी। सुनकर उसे अच्छा तो लगता लेकिन उसे यह अहसास भी होता कि चीजें उतनी आसान न थीं, जितनी वे खयालों में हुआ करती हैं। वह कहती - "तब तो और दिक्कत होगी। यहां तो सब के बीच परिवार में आने और आमने-सामने होने का बहाना भी है। आप वहां रहेंगे तो मैं तो जा न सकूंगी और आप भी अकेले रहे आएंगे। तब यहां नीचे रह पाने के लिये आप के पास भी कोई बहाना न रहेगा।

उस एक दिन भी हम वैसे ही पशोपेश में बैठे थे। मैने रानीप्रिया से बीबी के सामने ही प्रस्ताव रखा कि वह ऊपर चलकर खाली पड़े कमरों को देखे और सुझाए कि किस बेहतर इंतजाम से उन्हें सुधारा और संवारा जाए। मैने कहा कि रानीप्रिया सुरुचि-संपन्न है और इसकी पूरी जिम्मेदारी उसे सौंपना चाहता हूं। इस साहसपूर्ण पेशकश ने रानीप्रिया को प्रसन्न करते भी संकोच में डाल दिया था। उधर बीबी का चेहरा व्यथा की सिकुड़न दर्शा रहा था। रानीप्रिया ने एक बार मेरी ओर निगाह उठाकर देखा और दूसरी ओर अपनी सुविधा की आंटी की आंखों में उसने झांका।

रानीप्रिया ने सौजन्य की आड़ ली - " आंटी, आप भी चलिये ना। "

आंटी ने खीझकर टाल दिया कि नहीं तुम चली जाओ। मैने रानीप्रिया का संकोच तोड़ते जोर दिया कि मुझे उससे सलाह करनी है इसलिये वह बिना संकोच चले। औपचारिकता की कोई ज़रूरत नहीं है। मेरे पीछे वह चली आई।

मेरे साथ सीढ़ियों पर कदम रखते रानीप्रिया के शब्द थे -" मैं आप के साथ चली तो आ रही हूं, लेकिन मुझे डर है कि न जाने आप की मिसिज़ क्या सोचती होंगी ? उनका रुख मुझे ठीक नहीं लगता । डरती हूं कि कहीं कोई बवाल न खड़ा हो जाये। आप के बड़े-बड़े बच्चे हैं, बच्चियां हैं। इन्होंने ही किसी रोज़ हल्ला मचाना शुरूकर दिया तो हम दोनों मुसीबत में पड़ जाएंगे। फिर मोहल्ले वाले भी हैं। पता चाहे न चले, लेकिन वे भी वाच करते रहते हैं। मुझे अपनी परवाह नहीं है, लेकिन आप की बहुत इज्ज़त है। मैं नहीं चाहती कि कुछ ऐसा हो जिससे आप की इज्ज़त पर आंच आये।"

ऊपर एकान्त में सारा कुछ दिखाता मैं रानीप्रिया से मशविरे करता रहा था, लेकिन प्यार में लिपटी हम दोनों की तमन्नाओं पर उस भय की छाप थी, जो दो दिलों को जोड़ती भी जुदा करती होती है। कुछ देर बाद वे चंद कारीगरनुमा लोग आए, जिन्हें मैने सुधार-संवार की गुंजाइश आंकने बुला रखा था। मुझसे जब वे मुखातिब हुए तो मैने उन्हें रानीप्रिया के जिम्मे सौंप दिया -" ये घर की मालकिन हैं। जैसा ये सुझाएं, वैसा करना है। वह मानों एक प्राकृतिक रिश्ता था। रानीप्रिया और मैं उस पल सचमुच ही मालिक और मालकिन हो चले थे। रानीप्रिया हिदायतें दे रही थी और रानीप्रिया को मुग्ध भाव से देखता मैं उस पल को आंखों में भर रहा था।

यूं समय बिता हम दोनों गैलरी पर खड़े नीचे सामने पड़े मैदान और बाग के पौधों, फूलों का नजारा देख रहे थे। लग ऐसा रहा था जैसे हम दोनों का जोड़ा किसी और के मकान का मुआयना अपने रहने के लिहाज से कर रहा हो। तभी मुहल्ले की एक कृशकाय गौरवर्णी तन्वी विवाहिता की मुस्काती जिज्ञासु नज़र ने ऊपर उठकर हमें निहारा। अपनी स्थानीय भाषा में आवाज देती वह रानीप्रिया से पूछ रही थी -

"क्यों दीदी, इस मकान में आ रही हो क्या ?"

रानीप्रिया हंसकर जवाब दे रही थी - " नहीं, बस यूं ही देख रही थी।"

फौरन बाद रानीप्रिया की मेरी निगाहों में झांकती मुस्कुरा रही थीं। वह मुझसे कह रही थी -

" देख लिया न आप ने ! मैने कितनी सच बात कही थी ? यहां सब लोग आप के साथ मेरे होने को बड़ी दिलचस्पी से वाच करते हैं। चीजें उतनी आसान नही हैं, जितनी हम उन्हें सोचते हैं।'

रानीप्रिया : परदा और परदे के पार

५

धीरे-धीरे यह क्रम बन चला कि जब रानीप्रिया आती तो पढ़ने-पढ़ाने के बहाने हम उस अलग कमरे में जा बैठते जो मेरा निजी था। रानीप्रिया को जो पढ़ना और मुझे जो पढ़ाना होता वह घंटों चलता। रानीप्रिया में असाधारण प्रतिभा थी, लेकिन यह अचरज की बात थी कि घंटों का समय बिता जाने के बावजूद वह यह कहती पाई जाती कि आप ने समझाया बहुत और मैं सारा कुछ हल भी करती गई, लेकिन मुझे याद तो कुछ न रहा। खोये-खोये मन के साथ रानीप्रिया को याद रहता भी तो कैसे ? अभ्यास-वश मैं भी सारा-कुछ सिखा तो जाता, लेकिन क्या मुझे भी याद रहता कि मैं क्या पढ़ा रहा हूं ? मन और आंखों से तो हम दोनों ही किसी और दुनिया में उलझे कुछ और पढ़ रहे होते।

यह हम दोनों की ही तो तरकीब थी कि गंभीर अध्ययन के बहाने सब से अलग बैठने का अवसर हम निकाल सकें। पहले-पहल मैने यह तरकीब सुझाई थी कि सुबह-सुबह सात बजे वह मेरे कक्ष में कागज-कलम-डायरी संभाले आ जाया करे। न उसके यहां और न मेरे यहां साढ़े-आठ बजे से पहले सुबह होती न थी। रानीप्रिया ने सुझाया कि क्यों न उस वक्त मैं ही उसके यहां आ जाया करूं ? स्वीकृति वह ले लेगी।

मैने आशंका जताई थी - " प्यारी रानीप्रिया, उनके घर में होते न तुम सहज हो पाओगी, और न मैं। फिर खुलेपन में हम दोनों को उन्होने पकड़ लिया तो हम दोनों के लिये मुसीबत खड़ी हो जायेगी।"

रानीप्रिया ने तो हंसकर आश्वस्त किया था -"निश्चिन्त रहिये। वे देर तक सोते होते हैं। उन्हें खबर ही न होगी कि हम क्या कर रहे हैं।"

बाद के अनुभवों से मैने जाना कि अच्छा ही हुआ जो मेरा आशंकित मन उस सुझाव को टाल गया था। तब एक विचार यह आया था कि रानीप्रिया दोपहर के खाली समय के उपयोग के लिये अगर ट्यूशन के बहाने अपने स्वामी की परमिशन बाकायदा और बा-मासूमियत हासिल कर ले तो सब से अच्छा होगा। तब किसी के कहने की कोई गुंजाइश ही न रहेगी। उसके यहां की निर्बाध दोपहर ही साथ के लिये ज्यादा मुफीद होगी, जब हम दोनों के बीच अपने में मशगूल बच्ची के अलावा कोई न होगा। बल्कि जब-तब उसे संभालती रानीप्रिया की मुह-लगी सेविका उसे अपने घर भी ले जा सकती थी। रानीप्रिया के जेहन में वैसी स्वीकृति की संभावना कम थी। आखिर हुआ यह कि मेरे यहां रानीप्रिया के नित्य आने का एक निश्चित प्रयोजन साभिनय मेरे यहां सब के बीच बातो-बातों में ही हमने सुनिश्चित कर लिया था।

कमरा अलग होता और परदे की आड़ हमें सुविधा की हद तक बाहर की चहल-पहल से अलग किये होती। मुंडियां झुकी होतीं ; मदभरी आंखें लालसा से एक-दूसरे को खूब निहारती होतीं और रानीप्रिया की पंखे की हवा से लहराती जुल्फों से मैं खेलता होता। पढ़ाई का आभास देती आवाजें बाहर तक पहुंचाते सैनों और अश्रव्य बैनों में हम दोनों की हसरतें खेलती होती थीं। परदे के इस पार भी परदा ही तो था - पढ़ने, लिखने, सीखने और सिखाने का परदा, जो रानीप्रिया और मुझे आपस में उलझाए रखता था।

रानीप्रिया दबे स्वरों में मुझसे कह रही थी -" छोड़िये आज अब इसे। कल और कुछ लिखा हो मेरे लिये तो निकालिये जल्दी से। मैं पढ़ लूं फिर चलूंगी ।"

मैने पुरजा निकाला और उसे सौंपते हुए कहा कि वह रफ ही लिखा आया है। फेयर करने की फुरसत ही नहीं मिली। डरता हूं कि उसमें लिखा कहीं उसे बुरा न लगे। रानीप्रिया ने पुरजा संभाला और निगाह झुकाये उसे मनोयोग से पढ़ती रही। उसकी आंखों में खुशी की चमक थी। अपने में मगन वह मुस्कुरा रही थी। उसका सिर उठा। मेरी आंखों में निहारती वह बोली -

" आई एम सारी। मैं आप को बताना भूल गई। मैने चोरी से इसे कल शाम ही पढ़ लिया था। कल दोपहर-बाद मैं आई थी। तब आप घर में नहीं थे। मैं बहुत देर तक देख रही थी कि आप कब लौटेंगे आप ने यहां जब फोन किया था आंटी को, तब मैं बैठी हुई थी। आप कहीं रिज़र्वेशन कराने बैठे हुए थे। आप ने आइडेन्टिटी-कार्ड ढूंढकर नंबर बताने कहा था। वे अलग ढूंढ रही थीं और मैं आप के कमरे में ढूंढ रही थी। आप का बैग तलाशते मुझे याद आया कि उसी में तो मेरे लिए आप की वे चिठ्ठियां भी होती हैं, जिन्हें निकालकर आप मुझे सौंपते हैं। ढूंढा तो ये पुरजा निकल आया था। कल उसी समय मैंने इसे पढ़ लिया था। मुझे तो पढ़कर बहुत अच्छा लगा। आप ने क्यों कहा कि आप डर रहे थे। आप को मेरा वैसा करना बुरा तो नहीं लगा न!"

" नहीं, बुरा क्यों लगेगा। तुम मुझसे जुदा तो हो नहीं। मुझ पर तुम्हारे ही सिवा भला किसका अधिकार हो सकता है ? " मैने कहा -"मुझे डर बस यही रहता है कि किसी बात पर मेरी प्यारी रानीप्रिया मुझसे नाराज़ न हो जाए।"

मादक आंखों से मेरे चेहरे पर नज़र डालती रानीप्रिया खिलखिला रही थी।

" आप बहुत डरपोक हैं। आप कितने मासूम हैं। बिलकुल बच्चों की तरह। इसीलिये तो आप मुझे अच्छे लगते हैं।"

पल भर रुकती वह आंखों ही आंखों में मेरे मासूम बुद्धूपन को चिढ़ाती पूछ रही थी -"अच्छा, ये तो बताइये कि उतना डरते हैं तो लिखते क्यों हैं। लापरवाही से आप यहां-वहां चिठ्ठियां रख देते हैं। किसी रोज़ घरवालों के हाथ लग गईं तो आप क्या कहेंगे ?"

मेरे पशोपेशका मजा लेती वह कहे जा रही थी -" मैं तो बच जाऊंगी। कह दूंगी कि उन्होने लिख रखा होगा मुझे क्या मालूम ?"

मेरी उदास उपेक्षा का जवाब था -"होता रहे जो होना है। मैने किसी की परवाह करना छोड़ दिया है। जो है, उसे मैं स्वीकार कर लूंगा। मुझे अपनी नहीं तुम्हारी ही परवाह है। मेरे कारण तुमपर मुसीबत न आए बस इसी की चिन्ता मैं करता हूं।"

मेरे जवाब से रानीप्रिया के चेहरे पर मेरे लिये अपार प्रेम उतरा पड़ रहा था। वह गंभीर हो चली थी। उसकी निगाहें फिर एक बार मेरी इबारतों पर दौड़ रही थीं। एक जगह ठहरकर अंगुली रखते उसने पूछा - "यहां क्या लिखा है मुझे ठीक से समझ में नहीं आया।"

अंग्रेजी में लिखी कविता के उस हिस्से में मेरी यह कामना छिपी थी कि मिलन के परम आवेग में हम कुत्ते और कुतिया की मानिन्द इस तरह युग्मबद्ध हो रहें कि छुड़ाने की तमाम कोषिषों के बावजूद हमारी गांठ आपस में फंसी रहे। मैने अ़द्वैत मिलन की उस कामना को स्पष्ट कर दिया था। मुझे नहीं मालूम कि संभोग का वह चित्रण रानीप्रिया को नहीं भाया था या कि वैसी अवस्था में अपने को देखा जाने की कल्पना उसे नहीं भायी थी, पर वह अचानक मुझसे रूठ चली थी। ठीक इसी वक्त दरवाजे के बाहर उसकी बच्ची के रोने की आवाज़ बच्चों के आपस मे झगड़ने और वहां मौजूद लोगों की डांट-डपट के बीच हम सुन रहे थे। कुछ ऐसी ध्वनियां उनमें शामिल थीं जो इस शिकायत की भनक देती थीं कि लोग बच्चे को लेकर चले आते हैं और अपने में डूब बच्चों को दूसरों के हवाले छोड़ जाते हैं।

"आप मुझे इसी तरह देखते हैं ?" - रानीप्रिया का यह इशारा कविता को इंगित कर था ।

वह उदास हो चली थी. आँखों में बूंदाबांदी के लक्षण लिए बदरी घिर चली थी। "ये बच्चे बैठने नहीं देंगे। मैं जाती हूं। अब मैं आप के यहां नहीं आया करूंगी।" - वह बोली।

उसने परदे के पार से आते ताने सुन लिए थे.

इधर रानीप्रिया के उठते-उठते मैं समझाता रहा था कि जब हम प्यार करते हैं; जब वह सब कुछ जानती है; जब हमारे बीच कोई परदा नहीं, तो वह मुझसे उतनी सी बात पर क्यों रूठ चली है ? मैने उसे समझाना चाहा कि उस बिम्ब में हमारे कुत्ता या कुतिया होने पर नहीं, बल्कि वैसे अद्वैत मिलन पर है, जो उस अवस्था में होती है। उस शोर-शराबे के बीच रानीप्रिया का चित्त उखड़ चला था।

अपने "फिर कभी नहीं आऊंगी" को मेरे मनाने पर एक-दूसरे से जुदा न होने कम वादे के साथ वह इतनी हद तक संशोधित कर पाई कि -"अच्छा आऊंगी, लेकिन अब हम एक-दूसरे के बेस्ट-फ्रेन्ड होने की हद में रहेंगे।"

कविता का वह बिम्ब इस कदर चित्त में अंकित हो गया था कि जब तक रानीप्रिया यहां रही आई, सारा समय वैसी अवस्था की सहमति में रानीप्रिया की हिचक और उसे नैसर्गिक मानकर, उस हिचक को दूर कर, उस बिम्ब को हम दोनों में साकार कर जाने के मेरे मनुहारों में बीता। यह विचित्र था कि उसके बाद रानीप्रिया और मेरे दरम्यान संबंध टूटने की जगह और अधिक खुले और घनिष्ठ हो चले थे।

रानीप्रिया :

चांद को नहीं देखा

६

तीन दिन बीत चले हैं और रानीप्रिया को मैने देखा नहीं है। कुछ तो इस संकोच में कि रोज़ बिला-चूक अड्डा जमाकर हम दोनों के चिपक जाने पर न जाने मेरे घर वाले क्या महसूस करते होंगे और कुछ इस वजह से कि शनि, रवि और दीगर छुट्टियों में उसके खुद के यहां उसे अपने मिया की निगाहों में नज़रबंद रहना होता है।

यह सोमवार का दिन है। आज तो उसे आना ही था। उसके आने की प्रतीक्षा में उसके बिना आए भी खयालों में दिन भर खालीपन की एक अजीब चुभन लिए मैं उसे निहारता और बतियाता रहा हूं। शामहो चली है। दिल बेताब हो चला है। इसपर काबू पाना मुश्किल है। अनुमान बताता है कि इस वक्त लाइन क्लीयर होनी चाहिये। मै उस यंत्र पर रानीप्रिया की संख्या अंगुलियों से मंत्र की तरह अंकित कर देता हूं। तार मिल गये हैं। अपना मोबाइल फोन हाथ में थामे मैं बाहर निकल पड़ा हूं ताकि तसल्ली से निर्बाध उसकी आवाज़ से मुखतिब हो सकूं।

"रानीप्रिया, आज दिन भर इंतजार करते आंखें थक गईं। चांद को नहीं देखा। बताओ क्या करूं ?"

मोबाइल पर रानीप्रिया की मंद खिलखिलाहट झरने की तरह उतर आई है। मेरे मन के आंगन में ढेर से फूल बरस पड़े हैं। संगीत की मीठी लहरियां मेरी चेतना में छाई जातीं मदहोशी के आलम में डुबाए जा रही हैं। रानीप्रिया की खनकती मिठास में चुहल है।

"अभी चांद कहां निकलेगा ? ज़रा इन्तजार कीजिये। कुछ देर बाद आसमान में देखियेगा। तब वहां दिखाई देगा।"

आवाज़ की खनक में रानीप्रिया को देखता मैं बेहोश हो रहा हूं। बेताबी और बढ़ जाती है। मेरी बेहोश होती आवाज़ कह रही है।

"रानीप्रिया, आसमान के चांद में वो बात कहां ? मेरे चांद की चांदनी तो दिन में भी खिली हुआ करती है। मेरा चांद तो तुम हो, जिसे आंखों में बसाए मैं दिन और रात सामने बिठाए रखने की तमन्ना करता हूं। रानीप्रिया, आई लव यू। जी करता है भागकर मैं तुमसे जा लिपटूं। तुम्हारे प्यारे मुखड़े की झलक पाने आंखें तरस रही हैं। बताओ मेरी चांद, तुम्हें कहां और कैसे देखूं ?"

" आप इस वक्त कहां हैं ? घर में या बाहर ?" - वह मुझसे पूछ रही है। मैं रानीप्रिया को सुनता अपने भीतर कहीं महसूस कर रहा हूं। अब उसकी आवाज़ में मेरी बेकरार दिल जा बसा है।

" मैं इस वक्त टहलता हुआ ठीक तुम्हारे घर की ओर बढ़ रहा हूं। नुक्कड़ पर थमा हूं।" -मैं उसे बताता हूं।

"चांद आप के सामने है। ज़रा नज़र उठाइये"- वह कहती है। मेरी नज़रें उठकर आसमान में यहां-वहां झांक रही हैं।

रानीप्रिया खिलखिलाती हुई मेरे मोबाइल पर उतर आई है। मेरे कान उमेठ रही है - "वहां कहां देख रहे हैं। इधर देखिये ऊपर। मैं यहां बालकनी पर खड़ी हूं।"

नज़रें टकराकर पल भर को एक-दूसरे के चेहरे पर थम जाती हैं। सफेद छींट वाली काली सलवार सूट में रानीप्रिया का कुंदन-कांत गोरा चेहरा मेरे सामने है। मदहोश कर देने वाली बड़ी-बड़ी ख़ूबसूरत आंखों पर पंख लगायी पलकें हया से झुकी हैं। अस्त-व्यस्तता से बदराई उसकी देह-मुद्रा को मेरी आंखें अपने में समेट लेना चाहती हैं। बारीक डोरी से पतले ऊर्ध्वाधर के नीचे यौवन-मद की सारी लालिमा को संचित किये अधरोष्ठ रसभार से खुलकर झुके हुए हैं। प्यार में सनी रानीप्रिया की स्निग्ध दृष्टि मेरी आंखों की आकांक्षा से एकमेव होती स्थिर हो चली है। चांद की रौशनी तीर की त्वरा से मुझमें समाई पड़ रही है। मेरी आवाज बेहोशी में लरज रही है।

" रानी आई लव यू। यू आर लुकिंग वेरी ब्यूटीफुल। जी करता है फौरन लपकूं और तुमसे लिपट जाऊं।"

" आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? बस ज़रा निगाहें नीची कर अपने अंदर झांक जाइये। मैं तो पहले ही वहां आप से लिपटी पड़ी हूं।"

मेरी चेतना झकझोरती मुझे हकीकत से रूबरू कराती है। रास्ते पर लोगों की आवा-जाही है और ठीक सामने नुक्कड़ में मुहल्ले के बूढ़े रोज़ की तरह ताश की महफिल सजाए बैठे हैं। इस वक्त सब की निगाहों के रास्ते रानीप्रिया के घर की सीढ़ियां फांद पाना मेरे लिये मुमकिन न था। रानीप्रिया से यही मैं बताता हूं और मजबूरियत की उदासी में राहत की झीनी उमंग को लपेट टहलता हुआ आगे चल पड़ता हूं।

रानीप्रिया :

'कन्ने की मां और बन्ने की मां'

'राजा की मां बाजा की मां ' ??

७

रानीप्रिया दोपहर से शाम तक घर में प्राय: अकेली होती है। दैनंदिन कामकाज और महरी के काम के समय का ध्यान रखता अब मैं जब-तब उसके यहां मौका देख चुपचाप घुस पड़ता हूं। शंका-संदेह को परे रखने रानीप्रिया सप्ताह में एक-दो दिन मेरे घर आने में जानी-बूझी चूक कर जाती है। ऐसे दिनों में बेचैन मेरा मन उसके यहां भागा चला जाता है। मेरे यूं पहुच जाने से उसकी भी बेचैनी जाती रहती है। रानीप्रिया के साथ उसके घर बैठने में जो बे-तकल्लुफी और खुलापन मिलता है, वह मेरे यहां उसके आने और हमारे साथ बैठने से कहीं ज्यादह सुकून देता है। वजह महज इतनी कि वहां हम दोनों के बीच कोई नहीं होता। वहां केवल हम ही होते हैं- केवल हम, अपने होने के सच्चे अर्थों में।

बातों के दौर में अचानक मैं रानीप्रिया से पूछ बैठता हूँ -"रानी, तुम्हारे यहां आते मैं इस बात का ख्याल रखता हूं कि आसपास किसी की नज़र मुझपर न पड़े। क्या यह संभव है कि तुम्हारे उन तक हमारी इन मुलाकातों की बात पहुँचती हो **?** तुम्हारी सेविका और उसका लड़का ही हैं, जो जब-तब यहां झांक हम लोगों को देखते हैं।"

" आप बेफ्रिक रहिए। कोई कुछ नहीं कहता। मैं नहीं समझती कि राजा की मां **कन्ने की मां** वैसी होगी। **कन्ने उसकी सेविका का सीधा दीखने वाला चतुर छोकरा था । नाम करनेसर था पर सब उसे कन्ने कन्ने ही कहते थे ।** वैसे भी ये उतने मुंह-लगे नहीं हैं कि उनसे कुछ कहने की हिम्मत कर सकें और न वो इनसे इस तरह की बात कभी करेंगे "- रानीप्रिया जवाब देती है।

राजा **कन्ने** की मां उसकी महरी से इतर घरू सेविका जैसी थी। जैसा कन्ने था वैसी उसकी मां थी । **वाचाल जुबां और टोही निगाहें इधर उधर खूब लपका करती थीं । बावजूद इसके रानीप्रिया उससे और वह रानीप्रिया से प्रसन्न थी ।** वह जब-तब अप्रत्याशित रूप से "क्या हो रहा है दीदी" की हांक लगाती दोपहर में हम दोनों के बीच टपक पड़ा करती थी।

" राजा की मां और बाजा की मां **'कन्ने की मां और बन्ने की मां' ।** तुमने भी खूब लगाई।" मैंने कहा, "किसी का कोई भरोसा नहीं। अपनी ईर्ष्या और तुम्हारे मिस्टर का विश्वास जीतने के चक्कर में ये महज हालचाल पूछने पर भी सहज समाचार जैसी इन्नोसेन्स की भाषा में उन्हें यह कह सकते हैं कि केवल अमुक-अमुक ही तो दोपहर में आकर बैठ जाते हैं। यह भी कि दीदी तो दिन भर वहां बैठी रहती है। यहां दीखने में तुम्हें सब देहाती और मासूम दिखाई पड़ते हैं, लेकिन ये सब अंदर से बड़े होशियार और काइयां हैं। यह राजा की बाजा की मां **कन्ने की मां और बन्ने की मां** कम नहीं है। मेरे यहां इससे गुफ्तगूं करती श्रीमतीजी न जाने क्या-क्या बताया और पूछा करती हैं.. ।"

मेरे चेहरे को प्यार से तकती रानीप्रिया मेरी बात सुन रही है लेकिन आँखों में चपल मुस्कान चमक रही है ।

अपनी समझ में बात मैं बड़ी गंभीर कह रहा हूं और उधर रानीप्रिया है कि अपनी बिन्दास अल्हड़ता में चुहल करती **'कन्ने की मां और बन्ने की मां'** के मेरे मौजूं तुक को मुक्त भाव से एन्जॉय करती

अब खूब हंसे जा रही है। उसके खूबसूरत चेहरे का चुहल भरा अंदाज मुझे भी खूब हंसाता है। मुझे उस तरह रानीप्रिया को उन्मुक्त पाकर अचरज होता है। क्या इसे भय नहीं होता - मैं सोचता हूं।

न थमी पड़ती हंसी के दौर में ही आखिर रानीप्रिया कहती है - आप की बात बड़ी मजेदार थी। मुझे जोरदार हंसी आ गई -**'कन्ने की मां और बन्ने की मां'** । वैसे बात आप ने ठीक कही है। हालांकि अभी तक वैसी बात मेरे अनुभव में नहीं आई है, लेकिन सचमुच किसी का कोई भरोसा नहीं। इसीलिये इससे पहले कि कोई चुगली करे अपने ढंग से घुमा-फिराकर मैं खुद अपने मिस्टर से कह दिया करती हूं कि यदा-कदा किसी काम के लिये या बच्चियों को पहुंचाने-छोड़ने वे आ जाते हैं।"

उस तरह रानीप्रिया की रिपोर्टिंग को सच्चा साबित करने ही अनेक बार रानीप्रिया की सलाह के अनुसार उसके मिस्टर के लौट आने के बाद फिर मुझे कोई औचित्य रचकर उनके समक्ष अपनी उपस्थिति देनी होती थी। रानीप्रिया बहुत भोलेपन के आत्मविश्वास से भरी है, लेकिन मैं शंकित हूँ । क्या उसके मिस्टर भी उतने ही भोले होंगे जितना वह समझती है **?**

रानीप्रिया :

खूब जोर-जोर से बोलिए। आप बहुत डरपोक हैं

८

मैं यह सावधानी बरत रहा था कि मेरी उससे हो रही मुहब्बत की बातें कमरे से बाहर न सुनी जा सकें। उधर रानीप्रिया थी कि मुझे प्यार से निहारती मानों हाथ पकड़-पकड़ बिठाए जा रही थी। खूब खिलखिलाकर हंसती वह कह रही थी -" मुझे कोई डर नहीं और आप डरे जा रहे हैं। खूब जोर-जोर से बोलिए। आप बहुत डरपोक हैं।"

रानीप्रिया को देखता नहीं तो मन बेचैन हो उठता है। पूरी बेशर्मी से उसके घर पहुंच जाता हूं और यह बात उससे कह भी देता हूं। वह हंसती है। मेरे मन की बात जानती है। उसकी भी दशा मेरी तरह ही है। हम दोनों यह जानते हैं कि मेरे घर वाले, चाहे वह नन्हे बच्चों के साथ के बहाने ही क्यों न हो, न तो उसका इस घर में आना पसंद करते हैं ; और न मेरा वहां जाना। मेरे यहां पत्नी भी और बेटी भी - दोनो ही रानीप्रिया की बच्ची के साथ खेलने से अपनी बच्ची को मना करते हैं। यहां न सही अपने ही घर वह इसे साथ के लिये ले जाना चाहे, तब भी वे उसे मना करते हैं। यहाँ नन्ही बच्ची को रोज कठोर हिदायत मिलती है कि यह वहां मत जाया करे। रानीप्रिया के आने से पत्नी और बेटी दोनों अलर्जिक हो उठती हैं। उन्हे मालूम है कि उसका यहां आना यानी सब को भूलकर रानीप्रिया और मेरा एक-दूसरे में खो जाना है। अनेक बार तो स्पष्टतः उससे ऐसा बर्ताव किया जाता है जिससे वह उपेक्षा का अनुभव करे। रानीप्रिया अपमानित अनुभव करती है और ऐसी स्थितियों से बचने मेरे घर आने से बचती है। घर के लोगों की ऐसी बदतमीजी पर मेरा हस्तक्षेप पारिवारिक कलह बन जाता है। इसके बावजूद एक-दूजे से मिले बगैर हम दोनो ही नहीं रह पाते। अक्सर भय से मैं घर में सूचित नहीं करता और दबे कदमों रानीप्रिया से मिलने उसके घर जाकर बैठ जाता हूं। वक्त ऐसा होता है जब उसके मिस्टर अपने दफ़्तर में हों। यह वक्त या तो दोपहर का होता है, या फिर सांझ का।

आज भी ऐसा ही था। वह अकेली ही थी। देर तक दिली बातों मे चिरपरिचित हमजोलियों की तरह हम एक-दूसरे में डूबे रहे। बीच में मुहल्ले की वह मजदूरनी सेविका आई थी जिसे वह अपनी बच्ची की देखभाल को लपकाये हुए थी। पांच-सात मिनट रुककर उसने रुखसत ले ली थी। ज़रूर वह उतनी समझ रखती थी जो उसे बता सके कि कब उसे वहाँ होना है और कब नहीं । रानीप्रिया और मेरे बीच की बातें ऐसे वक्त अंग्रेजी को अपना ढाल बना लेती थीं जब कोई और बीच में हो। वक्त गुजरता जा रहा था और उसके साथ मेरा बढ़ता भय कि कहीं कोई हमपर निगाह न रखता हो। रानीप्रिया के मिस्टर के लंच-टाइम पर आने की संभावना का डर भी

साथ था। मै बार-बार अपनी आशंका व्यक्त करता अनचाहे भी रानीप्रिया को छोड़ चला जाना चाहता था, लेकिन वह थी कि आज भय-मुक्त थी।

"बैठिये न और, अभी मत जाइये। आज यहां कोई आने वाला नहीं है। उनके दफ्तर मे खातों का ढेर काम है और वे दोपहर मे नहीं आने कह गए हैं" - कहती रानीप्रिया मुझे बार-बार रोके जा रही थी।

गर्मी की सूनी दोपहरी थी। पकड़े जाने का भय ऊपर से था। चलने-चलने को होता रुकता मैं यह सावधानी बरत रहा था कि मेरी उससे हो रही मुहब्बत की बातें कमरे से बाहर न सुनी जा सकें। उधर रानीप्रिया थी कि मुझे प्यार से निहारती मानों हाथ पकड़-पकड़ बिठाए जा रही थी।

खूब खिलखिलाकर हंसती वह कह रही थी -" मुझे कोई डर नहीं और आप डरे जा रहे हैं। खूब जोर-जोर से बोलिए। आप बहुत डरपोक हैं।"

मैं इशारा करता कि नीचे मकान मालिक हैं। सुन लेंगे तो चुगली कर सकते हैं। वह कहती - "वे यहां हैं ही नहीं। वे नागपुर गए हैं।और फिर कोई सुन ले तो सुन ले। जब मैं यहां आप के पास बैठी डर नही रही हूं तो आप क्यों बेवजह चिन्ता करते हैं। आज इतना अच्छा मौका है। आप बैठे रहिये मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है।"

अपना कम और रानीप्रिया के हितों का खयाल मुझे खतरों से आगाह करता डराता और मैं भयग्रस्त हो जाता। इधर मैं कहता - "लंच का समय हो चला है। तुम्हारे मिस्टर आ पहंचे तो अच्छा न मालूम होगा " और उधर मुझे रोकती रानी प्रिया खिलखिलाती हुई टोकती -" तो क्या हुआ ? आ जाने दीजिये। आप को क्या चिन्ता ? जो कहेंगे मुझको कहेंगे। मैं संभाल लूंगी।"

मुझे रानीप्रिया के वैसे साहस और आत्मविश्वास पर अचरज होता। मैने बिला-चूक हर उस मौके पर यह पाया था कि जब मेरे होते उसके मिस्टर वहां पहुंच आते या जब उसके मिस्टर के होते मैं उनके बीच पहुंचने की गलती कर बैठता, हंसती-खेलती चुलबुली रानीप्रिया को मानों सांप सूंघ जाता था। हम दोनों को अपने भरोसे छोड़ चुप्पी साधकर वह घर के कोनों में यूं सिमट जाती कि मैं तब "अब क्या किया जाए" की मुद्रा में पशोपेश में रहा आता। वैसे वक्त मैं सोचता कि यह वही रानीप्रिया है, जो मेरे साथ हुआ करती है या कोई और है, जो मेरे लिये और मैं जिसके लिये अजनबी था ?" मैं कह नहीं सकता कि यह ठीक है या नहीं, लेकिन मैं कल्पना करता हूं कि मेरे यहां और मेरी अपनी पत्नी की उपस्थिति में मेरे सामने ही बैठी रानीप्रिया संभवतः मेरी हालत को ठीक वैसा ही पाती होगी जैसा मैं उसके बारे में सोचता हूं।

रानीप्रिया :
मुगले-आजम की उदास मधुबाला
९

काली सलवार और कुरती में रानीप्रिया मुझे ठीक वैसी मुद्रा में दीख रही थी जैसी कि फिल्म मुगले-आजम की उस मधुबाला की थी, जो जंजीरों में बंधी अपने प्यार की बेबसी में उदास थी।

आज फिर वैसे ही हालात। रानीप्रिया के अपने यहां आने की प्रतीक्षा करता रहा। फिर न रहा गया तो दोपहर बाद तीन बजे अपने यहां की नन्हीं बच्ची को सहारा बना उसके दरवाजे पहुंच गया। ऐसा इसलिये भी कि कहीं उसके मिस्टर वहां मौजूद हुए तो बेसमय वहां पहुचने की क्या तफसील दूंगा। दरवाजा खटखटाया तो कौन की आवाज़ के साथ अनमना सा दरवाजा खुला। रानीप्रिया ने मुझे और मैने रानीप्रिया को निहारा। काली सलवार और कुरती में रानीप्रिया " आइये न, अंदर आइये न " कहती उनींदी पलकों में एक ओर कंधे पर झुके पड़ते सिर के साथ नीम अंधेरे कमरे में मुझे ठीक वैसी मुद्रा में दीख रही थी जैसी कि फिल्म मुगले-आजम की उस मधुबाला की थी, जो जंजीरों में बंधी अपने प्यार की बेबसी में उदास थी। उसकी झुकी पलकों के बीच टिमकती पुतलियों से मेरी आंखों की पुतलियां टकरा रही थीं। जी में आया कि दौड़कर अपनी रानीप्रिया के झुकते कांधों को सहारा देता अपने कंधों पर उसे थामकर लिपट पड़ूं और तब हमारे दिल उस नीम-अंधेरे में सुकून की तलाश करें। पर हाय, वैसा संभव न हुआ। साथ अंगुली थामे बच्ची खड़ी थी। रानीप्रिया अनुग्रह करती

रही- "आइये न, मैं अब जाग गई हूं। बच्ची को सुलाते मेरी भी आंख लग गई थी। उसे कुछ बुखार है", और मैं नहीं-नहीं करता, बाद में आने कह लौट आया। मेरे और उसके लिये यही क्या कम सुकून था कि उसे देखने को तरसते मेरे मन की मुराद पूरी हो गई थी। ज़रूर उसे भी यह तसल्ली मिल चुकी थी कि मेरी बेताबी अपनी उस प्यारी की बेताबी से कम न थी जो सारा मानापमान छोड़कर मेरा साथ पाने की खुली खवाहिश के साथ मेरे यहां आ बिला-नागा किये आ बैठा करती थी।

रानीप्रिया :
हम मना रहे थे कि वैसे मौके हमें बार-बार मिलें
१०

बाधा हटाने की गरज से मैने रानीप्रिया से अंग्रेजी में कहा कि हम दोनों के बीच दाल-भात में यह मूसलचंद कहां से आ टपकी ? अब किसी प्रकार इसे खिसकाओ।

मेरी बात पर रानीप्रिया हंसी। उसने अपनी उस मुंहलगी सेविका से कहा कि वह दूसरी सड़क से जाए और देखे कि वे उधर से तो नहीं आ रहे है ?

रात का वक्त था। तकरीबन नौ बजे का समय होगा। मैं टहलने की गरज से निकला ही था कि मुहल्ले के मोड़ पर ही अपनी बच्ची का हाथ थामे चल रही रानीप्रिया मिल गई। नीम-उजाले में भीगी कालोनी की सड़क सूनी और शांत थी। हम दोनों की आंखें चमक उठी थीं। मैने पूछा तो रानीप्रिया ने बताया कि उसके मिस्टर अभी तक लौटे नहीं हैं। देर से आने कहा तो था, लेकिन अब तक आ जाना था। फोन लग नहीं रहा इसलिये सोचा कि खुद ही वहां तक टहलती पता लगा आए। रात का वैसा मौसम और रानीप्रिया का साथ मेरी खुशकिस्मती थी। यूं संकोच और लोकापवाद के भय से हमारा मिलना वैसा सुलभ भी न था। दफ्तर करीब दो फर्लांग दूर था इसलिये टहलते हुए हम दोनों प्रिय और प्रिया के बीच खुलकर बातें कर सकने का अच्छा मौका था। हम चार कदम बढ़े ही थे कि उसकी एक मुह-लगी सेविका, जो रानीप्रिया की बच्ची को संभालती थी लपककर साथ हो ली। उसने हमें दूर से ही देख लिया था।

बाधा हटाने की गरज से मैने रानीप्रिया से अंग्रेजी में कहा कि हम दोनों के बीच दालभात में यह मूसलचंद कहां से आ टपकी ? अब किसी प्रकार इसे खिसकाओ।

मेरी बात पर रानीप्रिया हंसी। उसने अपनी उस मुंहलगी सेविका से कहा कि वह दूसरी सड़क से जाए और देखे कि वे उधर से तो नहीं आ रहे है ? हम लोग इस ओर की राह से देखते उस सड़क पर मिलेंगे जो उनके दफ्तर से मुड़ती है। उस दिन हमराही बनकर प्यार में डूबे हम बेलौस दिल की बातों में मशगूल रहे। नियत जगह पर पहुँचकर उस सेविका के लड़के के जरिये पता लग गया कि रानीप्रिया के मिस्टर को अभी और देर लगनी थी। नौकरानी इस बार साथ चिपकी रही थी, लेकिन अंग्रेजी की ढाल हमारे पास थी। उस दिन वैसे लौटकर हम फिर मेरे घर आकर बैठ गए थे। हम दोनो मनौती कर रहे थे कि वैसे मौके हमें बार-बार मिलें।

रानीप्रिया
'काम बन गया' के विजय की मुस्कान
११

मुझसे वह लाड़ दिखलाती मचलती है -"तब तो जरूर मैं भी खाऊंगी।"

मैं खुश होता हूं लेकिन उदासी के साथ। काश हम दोनों एक साथ एक ही थाल में खाना खाते उस मौज को बांट सकते, जो भय से बाधित रहा आता है।

रानीप्रिया आई है। मुझसे पूछती है-" क्या कर रहे हैं ?"

उसे आया देख मैं खुश होता हूं। बताता हूं कि आज मै अपनी पसंद की बेसन की सब्जी खुद ही बना रहा हूं। वह जानती है कि मैं हरफन-मौला हूं और शौक़ीन जिंदादिली से भरपूर हूँ । हम दोनों को नई-नई चीजों के बारे में जानने और प्रयोग करने का शौक है। मेरी पत्नी यानी उसकी सुविधा की आंटी की सुस्त और अभिरुचि-विहीन वृत्ति से वह बखूबी परिचित है। मेरी पत्नी से अधिक प्यार रानीप्रिया को मुझसे है। जब भी कुछ विशेष बनता है, वह जरूर लेकर आती है।

मुझसे वह लाड़ दिखलाती मचलती है -"तब तो जरूर मैं भी खाऊंगी।"

मैं खुश होता हूं लेकिन उदासी के साथ। काश हम दोनों एक साथ एक ही थाल में खाना खाते उस मौज को बांट सकते, जो भय से बाधित रहा आता है। मेरी कामना उसकी भी कामना है। भय ऐसा कि रानीप्रिया को अपनी ओर से आमंत्रित करूं तो पत्नी की ईर्ष्या, रोष और बदमिजाजी का खतरा रहा आता था।

रानीप्रिया से मैने कहा कि मेरी ओर से पहल हुई तो पत्नी चिढ़ जाएगी इसलिए बहाने से रसोई में उसके पास जा वह तरकीब से काम ले। रानीप्रिया रसोई में पहुंची।

" वाह, मसाले की खूब जोरदार महक आ रही है। लगता है कुछ विशेष पक रहा है। सुगंध से ही मुझको लालच आ रहा है। क्या बना रही हैं आंटीजी? मैं भी चखूंगी" - उसने पूछ लिया।

" मैं नहीं ये अंकलजी बना रहे हैं। ले जाना न तुम भी।"- पत्नी ने तटस्थ भाव से सूचित कर दिया ।

बाहर आकर अपनी सम्मोहक आंखों में 'काम बन गया' के विजय की मुस्कान के साथ वह मेरी आँखों में चमकते उस प्यार से टकराई, जो उस वक्त अपनी उस प्रिया के लिए टपका पड़ रहा था। दूसरे दिन बर्तन लौटाते उसने बताया कि बहुत बढ़िया सब्जी थी। उसके यहां सब ने खूब पसंद किया। वह कह रही थी पत्नी से कि वह उसे भी सिखा दे। मैं जानता था कि मेरे समक्ष रानीप्रिया की बातें चाहे जिसको संबोधित हों, उसका मन उन्हें मुझे समर्पित किये होता था।

रानीप्रिया :

इच्छा होती कि अपने प्रियहरि के घर को वह संवार दे

१२

रानीप्रिया से मिलने की बेचैनी इस खयाल से और बढ़ जाती थी कि किसी एक दिन उसे मुझसे जुदा हो जाना है। यह संभावना में खो जाने वाले सुख को समेट कर बांध लेने की कामना जैसा था। उस दिन जब मैं गया तो बिखरे घर के साथ वह अस्तव्यस्त थी। लटें बिखरी थीं और माथे पर पसीने की बूंदें लहरा रही थीं। घर का एकान्त हमें मिलन का घर जैसा सुख देता था। व्यस्त देख मैने लौट आने की पेशकश की। बिखरी जुल्फों को संभालती और माथे का पसीना पोंछती उसने तत्काल रोका -

" कुछ नहीं। बस ये हो गया। बहुत से कपड़े इकट्ठे हो चले थे । इन्हें प्रेस करना था। बस ये हो गया। जाइये मत आप बैठिये ना। आप आते हैं तो मुझे बहुत अच्छा लगता है।"

रानीप्रिया की उस अस्तव्यस्त मुद्रा में उसे महज प्रिया नहीं , बल्कि मेरी आत्मीयता पत्नी की छबि में देख रही थी। हां, हम दोनों की घनिष्ठता ऐसी ही प्यार से भरी थी कि वैसा महसूस करने के लिए लाइसेन्स की ज़रूरत नहीं थी। बल्कि सच तो यह है कि केवल वैसे ही पलों में रानीप्रिया और मैं अपने समूचे अस्तित्व को जिया करते थे। उस संबंध को केवल महसूस किया जा सकता था । उसे परिभाषित करना संभव नहीं है।

रानीप्रिया की उस छबि में अपने को बसाए उस वक्त मुझे अपनी बीबी का खयाल आया। कहां यह सुन्दरी विदुषी आधुनिक युवा और कहां चरम बुद्धिहीना और चिड़चिड़ी वह। उसे कभी खयाल न आता था कि

घर के लिये खटते मेरी छबि, मेरे कपड़े-लत्ते का खयाल रखा जाये। मुझे बा-नियम मजबूरी में अपने कपड़े खुद धोने और प्रेस करने होते थे। टूटे बटनों के साथ या फट रहे कपड़ों में मैं बाहर निकल जाता। कहने पर उसे जवाब में उपेक्षा भरी चुप्पी मिलती या टका सा जवाब कि "तो मैं क्या करूं ? जाकर किसी दर्जी को पकड़ो। "

घर का पुस्तकों-पत्रिकाओं से भरा होना उसके लिए कचरे का ढेर था। उस ओर वह झांकती तक न थी। कला, साहित्य, संस्कृति और सामाजिक गतिविधियों से उसकी अरुचि थी। वैज्ञानिक सोच और सौंदर्यबोध से उसका जैसे जनम का बैर था। बच्चे मां के निकट थे इसलिये पिता के प्रति वैसी ही व्यंग्य-भरी दृष्टि उनकी भी हुआ करती। प्रियहरि को लगता होता जैसे वह किसी और के घर का लाचार कैदी है। उसके ठीक विपरीत रानीप्रिया की रुचियां और रुझानें थीं, जो प्रियहरि के साथ में अपने सपनों को साकार होता पाती थीं। उसकी इच्छा होती कि प्रियहरि और उसके घर को वह संवार दे, लेकिन अपने फूहड़पन को ही सौंदर्य-बोध स्वीकार चली प्रियहरि की घुन्नी पत्नी की चिढ़ का भय उसे भी रहता। वैसा न करते भी रानीप्रिया की उपस्थिति से असहज महसूस करती और ईर्ष्या से घुटी जाती वह तब रानीप्रिया का घर में कदम रखना भी मुश्किल कर सकती थी।

रानीप्रिया सारा कुछ देख चुकी थी, सब जानती थी, लेकिन प्रियाहरि के ग़म में शरीक होने के सिवा वह कुछ न कर सकती थी। उसे मुझसे सहानुभूति थी। इन मसलों पर चिन्ता में शरीक होती वैसी पत्नी के साथ मेरे निबाह पर रानीप्रिया खुद भी करुण हंसी के साथ विस्मित होती थी। उसका जी तो चाहता कि सारा घर वह संभाल ले पर सिवा प्यार के वह मुझसे कुछ न बांट सकती थी। हम दोनों के स्वप्न, दोनों की आकांक्षाएं एक थीं, लेकिन दोनों की नियति अपने-अपने खूंटों से बंधे रहे आए रहने की थी। रानीप्रिया मेरे दिल के इतने करीब थी, उसका इतना प्रेम मुझपर था कि वश चलता तो वह मुझे वैसे ही छीन कर ले जाती, जैसी मेरी कामना उसे छीन कर अपने करीब रख लेना चाहती थी। उस दिन घंटे भर मैं वहां रहा। समय कैसे गुजरा यह न उसे पता चला और न मुझे।

रानीप्रिया :

हाय फोन क्या गज़ब ढाया

१३

बहुत देर तक मैं सोचता रहा कि रानीप्रिया की वह खीझ किसपर थी - बच्ची पर, मुझपर या अपने आप पर ? मुझे अफ़सोस था कि रानीप्रिया पर जो बीती होगी उसकी वजह मै था ।

वो चांदनी का बदन खुशबुओं का साया है
बहुत अजीज़ हमें है मगर पराया है - बशीर बद्र

उस रोज प्रियहरि के हवाश उड़ चल थे। उसकी चोरी पकड़ली गई थी। दोपहर में फोन प्रियहरि ने लगाया तो था रानीप्रिया को, लेकिन जवाब दिया दफ्तर से उसके मिस्टर की मर्दानी आवाज ने। प्रियहरि इतना भी न संभल पाया कि अपने को संयत कर कायदे का कोई बहाना ईजाद कर सके। प्रियहरि की घबराहट फोन के दूसरे सिरे पर मुखातिब ने पकड़ ली थी। इधर प्रियहरि के कानों ने वह खीझ पढ़ ली थी जो सज्जनता के परदे में उधर छिपी भी उजागर हो रही थी। प्रतिपल वह सोचता होता कि उस हादसे की शक्ल क्या होगी जो अब गुजरने वाला था ? उसे अपनी कम अपनी रानीप्रिया की चिन्ता अधिक सता रही थी। रानीप्रिया के दरवाजे की ओर शाम-रात तक वह झांकता रहा था कि रानीप्रिया की एक झलक मिल जाए। दूर से ही सही चेहरा देखकर वह तसल्ली पा सकता था कि रानीप्रिया ठीक-ठाक है या नहीं। देर शाम उसने रानीप्रिया को अपने हबी के साथ स्कूटर पर सवार होता देखा। रानीप्रिया और प्रियहरि की आंखों के बीच अनदेखा सा देखना हुआ था। प्रियहरि ने पाया था कि सब कुछ दुरुस्त प्रतीत होने के बावजूद रानीप्रिया का चेहरा फीका पड़ा था। प्यास की वह चमक आज गायब थी, जो आँखों के सम्मिलन में हमेशा हुआ करती थी । विवश उदासी के बादलों की छाया वहां थी।

रानीप्रिया जैसे प्रियहरि के घर का रास्ता अब भूल चली थी। तीन रोज यूं ही बीत चले थे। चौथे दिन की शाम जब वह उस संभवित घेरों में चक्कर काट रहा था जहां वह उसकी एक झलक पा सकता था, रानीप्रिया बच्ची की अंगुली थाम अपनी सखी अमिता के साथ टहलकर लौटती दिखाई पड़ गई थी। औरतें न समझती हुई भी सब कुछ समझती हैं। रानीप्रिया की मुझसे यारी का आभास अमिता को था। राह के जिस मोड़ पर वे टकराए थे, वहां नीम अंधेरा था। आसपास उनके अलावा कोई न था। पहले प्रियहरि की आंखों की मुठभेड़ अमिता की आंखों से हुई थी। उसमें छिपे प्रश्नित अभिप्राय को उस वक्त वह अनदेखा कर गया था। वह ऐसे मौके की तलाश में था कि जब यूं टकराई रानीप्रिया से वह गुजरे दिन के संकट और समाधान पर दिली बातों को कह और सुन सके। घर में न मिल पाने पर बाहर चलते-फिरते भी टकराकर रुक जाना और आंखों की प्यास बुझाते दो बातें कर लेना दोनों के दिलों को सुकून देता था। यह आम बात थी, लेकिन इस समय वक्त कुछ और था। मौका तो मिला पर अमिता और रानीप्रिया की बच्ची के देखते, खासकर इन दिनों के हालात में, दिल की बेताबी को और बढ़ाकर वह टकराहट व्यर्थ हो गई। रानीप्रिया से भी चोरी-चोरी नजरें मिली थीं, लेकिन उदास चेहरा लिए इस त्वरा से कि उससे मुखातिब होता बेचैन प्रियहरि बेताबी में अमिता और बच्ची के सामने ही कहीं उसे बाहों में न समेट ले रानीप्रिया सिर झुकाए ही अपने में सिमटी यूं मुड़ चली थी, जैसे जानकर भी प्रियहरि से वह अनजान हो। रानीप्रिया की बच्ची का चेहरा मुझ अंकल से बात करने पल भर को मुखातिब भी हुआ था। तब लेकिन जैसे इस भय से कि मुझसे किसी भी तरह की मुलाकात की खबर पति तक पहुंच सकती है, या अमिता उसे मेरे साथ बात करता देख न ले, रानीप्रिया ने झटपट अपनी बच्ची को जल्दी कदम बढ़ाने कह अपनी ओर खींच लिया था। रानीप्रिया के चेहरे पर स्पष्टत: उतर आई खीझ मैने पढ़ ली थी। बहुत देर तक मैं सोचता रहा कि रानीप्रिया की वह खीझ किसपर थी - बच्ची पर, मुझपर या अपने आप पर ? मुझे अफ़सोस था कि रानीप्रिया पर जो बीती होगी उसकी वजह मै था ।

रानीप्रिया :

मैं तो शादी करना ही नहीं चाहती थी

१४

स्मृतियों का सम्मोहन टूटता है। जैसा कि हमारे बीच नियम था अंग्रेजी की चादर ओढ़ हम दोनों छिप जाते हैं।
इस घर ने मुझे और रानीप्रिया को यूं भी उपेक्षित छोड़ रक्खा है। उसकी निगाह में हम दोनों बेसरम हैं।
यह हमारे लिए सुविधा का तोहफा है।

यह पांचवां दिन था। चार दिनों की गर्द झाड़ आज रानीप्रिया मेरे यहां आ बैठी थी।उसका आत्मविश्वास, उसका आत्माभिमान विजयी हुआ था। वह जो कहा करती थी कि मैं तो शादी करना ही नहीं चाहती थी। अच्छी खासी नौकरी थी। वह तो इनके घर वाले ही थे जो मुझपर इस कदर लट्टू हो चले थे कि अपनी संपन्न्ता और खानदान का हवाला दे-देकर मेरी मां और पिताजी को पटा लिया। उस वक्त भी मैने साफ कह दिया था कि मैं आगे और पढ़ना चाहती हूं, पी-एच. डी करना चाहती हूं और खुद भी नौकरी करना चाहती हूं। तब तो इन्हें मैं इतनी पसंद आ गई थी कि मेरे घर वालों की हर बात मानते चले गए और अब ? अब चाहते हैं कि मैं घर बैठकर आराम करती रहूं। रानीप्रिया कहती मुझे वह सब पसंद नहीं है। मैने तो शादी करके अपनी जिन्दगी तबाह कर ली है। ये अच्छी तरह जानते हैं कि रुचियों के मामले में मेरा समझौता इनसे नहीं हो सकता। अब इनका कहना है कि मैं घर में रहकर ही चाहे जैसा चाहती हूं करूं, पढ़ूं, अपना जीवन जिऊं ये कुछ न कहेंगे। बस इतना है कि मैं नौकरी की जिद छोड़ दूं।

कुछ नहीं हो सकता है तो मैने कहा कि चलो इतना भी ठीक है। इसीलिए जब भी ये उपदेश पर आते हैं मैं टोककर इन्हें अपने बीच के करार की सीमाएं याद दिला देती हूं।

विजयी के दर्प से चमकती आंखें लिए अपनी सम्मोहक मुस्कान को बंकिम भंगिमा देती रानीप्रिया मुझे निहारती हुई कहती -

"बताऊँ, सच पूछा जाए तो मैं इनसे ज्यादा योग्य हूं। कभी-कभी बड़े गर्व से जब ये बताते हैं कि इन्होंने प्रथम श्रेणी में अंग्रेजी में एम.ए.की है और नौकरी की शुरुआत से ही अच्छी तनखाह में अफसर हूं तब मुझे बड़ी हंसी आती है। डिग्री लेने भर से क्या हुआ? रुचि तो पढ़ने-लिखने की है नहीं। पढ़ाई और समझ के संस्कार तो इनसे ज्यादा मैं अपने में पाती हूं। मुझे तो इनसे अच्छी अंग्रेजी आप की लगती है। आप में जो ज्ञान है, आप की जो भाषा है, आप का जो लेखन है, आप का जो सरल, श्रमशील, सामाजिक और सुसंस्कृत व्यक्तित्व है, वह दुर्लभ है। मैं सच कहती हूं कि यहां तो क्या बाहर भी जहां तक मैने देखा है मैने किसी में वह बात नहीं पाई जो आप में है। मुझको चाहते आप मेरी तारीफ करते हैं और अपनी आकांक्षाओं को आप के साथ में प्रतिफलित होता मैं पाती हूं। ईश्वर की मर्जी है, अन्यथा हम दोनों का साथ होता तो कितना अच्छा था ?"

स्मृतियों का सम्मोहन टूटता है। जैसा कि हमारे बीच नियम था अंग्रेजी की चादर ओढ़ हम दोनों छिप जाते हैं। इस घर ने मुझे और रानीप्रिया को यूं भी उपेक्षित छोड़ रक्खा है। उसकी निगाह में हम दोनों बेसरम हैं। यह हमारे लिए सुविधा का तोहफा है। अब न रानीप्रिया किसी की परवाह करती है, और न मैं। मौन तोड़ता व्यक्तिगत-मनोगत बातों का सिलसिला मैं शुरू करता हूं। मैं फोन के प्रसंग में अपनी चिन्ता जाहिर करता जानना चाहता हूं कि उस रोज़ फिर क्या हुआ था ? मुझे नहीं मालूम कि वह संकोच था या अप्रिय प्रसंग को छिपा जानने की वह मनोवृत्ति, जिसे मैं इससे पहले भी स्त्री-स्वभाव में देखता रहा था, रानीप्रिया " कुछ खास नहीं " कहती बात को टाल गई थी।

रानीप्रिया :

आई हर्ट यू ए लॉट। स्टिल आई फील आइ हैव राइट ऑन यू।

१५

आएगा मधुमास फिर भी आएगी काली घटा घिर
आँख भर कर देख लो अब मैं न आऊँगा कभी फिर
दूर होंगे पर सदा को ज्यों नदी के दो किनारे
आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नभ के सितारे - नरेन्द्र शर्मा

चांदनी से नहाते आंगन में वह अब झूले पर सवार हो गई है। सुनहरी चांदनी में चांदनी सी ही रानीप्रिया का सुनहरा रूप घुल-मिल गया है। मन की मौज के साथ बच्चों की तरह झूलती पींगों के आरोह और अवरोह में रानीप्रिया की काया लहरें ले रही है। उसे आंखों में भरता मैं कामना कर रहा हूं कि वक्त हमेशा के लिये यहीं थम जाये।

रात के दस बजे हैं। अचानक जैसे सारे दबावों, भयों से मुक्त, घटित दुर्घटनाओं के अनुभव से वितृष्ण बिस्तर पर सुस्त पड़ा हूं। बाहरी गेट के खोले जाने की आहट सुन खिड़की की दरार से झांकता हूं। चाहता हूं कि क्रूर रानीप्रिया की आहट को अनदेखा कर जाऊं। सारे दिन प्रतीक्षा की मैने ,लेकिन भला उसे अब क्यों परवाह हो। उसने आज एक झलक भी न दिखलाई। साथ गया तो बात गई। नई जगह पर जाने की बेताबी में मेरी जगह की क्या संभवना ? वह अब दरवाजे पर है।

वह पुकार रही है - "आंटी, सो गई क्या ? टी.वी. देख रहीं आंटी अनमने दरवाजा खोलती हैं। मेरा दिल धड़कने लगा है। मेरी अदृश्यता और आंटी का यह रुख कि "बस काम हो गया ,चलो अब" ,उसे मायूस कर लौटा न दें।

जतन से पाली मेरी तटस्थता हवा की तरह काफूर हो जाती है। रानीप्रिया की मजबूरियों, उसकी पीड़ाओं का खयाल, सारी विपत्तियों के बीच भी रात गए समय निकाल मेरे यहां आ पहुंचने की उसकी हिम्मत के प्रति कृतज्ञता से अभिभूत मन अंदर गहराई तक पैठी प्रीति में भिगाते मुझे रानीप्रिया के सामने ला बिठाते हैं। मेरा मन इस कल्पना से भी चीखने लगता है कि दो दिन, केवल दो दिनों में ही रानीप्रिया से मुझको

और मुझसे रानीप्रिया को एक-दूसरे से खींचकर अलग कर जाने वाली घड़ी राह तक रही है। इधर हमारी छटपटाती जानें उन उपायों की तजवीज कर रही थीं कि बिछड़कर भी हम दोनों कभी न बिछड़ने पाएं। ये ऐसे ही क्षण थे

मुझे अंदर सोया समझ तसल्ली पाती पत्नी की जान मुझे सामने आया देखते ही सूख जाती है। रानीप्रिया के सामने भले ही लिहाज में अपनी जलन वह छिपा जाती है, अंदर से वह तो पहले ही मेरी प्रिया से चिढ़ी बैठी है। मुझसे अक्सर झगड़ा करती ताना देती है कि आखिर क्यों रानीप्रिया के आने की आहट से ही आतुर मैं स्वागत में द्वार खोलने बढ़ा आता हूं ? मोहल्ले में इतने घर हैं। बच्ची के साथ के बहाने यहीं क्यों चली आती है ? उसके साथ अंग्रेजी में गुपचुप क्या बातें चलती हैं ?

मेरी लड़की भी बखूबी अपनी मां का साथ देती है। इतनी चिढ़ है रानीप्रिया से कि अपनी बच्ची को यहां से दूर रखने की कोशिश करती है ताकि रानीप्रिया उसके बहाने न तो अपनी बच्ची को यहां ले आने पाए और न खुद भी यहां बैठने का बहाना उसे मिल सके। मेरे यहां की खीझें जरूर मुहल्ले की उस कामवाली बाई से भी रानीप्रिया तक पहुँच जाती थीं, जो यहां की बातें वहां और वहां की बातें यहां बड़ी मासूमियत से पहुंचा देती थी।

रानीप्रिया सारा-कुछ समझती है। इन दिनों ऐसी बातों से अक्सर वह खीझती अपमान महसूस करती रही है। कई-कई दिन अक्सर वह बच्ची पर खीझती मेरे यहां आने से बचती रही है। ऐसे वक्त तसल्ली देने, समझाने और रूठी प्रिया को मनाने अपने यहां की बच्ची को बहलाकर या उसके बगैर भी मैं सारे लाजो-लिहाज भुला उसी बेशर्मी या दिल की मजबूरी से जा बैठा करता था जिस तरह मुझे नहीं देख पाने की बेचैनी में रानीप्रिया सारा कुछ भूल मेरे यहाँ और मेरे साथ आ बैठती है । हम दोनों इन सब से उलझते यह तय करते हैं कि सारी बाधाओं के चलते भी हमें जुदा नहीं होना है चाहे सारा ज़माना ही क्यों न हमपर टूट पड़े।

मेरी पत्नी यानी अपनी प्रकट आंटी से रानीप्रिया रस्मी बातें कर रही है। हमारी आंखें एक-दूसरे से गुंथती चमक उठी हैं। बेताब दिलों के तार फौरन जुड़ चले हैं। बस मौके की कसमसाहट है। अब बीच-बीच में हिन्दी की रस्म निभाते रानीप्रिया और मैं अंग्रेजी के बिछावन पर खुल्लमखुल्ला लिपट और खेल रहे हैं। अब धीरज कैसा ? क्यों न एक-दूसरे को जी-भर हम समेट लें। अपने गोपन में परस्पर हम अंग्रजी को बिछा लेते हैं और प्रकट में हिन्दी को ओढ़ लेते हैं।

" आप सो गए थे क्या ?" मेरे चेहरे की उदासी वह साफ पढ़ रही है। उसकी आंखों की अर्थ भरी चमक मुझसे पूछ रही है - " आप की पलकें तो मुझमें भीगी हैं फिर मुझे छोड़ नींद को बसाने की बेकार कोशिश सफल हुई क्या ?

" नहीं। यूं ही झपकी ली थी। अब सुस्ती भाग गई है।"

रानीप्रिया ने इसे यूं सुना कि - मेरी प्यारी रानी, पोर'-पोर में समाईं तुम सब जानती हो। फिर भी मेरा हाल मुझसे पूछतीं तुम मुझे क्यों जला रही हो ?

वह सफाई दे रही है कि दिन भर काम में लगी रही इसलिये चाह कर भी न आ सकी। अब ज्यों ही राहत मिली सोचा कि चलकर जरा बैठूं।

वह पूछती है - “आप सो गए थे क्या ? मैंने आप को जगा दिया”

मैं कैसे कहता कि तुम सोने ही कहाँ देती हो? दिन और रात जगाए ही तो रखती हो।यूं मासूमियत से लबरेज चालाकी भी तुम्हारी अड़ा ही तो है। रानीप्रिया ने मेरी आँखों में लिखी पृच्छा पढ़ ली थी और मुस्कुराती मज़ा ले रही थी। चाहने वाले के चेहरे की तड़प माशूकाओं की आँखों को राहत भरा सुख देती है। यही तो वे देखना चाहती हैं। मैं रानीप्रिया से पूछता हूं -

''When are you people leaving? You too have to leave with him! Is it so.? I have come to know that.”

“Yes, we are all leaving.”

‘How it happened? You were to stay here according to earlier plan. How is is it that the plan has suddenly changed.’

“Yes it’s true. My mister has suddenly changed his mind. He wants me to go with her.”

“Why do not you persue him? He can leave you here till he settles a house there?”

"It's in-vain. He has decided. He is stubborn."
"Where shall you people be staying there?"
"I don't know? May be in some hotel."
"For a period so long as fifteen or twenty days? It will be too costly and uncomfortable too" – I say.
"Nothing can be done now. I will have to go with him. "

I peep in to her eyes which counter me with a helpless look. She reads the hopelessness and frustration in me. It appears in what I utter.
"I knew it since that incident which brought a hazard to us. I suspected this." – I say.
"He says, it will be difficult for him to remain there without me. It is in his habit. He is accustomed to it. He keeps me along where-ever he goes."

Ranipriya's sluggish attitude to understand what I desired fills me with an irritation. It was much earlier that we had discussed about the situations, which might force us to keep apart. I recall her suspicions and fears about the transfer of her husband.

रानीप्रिया ने कुछ महीनों पहले ही मुझे सूचित किया था कि उसके मिस्टर यहां से तबादले की कोशिशों में जुटे हैं। आवेदन भेज दिया है। तब उसने वैसी कोशिशों की हंसी उड़ाते बेपरवाह कहा था - "देखें, इस बार क्या होता है ? ऐसा तो वे करते ही रहते हैं। पहले भी कर चुके हैं। कुछ होता जाता है नहीं । मुझे तो लगता है इस बार भी कुछ होना-जाना नहीं है।"

मेरी आँखों में झांकती रानीप्रिया की आंखों की आशंका कह रही थी कि इतना प्यारा हमारा साथ छूट न जाए इसका डर मेरी तरह उसे भी सता रहा है। मैं रानीप्रिया के साथ तब निर्विघ्न उसके घर पर ही बैठा था।

'क्यों क्या उन्हें यह शहर पसंद नहीं है' - मैने पूछा था।

वितृष्ण हंसी में वह खिलखिला उठी थी - 'उन्हें कानपुर के अलावा कोई और जगह पसंद नहीं है। हमेशा और सारी जगहों को कोसते वे कानपुर की ही यादें किया करते हैं। इतना पढ़-लिख लिया है, लेकिन हद दर्जे के होम-सिक हैं। उन्हें बस दो ही चीजें पसन्द हैं -एक उनका शहर और दूसरा बास्केटबॉल जिसमें वे अपने को चैम्पियन समझते हैं। दुनिया में और किसी से उन्हें रुचि नहीं है।'

'और तुम्हें ?' - मैने पूछा था।

' मैं वैसी नहीं हूं। मुझे तो आप का यह नगर बहुत पसंद है। ऐसी शांत और आराम की जिन्दगी और कहीं न मिलेगी। लोग यहां के सभ्य और सीधे-सादे हैं। महानगर की सारी सुविधाएं यहां पर हैं। लूट-मार यहां उतनी नहीं है, जितनी वहां है।'

'रानीप्रिया तुम उन्हें सलाह क्यों नहीं देतीं कि यहीं वे रहें और मकान बना लें ?'

'वे किसी की मानें तब ना ? यह सलाह तो खुद उनके माता-पिता भी उन्हें दे चुके हैं। दरअसल वे आत्मकेंद्रित स्वभाव के हैं। किसी की नहीं सुनते, न किसी को वे पसन्द करते। वे ठीक मेरे विपरीत हैं। अंग्रेजी उन्होने पढ़ी है, लेकिन साहित्य से मुझको लगाव है और मैं ज्यादा पढ़ती हूं। मुझे सभा सोसाइटी में उठना-बैठना, रचनात्मक गतिविधियों से जुड़ना, शिक्षा और सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी है और वे हैं कि मुझे घर में बिठाए रखना चाहते हैं।' रानीप्रिया के होठों पर मुझे प्रश्नित करती वही वितृष्ण हंसी तैर रही थी। वह कह रही थी -

'आप को मालूम ? उनका बस चले तो मुझे कहीं आने-जाने न दें। मैं चाहती थी कि आगे पी.एच-डी करूं। कहीं कालेज में पढ़ा सकूं। मगर वे ? वे कहते हैं कि क्या करना है आगे पढ़-लिख कर ? क्या ज़रूरत है तुम्हें नौकरी की ? आराम से घर में हो, घर में रहो। क्या कमी है पैसों की ? मेरी तो अच्छी-खासी तनखवाह है। और क्या प्राब्लम है तुम्हारी ?'

उस वक्त रानीप्रिया मेरे सामने साकार करुणा थी। उसका मन खिन्न हो चला था। उसके मुख की अप्रतिम कांति पर विषाद की छायाएं तैर रही थीं। मेरा खुद का चित्त उस वक्त रानीप्रिया की विवशता में समा चला था।

बातों के दरम्यान कौंध आई स्मृतियों के जंगल से मैं फिर वहां लौट आता हूं जहां वह मेरे रू-ब-रू है। मेरी उदास खीझ रानीप्रिया से मुखातिब है -" ठीक है। मैंने भी कहीं और जाने की तैयारी कर ली है।"

" कहां ?"

" ऋषीकेश "

" क्यों ? अचानक !"

" बहुत से क्यों के जवाब नहीं होते "

आवाज़ की लाचारी को रानीप्रिया मेरी निगाहों की उदासी में झांकती पढ़ रही होती है। एक फीकी उदास मुस्कान उसके ओठों पर तैरती है।

" सामान समेटकर आखिरी रवानगी के लिए फिर यहां कब लौटना होगा ?"-मैं पूछता हूं।

" उन्तीस मई को। तब हम लोग चार दिन यहां रुकेंगे। तब तक आप यहां लौट आएंगे ना ?"

इतनी रात गए रानीप्रिया मुझसे मिलने आई है, लेकिन उदासी का अंधेरा इतना गहरा है कि एकदम अजनबी छबि जैसी अब वह मुझे बहुत दूर दिखाई पड़ने लगी है। बातों के इशा रों से ही मैं रानीप्रिया से बार-बार मनुहार करता हूं कि वह उसके नाम लिखी डायरी, प्रेम-पत्रों, कविताओं का वह पुलिन्दा मुझे लौटाती जाये, जिसमे हमारी यादें संचित हैं। मैं पिछले आठ दिनों से उसे मना रहा हूं कि जब वह मुझसे संबंध बनाये रखने में पशोपेश है तो उन कागज के टुकड़ों को वापस मुझे लौटा क्यों नहीं देती है ? आखिर तो उसे उन्हें फेक ही देना है।

" दे आर माइन नाउ। दे आर माइ प्रापर्टी। आप ने कहा था ना कि वह सब मेरे लिये है। तब क्यों उन्हें मांग रहे हैं ? मैं चाहे जो करूं। आप ने जो लिखा था वह झूठ है क्या ? आप का मुझपर विश्वास न रहा हो तो कहिये "- वह मुस्कुराती हुई मुझसे पूछ रही है।

रानीप्रिया सचमुच प्रिया है। वह विदुषी है। उसके तर्कों का मेरे पास कोई जवाब नहीं है। शायद मेरी जिद्द मुझपर उसके विश्वास को खिन्न कर रही है। शायद मेरा अवसाद उसे निराश कर रहा है। मैं उसे तसल्ली देता हूं कि वैसा नहीं है। मैं उसे समझाने की कोशिश करता हूं कि अगर उसने वह सब संजोकर रख लिया तो वह मुसीबत में पड़ सकती है। और अगर दो दिन बाद उसे वह कूड़ा समझकर फेक देती है तो मुझे दुख होगा।

रानीप्रिया मुझे सुनती है। उसके जबाब में दृढ़ निश्चय से भरा आत्मविश्वास है, दर्प से भरा स्वाभिमान है। वह कहती है -"आइ विल फेस इट। आई हैव नो फियर्स। यू आर अन-नेसेसेरीली कन्सर्न्ड सो मच अबाउट इट। मैं उन्हें अपने पास रखूंगी और कुछ नहीं होगा।"

क्षणांश को वनमाला की स्मृति कौंध आती है। बंद और कायर वनमाला के सामने मेरी यह प्रिया खड़ी है - रानीप्रिया : साफ बेझिझक, बेलौस साहस से भरी और मुझमें साहस जगाती। कितना अंतर है दोनों में ?

यादों में अपने ही पत्रों में, डायरी के पन्नों में , फुटकर नोट्स में, कविताओं में बसी रानीप्रिया से मैं सम्मोहित हूं। यह कल्पना करता दुखी होता हूं कि रानीप्रिया चली जाएगी और स्मृतियों की वे जीवन्त इबारतें भी न होंगी तो मेरे प्राणों को तसल्ली कैसे होगी ? यही सब कहता मैं फिर-फिर अपना आग्रह दुहराता हूं -

'ठीक है। मुझे तुमपर पूरा भरोसा है। तुम उन्हें अपने पास रख लेना। लेकिन एक बार, बस एक बार, एक दिन के लिए मुझे पढ़ लेने दो प्लीज़। मैं उन शब्दों को अपनी स्मृतियों में अच्छी तरह बसा लेना चाहता हूं।"

मेरे हठ से वह भी पशोपेश में पड़ गई है। मेरे चित्त को पढ़ना उसके लिये कठिन हो रहा है। अपनी खूबसूरत आंखों में मुस्कान लिए वह मेरे इरादों का अनुमान लगाती मुझे निहार रही है। मुझे उतावली है कि दिल के उन दस्तावेजों को एक बार देख लूं और उसे संदेह है। भय है कि हो सकता है हाथ में आने के बाद उन्हें मैं उसे न वापस करूं। उसका जवाब तरकीब भरा है -

" ओ.के। आई विल प्रोवाइड देम टु यू वेन आई कम बैक एंड वी मीट अगेन।"

मैं उसे बताता हूं कि तब मैं यहां नहीं रहूंगा।

" क्यों ?"

" बिकाज़, आई शैल बी कमिंग बैक औन टेन्थ आफ जून औनली।"

दस जून रानीप्रिया का जन्मदिन है। वह बुदबुदाती है -" दस...जून !"

उसे मेरा वादा याद है कि उस खास मौके को हम साथ-साथ एक अलग ढंग से मनाएंगे। उसे मालूम था कि उस दिन उसे मैं प्यार में उसके नाम रोज़ लिखी जा रही कविताओं की श्रृंखला भैंट करूंगा। उसे याद है कि उस रोज़ मैने उसे उसकी पसंदीदा एक खूबसूरत पेन्टिंग भैंट करने का वादा किया है। उसकी कल्पना में रेशम की वह नायाब साड़ी है, जिसपर हाथ की बारीक फुलकारी हो। मेरे जवाब ने उसे अचानक उसे उदास कर दिया है। वैसा ही उदास आशय उसकी उन बड़ी-बड़ी आँखों मे छिपा है, जो प्रश्नवाचक द्दय़िट से मुझे निहार रही हैं।

" वह खास दिन ही क्यों ? उसके पीछे कोई खास कारण ?"

" मैं बहुत दुखी और उदास हूं। तुमने मेरी एक भी सलाह नहीं मानी। मै हरदम तुम्हारे ही बारे में सोचता रहा। मुझे तुमसे ढेर सी बातें करनी थीं। लेकिन तुम्हारी चुप्पी ने अपराध-बोध से भरकर मेरी इच्छाओं पर घड़ों पानी फेर दिया। मैं लगातार इस बात से चिन्तित रहा कि फोन पर पकड़े जाने की अटपटी स्थिति के बाद तुमपर क्या गुजरी होगी ? मेरे कारण अपने घर पर न जाने कितना अपमान, कितनी प्रताड़ना, कितनी कड़वी बातें झेलनी पड़ी होंगी ? मैं तुमसे बात करना चाहता था। सोचा कि तुम बताओगी। लेकिन तुम थीं कि अपने को दूर करतीं मुझसे किनारा करके बैठ गईं। तुममें इतना भी सौजन्य न रहा कि फोन पर ही सही एक बार मुझसे बात तो कर लेतीं। मैंने सोचा कि जब तुमने खुद उस तरह से पेश आते मुझे अपने हाल पर अकेला दौड़ दिया है तो मैं यहां क्या करूंगा ?"

रानीप्रिया के दिल को चोट पहुंची। उसके उल्लसित चेहरे की चमक बुझ चली थी। मेरा बयान उसके चित्त पर प्रश्न की तरह आरोपित होता छा गया था। पल भर के लिये जैसे उसे काठ मार गया था। न जाने तब उसकी मनःस्थिति क्या रही होगी ? उसी ने चुप्पी तोड़ी -

" वाट अबाउट दोज़ प्रॉमिसेस एंड प्लान्स फॉर गिफ्टस ऑन माइ बर्थ डे ?"

" हां, मेरी इच्छाएं और योजनाएं तो अपार थीं, लेकिन तुम्हीं बताओ कि ऐसी हालत में मैं क्या कर सकता हूं, जब हमारे बीच मिलने तो क्या बात तक करने का मौका तक नहीं है।"

अंग्रेजी में हमें बात करता और अपने आप मे मशगूल देख रानीप्रिया के करीब ही बैठी पत्नी के चेहरे पर वितृष्ण भाव है। न जाने उसने कितना समझा है और कितना नहीं। उसका सिर दूसरी तरफ मुड़ चला है। वह अपने को आहत महसूस कर रही है। हमारी ओर से उसने तटस्थता का रुख अपना लिया है। उसे मालूम है कि रानीप्रिया यहां उससे मिलने नहीं, केवल मुझे देखने की तमन्ना से खिंची चली आई है। मुझे भी उसकी वैसी परवाह नहीं है। वे दिन मैं भूल नहीं सकता जब जेब में भूल से रह गई वनमाला के नाम लिखीं प्यार और शिकायत से भरी अर्जियां या पुर्जियां चोरी से पढ़ वह मेरे विषण्ण चेहरे पर लिखी पीड़ा का लुत्फ उठाया करती थी। तब शायद वह आश्वस्त थी कि उसकी अपनी निगाह में मुझ जैसे साधारण से किताबी कीड़े को लिफ्ट भला कोई क्यों कर देगा ? तब भी उसके चेहरे पर ऐसा ही वितृष्ण भाव हुआ करता था, लेकिन एक वैसी व्यंग्य भरी उपेक्षा के साथ जिसपर यह लिखा होता कि वह मजे चखो। तुम इसी के लायक हो। अब वैसी हालत में अपनी पत्नी को देख उसके उन व्यंग्यों के प्रति मैं भी प्रतिकार के भाव से तुष्ट हो रहा हूं। मैं समझ सकता हूं कि अपने से पच्चीस साल छोटी इस परम सुंदरी, परम शिक्षिता, परम सुसंस्कृता रानीप्रिया को प्रतिद्वंदिता में उसके अपने सामने ही मुझसे लिप्त पाकर उसपर क्या गुजर रही होगी।

रानीप्रिया को मैं आश्वस्त करता हूं कि उसकी याद मुझे हमेशा बनी रहेगी चाहे वह मुझे भूल ही क्यों न जाए। उसे भुला पाना मेरे लिये असंभव है। मैं उससे वादा करता हूं कि मेरे अंदर वे संबंध हमेशा जीवित रहेंगे जो इस वक्त हमारे बीच हैं। मैं वचन देता हूं कि चाहे जैसे बने जन्मदिन के वादे मैं ज़रूर पूरे करूंगा अगर वह भी हर मुलाकात पर याद दिलाई जा रही मेरी याचना का स्मरण कर नई जगह पहुंचते ही अपना निजी मोबाइल नंबर और जैसे भी हो अपना ई-मेल का पता तैयार कर मुझे भेज दे।

रानीप्रिया का हमेशा खिला हुआ चेहरा उदासी के बादलों से घिर चला है। उसकी चमकती आंखों की पुतलियां मेरी बातों में व्यक्त कठिनाइयों की कल्पना और पल-पल छूटे जा रहे साथ के विषाद से धूमिल हो चली हैं। मेरा उदास मन उसमें संक्रमित हो चला है।

रानीप्रिया से मैं कह रहा हूं -" मेरे हाथ में अब कुछ भी नहीं है। जो है, वह तुमपर निर्भर है।"

रानीप्रिया का मन आशंकाओं की चिन्ता से बुझ चला है। वह वैसे ही चित्त से सिर झुकाए मुझे निहारती है। कहती है - " देखिए वहां पहुंचकर क्या होता है ? अभी तो मुझे भी नहीं मालूम कि वहां क्या इंतजाम है ? कैसी परिस्थितियां बनती हैं ?"

तब भी वह वादा करती है कि पहुंचते ही जल्द से जल्द वह अपना नंबर मुझ तक पहुंचाएगी। उसके मोबाइल पर पति का नंबर चीखता है, जो दफ्तर से लौटकर बंद मकान के दरवाजे से उसे आवाज़ दे रहा है। वह कहती है कि मैं जा रही हूं। वह आगे बढ़ती है, ड्राइंग रूम के दरवाजे के पल्लों के बीच ठिठकती है। मेरी आंखों में अपनी उदास निगाहों के साथ समाई रानीप्रिया वे शब्द सुन रही है, जो मेरी जुबान से फिसलते उसका पीछा कर रहे हैं -

" रानीप्रिया, आई बेस्टोड आल द लव इन माइ हार्ट औन यू। बट यू हैव इग्नोर्ड एंड हर्ट मी ए लॉट। आइ ऐम सैड। आई डोन्ट नो वाट टु डू ? आई कॉन्फर्ड आल माइ राइट्स औन यू, बट यू नेवर केयर्ड फॉर मी। एन्ड नाउ आइ शेल नेवर बी एबल टु सी यू। हाउ पिटिएबुल आइ स्टैण्ड टुडे। "

मेरी सारी पीड़ा उस वक्त मेरी आवाज़ की नमी में उतरती रानीप्रिया के हृदय मे जा समाई थी। दरवाजे पर पूर्व की मुद्रा में ही जड़ीभूत अंदर की नमी को पलकों पर ढालती और मेरी आंखों मे डूब तसल्ली देती वह जवाब दे रही थी -" यस आई एडमिट इट। आई हर्ट यू ए लॉट। स्टिल आई फील आइ हैव राइट ऑन यू। आई वोन्ट फॉरगेट यू।"

हम निकलकर आंगन में खड़े हैं। रात के दस बजकर चालीस मिनट का समय हो चला है। उसे मालूम है कि उसके मिस्टर घर पहुंचकर कंपाउन्ड के बाहर खड़े बंद मकान की चाबी की प्रतीक्षा में हैं। दोबारा उसकी कालिंग-रिंग आ चुकी है। तब भी रानीप्रिया को न जाने आज क्या हो गया है। वक्त और हालात से बेफिक्र वह बेलौस और बिन्दास हो चली है। पहले से ही रानीप्रिया से टंटा तुड़ा रुखसत पाने मेरी पत्नी उसे आगाह किये जा रही है कि जाओ नहीं तो वो नाराज होंगे, लेकिन रानीप्रिया ने जैसे सुना ही न हो। चांदनी से नहाते आंगन में वह अब झूले पर सवार हो गई है। सुनहरी चांदनी में चांदनी सी ही रानीप्रिया का सुनहरा रूप घुल-मिल गया है। मन की मौज के साथ बच्चों की तरह झूलती पींगों के आरोह और अवरोह में रानीप्रिया की काया लहरें ले रही है। उसे आंखों में भरता मैं कामना कर रहा हूं कि वक्त हमेशा के लिये यहीं थम जाये। पति की तीसरी रिंग आती है।

" बस, अभी आ रही हूं "- वह संक्षिप्त में जवाब देती है।

जाती-जाती भी न वह मुझे छोड़ना चाहती, और न मैं उसे। मेरा मन भारी हुआ जा रहा है। जाती हुई रानीप्रिया मुझे विवश आंखों से मुझे देख रही है। मैं उन्हें पढ़ रहा हूं। उनमें लिखा है -" तुम मुझे रोकते क्यों नहीं ? मुझसे तुम कहो कि रुको, तो मैं अभी रुक जाऊँ।"

दुनिया का रिवाज है कि आंखों की भाषा को जुबां की भाषा में तब्दील नहीं किया जा सकता। मेरी भीरुता दुनिया का अनुसरण करती है। मेरी डूबती हुई आवाज़ रानीप्रिया से मुखातिब है -" वी वौन्ट बी एबुल टु मीट परहैप्स नाउ ।"

" परहैप्स "- वह कहती है।

उसके जाते-जाते भी मेरी हसरत उसके पीछे हांफ रही है। मैं उससे कहता हूं कि कल ग्यारह बजे उनके जाने के बाद तुम्हारे यहां आऊँगा । उसकी आंखें चमककर बुझ जाती हैं। एक फीकी उदास मुस्कुराहट जवाब देती है - " लेट अस सी। यू मे कम। बट ही विल बी एट हाउस। यू फॉरगाट परहैप्स दैट इट इज़ संडे टुमारो।"

रानीप्रिया और मैं - हम दोनों ही जानते हैं कि उसके पति की उपस्थिति में हम दोनों का परस्पर बात करना तो क्या एक-दूसरे की तरफ नज़र उठाकर देखना तक संभव न होगा। दूसरे दिन वैसा ही हुआ। न मैं रानीप्रिया के यहां जा सका, और न सारे दिन वह मेरे यहां झांक सकी।

न जाने कब मिलना होगा ; या मिलना न भी हो ? जब तक संभव है रानीप्रिया को जी भर निहार लेना चाहता हूं। पत्नी के उदासीन रुख के बावजूद उसे कल रात्रि-भोज के लिये मैं रानीप्रिया को पारिवारिक निमंत्रण देता हूं। पत्नी उसके जाते ही नाराजगी से मुझपर बिगड़ती है - " बड़े आए बुलाने वाले। काम-धाम करने वाला कोई है नहीं और लपककर कल फिर बुला लिया। करेगा कौन सब ? "

यह वह नहीं, उसकी चिढ़ बोल रही थी। मुझे इस वक्त इसकी ईर्ष्या की नहीं, परवाह है तो केवल अपनी अनिन्द्य सुन्दरी प्रिया रानीप्रिया की जिससे मिलन की अंतिम संभावना तक का हर पल मेरे तरसते दिल के लिये स्मृतियों की बेशकीमती धरोहर रहा आना है।

रानीप्रिया :
आप समझते क्यों नहीं ? वह मेरे लिए संभव नहीं है।
१६

अपनी स्वीकारोक्ति के अंत मे उसने कहा था - 'हां अस्तित्व वाली आप की बात बिल्कुल सही है। जो आप ने मुझसे कहा था , अब मै उसे समझ और अनुभव कर रही हूं। अब मुझे सारी चीजें फिर से सोचनी पड़ेगी'

कभी-कभी वह अपेक्षा अचानक घटित होती है, जिसकी उम्मीद हम छोड़ चुके होते है। मैं घर से बहुत दूर हूं। रानीप्रिया की, उसकी बातों की, उसके वादों की याद मुझे रह-रहकर आती है। बस चार दिन बाद उसका जन्मदिन है। उसने मुझसे वादा लिया था कि उस दिन मै उसे जरूर याद करूं। मैने वादा किया था कि उस दिन को मै यादगार बनाउंगा और उसे कुछ खास-यानी उसपर रोज़ लिखी कविताएं और एक खूबसूरत पेन्टिंग भेट करूंगा। इस दिन के आने की बेताबी मे हम दोनो बेचैन थे। अचानक जो घटा वह पीड़ादायक था। अपने मियां के संदेह के दायरे में पड़कर भयभीत वह यूं भी घुटन महसूस कर रही थी- खोया-अस्तित्व और कैद, फिर ऊपर से यह कि मियांजी के मनचाहे तबादले का वह दिन आ गया जिसके लिए वह और मै मनाते थे कि वह कभी न आए। तब भी बार-बार मैने उससे वादा लिया था कि चाहे जैसे वह मुझे फोन का नंबर, अपना पता, हो सके तो इंटरनेट पर किसी जुगाड़ से अपना चिट्ठी-पाती का पता दर्ज कर मुझे ज़रूर भेजे। रानीप्रिया कहां जाकर गुम हो गई मुझे नहीं मालूम।

मुझे याद है। तबादले की ख़बर और रानीप्रिया पर पाबंदियों के बाद भी अपनी प्रिया से मिलने मौका देख मैं उस दिन भी दोपहर घुस पड़ा था। अब उसपर मुसीबत यह थी कि मियां के न रहते मेरे आने-जाने की खबर तक उसे घर मे देनी होती थी। उसे भय था कि उसने वैसा न भी किया तो आस-पड़ोस की जासूसी नजरें जो अनजानों की तरह भी हमारे मिलन को ताकती थी- सारी खबर उसके मियांजी तक पहुचा देंगे। पति को जब पत्नी पर जब यह संदेह हो जाए कि वह किसी और पर दिल रखने लगी है तो ईर्ष्या और रोष के साथ-साथ ही यह भाव भी जागता है कि स्त्री के स्त्रीत्व की जंघाओं के बीच छिपी गांठ पर वह प्रतिशोध में निरन्तर प्रहार करता अपनी क्षमता प्रदर्शित कर यह घोषित करे कि मै नामर्द नही हूं। जितना प्यार चाहिए वह इस तरह मुझसे लेती जाओ। पति को मालूम होता है कि प्यार-मोहब्बत की सड़क अंततः वही पहुंचती है। रानीप्रिया से इस गोपनीय की तसदीक भी मैं कर सकता था। हम एक-दूसरे के दिलों के इतने निकट थे कि वहां सब-कुछ एक-दूसरे का और एक-दूसरे के लिए था। मैने पूछा नहीं लेकिन इधर उसकी रंगत का फीकापन और उदास चेहरा बताता था कि रानीप्रिया के अनचाहे भी उसके पति का प्रेम-प्रदर्शन इसी शैली में बढ़ चला है।

रानीप्रिया के खुद के और उसके पति के स्वभाव मे विपरीत ध्रुवों का अंतर था। इसे कला, साहित्य, संगीत, जीवन का सौन्दर्य लुभाता था और वह था कि अपनी यांत्रिक नौकरी और एकांतिक स्वभाव में कैद रहा आता और पत्नी को कैद कि रखने में विश्वास रखता था। रानीप्रिया ने घर का भेद छिपाते हुए भी मुझसे यह बात कह दी थी। रानीप्रिया की महात्वाकांक्षाए वहां घुट रही थी। मेरा साथ और मेरा प्यार उसे राहत देता था। घर में ज़रूर उसने मुझसे निकटता के मामले मे यह सफाई दी होगी कि वह तो बच्ची के लिए साथ के नाम पर मेरे यहां आती है, अन्यथा तो वह घर में रहना ही पसंद करती है।

रानीप्रिया ने अपने मिया के संदेह और आपत्तियों के साथ ही मेरे अपने घर के विरोध के माहौल को जब से भांपा है, तब से वह कभी-कभार अपने मियांजी को छोटे-मोटे आदान-प्रदान के बहाने दोस्ताना परिचय के लिहाज़ से भेज दिया करती है। मेरे संदेह की पुष्टि तब हुई जब किसी एक दिन उसके मिया ने मुझसे यह कहा कि रानीप्रिया को कहीं आना-जाना पसंद नहीं है। वह तो एकांतिक स्वभाव की इंट्रोवर्ट है। बच्ची के कारण मजबूरी मे वह केवल आप के यहां आती है।

मुझे उसके कथन पर कोई अचरज नहीं हुआ। केवल मन ही मन मुस्कुरा कर मैं रह गया था। राज़ की बात तो केवल रानीप्रिया और मेरे दिलों को मालूम थी । एक-दूसरे के यहां हम-दोनो का बहानों से पहुंचना, संबंधों को शक के दायरे से बाहर रखने पारिवारिक मैत्री का रूप देते सब्जियों, सामानों, जरूरतों का आदान-प्रदान करना, मेरी पत्नी को साथ रखकर चलने की रानीप्रिया की कोशिशें वगैरह सब यही तो थीं। यह सब बावजूद इसके था कि खुले तौर पर रानीप्रिया और मैने न केवल यह सूंघ लिया था कि मोहल्ले की चालाक निगाहें, अड़ोसी-पड़ोसी और मेरे उसके नियामक हमे संदेह से देखते हैं, बल्कि यह भी कि इस समस्या पर हम बाकायदा चिन्तित थे और समाधान की राहें तलाश रहे थ।

मिया की मनाही के बावजूद मेरे सामने पड़ते ही रानीप्रिया की बंदिशें टूट जाती थी। एक दूसरे के दिल बजरिये निगाहों के इस तरह यूं भिड़ पड़ते कि अदृश्य कैमरा यदि उसे दर्शाता तो हम दोनों यानी मेरी रानीप्रिया और मुझे ऐसे हर वक्त तुरंत बिस्तर या फर्श पर गुंथा दिखाता। बहरहाल, उस दिन भी मेरे सामने पड़ते ही रानीप्रिया का ठिठकता मन टूटा। मेरी अधीरता उसमें भी थी। उसे मालूम था कि तबादले की खबर के बाद हमारे मिलने के ये दुर्लभ पल कितने कीमती है। संकटों के बावजूद उन्हे टालकर खुद को मारना ठीक न था।

नज़रें मिलते ही हम दोनों को जाने क्या हो जाता। मुझे झिझकता देख उसने कहा “आइये....... आइये न......... अंदर आ जाइये, बैठिये।“

उस दिन लावा फूट पड़ा था। मेरी सारी चिट्ठियाँ, सारी कविताएं, हृदय के साथ देह के मिलन की पेशकश में लिखी सारी इबारतें उसने इस तरह संजो कर रख ली हैं कि उन्हें वह अपने से छीना जाता नहीं देखना चाहती।

मै चाहता था कि प्यार की उन इबारतो की प्रतियाँ, जिन्हे मूलतः मैं अपनी रानीप्रिया को सौंप दिया कटता था, स्मृतिवत् मेरे पास भी रही आएं। लेकिन नहीं, रानीप्रिया को भय था कि फिर वह उनसे वंचित न कर दी जाए। वह यूं मुस्कुराती कि मेरी चालाकी वह समझती है। उस दिन भी रानीप्रिया ने मेरी याचना पर घास डाल दी।

उदास लेकिन प्यार भरी निगाहों से मुझे ताकती और चिढ़ाती दो रोज पहले की मेरी चिट्ठी की इबारतों कर्र तरफ संकेत करती वह बोली- 'आप ने अपने इस पत्र में भी उस बात यानी सघन समयोग से भरी कामक्रीड़ा की कल्पनाओं और पेशकस का जिक्र किया है। आप समझते क्यों नहीं ? वह मेरे लिए संभव नहीं है।'

वैसा कहते भी प्यास से एक-दूसरे को निहारती हमारी आंखे परस्पर संभोगरत थीं। जाहिर है कि मेरी रानीप्रिया, जिसने मुझसे मांगकर और मियांजी से छिपाती संभोग-आनन्द की सारी कथाएं, मेरे रसीली चिट्ठियां न केवल पढ़ीं बल्कि छीन भी ली थीं, उस कल्पना और चाहत से परे नही थी, जिसके लिए वह इस वक्त बचने

दुहाई वह दे रही थी। दरअसल शादीशुदा औरत का यह स्वभाव ही होता है कि उस एक खास चीज़ से वह अपने को महरूम रखे। मन ही मन मुझे संपूर्णता मे भोगती मेरी रानीप्रिया भी यही कर रही थी।

मैने जवाब दिया था- 'मै अपनी जिद पर बरकरार हूं। रानीप्रिया तुम्हे मै संपूर्णता मे पाना चाहता हूं। तुम अपनी बात कहती रहो मेरी ज़िद मेरे साथ रहने दो, लेकिन सच वही है।

मै कहता गया - **'रानीप्रिया - I will say a thousand times that I love you, I love you, I love you"**

हां, रानीप्रिया से मेरे ताल्लुकात इतने गहरे थे कि हर मुलाकात मे उसके कानों में मेरी जुबां स्पष्टतः ज़िद्द के साथ प्यार के ये ही जुमले बार-बार दोहराती उसे विदा करती थी। तब वह यूं गंभीर हो जाती, विवशता और चाहत के बीच द्वंद में जीतती भोग कामना मन ही मन उसे यूं उदास कर जाती कि वह देखती होती कि जैसे उससे लिपट, उसे धराशा यी कर और खुद उसपर चढ़ा मैं भोग रहा होऊँ । उदासी के बावजूद दरवाजे और दरवाज़े के बाहर राह तक बार-बार मैं रानीप्रिया की ओर पलटकर और वह मेरी आँखों में निहारती तब तक झांकते होते जब-तक मजबूरी की विदाई से जुदा होते हम एक-दूसरे की निगाहों से ओझल न हो जाए।

मै उसपर संभावित विपत्तियों, खतरो को टालने 'अब चलूं' की पेशकश करता रहा, और चिर-वियोग से पूर्व मुझे अधिकाधिक निहार लेने, मिलन को जितना संभव हो कायम रखने वह मुझे" रुकिये, मत जाइये", "बैठिये अभी और", "सोचने दीजिए जिन्हें जो सोचना है", .."रुकिए" कहती बैठाती रही।

एक-दूसरे के यहां बैठे रानीप्रिया और मेरा ऐसा मनुहार यूं रसभरा होता कि उसकी स्मृतियां अब भी दर्द की कसक से मुझे भर जाती हैं । मै जानता हूं कि रानीप्रिया अब जीवन-पर्यन्त जहां रहेगी, जैसी रहेगी इन पलों की स्मृतियाँ उसे भी टीस से भर जाएंगी।

उस दिन रानीप्रिया का मन टूट पड़ा था। उसने इस तथ्य को स्वीकार किया कि हां, वह अब महसूस करती है कि अस्तित्व के कैद और चुराए गए पलों में उसकी आज़ादी के आनंद की मेरी वे बातें बिल्कुल सही थीं, जो मैने रानीप्रिया को उसके द्वंद-ग्रस्त मन को मुक्त करने पहले कही थीं।

रानीप्रिया को मैने पत्र मे भी इस बात का उपालंभ दिया था और उसके ही घर उसकी बनाई हुई इन बातों पर भी कि वह व्यर्थ ही मुझसे कहा करती थी कि उसका मोबाइल उसका अपना है। उसपर कोई पाबंदी नहीं। वह झूठ कहा करती थी कि मेरे उसके यहां जाने, बैठने पर उसके श्रीमान बिल्कुल कुछ नही कहेंगे। यह भी कि अपने मामलों मे वह स्वतंत्र है, उसपर कोई हस्तक्षेप नही है।

अब जब मेरे उसे फोन करने और रानीप्रिया के मुझे फोन करने, साथ बैठने-बतियाने-चाहने का मामला आया और फिर उसपर उसके श्रीमान् का जो रवैया सामने आया, जैसी पाबंदिया लगीं उसने अवश्य रानीप्रिया की आंखे खोल दी है। अपनी स्वीकारोक्ति के अंत मे उसने कहा था -

'हां अस्तित्व वाली आप की बात बिल्कुल सही है। जो आप ने मुझसे कहा था , अब मै उसे समझ और अनुभव कर रही हूं। अब मुझे सारी चीजें फिर से सोचनी पड़ेगी'

रानीप्रिया मुझसे दूर है और न जाने कब तक उसका सोचना जारी रहेगा। उसके विदा होने के पल से ही उसके फोन की मै प्रतीक्षा कर रहा हूं। दरवाजे की हर आहट जैसे मुझे बेचैनी से उसकी छवि को तरसते मन को दौड़ा दिया करती थी, वैसे ही फोन की हर घंटी में मुझे उसकी प्यारी आवाज की खनक की प्रतीक्षा होती है। प्रतीक्षा....... प्रतीक्षा और प्रतीक्षा। मेरा मन चीखता है कि रानीप्रिया तुम कहां हो, कैसी हो**?** क्या तुम मुझे भूल गई हो**?** क्या सचमुच तुम मुझे भूल सकती हो**?**

मुझे प्रतीत होता है कि मैने गलती की है। रानीप्रिया का आग्रह था कि उसके दोबारा लौटने पर मै उसे मिलूं। मेरी ही लापरवाही कि बिछुड़ने वाले से मोह छोड़ने के उपक्रम में बाहर भाग आया। अब नियति यह है कि न तो मैं अपने घर से और न मोहल्ले से कहीं यह पूछ सकता कि रानीप्रिया कब आई, क्या कहा, उसकी नई जगह, नया पता, नया नंबर क्या है। रानीप्रिया तो मिली नहीं मैं उपहास और दया का पात्र हो जाउंगा । मैं समझ सकता हूं कि रानीप्रिया इस वक्त कठोर बंदिशों में है।" जिस रानीप्रिया को अपने आप में आजाद होने

का भरोसा था उसकी हालत अब यूं हो गई है कि मुझसे बात करना तो क्या जुबान पर मेरा नाम लाना भी नामुमकिन है। पुरुष होकर भी जब मेरे सामने वैसे हालात है, तो मेरी रानीप्रिया तो स्त्री-मात्र है। अब भी मंत्र की तरह मेरा मन रट रहा है -" रानीप्रिया मुझसे बात करो, साहस करो, फोन करो प्लीज़, मेरी जान फोन की उस घंटी मे फंसी है जो मुझे तुमसे और तुम्हे मुझसे मिलाती हमारे सूखते प्राणों को हरा करेगी।"

रानीप्रिया :

हाय फोन तुमने कहीं का न छोड़ा

१७

वो चांदनी का बदन खुशबुओं का साया है ।
बहुत अजीज़ हमें है मगर पराया है ॥
- बशीर बद्र

प्यार में फोन सुविधा भी है और असुविधा भी। रानीप्रिया कहने में तो आत्मविश्वास से भरपूर थी। लेकिन थी आखिर पत्नी ही। उसकी शंका सच निकली थी। उसके आग्रह और दिये गये वचन को निभाने उसे मैने उसके जन्मदिन पर प्यार को शब्दों में छिपाकर बधाई का संदेश मोबाइल पर भेज दिया और उतावली में बार-बार उसके यहां के दोनों नंबरों पर संपर्क करने की उद्दंडता भी कर डालीं, लेकिन नतीजे बुरे निकले। उसका आदमी भी आखिर पति ही था। रानीप्रिया ने कभी बताया था कि जब मूड होता है वे अपना मोबाइल छोड़कर उसका मोबाइल ले जाते हैं या कभी-कभी तो दोनों मोबाइल ले जाते है। जब कभी मूड आया वे आए-गए सारे नंबर चेक कर लेते हैं। शायद उस खास दिन उसके पति ने वैसा ही किया था। उस दिन के बाद रानीप्रिया के फोन यदा-कदा ही आए थे। वह इतनी भयभीत हो चली थी कि उसे मेरी पत्नी को फोन करते भी मेरे फोन पर आ जाने से भय होता था। शायद ऐसा हो कि पति के सामने ही उसे मेरे यहां फोन करने की लाचारी रही आई हो। बाद में तो मेरे यहां उसके फोन आने ही बंद हो गए थे। यह वही रानीप्रिया थी जिसने चाहे हम कहीं भी रहें संपर्क और संबंध हमेशा बनाए रखने के वादे किये थे। प्रियहरि अब रानीप्रिया को याद करता बस गालिब की उस आह मे जीता है, जो कहती है-

गजब किया तेरे वादे का ऐतबार किया
तमाम उम्र कयामत का इंतजार किया ।।

वह बार-बार धोखा खाता है और बार-बार याद करता भी भूल जाता है कि पति और पत्नी का रिश्ता दो कैदियों के बीच का रिश्ता होता है। प्रेम वहां आत्मा आभूषण नहीं, उसका कैदी हुआ करता है। दिल की धड़कनों को सुनने और जुबान खोलने की वहां मुमानियत होती है। औरत के लिये यह याद रखना ही नहीं बल्कि इस घोषणा की तख्ती लगाए फिरना भी ज़रूरी होता है कि वह 'सोल्ड आउट मैटीरियल" अर्थात बिक चुकी देह' है। यह कि कामनाओं की वह गोपन-गठरी, जिसे उसने बड़े जतन से जंघाओं की संधि और झाड़ियों की ओट में चिकनी चमड़ी की मजबूत थैली में सहेज रखा था, पहले ही रक्त-रंजित कर समारोह पूर्वक लूटी जा चुकी है। माथे पर उस पहली लूट के रक्त का तिलक लगाए वह दिल में कशिश पैदा करती अपनी ओर थमी हर निगाह को यह मौन संदेश भेजती है कि यहां तो अब उच्छिष्ट ही बचा है तुम जूठन निगलकर क्या करोगे। काश ! तुम तब आते, जब ताजेपन का वह अनखोया ताप तुम्हारी देह को परासती अपनी और तुम्हारी भूख को तृप्त कर सकती।

देह तब भी कामनाओं की पूंजी से खाली तो नहीं हो जाती। वह धीरे-धीरे फिर उनसे भरती जाती है। औरत का जी करता है कि उसमें जो स्वाद है, उसे चखने वाला कोई ऐसा मिले जो उसे लूटने की तमन्ना में खुद को भी उसपर लुटाता चले। ऐसे प्यार में अब क्या मजा था, जहां वह उसका न होकर कानून का हो ? ऐसी कसरत में क्या मजा था जहां उसकी देह को बैंक में जमा अपनी पूंजी की तरह ठेकेदार जब चाहे इस्तेमाल कर ले। उसकी तुलना में वह प्यारा लगता है, जो उस पूंजी की चाहत में उसके पीछे भागे और वह आगे-आगे उसे भगाती चले।

यह एक दूसरी दुनिया थी, जो स्त्री और पुरुष के बाहर की दुनिया के तल में छिपी थी। बस यहीं फोन हरदम आड़े आता था। वनमाला तो उसकी मुसीबतें झेल-झेल यूं तंग आ चुकी थी कि फोन के कारण ही वह हप्तों बात करना और देखना तक बंद कर देती थी। फोन के चक्कर से बचने ही उसने जाहिरा तौर पर प्रियहरि से सारे संबंध तोड़ लिये थे। फोन से संकट पैदा होने पर वह इतनी खफा हो जाती कि बेलिहाज पागल कुतिया की तरह झपटकर काट खाती थी। यह विडंबना ही है कि दिल की राहें हमेशा छिपकर चलने के लिये होती हैं। स्थायी सुरक्षा से वंचित हो जाने और समाज की प्रताड़ना का खौफ विशेषत: औरत पर इतना गहरा होता है कि अपने को एकदम बदलकर अजनबी और दुश्मन हो जाने में उसे पल भर की देर नहीं लगती। रानीप्रिया की प्रियहरि के साथ न जानें कितनी चाहतें थीं, लेकिन तब फोन, हाय फोन, तुमने कहीं का न छोड़ा।

रानीप्रिया :

रात बीती और सपने चले गये

१८

Your gone now, but still somewhere here
It has been too much for me to fear
I think of the times we spent together
All those moments i thought would last forever -
by Bella
at 2009-04-17

सारे संबंध अब मुझे व्यर्थ प्रतीत होते हैं। औरत के लिये प्यार शायद सुविधा के स्वार्थ से अधिक कुछ नहीं होता। यहां स्थायी कुछ भी नहीं है। कोई किसी से प्यार नहीं करता। आदमी प्यार अपने-आप से ही करता है। सामने वाला केवल वह माध्यम होता है, जिसका दुनिवार्य आकर्षण आदमी के अपने अंधे लोभ को ही "प्यार" का लेबल बना सामने वाले पर चस्पा कर देता है। रानीप्रिया की तरह दुनियादार लोग पहले से ही जानते-समझते, खेल की ही तरह खेलते उसका मजा लेते हैं। मेरी तरह के चंद वे ही बेवकूफ कहाते हैं, जो साथ के चंद पलों में उच्चरित शब्दों और वचनों के सम्मोहन को अमोल पूंजी की तरह स्मृतियों की गठरी में बांध चित्त में संजो लेते हैं।

रानीप्रिया का सामान भेजने की जिद में मैं रानीप्रिया-परिवार के राजादि चाकर शुभ-चिन्तकों पर कल मैं बरस पड़ा कि जब पैसे मैंने देने कह दिया है तो वे महीनों से हीला-हवाला और देरी क्यों कर रहे हैं ? अगर उनमें से किसी ने मना कर रखा हो कि विशेषत: मेरी और से कुछ भेजा जाना हो तो टाल देना तब वह मुझे साफ बतला दो। सामान भिजवाने के अपने संकल्प के तहत अनेक व्यवस्थाओं के विकल्प पर विचार करते मैंने यह मालूम करने कहा था कि रेल से किसी के हाथ भिजवाने पर क्या वे स्टेषन पर आकर ले लेंगे ? मेरे ही मोबाइल से जब उस लड़के ने रानीप्रिया के नंबर पर फिर बात करने कुछ पूछने फिर नंबर लगाया तो आश्चर्य कि उसे कह दिया गया कि वे कोई और हैं तथा वह नंबर किसी और जगह का है। मुझे यह समझते देर न लगी कि यह झूठ मोबाइल के जरिये बात करने की मेरे लिए सजा थी

रानीप्रिया के लिये मेरी तरफ से बस अब एक ही संदेश रह गया है - "देख लिया। परीक्षा हो गई। मेरा विश्वास झूठा निकला। तुम बाहर के लोगों को फोन करती हो। संदेश भेजती हो। मेरे घर में भी फोन कर लिया करती हो। पूरी कट्टरता से परहेज बस इतना कि मेरा नाम, मेरा जिक्र, आसपास मेरे होने की दूर तक संभावना न हो। मैने अब इतनी देर बाद यह महसूस किया है कि मेरा विश्वास महज एक जिद थी, जिसे पागलपन में व्रत की तरह मैं निभाये जा रहा था।"

मेरा चित्त वैसा सोचता भी तसल्ली नहीं पाता। चाहे वह रानीप्रिया हो, या वनमाला। क्या स्त्री को प्रेम की वैसी सहूलियत है, जैसी एक पुरुष को हुआ करती है ? शायद नहीं। क्या रानीप्रिया की उस स्वीकारोक्ति में क्या था जब उसने कहा कि -"येस, आई रियेलाइज़ नाउ दैट व़ाट यू सेड टु मी वाज़ करैक्ट।"

यह मेरी उस शिकायत के परिप्रेक्ष्य में था जिसमें मैने उसे इस बात का ताना दिया था कि उसके वादे झूठे थे। जाने के बाद उसने मुझे एक बार भी न मुझे फोन किया और न अपना नंबर दिया। अपने स्वाभिमान और स्वतंत्रता की उसकी बात झूठी थी। मै समझ गया कि वह अपने यहां महज गुलाम रह गई है। विदा होते वक्त का वह व्यथा भरा स्वीकार क्या झूठा रहा होगा जिसमें रानीप्रिया ने कहा था कि " हां, मैने सचमुच आप को दुख दिया है। लेकिन तब भी मेरा हक आप पर बना रहेगा।"

मैं समझ सकता हूं कि सास-ससुर और पति के भयभीत करने वाले अनुशासन के बीच पिछले महीनों में स्कूटर की दुर्घटना से आहत रानीप्रिया के सपनों के लिये उस परिवार में अब कोई जगह नहीं बची है।

मुझसे अलग होती वनमाला के आंसुओं से भरे वे स्वर क्या सचमुच झूठे हो सकते हैं जब हमारे बीच घटी सारी दुर्घटनाओं पर मेरी तरह ही अफसोस जाहिर करती वह कह सही थी कि " क्या करूं ? मैं ही अभागी हूं। मैं किसी को सुख नहीं दे सकती।"

मुझे प्रतीत होता है कि जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह जिन्दगी की तराजू से मापतौल में डंडी मारकर चुरा लिये जा रहे खुशी के महज चंद पल होते हैं, जिन्हें समाज और कानून के भय से हमें सदैव छिपाए रखना होता है। हम सब अपनी-अपनी जगह अपनी-अपनी परिस्थितियों के गुलाम हैं। जिन्दगी में प्रेम के लिये बस उतनी ही जगह है।

रानीप्रिया की सोहबत ने प्रियहरि को सारे अभावों को मिटाकर रख दिया था। प्रियहरि की पीड़ा को महसूस करती रानीप्रिया ने अपने स्पर्श से एकबारगी उसके सारे भटकावों को तिरोहित कर रखा था। लेकिन तब बिजुरी की चमक कितने पलों की होती है ? वे दिन सुहाने सपनों की तरह थे। रात बीती और सपने चले गये। प्रियहरि के जीवन में रानीप्रिया वैसे ही स्वप्न की तरह आई और अपनी चकाचौंध बिखेरती सुबह के उजालों में उसे विस्मित छोड़ चली गई।

बेहोशी की नींद से प्रियहरि अचानक जाग उठता है। यह एक नई दुनिया है जहां बैठा वह रानीप्रिया को याद कर रहा है। नयी जगह , नया माहौल, जहां उसे संभलकर रहना होगा।

प्रसंग : यामिनी-सुनयना

वह यहीं है
मै वहां नहीं हूं
मै वहीं हूं
वह यहां नही है
वह मुझमें है
मै वहां नही हूं
मै उसमें हूं
यहां नहीं वहां नहीं

फिर भी यहां-वहां एक साथ
मुझमें वह उसमे मै एक साथ
प्रेम इसके अलावा और क्या है ?
-प्रेम/अशोक वाजपेयी/उम्मीद का दूसरा नाम/पृ. 47

अपने ठिकाने से बहुत दूर प्रवास पर देहरादून के करीब उसेक कालोनी की सड़क पर मैं भटक रहा हूँ जहां मेरे एक मित्र ने मेरे लिए मौजूं ठिकाना तलाश रखा है। मैं अकेला हूँ निहायत अकेला। इतना कि मेरे होने का भी पता मुझे नहीं रहता। जून की तपती गर्मी के साथ भरी धुप में क्या करूं और क्या न करूं के पशोपेश में बाजार के चक्कर काट अपनी पनाहगाह की और लौट रहा हूँ। रानीप्रिया की याद है कि पल को भी मन थिर नहीं हो पाता। उसके बगैर सब सूना है। उदासी के गहरे अँधेरे के बावजूद अनमनेपन में उसकी और लपकता मन ऐसे चमत्कार की कल्पना करता है जैसे यहीं कहीं इर्द गिर्द भटकती अभी ही मेरे सामने प्रकट होने को हो। उसने वादा किया था कि नए ठिकाने पर पहुंचकर जैसे ही अवसर मिलता है वह मुझसे फोन पर बात करेगी। कब ? कब ? कब ? उसे गये हप्ता गुज़र गया। कोइ अता पता नहीं। कैसी होगी ? क्या कर रही होगी ? इतने दिन हो गये कोई सन्देश नहीं, कोई बात नहीं। क्या कर रही होगी ? निरास मन कहता है कि जो गया सो गया। अब प्रतीक्षा व्यर्थ है।

अचानक फोन की घंटी बजती है। यह घंटी केवल संकेत की है -मिस्ड काल ! रानीप्रिया में बेतरह उलझा मेरा बेचैन मन धड़कता है। कहीं यह घंटी वहीं से तो नहीं ? मै सब कुछ भूल जाता हूं। होश नहीं कि यह मेरा अपना ही मोबाइल फोन है और जो नाम इस रिंग-काल मे झांक रहा है, वह मेरा ही दर्ज किया होगा। उम्मीद की इस आशंका से कि काश यह रानीप्रिया हो, मैं छूटे हुए काल पर नंबर दबाता हूं। नहीं यह रानीप्रिया नही है। कोई एक और आवाज़। ऐसी आवाज़ जिसने मुझसे बातों मे हमेशा झिझक दिखाई और प्रतीक्षारत छोड़ दिया। आवाज़ सुनकर मेरी खोई चेतना जागती है। **उत्सुकता से आँखें फ़ौरन मोबाइल पर दौड़ती हैं। मोबाइल बताता है कि यह सुनयना की काल थी जिसकी संभावना मुझे दूर तक नहीं थी।** दुबली-पतली, खूबसूरत, अल्हड़ यौवन के रंग से भरी, शहर में पढ़ने वाली मक्खन सी चिकनी देह वाली देहात की गोरी तन्वंगी असीमारानी, जिससे बातें करता देख यामिनी ने मुझसे अपनी मान-भरी शिकायत की थी - "हां डियर, ये तो बताइये कि असीमा आप के पास आजकल क्यों आती है। आप की खूब पट रही है आजकल उससे। अब तो आप मुझे भूल गए हैं।"

फोन पर असीमा की अप्रत्याशित आवाज मुझे तसल्ली देती है। उसकी आवाज़ में असहायता है। घर में दादी और फिर मां की बीमारी मे सुश्रूषा से वह थकी और उदास है। यह आवाज़ जैसे मुझसे अपनी हालत कहती सहारा मांग रही है। असीमा को मै निहायत प्यार से समझाता हूं कि मै उसकी हरचंद सहायता करूंगा, कि वह मुझे पहली नज़र से ही बेहद प्यारी लगी है। मै असीमा से कहता हूं कि सुबह, शाम, दिन-रात चाहे जब मुझे अपना समझे और फोन करे। मुझे उसके फोन की प्रतीक्षा रहेगी।

मेरी आँखों में अतीत के वे दिन तैर रहे थे। पहले -पहले जब मै उस संस्थान मे पहुंचा तो आत्मविश्वास से भरी चाल, व्यक्तित्व, ज्ञान और सब से ऊपर गहरी पैठती और अंदर तक झांक कर खींच लेने वाली मेरी आँखों ने सभी को एकबारगी खींचा। पुरुष की जात के लिए पुरुष का महत्व व्यक्तित्व के प्रभाव तक सीमित हुआ करता है, लेकिन स्त्री के लिए वह अतिरिक्त आकर्षण का कारण होता है। अनेक निगाहें मुझसे टकराई थी, लेकिन यामिनी की आँखें टकराकर मुझसे उलझती चली गई थीं। उसके मन में मेरे सामीप्य की लालसा थी और मैने उस लालसा को यूं हवा दी कि वह खिंचती करीब आ गई। हालांकि उसका विषय अलग था मुझसे पूछने, परामर्श लेने के बहाने वह मिलती रही थी। जाहिर है कि ऐसे मौकों की तलाश हममें जाग चली जिनमें हम दो रहकर अद्‌वैतता को प्राप्त करें। वह कहती डर लगता है कि औरों की उपेक्षा कर आप के

व्याख्यान में बैठूंगी या करीब दिखाई पडूंगी तो ढूंढने शिक्षकों और साथी छात्रों की निगाहों मे आ जाऊंगी। फिर भी संकोच छोड़ वह कुछेक व्याख्यानों के दौरान मेरी कक्षा में बैठती रही थी लोकप्रियता और व्यक्तित्व के मामले मे जाहिर है मेरी छवि और कद्र अनूठी थी, ऐसी कि सब को खींचती, चाहे फिर विभाग मे किसी का विषय कुछ भी हो। जाहिर है कि यामिनी इसी तरह खिंची चली आई थी।

मेरे अपने छात्रों की अनुपस्थिति के दौरान मौका निकाल एक दिन वह अपनी कापियां थामे साथ हो ली थी। मैने उसे ठीक अपने करीब बिठा लिया। पढाई की ओट में हम प्यार मुहब्बत की चासनी मे घुल-मिलकर खुल चले थे। हम दोनो की अंगुलियां टेबिल पर ही उलझने लगी थीं। धीरे-धीरे यामिनी की जंघाओं पर मेरे हाथ चहलकदमी करने लगे थे। मैं ज्यूं-ज्यूं आगे बढ़ रहा था यामिनी पिघलती आहें भरने लगी थी। क्वांरे अनुभव में बेताबी ज्यादा होती है यह जाहिर होने लगा था।

अचानक मेरी एक दीगर छात्रा ने प्रवेश किया। वह मेरी कम मुरीद न थी। चश्मे वाली यह श्यामा गुड़िया भी उनमें से एक थी, जिनकी आंखें आमंत्रित करती मेरी आंखों में झांका करती थीं। वह दिन उसके लिये भी मुफीद था। कुछ देर उसने प्रतीक्षा की कि यामिनी को रुखसत कर कब मैं उसकी ओर मुखातिब हो रहा हूं, लेकिन हम दोनों का मूड देख हया में पड़ी वह श्यामा मेरे रोकने के बावजूद आंखें झुकाए यह कहती चली गई थी कि -" मैं बाद में आऊँगी "।

घंटे भर की रसभरी छेड़छाड़ में यामिनी और मैं साथ-साथ पिघलते काम-साधना की मुद्रा में पहुंचे हुए थे, लेकिन आह और अफसोस के साथ वहीं थमा रहना हमारी मजबूरी थी। गलियारे में आखिरी के कमरे अब भी सूने ही थे, लेकिन दोपहर की कक्षाओं का समय करीब आ चला था। आज का छूटा अध्याय जल्द ही मौका निकाल कहीं और फुरसत से पूरा करने की बेताब कामना के साथ एक-दूसरे का हाथ थामे हम उठे। चलते-चलते यामिनी को मैने दरवाजे पर किवाड़ के पल्ले के पीछे छिपे कोने में झटके से यूं खींचा कि लरजती देह पर उभरती उसकी पुष्ट छातियां मेरी छातियों से भिड़ चलीं। मेरे तपते ओठ उसके रसीले होठों से भिड़ चले थे। कसावट में लिपटती बलखाती छातियों के साथ बेकाबू सांसें हांफ रही थीं और होठ चिड़ियों की रति-गति की मुद्रा में पल-पल अलग होते एक-दूसरे पर फिर-फिर टूटे पड़ रहे थे। यामिनी की बलखाती देह आपे से बाहर हो लहराती-झुकती-धराशायी होती दीवार से चिपकी पड़ रही थी। हम दोनो लगभग बेहोशी के आलम में पहुंच चले थे।

" हाय, मुझसे सहा नहीं जा रहा है। मैं मरी जा रही हूं। अब छोड़ दो डियर " कहती यामिनी की नज़र तभी अचानक उठी थी। तीसरी मंजिल के इस आखिरी कमरे की सामने खुली खिड़की से झांकता हास्टल और कला-भवन के बीच का वह विस्तार यामिनी को साफ नज़र आ रहा था, जिसपर उस उंचाई से वह आवा-जाही करते लड़कों और लड़कियों के छोटे-छोटे समूहों को साफ देख सकती थी।

" सामने खिड़की खुली है कोई देख लेगा। यहां दरवाजे पर कभी भी कोई आ सकता है, अब छोड़ दीजिये। दोपहर की कक्षाओं के लोग आते होंगे । किसी ने देख लिया तो मुसीबत हो जाएगी। फिर कभी मौका निकालूंगी " -कहती यामिनी ने अपने को अलग करते संभाला। हम दोनों सभ्यता में लौटकर बरामदों में निकल चले थे।

यामिनी का ठिकाना लड़कियों का हॉस्टल था। वहां गज़ब की पाबंदियाँ थीं। प्रायः शाम या रात एक-दूसरे से मोबाइल फोन पर हमारी बातें हो जाती। मै प्रायः पूछता कि वहां कोई और तो नहीं। वह आश्वस्त कहती कि उसके साथ विभाग की दूसरी साथी रहती है। कोई किसी का फोन नहीं उठाता और प्रायः सभी के फोन आते जाते रहते हैं। फिर वह खुद भी यह ध्यान रखती है कि जब कोई न रहे तब फोन करे।

मैने पूछा था कि वह दूसरी कौन है, कैसी है ? उसने बताया कि आपने उसे देखा तो होगा। है एक दुबली-पतली, गांव की वह गोरी लड़की। यामिनी बताती कि वह दूसरी भी कम नहीं है। उसके भी फोन आते है और वह खुद भी किया करती है।

यह कन्याओं का डेरा है डियर। यहीं तो आजादी मिलती है। घर में कहां वैसा मिलता है ? घर में तो बस एक ही चिन्ता होती है कि लड़की की शादी कैसे होगी ? यहां तो गोरी, काली, सुंदर, असुन्दर सब के चाहने

वाले मिल ही जाते हैं। शादी का मामला आया कि लड़के फिर छांट-बीन में लगते अच्छी से अच्छी को रिजेक्ट कर देते हैं। कोई भूले-भटके पसंद आ भी गई तो लेन-देन और घर-बार की जांच-परख होने लगती है। यहां इतनी तो गुंजाइश है कि चलती-फिरती मौज-मस्ती भी हो जाती है और कोई दीवाना पल्लू में बंध गया तो शादी की गुजाइश भी लड़की खुद निकाल लेती है।"

मेरी आंखें आश्चर्य से फैली देख यामिनी आगे कहती चली जाती है - "यहां तो तो बहुतेरी ऐसी हैं, जो पढ़ाई के साथ या उसके बहाने मौज-मस्ती का मौका निकालने ही यहां आती हैं। सब के दिल मोबाइल हैं और सब के पास अपने-अपने मोबाइल यार हैं। आप को विश्वास नहीं होता न ? तो सुनिये। कुछ तो ऐसी हैं जो अपने गांव-शहर से ही यार बांधकर ले आती हैं। कुछ ऐसी हैं, जिन्होंने यहीं अपनी जोड़ तलाश ली है और कुछ - -।"

यामिनी ठिठकती है - "बताऊँ ? कि न बताऊँ। ?"

मैं उसे कुरेदता हूं - " यही तो अच्छा नहीं लगता। अचानक पराई हो जाती हो।"

" तो सुनिये, कुछ ऐसी भी हैं, जो दुखिताएं होती है। एक तो घर की दीन-दशा से बेजार और फिर घरेलू किचकिच से उकताई हुई ऐसीं, जिनके पल्लुओं को अब तक किसी को बांधने का मौका ही नहीं मिला या उनके पल्लू ही ऐसे रहे कि किसी ने बंधने में दिलचस्पी ही नहीं दिखाई। या फिर ऐसा भी कि लड़की खुद अपने पल्लू को किसी से बंधने-बंधाने के चक्कर में आजादी के मजे को बरबाद नहीं करना चाहती है। ये वो हैं जो स्वाद बदलती मौज भी कर लेती हैं और पल्लू में रुपया, पैसा, उपहार लपेटकर आजादी का उत्सव भी मना लेती हैं।"

" लेकिन मुझे तो यहां ज्यादातर गंभीर और चुप्पा नज़र आती हैं। ऐसी संकोचशीला कि उनसे बात तक करने में डर लगता है।" - मैंने कहा।

" अरे छोड़िये कहां लगाई आप ने। आप जानते नहीं। बाहर से जो जितनी मौन और गंभीर दिखाई पड़ती हैं, अंदर से उतनी ही गहरी छिपी होती हैं। उनकी थाह आप नहीं पा सकते। आप भी तो बाहर से वैसे नज़र आते हो, लेकिन क्या कम हरामी हो ?"- यामिनी खिलखिला उठती है।

मैं सोचता हूं। हां, वैसा हो सकता है। मेरी कल्पना में उन एक की छबि तैर आती है जो किन्हीं परिस्थितियों में मुझसे टकरा चली थीं।

सुपुष्ट मध्यायु काया की वह खूबसूरत मालकिन

I don't have a moral dilemma with it. We live in a capitalist society .Why shouldn"t I be allowed to capitalize on my virginity? I understand some people may condemn me. But I think this is empowering. I am using what I have to better myself. – Natalie Dylan (pseudo name) , a US girl says auctioning her virginity on radio show to raise college fee.

******

In a survey that asked 130 students whether they knew any frinds involved in the sex industry, one in10 said they knew students who had stripped, or worked at massage parlours and escort agencies to support themselves. – News in Times of India, Mumbai, September 12, 2008

वेशभूषा, भाषा, और वर्ग की संस्कृति में बदलाव उन आशयों को चमकाकर सभ्यता और संस्कृति का जामा पहना देता है, जिन्हें अन्यथा तिरस्करणीय और वर्ज्य समझा जाता है। भद्र वेशभूषा में लिपटीं सुपुष्ट अस्थियों से कड़क कद्दावर चिकनी काया की उन गौरवर्णी आकर्षक मध्यायु महिला से मेरा साबका विचित्र था।

उनके लड़कों का कालेज में प्रवेश स्वीकृत हो चुका था। उन्हें दाखिले के लिये रुपयों की कमी पड़ रही थी। सब को छोड़ वे विश्वास से यूं मेरे पास बैठ जाती हैं, जैसे मेरी कोई पूर्व-परिचित आत्मीया हों। मुझसे वे निजी बातचीत करना चाहती हैं और मेरे पास आने वालों को कुछ देर बाद आने कहतीं ऐसे अधिकार से रोक देती हैं मानों वर्षों से उनकी मुझसे यारी हो । मुझसे रुपयों का जुगाड़ करने के लिए प्यार के अधिकार से वे तब तक मनाती बैठी रहती हैं, जब तक मैं वैसा कर नहीं देता। रुपये लौटाने की बात पर वे निश्चिन्त कहती हैं

-“ सब हो जाएगा न। यहां तो आप से बात भी ठीक ढंग से नहीं हो पा रही है। अपन और कहीं मिलते हैं न ! कहिये कहां मिलूं ? अगर आप यहां अकेले रहते हों तो घर पर मिलती हूं। वहां फुरसत से बातें होंगी।“

मैने इस दौरान उनसे जान लिया है कि उनका पति कथित रूप से कहीं कारखाने में है और उनकी कमाई कम है। उनकी परवाह न उन्हें है और न वे मुझे करने देना चाहती हैं। गौर से मुझे निहारती वे कहती हैं -“ आप हैं तो अच्छे, लेकिन सोचती हूं कि आप को खुश कैसे कर पाऊंगी। ज़रा सा फर्क है। जैसे मैं हूँ उस तरह आप की हड्डियां भी थोड़ी और मजबूत होतीं न, तो मजा आ जाता।“

मैं देखता हूं कि सचमुच उन शौकीन प्रौढा की काया में उनके हौसले जैसा ही दम है और वे प्रेममय कोमल हृदय की क्रीड़ा की जगह हड्डियों की कड़कड़ाहट के साथ शुद्धतः दैहिक-संग्राम की अभिलाषिणी हैं। जब मै उन्हें बताता हूं कि मैं अकेला नही हूँ बल्कि किसी और जगह सह-परिवार रहता हूं और वहां मिल पाना संभव न होगा, तो वे लंबी सांस भरतीं अफसोस जताती हैं। मुझपर उन्हें तरस आता है। यह कहती वे उठती हैं कि ‘खैर फिर कभी ! मैं तो आप से मिलती ही रहूंगी। जब मूड हो तब मुझसे कहियेगा।“

बहुत दिनों बाद उन्हें फिर तब देखा जब महज जी बहलाने की तबीयत से टिकिट कटाए शो शुरू होने की प्रतीक्षा में किसी थियेटर के सूने लाउंज में मैं अकेला बैठा था। वे आईं। इधर-उधर कुछ देखा और मेरे करीब आकर बैठ गईं। तब वह मुझे शायद पहचान न पाई थीं, या न पहचानने का बहाना था।

“ आप ने ही फोन किया था न !” . उन्होंने पूछा।

“ आज तो नहीं किया है“- मैने कहा।

“ऊंह। चलिये कोई बात नहीं। ऐसा याद आता है कि हम लोग पहले मिल चुके हैं।“-उन्होंने कहा।
पल भर हमारे बीच चुप्पी रही। उन्ही ने मौन तोड़ा -

“ फिल्म देखने का मूड है न ?” .

“ हां, सोचा बोरियत भगा लूं। आप भी तो फिल्म देखने आई हैं न !”मैने पूछ लिया।

“चलिये मैं भी देख लूंगी आप के साथ। अगर आप चाहें तो। कैसी है ये फिल्म ? या कहीं और चलें ?” - वे बोलीं।

मुझे इस तरह की औरतें कभी पसंद न रहीं, जिनसे मेरा दिली रिश्ता न हो और जिनमें हया की नजाकत न हो। मैने बड़े सपाट ढंग से कहा -“मै तो यही फिल्म देखूंगा। मैने साधारण दर्जे की टिकिट कटाई है। आप साथ बैठना पसंद करेंगी ?”

मिनट भर मेरा रुख भांपकर वह स्त्री उठ खड़ी हुई।

“रहने दीजिये। मैं चलती हूं”-.कहती वे उठ खड़ी हुईं। चलती हुई अपने सोच में होठों पर अंगुलियां टुनकाती वे बुदबुदा रही थीं -“लगता है मैं गलत जगह पर आ गई....किसने किया होगा फोन...?”

तीसरी बार मैने उनकी झलक तब पाई जब कार में किसी मित्र के साथ शान से बैठा मै किसी चौराहे से गुजर रहा था। चौराहे की चहल-पहल के बीच मंदगति कार के भीतर झांकती उनकी विस्मित निगाहों ने भांपकर मुझसे पहचान का रुख दिखाया था।

अंतिम बार वह तब मुझे मिली जब नगर के एक छोर पर अकादमिक माहौल के इलाके में किसी संस्थान से निकल मैं सड़क के उस किनारे से गुजर रहा था, जहां वह आटो या बस की प्रतीक्षा में खड़ी थी।

" अरे आप ! यहां कहां **?"**

पुरानी मुलाकातों की यादें बातों में ताजा हुईं। इस बार उन्हें सब याद आ चला था।
मुझे अच्छी तरह निहारती वे बोलीं - **"** बहुत दिनों बाद आप को देखा। अब तो खासे तंदुरुस्त लग रहे हैं, खूब जंच रहे हैं आप ! जी करता है कहीं बैठें बात करें। क्या बताऊँ। **?** बहुत ख्वाहिश थी कि आप की सेवा करूं मैं, लेकिन मौका ही न मिल सका। जी करता है कि कहीं चलूं आप के साथ लेकिन आज यहां मुझे देर हो चली है। घर लौटने का वक्त हो चला है। आप से फुरसत में मिलने की मेरी तमन्ना अधूरी ही रही आती है। फिर मौका निकालते हैं कभी।““

हालांकि ऐसे चलते संबंधों में कोई रोमांस नहीं होता, लेकिन तब भी उन स्वयं-दूती का आमंत्रण मुझे विपरीत की चुनौती को स्वीकारते उनसे टकराने को ललचा रहा है। जो होगा वह दो सहमत कायाओं से गुजरता मजेदार नया अनुभव होगा, चाहे वह जैसा भी हो। वे तो पहले ही समुत्सुक थीं और अब मैं भी मूड में हूं। इस बार कोशिश होगी कि न उन्हें मैं छोड़ूं और न उनसे मैं छूट पाऊं।

अपनी युवा संगिनियों की चिन्ताओं, आकांक्षाओं, और समस्याओं के विषय में यामिनी की बातों से मेरा चित्त उलझता कहीं और पहुंच गया था। कानों से मैं उसे सुन रहा था। आंखें उसके चेहरे पर टिकी थीं, लेकिन मन कुछ और सोच रहा था। यह विचित्र चाहे लगता हो लेकिन सच है कि औरत अपने को पुरुष से बांधकर मुक्त होना चाहती है। उधर पुरुषहोता है कि किसी एक औरत से बंधने के बाद मुक्ति की कामना में छटपटाता होता है। जीवन-स्थितियां भी बड़ी विचित्र होती है।दोनों ध्रुवों पर लक्ष्य एक, पर उसे साधने के तरीके अलग।

किशोरावस्था को पार करती लड़की की चिन्ताओं के शीर्ष पर हमेशा यह एक चिन्ता समाई होती है कि कब शादी कर कोई उसे अपने से बांध ले तो वह मुक्त हो जाए। बंधन का अभाव उसे इस कदर सालता होता है कि विवाह के बाद भी वह तब तक आश्वस्त नहीं हो पाती जब तक पति, परिवार और घर पर उसका कब्जा न हो जाए। संयुक्त परिवार की बहू बनने की चाहत किसी औरत मे अमूमन नहीं पाई जाती क्यों कि वहां अपनी इच्छा के विपरीत उसपर खुद बंधे रहने के हालात होते हैं। यह बात अलग है कि जहां तक संभव हो, विपरीत में भी अपनी चाहत को अन्यथा पूरा करने के अवसरों की तलाश करती प्राय: वह किसी न किसी से बंधने के बहाने उसे बांधकर प्रकारान्तर से राहत पा लेती है। जहां वैसा कोई भी जुगाड़ संभव नहीं होता वहां औरत की सारी हिकमतें फिर संयुक्त से नाता तुड़वा कर पति को एकल ढांचे की ओर हंकाल ले चलने की होती हैं।

संयुक्त की जगह एकल परिवार उसके लिये सुविधाप्रद होता है। स्वभाव और वृत्तियां रचनात्मक हुईं तो स्त्री का बांधने का हुनर अपने आप ही घर को गुलाम बना लेता है। वैसा न हुआ तो त्रिया का हठ और अहं सारा कुछ तोड़ता हुआ आधिपत्य जमाने की हिकमतें करता है। तुलसीदास का भला ऐसा क्या अनुभव रहा कि उन्होने यह लिख दिया कि -

फूलो फूलो फिरत हैं आज हमारो ब्याव
तुलसी गाय बजाय के दियो काठ में पांव ।।

कबीरदास को औरत माया और महाठगिनी क्यों लगी होंगी और गौतम भला किस अनुभव को लेकर यशोधरा से भाग खड़े हुए थे **?**

पलक झपकते ही मैं वहां फिर आ खड़ा होता हूं जहां यामिनी मेरे साथ है। यामिनी को मैं याद दिलाता हूं।

" अपन कहां से कहां चले गये। तुम अपनी उस दूसरी सहेली की बात कह रही थीं।

यामिनी आश्चर्य करती -"आप कैसे नही जानते उसे, वह तो आपको जानती है।"

'जिज्ञासा से कि इन अल्हड़ नवयौवनाओं में भला मेरी छवि कैसी होगी मै यामिनी को और कुरेदता। वह बताती -"वाह सब आप को जानती हैं और आप की बातें करती है"

'क्यों, भला मुझमें ऐसा क्या है**?**

'कैसे नही है ? बड़े-बड़े आपको मानते हैं। फिर आप में जो बात है वह अलग है'

'क्या कहती है तुम्हारी सहेलियां मेरे बारे में'

'सब तारीफ करती हैं। कहती है आप की आंखों में कुछ है'

'तुम्हारी हास्टल की सहेली **?** उसने तो कुछ नही कहा'

'कौन **?** असीमा **?** वो भी कह रही थी कि मैने देखा कि उनकी आँखों में कुछ है। उनका देखना अचानक मन को खींचता है।'

यामिनी मुझसे पूछती है - 'आज मै साड़ी पहनकर गई थी। उसमें आप को मै कैसी लगती थी' या 'आज आप किससे बातें कर रहे थे ?' या 'मै मौका निकालना चाहती हूं, लेकिन यहां की पाबंदियां मारे डालती है, वगैरह-वगैरह।

वह मेरे गिरफ्त में थी। सहभोग की बातें इशारों मे होती। वह कहती -'रुक जाइये न, अभी आप ने आदत डाल दी तो पढ़ाई मे मेरा मन न लगेगा। परीक्षा हो जाने दीजिए फिर अपने वह दिन मौज से मनाएंगे'

धीरे-धीरे मैने उसे इतना पिघलाया कि अक्सर कक्षाओं के बाद दोपहर मे चलते वक्त 'एक-दो घंटे की फुरसत है। आज आप के साथ जा सकती हूं' कहती मेरे साथ जाने को मचल जाती। यह वक्त रानीप्रिया के लिए प्रायः तयशुदा था। ज्ञान-विज्ञान की कुछ चीजें सीखने-सिखाने के बहाने हमने नियमित बैठकें तय कर रखी थीं। इसलिए यामिनी को मै टाल जाता। धीरे-धीरे हुआ यह कि मेरी मुरीद एक नहीं, अनेक हो चली थीं। यामिनी अब पृष्ठभूमि मे जा रही थी।

वह शिकायत करती -'क्या बात है 'डियर, आजकल तो आप के जलवे है। आप के पास और लड़कियां भी खूब उठने-बैठने लगी हैं। देर-देर तक आप उनके साथ बैठे रहते है'

वह बताती - "मैने चाहा कि आप से मिलूं लेकिन औरों को बैठा देख मै नहीं आती"

एक बारगी , एक साथ ही अनेक से दोस्ती खतरनाक होती है। स्त्री-स्वभाव मे ईर्ष्या बड़ी प्रबल होती है। ऐसे में मेरी बदलती पसन्द देख हर-एक को हर-एक से ईर्ष्या होती थी। यामिनी भला इसका अपवाद क्यों होती। इधर लड़कों मे अलग एक किस्म की मायूसी-भरी-ईर्ष्या देखने मे आती। अक्सर वे दाल-भात मे मूसलचंद की तरह बीच मे आ टपकते। या तो वे जबरदस्ती मुझसे-हमसे चिपककर बतियाते बैठे होते या तरजीह न दिये जाने पर उदास चेहरा लिए खिसक लेते थे।

असीमा की नजरें मेरी नज़रों से टकराती तो थीं, लेकिन उसे पहल न करता देख मै भी तटस्थ हो आता था। धीरे-धीरे सारा संकोच तोड़ वह भी खिंचती चली आई थी। व्यक्तिगत बातों का सिलसिला उसमे ठीक से अभी चला न था तब भी चाहतें थीं कि टकरा रही थीं। वहां की सुकन्याओं में दरअसल असीमा ही मुझे सब से अधिक भाती थी। कमनीय तन्वंगी असीमा के रूप और यौवन दोनो में ताजगी थी। खूबसूरती से तराशे नैन-नक्शों वाली असीमा की गुराई दीप्ति से भरी थी। बिन्दास, चंचल और किन्चित स्थूल यामिनी की तुलना मे असीमा का रूप अपनी नैसर्गिक सहजता और अल्हड़पन मे चुंबकीय आकर्षण से भरा था। संकोच भरे स्वभाव के बावजूद असीमा मुझसे मिलने, घंटों साथ मे मार्गदर्शन पाने अब फोन नम्बर देने-लेने तक खिंची चली आई थी।

यामिनी थी कि उसे यह सब जलाता था। मैं था कि काम की जगह की कामिनियों को वहीं छोड़ अपनी रानीप्रिया मे डूब जाता था। मै आश्वस्त होना चाहता था कि असीमा की निगाहों मे अपने को मैं बसा पाने मे सफल हुआ था या नहीं?

रानीप्रिया कैद है। उसका फोन अब असंभव कल्पना है। असीमा के असंभव ने अब संभावना पैदा कर दी है। संभावना न होती तो यह कैसे होता कि महीने बाद अचानक उस असीमा ने मुझे आत्मीयता से याद किया जिसके फोन की प्रतीक्षा करता मै मायूस होता रहा।

प्रियहरि और नए दफ्तर के खिलाड़ी

पुरानी जगह से नए माहौल में आए प्रियहरि ने उसी व्यापार का घनत्व यहां भी पाया था जिसमें संलिप्तता का दोषी ठहराया जाकर उसे यहां बुला लिया गया था। उसने यह महसूस कर लिया था कि मन से उपजी कामना उस देह पर ही जाकर राहत पाती है जो उसे धारण किये होती है। यह आप का विकल्प है कि चाहे कामना की डाल पर जन्मों झूलते आंसू बहाते वहां पहुंचें या हंसते-गाते उस मुकाम पर जाएं जो आप की तरह ही आनंद पाने और देने की प्रतीक्षा में स्वागतोत्सुक हो। इस बार सर्तकता से चादर का ध्यान रखते हुए उसने दिल पर दिमाग को तवज्जुह देते वहां चमकती हर उस ललना का साहचर्य भोगने का

निश्चयकिया, जिससे उसके तार जुड़ सकते थे। इस बार वह वहां और वहीं तक आगे बढ़ना चाहता था, जहां परमानंद की उसकी इच्छित कामना का साध्य पूरा हो सके। अब तक वह अच्छी तरह समझ चुका था कि जन्मांतरो की निष्ठा वाला अमर प्रेम भी अंतत: वहीं जाकर धंसना चाहता है जहां कदली स्तम्भों के बीच पुष्पित त्रिकोण की लाली भरी फुनगी, करील की कंटीली झाड़ियों से झांकती रक्ताभ वन्य कलिका, उभरते पठारों की दरारों से अंतर्भूत सुलगती चिंगारी की लाल दहक सम्मोहक प्रवेशातुर की बाट जोहती प्रतीक्षातुर रहा करती है।

पहले-पहल प्रियहरि अपनी स्थिति के कारण अनिश्चय और भय का शिकार रहा आया था, लेकिन समय गुजरने के साथ ज्यों-ज्यों वह अपनी योग्यता और हुनर से बडे साहब का विश्वासपात्र और करीबी होता गया उसका सारा भय जाता रहा था। न केवल उसका आत्मविश्वास अब लौट आया था, अपितु नए परिदृश्य में नई ललनाओं से क्रीड़ा की उस नई रीति के प्रयोग की संभावनाएं तलाशता उसका मन कुलबुला रहा था जिसके बारे में वह सोचता रहा था । यह निराशाक्त देहराग की दिशा थी। शायद ऐसी दिशामें प्रवृत्त प्रियहरि का अहं इसके जरिये उस अपमान और वितृष्ण विषाद का प्रतिकार भी षोध रहा था जो उसे अपनी प्रेमिका से केवल इसलिये पराजित किये था कि उसका मादा होना ही विशिष्ट था। वह इस कदर लापरवाह हो जाने उद्यत था कि हार, जीत, या अन्यथा कुछ भी हो, निहायत बेषर्मी और धृष्ठता से स्वीकार कर सकता था। उसकी निगाह में उस मर्ज़ या पागलपन का मरीज़ अगर वह था भी तो अकेला न था। पुरानी और नई - दोनो ही जगहों पर उसने पाया था कि कम-ओ-बेश, प्रकट या परोक्ष ज्यादातर लोग भीड़ में शामिल थे। बड़े-बड़े नेता, मंत्री और अफसर उस एक चाहत के ही मारे थे, जो मर्दों के उतावलेपन और स्त्रियों की अंधेरी कामना में पलती हुआ करती है।

अपने अंदर प्रियहरि जिसे भटकते अभावों की पीड़ा में देख रहा था, उसे भटकते अभावों ने इस जगह खेल-भावना से स्वीकार कर रखा था। वे बिन्दास थे। अंदर के तनाव को झटककर उन्होंने ऐसी क्रीड़ा बना ली है जिसमें वे भरपूर आनन्द ले सकते हैं। वे मित्र मुझे अपना ग़म भुलाकर अपने समूह में ढल जाने आमंत्रित करते हैं। एक यह है जो मुझे मोबाइल पर उस विदेशी सुन्दरी की तस्वीर दिखा रहा है जो चिकनी जंघाओं की संधियों में आड़े नहीं बल्कि खड़े ओठों के बीच सिगरेट की डंडी फंसाए पहले तो एक लंबा कश खींचती है और फिर बाद में फुर्र से उसका धुआं उन ओठों की दरार से आप के दिमाग में फेंकती अपना सारा नशा आप में भर जती है। दूसरा वह छैला है, जिसके पास चाबी के छल्ले का जादूभरा अद्भुत नमूना है। इषारे से वह उसे हिलाता है और उसके वैसा करते ही कलात्मक युग्मों के सिलिन्डर और पिस्टन हर हरकत के साथ टक्कर मारते एक-दूसरे में समाने और बाहर आने का लयबद्ध दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

करीबियत के बाद किसी एक दिन गहराती सांझ की बेला में किसी प्रसंग के आने पर बड़े साहब ने प्रियहरि से कहा था -"हुंह, मैं जानता हूँ। सारी औरतें ऐसी ही होती हैं।वह क्या समझती है **?** मैं एक आई-ए-एस हूं। अभी चाहूं तो दर्जनों औरतें लाइन लगाकर खड़ी हो जाएंगी।"

वनमाला के साथ इश्क के चक्कर में पिछले वर्षों में वह इतना अंतस्थ और गंभीर हो चला था कि खिलाड़ीपन का अपना मनमौजी स्वभाव वह भूल ही बैठा था। अब अपने ही अतीत के उन पृष्ठों पर गौर करने पर जिन्हें वह इन वर्षों में भूल बैठा था उसने पाया था कि संकोच और शराफत में काम के मकसद को इतना लंबा खींचना कि वह खुद को और सामने वाले को भी उबाता ठंडा कर जाए किसी काम का नहीं होता। शायद खुद औरत भी वैसा नही चाहती। औरत अपेक्षा करती है कि पुरुष खुद पहल करे, उसके अन्दर के छिपे को पढ़े और उसे उस मुकाम पर ले जाए जहां उसके साथ जाने की उसकी अपनी भी तमन्ना होती है। उसे अब अपनी गलतियों का अहसास हो रहा था जब बहुत देर हो चुकी थी। अक्सर ऐसे अवसर आए जब वनमाला को वह हफ्तों पिघलाता और उसकी झिड़कियां सुन-सुनकर आखिर यूं विमुख हो बैठता कि वनमाला से बात करने तक से वह खुद को दरकिनार कर जाता था। तब प्रियहरि इतना रूठ जाता कि अब तक पिघल आई वनमाला के मनाने पर तनकर वह उसे अपमानित करता भगा देता था। वनमाला के मूड पर घड़ों पानी फेरकर उसे ठंडा कर चुकने के देर बाद प्रियहरि को होश आता और फिर वह उसी पुरानी कसरत में लग जाता। वर्षों के साथ के

बावजूद इसीलिये नक्षत्रों के योग से मिल गए दो-तीन अवसरों पर ही वनमाला और प्रियहरि की कुन्डली में सघन योगानन्द के मौके आ सके थे। दोनों के बीच संबंधों का शेष सारा समय या तो प्यार में रूठने-मनाने की कसरत में बीत गया या फिर शंकाओं, कुशंकाओं, ईर्ष्या, संदेह, और एक-दूसरे को जलाकर खाक कर देने की उन स्पर्धाओं में बीता, जो कुछ तो उन दोनों के बीच की गलतफहमियों और बहुत-कुछ उन परिस्थितियों की देन था, जिनपर काबू पाना न कभी प्रियहरि के लिये संभव था और न वनमाला के लिये।

नारी-मनोविज्ञान पर उसे किसी विख्यात मनोवैज्ञानिक का यह कथन याद आया कि नारी खुद अपने दिल की बात कभी नहीं कहती बल्कि वह उसे पुरुष की जुबान से कहलवाना पसंद करती है। प्रकृति मे पशु और पक्षियों का जगत हो या वह बंबइया फिल्मों की रोमान्टिक फिल्मों का जगत हो। दोनों में यह नियम अटल है कि प्रवेशोत्सुक नर की प्रणय-चेष्टाओं का जवाब तकरीबन हर मादा गुर्राती, भौंकती, कटखनी वृत्ति से देती है। बिना काटे-गुर्राए, दौड़ाए और छकाए न तो कुतिया किसी कुत्ते को अपने पर सवार होने देती और न कोई गाय किसी सांड़ को। प्रथम दृष्टि का प्रेम भी जब प्रवेशोत्सुकता के क्षणों में पहुंचता है तब सारे लगावों के बावजूद मादा में यह नियम प्रवेश कर जाता है । शर्त बस इतनी है कि वह प्रवेशानुभवों से पूर्वाभ्यस्त होती स्वयंदूती के मनोभावों तक न पहुंच चुकी हो।

नखरीली चंचल श्यामा सुंदरी सुरम्या

अंखियों से गोली मारती और शरारती मुस्कान की मादकता से प्रियहरि को धमकाती जैसे वह कह रही थी -
"यह मुझे अच्छी तरह मालूम है बच्चे कि कितनी सफाई से तुम झूठ बोल रहे हो। झूठे, धोखेबाज !
मैं तुम्हारी कलाएं खूब समझती हूं। इन्हें बना लो, मुझे न बनाओ।"

प्रियहरि को वह दिन कभी न भूलेगा जब बद्दिमाग समझे जाने वाले अपने अफसर से उसका पहली-पहली बार सामना हुआ था। एक तो वह बगैर पूछे अफसर के कमरे में जा घुसा था और दूसरे यह कि बगैर इस बात की परवाह किए कि प्रियहरि को उस मगरूर अफसर के सामने सजायाफ्ता अपराधी की तरह सहमे हुए खुद को पेश आना था, अपने सहज स्वाभिमान से वह इसके ठीक सामने कुर्सी पर जा बैठा था। नज़ारा तब यूं बना कि प्रियहरि तो गुस्से से उबले-पड़ते साहब की फटकार का शिकार हुआ जा रहा था और चारे की तरह उसे वहां फंसा पाकर नखरीली चंचल श्यामा सुंदरी सुरम्या अपने सलोने मुखड़े और सुपुष्ट जंघाओं के होठों की बारीक फांकों में लरजती मुसकान की गुदगुदी का अहसास उस प्रियहरि में संक्रमित करती उसे जला रही थी। प्रियहरि के उदास चेहरे को निहारती और उसकी मासूम अदा पर मुस्कुराती सुरम्या उस तरह अक्सर मज़ा लिया करती थी। यह ऐसा ही था जैसे बुलबुल को कैद में फंसा देख सय्याद को मजा आता है।

नखरीली चंचल श्यामा सुंदरी सुरम्या बड़े गौर से बड़े अफसर और प्रियहरि के बीच की बातों का श्रवण करती कटीली-तिरछी निगाहों से भेदती प्रियहरि को तौल रही थी। जाहिर है कि असलियत की जानकारी के उसके पूर्वस्त्रोत भी थे। अपने इस जल्लाद समझे जाने वाले अफसर से प्रियहरि को उतना भय नहीं था जितना इस कमसिन जवानी से था। कितने ही घाटों का पानी हजम कर चुकी यह मारक जवानी पूरी तंदुरुस्ती और कसावट के साथ इस वक्त भी अपने को अक्षुण्ण बनाए हुए थी। अपनी उस जवानी पर सुरम्या को घमंड भला क्यों न होता, जिसपर यह अफसर खुद मिहरबान था।

अंखियों से गोली मारती और शरारती मुस्कान की मादकता से प्रियहरि को धमकाती जैसे वह कह रही थी -" यह मुझे अच्छी तरह मालूम है बच्चे कि कितनी सफाई से तुम झूठ बोल रहे हो। झूठे, धोखेबाज ! मैं तुम्हारी कलाएं खूब समझती हूं। इन्हें बना लो, मुझे न बनाओ। इस वक्त इनसे निबट लो फिर मैं तुमसे निबटूंगी। बहुत नाम सुना है तुम्हारा, बड़े गुल खिलाए हैं तुमने। मेरी सख्त पिंडलियां देखेंगी कि सचमुच कितना दमदार है वह सुयश, जो तुमने कमाया है **?** "

वह मुसकान प्रियहरि को यूं बदहवास किये जा रही थी कि मजबूर न होता तो उसी वक्त छलांग लगा श्यामा सुरम्या को बलात् धराशा यी कर प्रियहरि उसके मुख और जंघाओं की संधि के सम्मिलित ऊर्ध्व और अधर दोनों होठों पर अपने को अडिग मजबूती में ठांसता, अपनी जलन को उसकी ठंडक से राहत पहुंचाता उस शैतान सुरम्या की कसी -सिमटी पंखुड़ियों को अपनी आंच से सुलगाता उससे पूछता -" श्यामा रानी अब सच-सच बताओ कि असली मज़ा तुम्हारी उस ठंडी गुदगुदी में था या इस दहकाती गर्म गुदगुदी में, जो दुनिया-जहान से उड़ाती हम दोनों को ही आनन्द के उस लोक में ले आई है जो देवताओं के स्वर्ग में भी दुर्लभ है।"

तब हवा में तैरती श्यामा सुरम्या अपनी मीठी सीत्कारियों के संगीत से बुनी ' आह '.. 'ऊह'.. 'हाय'.... 'अरे' में जवाब देती होती - 'हाय.... मर गई रे', मार डाला '..'जालिम... छोड़ दो प्लीज़' ...वगैरह। ज़मीन के जवाब हवा में विपरीतार्थक होते हैं। यानी दरअसल सुरम्या की फुरफुराती, फुदकती, जमकर धुनी जाकर पोर-पोर छितराई आत्मा का आत्मिक आशय होता - 'कितना अच्छा लग रहा है' ...'और.और.और.प्लीज़ ..' ..'मेरी बातों पर बिलकुल मत जाना...'..'मारो.और.मारो......'....मारे जाओ..' ..'मार डालो..... आज बिलकुल मत छोड़ो ' .... '..रुकना मत आज मेरे खलास होने तक ..... तुम्हें मेरी कसम ' ....'शा बास....आह.....और जोर से...।

बेहद नाज़ुक क्षणों में प्रियहरि ने कभी बाद में श्यामा सुरम्या से उन क्षणों की पीड़ा और कल्पना का बयान कह-सौंप दिया था। एक-दो-तीन-चार बार वह पढ़ती चली गई थी।

उसने कहा था -" दीखने में बहुत सीधे पर बहुत बदमाश हो तुम...। लेकिन ये तो बताओ कि अंदर की बात तुम कैसे पढ़ लेते हो ? सचमुच उन क्षणों में मेरा मन तुम्हारी मासूमियत से लिपटा पड़ रहा था। मुझे क्या मालूम कि उस वक्त संकट-भरी दयनीयता में भी तुम्हारा हरामी मन मेरे लिये पिघला जा रहा है।"

प्रियहरि के शब्दों में ढल चुकी कल्पना के उन क्षणों में उस वक्त डूबती-सिहरती सुरम्या को इस वक्त नया रस आने लगा था । वह बोली -

" ज़रा सोचो तो कि तुम्हारे-मेरे मन का वह सपना अगर सचमुच उस दिन हकीकत होता तो कितना मजा़ आ गया होता ....।"

" माई डियर श्यामा रानी " सुरम्या का हाथ थाम अपनी ओर खीचते और उसकी नज़रों में झांकते प्रियहरि ने कहा - "यार , उस दिन न सही अब सही। अब तो बात पक्की हो गई ना ? "दूसरे हाथ से सुरम्या के सिर को मजबूती से थाम उसके होठों पर उतर चुके प्रियहरि के मूड में तभी खलल पड़ा।

"बाद में " कहती सुरम्या झटके से अलग हो जाने को मुड़ी।

" प्रॉमिस "

" प्रॉमिस "

" पक्का ?"

" पक्का "

इससे पहले कि गलियारे से आती आवाजें साथियों की शक्ल में नमूदार होतीं, प्रियहरि के वादे पर मुहर लगाती श्यामा सुंदरी यह-जा वह-जा हो चुकी थी ।

जब-जब प्रियहरि सुरम्या से रूबरू हुआ अपने को प्रश्नित करते उसके तिरछे कटाक्ष के व्यंग्य से सहमा और भयग्रस्त रहा। उसका जी करता कि उस भरी बदन गोलमटोल सुरम्या से टकराता उसके गर्व को धराशयी करे और उसपर सवार हो जाए । उसके भरे-भरे रसीले ओठों को ओठों में और पुष्ट मांसल कलशों को हथेलियों में दबाए वह अपनी बांहों से सुरम्या की भुजाओं को घेर ले। तब गर्दन के पीछे से उसके सघन केशों से आच्छादित सिर को बाहों के सहारे थामता ; उसकी मदभरी बड़ी-बड़ी आंखों में झांकता उससे वह कहे कि "प्यारी सुरम्या रानी, तुम्हारी यह खूबसूरती मुझे भयग्रस्त बनाकर मजा लेने के लिए नहीं है। तुम्हारी तड़प मैं खूब समझता हूं। ईर्ष्या और व्यंग्य की मुद्रा में सताना छोड़कर क्यों नहीं तुम उसका आनंद उठाती, जिसकी

कल्पना से तुम्हारे बदन में सुरसुरी तैरने लगती है और तुम्हारी सुरंग की नाजुक सिराएं तनाव से फूलती-सिकुड़ती मेरी प्रतीक्षा कर रही होती हैं।"

सुरम्या थी तो महज एक क्लर्क, लेकिन मदमाती जवानी से बड़े-बड़ों को बांधने का अहंकार उसमें था। उस अहंकार को प्रियहरि अपने लिये चुनौती की तरह पाता था। वनमाला से मिली 'आह' और 'ऊह' से वह थक चुका था। उसने ठान लिया था कि माकूल माहौल और मौका मिलते ही वह इस श्यामा को अपने जादू से पिघलाता अवश्य उसी तरह विवश करता अपनी संगिनी बनाएगा जिस तरह फिल्म 'आन' की नादिरा से पेश आते तब के नायक दिलीपकुमार ने किया था । सुरम्या की तौलती निगाहें प्रियहरि की निगाहों की भाषा से वाकिफ थीं। किस्मत ने प्रियहरि को यूं बेचारगी में ला पटका था कि खुलना उसके लिए मुश्किल था अन्यथा सुरम्या की कोमल सुरंगों को गुदगुदाता उससे वह पूछता कि अब बताओ कि कैसी रही ?"

बदनामी का लांछन चिपकाए प्रियहरि के बेचैन दिल को अपने बड़े अफसर का गुस्सा किसी प्रकार ठंडा करके फौरी तौर पर बस इतनी राहत मिली थी कि उसका भय थोड़ा कम हो गया था। प्रियहरि की सफाई से वे संतुष्ट हो गए थे। जरूर साहब की असली नाराजगी उससे नहीं उसकी बेअदबी से रही होगी। उन आला अफसर ने बताया कि वे तभी समझ गए थे कि मामला कुछ और है। यह भी कि 'वह लेडी', जो शिकायत लेकर आई थी खुद भी साफ नहीं है। अफसर केरल मूल के थे। उनका अनुमान था कि जरूर उस मलयाली को साथ लाने के पीछे 'उस लेडी' की मंशा एक मलयाली से दूसरे मलयाली को प्रभावित कराने की थी, जिसे वह खासतौर पर अपने साथ लेकर उनसे मिलने आई थी। प्रियहरि ने वनमाला की चालाकी की दाद दी। उसे अचरज था कि वह मलयाली कौन रहा होगा, जिसे यह वनमाला पकड़ लाई थी ?

झीनी सी उम्मीद : शायद

सुरम्या की शक्ल में उसे अब भी झीनी सी उम्मीद दिखाई पड़ रही थी। प्रियहरि सोचता कि श्यामा सुन्दरी सुरम्या शायद वनमाला के नजदीक रही हो। शायद वनमाला के प्रति सहानुभूति के कारण ही वह प्रियहरि को जलती नज़रों से देखती है। शायद सुरम्या का रुख अपनी ओर करके ही वह अपने प्रति प्रिया वनमाला की उन शिकायतों को वह सुन सकता था, जिन्हें वनमाला से वह कभी न सुन सका था।

वह समूची घटना प्रियहरि में फिर जीवंत हो उठी थी। उसके लिए हर वह शखस प्यारा था जो उसके और वनमाला के बीच स्मृतियों का पुल बन सके। मानिक जी से जो कुछ उसने जाना, वह जाना हुआ गोपन ही था। सारा कुछ प्रियहरि ने देखा था, भोगा था। सारा कुछ उसमें प्रत्यक्ष था, लेकिन प्रेम में डूबे चित्त की यह अजीब हालत होती है कि जिससे वह प्रेम करता है, उसकी चर्चा, उसके बारे में बात करना, उसके मन की थाह लेना चाहता है फिर चाहे जितना उदास करने वाला और मारक ही वह क्यों न हो? किसी भी तरकीब और किसी भी जरिये से उसके पास रहकर, उसकी स्मृतियों में बसा ही वह तसल्ली पाता है। प्रियहरि की हालत भी ऐसी ही थी। वनमाला से जुदाई नियति का एक दर्दनाक हादसा था, लेकिन आंखों में बसी उसकी सलोनी छबि को निकाल पाना उसके लिये कठिन था। दिल की धड़कनों में बसी स्मृतियों को भुला पाना उसके अपने लिए इस जनम में तो ठीक उसी तरह संभव न होगा, जैसा वनमाला के लिए वह असंभव था। जो एक बात तब वह भूल गया था, वह अब याद आ गई। नेहा ने बताया था कि उस रोज दोपहर लौटने का इरादा कर जैसे ही वनमाला निकली थी, उसे किसी ने फोन पर रुकने कहा था। ऐसा ही फोन किसी ने टेलीविजन के खबरियों को किया था। अवश्य ही वह विपुल ही रहा होगा। क्या वनमाला को वह सब पता था ? यहां प्रियहरि पर जो कुछ मानिक जी से उजागर हुआ था उसका असल स्रोत सौदामिनी रानी थीं।

मानिकजी को प्रियहरि से सहानुभूति थी। प्रियहरि की प्रेमिका वनमाला की बेवफाई को वे अक्सर कोसते। प्रियहरि की राह का रोड़ा बन चले वनमाला के तिकड़मी यार को धिक्कारते वे प्रियहरि को समझाते कि तुम्हारी पुरानी जगह अब छूट गई है। अब छोड़ो वहां की यादें और उस तिकड़मी औरत को भूल जाओ। बेवफा ही सही वनमाला को भुला पाना लेकिन तब भी प्रियहरि के लिये क्या सचमुच उतना आसान था? सुरम्या की शक्ल मे उसे अब भी झीनी सी उम्मीद दिखाई पड़ रही थी।

प्रियहरि सोचता कि श्यामा सुन्दरी सुरम्या शायद वनमाला के नजदीक रही हो। शायद वनमाला के प्रति सहानुभूति के कारण ही वह प्रियहरि को जलती नज़रों से देखती है। शायद सुरम्या का रुख अपनी ओर करके ही वह अपने प्रति प्रिया वनमाला की उन शिकायतों को वह सुन सकता था, जिन्हें वनमाला से वह कभी न सुन सका था। शायद वह खुद वनमाला और अपने बीच हुए हादसों का बयान कर अपने दिल की बात सुरम्या के जरिए अपनी प्रेयसी तक पहुंचा सकता था। यह बात कि वह उतना बुरा नहीं था जितना वनमाला ने, या मार्फ़त वनमाला के श्यामलांगी सुरम्या ने उसे समझ लिया था।

तब लेकिन प्रियहरि का 'शायद' सचमुच 'शायद' ही रहा आने को नियत था। नक्काशियों मे तराशे बदन पर ठोस गोलाइयों के कसाव, उन गोलाइयों के शीर्ष पर उभरी उसकी रसभरी नुकीली बेरियां जो चोली के बंधन को फाड़कर तीर की तरह छूटकर चुभ पड़ने को हर पल उद्यत रहा करतीं, उसकी व्यंग्य भरी वाणी उच्चारित करती जुकामिया मिठास, जुबान की चपलता से निःशब्द होड़ लेती बतियाती उसकी बड़ी-बड़ी आंखें, और अपनी चुस्ती से सलवार की औकात को चुनौती देते ठोस नितम्बों वाली श्यामा सुरम्या प्रियहरि को बरबस खींचतीं ज़रूर, लेकिन बेवफाई का ताना देती सुरम्या की आंखों में संदेश यह दर्ज होता कि प्रियहरि प्यारे ,मैं तुम्हे खूब पहचानती हूं। तुम बहुत बड़े खिलाड़ी हो। बनो और बचो मत। वनमाला की जगह काश मुझसे टकराव तुम्हारा होता तो मैं तुम्हें जानती। प्रियहरि को प्रतीत होता जैसे मौका पाते ही जंगली बिल्ली की तरह सुरम्या उसे पटककर दबोच लेने को उतारू है।

सुरम्या का खोजी सन्देह और फिर अपने बड़े अफसर से उसकी करीबी प्रियहरि को भयभीत करते। नज़रें चुराता वह हमेशा उससे बचने की कोशिश करता था। प्रियहरि को गुस्सा तो बहुत आता था ,लेकिन वह वक्त का मारा था। ऐसे वक्त जवाब में प्रियहरि की सुरम्या से टकराती आंखें इतना भर कहकर रह जातीं कि श्यामांगी इस मजबूर कैदी को भय-मुक्त तो करो और तब टकराओ तो वह तुम्हारी चुनौती को उस तरह पूरा करे कि वह तुम्हारे लिये अगले जनम तक की मनौती हो जाये। प्रियहरि की आंखों मे बिम्बित और काल के इन क्षणों मे स्थित तीसरे आयाम में अंकित उस दृश्य को वह श्यामा सुन्दरी सुरम्या अपनी शरारत भरी निगाहों से पलक झपकते खुद भी निहार सकती थी । वैसा करती वह पाती कि उसकी शरारत का मजा़ चखाता प्रियहरि मुड़ी हुई उसकी टांगों के बीचपुष्ट जंघाओं पर सवार, उसकी ठोस कोमलता में अपने को कसाव में धंसाए अड़ा हुआ है। तब सुरम्या पाती कि उसकी ठोस काया को अपने कसाव में उस तरह बांधे हुए उसपर सवार प्रियहरि सुरम्या की अपनी अकड़ भरी चिढ़ का जवाब -" रानीजी , अब ज़रा बोलो तो " में देता हुआ कूद-कूद कर किस तरह उसे बेहाल कर रहा है ?

सुरम्या से प्रियहरि का सामना, उससे टकराव के पल, उन पलों में प्रियहरि को चिढ़ाने की सुरम्या की शरारत और तब प्रियहरि की खीझ जैसे इसी दृश्य को बार-बार निहारने की एक-दूसरे चाहत का प्रिय खेल बन चला था। वे पल वनमाला के पुल से चलकर उपस्थित होते किन्तु वनमाला की भूमिका वहां उन पलों में मानो मूक दर्शक रही अदृश्य-नटी की रही आती। तब स्मृतियों के अदृश्य परदे में छिपी वनमाला रंगमंच पर चल रहे को देखती ,अपनी आहों में सनसनाती ईर्ष्या की उत्तेजना में पिघलती होती। यूं कि अपने को न संभाल पाती वनमाला जैसे अपने अमूर्तन में ही सुरम्या को परे ढकेल उसकी काया में समाई खुद को प्रियहरि की देह के नीचे उठती-गिरती तरंगों का बिस्तर बना बिछा लेती थी।

प्रियहरि पाता कि सुरम्या और उसके बीच तआल्लुकातों का सारा मजा़ दो जोड़ी निगाहों के उस टकराव मे हुआ करता जिसमें आमंत्रित करती सुरम्या की चुनौती का जवाब प्रियहरि की निगाहें उस

मुठभेड़ से देतीं जिससे उसके अंदर की बेचैन गुदगुदी तैरती सुरम्या की निगाहों को दबोचती , उसके दिल और दिमाग को सरसराती , उसकी ठोस कोमलता में धंसकर अंदर छिपी पेशियों को सारी शिराओं के साथ हौले-हौले सिकोड़ते और फैलाते उस मादक सनसनी से झंकृत कर दे जिससे गर्विता श्यामा का सारा बदन सुरीले संगीत से तरंगित हो उठे। यह एक अदृश्य खेल हुआ करता जिसका मज़ा संबंध के दोनों शिराओं पर दृष्टि की केवल अदृष्ट कल्पनाओं में ही लिया जा सकता था। बहुतों को यह वायवी स्वप्न प्रतीत हो सकता है लेकिन यह सच है कि बाहर का सच प्रायः अंदर का झूठ हुआ करता है और बाहर जो झूठ दिखाई पड़ता है वही अंदर की सचाई हुआ करता है। इन चीज़ों को अंदर के रहस्य संसार में प्रवेश करके ही महसूस किया जा सकता है। स्त्रियों का कोमल , सलज्ज , मर्यादित बाह्यावरण उसी विवशता की देन है जिसे सामाजिक अवधरणाएं परिचालित करती हैं। स्त्रियों के भीतर का यथार्थ संभवतः उससे कहीं अधिक नंगा और भयावह हुआ करता है जैसा वह हमारी कल्पना में प्रतीत हुआ करता है।

संसार की पोथियों की चिन्ता :
स्त्री बनाम पुरुष का फलसफा और स्मृतियां

क्या ऐसे दिन संभव नहीं कि लड़की शादी के लिये लड़के छांटे और नुक्स निकालती , रिजेक्ट करती , उम्मीदवारों का दिल तोड़े। कुछ तो ऐसी नौबत आ चली है, लेकिन बहुत-कुछ तब आएगी जब सहमे हुए छोटे-छोटे पुरुष-समूह अपनी किटी-पार्टियों में इस बात की चर्चा करते पाए जाएंगे कि -" अरे बड़ा गजब है जी ! इसकी नीना मैडम ने चार तो शादियां कर कर रखी हैं और ऊपर से तीन मरद उसके रखैल हैं । ये तो बड़ा अत्याचार है भाई।"

Women need a reason to have sex. Men just need a place.
- Billy Crystal

संसार की सारी पोथियों की चिन्ता केवल स्त्री और पुरुष की प्रजातियों को अलग रखने या हर स्तर पर नियंत्रित कर बांध रखने की रही है। धर्म, जाति, वर्ण, वंश, वय, समाज, परिवार, भाषा, संस्कृति और अन्यान्य कितनी ही इकाइयां हैं, जिनका मकसद इस अहसास को जगाए रखना है कि सीमा से बाहर का वह दूसरा तुम्हारे लिये वर्जित है। उसकी ओर बढ़ना इस और उस लोक में तुम्हें दंड का पात्र बनाएगा। यह विचित्र है कि इन ओढ़ी गई इकाइयों के बाहर एक वायवी चेतना के स्तर पर ये ही सारे भेदों को झूठा होने का उपदेश करतीं मनुष्य मात्र की एकता और उस आत्मा की सचाई का राग आलापती हैं, जिसे कुचलने का पूरा इंतजाम इन्होंने खुद किया होता है। क्या इससे भी विचित्र यह नहीं कि जिस निर्भेद तदाकारता की ये उपदेष्टा हैं उसे सांसारिक इनके बनाए अवरोधों को तहस-नहस कर ऐन्द्रिक सम्मिलन की उस निषिद्ध क्रिया में ही संपूर्णता से अनुभव कर पाता है, जहां आनन्द के सिवा शेष सारा तिरोहित हो जाता है ?

प्रियहरि गौर करता है कि सारा तंत्र अवश्य आदिम इतिहास से अब तक केवल मादा की जात पर कब्जे और फिर कब्जे को लेकर होने वाली लड़ाइयों को दृष्टि के केन्द्र में रखकर हुआ है। वह सोचता है कि इसे हल करने प्लेटो के उस आदर्श राज्य की परिकल्पना क्या बुरी थी, जिसमें स्त्री और पुरुष की जात को बंधन-मुक्त रखते हुए बच्चों को राज्य की समस्या ठहराया गया है ? सामंती युगों तक चलती आई वह व्यवस्था क्यों बुरी थी, जिसमें व्यवस्थित प्रबंधन के जरिये वेश्या-वृत्ति अपनाने वाली स्त्रियां वंचित पुरुषों को राहत देती थीं ? असमान वितरण और बलात् कब्जा ही तो स्त्री-पुरुष संबंधों पर पुरुष-दृष्टि के विचार के केन्द्र रहे हैं।

प्रियहरि की कल्पना में मिथकों की कथाएं याद आाती हैं। गुरु गोरखनाथ का किस्सा याद आता है जिनके गुरु मत्येन्द्रनाथ को कामरूप की सुन्दरी रानी ने सम्मोहित करके अपने मायाजाल में बांध रखा था। उन फिल्मों के दृश्य आते हैं जिनमें सुदूर, सघन वनांचलो में औरतों के राज वाले आदिम-समाज की रानियां अपनी सीमा में प्रविष्ट पुरुष को कैद कर खिलौने की तरह इस्तेमाल करती हैं। अपने ही देश के उन क्षेत्रों का खयाल आता है, जहां विवाह और वंश की मातृ-सत्तात्मक परंपराएं आज भी गुजरे जमानों के स्त्री-सत्ता की निशानियों के रूप में मौजूद हैं। औरत के लिये लालायित पुरुष-समाज की उद्दाम वासनाएं जिस तरह अमर्यादित स्वप्न-चित्रों की श्रृंखलाएं बुनती हैं वैसे ही मर्यादाओं से लाचार स्त्री का अन्तर-मन पुरुषों के प्रति अपनी कैद आकांक्षाओं और वासनाओं को निर्बाध स्वप्न-चित्रों में क्या न बुनता होगा।

कहते हैं कि स्त्री की वासना और पुरुष की देह को भोगने का उसका सामर्थ्य अपने विपरीत-लिंगी से पांच-पांच गुना अधिक होते हैं। पुरुष अपने को अपनी उद्दाम अभिव्यक्तियों और निर्बाध व्यवहार में प्रकट कर सकता है किन्तु स्त्री ? वह लाचार है।

अब स्त्री की पंचगुनी यौनिकता के तथ्य को स्वीकार करते हुए यदि उसे पांचाली की तरह पांच पुरुषों से विवाह का कानूनी हक मिल जाए तो क्या उससे एक स्त्री अपनी भरपूर संतुष्टि में ही पांच-पांच पुरुषों को निबटाती अपनी और उनकी समस्या समतुल्यता में न हल कर देगी ? फिलहाल उसके वर्ग के लिए वे असंभव हदें हैं। तब भी ऐसे समय की कल्पना की जा सकती है जब सरे राह चलते-फिरते छोकरियां आवारागर्दी करें और बचकर खिसकते छोकरों को छेड़ती सीटी बजाएं। जब आपस में बतियातीं उनमे से कोई एक उस तरह खिसकतों में किसी को पटकती सवार हो चले और अपनी संगिनियों से बिन्दास कहती ले कि - "आओ यार, आज बड़ा मजा आएगा।"

जब दफ्तरों पर राज करती रमणियां अपने अधीनस्थ किन्हीं एक-एक पर लट्टू होती कहें -" आज घर चलो न ! कुछ काम है।" और यौन-शोषण से भय खाते पुरुष-वर्ग का वह पकड़ा गया एक कहे कि -" बहुत देर हो गयी है , इसलिये आज छोड़ दो मैडम। घर में बहुत काम पड़ा है मेरी वाइफ रास्ता देखती होंगी। जाकर खाना पकाना है। देर हुई तो डांट पड़ेगी। "

क्या ऐसे दिन संभव नहीं कि लड़की शादी के लिये लड़के छांटे और नुक्स निकालती , रिजेक्ट करती , उम्मीदवारों का दिल तोड़े ? कुछ तो ऐसी नौबत आ चली है, लेकिन बहुत-कुछ तब आएगी जब सहमे हुए छोटे-छोटे पुरुष-समूह अपनी किटी-पार्टियों में इस बात की चर्चा करते पाए जाएंगे कि -" अरे बड़ा गजब है जी ! इसकी नीना मैडम ने चार तो शादियां कर कर रखी हैं और ऊपर से तीन मरद उसके रखैल हैं । ये तो बड़ा अत्याचार है भाई।"

देखने में भले यह सब अजीब लगता हो पर असंभव तो कतई नहीं है। प्रश्न सामाजिक सत्ता के केन्द्र में स्त्री के वर्चस्व का है, जो खुद आर्थिक सत्ता के सवाल से जुड़ा है। क्या यह सच नहीं कि दबी जुबान से ही सही स्त्रियाँ अब ऐसे वर्जित और टेढ़े सवाल उठातीं अपनी दबी जुबान को उठा रही हैं ?

प्रियहरि के जेहन में इटली के मशहूर फिल्मकार फ्रेडेरिक फेलिनी की फिल्म 'सिटी आफ वीमेन' तैर आई। रेल में सफर करता अधेड़ नायक केबिन के दरवाजे पर एक खूबसूरत महिला से टकराता यूं फिदा होता है कि अपनी कल्पनाओं में पीछा करता वह उस जंगल में जा पहुंचता है, जहां मर्दों से परे अपनी अलग दुनिया बसाए सैकड़ों औरतों का एक विशाल क्लब है। भरपूर भोग की इच्छा में रमणी को ऐसी तृप्ति देने की कामना जो उसके पति से न मिल सकती थी रमणियों के उस जंगल में आखिर उसे ऐसा निरीह बनाकर छोड़ देती है, जहां से उसे भागते ही बनता है। उन्हें चूल्हे-चौके और बच्चा पालने से नफरत है। बगैर मर्द वे आपस में निबटकर अपने को तृप्त कर सकती हैं। वे ऐसी निशानेबाजी का अभ्यास कर रही हैं, जिसमें मर्द की जांघों के बीच झूलते दुश्मन को एक ही वार में तोड़ फेका जाए। क्या सचमुच वैसा संभव है ? आदमी की दुनिया में औरत की कैसी हालत है और अपना राज कायम करने उतारू औरतें उनसे बदला लेती किस तरह अपमानित करती हैं, यही उस फिल्म की कथा थी। अंत में जब सामने की बर्थ पर बैठी स्त्री उस अधनींदे नायक को मुस्कुराती हुई छेड़ती है कि तुम कहां खो गए थे ? दो घंटे से मैं देख रही हूं कि ऊंघते हुए तुम न जाने कहां चले गए थे ? उसी वक्त

दु:स्वप्न से जागता थका पुरुष देखता है कि उसके सपनों की वह नायिका कैबिन से भीतर प्रवेश करती वैसी ही जिज्ञासा से उसे निहारती आ खड़ी हुई है, जैसी उस समय उसकी दूसरी महिला सहयात्री की आंखों में भरी थी।

प्रियहरि को तब 'अमेरिकन पाइ' जैसी फिल्मों की याद आती है। वह एक समानान्तर कल्पना है, जहां आदमी औरत-विहीन संसार में रहना चाहता है। अपनी जात में मस्त,जबरदस्त। वह सोचता है कि क्या सचमुच वह संभव है ? क्या औरत और मर्द के बीच का समस्याएं इतनी गहरी हैं कि वही समाधान बच रहा है ? क्या वह ठीक है ? दुनिया इतनी तेजी से भाग रही है, सोचने का ढंग इतनी तेजी से बदल रहा है कि सब कुछ संभव है। हां, शायद उससे मर्द और औरत के झगड़े खत्म हो जाएं। शायद बढ़ती आबादी पर लगाम लग आए। उसमें हर्ज ही क्या है ? आखिर यह अपनी तसल्ली और दैहिक स्वतंत्रता का मसला है। कमस्कम उससे दोनों जातों के झगड़े तो मिटेंगे; अपराध तो कम होंगे; शादी-ब्याह की ठेकेदारी में मोल-तोल और अत्याचार से तो बचा जा सकेगा ! कहां बाधा है और किसे भला क्यों ऐतराज हो। वह व्यक्तिगत सोच और सुविधा का मसला है। लेकिन सरकारों और धर्माचार्यों के खूंटे से बचना संभव है ? उनकी निगाह में तो स्त्री और पुरुष, पुरुष और पुरुष, और स्त्री और स्त्री तीनों संबंध अपराध के हैं। यह बात दीगर है कि धर्माचार्यों, मुल्ला-मौलवियों,और नेताओं-अधिकारियों की खुद की जिन्दगी में और नजर बचाकर उनसे बाहर औरों की जिन्दगी में सब जारी रहा आता है।

तर्क-वितर्क में तल्लीन प्रियहरि अपने अंदर छिपे उस दूसरे से पूछता है -"ओ-के माइ डियर। तब आज अखबार में छपा वह क्या झूठ है कि साल-दर साल मरने वालों की तादाद में प्यार-मुहब्बत में मरने वालों और मार डाले जाने वालों की तादाद का नंबर दूसरा-तीसरा होता है। फिर यह भी तो कहो कि तब सिधार चुके और सिधार जाने की नियति वाले कवियों, कलाकारों, उनकी रची मसनवियों और क्लासिकी ग्रंथों और उनमें समाए मिथकों का क्या होगा ?

औरत की आंखें आदमी की आंखों में छिपी भाषा को, उसके चेहरे पर तैरते-उतराते बारीक से बारीक भाव को पलक-झपकते पढ़ सकने में गजब की महारत रखती हैं। तब ऐसा कैसे कहा जाए कि जहां खुले तौर पर सामने पड़ा आदम की जात उसकी ओर अपने फेरामोन्स तरंगित करता जुबान, और निगाहों की भाषा में उस तक भेज रहा हो उसे पहचानने में उसने भूल की हो। तब औरत का यह कहना कैसे संभव है कि आदमी की जात से उस तक पहुंचता वह अनचाहा और अवांछित था, जिसे औरत के द्वारा ग्रहण करता समझा गया। ऐसा खासतौर पर तब, जब परस्पर सहभागिता में खोई स्त्री स्वत: भी तरंगित होती उस धारा में मिलने दौड़ पड़ती हो, जो पुरुष से उस तक प्रवाहित होती उसे समेट लेने की आतुरता से बही चली आ रही है। वे छोटे-छोटे पल क्या झूठे हैं जो प्रियहरि की स्मृतियों में इस वक्त घुसे चले आ रहे हैं।

सुखिया और जयी उर्फ़ ज्योतिर्मयी

जयी ने मेरा हाथ थाम रखा था। चांद की ओर टकटकी लगाए वह बोली - "देखिये। कैसा सुन्दर लग रहा है न"
पूर्णिमा का चांद सचमुच बहुत खूबसूरत लग रहा था। कुछ पल चांद को निहारते मैने उस मुखड़े को निहारा जो चांद को निहार रहा था।

**

आदमी की चाहतें तो बहुत होती हैं , लेकिन संयोग बड़ी चीज़ है। आप का जी तो चाहेगा कि केट विन्सलेट या जूही से भिड़ें मगर आप समेट उसी को सकते हैं जिस तक आप पहुंच सकते हैं , या पहुंचने की संभावना बनती हो। अक्सर होता तो यूं है कि वह ॱसकनाॱ या ॱसंभावनाॱ भी पास जाने पर दूर की कौड़ी हो जाती है।

यह सुखिया है। निहायत साधारण, नाटा धूसर बदन। सिवाय हरिणी सी कंटीली आंखों के कुछ भी ऐसा नहीं, जो खींच सके। चौखटा बिलकुल अनाकर्षक। आवाज़ में सुर का लहरदार मीठापन है किन्तु बातों में भदेस

साधारणत्व, जो मेरी मेधा के लिए नीरस और उपेक्षणीय है। संबंधों का सिरा ऐसा है कि टकराव सहज ही होता है। मेरे लिये इसकी आंखों में वह चमक शुरुआत से ही रही है, जो कहती है कि तुम चाहो तो यहां स्वागत है। जब अवसर लगे मेरे साथ लगना चाहती है। घर-परिवार की रस्मी भीड़-भाड़ में खेल-खेल में मौका देख उसे चिपकाकर फौरी सुख कुछेक बार लिया और उसे दिया भी है। शादी की भीड़ के बीच वह वहां आ बैठती है, जहां मैं ही बड़ी मुश्किल से अटा हूं। वह आकर जगह निकाल सट जाती है। मुझे स्पर्श-सुख देती तानती है। मैं उसे ढील देता हूं। मुझसे और चिपकती वह अपने तलवे को मेरे पांव पर टिका अंगूठे से ठुनकती बताती है कि उसे मसलकर रगड़े जाने की तलब है। उसका कोई आकर्षण नहीं पर नये स्वाद की कामना कहती है कि एक बार इसका सुख भी खाते में डाल लो और उसकी मनौती पूरी कर दो। यूं चलते सुबह-सुबह किसी अवसर पर उसे दूसरे कमरे में अकेली सोया पाता हूं। इतनी सुबह मेरे अलावा कोई नहीं जागा होता। सब के उठने में अभी दो घंटे की देर है। उसके करीब जाता हूं और हौले-हौले स्पर्श करता होठों पर टिक जाता हूं। वह होटल का एकान्त नहीं, पारिवारिक आवास है, जहां सभी लोग सभी को जानते हैं।

" यहां नहीं, कोई जागा तो देख लेगा" - वह कहती है।

" चलो " कहता मैं उसे दूसरे कमरे में खींच ले जाता हूं। एक कोने में कसकर टिकाता हूं और उस नाटी जान के पयोधरों पर छाती का पूरा दबाव डालता उसे चिपकाए ओठों पर बेतहाशा टूट पड़ता हूं। वैसा करते, जैसा कि मैंने औरों के साथ भी हमेशा पाया है इसकी खड़ी टांगें कंपन में लहरातीं लड़खड़ाई पड़ रही हैं। अपने को न संभाल पाती उसकी डोलायमान काया मेरी देह को अच्छी तरह संभालने क्रमश: झुकती किवाड़ के कोनों पर अधलेटी मुद्रा अपनाए पूरे स्वागत में धरासीन हो चली हैं। जहां और जैसा वह चाहती है, वहां और वैसा ठंसा, मैं उसकी काया में लंबी पींगें भरता हूं। हर पींग के साथ चमक में इजाफा करती अपनी आंखों से मनचाहे चेहरे को एकटक ताकती वह विमुग्ध झूले की उड़ान को मजे से लूटे जा रही है। तभी पास ही सोया कोई कसमसाता है और भय से उछलकर वह भाग खड़ी होती है -

" छोड़िये, कोई जाग गया है।"

वैसा मौका फिर आया नहीं। किसी ललना का मेरे निकट होना खतरनाक मान लिया गया है इसलिए निगाहों की चौकसी निरंतर बढ़ चली है। अब वह जब भी टकराती है, मैं छेड़ता हूं -"बड़ी मुश्किल से मौका लगा और काम आधा रह गया। दोनों अधूरे रह गये। मौका निकालो न !"

बड़े भोलेपन का जबाब आता है -"अभी नइं ना। सब हैं तो कैसे बनेगा ?"

सुखिया से ठीक दूसरी धुरी पर है वह ज्योतिर्मयी, जो इसकी बड़ी बहन है। यह जितनी अनाकर्षक है, वह उतने ही चुम्बकीय आकर्षण से खींचती है। लूटने और लुटवाने की तमन्ना ज्योतिर्मयी और प्रियहरि में बराबर की रही है। रूप का अद्भुत लावण्य ही जयी का धन है। बाकी उसमें भी वैसा कुछ नहीं जिसे सहधर्म की कोटि में रखा जा सके। ज्योतिर्मयी का वह भरा-पूरा रसीला अंडाकार चेहरा प्रियहरि को हमेशा लुभाता रहा आया था, जिसका हर कोना नक्काशियों में तराशा हुआ है। झक्क गुलाबी गुराई में धारदार लंबी नासिका, उज्ज्वल कांति में चमकतीं बड़ी-बड़ी खूबसूरत आंखें, बारीक ओठों की गुलाबी पांखुरियां, तरतीब में सजाई मोतियों की दंतावली, यौवन की कसावट में बंधी सुचिक्कण छरहरी देह, उस पर बदन फाड़ बाहर निकली पड़ती रस-तनी छातियों के गर्वोन्मत्त उभार, पुष्ट नितंबों और उन रसीली छातियों के बीच पुल की तरह कम करता संकरी घाटी वाला जयी का क्षीण कटि-प्रदेश, सपाट उदरस्थल को पानीदार बनाता खूबसूरत नाभिकूप, संतुलन में संवारी गई रेशम सी चिकनी जंघाएं और उन्हें थामने वाली सुतवां टांगें -उस सुन्दरी में सारा कुछ इतना लुभावना कि दिमाग को दिल की जेब में डाल उसकी पहली झलक पर ही निगाहों के साथ समूचा जिस्म ज्योतिर्मयी पर टूट पड़ने उतारू हो चला था।

आदमी की चाहतें तो बहुत होती हैं ,लेकिन संयोग बड़ी चीज़ है। आप का जी तो चाहेगा कि केट विन्सलेट या जूही से भिड़ें मगर आप समेट उसी को सकते हैं जिस तक आप पहुंच सकते हैं, या पहुंचने की संभावना बनती हो। अक्सर होता तो यूं है कि वह 'सकना' या 'संभावना' भी पास जाने पर दूर की

कौड़ी हो जाती है। अब इस ज्योतिर्मयी की ही बात करें। यह किस्मत का ही खेल था कि दो में एक का विकल्प बताकर भी अगर वे लोग उसे परदे के पीछे कर उसकी बड़ी बहन पर सारा ध्यान बंटा न देते तो बदहाली में रहती और एक बच्चे को तरसती ज्योतिर्मयी इस वक्त किलकारियों की फौज के साथ प्रियहरि की शासिका होती। यह बात बाद में कभी इशारों में उसने ज्योतिर्मयी से कह भी दी थी।

ज्योतिर्मयी को याद करते हुए प्रियहरि संबंधों की शुरुवात के उन छोटे-छोटे लम्हों में गुम हो चला था जो उन्होंने साथ गुजारे थे। उस घर में कोई आयोजन कल ही संपन्न हुआ है। आवाजाही खत्म हो चुकी है। सब थके हैं। नीचे बिखरे घर को समेटने का काम ही बस पड़ा है। आराम मिले इसलिये खास मिहमान जान मुझे खाली पड़ी पहली मंजिल में लेट रहने भेज दिया गया है। उनींदे ही देखता हूं तो पाता हूं कि ज्योतिर्मयी ठीक मेरे बगल में आ लेटी है। उसका खूबसूरत चेहरा मेरी ओर है। उसकी बाहें मुड़कर सिरहाने मेरे सिर का स्पर्श कर रही हैं और घुटने यूं मुड़े हैं कि हम दोनों के पांव आपस में जुड़ चले हैं। जयी का लहंगा सरक चला है। उसकी कसी हुई चिकनी पिंडलियां चमक रही हैं। बदन के मोड़ से गले के नीचे सिकुड़ चली चोली से पुष्ट दूधिया गोलों के उभार ठीक सामने झांक रहे हैं। जैसे सोते हुए ही अनजाने मेरी बायीं हथेली उसके तिरछे हुए चेहरे का स्पर्श करती होठों और गाल का सतह पर टिक जाती है। उनींदी सी ही उसकी काया मेरी ओर कुछ खिसक आती है और उनींदी अनजान बांह फैलकर हाथ को मेरे कंधे पर ला टिकाती है। अनजानी सी ही जैसे निरुपक्रम दोनों कायाएं उस उनींदे में विचरण करतीं करीब आती कब लिपट जाती हैं, कब उसपर सवार मेरे होठ उसके होठों पर थिरकने लगते हैं इसका होश न जयी करना चाहती है न मैं। जाई के कान की कोमल फुनगी को चबाता उनींदे ही जयी के कान में मैं बुदबुदाता हूं -"नीचे सब सो रहे हैं क्या ?"

जैसे आवाज स्वप्नलोक से आ रही हो, वह जवाब देती है - " हां, नीचे सीढ़ी का किवाड़ उन्होने बंद कर रखा है। आप सो जाइये"

एक नजर कमरे के किवाड़ पर जाती है। यहां वह भी अंदर से बंद है। उनींदे में ही हमारे बीच सारा-कुछ चल रहा है। कायाएं लिपटती हैं, तूफान में मचलती हैं, रस के केन्द्र का संणन होता है, एक-दो-तीन झटकों में सांसें आह भरती हैं और आखिर वह अपने अंदर मुझको समेट लेती है। जलते बदनों में अपनी आग एक-दूसरे में उड़ेल जाने की होड़ मच जाती है ताकि एक-दूसरे में गहरे से पानी खींच हम उस प्यास को बुझा लें जो इन दिनों लगातार अंदर-अंदर सुलगती आग में चल रही थी। उनींदे ही तूफान उतरता-उतरता शांत होता है।

मुझसे लिपटी जयी उनींदे में ही पूछती है -" आप ने मुझे क्यों नहीं चुना। क्या कमी थी मुझमे जो मैं आप को पसंद नहीं आई ?"

ज्योतिर्मयी रूपगर्विता थी। उसकी काया में अभूतपूर्व कांति और कसावट थी। उसे इसका मलाल था कि क्योंकर उसे छोड़ मैने उसकी बहन को चुन लिया था। मैं ज्योतिर्मयी को कैसे समझाता ?

"मुझे अवसर ही न दिया गया। तुम्हें पीछे रख उसे ही सामने लाया गया था। क्या तुम नहीं जानतीं ? मेरी रानी, वैसा न होता तो क्या तुम मुझसे छूट पाती ?" प्यार से चुंबनों की झड़ी से जयी के होठों को सराबोर करता मैं उसे समझाता हूं।

वह उनींदे ही कहती है - "अब तो याद रखेंगे न ? सच बताऊँ। ? मेरे सपनों में तो आप ही थे। न जाने कैसे गड़बड़ हो गया ?" पल भर के शून्य को तोड़ती आगे कहती है -"मैं नहीं जानती। कुछ हुआ तो आप के यहां आकर बैठ जाऊंगी। आगे आप ही संभालियेगा।"

नीचे सीढ़ी की कुंडी अचानक खटकती है। नेक बच्ची की तरह दूर छिटककर ज्योतिर्मयी गहरी नींद ओढ़ लेती है । झपटकर मैं कमरे की सांकल खोलता हूं और आगन्तुक के प्रवेश से पहले सिरहाने की पुस्तक उठाकर उसपर दीदे गड़ा बैठ जाता हूं। मुझसे सुखिया पूछ रही है -

" उठ गये आप ? चाय पिएंगे ? चलिये बुला रहे हैं।"

सुखिया कोने में ज्योतिर्मयी को गहरी नींद में डूबा पाती है। आज्ञाकारी बच्चे की तरह मैं सुखिया के पीछे चला चलता हूं।

खुशमिजाज और चंचल ज्योतिर्मयी की प्रियहरि से खूब पटती थी। वह सदैव मजाक़ करती उसे छेड़ती थी। प्रियहरि के साथ को एन्जाय करते सैर-सपाटे का मजा़ लेने की उसमें खूब चाहत थी। मगर प्रियहरि की बीबी की शक्की निगाहों की ऐसी चिड़चिड़ी चौकसी कि चंद दिनों में ही आपस में खुलकर तो क्या दबकर भी बात करने से, यहां तक कि आमने-सामने होने तक से महरूम हो गये थे। इसे प्रियहरि और ज्योतिर्मयी दोनों ने लक्ष्य कर लिया था। सावधानी इस कदर कि प्रियहरि की वह बीबी, जो कभी प्रियहरि की खुद कद्र न कर पाई, सौजन्य में भी ज्योतिर्मयी को अपने यहां बुलाना पसंद न करती थी। भूले से भी ज्योतिर्मयी और प्रियहरि के टकराने का अवसर आता तो फौरन किसी न किसी बहाने खुन्नस निकालती वह ज्योतिर्मयी पर फटकार से अपना बड़प्पन जताती यूं पेश आती कि सारा माहौल वितृष्णासे भर जाता था। ऐसे वक्त प्रियहरि क्षोभ से भर उठता। उसकी अफसोस भरीं आंखें तब उस ज्योतिर्मयी से क्षमायाचना करती उसे निहारती होतीं, जो वैसी अप्रत्याशित ईर्ष्या और अपमान से आहत अपना उदास चेहरा लिये कोने मे सिमट खड़ी रहा करती थी। तब मायूस ज्योतिर्मयी की खूबसूरत बड़ी-बड़ी आंखें प्रियहरि से कह रही होतीं -"मैं सब समझती हूं। तुम्हारा कोई कुसूर नहीं। मुझे तुमसे सहानुभूति है।"

समय के पटाक्षेप के साथ तबदीलियाँ होती हैं । ज्य्प्तर्मायी कही दूर अपने हालातों की जंजीरों में मेरी तरह ही बंध चली है। दूरियों में नज़दीकी संबंध चिनगी की तरह सुलगते होते हैं और माकूल हवा मिलने पर धधक चलते हैं। ऐसी दूरियां यादों को धार देती हैं। यादों को बिसूरते हम इधर-उधर टकराते हैं।दरम्यानी हालात ऐसे बनाते हैं कि कभी कोई मौजूं बहाना मुझे उसके यहाँ ठेल देता है और कभी वैसे ही हालात उसे मेरे यहाँ भेज देते हैं। यह अवसर ऐसा ही है।

इस बार ज्योतिर्मयी ही मेरे यहां चली आई है। मुझे बहुत अच्छा लगता है। संबंध रिश्ते से ही ऐसे हैं कि हंसी-मजाक और छेड़-छाड़ की चहल-पहल होनी थी मगर उसकी बहन ऐसी चुप्पा और तानाशाह कि हंसी की मजाल न थी कि उसके चेहरे पर दस्तक दे। बातचीत और संवाद के लिये दुनिया-जहान का कोई विषय चाहे वह धरम और आध्यात्म का ही हो उसकी रुचि से महरूम था। हम करते भी तो क्या करते। यांत्रिक दिनचर्या में पांच रोज़ गुजर चले। अगले दिन शरद की पूर्णिमा थी और उसपर चंद्रग्रहण भी। सुबह-सुबह ज्योतिर्मयी ने अखबार में पढ़कर सुनाया कि दीदी की राशि के लिये आज चंद्र-दर्शन शुभ नहीं है। सारे ज्योतिष-शास्त्री उस बारे मे एकमत थे।

दीदी जब बाथरूम में होती तभी बचते-सहमते ज्योतिर्मयी और मैं बात कर पाते थे। व्यस्तता की खटर-पटर का आभास बाथरूम तक पहुंचाती ज्योतिर्मयी बाहर से ही बहन से संवादरत होती मेरे निकट आ जाती थी। उसने कहा कि "दीदी तो आज शरद का चांद देख पाएगी नहीं। अपन तो देख सकते हैं ना। भूलियेगा नहीं।" मैने हामी भरी।

रात कोई एक बजे का वक्त रहा होगा। मेरी नींद उचट चली थी। बाथरूम जाने मैने आंगन की दालान की ओर का दरवाजा हौले से खोला। शायद मेरे उठने की आहट बगल के कमरे में अकेली पड़ी ज्योतिर्मयी तक पहले ही पहंच चुकी थी। बाहर दरवाजे के पल्लों का संधि से निहारती और हाथ के इशारे से बाहर आने का निमंत्रण वह मुझे दे रही थी। कदम बाहर रखते ही एक ओर खींचती ज्योतिर्मयी ने शिकायत की -"कितनी देर से आप के निकलने का इंतजार कर रही हूं। आप ने ध्यान ही नहीं दिया।"

मैने होठों पर उंगली रख चुप रहने का संकेत करते उसे आंगन में खड़ा किया और बाथरूम में घुस गया। कमरे का दरवाजा बाहर से बंद कर मैं आंगन में ज्योतिर्मयी के करीब जा खड़ा हुआ। शरद का चांदनी से सारा आंगन नहाया हुआ था। आंगन में पौधों पर धूपछांही छटा थी। चिकने हरे पत्तों पर चांदनी फिसली पड़ रही थी। सफेद, लाल, पीले फूलों की आभा शीतल किरणों के स्पर्श से सुगंध के साथ अनोखी छटा लिये दमक रही थी।

जयी ने भोलेपन के अनजाने सा मेरा हाथ थाम रखा था। चांद की ओर टकटकी लगाए वह बोली - "देखिये। कैसा सुन्दर लग रहा है न **?**"

पूर्णिमा का चांद सचमुच बहुत खूबसूरत लग रहा था। कुछ पल चांद को निहारते मैने उस मुखड़े को निहारा जो चांद को निहार रहा था। चांदनी में नहायी जयी की देह और उसके मुखड़े की सुंदरता को शुभ्र निशा की कोमलता ने द्विगुणित कर दिया था। निरभ्र शीतल आकाश से काम मुझमें उतर चला और काम की रति साकार सौन्दर्य की प्रतिमा जयी बनी समीप खड़ी थी। ज्योतिर्मयी को वक्ष पर खींच चिबुक को उंगलियों में थाम उसके सुंदर मुखड़े को निहारते मैने जवाब दिया -

" सचमुच बहुत खूबसूरत, लेकिन धरती पर इस वक्त मेरी चांदनी से कमतर।"

"सच ?"-उसने पूछा।

"सच" ! मैने कहा। इससे पहले कि आगे वह कुछ बोल पाती, मेरे ओठ उसके ओठों से जा भिड़े थे। उस वक्त ऐसा लगता था जैसे देह में संचित आनंद की मदिरा जयी और मेरे अधरों में उतर आई थी। वक्षों के भिड़न्त की आग में बार-बार उबाल लेती वह मदिरा अनवरत गति से हमारे ओठों पर उतरती आ रही थी। उसका पान करती कायाएं खुद भी उफान मारतीं अपने कवच फेक सारा उबाल लतावत् युग्मित दूसरी देह की धरती पर बिखेर डालने अकुलाई जा रही थीं। बुनाई में लिपटती, ऐंठती, बार-बार बल खाती, और चक्करदार घुमाओं में हर फेर के साथ अलग हुई जान पड़तीं भी पलटकर और अधिक आवेग से गुंथी जाती डोरियों की हालत में लड़खड़ाती ज्योतिर्मयी और मेरी कायाएं धराशायी होने उतारू होती ली जा रही थीं।

सांसों के तूफान को थामे जयी का हांफता स्वर न सुना जाने जैसा सुन पड़ा -" मुझसे संभाला नहीं जा रहा है....जीजाजी चलिये प्लीज़..।"

ज्योतिर्मयी को, जिसे प्यार से मैं जयी कहता था, उसकी कोमल कटि से अपनी बांहों में घेर मैने अपनी काया में समेट लिया था। अधरों और छातियों की कसमकस से अपने को न संभाल पाती जयी का मुखड़ा मुझमें धंसता हुआ समर्पण मे समाया जा रहा था। उसी अवस्था में मेरे कदम दालान की उभरी सतह तक बढ़े, जहां अपनी काया की चादर में गठरी की मानिन्द कसकर बांधते हुए जया को मैने इस तरह लिटा दिया कि उसकी जंघाओं से नीचे का भाग आंगन की धरती के हिस्से पड़ा और उसके ऊपर का हिस्सा दालान की उठी हुई समतल सतह पर मेरी छाती को छेड़ते गुलगुले बिस्तर की तरह बिछ चला था। जयी के खूबसूरत चिकने गालों पर मेरे गाल मचल रहे थे और होठ नाज़ुक पंखुड़ियों के समान उसके अधरों से एक-दूसरे को लील जाने की होड़ में लगे थे। मेरे हाथों की उंगलियां जयी के सुपुष्ट नितंबों पर दबाव डालतीं उनके सामर्थ्य को टटोल रही थीं और टांगें जयी के फैले घुटनों के पार तनकर फैल चली थीं।

तब अचानक वह क्षण आया जब भूकंप सा उठा। मेरी टांगों को पीछे से उछालते जैसे किसी ने यूं झटका दिया कि जया की उरु-संधि में बड़े जतन से सुनहरी झाड़ियों के बीच छिप चले उसके गोपन अधरोष्ठों पर पूरी कठोरता के साथ टक्कर देता मैं जा चिपका था।

"आह...! ज़रा धीरे से प्लीज़" - शून्य में यह जयी के स्वरों की आहट थी।

तब उसके बाद कामनाओं की हलचल में तूफान का आवेग क्रमशः दिलो-दिमाग और देहों की युग्मित शिराओं को आच्छन्न करता चला गया था। इस तरह कि उन पलों में न जयी शेष रही और न मैं बच रहा। केवल रस की एक निर्झरणी थी जो हमें तब तक बहाती चली गई थी, जब तक बहुत दूर हमारी कायाएं श्लथ अचेतता में किनारे नही जा पड़ी थीं। दैहिक-संवाद का वह अविस्मरणीय संयोग पुनः आकार पाने फिर सदैव काया-युग्मों में तरसता ही रहा।

प्रियहरि की आंखों में वे दिन तैर आए जब उसके अनुहार पर एक सप्ताह के लिए ज्योतिर्मयी उसके यहां चली आई थी। सप्ताह भर रही आई लेकिन बहन की निगाहों की ऐसी बेरुख कैद में कि बाजार, बागीचा, सिनेमा, नगर की सैर, रेस्टोरेन्ट, मेला, प्रदर्शनी वगैरह तो दूर रहे आए, घर में भी उससे बचकर एक कमरे से दूसरे कमरे में चला जाना तक मुहाल हो गया। उसे यूं बरता जाता जैसे हुकुम से पाबंद वह कोई सेविका हो। बातें करना तो क्या, ज्योतिर्मयी और प्रियहरि का एक-दूसरे के सामने होना भी असंभव बना दिया गया था।

दबी जुबान से अगर दोनों ने बाहर कहीं चलने की बात की भी तो उसकी बहनजी ने यह कह कर्फ्यू लगा दिया कि - " तुम क्यों चिन्ता करते रहते हो बेकार ? तुम अपना काम करो न ! जाना होगा तो हम चले जाएंगे।"

अपनी ही बहन की वैसी बेरुखी से जयी का मुंह उतर आता। वह सब समझती थी। उसे बुरा लगता था लेकिन वह कह कुछ न सकती थी। बस अपना सा मुंह लिये वह मेरी ओर अर्थभरी निगाहों से तकती और और मैं था कि लाचार उन निगाहों से जूझता रह जाया करता था।

सात दिन यूं ही दोनों के घुटन में बीत गए। ज्योतिर्मयी के लिये वैसा वातावरण बिलकुल ही अनपेक्षित था। वह पशोपेश में जड़ हो चली थी और प्रियहरि बहुत शर्मिन्दा था। राहत तब मिली, जब आठवें दिन सुबह-सुबह रिक्शा बुला ज्योतिर्मयी को रेल से विदा करने वह साथ गया। ठंड के दिन थे। रिक्शे से घर ओझल हुआ और हल्की सी शाल में प्रियहरि ने अपने साथ ज्योतिर्मयी को ढक लिया। तरसकर रह गए बदन अब राहत मे एक-दूसरे से सटे ठंडक पा रहे थे। हाथों की अंगुलियां एक-दूजे में गुंथीं उस आनंद का आभास करा रहीं थीं जिससे वे वंचित रह गये थे। आंखों मे ही एक-दूसरे को पीते दोनों अब तेज गति से भागे जा रहे इस वक्त में बतियाते दिल की कसर निकाल रहे थे। अपने काम पर ही निकल जाने के बहाने प्रियहरि ट्रेन मे ज्योतिर्मयी के साथ चिपका चार स्टेशन आगे तक साथ चला गया था। रिज़र्वेशन न होता ; गंतव्य सोलह घंटे दूर न होता ; और पहले से उनके बीच वैसी कोई योजना बन सकती तो प्रियहरि बीच में ही माकूल जगह पर ज्योतिर्मयी के संग कहीं उतरकर रुक जाने के मूड में था । कम से कम दो दिन का समय ज्योतिर्मयी के साथ रह वह उस तरह सुकून में गुजार लेना चाहता था जिसमें उसकी और ज्योतिर्मयी की चाहतें खुलकर गले मिलतीं। कहने-सुनने को रह गईं ढेर सारी बातों के बीच इस उतावले खयाल पर भी ज्योतिर्मयी से वह मुखातिब रहा, लेकिन रेल की गति इन दोनो की उधेड़बुन से तेज थी। सारा-कुछ खोया-खोया सा छोड़ प्रियहरि को ज्योतिर्मयी से जुदा होकर मायूसी लिये बीच में ही उतर जाना पड़ा।

मैत्रेयी - जयन्ती...

"ये जिन्दगी भी क्या है ? मुझे तो लगता है कि टु बी मैरिड ईज़ यूज़लेस। मैं तो लिव-इन रिलेशनशिप को प्रिफर करती हूं। आई डोन्ट नो व्हाट डू यू फील।"

वह क्या था और उसके साथ वैसा क्यों हो रहा था प्रियहरि समझने में असमर्थ था। उसने अनेक बार सोचा है कि अब वह स्त्री-पुरुष के ऐसे व्यापार से दूर रहेगा, जहां दुनिया-जहान को भुला उसका दिल फंसकर अटक रहा आता है, लेकिन न जाने क्यों वैसे संयोग अपने आप प्रकट होते और उसे बहा ले जाते थे। सारा-कुछ इसके बावजूद होता चला जा रहा था कि साथ आए पर वह बिन्दास अपनी बातों, अपने इरादों, अपनी हरकतों से खुद को उजागर कर देता था। बातों-बातों में वह अपनी संभावित सहचरी से यह साफ तौर पर कह जाता कि वह संबोधनीय रिश्तों को फिज़ूल मानता है। बेलौस और बेशर्म वह कह जाता है कि औरत के उस उम्र तक पहुंच जाने के बाद जहां देह अपना बोध तीव्रता से कराने लगती है अपरिचित दो के बीच केवल स्त्री और पुरुष की पहचान ही सारत: बच रहती है। वह साफ़ कह रहा होता है कि उन लोगों को वह ढोंगी समझता है, जो बहनजी या बेटा-बेटा करते औरत के हाथ, कंधे, पीठ और गाल तक बहानों से पहुंचते हैं। ऐसा करते वह चाहता कि पहली बार में ही करीब आती उसकी संभावित सहचरी सच को जानती उससे छिटक कर दूर भाग जाए। लेकिन तब उसने अक्सर पाया कि उसकी वैसी साफ-गोई का असर ठीक उलटा ही होता। जिसके भाग खड़े होने की उम्मीद होती वह "नहीं, वैसा नहीं होना चाहिये" कहती भी फिर-फिर प्रियहरि से आ चिपकती थी।

अब इस गहरी श्यामलता की रंगत किन्तु नमकीन नक्शों वाली छरहरी क्षीणकाय मैत्रेयी को ही देखिये। इससे पहले मैने उसे देखा नहीं, लेकिन न जाने कैसे मुझे जानती वह मुझपर

मुग्ध है ? श्यामता में रक्तिम लालिमा लिये उसके बारीक अधर यूं दिखाई पड़ते हैं जैसे राख की चुटकी में अंगार दहक रहे हों। उसकी साधारण सी आंखों में उदास दार्शनिक की चमक है। हां, ठीक वैसी ही जैसी मुझमे हैं। इसीलिए शायद हम दुर्निवार गति से परस्पर आकर्षण में बंध चले हैं। यह उसके बावजूद है कि मुझे जानने वाले साथी पहले ही ढिंढोरा पीट चुके होते हैं कि सावधान ये उम्र और ज्ञान में हमसे बहुत बड़े हैं, परम पूज्य हैं। उनकी बात सामने वाला एक कान से सुनता दूसरे कान से निकाल देता है। वह उस सामने वाले को विकर्षित करने की जगह मेरी ओर और अधिक खींचता है। शायद इसलिये कि उसके सामने वह नहीं होता जो वे दिखाना चाहते हैं।

"इन दिनों क्या पढ़ रही हो ?" - मैं पूछता हूं।

"कुछ खास नहीं। बस यूं ही यह थीसिस पलट रही थी।"

" हो गया काम पूरा तुम्हारा ?"

"हां, कर लिया । इन्टरनेट से अच्छी मदद मिल गयी तो काम अच्छा हो गया।"

इस प्रथम परिचय मे भी जैसे ही वह तीसरा उठकर जाता है, हम संकोच छोड़कर इस तरह बातें शुरू करते हैं, जैसे बरसों से एक-दूसरे को जानते हैं।

" मैत्रेयी, देयर ईज़ समथिंग इन यू...वेरी डीप इन युवर आइज़। दैट सेइज़ ए लॉट। समथिंग दैट मैक्स अस कॉमन'

" हां, इसीलिये तो आप मुझे अच्छे लगते हैं। ये जिन्दगी भी क्या है ? मुझे तो लगता है कि टु बी मैरिड ईज़ यूज़लेस। मैं तो लिव-इन रिलेशनशिप को प्रिफर करती हूं। आई डोन्ट नो व्हाट डू यू फील।"

"यार तुम सच्ची दार्शनिक हो। व्हाट यू सैड ईज़ परफैक्टली करैक्ट। मैं खुद भी वैसा सोचता हूँ।"

"मुझे शैक्सपीयर बहुत पसंद हैं। ठीक कहा है कि फ्रायल्टी दाइ नैम इज़ वूमैन। है ना ठीक?"-वह कहती है।

मैं सकते में पड़ जाता हूं। औरत होकर इसने ऐसा कहा। क्या इसने मुझे पढ़ लिया है?

नहीं। मेरा मन कहता है कि अपनी साधारणता में भी मुझे लुभाती इस श्यामांगी की आँखों में छाई दार्शनिक उदासी और व्यक्तित्व को लीलते विरक्ति के भाव अवश्य उसके अपने घर के उस अनुभव से चिपक कर साथ चलते हैं जहां उसने माता और पिता के बीच स्त्री और पुरुष के बीच संबंधों का संधान किया है। मैत्रेयी और मै महसूस करते हैं कि कभी फुरसत से मिलें और खुलकर दिल की बातें करें। दोबारा मुलाकात अचानक बिल्डिंग के बाहर नीचे होती है। हम दोनों बातें करते हैं। मन नहीं भरता। वह फुरसत में मुझसे मिलने का वादा करती है। घर का पता लेती है। बारीकी से लोकेशन नोट करती है। मेरा नंबर लेती है और पूछती है कि पहुंचने में दिक्कत हुई तो आसपास से रिंग कर लेगी। मैं उसे आश्वस्त करता हूं कि वह कॉल करेगी तो मैं उसे लेने आ जाऊँगा।

मैत्रेयी से तब से मुलाकात नहीं हुई। मेरा संकोच कि पुरुष का स्त्री को अपनी ओर से रिंग करना मुसीबत का कारण बन सकता है। उसके साथ भी वैसा ही कुछ होगा। स्त्री का स्त्री होना ही अपने आप में एक मुसीबत है। स्मृतियों के क्षण बहुत हैं। बहुत-कुछ कहने को आतुर मैत्रेयी की उदास आंखों से आलिंगन क्या अब संभव हो पाएगा ?

प्रियहरि को जयन्ती की याद आाती है, जो समूह में रहकर उसकी बातें रोज़ सुनती रही थी। भाषा के संस्कार, अभिव्यक्ति का कौशल, खूबसूरत लिखावट, और सुलझी हुई समझ वाली संगिनी उसपर जादुई असर छोड़ती थी। यौवन की कसावट में खूब गदराए बदन की जयन्ती वैसी ही थी। एकांत में दो दिन साथ बैठते सहधर्मिता के संस्कार फिर यूं मिले कि तीसरे दिन ही सुबह-सुबह सकुचाते और लजाते जयन्ती ने अपनी डायरी में लिखा भावनाओं का वह प्रशंसा-पत्र शब्दश: उसके चरणों को समर्पित कर दिया था जिसमें यह कामना थी कि काश, वह भी उस जैसी हो पाती जैसा वह है और सदैव उसका साथ पा सकती।

..और सुनयना

उसे न छूने की तरह ही छुआ गया होगा। अगर सचमुच छुआ गया होता तो स्वर्णिम देह-कांति उस छुअन से जरूर स्पर्श-धूमिलता को उजागर कर देती। शहद से मीठे बोलों में ऐसी बचकानी चंचलता कि लगता जैसे जवानी के प्यार से वह अब भी नावाकिफ़ है।

प्रियहरि को वह सुनयना याद आती है, जो उसके प्रभाव में इतनी अभिभूत थी कि यह घोषणा करने में उसे तनिक भी संकोच न हुआ कि उस सा अद्भुत व्यक्तित्व उसने अपने अब तक के अनुभव में कहीं नहीं पाया। वह सामने बैठी होती। बिन्दास प्रियहरि को निहारती और अपने में मगन मुस्कुराती। इतनी चंचल अदाएं कि लगता जैसे छोटे-छोटे दांतों के बीच एक नन्हे से तिर्यक दांत को सजाए उसके सवा इंची विस्तार वाली नाजुक होठों की पतली सी धार अर्थभरी खिलखिलाहट में प्रियहरि को चिढ़ाती खिझा रही है - " नन्हे राजा, बिल्कुल बच्चे तो हो। ठीक मेरी माप में। जी चाहता है न सुनती हुई तुम्हें सुनती जाऊं और समेट कर अपनी जेब में डाल लूं।"

प्रियहरि कभी सुनयना की की अदाओं पर मुग्ध होता और कभी उसकी आंखों की चुहल पर खीझता। प्रियहरि गौर से देखता। उसे विश्वास न होता कि वह शादीशुदा औरत हो सकती है। शिशुता की झलक अभी उसमें छुटी न थी। वह बता रही थी कि अभी भी वह अक्षतयोनि है। उसे न छूने की तरह ही छुआ गया होगा। अगर सचमुच छुआ गया होता तो स्वर्णिम देह-कांति उस छुअन से जरूर स्पर्श-धूमिलता को उजागर कर देती। शहद से मीठे बोलों में ऐसी बचकानी चंचलता कि लगता जैसे जवानी के प्यार से वह अब भी नावाकिफ़ है। उसे प्रियहरि से शायद वैसे ही सबक की दरकार थी। जरूर कोमल सुनयना को वैसे ही कठोर छुअन की दरकार थी जो उसे औरत होने का वह मज़ा दे जिसके अभी उसने केवल सपने ही देखे थे।

प्रियहरि देखता और सोचता कि आमंत्रित करने वाली वह इस छुई-मुई सी गुड़िया का करे भी तो क्या करे ? बिलकुल नन्हीं कोमल काया। नन्हीं-नन्हीं कोमल टांगें। छोटे-छोटे हाथों की नाजुक कलाइयां। नाजुक कलाइयों पर छोटी-छोटी हथेलियां। उन नन्हीं हथेलियों पर पतली-पतली नाजुक अंगुलियां। बालापन में अपनी चिकनाई के साथ लहराते अपुष्ट कोमल नितंब। उन कोमल नितंबों और नई फसल में पेड़ पर मुसंबियों की मानिन्द सज्जित कच्ची छातियों के बीच कच्ची डाली की तरह लचकती कमर जो बमुश्किल सोलह के माप की होगी। रस की सहज लालिमा से भरे होठों की फांकें ऐसी पतली, इतनी नाजुक, और इन्च भर की माप में ऐसी सिमटीं कि गुलाई में आकर वे मुंह में ज्यादा से ज्यादा आधे इन्च की दरार खोलतीं।

सुनयना की आंखो में झांकता प्रियहरि तब उस दृश्य में खोया होता जहां संभालने सुनयना की निगाहें उसे बांधे होतीं। वह देखता कि सुनयना के होठों की पतली दरारें उसकी फूलती गांठ को दरवाजे पर ही नहीं संभल पा रही है। विस्मय से सुनयना की आंखें फैलकर फटी जा रही हैं और तब भी उसकी आतुरता जीभ की नन्ही फुनगी से रस-सिक्त करती उसे निगलने पर उतारू है। वह देखता होता कि कोमल और ताजी-ताजी सुनहली झुरमुटों के बीच भी एक झीनी दरार है। बस उतनी ही गहरी, वैसी ही सिमटी, उतनी ही नाजुक होगी जितनी सुनयना की मध्यमा अंगुली यानी ब-मुश्किल अढ़ाई इंच। प्रियहरि कल्पना करता भी सिहरता। वह क्या संभाल पाएगी ? कल्पना में भी उसे सुनयना के भूगोल को क्षत-विक्षत करने से पहले संकोच में ठिठक जाना होता। उस नन्हीं नाजुक गुड़िया को बहुत हौले-हौले पिघलाते उसे संभलना होगा। सुनयना की बारीक कटि मुट्ठी में समा गुम हो रही थी और नन्ही-नन्ही छातियां बांहों के घेरे में सुनयना को पिघलाकर तब प्रियहरि की काया में विलीन कर चुकी होतीं। दोनों के बीच केवल इस अहसास को बचा रहा आना था कि सुनयना प्रियहरि को अपने में प्रविष्ट पाती और प्रियहरि सुनयना में अपनी भरपूरियत के साथ रहा आता। सुनयना का अल्हड़ चंचलपन अपने अंदर की चपल बालिका को भरपूर औरत में बदलकर यौवन-सुख के चरम शिखर पर सवार हो जाने की उत्कट कामना थी। वह प्रियहरि में भी अपने जैसा एक सरल किन्तु औरत के लिये काम्य प्रौढ़ शिशु को छिपा

पाती थी। पहलवानी की क्रूरता से रहित किन्तु पौरुष के सारे अनुभवों से भरपूर वैसा सहभोगी जो सर्वथा उसके अनुरूप हो। उधर प्रियहरि अपनी प्रौढ़ता को सुनयना में विलीन करता भी उसे हमेशा के लिये उसी सुनयना को अपने सामने बनाये रखना चाहता, जो इस वक्त उसके सामने थी।

सुनयना चाहती थी कि प्रियहरि की समीपता उसे मिले और वह था कि सुनयना की सुन्दरता से अभिभूत होकर भी बुद्धि के स्तर पर अपनी संगत के काबिल नहीं देख उसकी उपेक्षा करता डांटता था। सुनयना प्रियहरि की नाराजगी का मजा लेती। औरों के करीब होता देख वह लपककर प्रियहरि को खुद पकड़ लेती। बिला लाग-लपेट वह शिकायत करती -
" आप मुझसे नाराज़ क्यों होते हैं? मुझे चंचल देखकर आप सोचते हैं मैं आप की तरफ ध्यान नहीं देती। वह तो मेरा स्वभव है। न जाने क्यों मैं गंभीर रह ही नहीं पाती। कोई न कोई शरारत सूझती रहती है। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि आप से मैं दूर हो जाती हूं। गलतफहमी निकाल दीजिये। मुझे आप ही सब से ज्यादा पसंद हैं।"

प्रियहरि दूर रहता तो वह खुद पूछ लेती या बाहर प्रतीक्षा करती उसकी सवारी में साथ होती कहती -
"चलिये, मुझे जहां तक जा सकते हैं, ले चलकर छोड़ दीजिये।"

प्रियहरि सुदूर कन्याकुमारी समुद्र के तट पर रात नौ बजे बैठा है और सुनयना की काल आती है -
"आप कहां नाराज़ होकर चले गए हैं। आप से काम था। रोज़ याद करती हूं, आप को ढूंढती हूं लेकिन आप मिलते ही नहीं।"

भीड़ में भी अपने एकाकीपन से उदास वह कहता है -" झूठी, जब वहां रहता हूं तब तुम भीड़ में व्यस्त रहतीं नज़र नही आतीं और जब भागकर यहां दूर हूं तब कहती हो कि मेरी याद आ रही है।"

सुनयना जवाब देती है " न जाने क्यों आप को वैसा लगता है ? मैं सच कहती हूं। मुझे आप की बहुत याद आती है।" वह कहती है -" आप को वैसा लगता होगा। पर मैं बताऊं ? आप अपनी कीमत नहीं जानते कि आप क्या हैं ? आप सामने रहें या न रहें, यहां हर कोई आप को याद करता है और भरपूर तारीफ करता है। दूसरा कोई ठहरता ही नहीं आप के सामने जो आप जैसा हो। बाकी सब तो खाना-पूरी वाले हैं। आप का कोई विकल्प नहीं। बताइये कब आ रहे हैं। मैं आप का इंतजार कर रही हूं।"

प्रियहरि सुनयना को बताता है कि वह कन्याकुमारी के तट पर है। वह उसे सागर की गरजती लहरों की ध्वनि से रू-ब-रू कराता है। सुनयना अफसोस करती है कि काश, वह साथ होती और प्रियहरि के अनुभवों को एन्जाय कर पाती।

इस सुनयना से प्रियहरि को उस दूसरी सुनयना की याद आती है, जो ठीक ऐसी ही सरल थी, ऐसी ही अल्हड़, बेदाग सुन्दर और कोमला। उसने संदेशा भिजवाया था कि वह आ रही है। तब बीच में क्या आ गया - भाग्य ? परिस्थितियां ?

सुनयनाओं की लता सी नाजुक कायाओं को देखते प्रियहरि के चित्त में वे कायाएं तैरतीं, जो इनसे अवस्था में पांच-सात साल कम होती भीं पकी हुआ करती थीं। भरी हुई पुष्ट बांहों को देखकर ही कहा जा सकता था कि वहां ठोस यौवन भरा है। चुस्त टांगें और कसी जंघाएं बता देतीं कि उनमें झेल जाने की भरपूर काबिलियल है। अवस्था के मान से पहले ही फूलकर चोंच निकाले अकड़ती छातियां उद्घोष करती होतीं कि अब उन्हें संभालने वाली हथेलियों की दरकार है। काया पर फिसलती सर्वांग चिकनाई आमंत्रित करती होती कि स्केटिंग के लिये मैदान खुल चुका है बस उद्घाटन की ही प्रतीक्षा है। चुस्ती और ताजगी से चमकते गालों की कसी हुई सुचिक्कणता बतला देती कि उनमें भोजन की भरपूर पौष्टिकता है। इनकी आंखों में चमकती आकुल अभिलाषा शिकायत करती होती कि बहुत इंतजार हो चला है और अब इस काया को काम्य दुर्घटना की ही प्रतीक्षा है। वैसे कैशोर्य की अनूठी छबि दर्शक आंखों को लुभती बरबस वहां खींच ले जाती, जहां गोपन पलकों

और बरौनियों के बीच बेताब मुंदी वह सपनीली आंख होती, जो अधरों की फांकों में छिपी लरज-लरज कर निरंतर गुनगुनाती होती -" आएगा..,आएगा.., आएगा - आएगा आने वाला।"

इस तरह सुनयनाएं पहले से उगी पे लताएं होतीं जो देर से बढ़ती हैं और इतनी नाजुक कि जरा सा झटका उनकी पतली शाखों को तोड़ जाने का संकोच पैदा करता था। उनके बरअक्स ये लताएं थीं जो उम्र में कम होने पर भी एसी चुस्त और मजबूत हुआ करतीं, जिन्हें थामकर ऊपर तक चढ़ा जा सकता था या मौज की तरंगों में लहरा-लहरा कर खूब झूला जी सकता था। यह दीगर बात थी कि सुनयना-लताएं जहां लंबी अवधि तक ताजी और हरी रही आती थीं, वहां जल्द बढ़ चली लताएं कुछ ही बरसों में प्राकृतिक कोमलता और रूप-रंग खोकर कठोर जिस्म की लतरों में तब्दील हो चलती थीं।

मेरे ही अंदर छिपा बाहर का वह आदमी मेरे ही अंदर के 'मुझ' को धमकाने आज फिर आ खड़ा हुआ है । यह बहुरूपी कौन है ? हूबहू मुझ सा है । मैं अपने-आप में रहना चाहता हूं। मैं समझता हूं कि अपनी देह, अपने चित्त ,अपने हृदय की मिल्कियत मेरी है। मालिक मैं हूं । वह, जो ज़रूर बाहर से मुझमें धकेला गया है ,मेरा अपना ही क्लोन है। यह अजीब है कि घर मेरा, और कब्जा वह किये है। गर्भाशय से बाहर आने के बाद जब से होश संभाला है, परछाईं की तरह वह मेरे पीछे लगा है। जब भी कैद की घुटन से घबराता मैने बाहर आना चाहा है, वह मेरी कालर पकड़ लेता है। मुझपर हावी होता कहता है कि मुझसे अलग तुम्हारा होना महज भ्रम है। कहता है कि मुझे देखो मैं ही असल हूं। मुझसे बाहर किसी का होना केवल न होना है। हां, तुम्हारा भी।

वह मुझे भ्रमित करता है। जो अब तक जिया उसे हस्तामलक की तरह मैं देख रहा हूं। गहराइयों में उतरता अपरिमित काल के उस खंड के हर पल से मैं गुजरता हूं। हाँ, वे सारे पल मेरे थे, लेकिन उन सारे पलों मे मैं बखुद नहीं था। ज्यादातर उसका था, जो मुझे अब भी धमकाता मेरे होने के खिलाफ खड़ा है। केवल उन पलों में मैने अपने होने को देखा है, जिनसे मिलकर मेरे होने की पहचान बनाता मेरा वह अस्तित्व समग्रत: अभिन्नता में प्रतिपल आज भी मुझमें धड़कता बेचैन किये जा रहा है। न होती बेचैनी अगर उनपर उस बाहर के बोझ की निषेधाज्ञा नहीं होती। मैं ही क्यों, क्या उन सबों के अंदर कैद उन एक-एक में छटपटाहट का वही संगीत किन्हीं कोनों में अलग-अलग रागिनियों में ठीक वैसे ही न चीख रहा होगा जैसा वह मुझमें है। मैं सोचता हूं कि जिन्दगी वह थी जो मेरे अनचाहे भी और विवशताओं से मजबूर करता मुझपर सवार वह जीता गया है, या वह जिसे अपने उस -एक -कैद के विराट फैलाव में अनिवार्यत: समूची सृष्टि में पसरी हुई पाता हूं। संभवत: वही सच सभी में कैद है जो अपने अनुभव से मैं पाता हूं। यह बात बाद में आती है कि उसकी बेचैनी से निजात पाने के लिये लोग दारू और चरस से लेकर महानता की तरकीबों तक साधन करते अपने गोपन कैद को नकारते दफ्न करने में सफल हो जाते हैं।
बकौल मियां ग़ालिब -
हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन
दिल के बहलाने को ग़ालिब ये ख़याल अच्छा है।

प्रियहरि : सौदामिनी

मुझसे क्या पूछते हो हाल मेरा
अपने दिल से ही पूछकर देखो - मौलिक

प्रियहरि और सौदामिनी दोनों अतीत के उस अंतरंग प्रसंग को छूना चाहते थे लेकिन संकोच की एक दीवार थी, जो उन्हें वैसा करने न देती थी। आखिर वह मुहूर्त निकल ही आया जब अनिंद्य सुन्दरता की प्रतिमूर्ति सौदामिनी रानी के पिघले मन ने ही एक दिन वह दीवार तोड़ दी।

वनमाला की बड़े दफ्तर की स्त्रोत उसकी परिचित और कथित रूप से घनिष्ठ सुन्दरी सौदामिनी अब धीरे-धीरे प्रियहरि के करीब आ गई थी। अन्यों की तुलना में प्रियहरि के सौदामिनी से संबंधों में अंतर यह था कि वनमाला और प्रियहरि के बीच के किस्सों का आभास उसे अच्छी तरह था। समूचे खेल के चरमोत्कर्ष में सौदामिनी की अपनी भूमिका प्रियहरि की आंखों के सूनेपन को मौन में झांकने और रहस्यमय मुस्कुराहट बिखेरने तक रही आई थी। जितना जाना था, उससे पार और अंदर गहराई तक झांकने की चाहत सौदामिनी में भी अवश्य बाकी रही होगी, लेकिन उसके निकट जाकर भी प्रियहरि प्रायः उससे दूर रहता। वह बखूबी समझता था कि अपनी प्रकट सरलता के बावजूद सौदामिनी औरों से ज्यादा चतुर कुटिल और महात्वाकांक्षी थी।

अपने प्रति सौदामिनी की तारीफें और उसी जैसा गुणी होने की उसकी चाहतों से प्रियहरि बखूबी वाकिफ हो चला था। तब भी दिल-जोडने वाला मामला इस अनिन्द्य सुंदरी सौदामिनी के मुआमले में उसके लिये उतना सहज नहीं था। उच्चवर्ग की लॉबी की वह चहेती थी और चाहत का हर मुकाम हासिल कर लेने का माद्दा उसकी देहयष्टि में था। जवानी के कसाव और सारी खूबसूरती के बावजूद ऊपर की लॉबी में घनिष्ठ संपर्कों या रखरखाव की अतिविश्वास भरी उसकी लापरवाही के कारण, सौदामिनी की काया पिघली पड़ रही थी। सौदामिनी लुभावनी थी । यह असंभव भी न था कि प्रियहरि उसपर डोरे डालता। पर तब अभी-अभी इसकी प्रौढ़ा सखी की आग से नहाकर आये उसके दिल को गवारा न हुआ कि अब वह यहां इस धधकती ज्वालामुखी में धंस कर भस्म हो जाने का खतरा मोल ले ।

श्यामा सुंदरी सुरम्या और कोमल गौरी सौदामिनी दोनों अफसरों की चहेती थी। इन दोनों की अपनी ठसक थी, लेकिन दोनों में और प्रियहरि के प्रति इन दोनों के रुख में भी बहुत फ़र्क था। सुरम्या की अकड़भरी निगाह में प्रियहरि की सिधाई और सादगी छिपे रुस्तम और चालाक बेवफा मर्द की थी। इसके विपरीत सौदामिनी के मन में उसके लिए इज्ज़त, सहानुभूति और अफसोस था। छरहरी कोमलांगी सौदामिनी की काया में प्रियहरि को ग्रीक सुन्दरता की भारतीय छवि दिखाई पड़ती थी। ओहदे का फर्क और सरकारी फाइलों से झांकती उम्र की दूरी तो छिपाये भी नही छिपते। फिर परिस्थितियों का भारी अंतर था। अगर ऐसी बाधाएं न होतीं तो प्रियहरि की चाहत और उसके लिये सौदामिनी की निगाहों में तैरती अफसोस-भरी दिलचस्पी के बीच वह पुल शायद बन पाता जिससे गुजरना दोनों के लिये दिलचस्प होता। हां, वह पुल, जो प्रियहरि की अर्थभरी, आमंत्रित करती सूनी निगाहों की कशिश में सौदामिनी की आंखों को बांध सकता था। वह कठिन था, पर असंभव कतई न था।

सौदामिनी में भी प्रियहरि की काबिलियत, ज्ञान, भाषा और वाक्कौशल को छूने की वैसी ही आकांक्षा थी, जैसी पहले संगत में आई और उसे महसूस कर चुकी किसी भी रमणी में बचते-बचते भी अंकुरित हो आया करती थी।सौदामिनी से प्रियहरि का सान्निध्य धीरे-धीरे बढ़ता गया था। सौदामिनी की स्पृहा यदा-कदा जुबान पर आने लगी थी -" प्रियहरि, मुझमें वह कुछ क्यों नहीं है, जो आप में है। काश हम भी आप की तरह हो पाते।"

फ़र्क बस इतना था कि माहौल की व्यस्तताओं और नई-नई निकटता की वजह से उनमें नजदीकियों की दूरी बनी हुई थी। सौदामिनी का साथ प्रियहरि में एक साथ ही राहत की खुशी और उन दूरियों की उदासी भर जाता था, जिनके बीच वनमाला की यादों का पुल था। प्रियहरि का दिल चाहता कि दूरियों का संकोच खत्म हो । सौदामिनी की छिपी सहानुभूति उस सच का कभी खुलकर बयान करे जो वनमाला और प्रियहरि के बीच उसने देखा और अनुभव किया था।

वह चाहता था कि सौदामिनी के दिल का अफसोस उसके लिए ऐसी हमदर्दी और पछतावे तक पहुंचे कि उससे लिपटती वह कह सके -"हाय प्रियहरि, आपको समझने में वनमाला ने भूल की और अफसोस कि उसमें मुझे सहभागी बनना पड़ा।"

सामने बैठी सौदामिनी की उन अफसोसज़दा आंखों में तब प्रियहरि झांकता जो उसके लिये तारीफ से लबालब भरी हुआ करती थीं। वैसे हालात की संभावनाओं में टहलता हुआ प्रियहरि सुंदरी सौदामिनी

की कटि को एक बांह से घेरे उसकी उसकी पुष्ट ,मांसल दूधिया छातियों से अपने को चिपका हुआ पाता। मदोन्मत्ता में तने और अकड़े जा रहे ,रोमांच में लहराते ,कोमलता मे कठोर हुए जा रहे अपने खुद के नियंत्रणेतर नन्हे कोमल अस्तित्व को सुन्दरी सौदामिनी की नाज़ुक गुदगुदी संकोच-शिराओं में अटकाए प्रियहरि तब उसके रसीले सुर्ख लबों को चुइंगम की तरह चूसता प्यार से बुदबुदाता कहता -"प्यारी सौदामिनी रानी अफसोस क्यों करती हो ? वही नासमझी तो हमारी खुशकिस्मती है। वैसा न होता तो तुम्हारे कोमल गुदगुदे बदन की इस गुदगुदी की मौज कहां होती ? हां, वह मौज, जो स्फटिक गुलाबी आभा में दमकती तुम्हारी उरु-संधि अंधेरी कंदरा के रस को नलदंड की शिराओं से हमारे दिलो-दिमाग तक पहुंचाती मुझे और तुम्हे सराबोर किए है।

उस खास एक दिन जब का यह जिक्र है प्रियहरि उदासी के बादलों से घिरा बैठा था। सौदामिनी अपने सतत् अनुभवों में प्रियहरि के तौर तरीकों और स्वभाव को दर्ज करती रही थी। प्रियहरि बहुत संकोची और विनम्र था। सौदामिनी रानी ने पाया था कि सचमुच वह दुर्लभ प्रतिभा और कौशल का धनी था। वह सोचती और यदाकदा प्रियहरि से कहती भी कि प्रियहरि के वे सब गुण काश उसे मिल जाते। जब-जब प्रियहरि को सौदामिनी देखती तब-तब वह पाती कि अपने सारे कुछ के बावजूद उदासी के अदृश्य अंधेरों में अन्यमनस्क प्रियहरि का मन डूबा हुआ है। उसने कभी न अतीत की चर्चा की थी और न कभी वनमाला के प्रति शिकायत का एक शब्द कहा था। सौदामिनी पाती कि कोई गम था, जो अंदर ही अंदर उस प्रियहरि को खाए जा रहा था। प्रियहरि की मासूम उदासी अक्सर उसमें भी संक्रमित हो जाती थी। दोनों अतीत के उस अंतरंग प्रसंग को छूना चाहते थे लेकिन संकोच की एक दीवार थी, जो उन्हें वैसा करने न देती थी। आखिर वह मुहूर्त निकल ही आया जब अनिन्द्य सुन्दरता की प्रतिमूर्ति सौदामिनी रानी के पिघले मन ने ही एक दिन वह दीवार तोड़ दी।

मुहूर्त के उस एक दिन प्रियहरि के पास सौदामिनी आकर बैठ गई थी। मूड हल्का था। दरमियानी बातें दोनों के बीच चल रही थीं। अचानक सौदामिनी रानी ने कहा - "मैं बताऊँ पहले मेरी धारणा आपके प्रति अच्छी नहीं थी।"

प्रियहरि को बुरा लगा। उसने पूछा - "क्यों ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ?"

"नहीं वैसी बात नहीं है। मैं आपकी कद्र करती थी। आपसे प्रभावित भी हुई थी। आप को याद होगा कि आप से पहले ही कभी यहां संयोगवश मिल गए आप से प्रभावित हो चली थी। तब खुद पहल करके कुछ-एक कामों में आप से मैने अपने कामों में मदद भी ली थी। दरअसल बात बाद की है।"

सौदामिनी ने बताया कि आपकी चर्चा अक्सर यहां आपके यहां से आने वाले कुछ लोग किया करते थे। न मालूम वे कौन-कौन थे ? आप की शिकायतें आया करती थीं। इन बातों से आपकी इमेज मेरे मन में अच्छी नहीं थी। बाद में मैं आपके यहां गई भी, तो आप मिले नहीं। आपके यहां बहुतों से मिली थी। अधिकांश ने कहा था कि वे तो बहुत अच्छे हैं, किसी से खराब व्यवहार नहीं करते, सबकी मदद करते है वगैरह। लेकिन दबी-जुबान अनेक ने यह कहा कि वनमाला और आप का मामला पर्सनल है। लोगों ने कहा कि इन दोनों के चक्कर में सारा स्टॉफ परेशान हो जाता है।

प्रियहरि ने पूछा - "अच्छा यह बताओ कि खुद वनमाला ने क्या कहा ?"

सौदामिनी ने वही बताया जो प्रियहरि पहले सुन चुका था। प्रियहरि ने फिर पूछा - "क्या वनमाला ने मेरी बुराई नहीं की थी ?"

"नहीं, व्यक्तिगत तौर पर बुराई की कोई बात वनमाला ने नहीं कही। वनमाला को परेशानी बस यही थी कि उसकी उपेक्षा हो रही है जबकि उसी के संबंध आपके साथ सबसे अच्छे रहे थे। उसकी शिकायत थी कि उसने आपके साथ काम किया था और सबसे योग्य थी फिर भी आपने उसके साथ वैसा किया।" सौदामिनी रानी ने जवाब दिया।

सौदामिनी ने आगे कहा - "आपने वनमाला को समझने में गलती की। उसके घर आपके शिकायत वाली बात सुनकर तो खुद मुझको ही बुरा लगा था। आपको उसकी इज्जत का थोड़ा तो खयाल रखना था उसने तो आपके घर शिकायत नहीं की थी। बताइये शिकायत की थी क्या ?"

सौदामिनी रानी और प्रियहरि के संवाद के दौरान जो बातें सामने आई, उन्हें प्रियहरि पहले ही मानिक जी के मुंह से सुन चुका था। सौदामिनी रानी ने भी प्रायः वही सब बातें कही थी। प्रियहरि ने भी खुलकर सारी दास्तां सौदामिनी रानी को सुना दी थी। सौदामिनी रानी यह सुनकर चौंक गई कि विश्वास के बावजूद वनमाला बेवफा थी। वह किसी और से भी सचमुच ताल्लुकात बनाए उठा-पटक किया करती थी - "बाप रे, मुझको तो विश्वास नहीं होता कि वनमाला इस उमर में ऐसा कर रही थी। उसकी उमर तो मुझसे बहुत ज्यादा है। वह तो अधेड़ है, बूढ़ी हो चली है। दो-दो के साथ इसका चलता कैसे था ? एक साथ दो-दो ! मुझे विश्वास नहीं होता।"

प्रियहरि से वह पूछ रही थी - "लेकिन ये बताइए कि आप उसके चक्कर में कैसे आ गए ? क्या देख लिया आपने उसमें ? दीखने में वनमाला कोई खास तो है नहीं। बिल्कुल साधारण, सांवली, बल्कि काली सी है। सुन्दर तो बिल्कुल नहीं है। कहां आप और कहां वह ! आप उसके चक्कर में फंस कैसे गये ?"

सौदामिनी रानी को अचरज था कि प्रियहरि को चाहने वाले बहुतेरे हो सकते थे, लेकिन ऐसा क्या था कि वह वनमाला पर ही फिदा हो गया। उस दिन सौदामिनी प्रियहरि से यूं खुल गई थी कि उसके अपने जाने-हुए के पीछे छिपी बेचैनी प्रियहरि में छिपे हुए अनजाने को अंदर तक जान लेने बेताब थी। बातों के दरमियान जैसे समय रुक चला था। दिली बातों के रिश्तों से वे संदेह टूट चले थे, जो सौदामिनी और प्रियहरि की निकटता के बीच आ रहे थे। सौदामिनी जिस निष्कर्ष पर पहुची उसके अनुसार असल बात यह थी कि अलग-थलग पड़ जाने के कारण ही वनमाला प्रियहरि से नाराज थी। वनमाला को इसलिए बुरा लगता था कि वह उस पर ध्यान देता नहीं था ।

महिलाओं में ईर्ष्या बहुत होती है। सच तो यह है कि जाहिरा तौर पर आपस में उनका यह कहना भी कि " मैं बहुत अच्छी हूं, किसी से कोई मतलब नहीं रखती " उस एक अभाव-जन्य ईर्ष्या की अभिव्यक्ति ही होता है। यथार्थ में तो उसके पीछे यही छिपा होता है कि उस दूसरी साली के पीछे सब लट्टू रहते हैं और मैं अकेली पड़ी हूं। हर स्त्री के दिखाई पड़ रहे संकोच और सिधापे के पीछे यह उददम कामना छिपी होती है कि उसमें वह जादू भरा आकर्षण हो कि पुरुष मात्र की नजरें उससे ही बंधी रही आएं। खासकर किसी और स्त्री को ऐसे छैला-पुरुष के साथ बैठा-बतियाता देख, जो उनकी दिलचस्पी का कारण हो, उनकी टोही वृत्ति अनदेखे भी बहुत कुछ टोहती होती है।

दूसरे दिन प्रियहरि की एक और शुभ-चिन्तक प्रशंसिका मौका मिलते ही उसके केबिन में आ बैठी थी। प्रियहरि से उसने हंसकर पूछा - "क्या बात है प्रियहरि, आजकल तो आप बहुत छाए हुए हैं ? आपकी पूछ-परख खूब हो रही है। कल तो वह सुन्दरी खूब देर तक आपके पास बैठी रही थी। चाय नाश्ता चल रहा था । दोनों की जमकर बातें चल रही थी। आप लोग इतने मशगूल रहे कि किसी की तरफ ध्यान ही न था।"

उसका इशारा सौदामिनी की तरफ था। प्रियहरि ने जवाब दिया - "कुछ खास नहीं बस यूं ही बैठ गई थीं। किसी फाइल पर उनसे कुछ पूछना-समझना था।"

वह बोली - "ठीक है भई, आपको नहीं बताना है तो मत बताइए। मैंने तो बस यूं ही पूछ लिया। मुझे लगा कि उस बारे में बातें चल रही हैं। पूछा तो जरूर होगा आपने। कुछ बताया उसने ?"

प्रियहरि टाल गया - "हां बताया तो, मगर कुछ खास नहीं।" दोनों की बातों के बीच 'उस बारे' वाला संकेत वनमाला-प्रसंग से था।

इस नई संगिनी ने प्रियहरि से सहानुभूति जताते हुए कहा -" सौदामिनी तो उसकी सहेली थी। इसे सब मालूम था। इसने उसके खिलाफ तो कुछ किया नहीं और अब आपके पास बैठी चोंच लड़ा रही है। बोलती तो आपसे बहुत मीठा-मीठा है, लेकिन अंदर से है बहुत तेज। इसे आप कम न समझिएगा। इसको मालूम होगा सब, लेकिन बताया नहीं आपको। आपको पूछना था न इससे।"

वह नहीं जानती थी कि सौदामिनी सब-कुछ प्रियहरि को बता चुकी है। इस शुभचिन्तिका को सौदामिनी से रश्क हो रहा था। बोली - "आप की भी तो अब इससे अच्छी पटने लगी है। अब तो आप भी वी.आई.पी. है न भई, क्या बात है !"

वह नासमझ थी, लेकिन तुम !

प्रियहरि का दिल, उसका ज़मीर उसे धिक्कारते कि वनमाला तो औरत की जात थी, उसकी मजबूरियां हो सकती थीं ; वह नासमझ थी, लेकिन तुम ! तुम क्या ठहरे ?

यह बात दीगर थी कि उस रोज सौदामिनी का विश्वास जीतकर प्रियहरि ने राहत पा ली थी लेकिन कोई उसके दिल में झांकता तो पता चलता कि वैसी जीत पर अंदर-अंदर किस कदर शरम और पछतावे से धंसा जाता अपनी ही निगाह में वह गिरा पड़ता था। प्रियहरि का दिल उसे लालत-मलामत देता धिक्कारता कि छिः तुमने यह क्या किया ? जिस वनमाला के साथ तुमने मुहब्बत और भरोसे के पल गुजारे, लंबे-लंबे वादे किये और बरसों जान-देते तड़पते भी जिसकी एक झलक को तरसते इबादत की, उसी को जलील करते, उसकी बुराई करते तुम्हें शरम नहीं आई ? ग़ैर के सामने अपने प्यार को नंगा करते तुम्हें जरा भी अफसोस नहीं हुआ ? तुम उससे और वह तुमसे क्या जुदा है, जो अपने आप को ही तुम इस कदर नंगा करते फिरते हो ? और वह भी क्यों ? महज इसलिए कि दुनिया की नजरों में तुम अपने को बेहतर और अपने प्यार को बदतर साबित कर सको !

प्रियहरि का दिल, उसका ज़मीर उसे धिक्कारते कि वनमाला तो औरत की जात थी, उसकी मजबूरियां हो सकती थीं ; वह नासमझ थी, लेकिन तुम ! तुम क्या ठहरे ? तुम्हारी वह इज्जत करती थी, सारी तकलीफों के बावजूद वह तुम्हें चाहती खिंची चली आती थी, लेकिन तुमने क्या साबित किया ? तुम भी तो वैसे ही कमज़ोर निकले। पश्चाताप में डूबा प्रियहरि अपने आप से तब प्रश्न कर रहा होता है कि दोनों के दिल एक-दूसरे की तरफ खिंचे पड़ते थे मगर तब क्यों एक-दूसरे का भरोसा बरकरार करने की जगह इस और उस जमात के उन लोगों का विश्वास जीतने वनमाला उसकी और वह वनमाला की बुराइयां दूसरों से कर रहे होते थे ? हां, उन्हीं दूसरों से जो बाद में मिल-जुल कर प्रियहरि और वनमाला से ही सुने किस्सों के चटखारों से मन-बहलाते दोनों ही का मज़ाक उड़ाया करते थे।

सारे लक्षण दुनियाबी तौर पर प्रियहरि की जीत और खुशी के थे। लेकिन नहीं, तब भी प्रियहरि का मन जानता है कि उस एक औरत से दूरी की पीड़ा और निराशा के सामने उसका अपना सारा-कुछ बेमानी था । हां, वह एक और एकमेव, जो उसकी प्रिया थी और जिसका नाम वनमाला था। प्रियहरि अक्सर सोचा करता कि वनमाला पर और कुछ असर हुआ हो या न हो, इतना तो जरूर हुआ होगा कि वह शिद्दत के साथ महसूस करे कि उसके दिल का मुझे चुनना, उसका मुझ पर मरना, उसकी परख झूठी न थी। मैं इस काबिल था कि वनमाला मुझसे नाता जोड़े रख मुझे प्यार करती, मेरा प्यार पाती हमेशा खुश रह सकती थी। प्रियहरि सोचता कि यही वह अहसास था जिससे वह खुद वनमाला से और उसकी वनमाला उससे कभी जुदा नहीं हो सकते। प्रियहरि अपनी नियति को कोसता पछताता कि उस ही के दुर्भाग्य से अंतरंग और गुणों के तारों से जुड़ी अपनी परम प्रिया वनमाला के अभाव में वह हमेशा अधूरा रहा आएगा। यह क्रूर नियति का ही

तो खेल था कि किस्मत को, समय को, दुनियाबी रुकावटों को और बीच में रोड़ों की तरह आ खड़ी भीड़ को कोसने के अलावा अब प्रियहरि और वनमाला के पास क्या रह गया था ?

मुहब्बत और निजी भरोसे के ताल्लुकात में बेवफाई, शक-शुबहा, ईर्ष्या, गलतफहमियों तकरार की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए, लेकिन किस्मत की मार ऐसी कि वनमाला और प्रियहरि के दरम्यान प्यार का यही इतिहास रहा। प्यार और तकरार की ऐसी रस्साकसी कि जाहिरा तौर पर सारे ताल्लुकात खत्म हो गए। रह गई तो केवल तकरार में प्यार और प्यार में तकरार की यादें, जो दिल को अफसोस और दर्द के खौफनाक आलम में छोड़ गई। सोच मे खोया प्रियहरि अपने आप में संवादरत होता। प्यार को पाकर भी न पाना, उसके खो जाने की कल्पना से उपजा डरावना भय, उसे संभाल रखने की कश्मकश और फिर खो जाने के पछतावे से उपजी पीड़ा कितनी असहाय होती है, इसे वही समझ सकता था जो उसकी तरह स्वप्नों और दुःस्वप्नों के अनंत त्रासदायी दौर से गुजरा हो। घटनाएं गुजर जाती हैं और स्मृतियों को अनंतकाल तक तड़पाने अपनी छाप छोड़ जाती हैं। क्या उसकी वह प्रिया इस स्मृतियों से परे होगी ? कौन जाने ? दिल की बातें दिल ही जानता है। मगर क्या यह सच नहीं था कि दिल को दिमाग के अंधेरे कोनों में छिपाए यह समाज अपने चेहरों पर उन मुखौटों को चढ़ाए ज़िन्दगी गुजार देता है, जो दुनियादारी उस पर चढ़ा देती है ?

इसे एक बीमारी ही कहा जाय कि कुछ दुर्भाग्य आपको मोहक लगते है और बार-बार आपसे टकराना चाहते हैं। ऐसी ही चाहत प्रियहरि ने उस क्रूर, कुटिल और नाकाबिले विश्वास वनमाला को देखने की हमेशा बसी रही। चाहता था कि एक बार तो वनमाला और वह रूबरू हों। वह उससे पूछे कि क्या उसे तसल्ली मिल गई ? उसने वह सब क्यों किया ? किसी दिन वल्लरी से फोन पर उसने कहा भी था - "वनमाला ने जो किया, ठीक न किया। उसे कहना कि मैं भले उसे माफ कर दूं, वह खुद अभी अपने आप को माफ नहीं कर पायेगी।"

वल्लरी ने खबर दी थी कि - "वनमाला के मन में आपके खिलाफ कोई मैल नहीं है। उसे खुद वह सब अच्छा नहीं लगा। उसे आपसे कोई शिकायत नहीं है। वह आपकी कभी बुराई नहीं करती। उसका कहना है कि जो कुछ हुआ, वह उसने नहीं किया। वह और लोगों के कारण हुआ।"

कभी जिक्र छिडने पर अनुराधा ने कहा था - "जो हुआ, उसे मैं खुद भी नहीं समझ पाई। वनमाला-दी को मैं जानती हूं। मैं सोच भी नहीं सकती थी कि वह ऐसा करेंगी।"

नेहा कहती है कि - "मैडम वनमाला उस प्रसंग में कोई बात अब कभी किसी से नहीं करतीं। कभी आपकी कोई बुराई उन्होंने नहीं की।"

आगे फिर मुस्कुराती हुई शरारत से आगे कहती है - "मैं बताऊँ, वह आपसे क्यों नाराज हुई थीं...? क्यों चिढ़ गई थीं..? वनमाला का कहना था कि उन्होंने मेरी रिपोर्ट खराब लिखी थी जबकि मंजरी को उन्होंने बहुत अच्छा बताया था।"

नेहा पूछती है - "आप तो उसे बहुत चाहते थे, फिर भी आपने वैसा क्यों किया? वनमाला को उससे बहुत बुरा लगा था।"

जवाब में अपराध-बोध भरे पशोपेश के साथ प्रियहरि के पास चुप्पी भर थी। रुक कर उसने नेहा से कहा था - "सच कहूं ? सच यह है कि वनमाला के मन में मेरे लिए और मेरे मन में वनमाला के लिए कभी न कोई मैल था, और न है। जो लोगों को दिखाई पड़ता था, वह झूठ था। सच यह है कि जिस तरह उसे मैं कभी नहीं भूल सकता, उसी तरह उसके मन से भी मैं कभी न जाऊँगा चाहे कोई और कितने ही बीच में आते क्यों न दिखाई पड़ें।

नेहा का चेहरा कुछ उदास और कुछ संकोच से लाल हो गया। उसने प्रायः प्रियहरि से शिकायत की है कि - "आपसे फोन पर मैं कितनी और क्या बातें करूं ? सब तो घूम-फिर कर वनमाला पर आ जाती हैं। आप उसी की बातें पूछते हैं।"

नेहा की पीड़ा अपनी जगह थी। उसे मलाल था कि प्रियहरि उसे न समझ सका। औरत का मनोविज्ञान समझने में पुरुष हमेशा चूक कर जाता है। बिन्दास नेहा अपनापा लिए प्रियहरि के साथ हमेशा चिपकी रहना चाहती थी लेकिन प्रियहरि था कि औरों की शक्ल में भी वनमाला के साथ लिपटा रहता था। नेहा की नाराजगी अपनी तरह से जायज थी। अपने और प्रियहरि के दरम्यान वनमाला के जिक्र से खीझती उसका यह कह उठना स्वाभाविक था कि 'आप भी तो बस ! सामने बैठी आपसे बातें मैं कर रही हूं और आप है कि वनमाला, वनमाला की रट लगाये रहते है। जिसने आपसे छल किया, बेवफाई की, उसकी की याद आप किये जा रहे है। छोड़िए न उसे....।'

प्रियहरि का यह जवाब था कि 'जो लोगों ने देखा, वह झूठ था। वनमाला से संबंध थे और रहे आएंगे' नेहा ने प्रियहरि की सारी चहेती अंगनाओं से जाकर नमक-मिर्च लगाते हुए कह दी थी। तब हुआ यह कि लालसा भरे फोन की बाद तक रही आई आत्मीयता भी अंगनाओं ने छोड़ दी थी। प्रियहरि से रूठी नेहा उनमें यह भावना भरने में सफल रही थी कि प्रियहरि छलिया है। वह उन सभी से छल करता रहा था। प्रियहरि अकेला रह गया था।

"आमार कि अपराध ?
आमी तोमाके भालोबाशी।"

हां नेहा ठीक कह रही थी। वनमाला की छबियां जब-तब प्रियहरि के चित्त में तैरती रहती हैं। एक दिन वनमाला स्टॉफ के कमरे में अकेली अपनी प्रौढ़ा छबि के साथ कुर्सी पर पसरे अपने बालों को बिंदास मुद्रा में कंघे से सुलझाती-संवारती देखी गई। प्रियहरि सामने पड़ गया था। कुछ झेंपी, कुछ मुस्कुराई। आंखों में यूं शरारत कि तुमसे क्या परदा ? मैं तो तुम्हारी जानी-पहचानी गृहस्थिन हूं।

किसी एक दिन केवल रमणियों के समूह से घिरी बेपरवाह टेबिल पर बैठी वह चहक रही थी। वह निरंतर अपने नूतन नाम के साथ बंगला में लिखे उस संदेश को पढ़ती रही थी, जो प्रियहरि ने ठीक वनमाला की कुर्सी के सामने टेबिल के एक उखड़े कोने पर बारीक अक्षरों में लिख रखा था - "आमार कि अपराध ?, आमी तोमाके भालोबाशी।"

अनबोले प्रिय का ध्यान खींचने उस दिन सब के बीच भी टेबिल से उतरकर सारी कुर्सियों के चक्कर लगाती वह प्रियहरि की आलमारी के कोने तक गई। फिर जमीन तक कमर से झुक कर कुछ उठाने के बहाने अपनी नजरों के कोण बनाती, चंचलता से प्रियहरि की आंखों से मिलाप करती मौन भाषा में ही उसने कह दिया था - "भोले प्रियहरि, तुम्हारा संदेश मैने पढ़ लिया है। आमीओ तोमाके भालोबाशी।"

ज़रूर वैसी ही कशिश जैसी प्रियहरि में वनमाला के लिए थी, वैसी ही कशिश प्रियहरि के लिए उस आधे की अधूरी वनमाला में भी थी। राजधानी में आयोजित एक सेमीनार में प्रियहरि और वनमाला का आमना-सामना हुआ। औरों की तरह शायद वनमाला के मन में भी कहीं यह आस थी कि बतौर अपनी आदत उस सेमीनार में प्रियहरि भी जरूर पहुंचेगा। अपने कालेज की महिला-संगिनियों के बीच सुरक्षित बहाने से जैसे वह वहां पहुंच गई थी। वही अदा, वही संकोच, वही शर्म से छिपने-छिपाने की कोशिशें, धुंधली उदासी से भरा वही चेहरा, सूनेपन में उसी तरह शिकायत करती आंखों में छिपा मन - सब कुछ वैसा ही। जाहिरा तौर पर नीलांजना, नेहा, संध्या पर भ्रम का छद्म छोड़ते कि उसे न वनमाला से मतलब है, और न वनमाला को उससे - दोनों ने एक-दूसरे की आंखों में झांका और भरी भीड़ के बीच भी दोनों के हृदय आलिंगित हो एक-दूसरे में समा गये थे। भीड़ के बीच एकाध अवसर ऐसा भी मिला कि किसी एक समान परिचित से बतियाते दोनों पास खड़े रहे थे। वनमाला का संकोच अब तक प्रफुल्ल आंखों की चमक में बदल गया था। बातों का लक्ष्य कोई और था, लेकिन बातों के पीछे छिपे दोनों के मन की खामोशी एक-दूसरे से लिपटी पड़ रही थी। दुश्मनी और शिकायत थी नहीं, लेकिन जो नाटक दोनों को रचना पड़ा था खुद वे उसी में फंस गये थे। अंदरूनी बातें सभी

जानते थे लेकिन अंदरूनी को दबाकर बाहर जो प्रचारित था, उसे सही ठहराने का विवश अभिनय दोनों को यहां भी करना पड़ रहा था। न प्रियहरि उससे बात कर सका और न वनमाला प्रियहरि से। तब भी दोनों के बीच की मुद्राएं बता रही थीं कि वहां न कोई शिकायत थी, न शिकन। वनमाला और प्रियहरि साथ खड़े थे लेकिन विडम्बना थी कि वे रूबरू घुलने और मिलने का साहस न जुटा सके। था तो केवल वह चिर-परिचित अपनत्व का गहरा अहसास, जिसे पाने दोनों के बीच झगड़ों और दिखावा के कड़वे बहाने हुआ करते थे। अब भी ठीक वैसा ही मुकम्मल था जैसा वह हमेशा रहा आया था।

बाद में प्रियहरि ने नेहा को कभी बहाने से छेड़ा था कि 'वहां उस सेमीनार में तुम सभी आई तो थीं, पर चली कहां गई थी ? मुझसे बातें क्यों न की ?' -नेहा से तब सीधा लेकिन आंखों में हया से भरा शरारती जवाब मिला था -

"हम लोग देख तो रही थीं। आप थे और वनमाला थी। तब हम लोग वहां क्या बात कर पाते ?"

दूर होने के बाद वनमाला से तो रू-ब-रू होना संभव न हुआ लेकिन प्रियहरि को आश्चर्य तब हुआ जब बहुत अरसे बाद प्रियहरि के किसी अफसर मित्र के जरिये विपुल उससे मिलने उपस्थित हुआ। संकोच से गड़े जा रहे विपुल ने कहा कि जो कुछ भी अतीत में घटा उसकी सारी जिम्मेदारी वह लेता है। वह यह महसूस करता है कि सारी गलती इसी की है। उसका बहुत पछतावा उसे है। उसने याचना की कि प्रियहरि उसे माफ कर दे। प्रियहरि खुद स्तब्ध और संकोच में था। विपुल का कहना था कि वह भी कालेज और घर दोनों से परेशान हो चला है। उसकी सारी तरक्कियां रूक गई हैं और इन दिनों वह भयानक मुसीबत में है। उसका खुद का मन ऊब गया है । वह वहां से निकल कहीं भी भाग जाना चाहता है। विपुल की मनःस्थिति को पुष्ट करते बाद में उन मध्यस्थ मित्र ने चुपचाप खबर दी थी कि उस खास औरत को लेकर विपुल के घर में विवाद चल रहे है। उसका घर टूटन की कगार पर है और इसीलिए वह भीषण तनाव में बेचैन है।

एक आदिम भय का कुबूलनामा
सभ्यता नाम है कालपात्र की उन निषिद्ध गहराइयों मे झांकने की मुमानियत का

सब की एक ही नियति है। सब की एक ही संज्ञा है - एक आदिम भय, जिसका कुबूलनामा अनन्त अंधेरी गहराई में कालपात्र की तरह दफ्न कर दिया जाता है। सभ्यता नाम है कालपात्र की उन निषिद्ध गहराइयो में झांकने की मुमानियत का।

वनमाला के साथ प्रियहरि की यादें तो थीं, लेकिन प्रियहरि अब वहां नहीं था। उसे बस यही अफसोस सालता था कि दिल में प्यार बसा होने के बावजूद यादों के लिये तकलीफ-देह हादसे आखिर उसके और प्रियहरि के बीच क्योंकर पेश आये ? क्या यह विचित्र नहीं था कि जिन्दगी के वे हादसे गुजर चुकते दिखाई पड़ने के बावजूद उसकी स्मृतियों मे सतत् घटते होते हैं। वह महसूस करती है कि प्रियहरि से मुलाकात के पहले की जिस वनमाला को वह जानती है, वह न जाने कितने पहले मर चुकी थी। उसकी जगह अब उसके साथ वह वनमाला खड़ी है, जिसे मारती वह न जाने कितनी तहों के भीतर छिपाए फिर रही थी। वह दुर्घटनाओं से बचना चाहती थी, उस पहले की वनमाला को चुकने नहीं देना चाहती थी। वह प्रियहरि ही था जिसने उसमें वे बीज बोए जिनसे इस दूसरी वनमाला का जन्म हुआ था और जिसपर काबू पाने की उसकी हर चेष्टा निरर्थक सिद्ध हुई थी। उसके सामने वह गमला रखा था, जिसमें बाजार से खरीदी गई गुलाब की वह कलम थी जिसे बाहर के उर्वरकों से पाल-पाल कर उसने वैसी चमकदार नस्ल उगानी चाही थी जिससे जंगल की असल पर वैसा नया रंग चढ़ जाए जिसे दुनिया पसंद करती है। बचाते-बचाते भी न जाने असावधानी कहां हुई कि तना चीरती वह जंगली बेल फिर छा गई है। बस एक बार पनप चली तो अपने पर रोपी गई माली की इच्छाओं को रौंदती वह बेलौस आसमान पर छाई जा रही है।

वनमाला बचना चाहती थी लेकिन प्रियहरि था कि उसे तब तक खींचता चला गया था, जब तक कि वह खुद बंध जाने पर विवश न हो चली थी। मुहब्बत का चसका दुखदायी होकर भी उसे प्रीतिकर लगने लगा था। वह निर्बाध और स्वतंत्र थी। अब कोई उसे रोकने वाला नहीं था ,लेकिन यह अजीब था कि शरीर किसी और का हासिल कर भी भोग के नाज़ुक़ लम्हों में प्रियहरि की मूरत उसकी यादों को झकझोरती घुसी चली आती और उसे अन्यमनस्कता में बेचैन छोड़ जाती थी। यह ठीक-ठीक वैसा ही था, जैसा प्रियहरि के साथ वैसे ही स्थायित्व में निरंतर घटता चला रहा आया था।

प्रियहरि के लिये प्रेम की तीन छबियां थीं - वनमाला, नीलांजना, और रानीप्रिया। पीड़ा, सांत्वना और ऐश्वर्य। इन सब के बीच अनेक छबियों में छिपी एक अनाम छाया थी - सतत् यात्रा में किसी एक के संधान की। एक भाव स्थायी था। दूसरे में स्थायी संभवित था। तीसरा वह रस था, जो प्रेम की एक बूंद स्वाद में छोड़कर चला गया था। जो शेष रहा आया था वे इस प्रेम-कथा की संचारी-व्यभिचारी तरंगें थीं।

प्रियहरि इन सब के बीच कहां था ? उसका अस्तित्व था भी या नहीं था ? या वह केवल उस मन का पर्याय था, जो जिन्दगी की धड़कनों के बीच वर्जित अंधेरे खंडहरों में सहमा छिपा इन सब के साथ रहता हुआ कहीं भी नहीं रहता ?

जिन्दगी असंख्य भयावह सपनों से भरी एक लंबी रात हो चली थी, जिसमें वह सिहर-सिहर कर चौंक उठता था । पीड़ा का राग समेटे वह ध्रुपद की एक असमाप्त तान थी, जो उसे लीन करती हमेशा बेचैन रखा करती थी। एक अनन्त कथा, जिसमें लक्ष्य का कहीं अता-पता नहीं था और प्रेतछाया सी धूमिल छबियों के बीच उसे भी अपनी पहचान की तलाश में भटकना ही नियत था। गर्मी के दिनों की स्थिर तपिश का वह सांध्यकालीन आकाश, जो झकझोरते अंधड़ों और घुमड़ते मेघों से सदैव आच्छादित रहा आता, पर बारिश के छींटों की आस जगाता भी उसे प्यासा छोड़ जाता था। यह एक ऐसी राह थी, जो उसे चलाए ले जा रही थी, लेकिन वह कहां जा रही है इसका पता न तो राह को खुद मालूम था और न उसके राही को।

प्रियहरि इसी राह पर था। वह समझता दिखाई पड़ता भी यह नहीं समझ पाता था कि प्रेम केवल संभावना है, तमन्ना है, ज़िन्दगी के हर लम्हे में किसी को साथ लिये उन रिक्तताओं को भरने की कल्पना है, जो हकीकत की जमीन पर न उतर पाती सदैव आप को पीड़ा के कारुणिक संगीत में डुबाए होती है। स्मृति उन संभावनाओं को हर पल आप की प्यास में जगाए रखने का काम करती है, उन्हें बल देती है, जो वंचना में भटक रही होती हैं। कोई मन को इतना भा जाए कि हर अभाव को भरने की तमन्ना की कल्पना में दिल उसे ही चस्पा कर साथ लिये फिरता हो तो वह प्यार की प्यास हो जाता है।

फिर-फिर कर सारी छबियां जुदा-जुदा आकार लेती हैं और फिर-फिर धूमिल होती वहीं विलीन हो जाती हैं जहां से वे प्रकट होती हैं। सब की एक ही नियति है। सब की एक ही संज्ञा है - एक आदिम भय जिसका कुबूलनामा अनन्त अंधेरी गहराई में कालपात्र की तरह दफ्न कर दिया जाता है। सभ्यता नाम है कालपात्र की उन निषिद्ध गहराइयों मे झांकने की मुमानियत का। प्रियहरि है कि स्मृतियों की कुदाल से निरन्तर खोदता खुद उनमें दफ्न हुआ जा रहा है। सारी दुनिया चीख रही है कि वहां खतरा है। प्रियहरि सारे निषेधों , सारी चेतावनियों को दरकिनार कर चिल्लाता है कि वे उन कालपात्रों का क्या करेंगे, जो खुद उनमें दफ्न हैं और जिसमें ईप्सा से चोरी-चोरी झांकते वे जिन्दगी गुजारे जा रहे हैं। दुनिया कहती है कि उन सवालों से मत टकराओ जिनके जवाब कभी कोई न ढूंढ सका है। प्रियहरि चीखता है कि उन सवालों से टकराए बगैर निजात नहीं है। वे सवाल, जिनमें तुम्हारी असल जिन्दगी कैद है। प्रियहरि अब इस दुनिया में नहीं है। स्मृतियों में दुःस्वप्न की तरह वनमाला को बसाए उसकी अंतिम श्वास ने अंकित किया - "वनमाला, मानुषेर एकटा ई जीबोन हए ना।"

यौवन की वासना, प्रेम, ईर्ष्या, संदेह, हृदयों के घात-प्रतिघात और परिस्थितियों की कुटिल चालों से भरी नियति के अदृश्य के नियमों से निरंतर रची जा रही यह कथा यहीं विराम लेती है। क्या यह कथा

वनमाला और प्रियहरि की है? क्या वह इन दोनों के बीच यात्रा में आए नीला, रानी, और उन पड़ावों की है जहां भागता मन राहत पाने थम गया होता था ? नहीं, वे तो मात्र बहाने है। यह कथा जीवन के नियमों की दृश्य-सीमा से परे और पार प्रतिपल अदृश्य नियमों से परिचालित उस जीवन की है जो नर और नारी के हृदय की अंधेरी गुफाओं में पल्लवित होता है। नियति-नटी के इशारों पर वे नियम मनुष्य के अंदर छिपे मनुष्य को संसार की विराट रंगशाला में अभिनय से परे की क्रीड़ा में कठपुतलियों की भांति नचाते हैं।

समाप्त

****